अध्याय 1
भगवान् श्रीकृष्ण का अवतरण

एक बार यह संसार ऐसे राजाओं की अनावश्यक सैनिक शक्ति से बोझिल हो गया, जो वास्तव में असुर थे, किन्तु अपने आपको राजा मान रहे थे । तब सारा संसार विक्षुब्ध हो उठा और पृथ्वी की अधिष्ठात्री देवी, जिसे भूमि कहते हैं, इन आसुरी राजाओं से उत्पन्न अपनी विपदाओं को बताने के लिए ब्रह्माजी के पास गई । भूमि ने गऊ का रूप धारण किया और वह आँखों में आँसू भर कर ब्रह्मा के समक्ष प्रकट हुई । वह शोकार्त थी और भगवान् की करुणा जगाने के लिए रो रही थी । उसने पृथ्वी की विपदाग्रस्त स्थिति का वर्णन किया । इस वृतान्त को सुनकर ब्रह्मा अत्यन्त दुखित हुए । वे तुरन्त क्षीर-सागर के लिए चल पड़े जहाँ भगवान् विष्णु निवास करते हैं । ब्रह्माजी के साथ शिवजी इत्यादि सारे देवता थे और भूमि भी उनके साथ हो ली । क्षीर-सागर के तट पर आकर ब्रह्माजी भगवान् विष्णु को, जिन्होंने पहले वराह का दिव्य रूप धारण करके पृथ्वी लोक की रक्षा की थी, प्रसन्न करने का उपाय करने लगे ।

वैदिक मंत्रों में पुरुष-सूक्त नामक एक विशेष प्रकार की प्रार्थना है । सामान्य रूप से देवतागण इसी पुरूष-सुक्त का उच्चारण करके श्रीभगवान् विष्णु को नमस्कार करते हैं । यहाँ यह ज्ञातव्य है कि जब भी किसी लोक में कोई उपद्रव होता है, उस लोक का अधिष्ठाता देव इस ब्रह्माण्ड के स्वामी ब्रह्मा के पास जा सकता है और ब्रह्माजी भी परमेश्वर विष्णु के पास जा सकते हैं, किन्तु वे वहीं प्रत्यक्ष दर्शन नहीं, अपितु क्षीर-सागर के तट पर खड़े होकर उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं । इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत श्वेतद्वीप नामक एक लोक है, जिसमें क्षीर-सागर है । विविध वैदिक वाङ्मय से ज्ञात होता है कि जिस प्रकार इस लोक में लवण- सागर है, उसी प्रकार अन्य लोकों में भी अनेक प्रकार के तरल

सागर हैं । कहीं क्षीर-सागर है, तो कहीं तेल-सागर और कहीं सुरा-सागर तथा अन्य प्रकार के सागर हैं । पुरुष-सूक्त ही वह आदर्श प्रार्थना (स्तुति) है, जिसे देवतागण क्षीरोदकशायी श्रीभगवान् को प्रसन्न करने के लिए पढ़ते हैं । क्षीर-सागर में शयन करने के कारण वे क्षीरोदकशायी विष्णु कहलाते हैं । वे ही श्रीभगवान् हैं जिनसे इस ब्रह्माण्ड के समस्त अवतार प्रकट होते है ।

जब सभी देवताओं ने श्रीभगवान् की स्तुति पुरुष-सूक्त द्वारा कर ली, तो उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला । अतः ब्रह्माजी स्वयं ध्यान करने में लग गए और तब भगवान विष्णु ने उन्हें एक सन्देश भेजा । ब्रह्मा ने इस सन्देश को देवताओं तक प्रेषित कर दिया । वैदिक ज्ञान प्राप्त करने की यही विधि है । यह वैदिक ज्ञान सर्वप्रथम श्रीभगवान् से ब्रह्मा को हृदय के माध्यम से प्राप्त होता है । जैसा कि श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में कहा गया हैः तेने ब्रह्म हृदा य आदि कवये- वेदों का दिव्य ज्ञान हृदय के द्वारा ब्रह्मा तक प्रेषित हुआ । उसी प्रकार यहाँ भी केवल ब्रह्मा ही भगवान् विष्णु द्वारा प्रेषित सन्देश को समझ पाये और उन्होंने तुरन्त कार्यवाही के लिए देवताओं को प्रसारित कर दिया । यह सन्देश इस प्रकार था । भगवान् शीघ्र ही अपनी परम शक्तियों सहित पृथ्वी पर प्रकट होंगे और जब तक वे पृथ्वी लोक में असुरों के संहार तथा भक्तों के संस्थापन का उद्देश्य पूरा करने के लिए रहेंगे, तब तक देवताओं को भी उनकी सहायता के लिए वहीं रहना होगा । उन्हें तुरन्त उस यदुवंश में जन्म ग्रहण करना होगा जिसमें यथासमय भगवान् भी प्रकट होंगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट होंगे । उनके प्रकट होने के पूर्व सारे देवताओं को अपनी अपनी पत्नियों सहित संसार-भर के विभिन्न पवित्र परिवारों में भगवान् को उनके कार्य में सहायता पहुँचाने के लिए प्रकट होना चाहिए । यहाँ पर तत्प्रियार्थम् शब्द अत्यन्त उपयुक्त है, जिसका अर्थ है कि देवताओं को चाहिए कि भगवान् को प्रसन्न करने के

लिए इस पृथ्वी पर प्रकट हों । दूसरे शब्दों में, कोई भी जीव, जो भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ही जीवित रहता है, वह देवता है । देवताओं को यह जानकारी भी दी गई कि भगवान् कृष्ण के अवतार के पूर्व पृथ्वी पर भगवान् कृष्ण का पूर्ण अंश, अनन्त, प्रकट होगा, जो अपने लाखों फनों से ब्रह्माण्डों को धारण किए हुए है । उन्हें यह भी सूचित किया गया कि विष्णु की बहिरंगा शक्ति (माया) भी, जिससे समस्त बद्धजीव आकृष्ट होते हैं, परमेश्वर के आदेश के अन्तर्गत उनकी प्रयोजन-सिद्धि के लिए प्रकट होगी ।

समस्त देवताओं तथा भूमि को भी मधुर वचनों से आदेश तथा सान्त्वना देने के पश्चात् समस्त प्रजापतियों के पिता ब्रह्माजी अपने धाम, सर्वोच्च लोक ब्रह्मलोक, को चले गये ।

यदुवंश का नायक राजा शूरसेन माथुरा प्रदेश (जिसमें माथुरा नगर आता है) तथा साथ ही शूरसेन नामक जनपद पर जिसका नाम उन्हीं के नाम पर रखा गया था, शासन कर रहा था । राजा शूरसेन के शासन के कारण मथुरा नगरी समस्त यदु राजाओं की राजधानी बन गयी । मथुरा इसीलिए भी राजधानी बनी क्योंकि यदुओं का परिवार अत्यन्त पवित्र था और वे जानते थे कि मथुरा ही ऐसा स्थान है जहाँ द्वारका के ही समान श्रीकृष्ण का नित्य वास रहता है ।

एक बार शूरसेन के पुत्र वसुदेव देवकी को ब्याह कर अपनी नवपरिणीता पत्नी के साथ रथ पर चढ़कर अपने घर जा रहे थें । देवकी के पिता, देवक, ने प्रचुर दहेज दिया था, क्योंकि वह अपनी पुत्री को अत्यधिक चाहता था । उसने सैकड़ों रथ दिये थे, जो पूर्णतया स्वर्णमण्डित थे । उस समय उग्रसेन का पुत्र कंस अपनी बहन देवकी को प्रसन्न करने के लिए वसुदेव के रथ के घोड़ों की रास स्वेच्छा से अपने हाथ में लेकर हाँकने लगा था । वैदिक सभ्यता की प्रथानुसार जब कन्या का ब्याह होता है, तो उसका भाई अपनी बहन तथा अपने बहनोई को उनके घर ले जाता

है । नवविवाहिता कन्या को अपने पिता के परिवार का विछोह न खले, इसलिए भाई उसके साथ तब तक जाता है जब तक वह अपनी ससुराल न पहुँच जाये ।

देवक ने जो पूरा दहेज दिया था वह इस प्रकार थाः स्वर्णहारों से मण्डित 400 हाथी, 15,000 सुसज्जित घोड़े तथा 1,800 रथ । उसने अपनी पुत्री के साथ जाने के लिए 200 सुन्दर बालिकाएँ भी भेजने की व्यवस्था की थी । क्षत्रियों की विवाह-प्रणाली, जो भारत में अब भी प्रचलित है, बताती है कि जब क्षत्रिय का विवाह हो, तो दुलहिन के अतिरिक्त उस की कुछ दर्जन तरुण सहेलियाँ भी राजा के घर जाँये । रानी की अनुचरियाँ दासी कहलाती हैं, किन्तु वास्तव में वे रानी की सहेलियों की तरह कार्य करती हैं । यह प्रथा अनादि काल से प्रचलित है और कम से कम 5,000 वर्ष पूर्व भगवान् कृष्ण के अवतार के भी पहले से खोजी जा सकती है । इस प्रकार वसुदेव अपनी पत्नी देवकी के साथ दो सौ सुन्दर कन्याएँ भी लेते आये ।

जब दूल्हा तथा दुलहन रथ में जा रहे थे । शंख, बिगुल, ढोल तथा मृदंग एकसाथ मिलकर मधुर संगीत (समूह वादन) की ध्वनि उत्पन्न कर रहे थे । जुलूस अत्यन्त मनोहर ढंग से निकल रहा था और कंस रथ को हाँक रहा था । तभी आकाश से अचानक एक आश्चर्यजनक ध्वनि गूँजी जिसने विशेष रूप से कंस को उद्बोधित किया, 'हे कंस! तुम कितने मूर्ख हो! तुम अपनी बहन तथा बहनोई का रथ हाँक रहे हो, किन्तु तुम यह नहीं जान रहे कि तुम्हारी इसी बहन की आठवीं सन्तान तुम्हारा बध करेगी ।'

कंस भोजवंशी उग्रसेन का पुत्र था । कहा जाता है कि कंस समस्त भोजवंशी राजाओं में से सर्वाधिक आसुरी था । आकाशवाणी सुनते ही उसने देवकी के केश पकड़ लिए और उसे अपनी तलवार से मारना चाहा । वसुदेव को कंस के इस दुर्व्यवहार पर आश्चर्य हुआ, अतः वे अपने इस

क्रूर, निर्लज्ज साले को शान्त करने के उद्देश्य से अत्यन्त तर्क तथा प्रमाण सहित इस प्रकार बोले, हे मेरे प्रिय साले, कंस! तुम भोजवंश के सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा हो और लोग तुम्हें महानतम योद्धा तथा पराक्रमी के रूप में जानते हैं । आखिर, तुम इतने क्रुद्ध क्यों हो गये कि अपनी बहन को उसके विवाह के शुभ अवसर पर मारने के लिए उद्यत हो गए हो? तुम अपनी मृत्यु से इतने भयभीत क्यों हो? मृत्यु तुम्हारे जन्म के साथ ही उत्पन्न हो चुकी है । जिस दिन तुमने जन्म ग्रहण किया, उसी दिन से तुम्हारी मृत्यु से इतना क्यों डर रहे हो? अन्ततः मृत्यु अवश्यम्भावी है । तुम चाहे आज मरो या 100 वर्ष बाद; तुम मृत्यु से बच नहीं सकते । तो फिर मृत्यु से इतना क्यों डरते हो? वस्तुतः मृत्यु का अर्थ है इस वर्तमान शरीर का विनाश । जैसे ही यह वर्तमान शरीर कार्य करना बन्द कर देता है और भौतिक प्रकृति के पंच तत्त्वों में मिल जाता है, तो शरीर के भीतर की आत्मा शरीर के वर्तमान कर्मो तथा उनके फल के अनुसार दूरसा शरीर ग्रहण करता है । यह मनुष्य के सड़क पर चलने के समान है- मनुष्य अपना पाँव आगे बढ़ाता है और ज्योंही उसे विश्वास हो जाता है कि उसका पाँव ठोस भूमि पर पड़ा है, तो वह दूसरा पाँव उठाता है । इसी प्रकार यह शरीर भी एक के बाद दूसरे शरीर में बदलता रहता है और आत्मा देहान्तर करता रहता है । देखो न! कितनी सतर्कता से पौधे का कीड़ा एक टहनी से दूसरे में जाता है । इसी प्रकार जब उच्च अधिकारी यह निर्णय लेते है कि अगला शरीर कैसा हो, तो जीव अपना शरीर बदल देता है । जब तक जीव इस भौतिक संसार में बद्ध रहता है, तब तक उसे एक के बाद दूसरा भौतिक शरीर ग्रहण करना होगा । उसे अगला शरीर उसके इस जीवन के कर्मों तथा उनके फलों के अनुसार प्रकृति के नियमों द्वारा प्रदत्त होता है ।

यह शरीर स्वप्नों में देखे जाने वाले शरीरों में से किसी एक के ही समान होता है । सोते समय स्वप्न में हम अपनी मानसिक सृष्टि के अनुसार अनेक

शरीरों की रचना करते रहते हैं । हम पहले से स्वर्ण देखे रहते हैं और पर्वत भी, अतः स्वप्न में हम इन दोनों विचारों को मिलाकर स्वर्णिम पर्वत देख सकते हैं । कभी-कभी सपने में हम अपने शरीर को उड़ता हुआ देखते हैं और उस समय हम अपने वर्तमान शरीर को बिल्कुल भूल जाते हैं । इसी प्रकार ये शरीर बदलते रहते हैं । जब तुम्हें कोई शरीर मिलता है, तो तुम विगत शरीर को भूल जाते हो । स्वप्न में हम न जाने कितने नये प्रकार के शरीरों के साथ सम्पर्क कर सकते हैं, किन्तु जगने पर हम उन सबको भूल जाते हैं । ये भौतिक शरीर वास्तव में हमारी मानसिक क्रियाशीलता की रचनाएँ हैं । किन्तु इस समय हम अपने विगत शरीरों का स्मरण नहीं कर पाते ।

मन बड़ा ही चंचल है । कभी यह कुछ स्वीकार करता है और तुरन्त उसी वस्तु को अस्वीकार कर देता है । इन्द्रिय-तृप्ति के पाँच विषयों-रूप, रस, गंध, शब्द तथा स्पर्श- के सम्पर्क से ही मन स्वीकार और अस्वीकार करता रहता है । चिन्तनशील विधि द्वारा मन इन्द्रियतृप्ति के विषयों के सम्पर्क में आता है और जीव इच्छानुसार विशेष प्रकार का शरीर प्राप्त करता हैं । इस प्रकार शरीर भौतिक प्रकृति के नियमों द्वारा प्रदत्त एक उपहार है । जीव शरीर ग्रहण करके अपने शरीर की रचना के अनुसार इस जगत में सुख भोगने या दुख सहने के लिए फिर से आता है । किसी विशेष शरीर के बिना हम विगत जीवन से प्राप्त मानसिक दशा के अनुसार सुख या दुख का अनुभव नहीं कर सकते । हमें विशेष प्रकार का जो शरीर मिलता है, वह मृत्यु के समय हमारी मानसिक दशा के अनुसार ही मिलता है ।

सूर्य, चनद्र या नक्षत्र जैसे प्रकाशमान् लोकों का प्रतिबिम्ब जल, तेल या घी जैसे विभिन्न प्रकार के आगारों में पड़ता है । यह प्रतिबिम्ब पात्र की गति के ही अनुसार हिलता-डुलता है । चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल पर

पड़ता है और जब के हिलने से चन्द्रमा भी हिलता प्रतीत होता हैं । लेकिन वास्तव में चन्द्रमा हिलता नहीं ।

इसी प्रकार मानसिक कल्पना (मनोधर्म) से जीव विभिन्न प्रकार के शरीर ग्रहण करता है, यद्यपि उसका इन शरीरों से कोई सम्बनध नहीं होता । किन्तु माया के प्रभाव से मोहित होने के कारण जीव सोचता है कि उसका सम्बन्ध एक विशेष प्रकार के शरीर से है । बद्धजीवों की यही जीवन-शैली है । मान लो कि कोई जीव इस समय मनुष्य-शरीर को प्राप्त है । वह सोचता है कि वह किसी मानव-समुदाय या किसी विशेष देश या विशिष्ट स्थान से सम्बन्धित है । वह अपनी पहचान उसी रूप में करता है और व्यर्थ ही दूसरे शरीर की तैयारी में जुट जाता है, जिसकी आवश्यकता नहीं रहती । ऐसी इच्छाएँ तथा मानसिक कल्पनाएँ विभिन्न प्रकार के शरीर के कारण हैं । भौतिक प्रकृति का आच्छादक प्रभाव इतना प्रबल होता है कि जीव को जैसा भी शरीर मिलता है, वह उसी में प्रसन्न रहता है और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उस शरीर से अपनी पहचान करने लगता है । अतः मेरी प्रार्थना है कि तुम अपने मन तथा शरीर के आदेशों से अभिभूत न होओ ।

इस तरह वसुदेव ने कंस से प्रार्थना की कि वह अपनी नवविवाहिता बहन से द्वेष न करे । किसी को दूसरे से द्वेष ही इस लोक में तथा परलोक में, जब वह यमराज (मृत्यु के पश्चात दण्ड देने वाला राजा) के समक्ष होगा, भय का कारण बनता है । वसुदेव ने देवकी की ओर से कंस से अनुनय-विनय की कि वह उसकी छोटी बहन है । उन्होंने विवाह की शुभ घड़ी का स्मरण करा कर भी अनुरोध किया । छोटी बहन या भाई की रक्षा अपनी सन्तान की ही तरह की जानी चाहिए । वसुदेव ने तर्क किया, कुल मिलाकर स्थिति अत्यन्त गम्भीर है कि यदि तुम उसे मारते हो, तो इससे तुम्हारे यश की हानि होगी ।

इस प्रकार वसुदेव ने सदुपदेश द्वारा तथा दार्शनिक तर्क-वितर्क द्वारा कंस को शान्त करने का प्रयास किया, किन्तु वह शान्त नहीं हुआ क्योंकि उसकी संगति असुरों से थी । अपनी आसुरी संगति के कारण राजसी उच् च कुल में जन्म लेकर भी वह असुर बना रहा । असुर कभी किसी सदुपदेश की परवाह नहीं करता । वह प्रतिबद्ध चोर की तरह होता है । भले ही कोई कितना ही नैतिक उपदेश क्यों न दे, उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । इस प्रकार जो लोग स्वभाव से आसुरी या नास्तिक होते हैं, वे मुश्किल से किसी सदुपदेश को ग्रहण करते हैं, चाहे उपदेश कितना ही प्रामाणिक क्यों न हो । देवता में तथा असुर में यही अन्तर है । जो लोग सदुपदेश ग्रहण करके उसके अनुसार जीवन बिताने का प्रया स करते हैं, वे देवता कहलाते है, और जो ऐसे सदुपदेश को ग्रहण करने में अक्षम होते हैं, वे असुर कहलाते हैं ।

जब वसुदेव कंस को शांत करने में असफल रहे, तो वे असमंजस में पड़ गए कि वे अपनी पत्नी देवकी की किस तरह रक्षा करें । संकट आसन्न होने पर बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि यथासम्भव इस संकटमय स्थिति से बचने का प्रया करे, किन्तु यदि सारी बुद्धि लगाने पर भी वह विकट स्थिति को टालने में असफल रहे, तो यह उसका दोष नहीं है । मनुष्य को चाहिए कि जहाँ तक हो सके अपना कर्तव्य निभाए, किन्तु यदि उसका प्रयास विफल रहे, तो इसमें उसका दोष नहीं है ।

वसुदेव अपनी पत्नी के विषय में इस तरह सोचने लगे, इस समय तो मैं देवकी के प्राणों की रक्षा करूँगा; तत्पश्चात यदि हमारे सन्ताने हुई, तो उन्हें बचाने का उपाय सोचूँगा । उन्होंने आगे सोचा, यदि भविष्य में मेरे कोई सन्तान होती है, जो कंस को मार सके - जैसाकि कंस सोचता है- तो देवकी तथा वह सन्तान दोनों ही बच जाएँगे, क्योंकि विधि का विधान अचिन्त्य है । किन्तु इस समय तो किसी तरह मुझे देवकी के प्राणों की रक्षा करनी ही है ।

इसका कोई भरोसा नहीं कि जीव किसी तरह किसी विशेष प्रकार के शरीर से सम्पर्क करे, ठीक वैसे ही जेसे कि दहकती अग्नि का कोई भरोसा नहीं कि जंगल में वह किस प्रकार एक विशेष के काष्ठ के सम्पर्क में आती है । जब जंगल में अग्नि (दावाग्नि) लगती हैं, तो यह देखा जाता है कि दहकती अग्नि वायु के प्रभाव से एक वृक्ष को फलाँग कर दूसरे का ेचपेट में ले लेती है । इसी तरह जीव अपने कर्त्तव्यों का पालन करने में चाहे कितना ही सतर्क क्यों न रहे, तो भी उसके लिए यह जान पाना अत्यन्त कठिन होता है कि अगले जीवन में उसके कैसा शरीर प्राप्त होने वाला है । महाराज भरत आत्म-साक्षात्कार सम्बन्धी अपना कर्त्तव्य अत्यन्त श्रद्धापूर्वक निभा रहे थे, किन्तु संयोगवश उन्हें एक मृग के प्रति क्षणिक अनुराग उत्पन्न हो गया, जिससे उन्हें अगले जन्म में मृग का शरीर धारण करना पड़ा ।

अपनी पत्नी की रक्षा का उपाय सोचकर वसुदेव अत्यन्त पापी कंस से ससम्मान बोले । कभी-कभी ऐसा होता है कि वसुदेव जैसे पुरुष को कंस जैसे परम पापी व्यक्ति की चाटुकारिता करनी पड़ती है । कूटनीतिक व्यापार ऐसे ही चलता है । यद्यपि वसुदेव अत्यधिक खिन्न थे, किन्तु ऊपर से वे मुसकराने लगे । कंसअति निर्दय था इसलिए उन्होंने इस निर्ल्लज्ज को इस प्रकार सम्बोधित कियाः हे मेरे प्रिय कंस! तुम यह मान लो कि तुम्हें अपनी बहन से कोई खतरा नहीं है । तुम्हें खतरे की आशंका इसलिए है, क्योंकि तुमने आकाशवाणी सुनी है । किन्तु यह खतरा तो तुम्हारी बहन के पुत्रों से आना हैं, जो इस समय यहाँ उपस्थित नहीं है और कौन जानता है कि भविष्य में पुत्र हों या नहीं? इस विचार से तुम अभी सुरक्षित हो । न ही तुम्हें अपनी बहन से डरने का कोई कारण है । यदि उसके पुत्र उत्पन्न होते हैं, तो मैं वचन देता हूँ कि मैं उन सब को लाकर आवश्यक कार्यवाही के लिए तुमहारे समक्ष प्रस्तुत करता रहूँगा ।

कंस वसुदेव के वचनों के महत्त्व को जानता था, और वह उनके तर्क से आश्वस्त हो गया । फलतः उस समय वह अपनी बहन के जघन्य बध से विरत हो गया । इस प्रकार वसुदेव प्रसन्न हुए और उन्होंने कंस के निर्णय की प्रशंसा की तथा अपने घर लौट आये ।

तत्पश्चात् देवकी के प्रति वर्ष एक संतान हुई । समय आने पर वसुदेव तथा देवकी ने आठ पुत्रों तथा एक कन्या को जन्म किदया । जब पहला पुत्र उत्पन्न हुआ, तो वसुदेव अपने वचन के अनुसार उसे कंस के पास तुरन्त ले आये । कहा जात है कि वसुदेव अपने वचन के लिए अत्यन्त विख्यात थे, और वे अपना यश बनाये रखना चाहते थे । यद्यपि नवजात पुत्र को कंस के हाथों में सौंपना वसुदेव के लिए अत्यन्त कष्टप्रद था, किन्तु इससे कंस अत्यन्त प्रसन्न हुआ । वह वसुदेव के आचरण से कुछ-कुछ दयार्द्र हो उठा । यह अत्यन्त आदर्श घटना है । वसुदेव-जैसे महात्मा के लिए अपना कर्त्तव्य-पालन करते हुए कुछ भी कष्ट नहीं होता । वसुदेव-जैसा विद्वान पुरुष बिना हिचक के अपना कर्त्तव्य-पालन करता है, जबकि कंस-जैसा असुर कोई भी घृणित कर्म करने में कभी हिचकता नहीं । इसीलिए कहा गया है कि साधु पुरुष सभी प्रकार का कष्टमय जीवन सहन कर सकता है, विद्वान पुरुष अनुकूल परिस्थितियों की प्रतीक्षा किए बिना अपना कार्य कर सकता है, कंस जैसा नृशंस व्यक्ति कोई भी पाप कर सकता है और एक भक्त भगवान् को प्रसन्न करने के लिए सब कुछ न्यौछावर कर सकता है ।

वसुदेव के व्यवहार से कंस संतुष्ट हो गया । वह यह देखकर आश्चर्यचकित था कि वसुदेव के अपने वचन का पालन किया, अतः उन पर दयालु तथा प्रसन्न होकर इस प्रकार बोलने लगा, हे वसुदेव! इस पुत्र को मुझे भेंट करने की कोई आवश्यकता नहीं है । मुझे इस पुत्र से कोई खतरा नहीं है । मैंने सुना है कि तुम्हारा तथा देवकी का आठवाँ पुत्र मुझे

मारेगा । तो फिर मैं इस पुत्र को व्यर्थ ही क्यों स्वीकार करूँ? तुम इसे वापस ले जा सकते हो ।

जब वसुदेव अपने प्रथम पुत्र को लेकर घर लौट रहे थे, तो यद्यपि वे कंस के व्यवहार से प्रसन्न थे, तथापि उन्हें उस पर विश्वास नहीं हो रहा था, क्योंकि वे जानते थे कि कंस किसी के वश में नहीं है । एक नास्तिक पुरुष कभी भी अपने वचन का पक्का नहीं हो सकता । जो व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं रख सकता वह अपने संकल्प में किस प्रकार द्दढ़ हो सकता है? महान् राजनीतिज्ञ चाणकय पंडित ने कहा है, कभी-भी किसी कूटनीतिज्ञ या स्त्री पर विश्वास न करना । जो लोग अनियंत्रित इन्द्रियतृप्ति में आसक्त हैं, वे कभी-भी सत्यनिष्ठ नहीं हो सकते, न कभी उन पर विश्वास किया जा सकता है ।

उस समय कंस के पास महर्षि नारदा आये । उनको जानकारी मिली कि कंस ने वसुदेव पर दयार्द्र होकर पहले नवजात शिशु को लौटा दिया है । नारद अत्यधिक उत्सुक थे कि जितनी जल्दी हो सके भगवान् कृष्ण अवतार लें । अतः उन्होंने कंस को सूचित किया कि एकओर वृन्दावन में नन्द महाराज जैसे महापुरुष तथा ग्वाल, एवं ग्वालों की पत्नियाँ और दूसरी ओर वसुदेव, उनके पिता शूरसेन तथा यदुवंशी वृष्णिकुल में उत्पन्न उनके सारे सम्बन्धी तथा उनके मित्र एवं शुभचिन्तक सभी वास्तव में देवता हैं । नारद ने कंस को गागाह किया कि वह उन सब से सावधान रहे क्योंकि कंस तथा उनके सारे मित्र एवं सलाह देने वाले सभी असुर थे । असुरगण सदैव देवताओं से भयभीत रहते हैं । इस प्रकार नारद से विभिन्न परिवारों में देवताओं के प्रकट होने की जानकारी प्राप्त करके कंस तुरन्त चौकन्ना हो गया । वह समझ गया कि चूँकि देवता अब प्रकट हो चुके है, अतः भगवान् विष्णु का भी शीघ्र ही आगमन होगा । उसने तुरन्त अपने बहनोई वसुदेव तथा बहन देवकी को बन्दी बना लिया और उन्हें कारागार में डाल दिया ।

वसुदेव तथा देवकी लोहे की साँकले पहने कारागार में प्रतिवर्ष एक पुत्र को जन्म देते रहे और कंस प्रत्येक बालक को विष्णु का अवतार समझ कर एक एक करके मारता रहा । वह आठवें पुत्र से विशेष रूप से भयभीत था, किन्तु नारद के आने के पश्चात् वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि कोई भी बालक कृष्ण हो सकता है अतः वसुदेव तथा देवकी से उत्पन्न सभी सन्तानों को मारना ही श्रेयस्कर होगा ।

कंस के इस व्यवहार को समझ पाना बहुत कठिन नहीं हैं । संसार के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जब राज-परिवार के लोगों ने अपनी अभिलाषा की पूर्ति के लिए अपने पिता, भाई या सारे परिवार तथा मित्रों का बध किया है । इसमें कुछ भी आश्चर्यजनक न था, क्योंकि आसुरी वृत्ति वाले राज परिवार के लोभी लोग अपनी निंद्य अभिलाषाओं के लिए किसी का भी वध कर सकते हैं ।

नारद की कृपा से कंस अपने पूर्व- जन्म से अवगत हुआ । उसे पता चला कि वह पूर्व-जन्म में कालनेमि नामक असुर था, जिसका वध विष्णु द्वारा हुआ था । उसने भोज परिवार में जन्म लेकर यह निश्चय किया था कि वह यदुवंश का घोर शत्रु बनेगा । चूँकि कृष्ण उसी परिवार में जन्म लेने जा रहे थे, अतः कंस अत्यधिक भयभीत था कि वह पूर्वजन्म की ही भाँति कृष्ण के हाथों मारा जाएगा ।

सर्वप्रथम उसने अपने पिता उग्रसेन को बन्दी बना लिया, क्योकि वह यदु, भोज तथा अंधक वंशों का प्रमुख राजा था । उसने वसुदेव के पिता शूरसेन से राज्य पर भी अधिकार जमा लिया और अपने आपको इन समस्त देशों का राजा घोषित कर दिया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण का अवतरण" नामक प्रथम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 2
देवताओं द्वारा गर्भस्थ भगवान् कृष्ण की स्तुति

राजा कंस ने न केवल यदु, भोज तथा अन्धक वंशों के राज्यों तथा शूरसेन के राजय को अपने अधिकार में कर लिया, अपितु उसने अन्य सभी आसुरी राजाओं से मैत्री भी स्थापित की । उनके नाम है- प्रलम्ब, बक, चाणूर, तृणावर्त, अघासुर, मुष्टिक, अरिष्ट, द्विविद, पूतना, केशी तथा धेनुक । उस समय जरासंध मगध प्रान्त (आजकल बिहार राज्य) का राजा था । इस तरह, कूटनीति से कंस ने जरासंध के संरक्षण में उसक समय का सबसे शक्तिशाली राज्य सुगतिठत कर लिया । उसने बाणासुर तथा भौमासुर जैसे राजाओं से भी मैत्री स्थापित कर ली जब तक कि वह सर्वाधिक प्रबल नहीं बन गया । फिर वह यदु-वंश के प्रति, जिसमें कृष्ण को जन्म लेना था, अतयधिक शत्रुता बरतने लगा ।

कंस के द्वारा समाये जाने के कारण यदु, भोज तथा अंधक राजा अन्य राज्यों, यथा कुरु, पंचाल, केकय, शाल्व, विदर्भ, निषध, विदेह तथा कोशल राज्य की शरण में जाने लगे- कंस ने यदु राज्य तथा उसी के साथ भोज तथा अन्धक राज्यों की एकता को ध्वस्त कर दिया । उसने उस समय भारतवर्ष नाम से विख्यात विशाल भूभाग में अपनी स्थिति सुद्दढ़ कर ली ।

जब कंस के एक एक करके देवकी तथा वसुदेव के छह शिशुओं का वध कर दिया, तो कंस के अनेक मित्र तथा परिजन उसके पास पहुँचे और उन्होंने प्रार्थना की कि वह इस जघन्य कर्म को त्याग दे । किन्तु बाद में वे सब कंस के प्रशंसक बन गये ।

जब देवकी सातवीं बार गर्भवती हुईं, तो उनके गर्भ में अनन्त नामक कृष्ण का पूर्ण अंश प्रकट हुआ । देवकी हर्ष तथा विषाद से अभिभूत थीं । वे हर्षित थीं, क्योंकि उन्हें पता था कि उनके गर्भ में भगवान् विष्णु ने आश्रय लिया है, किन्तु साथ ही वे खिन्न थीं, कि शिशु के उत्पन्न होते ही कंस का बध कर देगा । उस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने कंस के द्वारा किये गये अत्याचारों से यदुओं की भयभीत स्थिति पर दयालु होकर अपनी अंतरंगा शक्ति योगमाया को प्रकट होने का आदेश दिया । कृष्ण सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के स्वामी है, किन्तु यदुवंश के वे विशेष रूप से स्वामी है ।

योगमाया भगवान् की प्रमुख शक्ति है । वेदों में कहा गया है कि श्रीभगवान् की अनेक शक्तियाँ हैं- परास्य शक्तिर्विविधैव श्रूयते । ये विभिन्न शक्तियाँ बाहर तथा भीतर से कार्य कर रही हैं और योगमाया समस्त शक्तियों में प्रमुख है । उन्होंने आदेश दिया कि योगमाया व्रजभूमि वृन्दावन में अवतरित हो, जो सदैव सुन्दर गौओं से पूरित तथा सुशोभित रहता है । वसुदेव की एक पत्नी रोहिणी वृन्दावन में राजा नन्द तथा रानी यशोदा के घर में निवास कर रही थीं । कंस के अत्याचारों से भयभीत होकर न केवल रोहिणी, अपितु अन्य अनेक यदुवंशी सारे देश में विखर चुके थे । कुछ पर्वतों की गुफाओं में रह रहे थें ।

अतः भगवान् कृष्ण योगमाया से इस प्रकार बोले, देवकी तथा वसुदेव कंस के कारागार में बन्दी हैं और इस समय मेरा पूर्ण अंश, शेष, देवकी के गर्भ में है । तुम शेष को देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित कर सकती हो । इस व्यवस्था के बाद मैं अपनी समस्त शक्तियों के सहित स्वयं देवकी के गर्भ में अवतरित होने जा रहा हूँ । फिर मैं देवकी तथा वसुदेव के पुत्र के रूप में प्रकट हूँगा । तब तुम वृन्दावन में नन्द-यशोदा की पुत्री के रूप में प्रकट होगा ।

चूँकि तुम मेरी सह-भागिनी के रूप में जन्मोगी, और चूँकि तुम शीघ्र इन्द्रिय-तृप्ति की इच्छाओं की पूर्ति करोगी । अतः संसार के सभी लोग

सभी प्रकार की मूल्यवान भेंटो यथा ड्ढ अक्षुरु, बत्ती, पुष्प तथा यज्ञ की हवि से- तुम्हारी पूजा करेंगे । जिन लोगों को भौतिकता से प्रेम है वे तुम्हारे अंश के विभिन्न रूपों में, जो दुर्गा, भद्रकली, विजया, वैष्णवी, कुमुदा, चण्डिका, कृष्णा, माधवी, कन्यका, माया, नारायणी, ईशानी, शारदा तथा अम्बिका नाम से अभिहित होंगे, तुम्हारी पूजा करेंगे ।

कृष्ण तथा योगमाया भाई तथा बहिन-परम शक्तिमान तथा परम शक्ति के रूप में प्रकट हुए । यद्यपि शक्तिमान तथा शक्ति में कोई स्पष्ट अन्तर नहीं है, तथापि शक्ति सदैव ही शक्तिमान के अधीन रहती है । जो लोग भौतिकवादी हैं, वे शक्ति के उपासक हैं, किन्तु जो अध्यातमवादी हैं, वे शक्तिमान के पूजक हैं । कृष्ण परम शक्तिमान हैं और भौतिक जगत में दुर्गा परम शक्ति हैं । वास्तव में वैदिक संस्कृति में लोग शक्तिमान तथा शक्ति दोनों की एकसाथ पूजा करते हैं । विष्णु तथा देवी के ऐसे लाखों मन्दिर होंगे और कहीं-कहीं तो इन दोनों की एकसाथ पूजा की जाती हैं । शक्ति दुर्गा अथवा कृष्ण की बहिरंगा शक्ति के उपासकों को सरलतापूर्वक सभी प्रकार की भौतिक सफलताएँ प्राप्त हो सकती हैं, किन्तु यदि कोई आध्यात्मिक द्दष्टि से ऊपर उठना चाहता हैं, तो उसे कृष्णचेतना (कृष्णभावनामृत) के अनुसार शक्तिमान की पूजा करनी चाहिए ।

भगवान् ने योगमाया से यह भी घोषित कर दिया कि उनका पूर्णांश अनन्त या शेष देवकी के गर्भ में स्थित है । रोहिणी के गर्भ में बलपूर्वक ले जाये जाने के कारण वे संकर्षण कहलाएँगे और वे समस्त दैवी शक्ति या बल के स्त्रोत होंगे जिसके द्वारा लोग जीवन का सर्वोच् च आनन्द, जिसे रमण कहते हैं, प्राप्त कर सकेंगे । अतः पूर्णांश अनन्त अपने अवतार के पश्चात संकर्षण या बलराम नाम से प्रसिद्ध होंगे ।

उपनिषदों का कथन है- नायमात्म बल हिनेन लभ्यः । तात्पर्य यह कि कोई परमेश्वर या किसी प्रका रके आत्म-साक्षात्कार के परम स्तर को

तब तक प्राप्त नहीं कर सकता जब तक बलराम की पर्याप्त कृपा न हो । बल का अर्थ शारीरिक शक्ति नहीं हैं । न ही शारीरिक शक्ति से किसी को आध्यात्मिक सिद्धि मिल सकती है । उसमें आध्यात्मिक शक्ति होनी चाहिए, जो बलराम या संकर्षण द्वारा प्रदत्त की जाती है । अनन्त या शेष उस शक्ति का स्त्रोत है, जो समस्त लोकों को उनकी विविध स्थितियों में धारण किये रहती है । भौतिक रूप से धारण करने की यह शक्ति गुरुत्वाकर्षण कहलाती है, किन्तु वास्तव में यह संकर्षणशक्ति का ही प्रदर्शन है । बलराम या संकर्षण आध्यात्मिक शक्ति या आदि गुरु है । अतः भगवान् नित्यानन्द प्रभु, जो बलराम के अवतार भी हैं, आदि गुरु हैं और गुरु भगवान् बलराम का प्रतिनिधि होता है, जो आध्यात्मिक शक्ति प्रदान करता है । चैतन्यचरितामृत में इसकी पुष्टि की गई है कि गुरु कृष्ण की कृपा का प्राकटय है ।

जब भगवान् ने योगमाया को इस तरह आदेश दिया, तो उसने उनकी प्रदक्षिणा की और बत उनकी आज्ञानुसार वह इस भौतिक जगत में प्रकट हुई । जब भगवान् की परम शक्ति योगमाया ने शेष को देवकी के गर्भ से रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित किया, तो वे दोनो ही योगमाया के वश में थीं, जिसे योगनिद्रा कहते हैं । जब ऐसा हो चुका, तो लोगों ने समझा कि देवकी का सातवाँ गर्भ विनष्ट हो गया । इस तरह यद्यपि बलराम देवकी के पुत्र रूप में अवतरित हुए, किन्तु रोहिणी के गर्भ में स्थानांतरित किये जाने के कारण उनके पुत्र कहलाये । इस व्यवस्था के बाद, अपने निष्काम भक्तों की रक्षा करने के लिए सदैव तत्पर रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी पूर्ण अचिन्त्य शक्तियों सहित सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी के रूप में वसुदेव के मन में प्रवेश किया । इस प्रसंग में यह ज्ञातव्य हो कि भगवान् कृष्ण पहले वासुदेव के निष्काम हृदय में प्रविष्ट हुए और तत्पश्चात देवकी के हृदय में स्थानांतरित हुए । वे देवकी के गर्भ में वीर्य द्वारा स्थापित नही हुए थे । भगवान् अपनी अचिन्त्य शक्ति से किसी रूप

में प्रकट हो सकते हैं । उनके लिए यह अनिवार्य नहीं कि वे स्त्री के गर्भ में वीर्य-क्षेपण की सामान्य विधि द्वारा प्रकट हों ।

जब वसुदेव भगवान् को अपने हृदय में धारण किये हुए थे, तो वे उस देदीप्यमान सूर्य की भाँति लग रहे थे जिसकी प्रखर किरणें सदा असह्य होती हैं और सामान्य जनों को झुलसाने वाली होती हैं । वसुदेव के शुद्ध निष्काम हृदय में स्थित भगवान् का रूप कृष्ण के आदि रूप से भिन्न नहीं था । कहीं भी और विशेष रूप से हृदय के भीतर श्रीकृष्ण के रूप का उदय धाम कहलाता है । धाम से कृष्ण के केवल रूप का नहीं, अपितु उनके नाम , गुण तथा साज-सम्मान का भी बोध होता है । यह सब एक साथ प्रकट होता है ।

इस प्रकार भगवान् शाश्वत रूप अपनी पूर्ण शक्तियों समेत वसुदेव के मन से देवकी के मन में उसी तरह स्थानांतरित हुआ जिस प्रकार अस्त होते हुए सूर्य की किरणें पूर्व में उदय होने वाले पूर्ण चन्द्रमा में चली जाती है ।

भगवान् कृष्ण वसुदेव के शरीर से देवकी के शरीर में प्रविष्ट हुए । वे सामान्य जीव की परिस्थितियों से परे थे । चूँकि कृष्ण वहाँ थे, अतः यह समझना चाहिए कि उनके सारे पूर्ण अंश यथा नारायण तथा सभी अवतार, यथा नृसिंह, वराह इत्यादि उनके साथ-साथ थे और उन पर भी इस जगत की परिस्थितियाँ काम नहीं कर रही थी । इस प्रकार देवकी उन भगवान् का वासस्थान बन गईं, जो अद्वित्तीय हैं और सारी सृष्टि के कारण हैं । यद्यपि देवकी परम सत्य का वासस्थान बन गईं, किन्तु कंस के घर के भीतर रहने के कारण वे शमित अग्नि या दुरुपयुक्त विद्या की भाँति दिखाई पड़ती थीं । जब अग्नि किसी पात्र में रखी जाती है या किसी (बन्द) घड़े में रखी जाती हैं, तो अग्नि की प्रकाशमान् किरणें नहीं दिखतीं । इसी प्रकार से, वह दुरुपयुक्त ज्ञान, जिससे सामान्य जनता को लाभ नहीं पहुँचता, प्रशंसित नहीं होता । इसी प्रकार देवकी कंस के महल के

कारागार की दीवालों के भीतर रखी गई थीं । जिससे कोई भी उनके उस दिव्य सौन्दर्य को देख नहीं सकता था, जो उनके गर्भ में भगवान् के आने से उत्पन्न हुआ था ।

किन्तु कंस ने अपनी बहन के इस दिव्य सौनदर्य को देखा और वह तुरन्त इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भगवान् ने उसके गर्भ में शरण ले ली है । इसके पहले वह इतनी अधिक सुनदर कभी नहीं लगी थी । वह स्पष्ट रूप से समझ गया कि देवकी के गर्भ में कोई कुतूहलपूर्ण वस्तु अवश्य है । अतः कंस विचलित हो गया । उसे विश्वास था कि भविष्य में उसका वध करने वाले भगवान् का आगमन हो चुका है । कंस सोचने लगाः अब देवकी का क्या किया जाय? उसके गर्भ में निश्चित रूप से विष्णु या कृष्ण हैं, अतः यह निश्चित है कि कृष्ण देवताओं का उद्देश्य पूरा करने के लिए आ गये हैं । यदि मैं तुरन्त देवकी का वध कर भी दूँ, तो उनका उद्देश्य विफल नही हो सकता । कंस भली-भाँति जानता था कि विष्णु के उद्देश्य को कोई विफल नहीं कर सकता । कोई भी बुद्धिमान पुरुष जान सकता है कि भगवान् के नियमों का अतिक्रमण नही किया जा सकता । सारे असुर चाहे कितने ही विघ्न क्यों न डालें, भगवान् का उद्देश्य पूरा होकर रहेगा । कंस ने सोचा यदि इस समय मैं देवकी को मारता हूँ, तो विष्णु अपनी परम इच्छाको अधिक तीव्रता से लागू करेंगे । देवकी को इस समय मारना सबसे घृणित कार्य होगा । भले कोई कितनी ही विषम परिस्थिति में क्यों न हो, किन्तु वह अपनी ख्याति नष्ट करना नहीं चाहता । यदि इस समय मैं देवकी को मारता हूँ, तो मेरी ख्याति नष्ट हो जाएगी । आखिर, देवकी एक अबला है और वह मेरी शरण में है, वह गर्भवती है और यदि मैं उसे मारता हूँ, तो मेरी ख्याति मेरे जीवनभर के पुण्यों का फल तदा मेरे जीवन की अवधि है, समाप्त हो जाएँगी ।

उसने आगे भी विचार किया जो व्यक्ति अत्यधिक क्रूर होता है, वह इसी जीवनकाल में मृत तुल्य रहता है । क्रूर पुरुष अपने जीवनकाल में किसी

को प्रिय नहीं होता और उसकी मृत्यु के बाद लोग उसे कोसते हैं । अपनी देहात्म-बुद्धि के कारण मनुष्य का पतन होता है और नरक के गहनतम भाग में धकेल दिया जाता है । कंस ने उस समय देवकी के वध के पक्ष और विष्क्ष पर इस प्रकार से विचार किया ।

अन्त में कंस ने देवकी को तुरन्त न मार कर अपरिहार्य भविष्य की प्रतीक्षा करने का निर्णय लिया । किन्तु उसका मन भगवान् के प्रति शत्रुता से भर गया । वह धैर्यपूर्वक शिशु-जन्म की प्रतीक्षा करने लगा, जिससे वह उनका वध कर सके जैसाकि उसने देवकी के अन्य बालकों के साथ किया था । इस प्रकार भगवान् के प्रति शत्रुता के सागर में निमग्न वह बैठते, सोते, चलते, फिरते, खाते, काम करते-जीवन की सभी अवस्थाओं में - कृष्ण अथवा विष्णु के ही विषय में सोचने लगा । उसका मन भगवान् के विचार में इतना लीन हो गया कि उसे अपने चारों ओर विष्णु या कृष्ण ही दिखते । दुर्भाग्यवश, यद्यपि उसका मन विष्णु के विचार में इतना लीन था, तथापि वह भक्त नहीं माना जाता, क्योंकि वह कृष्ण को शत्रु के रूप में सोचता था । महान् भक्त के मन की दशा भी ऐसी ही होती है कि वह सदैव कृष्ण में लीन रहता है, किन्तु भक्त भगवान् के अनुकूल सोचता है, प्रतिकूल नहीं । कृष्ण के अनुकूल सोचना कृष्ण-भक्ति है, किन्तु कृष्ण के विपरीत सोचना कृष्ण-भक्ति नहीं है ।

उस समय ब्रह्मा तथा शिवजी नारद जैसे ऋषियों तथा अन्य अनेक देवताओं के साथ कंस के घर में अद्दृश्य रूप में प्रकट हुए । वे भक्तों को अत्यन्त प्रिय एवं उनकी कामनाओं को पूर्ण करने वाली चुनी हुई स्तुतियों से भगवान् अपने प्रण के सच् चे होते हैं । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, श्रीकृष्ण इस भौतिक जगत में पवित्रात्माओं की रक्षा करने तथा दुष्टों का विनाश करने के लिए अवतरित होते हैं । यही उनका प्रण है । देवता जान गये थे कि अपने प्रण को पूरा करने के लिए उन्होंने देवकी के गर्भ में वास किया है । देवता परम प्रसन्न थे कि भगवान् अपना उद्देश्य

पूरा करने के लिए प्रकट हो रहे हैं, अतः उन्होंने उन्हें सत्यम् परम् कह कर सम्बोधित किया ।

प्रत्येक व्यक्ति सत्य की खोज में लगा है । यही जीवन की दार्शनिक रीति है । देवतागण जानकारी देते हैं कि परम सत्य कृष्ण ही हैं । जो पूर्णतः कृष्णभावनाभावित हो जाता है, वह परम सत्य को प्राप्त कर सकता है । कृष्ण ही परम सत्य हैं । शाश्वत काल की तीन अवस्थाओं में सत्य हैं, सापेक्ष सत्य नहीं । काल भूत, वर्तमान तथा भविष्य में विभाजित है । भौतिक जगत में प्रत्येक वस्तु परम काल द्वारा- भूत, वर्तमान तथा भविष्य के द्वारा- नियंत्रित हो रही है; किनतु सृष्टि के पूर्व कृष्ण विद्यमान थे; सृष्टि के हो जाने पर प्रत्येक वस्तु कृष्ण पर आश्रित है और जब यह सृष्टि समाप्त होगी, तो कृष्ण बचे रहेंगे । अतः वे सभी परिस्थितियों में परम सत्य हैं यदि भौतिक जगत में सत्य हैं, तो यह परम सत्य से उद्भूत है । यदि इस भौतिक जगत में कहीं वैभव हैं, तो इस के स्त्रोत कृष्ण ही हैं । यदि संसार कुछ में ख्याति है, तो कृष्ण ही उसके कारण हैं । यदि संसार में कोई बल (शक्ति) हैं, तो इस शक्ति के कारण कृष्ण हैं । यदि संसार में कोई ज्ञान तथा शिक्षा है, तो उसके कारण-स्वरूप कृष्ण हैं । इस तरह कृष्ण सारे सत्यों के स्त्रोत हैं ।

यह भौतिक जगत पाँच प्रमुख तत्त्वों - पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश- से बना हुआ है और ये सारे तत्त्व कृष्ण से ही उद्भूत हैं । भौतिक विज्ञानी इन पाँच मूल तत्त्वों को भौतिक सृष्टि का कारण मानते हैं, किन्तु सारे तत्त्व अपनी स्थूल तथा सूक्ष्म अवस्थाओं में कृष्ण द्वारा ही उत्पन्न हैं । इस भौतिक जगत में कार्यरत समस्त जीव भी उनकी तटस्था शक्ति के प्रतिफल हैं । भगवद्गीता के सातवें अध्याय में स्पष्ट कहा गया है कि यह सारा संसार कृष्ण की परा तथा अपरा नामक दो प्रकार की शक्तियों का संयोग है । जीवात्माएँ भगवान् की परा शक्ति हैं और निर्जीव

भौतिक तत्त्व अपरा शक्ति हैं । सुप्तावस्था में प्रत्येक वस्तु कृष्ण में समाहित रहती है ।

देवतागण भौतिक प्राकअय के विश्लेषण-अध्ययन द्वारा भगवान् के परम रूप की सादर प्रार्थना करते रहे । यह भौतिक प्राकय क्या है? यह एक वृक्ष के समान है । वृक्ष भूमि पर खड़ा रहता है । इसी तरह भौतिक प्राकटय रूपी यह वृक्ष प्रकृति रूपी भूमि पर खड़ा है । इस भौतिक प्राकटय की तुलना वृक्ष से की जाती है क्योंकि समय आने पर वृक्ष को काट लिया जाता है । वृक्ष का अर्थ है, वह जो अन्ततः काट लिया जायेगा । अतः भौतिक प्राकटय का यह वृक्ष परम सत्य नहीं माना जा सकता क्योकि इस पर काल का प्रभाव पड़ता है, किन्तु कृष्ण का शरीर शाश्वत है । वे भौतिक प्राकटय (सृष्टि) के पहले भी विद्यमान थे, भौतिक जगत के अस्तित्व में होने पर भी विद्यमान हैं और जब इसका विलय हो जायेगा तब भी वे विद्यमान रहेंगे । अतः केवल कृष्ण को ही परम सत्य माना जा सकता है ।

कठोपनिषद् में भी प्रकृति रूपी भूमि पर खड़े हुए भौतिक जगत रूपी वृक्ष का उदाहरण मिलता है । इस वृक्ष में दो प्रकार के फल होते है । सुख तथा दुख । इस शरीर रूपी वृक्ष में रहने वाले प्राणी दो पक्षियों के समान होते हैं । एक पक्षी कृष्ण का अन्तर्यामी स्वरूप हैं, जो परमात्मा कहलाता है और दूरा पक्षी जीव है । जीव इस भौतिक जगत के फलों को खा रहा है । कभी यह सुख का फल खाता है, तो कभी दुख का फल । किन्तु दूसरा पक्षी सुख या दुख के फलों को खाने में रूचि नहीं लेता, क्योंकि वह आत्म-तुष्ट है । कठोपनिषद् में कहा गया है कि इस शरीर में रूपी वृक्ष का एक पक्षी फल खा रहा है और दूसरा केवल साक्षी रूप में देख रहा है । इस वृक्ष की जड़ें तीन दिशाओं में फैली हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि वृक्ष की ये जड़ें प्रकृति के तीन गुण है- सतो, रजो तथा तमोगुण । जिस प्रकार वृक्ष की जड़ें फैलती हैं उसी प्रकार प्रकृति के गुणों

(सतो, रजो तथा तमो) के संसर्ग से मनुष्य अपनी जीवन-अवधि बढ़ाता है । इन फलों का स्वाद चार प्रकार का है- धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष । प्रकृति के तीनों गुणों के साथ विभिन्न प्रकार के संसर्गों के फलस्वरूप जीव विभिन्न प्रकार के धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष का स्वाद लेता है । व्यावहारिक रूप में सारा भौतिक कार्य अज्ञान (तमोगुण) में किया जाता है, किन्तु तीन प्रकार के गुण होने से कभी-कभी यह अज्ञान (तमोगुण) सतो या रजोगुण से आच्छादित रहता है । इन भौतिक फलों का स्वाद पाँच इन्द्रियों द्वारा ग्रहण किया जाता है । पाँच इन्द्रियाँ जिनके द्वारा ज्ञान अर्जित किया जाता है, छह प्रकार के कोड़ों (दोषों) से प्रभावित होती हैं- शोक, मोह, दुब्रलता, मृत्यु, भूख तथा प्यास । यह भौतिक शरीर या भौतिक जगत सात कोशों (आवरणों) से ढका है- त्वचा, पेशी, मांस, मज्जा, अस्थि, व्यवस्था तथा वीर्य । वृक्ष की आठ शाखाएँ हैं-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु शून्य (आकाश), मन, बुद्धि तथा अहंकार । इस शरीर के भीतर दस प्रकार के आन्तरिक वायु (प्राण) हैं- प्राण, आपान, उदान, व्यान, समान इत्यादि । जैसाकि ऊपर कहा जा चुका हैं, इस वृक्ष पर बैठे दो पक्षी जीवात्मा तथा अन्तर्यामी भगवान् हैं ।

यहाँ पर वर्णित भौतिक जगत के मूल कारण भगवान् ही हैं । वे अपना विस्तार करते हैं और भौतिक जगत के तीन गुणों को अपने अधिकार में करते हैं । विष्णु सतोगुण को सँभालते हैं, ब्रह्मा रजोगुण को और शिवजी तमोगुण का भार ग्रहण करते हैं । ब्रह्मा रजोगुण से इस सृष्टि को उत्पन्न करते हैं, विष्णु सतोगुण से इसका पालन करते हें और शिवजी तमोगुण से इसका संहार करते हैं, विष्णु सतोगुण से इसका पालन करते है और शिवजी तमोगुण से इसका संहार करते हैं । अतः सम्पूर्ण सृष्टि परमेश्वर पर आश्रित है । वे ही इसकी उत्पत्ति, पालन तथा संहार के कारण हैं । और जब इस सम्पूर्ण सृष्टि कस विलय हो जाता हैं, तो भगवान् की

शक्ति के रूप में यह सूक्ष्म सृष्टि भगवान् के शरीर के भीतर स्थित रहती है ।

देवताओं ने स्तुति की, इस समय परमेश्वर कृष्ण इस जगत के पालन हेतु जन्म ले रहे हैं । वास्तव में परम कारण एक ही है, किन्तु प्रकृति के तीन गुणों के द्वारा भ्रमित हो जाने के कारण अल्पज्ञानी व्यक्ति समझते हैं कि यह जगत विभिन्न कारणों से प्रकट हो रहा है । जो बुद्धिमान हैं, वे देख सकते हैं कि इसका कारण एक, कृष्णा, हैं । जैसा ब्रह्य-संहिता में कहा गया है-ईश्वरः परमः कृष्णः...सर्व-कारण-कारणम् । भगवान् कृष्ण समस्त कारणों के कारण है । ब्रह्या सृष्टि के लिए नियुक्त किये गये एजेन्ट हैं, विष्णु पालन के लिए कृष्ण के अंश हैं और शिवजी विलय के लिए कृष्ण के अंश है ।

देवताओं ने स्तुति की, हे स्वामी! आपके शाश्वत स्वरूप को समझ पाना दुष्कर है । सामन्यजन आपके वास्तविक रूप को समझने में अक्षम रहते हैं, अतः आप अपना आदि शाश्वत रूप प्रकट करने के लिए स्वयं अवतार ले रहे हैं । लोग किसी तरह आपके विभिन्न अवतारों को तो समझ सकते हैं, किन्तु दो भुजाओं वाले कृष्ण के शाश्वत रूप को, मनुष्यों के बीच उन्हीं के समान विचरण करते देख कर वे उलझन में पड़ जाते हैं । आपका यह शाश्वत रूप भक्तों के दिव्य आनन्द को बढ़ाता रहता है, किन्तु अभक्तों के लिए यह घातक है । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है कृष्ण साधु के लिए अत्यन्त मोहक हैं । परित्राणाय साधूनाम् । किन्तु यह रूप असुरों के लिए अत्यन्त घातक है, क्योंकि कृष्ण असुरों के वध के लिए अवतरित होते हैं । अतः वे एक ही साथ भक्तों के लिए मोहक हऔर असुरों के लिए घातक हैं ।

हे कमल के समान नेत्रों वाले प्रभु! आप शुद्ध सत्त्व के स्त्रोत हैं । ऐसे अनेक ऋषि हैं जिन्होंने केवल समाधि के द्वारा या आपके चरणकमलों के आध्यात्मिक ध्यान के द्वारा और इस तरह आपके विचार में लीन रह कर

प्रकृति द्वारा उत्पन्न अज्ञान के महासागर को गोखुर में समाने वाले जल के समान बना दिया है । ध्यान का उद्देश्य मन को भगवान् के चरणकमलों से प्रारम्भ करके उन पर केन्द्रित करता है । भगवान् के चरणकमलों के ध्यान से ही बड़े-बड़े मुनि इस विशाल भव्यवस्थागर को बिना कठिनाई के पार कर लेते है ।

हे स्वयंप्रकाशित! जिन महान् सन्तों ने आपके चरणकमलों की दिव्य नाव के सहारे अज्ञान सागर को पार कर लिया है वे उस नाव को अपने साथ नहीं ले गये । वह अब भी इस पार पड़ी हुई है । यदि कोई नाव द्वारा नदी पार करता है, तो वह नाव को भी उस पार लेता जाता है । अतः जब वह अपने गंतव्य पर पहुँच जाता है, तो फिर वही नाव किस प्रकार उन लोगों के लिए उपलब्ध् हो सकती है, जो इस ओर प्रतीक्षा कर रहे हैं? इस कठिनाई का उत्तर देने के लिए देवता अपनी स्तुति में कहते हैं कि भगवान् के चरणकमलों की यह नाव ले नहीं जाई जाती । जो भक्तगण अब भी भव्यवस्थागर के इस पार खड़े है वे दूसरी ओर जाने में समर्थ होते हैं, क्योंकि शुद्ध भक्त सागर को पार करते समय उसे अपने साथ नहीं ले जाते । जब कोई इस नाव के पास जाता हैं, तो भौतिक अज्ञान का सारा समुद्र-सिमट कर गोपद में समा जाता है । अतः भक्तों को दूसरी ओर जाने के लिए नाव की आवश्यकता ही नहीं तड़ती; वे तुरन्त समुद्र पार कर लेते हैं । चूँकि महान् साधु पुरुष समस्त बद्धजीवों के प्रति दयालु होते हैं, अतः नाव तब भी इस ओर पड़ी रहती है । कोई किसी समय उनके चरणारविन्दों का ध्यान करके भौतिक अज्ञान के महान्सागर को पार कर सकता है ।

ध्यान का अर्थ हैं भगवान् के चरणकमलों पर एकाग्रता । चरणकमल भगवान् के सूचक हैं । किन्तु जो निर्विशेषवादी हैं, वे भगवान् के चरणकमलों को नहीं मानते, अतः उनके ध्यान का विषय निराकार होता है । देवताओं का यह पक्का निर्णय है कि जो लोग शून्य या निराकार

का ध्यान करने में रूचि रखते हैं, वे अज्ञान के सागर को पार नहीं कर सकते । ऐसे लोग केवल यही सोचते हैं कि वे मुक्त हो गए हैं । हे कमलनेत्र प्रभु! उनकी बुद्धि कल्मषग्रस्त हो जाती है क्योंकि वे आपके चरणकमलों का ध्यान करने में असफल रहते हैं । इस उपेक्षा-भाव के कारण निर्विशेषवादी संसार के बद्ध जीवन में पुनः आ गिरते हैं, भले ही कुछ काल के लिए वे निराकार साक्षात्कार के पद तक पहुँच जाँए । निर्विशेषवादी ब्रह्मतेज में लीन होने के लिए कठिन तपस्या करते हैं, किन्तु उनके मन भौतिक कल्मष से मुक्त नहीं होते, वे चिन्तन की भौतिक विधियों का निषेध मात्र करते रहते हैं । इसका यह तात्पर्य कदापि नहीं कि वे मुक्त हो चुकें हैं । इस तरह वे नीचे गिर जाते है ।

भगवद्गीता में कहा गया है कि निर्विशेषवादियों को चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए महान् यातनाएँ सहनी पड़ती है । श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में इसका भी उल्लेख है कि भगवान् की शक्ति के बिना किसी को सकाम कर्मों के बन्धन से मुक्ति प्राप्त नहीं हो सकती । भगवद्गीता में भगवान् कृष्ण का और श्रीमद्भागवत में नारद मुनि का कथन है और यहाँ भी देवता इसकी पुष्टि करते हैं, जो लोग भक्ति नहीं करते उन्हें ज्ञान का चरम लक्ष्य ज्ञात नहीं रहता । ऐसे लोगों को आपकी कृपा प्राप्त नहीं होती । निर्विशेषवादी केवल यही सोचते है कि वे मुक्त हैं, किन्तु वास्तव में उनमें भगवान् के लिए कोई भावना नहीं होती । वे सोचते हैं कि जब कृष्ण इस जगत में आते हैं, तो वे भौतिक शरीर धारण करते हैं । इस प्रकार वे कृष्ण के दिव्य शरीर की उपेक्षा कर देते हैं । भगवद्गीता में इसकी पुष्टि हुई है- अवजानन्ति मां मूढाः । फलतः निर्विशेषवादी भौतिक वासना पर विजय पाने तथा मुक्ति तक पहुँचने के बावजूद नीचे गिर जाते हैं । यदि वे ज्ञान के लिए ही वस्तुओं को जाननें में व्यस्त रहते हैं और भगवान् की भक्ति नहीं करते, तो उन्हें वाञ्छित फल प्राप्त नहीं हो सकता । उनके हाथ लगता है केवल उनके द्वारा उठाया गया कष्ट, इससे अधिक कुछ नहीं ।

भगवद्गीता में स्पष्ट कहा गया है कि ब्रह्म-साक्षात्कार ही सब कुछ नहीं है । ब्रह्म-साक्षात्कार द्वारा भौतिक आसक्ति या विरक्ति के बिना भी मनुष्य प्रसन्न रह सकता हैं और समभाव के पद को प्राप्त हो सकता हैं, किन्तु इस अवस्था के बाद भक्ति करनी ही होती हैं । जब मनुष्य ब्रह्म-साक्षात्कार पद तक उठ जाने के बाद भक्ति करता हैं, तो वह आध्यात्मिक राज्य(वैकुण्ठ) में प्रवेश करता है, जहाँ वह भगवान् की संगति में स्थायी निवास करता है । भक्ति का यही परिणाम होता है । भगवान् के भक्त कभी भी निर्विशेषवादी की भाँति नीचे नहीं गिरते । यदि वे नीचे गिरते भी हैं, तो भगवान् में प्रेमपूर्वक अनुरक्त रहते हैं । भक्ति के मार्ग में भले ही उन्हें समस्त प्रकार के अवरोध मिलते हों, किन्तु वे बिना डर के स्वतंत्रतापूर्वक ऐसे अवरोधों को पार कर सकते हैं । शरणागत होने के कारण उन्हें विश्वास रहता है कि कृष्ण सदा उनकी रक्षा करेंगे । कृष्ण के भगवद्गीता में वचन में रखा गया है कि मेरे भक्तों का कभी विनाश नहीं होता ।

देवताओं ने आगे कहा,'हे प्रिय भगवान्, इस भौतिक जगत के सभी जीवों के कल्याण के लिए आप अपने आदि विशुद्ध रूप में- शुद्ध सत्त्व के सनातन रूप में प्रकट हुए हैं । आप के प्राकटय का लाभ लेते हुए अब वे सभी पूर्ण पुरुषोत्तम परमेश्वर की प्रकृति एवं रूप को अत्यन्त सरलता से समझ सकते हैं । चारों आश्रमों कें व्यक्ति (ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यासी) सभी आपके प्राकटय का लाभ उठा सकते हैं ।''

' हे लक्ष्मीपति भगवान्! जो भक्त आपकी सेवामें लगे हुए हैं, वे निर्विशेषवादियों की तरह अपने उच्च पद से नीचे नहीं गिरते । भक्तगण आपके द्वारा रर्गिं होकर मुक्ति के मार्ग में बाधक माया के अनके सेनापतियों के सिरों को लाँघ जाते हैं । हे प्रभु! आप जीवों के लाभ के लिए अपने दिव्य शाश्वत रूप में प्रकट होते हैं जिससे वे आपका साक्षात् दर्शन कर सकें और वेदों के अनुष्ठानों, योगिक ध्यान तथा शास्त्रविहित

भक्ति के द्वारा आपकों पूजा की भेंटें अर्पित कर सकें । हे भगवान् यदि आप अपने सत्, चित् आनन्द रूप में, जो आपके पद के बारे सभी प्रकार की मन गढ़न्त अविद्या को दूर करने वाला है, न प्रकट होते तो सभी लोग अपने-अपने भौतिक गुणों के अनुसार आपके विषय में केवल कल्पना करते रहते ।

कृष्ण अवतार भगवान् के समस्त काल्पनिक मूर्तिविज्ञान का मुँहतोड़ जबाव है । प्रत्येक व्यक्ति प्रकृति के बारे में अपने अपने गुण के अनुसार भगवान् के स्वरूप की कल्पना करता है । ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि भगवान् पुरातन पुरुष हैं, अतः कुछ धर्मानुयायी कल्पना करते हैं कि ईश्वर अत्यन्त प्राचीन होगा, अतः वे भगवान् को अत्यन्त वृद्ध पुरुष की भाँति अंकित करते हैं । किन्तु उसी ब्रह्म-संहिता में इसका प्रतिवाद भी हुआ है कि यद्यपि वे समस्त जीवों से प्राचीन हैं, तथापि उनका शाश्वत रूप सदैव तरुण है । श्रीमद्भागवत में इस प्रसंग में ये शब्द प्रयुक्त हैं- विज्ञानम् अज्ञानभिद् आपमार्जनम् । विज्ञानम् का अर्थ है भगवान् सम्बन्धी दिव्य ज्ञान । विज्ञानम् का अर्थ अनुभूत ज्ञान भी है । दिव्य ज्ञान गुरु-परम्परा की अवरोही विधि से स्वीकार किया जाता हैं, जैसे ब्रह्म-संहिता में ब्रह्मा इस कृष्ण-ज्ञान को प्रस्तुत किया । यह ज्ञान अज्ञानभिद् आपमार्जनम् हैं, जिसका अर्थ है, वह जो सभी प्रकार के ज्ञान की कल्पनाओं को नष्ट कर सकें । अज्ञान के वशीभूत होकर लोग भगवान् के स्वरूप की कल्पना करते है और उनकी कल्पना के अनुसार कभी वे साकार होते हैं, तो कभी निराकार । किन्तु ब्रह्म-संहिता में कृष्ण का प्रस्तुतिकरण विज्ञानम् है अर्थात् वैज्ञानिक है, अनुभूत ज्ञान है जिसे ब्रह्मा ने प्रदान किया है कि यह विज्ञान समस्त प्रकार की चिन्तनपरक विद्या को सदैव मात देता है । अतः आपके कृष्ण रूप में अवतार लिये बिना न तो अज्ञानभिद् आपर्माजनम् (चिन्तनपरक ज्ञान के अज्ञान का नाश), न ही विज्ञान का साक्षात्कार किया जा सकात है । अज्ञानभिद् आपमार्जनम्-

दूसरे शब्दों में आपके अवतार से काल्पनिक ज्ञान की अविद्या मिट जाएगी और भगवान् ब्रह्मा जैसे अधिकारियों के अनुभूत ज्ञान की स्थापना होगी । मनुष्य भौतिक प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित होकर प्रकृति के गुणों के अनुसार अपने ईश्वर की कल्पना करते हैं । इस प्रकार ईश्वर को अनेक प्रकार से प्रस्तुत किया जाता हैं, किन्तु आपके प्राकटय ये यह सिद्ध हो जाएगा कि ईश्वर का असली रूप क्या हैं ।

निर्विशेषवादियों की सबसे भयंकर भूल उनका यह विचार है कि जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो वे सतोगुणी पदार्थ का रूप स्वीकार करते हैं । वस्तुतः कृष्ण या नारायण का रूप किसी भौतिक विचार के परे होता है । यहाँ तक कि महानतम मायावादी शंकाराचार्य ने भी स्वीकार किया है कि नारायणः परोऽव्यक्तात्- भौतिक सृष्टि द्रव्य (पदार्थ) के अव्यक्त प्राकटय से या द्रव्य के अप्रत्यक्ष संरक्षण से उत्पन्न होती है और कृष्ण इस भौतिक बोध से परे हैं । इसे श्रीमद्भागवत में शुद्ध सत्त्व या दिव्य सत्त्व कहा गया है । इनका सम्बन्ध सतो गुण से नहीं है । वे भौतिक सत्त्व से ऊपर हैं । वे सच्चिदानन्दस्वरूप हैं ।

" हे प्रभो! जब आप विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं, तो विभिन्न परिस्थितियों के अनुसार आप भिन्न-भिन्न नाम और रूप धारण करते हैं । सर्व-आकर्षक होने के कारण आपका नाम कृष्ण है । अपने दिव्य सौन्दर्य के कारण आप श्यामसुन्दर कहलाते हैं । श्याम का अर्थ है साँवला, फिर भी कहा जाता है कि आप हजारों कामदेवों से अधिक सुन्दर हैं । कन्दर्प कोटि कमनीय । यद्यपि आपका रंग श्याम बादल जैसा हैं, किन्तु दिव्य परम होने के कारण आपका सौन्दर्य कामदेव के कोमल शरीर से कई गुना आकर्षक हैं । कभी-कभी आप गिरिधारी कहे जाते हैं, क्योंकि आपने गोवर्धन पर्वत धारण किया था । कभी-कभी आप नन्दनन्दन, वासुदेव या देवकीनन्दन कहलाते हैं, क्योंकि आप महाराज नन्द या वसुदेव अथवा देवकी के पुत्र रूप में जन्म लेते हैं । निर्विशेषवादी

सोचते है कि आपके अनेक नाम अथवा रूप आपके किसी विशिष्ट कार्य तथा गुण के कारण हैं, क्योंकि वे अपने को भौतिक प्रेक्षक (दर्शक) मान कर आपको स्वीकार करते है । "

हे प्रिय! आपकी प्रकृति, रूप तथा कार्यकलाप को कल्पना द्वारा नहीं जाना जा सकता । आपकी प्रकृति, दिव्य रूप, नाम तथा गुणों को समझने के लिए मनुष्य को पहले भक्ति करनी होगी । वस्तुतः जिस व्यक्ति में आपके चरणकमलों की सेवा के लिए रंच भी रूचि होती है, वही आपकी प्रकृति, रूप तथा गुण को समझ सकता है । अन्य लोग लाखों वर्षों तक चिन्तन करते रहने पर भी आपकी वास्तविक स्थिति का एक अंश भी नहीं सकझ पाते । दूसरे शब्दों में, अभक्त कभी भगवान् कृष्ण को नहीं समझ सकते, क्योंकि योगमाया का आवरण कृष्ण के वास्तविक स्वरूप को ढके रहता हैं जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि हुई है- नाहं प्रकाशः सर्वस्य । भगवान् कहते हैं कि, "मैं हर एक के लिए प्रकाशित नहीं हूँ " जब कृष्ण ने अवतार लिया, तो वे वस्तुतः कुरुक्षेत्र के युद्धक्षेत्र में उपस्थित थे और सबों ने उन्हें देखा भी था । किन्तु उनमें से हर एक व्यक्ति यह नहीं जान सका कि वे भगवान् हैं । फिर भी उनकी उपस्थिति में मरने वाले प्रत्येक व्यक्ति को भव-बन्धन से पूर्ण मुक्ति मिली और वह वैकुण्ठ लोक को भेज दिया गया ।

" हे भगवान्! निर्विशेषवादी या अभक्त यह नहीं समझ सकते कि आपका नाम आपके रूप से अभिन्न हैं ।" चूँकि भगवान् परम हैं, अतः उनके नाम तथा वास्तविक रूप में कोई अन्तर नहीं है । भौतिक जगत में नाम तथा रूप में अन्तर होता हैं । आम का फल आम के नाम से भिन्न होता है । कोई केवल ' आम ' ' आम ' की रट लगाकर आम का स्वाद नहीं पा सकता । किन्तु भक्त जानता है कि भगवान् के नाम तथा रूप में कोई अन्तकर नहीं, अतः वह हरे कृष्ण महामंत्र- हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे / हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे- का कीर्तन

करता है और अपने आपको सदैव कृष्ण की संगति में अनुभव करता है ।

जो व्यक्ति परमेश्वर के परम ज्ञान में बहुत सिद्ध नहीं हैं उन्हें भगवान् कृष्ण अपनी दिव्य लीलाएँ दिखलाते हैं । वे केवल भगवान् की इन लीलाओं का ही चिन्तन कर सकते हैं और पूरा लाभ उठा सकते हैं । चूँकि भगवान् के दिव्य नाम तथा रूप में कोई अन्तर नहीं होता । जो अल्पज्ञानी हैं (यथा स्त्रियाँ, श्रमिक या वणिक वर्ग), उनके लिये व्यासदेव ने महाभारत की रचना की है । महाभारत में कृष्ण अपने विभिन्न कार्यकलापों के साथ विद्यमान हैं । महाभारत इतिहास है । अल्पज्ञानी लोग श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं के अध्ययन, श्रवण तथा स्मरण मात्र से ही क्रमशः शुद्ध भक्त के पद को प्राप्त होते है ।

शुद्ध भक्त जो कृष्ण के दिव्य चरणकमल के विचार में सदैव लीन रहते हैं और सदैव पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहते हुए कृष्णभक्ति में लगे रहते हैं, उन्हें कभी भी इस जगत में रहते हुए नहीं मानना चाहिए । श्रील रूप गोस्वामी ने कहा है कि जो लोग मनसा वाचा कर्मणा कृष्णभक्ति में लगे रहते हैं उन्हें इसी शरीर में रहते हुए भी मुक्त हुआ मानना चाहिए । भगवद्गीता में इस की पुष्टि की गई है- जो व्यक्ति भगवान् की भक्ति में लगे हुए हैं, उन्होंने पहले ही भव्यवस्थागर को पार कर लिया है ।

श्रीकृष्ण भक्तों तथा अभक्तों को समान रूप से जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त करने का अवसर देने के लिए प्रकट होते हैं । भक्तों को भगवान् का साक्षात् दर्शन करने तथा उन्हें पूजने का अवसर प्राप्त होता है । जो लोग उस पद को प्राप्त नहीं हैं उन्हें उनके कार्यकलापों से परिचित होने तथा उनके ही समान पद तक उठने का अवसर प्राप्त होता है ।

" हे प्रिय प्रभु! हे सर्वोपरि नियंता, आप के पृथ्वी पर प्रकट होने पर कंस तथा जरासंध जैसे सभी असुर नष्ट हो जायेंगे और सारा जगत सौभाग्य से व्याप्त हो जायेगा । जब आप इस ग्रह पर चलते हैं, तब आपके पादपद्मों के तलवे से भूमि पर छाप उठेगी, जैसे कि ध्वज, त्रिशूल तथा बिजली । इस प्रकार आप पृथ्वी एवं स्वर्ग लोक में रहने वाले हम सभी पर भी कृपा करेंगे, क्योंकि हमें उन चिह्नों को देखने का सौभाग्य प्राप्त होगा ।"

देवताओं ने आगे कहा, "हे प्रभु! आप अजन्मा हैं, अतः आपके प्रकट होने का यदि कोई कारण हो सकता हैं, तो वह आपकी आनन्ददायक लीलाएँ ही हैं ।" यद्यपि भगवान् के प्रकट होने का कारण भगवद्गीता में बताया गया है (वे भक्तों की रक्षा करने तथा अभक्तों का विनाश करने के लिए अवतरित होते हैं), किन्तु वस्तुतः वे अपने भक्तों से आनन्द-मिलन के लिए अवतरित होते हैं, अभक्तों के विनाश के लिए नहीं । ये अभक्त तो प्रकृति की मात्र एक ठोकर के द्वारा ही विनष्ट कर दिये जाते है । " प्रकृति की बहिरंगा शक्ति के कार्य-कारण (उत्पत्ति, पालन तथा संहार) स्वतः चलते रहते हैं । किन्तु आपके पवित्र नाम का आश्रय लेने मात्र से ही - क्योंकि आपका नाम तथा आपका व्यक्तित्व अभिन्न हैं- भक्तगण पर्यापत सुरक्षित रहते हैं ।" जब भगवान् अवतरित होते हैं, तो भक्तों की सुरक्षा तथा अभक्तों का विनाश वास्तव में भगवान् के कार्य नहीं होते । ये तो उनके दिव्य मनोविनोद के लिए हैं । उनके अवतार लेने का कोई अनय कारण नहीं हो सकता ।

" हे प्रभु! आप यदुवंश में सर्वश्रेष्ठ के रूप में प्रकट हो रहे हैं और हम आपके चरणकमलों में अपना सादर विनम्र नमस्कार कर रहे हैं । इस अवतार के पहले आप मत्स्य, अश्व, कूर्म, अर्ध-पुरुष अर्ध सिंह, वरहा, हंस, भगवान् रामचन्द्र, परशुराम इत्यादि अनेक अवतार ले चुके हैं । आप भक्तों की ही रक्षा के लिए प्रकट होते रहे हैं, अतः हम आपसे प्रार्थना

करते हैं कि आप अपने प्रस्तुत रूप में हमें तीनों लोकों में वैसी ही सुरक्षा प्रदान करें और शान्तिपूर्ण जीवनयापन के लिए मार्ग के समस्त अवरोधों को दूर कर दें ।"

" हे माता देवकी! आपके गर्भ में भगवान् हैं, जो अपने समस्त पूर्ण अंशों सहित प्रकट होने वाले हैं । वे हमारें कल्याण के लिए प्रकट होने वाले आदि भगवान् हैं । अतः आपको अपने भाई भोजराज से भयभीत नहीं होना चाहिए । आपके पुत्र भगवान् कृष्ण जो आदि भगवान् हैं पवित्र यदुवंश की रक्षा हेतु प्रकट होंगे । भगवान् अकेले नहीं अवतार ले रहे, वे अपने पूर्ण अंश बलदेव के साथ होंगे ।"

देवकी अपने भाई कंस से अत्यन्त भयभीत थीं, क्योंकि उसने उनके कई शिशु मार डाले थे । वे कृष्ण के विषय में अत्यन्त चिन्तित रहती थीं । विष्णु पुराण में कहा गया है कि देवकी को सान्त्वना प्रदान करने के लिए सभी देवता अपनी पत्नियों सहित उनसे मिलते रहते और प्रोत्साहित करत रहते कि वे डरे नहीं कि उनके पुत्र को कंस मार देगा । उनके गर्भ में स्थित कृष्ण को न केवल संसार का भार कम करने, अपितु उन्हं यदुवंश के हित की रक्षा करने और विशेष रूप से देवकी तथा वसुदेव की रक्षा करने के लिए प्रकट होना था । ऐसा माना जाता है कि कृष्ण को वसुदेव के मन से देवकी के मन में और फिर वहाँ से उनके गर्भ में स्थानान्तरित कर दिया गया था । अतः सभी देवताओं ने कृष्ण की माता देवकी की पूजा की ।

इस प्रकार भगवान् के दिव्य रूप की पूजा करने के पश्चात, ब्रह्या तथा शिवजी को आगे करके सभी देवता अपने स्वर्गिक लोकों को चले गए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत, "देवताओं द्वारा गर्भस्थ भगवान् कृष्ण की स्तुति" नामक द्वितीय अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 3
भगवान् कृष्ण का जन्म

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि उनका प्राकटय, जन्म तथा कार्यकलाप सभी दिव्य हैं और जो उन्हें ठीक से समझ लेता है, वह तुरन्त ही वैकुण्ठ जाने का भागी बन जाता है । भगवान् का प्राकटय या जन्म किसी सामान्य पुरुष का-सा नहीं होता जिसे विगत कर्मों के आधार पर भौतिक शरीर धारण करने के लिए बाध्य होना पड़ता है । भगवान् के प्राकटय की व्याख्या द्वितीय अध्याय में की गई है कि वे स्वेच्छा से प्रकट होते हैं । जब भगवान् के अतवार लेने का समय निकट आ गया, तो नक्षत्रगण अत्यन्त शुभ हो गये । रोहिणी नक्षत्र भी, जो फलितज्योतिष के अनुसार शुभ माना जाता है, प्रबल था । रोहिणी ब्रह्मा के प्रत्यक्ष संचालन के अन्तर्गत माना जात है । ज्योतिष के अनुसार नक्षत्रों की उपयुक्त स्थिति के अतिरिक्त विभिन्न ग्रहों की भिन्न-भिन्न स्थितियों के कारण शुभ तथा अशुभ क्षण उपस्थित होते रहते हैं । कृष्ण के जन्म के समय सारे ग्रह स्वयमेव इस तरह स्थित हो गए कि सब कुछ शुभ बन गया ।

उस समय पूर्व, पश्चिम, दक्षिण, उत्तर- सभी दिशाओं में शान्ति और सम्पन्नता का वातावरण था । आकाश में शुभ नक्षत्र दिख रहे थे और पृथ्वी पर सभी नगरों तथा ग्रामों या गोचरों में तथा जन-जन के मन में सौभाग्य के लक्षण द्दष्टिगोचर हो रहे थे । नदियाँ जल से पूर्ण होकर प्रवाहित हो रही थीं और सरोवरों में सुन्दर कमल खिले हुए थे । जंगल सुन्दर पक्षियों एवं मोरों से पूर्ण थे । जंगल से सारे पक्षी मधुर वाणी में गाने लगे और मयूर

मयूरियों के साथ नाचने लगे । वायु अपने साथ विविध पुष्पों की सुगन्ध लेकर मन्द-मन्द बहने लगी, जिसका सुखद स्पर्श मन को मोहने लगा था । जो ब्राह्मण अग्नि में यज्ञ करने के अभ्यस्त थे, उन्हें आहुति के लिए अपने अपने घर अत्यन्त सुहावने लगने लगे । आसुरी राजाओं के उत्पातों के कारण ब्राह्मणों के घरों में हवनादि यज्ञ लगभग बन्द हो चुके थे, किन्तु अब उन्हें शान्तिपूर्वक यज्ञादि करने के अवसर प्राप्त हो रहे थे । यज्ञों पर प्रतिबन्ध लगने के कारण ब्राह्मण मनसा-वाचा-कर्मणा अत्यन्त दुखी थे, किन्तृ कृष्ण के जन्म के समय उन सबके मन स्वयमेव प्रसन्नता से पूर्ण हो गये क्योंकि उन्हें आकाश में भगवान् के जन्म लेने की घोषणा करने वाली दिव्य वाणी गुंजरित होती सुनाई दे रही थी ।

गन्धर्व और किन्नरलोक के वासी गाने लगे तथा सिद्ध और चारणलोक के वासी भगवान् की सेवा में प्रार्थनाएँ करने लगे । स्वर्गलोक में देवता अपनी अपनी पत्नियों तथा विद्याधर अपनी अपनी पत्नियों के साथ नाचने लगें ।

ऋषि, मुनि तथा देवता प्रसन्न होकर फूल बरसाने लगे । समुद्र तट पर हल्की हल्की तरंगों की ध्वनि सुनाई दे रही थी और समुद्र के ऊपर आकाश में बादल थे, जो मोहक गर्जना करने लगे थे ।

जब ऐसा संयोग उपस्थित हो गया, तो घट-घट-वासी भगवान् विष्णु अँधेरी रात में भगवान् के रूप में देवकी के समक्ष प्रकट हुए, जो एक देवी जैसी लगती थीं । उस समय भगवान् विष्णु के प्राकटय की तुलना रात्रि के समय पूर्व दिशा में उदित होने वलो पूर्ण चन्द्रमा से की जा सकती थी । यहाँ यह आपत्ति उठायी जा यकती हे कि चूँकि भगवान् कृष्ण अष्टमी के दिन उत्पन्न हुए, अतः उस दिन पूर्ण चन्द्रमा उदय हो ही नहीं सकता । इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि भगवान् कृष्ण उस वंश में उत्पन्न हुए, जो चन्द्रमा की वंश-परम्परा में था, अतः चद्यपि उस रात्रि को चन्द्रमा अधूरा था, किन्तु चन्द्रमा के वंश में ही भगवान् के जन्म लेने के

कारण चन्द्रमा अत्यधिक प्रसन्न था, अतः भगवान् कृष्ण की कृपा से वह पूर्ण चन्द्र के रूप में उदय हुआ ।

खमानिक्य नामक जयोतिष ग्रंथ में भगवान् कृष्ण के जन्म के समय नक्षत्रों का अत्यन्त सुन्दर वर्णन मिलता है । उससे पुष्टि होती है कि उस शुभ क्षण में उत्पन्न यह शिशु परम ब्रह्म या परम सत्य था ।

वसुदेव ने उस आश्चर्यजनक बालक ने देखा जिसके चार हाथ थे, जिनमें वह शंख, चक्र, गदा तथा कमलपुष्प धारण किये था, जो श्रीवत्स चिह्न से सुशोभित था जो कौस्तुभ गणि की माला पहने था, पीताम्बर धारण किये चमकीले श्याम बादल की तरह लग रहा था, जिसका मुकुट वैदूर्य कतण से अलंकृत था, जो पूरे शरीर में अमूल्य बिजावट, कुंडल तथा अन्य आभषण धारण किये था और जिसका सिर कैशराशि से अलंकृत था । बालक के अद्वितीय रूप के कारण वसुदेव आश्चर्यचकित हो गए । नवजात शिशु इस तरह कैसे आभूषित हो सकता है? अतः वे समझ गये कि अब भगवान् कृष्ण प्रकट हो गए हैं और इस अवसर पर वे अभिभूत हो गये । वसुदेव ने विनीत भाव से आश्चर्य प्रकट किया कि यद्यपि वे भौतिक प्रकृति द्वारा बद्ध सामान्य जीव हैं और ऊपर से कंस द्वारा बन्दी है तो भी सर्वव्यापी भगवान् विष्णु या कृष्ण अपने मूल रूप में उनके घर शिशु रूप में प्रकट हुए हैं । कोई भी संसारी बालक आभूषणों एवं सुन्दर वस्त्रों से सज कर, चार भुजाओं सहित और भगवान् के समस्त चिह्नों से युक्त उत्पन्न नहीं होता । वसुदेव बारम्बार उस बालक को निहार रहे थे और विचार कर रहे थे कि इस शुभ वेला को किस तरह मनायें । वे सोचने लगे, सामन्यतया जब पुत्र उत्पन्न होता है, तो लोग उस अवसर पर खुशियाँ मनाते हैं और एक मैं हूँ कि मेरे बन्दी होते हूए भगवान् ने मेरे घर जन्म लिया है । मुझे तो इस शुभ उत्सव को बारम्बार मनाने के लिए तैयार रखना चाहिए ।

जब वसुदेव ने, जिनका दूसरा नाम आनकदुन्दुभि हैं, अपने नवजात शिशु को देखा, तो वे इतने प्रसन्न हुए कि उनमें ब्राह्मणों को कई हमार गौएं दान देने की इच्छा प्रकट हुई । वैदिक प्रणली के अनुसार जब भी क्षत्रिय राजमहल में कोई शुभ उत्सव मनाया जाता हैं, तो राजा प्रसन्नता के कारण अनेक वस्तुएँ दान में देता हैं । ब्राह्मणों तथा ऋषियों को स्वर्णाभूषणों से मण्डित गौएं दी जाती हैं । वसुदेव कृष्ण के अविर्भाव के उपलक्ष्य में एक दानोत्सव मनाना चाह रहे थे, किन्तु कंस के बंदीगृह में बन्द होने के कारण ऐसा करना दुष्कर था । अतः उन्होंने मन ही मन ब्राह्मणों को हजारों गौएं दान कीं ।

जब वसुदेव को विश्वास हो गया कि नवजात शिशु साक्षात् श्रीभगवान् है, तो वे दोनों हाथ जोड़ कर उसकी स्तुति करने लगे । उस समय वसुदेव दिव्य स्थिति में थे जिससे कंस से उत्पन्न उनका सारा भय जाता रहा । जिस कमरे में नवजात शिशु उत्पन्न हुआ था वह उसके तेज से देदीप्यमान था ।

तब वसुदेव ने प्रार्थना करनी प्रारम्भ की, हे भगवान्! मै जानता हूँ कि आप कौन हैं । आप समस्त जीवों के परमात्मा तथा परम सत्य श्रीभगवान् हैं । आप अपने ही शाश्वत रूप में प्रकट हुए हैं जिसका हम प्रत्यक्ष अवलोकन कर रहे हैं । मैं जानता हूँ कि आप मुझें कंस के भय से मुक्त करने के लिए प्रकट हुए हैं । आप इस भौतिक जगत से सग्बद्ध नहीं हैं; आप वही पुरुष हैं जिनकी भौतिक प्रकृति पर चितवन मात्र से यह द्दष्य जगत उत्पन्न होता है ।

कोई यह तर्क कर सकता है कि अपनी चितवन मात्र से समस्त द्दष्य जगत की उत्पत्ति करने वाला भगवान् वसुदेव की पत्नी देवकी के गर्भ में नहीं आ सकता है? इस तर्क का उच्छेद करने के लिए वसुदेव ने कहा- हे प्रभु! इसमें आश्चर्य नहीं कि आप देवकी के गर्भ में प्रकट हुए हैं, क्योंकि सृष्टि की रचना भी इसी प्रकार हुई थीं । आप महा विष्णु के रूप

में कारणार्णव में शयन कर रहे थे और आपकी श्वास प्रक्रिया से अनेक ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति हो गई थी । तब आप प्रत्येक ब्रह्माण्ड में गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में प्रविष्ट हुए । फिर आपने क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में अपना विस्तार किया, और आप हर प्राणी के हृदय में अणु के भीतर भी आप प्रविष्ट हो गये । अतः देवकी के गर्भ में आपका प्रवेश करना उसी प्रकार से समझा जा सकता है । आप प्रविष्ट हुए प्रतीत होते हैं किन्तु उसी के साथ साथ आप सर्वव्यापक हैं । हम भौतिक उदाहरणों के माध्यम से आपके प्रवेश तथा अप्रवेश को समण् सकते हैं । सोलह तत्त्वों में विभाजित होने पर भी सम्पूर्ण भौतिक शक्ति कायम रहती है । यह भौतिक शरीर पाँच स्थूल तत्त्वों - जल, पृथ्वी, अग्नि, वायु, तथा आकाश- का संयोग मात्र है । जब भी कोई भौतिक शरीर बनाता है, तो ऐसा लगता है कि ये तत्त्व पुनः सृजित हो रहे हैं, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि सारे तत्त्व शरीर के बाहर हमेशा विद्यमान रहते हैं । इसी तरह यद्यपि आप देवकी के गर्भ में शिशु रूप में प्रकट हुए हैं, किनतु आप उसके बाहर भी विराजमान है । आप सदैव अपने धाम में रहते हैं; फिर भी आप करोड़ों रूपों में अपना विस्तार कर सकते है ।

मनुष्य को बहुत ही बुद्धि के साथ आपके अवतार को समझना चाहिए, क्योंकि आपसे भौतिक शक्ति भी उद्भूत है । आप भौतिक शक्ति के उसी प्रकार मूल स्त्रोत हैं जिस तरह प्रकाश का स्त्रोत सूर्य हैं । सूर्यप्रकाश सूर्यमण्डल को आच्छादित नहीं कर सकता, न आपसे उद्भूत होने के कारण भौतिक शक्ति आपको आच्छादित कर ऋहती है । आप भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों में रहते प्रतीत होते हैं, किन्तु वास्तव में ये तीनों गुण आपको आच्छादित नहीं कर सकते । इसे बड़े बड़े बुद्धिमान दार्शनिक जानते हैं । दूसरे शब्दों में, यद्यपि आप भौतिक शक्ति के भीतर प्रतीत होते हैं, किन्तु आप उससे कभी आच्छादित नहीं होतें ।

वेदों का कथन है कि परब्रह्म अपना तेज प्रकट करता हैं, जिसके फलस्वरूप प्रत्येक वस्तु प्रकाशित होती हैं । ब्रह्म-संहिता से पता चलता है कि ब्रह्मज्योति परमेश्वर के शरीर से उद्‌भूत होती है और इसी ब्रह्मज्योति से सारी सृष्टि उत्पन्न है । भगवद्गीता में यह भी कहा गया है कि भगवान् ही ब्रह्मज्योति के आधारस्वरूप हैं । अतः मूलतः वे ही प्रत्येक वस्तु के आदि कारण हैं, किन्तु अल्पज्ञ सोचते हैं कि जब भगवान् इस भौतिक जगत में आते हैं, तो वे भौतिक गुणों को ग्रहण कर लेते हैं । ऐसे निष्कर्ष बहुत प्रौढ़ नहीं हैं और केवल अल्पज्ञ द्वारा ही सृजित हैं ।

श्रीभगवान् प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष रूप में सर्वत्र विद्यान हैं । वे इस सृष्टि के भीतर भी हैं और बाहर भी हैं । वे केवल इस सृष्टि में केवल गर्भोदकशायी विष्णु के रूप में नहीं रहते, वे प्रत्येक परमाणु के भीतर भी हैं । परमाणु का अस्तित्व उनकी उपस्थिति के कारण ही है । उनसे कुछ भी विलग नहीं किया जा सकता । वैदिक सिद्धान्त के अनुसार हमें परमात्मा अर्थात् प्रत्येक वस्तु के मूल कारण की खोज करनी चाहिए, क्योंकि परमात्मा से पृथक् कुछ भी नहीं है । अतः भौतिक सृष्टि उनकी शक्ति का ही रूपान्तर है । जड़ पदार्थ तथा जीवित शक्ति-आत्मा-भी उन्ही से उद्‌भूत हैं । जो मूर्ख होगा वही इस निष्कर्ष पहुँचेगा कि जब परमेश्वर प्रकट होते हैं, तो वे पदार्थ की परिस्थितियों को स्वीकार करते हैं । यदि प्रत्यक्ष रूप से वे भौतिक शरीर ग्रहण करते लगें भी, तो भी वे भौतिक परिस्थितियों के अधीन नहीं रहते । अतः कृष्ण अवतरित हुए और उन्होंने भगवान् के प्रकट तथा अप्रकट होने के समस्त दोषपूर्ण निष्कर्षों को ध्वस्त कर दिया है ।

हे स्वामी! आपका अवतार, स्थिति तथा तिरोधान सारे भौतिक गुणों के प्रभाव से परे हैं । चूँकि आप प्रत्येक वस्तु के नियामक तथा परब्रह्म हैं, अतः आपमें कुछ भी अकल्पनीय या विरोधमूलक नहीं हैं जैसा आपने कहा हैं, प्रकृति आपकी अध्यक्षता में उसी तरह कार्य करती हैं, जिस तरह

कोई सरकारी अधिकारी मुख्य कार्य कारी के आदेशों पर काम करता है । अधीनस्थ कार्यकलापों का आप पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । चूँकि आप परब्रह्य हैं तथा सारे नियम आपमें अवस्थित हैं और प्रकृति के सारे कार्यकलाप आपके द्वारा ही संचालित होते हैं अतः इनमें से कोई कार्यकलाप आप पर प्रभाव नहीं डालता ।

आप शुक्लम् कहलाते है । शुक्लम् अर्थात् धवल परम सत्य का प्रतीकात्मक निरूपण हैं क्योंकि भौतिक गुणों से यह अप्रभावित रहता है । ब्रह्याजी रक्त अथवा लाल कहलाते हैं, क्योंकि सृजन के लिए वे रजोगुण का प्रतिनिधित्व करते हैं । तमस् शिवजी के जिम्में पड़ा है, क्योंकि वे सम्पूर्ण सृष्टि का संहार करते है । इस द्दश्य जगत का सृजन, संहार तथा पालन आपकी शक्तियों द्वारा सम्पन्न होता है, तो भी आप इन गुणें से अप्रभावित रहते हैं । जैसाकि वेदों द्वारा पुष्ट किया गया है- हरिर्हि निर्गुणःसाक्षात्- श्रीभगवान् सदैव ही समस्त भौथ्क गुणों से मुक्त होते हैं । यह भी कहा जात है कि परमेश्वर में रजो तथा तमों गुण का अभाव रहता है ।

हे प्रभु! आप परम नियन्ता, भगवान् तथा इस द्दश्य जगत की व्यवस्था को बनाये रखने वाले हैं । आप परम नियन्ता होते हुए भी कृपा करके मेरे घर में अवतरित हुए हैं । आपके अवतार का कारण सांर के उन आसुरी शासकों के अनुयायियों का वध करना है, जो राजकुमारों के वेश में रहते हुए वस्तुतः असुर हैं । मुझें विश्वास है कि आप उन सबों को उनके अनुयायियों तथा सैनिकों समेत मार डालेंगे ।

मुझे विदित है कि आप दुष्ट कंस तथा उसके अनुयायियों का बध करने के लिए अवतरित हुए हैं । किन्तु यह जानकर कि आप उसे तथा उसके अनुयायियों का वध करने के लिए अवतरित होंगे, उसे आपके कई पूर्वजों या अग्रजों को मार डाला हैं । अब वह केवलआपके जन्म की

प्रतीक्षा में ंहै जैसे ही वह इसे सुनेगा, वह आपको मारने के लिए सभी प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर उपस्थित होगा ।

वसुदेव की प्रार्थना के बाद कृष्ण की माता देवकी ने प्रार्थना की । वे अपने भाई के अत्याचारों से अत्यन्त भयभीत थीं । देवकी ने कहा, हे प्रभु! वैदिक साहित्य में आपके अनेक शाश्वत अवतारों का मूल अवतारों के मौर पर वर्णन हुआ है, यथा नारायण, राम, हयशीर्ष, वराह, नृसिंह, वामन, बलदेव तथा विष्णृ से उद्भूत ऐसे लाखों अवतार । आप मूल अवतार है क्योंकि आपके अवतारों के सबी रूप इस भौतिक सृष्टि से बाहर हैं । आपका स्वरूप इस दृश्य जगत की उत्पत्ति के पहले से उपस्थित था । उापके स्वरूप शाश्वत तथा सर्वव्यापी हें । वे स्व-तेजोमय, अपरिवर्तनीय तथा भौतिक गुणों से अकलुषित हैं । ऐसे शाश्वत रूप नित्य, ज्ञानमय तथा आनन्दमय हैं । वे सभी दिव्य सात्विकता से पूण्र तथा विभिन्न लीलाओं में सदैव निरत रहने वाले हैं । आपका कोई एक ही विशेष रूप नहीं होता । ऐसे अनेक दिव्य रूप स्वतंत्र हैं । मैं जानती हूँ कि आप परमेश्वर विष्णु है ।

लाखों वर्षो बाद जब ब्रह्या के जीवन का अन्त होता है, तो दृश्य जगत का विलय हो जाता है । उस समय पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश ये पाँच तत्त्व महत्-तत्त्व में प्रवेश कर जाते हैं । यह महत्-तत्त्व पुनः कालवंश अप्रकट समग्र भौतिक शक्ति में प्रवेश करता हैं, समग्र भौतिक शक्ति प्रधान में और प्रधान आप में प्रवेश करता है । अतः सम्पूर्ण दृश्य जगत के संहार के पश्चात केवल आपका दिव्य नाम, रूप, गुण तथा साज-सामान ही शेष रह जाते हैं ।

हे प्रभु! मैं आपको सादर नमस्कार करती हूँ क्योंकि आप अव्यक्त समग्र शक्ति के निदेशक और भौतिक प्रकृति के परम आगार हैं । हे स्वामी! सारा दृश्य जगत, वर्ष के अथ से इति तक, कालाधीन हैं । सभी

आपके निर्देशन में कार्य करते हैं । आप हर वस्तु कें मूल निदेशक तथा समस्त प्रबल शक्तियों के आगार है ।

अतः आपसे मेरी प्रार्थना है कि आप मुझे उग्रसेन के पुत्र कंस के क्रूर हाथों से बचायें । कृपा करके मुझे इस भयावह स्थिति से उबारें क्योंकि आप अपने सेवकों की रक्षा करने के लिए सदैव उद्यत रहते हैं । भगवान् ने इस कथन की पुष्टि भगवद्गीता में अर्जुन को आश्वस्त करते हुए की हैं, तुम संसार को बता दो कि मेरा भक्त कभी नष्ट नहीं होता ।

इस प्रकार रक्षा करने के लिए प्रार्थना करते हुए माता देवकी ने अपना वात्सल्य व्यक्त कियाः मुझे ज्ञात हैं कि आपके इस दिव्य स्वरूप का दर्शन सामान्यतया ऋषिगण ध्यान में करते हैं, किन्तु मैं अभी भी डर रही हूँ कि ज्योंही कंसा को पता चला जाएगा कि आपका जन्म हो चुका है, तो वह आपको हानि पहुँचा सकता हैं । अतः मेरी प्रार्थना है कि आप इस समय हमारे भौतिक चक्षुओं से ओझल हो जाँए । दूसरे शब्दों में उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि वे एक सामान्य बालक का रूप धारण कर लें । आपके जन्म के कारण ही मैं अपने भाई कंस से भयभीत हूँ । हे मधुसुदन! हो सकता है कि कंस की पता न लगे कि आपने जन्म धारण कर लिया है । अतः मेरी प्रार्थना है कि आप अपने इस चतुर्भुज रूप को, जिसमें आप विष्णु के चार चिह्न शंख, चक्र, गदा तथा कमल धारण किये हैं, छिपा लें । हे प्रभु! आप दृश्य जगत के प्रलय के अन्त में सारे ब्रह्माण्ड को अपने उदर में धारण करते हैं फिर भी आप अपनी विशुद्ध कृपावश मेरे गर्भ में प्रकट हुए हैं । मुझे आश्चर्य है कि आप अपने भक्तों को प्रसन्न करने के लिए सामान्य मनुष्य के कार्यकलापों का अनुकरण करते हैं ।

देवकी की प्रार्थना सुनकर भगवान् ने उत्तर दिया, हे माता! स्वायंभुव मनु के कल्प में मेरे पिता वसुदेव एक प्रजापति के रूप में थे जिसका नाम सुतपा था और आप उनकी पत्नी पृश्नि थीं । उस समय ब्रह्मा ने प्रजा बढ़ानें की इच्छा से आपसे सन्तान उत्पन्न करने के लिए कहा । आपने

अपनी इन्द्रियों को वश में करते हुए कठोर तपस्या की । योग-पद्धति में प्राणायाम का अभ्यास करते हुए आप पति-पत्नी दोनों ने वर्षा, वायु, कड़कती धूप जैसे भौतिक नियमों के सारे प्रभावों को सहन किया । आपने समस्त धार्मिक नियमों का भी पालन किया । इस प्रकार आपका हृदय निर्मल हो गया और भौतिक नियम के प्रभावों पर भी नियंत्रण प्राप्त हो गया । तपस्या करते हुए आप वृक्षों के नीचे भूमि पर गिरी हुई पत्तियों मात्र का आहार करती रहीं । तब स्थिर मन तथा इन्द्रिय-निग्रह द्वारा आपने मुझसे अद्‌भुत वर प्राप्त करने के लिए मेरी पूजा की । आप दोनों ने देवताओं की गणना के अनुसार 12,000 वर्षो तक कठोर तपस्या की । उस अवधि में आपका मन मुझमें ही लीन रहा । जब आप भक्ति कर रही थीं और अपने मन में निरन्तर मेरा ध्यान कर रही थीं, तब मैं आपसे अत्यधिक प्रसन्न हुआ । हे निष्पाप माता । अतः आपका अन्तःकरण नित्य ही विशुद्ध हैं । उस समय भी मैं आपके समक्ष इसी रूप में आपकी इच्छापूर्ति के लिए प्रकट हुआ था और आपसे मनवांछित वर माँगने के लिए कहा था । उस समय आपने चाहा था कि मैं आपके पुत्र रूप में जन्म लूँ । यद्यपि आपने मेरा साक्षात् दर्शन किया था, तथापि आपने मेरी माया के प्रभाव के कारण व्यापक भवबंधन से पूर्ण मुक्ति न माँग कर मुझे अपने पुत्र के रूप में माँगा था ।

दूसरे शब्दों में, भगवान् के प्रकट होने के लिए इस जगत में पृश्नि तथा सुतपा को अपने माता-पिता के रूप में चुना । जब भी भगवान् मनुष्य रूप में अवतरित होते हैं, उन्हें माता-पिता की आवश्यकता होती है; फलतः उन्होंने पृश्नि तथा सुतपा को शाश्वत माता-पिता के रूप में चुना; इसलिए पृश्नि तथा सुतपा दोनों ही मुक्ति की याचना न कर सके । मुक्ति उतनी महत्त्वपूर्ण नहीं होती जितनी कि भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति होती है । भगवान् चाहते तो पृश्नि तथा सुतपा को तुरन्त मुक्ति प्रदान कर सकते थे, किन्तु अपने विभिन्न अवतरों के लिए उन्हें इसी भौतिक जगत

में बनाये रखना श्रेयस्कर समझा, जैसाकि आगे वर्णन किया जाएगा । भगवान् से उनके माता-पिता बनने का वर प्राप्त करके पृश्नि तथा सुतपा दोनों अपनी तपस्या छोड़ कर घर चले आये और पति-पत्नी के रूप में रहने लगे जिससे वे साक्षात् परमेश्वर को पुत्र के रूप में उत्पन्न कर सकें ।

कालक्रम से पृश्नि गभ्रवती हुई और एक शिशु को जन्म दिया । भगवान् ने वसुदेव तथा देवकी से कहाः उस समय मेरा नाम पृश्निगर्भ था । अगले कल्प में आपने अदिति तथा कश्यप के यप में जन्म लिया और तब मैं उपेन्द्र नाम से आपका पुत्र बना । उस समय मेरा स्वरूप एक बौने जैसे था जिससे मैं वामनदेव के नाम से विख्यात हुआ । मैंने आपको वर दिया था कि मैं तीन बार आपके पुत्र रूप में जन्म धारण करूँगा । पहली बार मैं पृश्नि तथा सुतपा से जन्म लेकर पृश्निगर्भ कहलाया, दूसरी बार मैं अदिति तथा कश्यप से जन्म लेकर उपेन्द्र कहलाया और अब तीसरी बार मैं देवकी तथा वसुदेव से कृष्ण नाम से उत्पन्न हुआ हूँ । मैं इस विष्णु रूप में इसलिए अवतरित हुआ हूँ कि आपको विश्वास दिला सकूँ कि उसी श्रीभगवान् ने पुनः जन्म धारण किया है । मैं चाहता तो एक सामान्य शिशु के रूप में प्रकट हो सकता था, किन्तु तब आपको विश्वास न होता कि आपके गर्भ से मुझ भगवान् ने ही जन्म लिया हैं । हे मेरे माता-पिता! इस तरह आपने कई बार अत्यन्त लाड़-प्यार से अपने पुत्र के रूप में मुझे पाला-पोसा हैं, अतः मैं अत्यधिक प्रसन्न हूँ और आपका अत्यन्त कृतज्ञ हूँ । मैं विश्वास दिलाता हूँ कि इस बार आप अपने उद्देश्य को पूरा करके भगवद्धाम को वापस जाएँगे । मैं मानता हूँ कि आप मेरे लिए चिन्तित हैं और कंस से भयभीत हैं, अतः मेरा आदेश है कि आप तुरन्त ही मुझे गोकुल ले चलें और यशोदा की नवजात कन्या से जो अभी अभी उत्पन्न हुई है, मुझे बदल लें ।

अपने पिता माता की इस प्रकार कह कर उनकी उपस्थिति में भगवान् सामान्य बालक बन गये और मौन हो गये ।

भगवान् का आदेश पाकर वसुदेव अपने पुत्र को प्रसूतिगृह से बाहर ले जाने के लिए तैय्यार हो गए । ठीक उसी समय नन्द तथा यशोदा के एक कन्या उत्पन्न हुई थीं । यह योगमाया थी, अर्थात् वह भगवान् की अन्तरंगा शक्ति थी । इस योगमाया के प्रभाव से कंस के महल के सारे निवासी और विशेष रूप से द्वारपाल गहरी नींद में सो गये और लौह शृङ्खलाओं से बन्द महल के सारे दरवाजे खुल गये । रात अत्यन्त अँधेरी थी, किन्तु ज्योंही वसुदेव कृष्ण को अपनी गोद में लेकर बाहर निकले, तो उन्हें सब कुछ दिखने लगा मानों सूर्य का प्रकाश हो ।

चैतन्यचरितामृत में कहा गया है कि कृष्ण सूर्यप्रकाश के तुल्य हैं और जहाँ भी कृष्ण रहते हैं वहाँ अंधकार रूपी माया नहीं रह सकती । जब कृष्ण को वसुदेव ले जा रहे थे, तब रात्रि का अंधकार दूर हो गया । कारागार के सारे द्वार स्वतः खुल गये । साथ ही आकाश में गम्भीर गर्जना हुई और भीषण वृद्धि होने लगी । जब वसुदेव इस वर्षा में अपने पुत्र को जा रहे थे, तो भगवान् शेष ने नाग का रूप धारण करके वसुदेव के सिर के ऊपर अपने फन फैला दिये जिससे वृष्टि से उन्हें बाधा न पहुँचे । वसुदेव यमुना में तट पर आये, तो देखा कि यमुना के जल में गरजती लहरें उठ रही है और सारा पाट फेनिल हो उठा है । इतने पर भी यमुना ने वसुदेव को नदी को पार करने के लिए मार्ग दे दिया, ठीक उस प्रकार जिस प्रकार सेतुबन्ध के समय हिन्द महासागर ने भगवान् रामचन्द्र को रास्ता दे दिया था । इस प्रकार वसुदेव ने यमुना पार की । उस पार वे नन्द महाराज के गोकुल स्थित निवास स्थान में गये जहाँ उन्होंने देखा कि सारे ग्वाले गहरी नींद में सोये हुए थें । इस अवसर का लाभ उठाकर वे यशोदा के धर में चुपके से घुस गये और बिना किसी कठिनाई के अपने पुत्र को रखकर बदले में यशोदा की नवजात पुत्री को उठा लाये । इस

प्रकार चुपके से घर में घुस कर लड़के को लड़की से बदल लेने के बाद वे पुनः कंस के कारागार में लौट आये तथा पुत्री को देवकी की गोद में रख दिया । उन्होंने पुनः हथकड़ी-बेड़ियाँ पहन लीं जिससे केस को यह पता न चल पाये कि इतनी सारी घटनाएँ घट चुकी हैं ।

माता यशोदा समझती थीं कि उनके एक शिशु उत्पन्न हुआ हैं, किन्तु प्रसव पीड़ा से थक जाने के कारण वे प्रगाढ़ निद्रा में थीं । जब वे जागीं, तो उन्हें याद न रहा कि उनके पुत्र हुआ है या पुत्री ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् कृष्ण का जन्म" नामक तीसरे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 4
कंस द्वारा उत्पीड़न का प्रारम्भ

वसुदेव द्वारा सारी वस्तुएँ कृष्ण को गोकुल लिए जाने से पहले की भाँति समंजन कर लेने के पश्चात् तथा सारे द्वार तथा किवाड़ बन्द कर लेने पर पहरेदार जाग गये और उन्हें नवजात शिशु का क्रन्दन सुनाई पड़ा ।कंसा शिशु-जन्म का समाचार सुनने की प्रतीक्षा कर ही रहा था कि पहरेदारों ने तुरन्त आकर जानकारी दी कि शिशु उत्पन्न हुआ हैं । उस समय वह तेजी से अपनी शय्या से उठ बैठा और चिल्लाया, "अत मेरे जीवन का क्रूर काल उत्पन्न हो गया है ।" कंस चिन्तित हो गया कि उसकी मृत्यु निकट आ गयी है, अतः उसे रोमांच हो आया । वह अविलम्ब उस स्थान की ओर चला जहाँ शिशु ने जन्म लिया था ।

अपने भाई को आते देखकर देवकी ने कंस से अत्यन्त विनीत भाव से प्रार्थना की, "मेरे भ्राता! इस लड़की को मत मारों । मैं वचन देती हूँ कि

यह तुम्हारे पुत्र की बधू बनेगी । अतः इसका बध न करो । तुम्हारा वध किसी कन्या द्वारा तो होना नहीं, यही आकाशवाणी है । तुम्हारा वध तो एक बालक द्वारा होना हैं, अतः कृपा करके इसका वध न करो । मेरे भाई! तुमने मेरे कितने सारे सूर्च जैसे प्रतापी नवजात शिशुओं का वध किया है । यह तुम्हारा दोष नहीं हैं । तुम्हारे आसुरी मित्रों ने मेरे पुत्रों मो मारने की सलाह दी है । किन्तु अब मैं प्रार्थना करती हूँ कि इस कन्या को तो न मारो । इसे मेरी पुत्री बनकर जीने दो ।"

किन्तु कंस इतना क्रूर था कि उसने अपनी बहन देवकी की एक भी दर्द भरी प्रार्थन न सुनी । उसने अपनी बहन को डाँटते हुए नवजात शिशु को बलपूर्वक छीन लिया और उसे निर्दयतापूर्वक पत्थर पर पटकना चाहा । यह एक क्रूर असुर का ऐसा सजीव उदाहरण हैं, जो अपनी व्यक्तिगत तृप्ति के लिए सारे सम्बन्धों की बलि दे सकता है । किन्तु वह शिुशु तुरन्त ही उसके हाथों से फिसल गया और आकाश में जाकर विश्णु की अष्टभुजा के रूप में प्रकट हुआ । वह सुन्दर वस्त्रों, पुष्प मालाओं तथा आभूषणों से सुशोभित थी और अपनी आठों भुजाओं में धनुष, भाला, तीर, तलवार, शंख, चक्र, गदा तथा ढाल धारण किय हुए थी ।

कनया को प्रकट होते देखकर (जो वास्तव में देवी दुर्गा थी) सिद्ध, चारण, गन्धर्व, अप्सरा, किन्नर तथा उरग लोकों के सारे देवतागण उसे विविध वस्तुएँ भेंट करने लगे और अपनी-अपनकी ओर से प्रार्थनाएँ करने लगे । ऊपर से उस देवी ने कंस को सम्बोधित किया, अरे धूर्त! तु मुझे कैसे मार सकता है? तुझे मारने वाला बालक इस संसार में कहीं पहलें ही प्रकट हो चुका है । तु अपनी बहन के प्रति इतना क्रूर मत बन । इस प्राकटय के बाद देवी दुर्गा विश्व के विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न नामें से विख्यात हो गईं ।

इस खब्दों को सुनकर कंस अतयधिक भयभीत हुआ । सहानुभूति के कारण उसने तुरन्त वसुदेव तथा देवकी की हथकडियाँ तथा बेड़ियाँ

कटवा दीं और अत्यन्त विनग्र होकर उनसे बोला हे बहन तथा बहनोई! मैंने अपने भाञ्जों आपके शिशु का बध काके असुर की तरह आचरण किया हैं । मैंने अपने घनिष्ठ सम्बन्धों की रंचमात्र भी परवाह नहीं की । मैं नहीं जानता कि मरे इस द्वेषपूर्ण कार्यों का क्या परिणाम होगा । सम्भवतया मुझे नरक का भोग करना पड़े जहाँ ब्रह्महत्या करने वाले भेजे जाते हैं, किन्तु मैं विस्मित हूँ कि आकाशवाणी सच नहीं उतरी । असतय प्रचार केवल मानव-समाज तक ही सीमित नहीं हैं । अब तो ऐसा प्रतीत होता है कि स्वर्ग के देवता भी असतय भाषण करते है । स्वर्ग के निवासियों की वाणी पर विश्वास करके ही मैंनें अपनी बहन के शिशुओं को मारकर इतना पाप किया है । प्रिय वसुदेव तथा देवकी! आप दोनों ही महान् आत्माएँ हैं । मुझे आप दोनों से कुछ नहीं कहना, किन्तु फिर भी मेरी प्रार्थना है कि आप अपनी सन्तानों की मृत्यु के लिए शोक न करें । हम में से प्रत्येक व्यक्ति पराशक्ति के वश में है और वह पराशक्ति हमें एक साथ नहीं रहने देती । हमें कालक्रम में अपने मित्रों तथा परिजनों से विलग होना पड़ता है । किन्तु हमें यह निश्चित रूप से जान लेना चाहिए कि विभिन्न भौतिक शरीरों के न रहने पर भी आत्मा अक्षत रूप में निरन्तर बना रहता है । उदाहरणार्थ, मिट्टी के अनेक पात्र (घट) हैं, वे पहले बनाये जाते हैं और फिर तोड़ दिये जाते हैं किन्तु तो भी मिट्टी सदा मिट्टी ही रहती हैं इसी प्रकार विभिन्न परिस्थितियों में आत्मा के शरीर बनाये और बिगाड़ें जाते रहते हैं, किन्तु आत्मा शाश्वत रह जाता है । अतः शोक करने की कोई बात नहीं है; प्रत्येक व्यक्ति को समझना चाहिए कि यह भौतिक शरीर आत्मा से भिन्न है और जब तक कोई इसे समझ नहीं लेता, तब तक उसे देहान्तर प्रक्रिया स्वीकार कनी होती है । मेरी बहन देवकी! आप इतनी भद्र तथा दयालु हैं । कृपया मुझे खमा कर दें, मैंने आपकी सन्तानों का जो वध किया है आप उनकी मृत्यु से शोक-संतप्त न हों । वास्तव में यह सब मैंने नहीं किया, क्योंकि ये सब पूर्वनिर्धारित कार्यकलाप हैं । मनुष्य को पूर्वनिर्धारित योजना के अनुसार कर्म करना होता हैं , भले ही

वह अनिच्छा से क्यों न करे । लोगों की भ्रामक धारणा है कि शरीर की मृत्यु के साथ आत्मा भी नष्ट हो जाता है, अथवा वे सोचते हैं कि एक प्राणी दूसरे का वध कर सकता है । इन भ्रान्त धारणाओं के कारण मनुष्य को संसार की परिस्थितियों को स्वीकार करना पड़ता है । दूसरे शब्दों में, जब तक आत्मा की नित्यता का दृढ़ विश्वास नहीं हो लेता, तब तक मनुष्य हन्ता (मारने वाला) तथा हन्यमान (मारा जाने वाला) का कष्ट भोगता रहता है । हे मेरी बहन देवकी तथा बहनोई वसुदेव्! मैंने आप लोगों के प्रति जो अत्याचार किय हैं उन्हें क्षमा कर दें । मैं क्षुद्रहृदय हूँ और आप इतने विशालहृदय हैं, अतः मेरे ऊपर दया दिखाएँ और मुझे क्षमा करें ।

जब कंसा इस प्रकार अपनी बहन तथा बहनोई से बातें कर रहा था, तो उसकी आँखों से आसुओं की धारा बहने लगी और वह उनके चरणों पर गिर पड़ा । कंस ने जिस दुर्गा देवी को मारने का प्रयत्न किया था, उसी के वचनों पर विश्वास करते हुए उसने अपने बहनोई तथा बहन को तुरन्त बन्धनमुक्त कर दिया । उसने स्वयं उनकी हथकड़ियाँ खोल दी और उनके प्रति परिवार के एक सदस्य की भाँति वह सहानुभूति दिखाने लगा ।

जब देवकी ने अपने भाई को इस तरह पश्चाताप करते देखा, तो वे शान्त हो गईं और अपनी सन्तानों के प्रति किये गये सारे अत्याचारों को भूल गईं । वसुदेव भी विगत घटनाओं को विस्मरणकरते हुए अपने साले से हँस कर बोले, हे भाग्यशाली साले! तुम भौतिक शरीर तथा आत्मा के विषय में जो कुछ कह रहे हो वह बिल्कुल ठीक है । प्रत्येक जीवात्मा जन्म से अज्ञानी है और वह अपने आपको भौतिक शरीर समझ बैठता है । यह जीवात्म-बुद्धि अज्ञानजनित है और इसी अज्ञानता के आधार पर हम शत्रुता में प्रवृत्त होता है । ऐसे कार्यो में लग जाने के कारण हम भगवान् से अपना शाश्वत सम्बन्ध भूल जाते हैं ।

वसुदेव ने कंस की उदारता का लाभ उठाकर उसे बताया कि उसके नास्तिक कार्यकलाप भी इसी देहात्मबुद्धि से जन्म हैं । जब वसुदेव ने कंस से इस प्रकार ज्ञानप्रद बातें कीं, तो वह अत्यधिक प्रसन्न हुआ और उससे उसे अपने भाञ्जों को मारने की अपराध-भावना कुछ कम हुई । अपनी बहन देवकी तथा बहनोई वसुदेव से आज्ञा लेकर वह शान्तचित अपने घर लौट आया ।

किन्तु दूसरे ही दिन कंस ने सारे मंत्रियों को बुलाकर उनसे विगत रात्रि में जो कुछ घटा था कह सुनाया । कंस के सारे मंत्री असुर थे और थे देवताओं के परम शत्रु, अतः वे अपने स्वामी से रात्रि की घटनाओं को सुनकर उदास से हो गये । अधिक अनुभवी या विद्वान न होने पर भी वे कंस को इस तरह सलाह देने लगेः श्रीमन्! हमें चाहिए कि सारे नगरों, कस्बों, गाँवों तथा गोचरों में विगत दस दिनों में जितने बालक उत्पन्न हुए हों, उन सबकों मार दिए जाने का प्रबन्ध करें । हमें चाहिए कि इस योजना को बिना किसी भेद-भाव के कार्यान्वित करें । हमारा विचार है कि यदि हम ये कुकृत्य (अत्याचार) करेंगें, तो फिर देवताओं को हमारे विरुद्ध कुछ भी करने का साहस नहीं हो सकेगा । वे हमसे युद्ध करने से सदैव डरते हैं और यदि वे हमारे कार्यों को रोकना भी चाहेंगे, तो भी उनमें ऐसा करने का साहस नहीं जुट पायेगा ।आपके धनुष की अपार शक्ति से वे भयभीत रहते हैं । निस्सन्देह, हमें इसका अनुभव है कि जब-जब युद्ध के लिए सन्नद्ध होकर आपने उन पर बाणों की वर्षा की हैं । तब-तब वे अपने प्राणों की रक्षा करने के लिए चारों दिशाओं में भागे-भागे फिरे हैं । अनेक देवता आपसे युद्ध करने मे असमर्थ रहे हैं और उन्होंने तुरन्त ही अपनी पगड़ली उतार कर तथा अपने बालों की ग्रन्थियाँ खोल कर आपकी शरण ग्रहण की है और हाथ जोड़ कर अपने प्राणों की भिक्षा माँगते हुए कहा है, हे स्वामी! हम आपके पराक्रम से भयभीत हैं । आप हमें इस घातक युद्ध से उबारिये । हमने कई बार यह भी देखा है कि जब कभी शत्रु

अत्यन्त भयभीत हो जाते, उनके धनुष, बाण तथा रथ विनष्ट हो चुके होते और वे अपने सैनिक कौशल को भूलकर लड़ने में असमर्थ हो जाते, तो आप ऐसे शरणागत शत्रुओं का वध नहीं करते थे । अतः वस्तुतः हमें इन देवताओं से भयभीत नहीं होना चाहिए । इन लोगों को शान्तिकाल में युद्धभूमि से बाहर रहकर महान् योा होने का अत्यन्त गर्व हैं, किन्तु वास्तव में वे युद्ध-भूमि में कोई कौशल या सैनिक शक्ति प्रदर्शित नहीं कर सकते । यद्यपि इन्द्र समेत भगवान् विष्णु, शिवजी तथा ब्रह्माजी इनकी सहायता के लिए सदैव उद्यत रहते हैं, किन्तु हमें उनसे डरने का कोई कारण नहीं है । जहाँ तक भगवान् विष्णु का प्रश्न हैं, वे तो पहले ही जन-जन के हृदयों में अन्तर्हित हो चुके हैं और वे बाहर नहीं आ सकते । और शिवजी ने तो अपने सारे कार्यकलापों का परित्याग कर रखा हैं । वे पहले ही वनवासी हो चुके हैं । और ब्रह्मा हैं कि उन्हें नाना प्रकार की तपस्याओं तथा ध्यान से फुरसत नहीं मिलती । इन्द्र तो आपकी शक्ति के समक्ष तिनके जैसा हैं । अतः हमें इन देवताओं से डरने की कोई बात नहीं । किन्तु हमें असावधान भी नहीं रहना क्योंकि देवता हमारें समूल कट्टर शत्रु हैं । हमें अपनी रक्षा करने के लिए सावधान रहना चाहिए । उनको समूल नष्ट करने के लिए सावधान रहना चाहिए । उनको समूल नष्ट करने के लिए हमें आपकी सेवा करनी चाहिए और आपकी आज्ञा के पालन के लिए सदैव सन्नद्ध रहना चाहिए ।

असुरों ने आगे कहाः यदि शरीर में कोई रोग हो और उसकी परवाह न की जाये, तो वह असाध्य बन जाता हैं । इसी प्रकार यदि इन्द्रियों को छूट दे दी जाये, तो उनको वश में कर पाना दुष्कर हो जाता है । अतः हमें इन देवताओं से सदैव सावधान रहना चाहिए अन्यथा ये दबाये नहीं दबेंगे । देवताओं की आधरभूत शक्ति तो भगवानफ विष्णु हैं, क्योंकि सारे धर्मों का चरम लक्ष्य उन्हें ही प्रसन्न करना हैं । वैदिक आदेश, ब्राह्मण,

गाय, तप, त्याग, दान, पुण्य- ये सारे कृत्य भगवान् विष्णु को प्रसन्न करने के लिए हैं । अतः हमें चाहिए कि हम तुरन्त ही उन सारे ब्राह्मणों का जो वैदिक ज्ञान की निधि हैं तथा उन ऋषियों का वध करना प्रारम्भ कर दें, जो अनुष्ठान-कार्यो को सम्पन्न करने में लगे हुए हैं । हमें सारी गायों का वध कर देना चाहिए जो माखन की स्त्रोत हैं ताकि यज्ञ के लिए घी न मिल सकें । कृपया हमें इन समस्त प्राणियों का वध करने की अनुमति प्रदान करें ।

वास्तव में ब्राह्मण,गाएँ, वैदिक ज्ञान, तपस्या, सत्य, इन्द्रिय, तथा मन का संयम, स्वामिभक्ति, दान, सहिष्णुता तथा यज्ञ- ये ही भगवान् विष्णु के दिव्य शरीर के अंगस्वरूप हैं । भगवान् विष्णु सबों के हृदय में विद्यमान हैं और वे शिव तथा ब्रह्मा सहित समस्त देवताओं के नायक है । मंत्रियों ने कहा, हमारे विचार से भगवान् विष्णु को मारने के लिए समस्त ऋषियों तथा ब्राह्माणों को दंड किया जाये ।

इस प्रकार असुर-मंत्रियों द्वारा मंत्रणा किये जाने पर महाधूर्त कंस ने जो सर्वभक्षी अनन्तकाल की हथकड़ी-बेड़ियाँ में जकड़ा था ब्राह्मणों तथा वैष्णवों को दण्डित करने का निश्चय किया । उसने असुरों को आदेश दिया कि वे सभी साधु पुरुषों को सताएँ और तब वह अपने घर चला गया । कंस के अनुयायी रजों तथा तमोगुण के प्रभाव में आ गये और उनका एकमात्र कार्य बन गया साधु पुरुषों से शत्रुता करना । ऐसे कार्यो से मात्र जीवन-अवधि घटती हैं । असुरों ने इस क्रिया को मानो त्वरित करके अपनी मृत्यु ही नहीं होता । यह कार्य इतना घातक होता हैं कि कर्त्ता क्रमशः अपना सौंदर्य, अपना यश तथा धर्म खो देता हैं और उसके उच्च लोकों में जाने की प्रगति रुक जाती है । विविध प्रकार के मनोरथों के वशीभूत होकर ये असुर सभी प्रकार के शुभकार्यों को क्षीण बना देते है । भक्तों तथा ब्राह्मणों के चरणकमलों के प्रति किया गया अपराध श्रीभगवान् के चरणकमलों कें प्रति किये गये अपराध से भी बड़ा होता है

। वह सभ्यता जो ऐसे पाप-कर्म करती है, सामान्यतः भगवान् में ऋद्धा खो देती है और ऐसी ईश्वर-विहीन सभ्यता मानव समाज में विपत्तियों का घर बन जाता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "कंस द्वारा उत्पीड़न" नामक चतुर्थ अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 5
नन्द तथा वसुदेव की भेंट

यद्यपि कृष्ण वसुदेव तथा देवकी के असली पुत्र थे, किन्तु कंस के अत्याचारों के कारण वे अपने पुत्र का जन्मोत्सव नहीं मना सकें । फिर भी धर्मपिता नन्द महाराज ने अत्यन्त उछाह के साथ कृष्ण का जन्मोत्सव मनाया । दूसरे दिन ही यह घोषणा कर दी गई कि यशोदा के पुत्र उत्पन्न हुआ है । वैदिक प्रथा के अनुसार नन्द महाराज ने विद्वान ज्योतिषियों तथा ब्राह्मणों को जन्मोत्सव सम्पन्न कराने के लिए आमंत्रित किया । शिशु के जन्मोंपरान्त ज्योंतिषी जन्म-लग्न की गणना करते हैं और शिशु के भावी जीवन की जन्म-पत्री तैयार करते हैं । शिशु-जन्म के बाद एक अन्य उत्सव भी किया जाता है; उसमें परिवार के लोग स्नान करके शुद्ध होते हैं और आभूषणों तथा सुन्दर वस्त्रों से अपने आपकों सजाते हैं और तब वे सब शिशु तथा ज्योतिषी के समक्ष शिशु का भविष्य सुनने के लिये उपस्थित होते हैं । अतः नन्द महाराज तथा उनके परिवार के अन्य लोग वस्त्राभूषित होकर जन्मस्थान के समक्ष आकर बैठ गये । इस अवसर पर समवेत सारे ब्राह्मणों ने अनुष्ठानों के अनुसार शुभ मंत्रोच्चार किया और ज्योंतिषियों ने जन्मोत्सव सम्पन्न कराया । इस अवसर पर सारे देवताओं तथा पितरों की भी पूजा की जाती है । नन्द महाराज ने ब्राह्मणों को दो लाख अलंकृत गौएँ दान में दीं । गौवों के साथ-साथ उन्होंने स्वर्णालंकृत

वस्त्रों तथा विविध आभूषणों से सुशोभित अन्न के ढेर के ढेर भी दान किये ।

इस संसार में धनधान्य की प्राप्ति कई प्रकार से होती हैं, किन्तु कभी-कभी यह प्राप्ति ईमानदारी तथा पवित्र साधनों से नहीं होती क्योंकि सम्पत्ति संचय की यही प्रकृति है । अतः वैदिक आदेशों के अनुसार इस तरह अर्जित सम्पत्ति की शुद्धि ब्राह्मणों को गौओं तथा सोने का दान देकर की जाती है । हमें सदैव समझना चाहिए कि इस संसार में हम सदैव कल्मषयुक्त अवस्था में रह रहे हैं । अतः हमें अपने जीवन, अपनी सम्पत्ति तथा स्वयं को शुद्ध करना होगा । जीवन की शुद्धि नित्य-स्नान एवं शरी को भीतर तथा बाहर से सफाई द्वारा और दस प्रकार के शुद्धि-संस्कारों को स्वीकार करके की जाती हैं तप, भगवतत-पूजा तथा दान द्वारा हम सम्पत्ति को शुद्ध कर सकते है । आत्म-साक्षात्कार तथा परम सत्य के ज्ञान के लिए वेदाध्ययन द्वारा आत्म-शुद्धि की जा सकती है । अतः वेदों में कहा गया हे कि जन्मना प्रत्येक व्यक्ति शूद्र होता है और शुद्धि-संस्कार द्वारा वह द्विज बनता है । वेदों के अघ्ययन से मनुष्य विप्र बनता है । वेदों के अध्ययन से मनुष्य विप्र बनता हैं, जो ब्राह्मण बनने के लिए अनिवार्य योग्यता हैं जब मनुष्य परम सत्य को पूर्णरूपेण समझ लेता है, तो वह ब्राह्मण कहलाता है । जब ब्राह्मण और अधिक पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, तो वह वैष्णव या भक्त बन जाता है । उस उत्सव में एकत्रित सारे ब्राह्मणों ने शिशु के सौभाग्य के लिए विविध वैदिक मंत्रों का स्तवन किया । विविध मंत्रोच्चार सूत, मागध, वन्दी तथा विरुदावली कहलाते हैं । इन मंत्रों तथा गीतों के उच्चारण के अतिरिक्त भेरी और दुन्दुभियाँ भी घर के बाहर बज रही थीं । इस अवसर पर सभी घरों में तथा गोचरों तक में विविध हर्षध्वनियाँ सुनाई पड़ती थीं । घरों के भीतर तथा बाहर पिसे चावल से नाना प्रकार के कलापूर्ण चित्र बनाये गये थे और सड़कें तथा गलियों भर में सुगन्धित जल छिड़का गया था । छतों तथा छज्जों को विविध प्रकार

की झंडियों तथा बन्दनवारों से सजाया गया था । सारे द्वार हरी पत्तियों तथा फूलों से बनाये गये थे । सारी गाँवों, बछड़ों तथा साँड़ों को तेल तथा हल्दी का लेप लगाया गया था । गेरू आदि रंगीन खनिजों से उन्हें चित्रित किया गया था । उन्हें मोर-पंखों के हार पहनाये गये थे ऐर वे रंगीन वस्त्रों तथा सुनहरे हारों से सुसज्जित थे ।

जब सभी हर्षोन्मत्त ग्वालों ने सुना कि कृष्ण के पिता नन्द महाराज अपने पुत्र का जन्मोत्सव मना रहे हैं, तो वे परम प्रसन्न हुए । उन्होंने बहुमूल्य वस्त्र धारण किये और विविध प्रकार के कर्णाभूषणों तथा हारों से अपने शरीर को सजाया तथा अपने सिरों में बड़ी बड़ी पगड़ियाँ धारण कीं । इस प्रकार से वस्त्राभूषित होकर वे विविध प्रकार की भेटें लेकर नन्द महाराज के घर आये ।

जब समस्त गोपियों ने सुना कि यशोदा ने पुत्र को जन्म दिया हैं, तो वे आनन्द से विभोर हो उठीं और उन्होंने भी विविध प्रकार के अमूल्य वस्त्रों तथा आभूषणों से अपने को अलंकृत किया और अपने शरीर में सुगन्धित द्रव लगाए ।

जिस प्रकार पराग की धूलि से कमल पुष्प की शोभा दिखने लगती हैं, उसी प्रकार समस्त गोपियों ने अपने कमल के समान मुखमण्डलों पर कुमकुम रज का लेप किया । फिर ये सुन्दर गोपियाँ अपनी-अपनी भेंटें लेकर नन्द महाराज के घर पहुँचीं । अपने भारी नितम्बों तथा उन्नत उरोजों से बोझिल ये गोपियाँ नन्द के घर की ओर तेजी से नहीं चल पा रही थीं, किन्तु कृष्ण के आह्लादकारी प्रेम से वे जल्दी-जल्दी चलने लगीं । उनके कानों में मोती की बालियाँ थीं, गले में रत्नजटित हार थे और उनके हाथों में स्वर्णिम चूड़ियाँ थीं । चूँकि वे तेजी से पक्की सड़क पार कर रही थीं उनके शरीर को अलंकृत करने वाली पुष्पमालाएँ टूट-टूट कर गिर रही थीं, और ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों आकाश से पुष्प-वर्षा हो रही हो । शरीर के विविध आभूषणों की गति से वे और भी सुन्दर लग

रही थीं । इस प्रकार वे गोपिकाएँ नन्द-यशोदा के घर पहुँची और बालक को इस प्रकार आशीष देने लगीं, हे बालक! तुम हमारी रक्षा के लिए चिरंजीवी होओ । जब वे इस प्रकार बालक कृष्ण को आशीर्वाद दे रही थीं । तो उन्होंने तेल में बना हन्दी का लेप, दधि, दूध तथा जल का मिश्रण न केवल बालक पर, अपितु वहाँ पर उपस्थित अन्य सभी लोगों पर छिड़का । इस शुभ अवसर पर पटु संगीतकारों द्वारा विविध प्रकार के बाजे भी बजाये जा रहे थें ।

जब ग्वालों ने गोपियों की लीलाएँ देखीं, तो वे अत्यन्त प्रमुदित हुए और वे भी उन पर दधि, दूध, मक्खन तथा जल छिड़कने लगे । फिर दोनों ओर से मक्खन फेंका जाने लगा । नन्द महाराज भी गोप-गोपियों की ये लीलाएँ देखकर परम प्रसन्न हो रहे थे । उन्होंने एकत्रित चारणों को अत्यन्त उदारतापूर्वक दान दिया । इनमें से कुछ चारण उपनिषदों तथा पुराणों से आख्यान गा रहे थे, कुछ पूर्वजों का गुणगान कर रहे थे और कुछ मनोहर गीत गा रहे थे । वहाँ पर अनेक विद्वान ब्राह्मण भी उपस्थित थे । नन्द महाराज इस अवसर परप रम प्रसन्न होकर उन सबों को वस्त्र, आभूषणों तथा गौवों का दान दे रहे थे ।

इस सम्बन्ध में यह जान लेना आवश्यक होगा कि वृन्दावनवासी मात्र गो-पालन के कारण कितने समृद्ध थें । सारे ग्वाले वैश्य जाति के थे जिनकी वृत्ति गो-पालन तथा कृषि थी । उनकी वेशभूषा तथा आभूषणों एवं आचरण से ऐसा प्रतीत होता था कि वे एक छोटे गाँव के वासी हैं, किन्तु वे अत्यन्त समृद्ध थे । उनके पास इतनी प्रचुर मात्रा में दूध तथा दूध से बनने वाले उत्पाद थे कि वे उन्हे बेरोकटोक एक दूसरे पर फेंक रहे थे । उनकी सम्पत्ति दुग्ध, दही, घी तथा अन्य दुग्ध उत्पाद थीं और वे कृषि उत्पादों का व्यापार करने से विविध प्रकार के रत्नाभूषणों एवं परिधानों से समृद्ध थे । उनके पास न केवल ये सारी वस्तुएँ थीं, अपितु वे उन्हें नन्द महाराज की तरह दान में लुटा सकते थे ।

इस प्रकार कृष्ण के धर्मपिता नन्द महाराज ने वहाँ पर एकत्रित सभी लोगों की इच्छाओं की पूर्ति करना प्रारम्भ कर दिया । उन्होंने हर एक का सादर स्वागत किया और जिसने जो चाहा उसे दान में दिया । विद्वान ब्राह्मणों के पास आय का अन्य साधन न था, अतः वे अपने भरण के लिए वैश्य तथा क्षत्रिय जातियों पर पूर्णतः आश्रित रहते थे । उन्हें जन्मदिवस, ब्याह आदि शुभ अवसरों पर उपहार प्राप्त होते रहते थे । इस अवसर पर जब नन्द महाराज भगवान् विष्णु की पूजा कर रहे थे और लोगों की इच्छाएँ पूरी करने के प्रयास में लगे थे, तब उनकी एकमात्र अभिलाषा यही थी कि नवजात शिशु कृष्ण प्रसन्न रहे । नन्द महाराज को इसका तनिक भी ज्ञान न था कि यह बालक विष्णु का मूल है; वे उसकी रक्षा के लि भगवान् विष्णु से प्रार्थना कर रहे थे ।

बलराम की माता रोहिणी देवी वसुदेव की अत्यन्त भाग्यशाली पत्नी थीं । यद्यपि वे अपने पति से दूर थीं, किन्तु महाराज नन्द के पुत्र कृष्ण के जन्मोतसव पर उन्हें बधाई देने के लिए उन्होंने भी सुन्दर-सुन्दर वस्त्र धारण किये । वे माला, कंठहार तथा अन्य आभूषण पहन कर उस स्थान में कईं और इधर-उधर टहलने लगीं । वैदिक प्रथा के अनुसार जिस स्त्री का पति घर में नही होता वह श्रृंगार नहीं करती, किन्तु रोहिणी ने पति के दूर होने पर भी इस अवसर पर श्रृंगार किया ।

कृष्ण जन्मोत्सव के वैभव से यह सुस्पष्ट है कि उस समय वृन्दावन सभी प्रकार से सम्पन्न था । चूँकि भगवान् कृष्ण ने राजा नन्द तथा माता यशोदा के घर में जन्म लिया, अतः लक्ष्मी देवी को वृन्दावन में अपना ऐश्वर्य प्रकट करना ही पड़ा । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों वृन्दावन पहले से लक्ष्मी देवी की क्रीड़ास्थली बन चुका हो ।

जन्मोत्सव के बाद नन्द महाराज के कंस सरकार का वार्षिक कर चुकता करने के उद्देश्य से मथुरा जाने का निश्चय किया । जाने से पूर्व उन्होंने गाँव के सक्षम ग्वालों को बुलाया और अपनी अनुपस्थिति में

वृन्दावन की देखरेख करने का आदेश दिया । जब नन्द महाराज मथुरा आये, तो वसुदेव को समाचार मिल और वे अपने मित्र को बधाई देने के लिए परम उतसुक हुए । वे तुरन्त उस स्थान में गये जहाँ नन्द महाराज ठहरे थें । जब नन्द ने वसुदेव को देखा, तो उन्हें लगा मानों नया जीवनदान मिला हो । नन्द भी भावविभोर होकर खड़े हो गये और उन्होंने वसुदेव का आलिंगन किया । वसुदेव का स्वागत करके उन्हें सुन्दर आसन पर बिठाया गया । उस समय वसुदेव अपने उन दोनों पुत्रों के लिए उत्सुक थें जिन्हें नन्द की जानकारी के बिना उनके संरक्षण में रखा गया था । वसुदेवी ने अत्यन्त चिन्तापूर्वक उनके विषय में पूछताछ की । कृष्ण और बलराम दोनों ही वसुदेव के पुत्र थे । बलराम को वसुदेव की ही पत्नी रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित किया गयाद था, किन्तु रोहिणी को नन्द महाराज के संरक्षण में रखा गया था । कृष्ण यशोदा को उनकी पुत्री के बदले में ले जाकर साक्षात् सौंपे गये थे । नन्द महाराज जानते थे कि बलराम वसुदेव के पुत्र हैं, किन्तु उन्हें यह ज्ञात न था कि कृष्ण भी वसुदेव के ही पुत्र हैं । वसुदेव को पता था ही, अतः उन्होंने उत्सुकता से कृष्ण तथा बलराम दोनों की कुशल-क्षेम पूछी ।

फिर वसुदेव ने ननद को सम्बोधित करते हुए कहा, बन्धुवर! इस वृद्धावस्था में आपकी परम इच्छा थी कि पुत्र उत्पन्न हो, किन्तु आपके कोई पुत्र उत्पन्न न हुआ । अब भगवान् की कृपा से आपको सुन्दर पुत्र की प्राप्ति हुई हैं मेरे विचार से अवसर आपके लिए अत्यन्त शुभ हैं । हे मित्र! मुझे तो कंस ने बन्दी बना लिया था और अब मैं रिहा कर दिया गया हूँ, अतएव मेरे लिए यह नया जन्म है । मुझे आशा न थी कि आपके दर्शन कर सकूगा, किन्तु ईश्वर की कृपा से मैं आपको देख रहा हूँ । वसुदेव ने कृष्ण के सम्बन्ध में इस तरह अपनी चिन्ता व्यक्त की । कृष्ण को गुप्त रूप से माता यशोदा की शय्या में भेजा गया था और अब उनके जन्मोत्सव को धूमधाम से मनाने के बाद नन्द मथुरा आये थे । अतः वसुदेव अत्यन्त

प्रसन्न हुए और बोले, यह मेरा नया जन्म हैं । उन्होंने कभी यह आशा नहीं की थी कि कृष्ण जीवित रह पाएँगे, क्योंकि कंस ने उनके अन्य सभी पुत्रों का वध कर दिया था ।

वसुदेव कहते रहे, प्रिय मित्र! हम दोनोका एकसाथ रह पाना कठिन है । यद्यपि हमारे कुटुम्ब तथा कुटुम्बी, पुत्र तथा पुत्रियाँ हैं, किन्तु प्रकृति के नियमस्वरूप हम प्रायः एक दूसरे से पृथक् रहते हैं । इसका कारण यह है कि प्रत्येक जीवात्मा विभिन्न सकाम कार्यो के फलस्वरूप इस पृथ्वी पर जन्म लेता हैं और यद्यपि वे सब एक स्थान पर एकत्र होते हैं, किन्तु दीर्घकाल इकट्ठे तरह रहना निश्चित नहीं हैं । हर एक को अपने सकाम कर्मों के अनुसार पृथक्-पृथक् ढंग से कार्य करना होता है और इस प्रकार विलग हो जाना पड़ता है । उदाहरणार्थ, सागर की लहरों पर अनेक पौधे तथा लताएँ तैरती रहती हैं । कभी वे पास-पास रहते हैं, तो कभी सदा के लिए विछुड़ जाते हैं- एक पौधा इधर जाता है, तो दूसरा उधर । उसी इसी प्रकार जब हम साथ साथ रहते हैं, तो हमारी पारिवारिक संगति अत्यन्त सुन्दर लगती है, किन्तु काल की तरंगों के फलस्वरूप कुछ समय बाद हम विलग हो जाते हैं ।

वसुदेव के ऐसा कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि देवकी के गर्भ से उन्हें आठ पुत्र प्राप्त हुए थे, किन्तु द्रर्भाग्यवश वे सभी जाते रहे । यहाँ तक कि वे अपने एक पुत्र कृष्ण को भी अपने पास नहीं रख सके । वसुदेव को उसकी जुदाई अनुभव हो रही थी किन्तु वे असली बात अभिव्यक्त कर न सके । उन्होंने कहा, कृपया मुझे वृन्दावन का कुशल-क्षेम बताएँ । आपके पास इतने सारे पशु हैं- वे सभी प्रसन्न तो हैं? उन्हें पर्याप्त घास तथा पानी मिल तो रहा हैं? मुझे यह भी बताएँ कि इस समय आप जहाँ रह रहे हैं वह स्थान उपद्रव से मुक्त तथा शान्त तो हैं? वसुदेव ने कृष्ण की कुशलता जानने के उद्देश्य से ही इतने सारे प्रश्न किये थे । उन्हें ज्ञात था कि कंस तथा उसके अनुयायी नाना प्रकार के असुरोंको भेज कर

कृष्ण का वध करने का प्रयत्न कर रहे थे । वे सब पहले ही यह निर्णय ले चुके थे कि कृष्ण-जन्म के बाद दस दिनों के भीतर उत्पन्न सारे बालकों का वध कर दिया जाये । चूँकि वसुदेव कृष्ण से विषय में अत्यधिक चिन्तित थे, इसलिए उन्होंने उनके निवासस्थान की सुरक्षा के विषय में पूछा । उन्होंने बलराम तथा उनकी माता रोहिणी का समाचार पूछा जिन्हें नन्द महाराज को सौंप दिया गया था । वसुदेव ने नन्द महाराज को यह भी स्मरण दिलाया कि बलराम अपने असली पिता को नहीं जानता, "वह आपको ही अपना पिता जानता है और अव आपके पास दूसरा पुत्र कृष्ण भी हो गया । मेरे विचार से आप इन दोनों की ठीक से देखभाल कर रहे हैं ।" यह भी महत्त्वपूर्ण बात है कि वसुदेव ने नन्द महाराज के गोधन की कुशल-क्षेम पूछीं । पशुओं की और विशेष रूप से गायों की रक्षा अपनी सन्तान की ही भाँति की जाती थीं । वसुदेव क्षत्रिय थे और नन्द महाराज वैश्य थे । क्षत्रिय का धर्म है कि वह प्रजा की रक्षा करें और वैश्य का धर्म है कि गायों को सुरक्षा प्रदान करें । गायें उतनी ही महत्त्वपूर्ण हैं जिनी कि प्रजा । जिस प्रकार से प्रजा को सभी प्रकार की सुरक्षा प्रदान की जाती है उसी तरह गौवों की भी की जानी चाहिए ।

वसुदेव कहते रहे कि धर्म-पालन, आर्थिक-विकास तथा इन्द्रिय-तुष्टि (काम) के कार्य परिजनों, राष्ट्रों तथा सम्पूर्ण मानवता के सहयोग पर निर्भर करते है । अतः यह प्रत्येक व्यक्ति का कर्त्तव्य है कि उसके समान नागरिकों तथा गौवों को कोई कष्ट न पहुँचे । उसे अपने बन्धुओं तथा पशुओं की शान्ति तथा सुविधा का ध्यान रखना चाहिए । तभी धर्म, अर्थ तथा काम की प्राप्ति सरलता से हो सकती हैं । वसुदेव को दुख था कि वे देवकी से उत्पन्न अपने ही पुत्रों को संरक्षण प्रदान करने में असमर्थ रहें । उन्हें लग रहा थे कि वे धर्म, अर्थ तथा काम सभी खो बैठे हैं ।

यह सुनकर नन्द महाराज ने उत्तर दिया, "हे प्रिय वसुदेव! मुझे पता है कि आप देवकी से उत्पन्न सारे पुत्रों के कंसा द्वारा वध किये जाने के

कारण अत्यन्त सन्तप्त हैं । यद्यपि अन्तिम शिशु कन्या थी, किन्तु कंस उसे मार नही पाया । वह स्वर्गलोक में चली गई हैं । हे मित्र! शोक न करें हम सभी अपने विगत अद्दश्य कर्मो द्वारा नियंत्रित हैं । प्रत्येक व्यक्ति अपने पूर्व कर्मों के वश में है और जो कर्म तथा फल के दर्शन से परिचित है, वही ज्ञानी मनुष्य है । ऐसा मनुष्य सुख या दुख से शोकाकुल नहीं होता ।"

तब वसुदेव ने उत्तर दिया, "प्रिय नन्द! यदि आप सरकारी कर का भुगतान कर चुकें हों, तो शीघ्र ही अपने स्थान को लौट जाँय, क्योंकि मेरे विचार से गोकुल में उत्पात हो सकता है ।"

नन्द महाराज तथा वसुदेव में इस मैत्रीपूर्ण वार्ता के बाद वसुदेव अपने घर चले आये । कर चुकाने के बाद नन्द महाराज तथा उनके साथ मथुरा आया ग्वालवृन्द भी लौट गया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान! श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "नन्द तथा वसुदेव की भेंट" नामक पचंम अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 6
पूतना वध

जब नन्द महाराज घर लौट रहे थे, तो उन्होंने वसुदेव द्वारा दी गई इस चेतावनी पर कि गोकुल में कुछ उत्पात हो सकता हैं विचार किया । निश्चय ही यह सलाह मैत्रीपूर्ण थी और असतय न थी । अतः नन्द से सोचा, इसमें अवश्य ही कुछ न कुछ सच्चाई है । अतः डर में मारे वे भगवान् की शरण लेने लगे । संकट आने पर भक्त के लिए स्वाभाविक है कि वह कृष्ण का

चिन्तन करें क्योंकि उसके लिए अन्य कोई आश्रय नहीं होता । जब शिशु संकट में होता है, तो अपने माता-पिता का आश्रय लेता है । इसी प्रकार भक्त सदैव भगवान् की शरण में रहता हैं, किन्तु जब उसे कोई विशेष संकट दिखता हैं, तो वह तुरन्त ईश्वर का स्मरण करता है ।

अपने मंत्रियों से मंत्रणा करने के बाद कंस ने पूतना नामक डाइन को, जो छोटे-छोटे बच्चों को अत्यन्त नृशंसतापूर्वक मारने का इन्द्रजाल जानती थी । आदेश दिया कि वह शहरों, ग्रामों तथा चरागाहों में जाकर सारे बच्चों का वध कर दे । ऐसी डाइनें अपना इन्द्रजाल वहीं फैला सकती हैं जहाँ कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन या श्रवण न होता हो । कहा जाता है कि जहाँ कहीं कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन होता हैं, चाहे वह उपेक्षा से ही क्यों न हो, वहाँ सारे बुरे तत्त्व- डाइनें, भूत-प्रेत तथा संकट- तुरन्त भाग जाते हैं । और जहाँ कृष्ण के पवित्र नाम का कीर्तन गम्भीरता से होता हो, विशेष रूप से वृन्दावन में जहाँ परमेश्वर स्वयं उपस्थित थे, वहाँ तो यह सर्वथा सत्य है । अतः नन्द महाराज के सारे सन्देह निश्चित रूप से कृष्ण-प्रेम पर ही आधारित थे । वास्तव में पूतना में शक्ति होते हुए भी उसकी गतिविधियों से कोई भय न था । डाइनें "खेचरी" कहलाती हैं जिसका अर्थ है वे जो आकाश में उड़ सकती हैं । इस तरह का इन्द्रजाल आज भी कुछ स्त्रियों द्वारा भारत के दूरस्थ उत्तर पश्चिमी भाग में किया जाता हैं । वे उखड़े वृक्ष की शाखाओं पर बैठकर एक स्थान से दूरे तक आ जा सकती है । पुतना को यह इन्द्रजाल ज्ञात था इसलिए भागवत में उसे "खेचरी" कहा गया है ।

पूतना किसी प्रकार की अनुमति के बिना ही गोकुल में नन्द के आवास महल में घुस गई । सुन्दर वस्त्रों से आभूषित होकर वह परम सुन्दरी के रूप में माता यशोदा के घर में गई । अपने उठे हुए नितम्बों, उन्नत उरोजों, कान की बालियों तथा केश में लगे फूलों से वह अतीव सुन्दर लग रही थी । अपनी क्षीण कबि से वह और भी सुन्दर बन गई थी । उसकी आकर्षक

चितवन तथा मन्द मुसकान से वृन्दावन के सारे वासी मोहित हो गये । भोली-भाली गोपियों ने सोचा कि वह हाथ मे कमल पुष्प धारण किये वृन्दावन में आई साक्षात् लक्ष्मी देवी है । उन्हें लगा कि वह अपने पति कृष्ण को देखने के लिए स्वयं आई है । उसकी अपूर्व सुन्दरता के कारण उसे किसी ने रोका नहीं, अतः वह बिना रोकटोक केनन्द महाराज के घर में प्रविष्ट हो गई । अनेकानेक बालकों का वध करने वाली पूतना ने कृष्ण को पालने में लेटा देखा । वह तुरन्त समझ गई कि इस नन्हें बालक में अद्वित्तीय शक्ति है, जो राख से ढकी अग्नि की भान्त छिपी है । उसने सोचा "यह बालक तो इतना शक्तिशाली है कि क्षण भर में सारे ब्रह्माण्ड को नष्ट कर सकता है ।"

पूतना की समझ अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है । भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित हैं । भगवद्गीता में कहा गया है कि वे मनुष्य को आवश्यक बुद्धि प्रदान करने वाले तथा विस्मृति उत्पन्न करने वाले हैं । पूतना को तुरन्त पला चल गया कि जिस बालक को वह नन्द के घर में देख रही हैं, वह साक्षात् श्रीभगवान् है । वे वहाँ नन्हें बालक के रूप में लेटे थे, किनतु इसका अर्थ यह नहीं था कि वे कम शक्तिशाली थें । यह भौतिकवादी सिद्धान्त, कि ईश्वर-पूजा विकासवादी हैं, ठीक नहीं है । कोई भी मनुष्य ध्यान या तपस्या द्वारा ईश्वर नहीं बन सकता । ईश्वर सदैव ईश्वर रहता है । कृष्ण बालक के रूप में उतना ही पूर्ण है जितना एक विकसित युवक । मायावादी सिद्धान्त के अनुसार जीवात्मा प्रारम्भ में ईश्वर था, किन्तु अब वह माया के प्रभाव से अभिभूत हो गया है । अतः मायावादी मानते हैं कि इस समय वह ईश्वर नहीं हैं, किन्तु माया का प्रभाव हटा लेने पर वह पुनः ईश्व हो जाता है । यह सिद्धान्त सूक्ष्म जीवात्माओं पर लागू हो सकता । जीवात्माएँ श्रीभगवान् के क्षुद्र अंश हैं, वे मूल अग्नि के क्षुद्र अंश या चिनगारियां हैं । अतः वे माया के प्रभाव से ढ़के जा सकते हैं, किन्तु कृष्ण

नहीं । कृष्ण तो श्रीभगवान् हैं, यहाँ तक कि वसुदेव तथा देवकी के घर में जन्म लेने के समय से ही कृष्ण श्रीभगवान् हैं ।

कृष्ण ने बाल-स्वभाव दिखाया और अपनी आँखे बन्द कर लीं मानों वे पूतना को न देखना चाह रहे हों । भक्तगण उनके नेत्रों के बन्द होने की तरह-तरह से व्याख्या करते हैं । कुछ का कहना है कि कृष्ण ने इसलिए अपनी आँखे बन्द कर लीं, क्योंकि वे उस पूतना का मुँह नहीं देखना चाहते थै, जिसने अनेक बालकों का वध कर दिया था और अव उन्हें भी मारने आई थी । अन्यों का कहना है कि उसे अनदर से कुछ अद्वितीय बाते ज्ञात हो रही थीं और उसे विश्वास दिलाने के लिए उन्होने अपनी आँखे बन्द कर लीं जिससे वह भयभीत न हो । इतने पर भी कुछ दूसरे लोग इस प्रकार व्याख्या करते हैंः- कृष्ण का अवतार असुरों का वध करने और भक्तों की रक्षा करने के लिए हुआ, जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है- परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम । इस प्रकार उन्होंने जिस प्रथम असुर का वध करना था, वह एक स्त्री थी । वैदिक नियमों के अनुसार, स्त्री, ब्राह्मण, गाय या बालक का वध करना वर्जित है । किन्तु कृष्ण को वाध्य होकर पूतना का वध करना पड़ा और चूँकि स्त्री-वध शास्त्रोचित नहीं हैं इसीलिए श्रीकृष्ण के पास आँखें बन्द करने के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न था । एक दूसरी व्याख्या यह है कि कृष्ण ने इसलिए आँखे बन्द कर लीं, क्योंकि वे पूतना को मात्र अपनी धय के रूप में मान रहे थे । पूतना कृष्ण के पास स्तनपान कराने आई थी । कृष्ण इतने कृपालु हैं कि यह जानते हुए भी कि पूतना उन्हें मारने आई है उन्होंने उसे अपनी धाय या माता के रूप में देखा ।

वैदिक मान्यता है कि माताएँ सात प्रकार की होती है - सगी माता, गुरु-पत्नी, रानी, ब्राह्मणी, गाय, धाय तथा पृथ्वी । चूँकि पूतना कृष्ण को अपनी गोद में लेकर स्तनपान कराने आई थी, अतः कृष्ण ने उसे अपनी माता के रूप में स्वीकार किया । यह एक अन्य कारण समझा जाता है । कि

कृष्ण ने अपनी आँखे बन्द कर लीं । अब उन्हें धाय या माता का वध करना था, इसीलिए उन्होंने अपनी आँखें बन्द कर लीं । किन्तु उन्होंने अपनी माता या धाय के वध करने तथा अपनी सगी माता या धर्ममाता यशोदा के प्रति प्यार करने में कोई अन्तर नहीं रखा । हमें वेदों से यह भी जानकारी मिलती है कि पूतना के साथ भी मातृवत व्यवहार किया गया और यशोदा के साथ ही इस संसार से मुक्ति प्राप्त हुई । जब बालक कृष्ण ने आँखें बन्द कर लीं, तो पूतना ने उन्हें अपनी गोद में उठा लिया । उसे यह ज्ञात न था कि वह साक्षात् मृत्यु को पकड़े हुए हे । यदि मनुष्य धोखे से रस्सी को सर्प मान बैठता है, तो उसकी मृत्यु हो जाती है इसी प्रकार कृष्ण से भेंट होने के पूर्व पूतना अनेक बालकों का वध कर चुकी थी, और उसने कृष्ण को भी उन जैसा ही समझा; किन्तु अव वह एक साँप को पकड़ने जा रही थी , जो उसे तुरन्त मार देगा ।

जब पूतना बालक कृष्ण को गोद में ले रही थी, तो यशोदा तथा रोहिणी दोनों ही वहाँ उपस्थित थीं, किन्तु उन्होंने उसे मना नहीं किया, क्योंकि वह सुन्दर वस्त्रों से आभूषित थी और कृष्ण के प्रति मातृ-प्रेम प्रदर्शित कर रही थीं । वे यह न समझ पाईं कि वह एक अलंकृत म्यान के भीतर छिपी तलवार की भाँति है । पूतना ने अपने स्तनों में घातक विष लगा रखा था और गोद लेते ही उसने अपने चुचूक कृष्ण के मुख मे लगा दिये । उसे आशा थी कि ज्योंही वह उसके स्तनों का पान करेगा त्योंही वह मर जाएगा । किन्तु कृष्ण ने क्रुद्ध होकर तुरन्त मुँह में चूचुक लगा लिया । उन्होंने विषयुक्त दूध के साथ उस असुरनी के प्राण भी चूस लिये । दूसरे शब्दों में, दूध पीने के साथ ही उन्होंने पूतना के प्राण भी चूस लिये । कृष्ण इतने दयालु हैं कि जब पूतना अपना पय-पान कराने आई तो उन्होंने उसकी मनोकामना पूरी की और उसके इस कार्य को माता का-सा आचरण माना । किन्तु वह और अधिक दुष्ट कार्य न करें, इसलिए उन्होंने तुरन्त ही उसे मार डाला । चूँकि यह असुरनी कृष्ण द्वारा मारी गई, अतः

उसे मोक्ष प्राप्त हुआ । जब कृष्ण ने उसकी छाती को अत्यन्त बलपूर्वक दबाया और उसके प्राण हर लिए तो वह भूमि पर गिर पड़ी और अपने हाथ-पैर फैलाकर चिल्लाने लगी, "मुझे छोड़ दो! मुझे छोड़ दो!" वह जोर से चिल्ला रही थी और उवसका सारा शरीर पसीने से तर था ।

जब रोदन करती पूतना मर गई, तो चारों ओर पृथ्वी तथा आकाश में उच्च तथा निम्न लोकों में तथा सभी दिशाओं में भयानक कम्पना हुआ और लोगों ने सोचा कि कोई वज्रपात हुआ है । इस प्रकार पूतना के इन्द्र जाल का दुःस्वप्न दूर हुआ और उसने एक विराट असुरनी जैसा अपना वास्तविक स्वरूप धारण कर लिया । उसने अपना भयानक मुँह खोल दिया और अपने हाथ पैर फैला दिये । वह उसी प्रकार गिर पड़ी जिस प्रकार इन्द्र के वज्र-प्रहार से वृत्राासुर गिर पड़ा था । उसके सिर के लम्बे-लम्बे केश उसके पूरे शरीर पर बिखर गये । उसका गिरा हुआ शरीर बारह मील तक फैला था जिसके गिरने से सभी वृक्ष चूर-चूर हो गये थे । जिस किसी ने उसके विशाल शरीर को देखा वह आश्चर्यचकित था । उसके दाँत खुदी हुई सड़कें लग रहे थें और उसके नथुने पर्वत-कन्दराओं के समान प्रतीत हो रहे थें । उसके स्तन छोटी-छोटी पहाड़ियों जैसे लग रहे थे और उसके केश विशाल लालाभ झाड़ी के समान थे । उसकी आँख के गड्ढे अंधकूपों के तुल्य, दोनों जाँघें नदी के दोनों किनारों के सद्दश, उसके दोनों हाथ द्दढ़निर्मित सेतुओं के समान तथा उसका उदर सूखें सरोवर की तरह लग रहा था । इसे देखकर सारे ग्वाल तथा गोपियाँ आश्चर्य एवं भय से चकित थीं । उसके गिरने से जो घोर शोर हुआ उससे उनके मस्तिष्क तथा कानों पर आघात लगा और उनके हृदय तेजी से धड़कने लगें ।

जब गाोपियाँ ने नन्हें कृष्ण को पूतना की गोदी में निर्भय खेलते पाया, तो वे तुरन्त आ गईं और उन्हें उठा लिया । माता यशोदा, रोहिणी तथा अन्य वृद्धा गोपियों ने तुरन्त ही चँवर लेकर उनके शरीर की परिक्रमा करते

हुए शुभ अनुष्ठान सम्पन्न किये । बालक को गोमूत्र से पूरी तरह नहलाया गया तथा पूरे शरीर में गोखुर से उठी धूलि लगाई गई । इसका उद्देश्य नन्हें कृष्ण को भविष्य की अशुभ घटनाओं से बचाना था । इस घटना से पता चलता है कि परिवार, समाज तथा प्राणीमात्र के लिए गाय की कितनी महत्ता है । कृष्ण के दिव्य शरीर के लिए किसी संरक्षणक आवश्यकता नहीं थी, किन्तु हमें गऊ की महत्ता का उपदेश देने के लिए भगवान् के ऊपर गोबर का लेप किया गया, गोमूत्र से उन्हें नहलाया गया और गौओं के चलने से उठी धूलि उनपर छिड़की गई ।

इस शुद्धिकरण (संस्कार) के बाद यशोदा, रोहिणी समेत गोपियों ने विष्णु के नामों का उच्चारण किया जिससे कृष्ण के शरीर को समस्त कुप्रभावों से पूरी-पूरी सुरक्षा प्राप्त हो सके । उन्होंने अपने हाथ-पैर धोये और तीन बार जल का आचमन किया जैसाकि मंत्रोच्चार के पूर्व करने का रिवाज है । उन्होंने इस प्रकार मंत्रोच्चार किया हे कृष्ण! मणिमान भगवान् आपके घुटनों की और भगवान् यज्ञ आपकी जाँघों की रक्षा करें; अज नाम से विख्यात भगवान् विष्णु आपके पाँवों की रक्षा करें । भगवान् अच्युत आप की कमर के ऊपर भाग की और भगवान् हयग्रीव आपके उदर की रक्षा करें । केशव आपके हृदय की रक्षा करें; भगवान् ईश आपकी वक्षस्थल की रक्षा करें; भगवान् सूर्य आपकी गर्दन की और भगवान् विष्णु आपकी भुजाओं की रक्षा करें । भगवान् उरुक्रम् आपके मुख की रक्षा करें; भगवान् ईश्वर आपके सिर की रक्षा करें; भगवान् चक्रधर आपके आगे से तथा भगवान् गदाधर आपके पीछे से रक्षा करें । धनुषधारी भगवान् मधुसुदन आपकी दाईं ओर से और भगवान् अर्जुन आपकी बाईं ओर की रक्षा करें; भगवान् उरुगाय अपने शंख से आप की सभी ओर से रक्षा करे; भगवान् उपेन्द्र आपकी ऊपर से रक्षा करें; भगवान् तार्क्ष्य पृथ्वी पर आपकी रक्षा करें; भगवान् हलधर आपकी चारों ओर से रक्षा करें; भगवान् हृषिकेश आपकी समस्त इन्द्रियों की रक्षा करें; भगवान् नारायण आपके

श्वास की और श्वेतद्वीप के स्वामी नारायण आपके हृदय की और योगेश्वर मन की रक्षा करें; पृश्निगर्भ आपकी बुद्धि की रक्षा करे और श्रीभगवान् आपके आत्मा की रक्षा करें । आपके खेलते समय भगवान् गोविन्द आपकी चारों दिशाओं से रक्षा करें और जब आप सो रहे हों, तो भगवान् माधव आपकी सारे संकटों से रक्षा करें; जब आप चल-फिर रहे हों, तो वैकुण्ठ के स्वामी आपको नीचे गिरने से बचाएँ; जब आप बैठे हों, तो भगवान् नारायण आपको सारी सुरक्षा प्रदान करें और जब आप खा रहे हों, तो समस्त यज्ञों के स्वामी आपकी सभी प्रकार से रक्षा करें ।

इस तरह माता यशोदा बालक के शरीर के विभिन्न अंगों की रक्षा के लिए विष्णु के विविध नामें का उच्चारण करने लगीं । माता यशोदा का दृढ़ विश्वास था कि वे अपने पुत्र की रक्षा डाकिनियों, यातुधानियों, कुष्मांडों, यक्षों, राक्षसों, विनायकों, कोटरा, रेवती, ज्येष्ठा, पूतना, मातृकाओं, उन्मादों तथा इसी प्रकार के अन्य भूत-प्रेतों से कर सकेंगी, जो मनुष्यों को उनके निजी अस्तित्व के बारे में भुलवा देते हैं तथा प्राणों एवं इन्द्रियों को कष्ट पहुँचाते हैं । ये कभी-कभी स्वप्न में आते हैं और उत्पात मचाते हैं, तो कभी ये वृद्धा स्त्रियों के रूप में प्रकट होकर नन्हें-मुन्ने बालकों का रक्त चूसते हैं । किन्तु जहाँ भगवन्नाम का कीर्तन होता रहता है, वहॉ पर ये भूत-प्रेत ठहर नहीं पाते । माता यशोदा को गौवों तथा विष्णु के पवित्र नाम की वैदिक आदेशों के विषय में दृढ़ विश्वास था, अतः उन्होंने अपने पुत्र कृष्ण की रक्षा के लिए इन दोनों की शरण ग्रहण कीं । उन्होंने विष्णु के समस्त नामें का उच्चारण किया जिससे वे अपने पुत्र की रक्षा करें । वैदिक संस्कृति में आदि काल से गोपालन तथा विष्णु नाम के कीर्तन पर बल दिया गया है और आज भी ऐसे व्यक्ति, जो वैदिक प्रणाली का अनुगमन करते हैं, विशेषतया गृहस्थ लोग, कम से कम एक दर्जन गौवें पालते हैं और अपने घर में स्थापित भगवान् विष्णु के अर्चाविग्रह की पूजा करते हैं । जो लोग कृष्णभावनामृत में उन्नति कर रहे हैं, उन्हें इस कार्यकलाप से

पाठ सीखना चाहिए और गौवों तथा विष्णु के शुभ नाम में रुचि लेनी चाहिए ।

वृन्दावन की वयस्क गोपिकाएँ कृष्ण के प्रेम में इतनी लीन थीं कि वे कृष्ण को हर तरह से बचाना चाहती थीं, यद्यपि उन्हं इसकी आवश्यकता न थी क्योंकि उन्होंने अपने को पहले से सुरक्षित कर रखा था । वे यह नही समझ पाईं कि कृष्ण श्रीभगवान् थे, जो बालक रूप धारण किये क्रीड़ा कर रहे थें । बच्चों के रक्षा सम्बन्धी अनेक औपचारिकताओं के बाद माता यशोदा ने कृष्ण को अपनी गोद में लेकर अपना दूध पिलाया । जब बालक की विष्णु-मंत्र से रक्षा कर ली गयी, तो माता यशोदा कीी लगा कि वह सुरक्षित है । इसी बीच, सारे ग्वाले, जो कर जमा करने मथुरा गये थे लौट कर घर आये, तो वे सब पूतना के विशाल मृत शरीर को देखकर स्तम्भित रह गयें ।

नन्द महाराज को वसुदेव की भविष्यवाणी स्मरण हो आईं और वे उन्हें एक ऋषि तथ योगी मानने लगे, अन्यथा वे यह कैसे बता सकते थे कि वृन्दावन से मेरी अनुपस्थिति की अवधि में कोई घटना होने वाली है । इसके बाद व्रज के समस्त वासियों ने पूतना के विशाल शरीर के खण्ड-खण्ड कर डाले और उसे जलाने के उद्देश्य से लड़की की चिता बना दी । जब पूतना के शरीर के अंग जल रहे थें, तों अग्नि से उठे धुएँ से अगुरु की सुगन्धि छा रही थी । यह सुगन्धि कृष्ण द्वारा वध किये जाने के कारण थी । इसका अर्थ यह हुआ कि असुरनी पूतना के सारे पाप धुल गये थे और उसे स्वर्गिक शरीर प्राप्त हो गया था । यहाँ ऐसा उदाहरण प्राप्त होता है । कि भगवान् कितने सर्वकल्याणकारी हैं- पूतना कृष्ण को मारने आई थी, किन्तु चूँकि उन्होंने उसका दुग्धपान किया था, अतः वह तुरन्त पवित्र हो गई और उसके मृत शरीर को दिव्य गुण प्राप्त हुआ । उसका एकमात्र कार्य छोटे-छोटे बालकों को मारना था; उसे केवल रक्त प्रिय था । किन्तु कृष्ण के प्रति द्वेष रखते हुए भी उसे मोक्ष प्राप्त हुआ क्योंकि

उसने कृष्ण को अपना दूध पिलाया था । अतः उन लोगों के विषय में क्या कहा जाये जो माता के रूप में कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हैं और जो अत्यन्त प्रेमपूर्वक सदा उनकी सेवा करते हैं, जो हर जीव के परमात्मा हैं और पूर्ण पुरुषोत्तम भगवान् हैं?

इससे यह निष्कर्ष निकला कि भगवान् की सेवा में लगाई गई अल्प शक्ति भी अपार दिव्य लाभ प्रदान करने वाली है । इसकी व्याख्या भगवद्गीता में की गई है- स्वल्पमप्यस्य धर्मस्य त्रायते महतो भयात् । कृष्णचेतना में की गई भक्ति इतनी दिव्य है कि जाने-अनजाने कृष्ण की थोड़ी से भी सेवा से बड़ा लाभ प्राप्त होता हैं किसी वृक्ष के पुष्प अर्पित करके कृष्ण की पूजा करना भी उस जीवात्माके लिए लाभप्रद हैं, जो वृक्ष के अस्तित्व तक सीमित हैं । जब कृष्ण को फूल और फल अर्पित किये जाते हैं, तो अप्रत्यक्ष रूप से उस वृक्ष को भी लाभ पहुँचता हैं, जिसमें वे फुल फल लगे थें । अतः अर्चनाविधि हर एक के लिए लाभप्रद हैं कृष्ण ब्रह्या तथा शिव जैसे महान् देवों द्वारा पूजय हैं और पूतना इतनी भाग्यशालिनी थी कि वही कृष्ण बालक रूप में उसकी गोदी में खेले । श्रीकृष्ण के वे ही चरण्कमल जो ऋषियों तथा भक्तों द्वारा आराध्य हैं पूतना के शरीर पर पड़े । लोग कृष्ण की पूजा करके भोजन की भेंट चढ़ाते हैं, किन्तु उन्होंने तो पूतना के शरीर से स्वतः दुग्धपान किया । इसीलिए भक्तगण प्रार्थना करते हैं कि यदि पूतना जैसी शत्रुणी केवल दूध पिला करके इतना लाभ प्राप्त कर सकती हैं, तो फिर प्यार तथा स्नेह से कृष्ण की प्रजा से प्राप्त होने वाले लाभ का अनुमान भला कौन लगा सकता है ।

यदि पूजा करने वाले को इतना लाभ हो सकता है, तो फिर मनुष्य को चाहिए कि केवल कृष्ण की ही पूजा करें । यद्यपि पूतना दुष्टात्मा थी, किन्तु उसे भगवान की माता के समान उच्च पद प्राप्त हुआ । अतः यह स्पष्ट है कि गौवें तथा वयस्क गोपियाँ भी जो कृष्ण को दूध देती थीं दिव्य

पद को प्राप्त हुईं । कृष्ण किसी को भी कुछ भी, मुक्ति से लेकर कोई भी कल्पनीय भौतिक वस्तु दे सकते हैं । अतः वे जिस पूतना के शरीर का दुग्धपान करते रहे, उसके मोक्ष के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं हो सकता । और उन गोपियों के मोक्ष के सम्बन्ध में कया सन्देह हो सकता है जिन्हें कृष्ण इतने प्रिय थे? निस्सन्देह जिन समस्त गोपियों तथा ग्वालों एवं गायों ने वृन्दावन में अत्यन्त प्रेम तथा स्नेह से कृष्ण की सेवा की वे सब इस भौतिक संसार की दयनीय दशा से मुक्त हो गये ।

जब समस्त वृन्दावनवासियों की नाकों में पूतना के जलने से उत्पन्न धुएँ की सुगन्धि गई, तो वे एक दूसरे से पूछने लगे, यह सुगन्धि कहाँ से आ रही है? और बातचीत के दौरान ही उन्हें यह ज्ञात हुआ कि यह संगंध पूतना के जलने से उठे धुएँ की है । कृष्ण उन्हें प्राणों से प्रिय थे और जैसे ही उन्होंने सुना कि कृष्ण द्वारा पूतना का वध हुआ हैं, तो सबों ने प्रेमवश उस बालक को आशीष दिया । पूतना के जल जाने के पश्चात् नन्द महाराज घर आये और तुरन्त ही बच्चे को गोद में उठाकर उसका सिर चूमा । इस प्रकार वे परम सन्तुष्ट हुए कि उनका नन्हा-सा बालक इस महान् विपदा से बच गया । श्रीशुकदेव गोस्वामी उन समस्त व्यक्तियों को आशीर्वाद देते हैं, जो कृष्ण द्वारा पूतना वध के इस वृतान्त को सुनते हैं, क्योंकि उन्हें निश्चय ही गोविन्द के वरदान की प्राप्ति होगी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " पूतना वध" नामक छठे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ है ।

अध्याय 7
तृणावर्त का उद्धार

भगवान् श्रीकृष्ण सदैव ही षड्-ऐश्वर्यो से ओतप्रोत रहते हैं । ये हैं- पूर्ण धन, बल, यश, ज्ञान, सौन्दर्य तथा वैराग्य । भगवान् विभिन्न पूर्ण शाश्वत

अवतारी रूपों में प्रकट होते है । बद्ध जीवात्मा को इन अवतारों में भगवान् के दिव्य कार्यकलापों के विषय में सुनने का अवसर प्राप्त होता रहता हैं । भगवद्गीता में कहा गया है- जन्म कर्म च मे दिव्यम् । भगवान् की लीलाएँ तथा कार्यकलाप संसारी नहीं हैं; वे भौतिक बोध से परे हैं । किन्तु बद्धजीव इन असाधारण कार्यकलापों के श्रवण से लाभान्वित हो सकता है । श्रवण एक अवसर है, जो भगवान् का साहचर्य प्रदान करता है और उनके कार्यकलाप के श्रवण का अर्थ है दिव्य चेतना का विकास करना । बद्धजीव की स्वाभाविक प्रवृत्ति अन्य बद्धजीवों के विषय में उपन्यास, नाटक, कथा आदि के माध्यम से कुछ-न-कुछ रवण करने की होती हैं । अन्यों के विषय में कुछ-न-कुछ श्रवण करने की इस प्रवृत्ति (अभिरुचि) का उपयोग भगवान् की लीलाओं के श्रवण करने मे किया जा सकता है । तब मनुष्य तुरन्त दिव्य प्रकृति की ओर विकास कर सकता हैं कृष्ण की लीलाएँ न केवल सुन्दर हैं, अपितु वे मन को मोहने वाली है ।

यदि कोई भगवान् की लीलाओं के श्रवण का लाभ उठाता है, तो प्रकृति की दीर्घकालीन संगति के कारण मन में संचित होने वाली कल्मष-धूलि को तुरन्त ही धोया जा सकता है । भगवान् चैतन्य ने भी उपदेश दिया है कि भगवान् कृष्ण के दिव्य नाम के श्रवण-मात्र से ही मनुष्य अपने मन के सारे भौतिक कल्मष हो सकता है । आत्म-साक्षात्कार की विभिन्न विधियाँ हैं, किन्तु जब बद्धजीव इस भक्ति की विधि को, जिसका महत्त्वपूर्ण कार्य श्रवण करना है, अपनाता है तो इसके द्वारा उसका भौतिक कल्मष स्वतः धुल जाता है और उसे अपनी स्वाभाविक स्थिति का बोध हो जाता हैं । इस कल्मष के कारण ही यह बद्ध जीवन है और ज्योंही यह कल्मष धुल जाता है त्योंही जीवात्मा का अप्रकट कार्य, अर्थात् भगवान् की सेवा करने का कार्य सहज ही जाग उठाता है । परमेश्वर के साथ दिव्य सम्बन्ध स्थापित करने से वह भक्तों के साथ मित्रता करने का

अधिकारी बन जाता हैं महाराज परीक्षित ने व्यावहारिक अनुभव से यह निर्दिष्ट किया है कि प्रत्येंक व्यक्ति भगवान् की दिव्य लीलाओं को सुनने का प्रयास करें । यह लीला पुरुषोत्तम भगवान् कृष्ण नामक भाष्य इसी उद्देश्य से लिखा गया है और पाठक को चाहिए कि मानव जीवन के चरम लक्ष्य की प्राप्ति के लिए इसका लाभ उठाए ।

भगवान् अपनी अहैतुकी कृपावश इस भौतिक जगत में अवतरित होते है और सामान्य पुरुष की भाँति अपने कार्यकलापों का प्रदर्शन करते हैं । दुर्भाग्यवश शून्यवादी या नास्तिक लोग कृष्ण को अपने समान एक सामान्य व्यक्ति मानते हैं और तस तरह वे उनका उपहास करते है । भगवान् ने स्वयं भगवद्गीता में इसकी यह कह कर भर्त्सना की है- अवजानन्ति मां मूढाः । मूढ या पाखंडी कृष्ण को सामान्य व्यक्ति या मानव से थोड़ा-बहुत अधिक शक्तिमान मनुष्य मानते हैं । दुर्भाग्यवश वे उन्हें श्रीभगवान् के रूप में स्वीकार नहीं कर पाते । कभी-कभी ऐसे भाग्यहीन मनुष्य बिना किसी शास्त्रीय प्रमाण के अपने आपको कृष्ण का अवतार घोषित कर देते है ।

जब कृष्ण कुछ और बड़े हुए, तो वे पलटने लगे, अब वे पीठ के ही बल नहीं लेटे रहते थे । यशोदा तथा नन्द महाराज ने दूसरा उत्सव अर्थात् कृष्ण की पहली वर्षगाँठ मनाई । उन्होंने कृष्ण जन्मदिवस (जन्माष्टमी) उत्सव का आयोजन किया, जो आज भी वैदिक सिद्धान्तों के अनुयायियों द्वारा मनाया जाता हैं (भारत में सारे हिन्दू जातिगत भेदभाव छोड़ कर कृष्ण कर जन्मदिन मनाते हैं) सारे ग्वालों तथा ग्वालिनों को इस हर्ष उत्सव में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया गया । सुन्दर बैंड (वाद्य) बज रहा था । जिसे सुन कर एकत्रित लोग आनन्दित हो रहे थे । सारे विद्वान ब्राह्मणों को आमंत्रण दिया गया था और उन सबों ने आकर कृष्ण के मंगल के लिए वैदिक स्तुतियों का उच्चारण किया । स्तुतियों के उच्चारण तथा वाद्यों के बजते समय यशोदा माता के कृष्ण को स्नान कराया । यह स्नान-क्रिया

अभिषेक कहलाती है और आज भी इसे वृन्दावन के सारे मन्दिरों में जन्माष्टमी दिवस के यप में सम्पन्न किया जाता है ।

इस अवसर पर माता यशोदा ने प्रभूत अन्न राशि का वितरण किया और विद्वान पूज्य ब्राह्मणों को दान में देने के लिए स्वर्णाभूषणों से सज्जित उत्तम गौएँ तैयार की गईं । यशोदा ने स्नान करके सुन्दर वस्त्र धारण किये और वे भली-भाँति नहलाये तथा सज्जित बालक कृष्ण को अपनी गोद में लेकर ब्राह्मणों द्वारा उच्चरित वैदिक स्तुतियाँ सुनने के लिए बैठ गई । वैदिक स्तुतियाँ सुनते-सुनते कृष्ण को गहरी नींद लग गई अतः माता चुपके से जाकर उन्हें बिस्तर पर लेटा आईं । इस शुभ अवसर पर सारे मित्रों, सम्बन्धियों तथा वृन्दावनवासियों का स्वागत करने में व्यस्त रहने के कारण यशोदा जी बालक को दूध पिलाना भूल गईं । बालक भूख के मारे रो रहा था, किन्तु जन-रव के कारण वे बालक की रोना न सुन पाईं । अतः बालक अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, क्योंकि वह भूखा था और माता उसकी ओर ध्यान नहीं दे रही थीं । अतः वह अपनी टाँगें ऊपर उठाकर चरणकमलों को सामान्य बालक की तरह पटकने लगा । बालक कृष्ण को एक छकड़े के नीचे रखा गया था, और जब वे अपने पॉव पटक रहे थे, तो अकस्मात् उनका पाँव छकड़ें के पहिए से छू गया जिससे वह छकड़ा चूर-चूर हो गया । इस छकड़े पर अनेक प्रकार के पात्र तथा पीतल तथा अन्य धातुओं की बनी थालियाँ संचित थीं, और वे सब धड़ाम से नीचे गिर गईं । छकड़े का पहिया धुरे से निकल गया और पहिये से सारे आरे टूटकर इधर-उधर छितर गये । माता यशोदा तथा समस्त गोपियाँ एवं नन्द महाराज तथा सारे ग्वाले आश्चर्यचकित थे कि यह छकड़ा किस तरह स्वतः टूट गया । इस पावन उतसव में समागत सारे स्त्री तथा पुरुष छकड़ें के चारो ओर एकत्र हो गये और सुझाव देने लगे कि यह छकड़ा किसी तरह टूटा होगा । किन्तु कोई इसका कारण नहीं जान पाया । हाँ, कुछ छोटे-छोटे बच्चों नें, जिन्हें नन्हे कृष्ण के साथ खेलते रहेन का

काम सौंपा गया था भीड़ को बताया कि पहिए में श्रीकृष्ण का पाँव लग जाने से ऐसा हुआ हैं । बालकों ने भीड़ को आश्वस्त किया कि उन्होंने अपनी ऑखों से देखा है कि वह सब कैसे हुआ और वे सब इसी पर बल दे रहे थे । कुछ लोग तो ध्यान से छोटे बच्चों के बयान सुन रहे थे, किन्तु दूसरों ने कहा, "आप इन बच्चों के कहने पर कैसे विश्वास कर सकते हैं?" ग्वाले तथा ग्वालिनें यह जान पाईं कि सर्वशक्तिमान भगवान् वहाँ बाल-रूप में लेटे हुए थे और वे कुछ भी करने में समर्थ थें । सम्भव ता असम्भव दोनों ही उनके वश में थे । जब इस तरह विवाद चल रहा था, तो बालक कृष्ण रो पड़े । माता यशोदा ने बिना प्रतिवाद के बालक को अपनी में उठा लिया और भूत-प्रेत दूर करने के लिए वैदिक स्तुतियों का उच्चारण कराने के लिए विद्वान ब्राह्मणों को बुलवा भेजा । साथ ही वे बच्चे को दूध भी पिलाती रहीं । यदि बालक अपनी माता का दूध ठीक से पीता हैं, तो समझा जाता है कि बच्चे को कोई खतरा नहीं है । तत्पश्चात् समस्त बलिष्ठ ग्वालों ने टूटे छकड़ें को ठीक किया और इधर-उधर बिखरी वस्तुओं को पूर्ववत् रख दिया । फिर ब्राह्मणों ने यज्ञ की अग्नि में घी, दही, कुश तथा जल की आहुतियाँ दीं । उन्होंने बच्चे के मंगल के लिए श्रीभगवान् की पूजा की ।

वहाँ पर उपस्थित सारे ब्राह्मण सुपात्र थे क्योंकि वे ईर्ष्याहीन थे; उन्होंने कभी असत्य भाषण नहीं किया था, वे घमंडी नहीं थे, वे सबके सब अहिंसावादी एवं प्रामाणिक थे, अतः ऐसा कोई कारण न था कि उनके आशीर्वाद व्यर्थ जाँए । सुपात्र ब्राह्मणों के दृढ़ विश्वास के साथ, नन्द महाराज ने अपने पुत्र को गोद में लेकर विविध औषधियों से मिश्रित जल के द्वारा उसे स्नान कराया और ब्राह्मणों ने ऋक्, यजुः तथा साम वेदों से स्तुतियाँ पढ़ीं ।

कहा जाता है कि जब तक ब्राह्मण योग्य (पात्र) न हो, तब तक उसे वेदों के मंत्र नहीं पढ़नें चाहिए । यहाँ पर इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है कि वे

ब्राह्मण समस्त ब्राह्मण-लक्षणों से सम्पन्न थें । नन्द महाराज को भी उन पर पूर्ण श्रद्धा थी । फलतः उन्हें वैदिक मंत्रोच्चार द्वारा अनुष्ठान करने की अनुमति प्रदान की गई । यद्यपि विभिन्न कार्यो के लिए भिन्न-भिन्न प्रकार के यज्ञों का विधान है, किन्तु सारे मंत्रों का उच्चारण सुपात्र ब्राह्मणों द्वारा ही होना चाहिए । चूँकि इस कलि-काल में ऐसे सुपात्र ब्राह्मण उपलब्ध नहीं हैं, अतः समस्त वैदिक यज्ञ-अनुष्ठान वर्जित हैं । इसीलिए श्री चैतन्य महाप्रभु ने इस युग के लिए केवल एक प्रकार के या की संस्तुति की है और वह है संकीर्तन यज्ञ अर्थात् हरे कृष्ण महामंत्र का जाप ।

जब ब्राह्मणों ने वैदिक स्तुतियों का उच्चारण किया और दूसरी बार विधि-विधान सम्पन्न कराया, तो नन्द महाराज ने पुनः उन्हें प्रभूत अन्न तथा गौएँ दान में दीं । दान दी गई सारी गौएँ सुनहरें गोटों वाले वस्त्रों से आभूषित थीं, उनके खुर चाँदी के पत्रों से मढ़ें थे, उनके सींग सुनहरे छल्लों से सजाये गये थे और उनके गलों में फूलों के हार पड़े थे । उन्होंने अपने सुन्दर पुत्र के कल्याणार्थ अनेक गौवों का दान किया और बदले में ब्राह्मणों ने हार्दिक आशीर्वाद दिया । ब्राह्मणों द्वारा प्रदत्त ये आशीर्वाद कभी निष्फल नहीं हो सकते थे ।

एक दिन इस उत्सव के तुरन्त बाद जब माता यशोदा बालक को अपनी गोद में लेकर देलार रही थीं, तो बालक बहुत भारी लगने लगा, और वे उवसे उठाने में असमर्थ अनुभव करने लगी । अतः उन्होंने इच्छा न होते हुए भी उसे जमीन पर बिठा दिया । थोड़ी देर बाद वे गृह-कार्य में व्यस्त हो गईं । उसी समय कंस का एक भृत्य, जिसका नाम तृणावर्त था, कंस के आदेशानुसार बवंडर के रूप में वहाँ प्रकट हुआ । उसने बालक को अपने कंधें पर चढ़ा लिया और सारे वृन्दावन के ऊपर एक भारी अंधड़ उत्पन्न कर दिया । फलस्वरूप सारे लोगों की ऑखें धूल से भर गई और सम्पूर्ण वृन्दावन क्षेत्र इतने गहन अंधकार से पूर्ण हो गया कि कोई किसी का जुख नहीं सकता था । इस मान् उत्पात के समय माता

यशोदा को अपना बच्चा नहीं दिखाई पड़ा, क्योंकि उसे तो बवंडर उड़ा ले गया था , अतः वे करुणा करके रोने लगीं । वे पृथ्वी पर उसी प्रकार गिर पड़ीं जिस प्रकार बछड़ा खो जाने पर गाय बेहोश हो जाती है । जब यशोदा इस तरह विलाप कर रही थीं, तो सारी ग्वालिनें तुरन्त वहॉ आ गई और बालक की खोज करने लगीं, किन्तु वे बालक को नहीं पा सकीं, अतः निराश हो उठीं । तृणावर्त दानव बालक कृष्ण को कंधे पर उठाकर आकाश में बहुत ऊपर चला गया था, किन्तु बालक ने अपना भार इतना बढ़ा लिया कि सहसा वह और ऊपर नहीं जा सका, अतः दानव को अपना उत्पाद बन्द करना पड़ा । बालक कृष्ण ने अपने को इतना भारी बना लिया कि दानव अपनी गर्दन पकड़ कर नीचे बैठने लगा । तृणावर्त को लग रहा था कि यह बालक मानो विशाल पर्वत हो । वह उसके चुंगल से निकलने का प्रयास करने लगा, किन्तु ऐसा नहीं कर पाया । उसके नेत्र-गोलक बाहर निकल आये । वह चीत्कार करता हुआ वृन्दावन की भूमि पर गिर कर मर गया । यह असुर शिवजी के बाणों से विंधा त्रिपुरासुर के ही समान गिर पड़ा । वह पथरीली भूमि पर गिरा था, अतः उसके अंग-प्रतयंग क्षत-विक्षत हो गये । उसका शरीर समस्त वृन्दावनवासियों को दिखाई देने लगा ।

जब गोपियों ने असुर को मरा हुआ तथा बालक कृष्ण को उसके शरीर के ऊपर प्रसन्नतापूर्वक खेलते देखा, तो उन्होंने अत्यन्त प्रेमपूर्वक उसे उठा लिया । सारे गोप तथा गोपिकाएँ अपने प्राणप्रिय कृष्ण को पाकर अत्यन्त प्रमुदित हुईं । उस समय वे परस्पर बाते करने लगीं कि यह कितने आश्चर्य की बात है कि यह असुर इस बालक को खा जाने के लिए लेकर भागा था, किन्तु ऐसा नहीं कर पाया । उल्टे वह गिर कर मर गया । उनमें से कुछ ने इस परिस्थिति के समर्थन में कहाः यह उचित ही हुआ क्योंकि जो पापी होते हैं, वे अपने पाप-फल से मर जाते हैं । यह बालक पवित्र है, इसलिए सभी प्रकार की विपदाओं से बच सका हैं हमने

भी पूर्वजन्म में अवश्य ही महान् यज्ञ किये होंगे, भगवान् की पूजा की होगी, प्रभूत सम्पत्ति का दान दिया होगा और जनता का उपकार किया होगा । ऐसे पुण्य कार्यो के फलस्वरूप ही यह बालक इस संकट से बच सका है ।

वहॉ पर समवेत गोपियाँ परस्पर कहने लगीं, "पूर्वजन्म में हमने कैसी तपस्या की होगी? कमने अवश्य ही भगवान् की पूजा की होगी, विविध प्रकार के यज्ञ किये होंगे दान दिये होंगे दान दिये होंगे और वट-वृक्ष लगाने तथा कुएँ खुदाने जेसे जन-कल्याणकारी कार्य सम्पन्न किये होंगे, जिन पुण्यकारों के परिणामस्वरूप हमें हमारा बालक वापस प्राप्त हो सका है, अन्यथा वह मर ही चुका था । अत वह अपने परिजनों को जीवनदान देने के लिए लौट आया है ।" ऐसी विचित्र घटनाएँ देख-देख कर नन्द महाराज को वसुदेव के वचन पुनः पुनः याद आने लगे ।

इस घटना के बाद एक बार जब यशोदा अपने पुत्र को प्रेमपूर्वक स्तन-पान कर रही थी और दुलार रही थीं, तो उनके स्तनों से दुग्ध की धारा बह निकली और जब उन्होंने अपनी अँगुलियों से बालक का मुख खोला, तो अचानक उन्हें उस मुख के भीतर सारा ब्राह्याण्ड दिखाई पड़ा । उन्होंने कृष्ण के मुख के भीतर नक्षत्रों सहितपूरा आकाश, चारों दिशाओं में तारे, सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, समुद्र, द्वीप, पर्वत, नदियाँ जगल तथा सारे जड़-जंगम प्राणी देखें । यह देखकर माता यशोदा का दिल धड़कने लगा और वे अपने आप बुदबुदाईं, "कितना विचित्र है यह!" वे कुछ भी व्यक्त न कर पाईं । बस, उन्होंने अपनी ऑखें मूँद लीं । वे विचित्र भावों में लीन हो गईं । कृष्ण द्वारा अपनी माता की गोद में लेटे रहकर अपने विराट रूप का प्रदर्शन यह सिद्ध करता है कि भगवान् सदैव भगवान् होते हैं, चाहे वे माँ की गोद में लेटे हों या कुरुक्षेत्र की युद्ध-भूमि में सारथी बने हों । इससे निर्विशेषवादियों का यह मनगढ़ंत विचार कि मनुष्य ध्यान या किसी कृत्रिम कर्म द्वारा भगवान बन सकता है झूठा सिद्ध हो जाता है ।

ईश्वर चाहे जिस भी दशा में रहें, ईश्वर रहते हैं और जीव सदा परमेश्वर के अंशरूप है । वे कभी भी भगवान् की अकल्पनीय अलौकिक शक्ति की बराबरी नहीं कर सकते ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " तृणावर्त का उद्धार" नामक सातवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तातपर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 8
विराट रूप का दर्शन

इस घटना के बाद वसुदेव ने अपने कुल पुरोहित गर्गमुनि से कहा कि वे नन्द महाराज के यहाँ जाकर ज्योतिष के अनुसार कृष्ण के भविष्य की गणना करें । गर्गमुनि महान् ऋषि थें जिन्होंने अनेक तपस्याएँ की थीं और जो यदुवंश के पुरोहित नियुक्त हुए थे । जब गर्गमुनि नन्द महाराज के यहाँ पहुँचे, तो वे उन्हें देखकर परम प्रसन्न हुए और तुरन्त ही हाथ जोड़ कर खड़े हो गये तथा उन्होंने उनका सादर अभिवादन किया । उन्होंने गर्गमुनि का इस भाव से स्वागत किया मानों कोई ईश्वर या श्रीभगवान् की पूजा कर रहा हो । उन्होंने उन्हें उत्तम आसन दिया और जब वे बैठ गये, तो उनका हार्दिक स्वागत किया । उन्हें अत्यन्त विनम्र भाव से सम्बोधित करते हुए नन्द महाराज ने कहाः "हे ब्राह्मण! इस गृहस्थ के घर आपका आगमन केवल प्रकाश प्रदान करने के लिए हुआ हैं । हम सदैव गृहस्थी के कार्यो में लगे रहते हैं । जिससे आत्म-साक्षात्कार के वास्तविक कार्य के लिए हमें अवसर ही नहीं मिल पाता । हमारें घर में आपका पदार्पण हमें आध्यात्मिक जीवन के विषय में किञ्चित् प्रकाश प्रदान करने के निमित्त हुआ हैं । आपका गृहस्थों के घर पधारने का इसके अतिरिक्त कोई अन्य प्रयोजन नहीं हो सकता ।" वास्तव नें किसी साधु पुरुष या ब्राह्मण का ऐसे गृहस्थों के घर में जाने का कोई प्रयोजन नहीं है, जो

निरन्तर आर्थिक क्रियाकलापें (धन) में व्यस्त रहते हैं । साधु पुरुषों तथा ब्राह्मणों का गृहस्थ के घर जाने का कारण केवल उसे प्रकाश प्रदान करना होता है । यदि कोई यह पूछे कि "गृहस्थजन ज्ञान-प्राप्ति के लिए किसी साधु पुरुष या ब्राह्मण के पास क्यों नही जाते?" तो इसका उत्तर यही होगा कि गृस्स्थजन सोचते हैं कि गृहस्थजन अत्यन्त संकुचित हृदय वाले होते हैं । सामान्यतया गृहस्थजन सोचते हैं कि उनका प्रधान काय्र पारिवारिक मामलों में व्यस्त रहना हैं और आत्म-साक्षात्कार या आध्यात्मिक ज्ञान का प्रकाश गौंण है । केवल दयावश ही साधु पुरुष तथा ब्राह्मण-जन गृहस्थों के घर जाते है ।

नन्द महाराज ने गर्गमुनि को ज्योतिषविज्ञान का सबसे बड़ा पण्डित कह कर सम्बोधित किया । सूर्य या चन्द्रगहण जेसी घटनाओं के विषय में फलितज्योतिष की भविष्यवाणियाँ आश्चर्यचकित गणनाएँ हैं और इसी विज्ञान विशेष के द्वारा मनुष्य भविष्य को स्पष्ट रूप से समझ सकता हैं । गर्गमुनि इस ज्ञान में पटु थें इस ज्ञान के द्वारा यह जाना जा सकता है कि मनुष्य के विगत कर्म क्या थे जिसके परिणामस्वरूप मनुष्य जीवन में सुख या दुख भोग सकता है ।

नन्द महाराज ने गर्गमुनि को "सर्वश्रेष्ठ ब्राह्मण" भी कहा । ब्राह्मण वह हैं, जो परमेश्वर के ज्ञान में दक्ष हों । परमेश्वर के ज्ञान के बिना मनुष्य ब्राह्मण नहीं माना जा सकता । इस प्रसंग में प्रयुक्त सही शब्द ब्रह्मविदाम् है, जिसका अर्थ है, वे पुरुष जो परमेश्वर को भलीभाँति जानते हैं । एक दक्ष ब्राह्मण अन्य उपजातियों - क्षत्रिय तथा वैश्यों - को सुधारने की सुविधाएँ प्रदान कर सकता है । शूद्र कोई संस्कार सम्पन्न नहीं करते । ब्राह्मण को क्षत्रिय तथा वैश्य का गुरु या पुरोंहित माना जाता है । नन्द महाराज जाति के वैश्य थे और वे गर्गमुनि को सर्वोच्च ब्राह्मण मानते थें । अतः उन्होंने अपने दोनों धर्मपुत्रों, कृष्ण तथा बलराम, को संस्कार कराने के लिए उन्हें समर्पित किया । नन्द महाराज ने कहा कि न केवल इन

दोनों बालकों को अपितु सारे मनुष्यों को चाहिए कि जन्म के पश्चात् किसी योग्य ब्राह्मण को अपना गुरु बनाएँ ।

इस प्रार्थना पर गर्गमुनि ने उत्तर दिया, "वसुदेव ने मुझे इन बालकों का, विशेष रूप से कुष्ण का, संस्कार कराने के लिए भेजा है । मैं उनका कुल-पुरोहित हूँ और अक्षर मैं इन को संस्कार कराऊँ तो संयोगवश यह लगेगा कि कृष्ण देवकी के पुत्र है ।" अपनी फलितज्योतिष गणना से गर्गमुनि समझ गये थें कि कृष्ण देवकी के पुत्र हैं, किन्तु नन्द इससे सर्वथा अनजान थे । परोक्ष रूप से उन्होंने यह कहा कि कृष्ण तथा बलराम दोनों वसुदेव के पुत्र थे । बलराम वसुदेव के पुत्र रूप में विख्यात थे, क्योंकि उनकी माता रोहिणी विद्यमान थीं, किन्तु कृष्ण के विषय में नन्द को ज्ञात न था । गर्गमुनि ने अप्रत्यक्ष रूप से यह प्रकट कर दिया कि कृष्ण देवकी के पुत्र हे । उन्होंने नन्द महाराज को यह भी आगाह कर दिया कि यदि वे संस्कार सम्पन्न कराएँगे, तो पापी कंस समझ जाएगा कि कृष्ण देवकी तथा वसुदेव के पुत्र है । गणना के अनुसार देवकी की आठवीं सन्तान कन्या हे । इस प्रकार गर्गमुनि ने नन्द महाराज को सूचित किया कि कन्या तो यशोदा के उत्पन्न हुई थी और कृष्ण देवकी से उत्पन्न थें और वे परस्पर बदल लिये गये थें । उसक कन्या या दुर्गा ने भी कंस को सूचित किया था कि उसे मारने वाले बालके ने अन्यत्र जन्म ले लिया है । गर्गमुनि ने कहा, "यदि मैं आपके पुत्र का नामकरण संस्कार करता हूँ और यदि वह उस कन्या द्वारा कंस के प्रति की गई आकाशवाणी को पूरा कर देता है, तो सम्भव है कि वह पापी असुर आकर नामकरण के बाद इस बालक का भी वध कर दे । अतः मैं इन सभी भावी विपत्तियों का उत्तरदायी नहीं बनना चाहता ।"

गर्गमुनि के वचन सुनकर नन्द महाराज बोले, "यदि ऐसा आशंका है, तो अच्छा होगा कि नामकरण संस्कार का भव्य आयोजन न किया जाय । आपके लिए यही श्रेयस्कर होगा कि आप केवल वैदिक मंत्रों का

उच्चारण करके संस्कार सम्पन्न करा दें । हम द्विज हैं और मैं तो आपकी उपस्थित का लाभ उठा रहा हूँ । अतः बिना धूम-धड़ाका के नामकरण संस्कार सम्पन्न करा दें ।" नन्द महाराज नामकरण संस्कार को मुप्त रखना चाहते थे, किन्तु यह भी चाह रहे थे कि गर्गमुनि यह संस्कार सम्पन्न करें ।

जब नन्द महाराज ने इतनी उत्सुकता के साथ गर्गमुनि से प्रार्थना की तो उन्होंने गुप्त रूप से नन्द की गोशाला में नामकरण संस्कार सम्पन्न किया । उन्होंने नन्द को बताया कि रोहिणी-पुत्र बलराम अपने परिवार वालों तथा परिजनों के लिए अत्यन्त मोहक होगा, अतः राम कहलाएगा । भविष्य में वह अद्वितीय बलशाली सिद्ध होगा, अतः बलराम कहलाएगा । गर्गमुनि ने आगे बताया, "चूँकि आपके कुल तथा यदुकुल में घनिष्ठ सम्बन्ध हैं, अतः उस बालक का एक नाम संकर्षण भी होगा ।" इसका अर्थ यह हुआ कि गर्गमुनि ने रोहिणी के पुत्र के तीन नाम रखे- बलराम, संकर्षण तथा बलदेव । उन्होंने चातुरी से यह बात प्रकट न होने दी कि बलराम भी देवकी के गर्भ में प्रकट हुए थे और बाद में उन्हें रोहिणी के गर्भ में स्थानान्तरित किया गया था । कृष्ण तथा बलराम सगे भाई (सहोदर) हैं और मूलतः देवकी के पुत्र हैं ।

तब गर्गमुनि ने नन्द महाराज को जानकारी दी, "जहाँ तक आपके पुत्र का प्रश्न है इस बालक के विभिन्न युगों में विभिन्न शारीरिक रंग धारण किये है । सर्वप्रथम इसने श्वेत रंग धारण किया, फिर लाल, तब पीला और अब श्याम रंग धारण किया है । इसके अतिरिक्त यह पहले वसुदेव का पुत्र था, अतः इसका नाम वासुदेव तथा कृष्ण होना चाहिए । अतः कुछ लोग इसे कृष्ण कह कर पुकारेंगे और कुछ वासुदेव कह कर । किन्तु आपको एक बात जान लेनी चाहिए कि अपनी विभिन्न लीलाओं के कारण इस बालक के अन्य अनेक नाम तथा कार्यकलाप होते रहे है ।"

गर्गमुनि ने नन्द महाराज से यह भी संकेत किया कि उनका पुत्र गिरिधारी भी कहलाएगा, क्योंकि यह गोवर्धन पर्वत उठाने का असाधारण कृत्य करेगा । चूँकि वे भूत तथा भविष्य के जानने वाले ज्योतिषी थे, अतः वे बोले, "मैं इसके कार्यों तथा नाम के विषय में हर बात जानता हूँ, किन्तु अन्य लोग नहीं जानते । यह बालक समस्त ग्वालों तथा गौवों को अत्यन्त प्यारा होगा । वृन्दावन में अत्यन्त लोकप्रिय होने के कारण यह आपके लिए कल्याणकारी होगा । इसकी उपस्थिति से आप समस्त सांसारिक विपत्तियों को पार कर सकेंगे, चाहे कितने ही विरोधी तत्त्व क्यों न आ जायें । हे व्रजराज! जब जब राजनीतिक कुव्यवस्था हुई है इस बालक ने अपने पूर्वजन्मों में चोर-उचक्कों से साधुजनों की कई बार रक्षा की है । आपका पुत्र इतना शक्तिशाली है कि जो भी इसका भक्त होगा उसे शत्रु सता नहीं पाएँगे । जिस प्रकार विष्णु सदैव देवताओं की रक्षा करते हैं, उसी तरह आपके पुत्र के भक्त भी नारायण भगवान् के द्वारा सदैव सुरक्षित रहेंगे । नारायण अर्थात् भगवान् के स्तर पर आकपा बालक शक्ति, सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य में हर तरह से उन्नति करेगा । अतः मेरी सलाह है कि आप इसकी सुरक्षा अत्यन्त सतर्कतापूर्वक करें, जिससे यह किसी व्यवधान के बिना विकास कर सके ।" दूसरे शब्दों में गर्गमुनि ने नन्द महाराज को यह भी बताया कि चूँकि वे नारायण के परम भक्त हैं, अतः भगवान् नारायण ने उन्हें अपने ही समान पुत्र दिया है । साथ ही गर्गमुनि ने यह भी संकेत किया, "आपके पुत्र को अनेक असुर सताएंगे, अतः सावधान रहें और उसकी रक्षा करें ।" इस प्रकार गर्गमुनि ने नन्द महाराज को विश्वास दिलाया कि साक्षात् नारायण उनके पुत्र बने हैं । उन्होंने अनेक प्रकार से उनके पुत्र दिव्य गुणों का वर्णन किया । यह जानकारी देकर गर्गमुनि अपने घर वापस चले गये । नन्द महाराज अपने को परम भाग्यशाली व्यक्ति मानने लगे और ऐसा आशीर्वाद प्राप्त करे उन्हें परम सन्तोष हुआ ।

इस घटना के कुछ समय बाद बलराम तथा कृष्ण दोनों ही हाथों और घुटनों के बल सरकने लगे । इस प्रकार चलते हुए वे अपनी माताओं को प्रमुदित करते रहते । उनकी कमर तथा पैरों में बँधी घंटिकाएँ रुनझून बजतीं और वे मनोहारी ढंग से इधर-उधर घूमते । कभी-कभी वे सामान्य बच्चों की भाँति दूसरे बच्चों से डर कर अपनी रक्षा के लिए अपनी-अपनी माताओं के पास दौड़े चले आते । कभी वृन्दावन की मिट्टी में रेंगने के कारण उनके शरीर मिट्टी से लथपथ हो जाते । वास्तवमें उनकी मालओं द्वारा उनके शरीरों पर केसर और चंदन का लेप मला होता था । किन्तु मिट्टी में रेंगने के कारण उनके शरीरों पर मिट्टी लग जाती । ज्योंही वे यशोदा तथा रोहिणी के पास रेंगते आते, वे उन्हें गोद में उठाकर साड़ी के आँचल से ढक कर दूध पिलातीं । जब वे पयपान करते रहते, तो माताएँ उनकी दँतुलियाँ देखती रहतीं । अपने पुत्रों को बढ़ता देखकर उनकी प्रसन्नता बढ़ जाती । कभी-कभी नटखट बालक गोशाला तक रंग जाते और बछड़े की पूँछ पकड़ कर खड़े हो जाते । इससे बछड़े विचलित होकर इधर-उधर दौड़नें लगते और बच्चे मिट्टी तथा गोबर के ऊपर घिसट जाते । इस कौतूहल को देखने के लिए यशोदा तथा रोहिणी अपनी पड़ोसिनों को, यानी गोपियों को बुला लेतीं । ये गोपियाँ कृष्ण की लीलाएँ देखकर दिव्य आनन्द में लीन हो जातीं और प्रसन्नतावश वे जोर-जोर से हँसने लगतीं ।

कृष्ण तथा बलराम दोनों ही इतने चंचल थें कि यशोदा तथा रोहिणी अपने-अपने गृहकार्यों में व्यस्त रहते हुए उन्हें गायों, बैलों, बन्दरों, जल, अग्नि तथा पक्षियों से बचाने का प्रयत्न करती रहतीं । अपने बालकों की सुरक्षा के लिए सदैव उत्सुक रहने तथा गृह-कार्यों में व्यस्त रहने के कारण वे शान्तिपूर्वक रह भी न पाती थीं । अल्पकाल में कृष्ण तथा बलराम दोनों ही उठकर खड़े होने लगे और अपने पैरों से कुछ-कुछ चलने लगे । जब वे दोनों चलने लगे, तो उनके हमजोली उनके साथ हो लेते और वे सब

मिलकर गोपियों को तथा विशेष रूप से यशोदा तथा रोहिणी को परमानन्द प्रदान करते ।

यशोदा तथा रोहिणी की समस्त गोपी सखियाँ वृन्दावन में कृष्ण तथा बलराम के नटखट बाल-सुलभ कार्यकलापों का आनन्द लूटने लगीं । इससे भी अधिक आनन्द-प्राप्ति के उद्देश्य से वे सब एकत्र होती और माता यशोदा के पास इन चंचल बालकों की शिकायत करने पहुँच जाती । कृष्ण माता यशोदा के सम्मुख बैठे होते, तभी सारी गोपियाँ यशोदा माता से उनकी शिकायतें करने लगती जिससे वे सुन सकें । वे कहती, "यशोदा जी! आप अपने नटखट कृष्ण को क्यों नहीं बरजतीं? वह हर प्रातः तथा सायंकाल बलराम के साथ हमारे घरों में आता है और गाएँ दुही जाने के पूर्व ही उनके बछड़ों को खोल देता हैं, जिससे वे गायों का सारा दूध पी जाते है । अतः जब हम दुहने जातीं हैं, तो दूध न होने के कारण हमें खाली बर्तन लेकर लौटना पड़ता है । यदि हम इस कृत्य के लिए कृष्ण तथा बलराम को धमकाती हैं, तो वे ऐसी मनोहारी हँसी हँसते है कि हम कुछ भी नहीं कर पातीं । यही नहीं, आपके कृष्ण तथा बलराम को हमारा दही तथा माखन चुराने में बड़ा आनन्द आता हैं, उसे चाहे हम कहीं भी क्यों न रखें । जब हम उन्हें दही तथा माखन चुराते पकड़ लेती हैं, तो वे कहते हैं, "आप हम पर चोरी का आरोप क्यों लगाती हैं? क्या आप समझती है कि हमारे घर में दही तथा मक्खन का अभाव है?" कभी-कभी वे मक्खन, दही तथा दूध चुराकर बन्दरों को बाँट देते हैं । जब बन्दर भरपेट खा लेते हैं, तो वे चिढ़ाते हैं कि यह दूध यह दही तथा माखन रद्दी हैं, यहाँ तक कि बन्दर भी इन्हें नहीं खातें । वे पात्रों को तोड़-फोड़ कर इधर-उधर बिखेर देते हैं । यदि हम दही, माखन तथा दूध को किसी एकान्त अँधेरे स्थान में रखती हैं, तो आपके कृष्ण तथा बलराम अपने शरीर के आभूषणों तथा रतनों के तेज से उस अन्धेरे स्थान में भी ढूँढ़ लेते हैं । यदि कदाचित् उन्हें छिपाया हुआ दही और मक्खन नहीं मिलता, तो वे जाकर हमारे बच्चों को

चिकोटी काटतें है । जिससे वे रोने लगते हैं ऐर वे दोनों भग जाते हैं । यदि हम मक्खन दही को छींके पर ऊँचे टाँग देती हैं, तो अपनी पहुँच के बाहर होने पर भी चक्की के ऊपर काठ के बक्से रख कर वहाँ तक पहुँच जाते है । यदि वे वहाँ तक नहीं पहुँच पाते, तो पात्र में छेद कर देते हैं । अतः हम सोचती हैं कि आप अपने बालकों के शरीर से सारे रत्नजटित आभूष्ण निकाल लें, तो अच्छा हों ।

यह सुनकर यशोदा कहतीं, "बहुत अच्छा, मैं कृष्ण के सारे रत्न उतार लूँगी जिससे वह अँधेरे में रखा माखन न ढूँढ़ पाये ।" तब गोपियाँ कहतीं, "नहीं, नहीं आप ऐसा न करें । आप इनके रत्नों को उतार कर कया करेंगी? कम नहीं जानती कि ये कैसे बालक हैं, जो बिना आभूषणों के भी एक प्रकार का तेज फैलाते रहते हैं जिससे वे अँधेरे में भी प्रत्येक वस्तु देख सकते हैं" तब माता यशोदा उन्हें बतातीं, "अच्छा, तुम लोग अपना माखन तथा दही सावधानी से रखा करो जिससे वे वहाँ पहुँच न सकें ।" तो उत्तर में गोपियाँ कहतीं, "हाँ, वास्तव में हम ऐसा ही करती हैं, किन्तु कभी-कभी हम गृहकार्यों में व्यस्त रहतीं हैं और ये नटखट बालक न जाने कैसे घर में घुस कर सारी वस्तुएँ तहस-नहस कर देते है । कभी-कभी दही तथा माखन न चुरा सकने पर ये गुस्से में आकर स्वच्छ फर्श पर पेशाब कर देते है । कभी-कभी उस पर थूक देते है । आप अपने बच्चें को देखों न! - वे किस प्रकार इस शिकायत को सुन रहे हैं । वे सारे दिन हमारे दही तथा माखन चुराने की योजना बनाते रहते हैं और अब किस तरह वे शान्त अच्छें बालकों की तरह बैठे है । जरा उनके मुखमंडल तो देखें!" जब माता यशोदा ने सारे उलाहने सुनकर अपने बच्चें को डाँटना चाहा, तो उसके भाले भाले मुखमंडल को देखकर हँस पड़ी और डाँट नहीं पाईं ।

किसी और दिन जब कृष्ण तथा बलराम अपने मित्रों के साथ खेल रहे थे, तो सारे बालकों ने बलराम के साथ मिलकर यशोदा से कहा कि

कृष्ण ने मिट्टी खाई हैं । यह सुनकर माता यशोदा ने कृष्ण का हाथ पकड़ लिया और कहा, "बेटे! तुमने अकेले में मिट्टी क्यों खाईं? देखों न, बलराम सहित तुम्हारे सारे मित्र तुम्हारी शिकायत कर रहे हैं ।" अपनी माता के डर से कृष्ण ने कहा, "हे माता! ये सारे लड़के, जिनमें भइया बलराम भी सम्मिलित हैं, झूठ बोल रहा हैं । मैंने मिट्टी कभी नहीं खाईं । आज भइया बलराम मेरे साथ खेलते-खेलते मुझसे रुष्ट हो गये, अतः वे मेरी शिकायत करने आये हें जिससे आप क्रुद्ध हों और मुझे प्रताड़ित करें । यदि आप सोचती हैं कि वे सच बोल रहे है, तो आप मेरे मुँह के भीतर

देख सकती हैं कि मैंने मिट्टी खाई है अथवा नहीं ।" उनकी माता बोलीं, "अच्छा, यदि तुमने मिट्टी नहीं खाई, तो अपना मुँह खोलों, मैं देखूँगी ।"

जब कृष्ण की माता ने इस प्रकार आदेश दिया, तो उन्होंने एक सामान्य बालक की भाँति तुरन्त अपना मुँह खोल दिया । तब माता यशोदा ने मुँह के भीतर सृष्टि का पूर्व ऐश्वर्य देखा । माता यशोदा ने मुँह के भीतर चारों ओर सम्पूर्ण बाह्य आकाश, पर्वत, द्वीप, सागर, ग्रह, वायु, अग्नि, चन्द्रमा तथा नक्षत्र देखे । चन्द्र तथा नक्षत्रों के साथ ही उन्होंने सम्पूर्ण तत्त्वों- जल, आकाश, विस्तृत शून्य, अहंकार, चित्त, बुद्धि, सारे देवता तथा इन्द्रियविषयों- यथा ध्वनि, गंध आदि एवं प्रकृति के तीनों गुणों को देखा । उन्होंने मुख के भीतर सारे जीवों, नित्य काल, भौतिक प्रकृति, आध्यात्मिक प्रकृति, गति, चेतना तथा समग्र सृष्टि के विभिन्न रूपों को देखा । यशोदा ने उनके मुख में दृश्य जगत के लिए अनिवार्य सारी वस्तुएँ देखीं । उन्होंने उनके मुख के भीतर कृष्ण को गोद लिए तथा अपना पयपान कराते अपने आपकों भी देखा । वे यह सब देख कर भयभीत हो गईं और आश्चर्य करने लगीं कि वे सपना देख रही हैं या वास्तव में कुछ विचित्र दृश्य देख रही हैं । उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि वे या तो स्वप्न देख रही थीं या भगवान् की माया का खेल देख रही थीं । उन्होंने सोचा कि ये विचित्र वस्तुएँ देखकर वे मानसिक रूप से विक्षिप्त तो नहीं हो गईं । फिर सोचा, "हो सकता है

कि वह मेरे पुत्र की विराट योग शक्ति हो, अतः उसके मुख के भीतर ऐसा दृश्य देखकर मैं विचलित हो गई हूँ । अतः मै उन श्रीभगवान् को नमस्कार करती हूँ जो चेतना, मन, कर्म एवं दार्शनिक कल्पना की अभिव्यक्ति से दूर हैं और जिनका विविध शक्तियाँ व्यक्त तथा अव्यक्त का सृजन करती हैं । उनकी शक्ति से आत्मा तथा शारीरिक सत्ता का बोध होता है ।" उन्होंने फिर कहा, "मुझे उनको सादर नमस्कार करना चाहिए जिनकी माया से मैं नन्द को अपना पति तथा कृष्ण को अपना पुत्र समझ रही हूँ और यह सोच रही हूँ कि नन्द की सारी सम्पत्ति मेरी है और सारे ग्वाले तथा ग्वालिनें मेरी प्रजा है । यह सब भ्रान्ति परमेश्वर की माया के कारण हैं । अतः मैं उनसे प्रार्थना करती हूँ कि वे सदैव मेरी रक्षा करते रहें ।"

जब माता यशोदा इस प्रकार के दार्शनिक भावों से भरी हुई थीं, तो भगवान् कृष्ण ने अपनी अन्तरंगा शक्ति का फिर विस्तार किया जिससे वे मातृ-प्रेम से मोहग्रस्त हो जाँय । अतः तुरन्त ही माता यशोदा के सारे दार्शनिक भाव विस्तृत हो गये और उन्होंने कृष्ण को अपने पुत्र रूप में स्वीकार कर लिया । उन्हें अपनी गोदी में उठाकर भौतिक वे मातृ-प्रेम से अभिभूत हो गईं और सोचने लगीं, "उन्हें उपनिषद् और वेदान्तसूत्र या योग पद्धति तथा सांख्य दर्शन से ग्रहण किए ज्ञान द्वारा ही समझा जा सकता है ।" फिर वे श्रीभगवान् को अपने द्वारा जन्में बालक के रूप में सोचनें लगीं ।

निश्चय ही यशोदा ने अनेकानेक पुण्यकर्म किये होंगे जिसके फलस्वरूप उन्हें परम सत्य श्रीभगवान् उनके पुत्र के रूप में प्राप्त हुए जिन्होंने उनका स्तन-पान किया । इसी प्रकार नन्द महाराज ने भी अनेक महान् यज्ञ तथा पुण्यकर्म किये होंगे जिससे कृष्ण उनके पुत्र बने और उन्हें अपना पिता कह कर सम्बोधित करने लगा । किन्तु यह आश्चर्यजनक है कि वसुदेव तथा देवकी कृष्ण की दिव्य बाल-लीलाओं से वंचित रहे यद्यपि कृष्ण उन्हीं के असली पुत्र थे । आज भी अनेक साधु तथा सन्त

पुरुष कृष्ण की बाल-लीलाओं का गुणगान करते हैं, किन्तु वसुदेव तथा देवकी इस बाल्यकाल की लीलाओं का साक्षात् आनन्द न उठा सकें । इसका कारण शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित से इस प्रकार बतलायाः-

जब ब्रह्मा ने द्रोण नामक सर्वश्रेष्ठ वसु को अपनी पत्नी धरा के साथ सन्तान वृद्धि करने का आदेश दिया, तो उन्होंने ब्रह्माजी से कहा, " हे पिता! हमें आप आशीर्वाद दें ।" भविष्य में जब हम पुनः इस ब्रह्माण्ड में जन्म धारण करें, तो भगवान् कृष्ण अपने अत्यन्त मनोहारी बाल्यपन के कारण उनका सारा ध्यान आकृष्ट करें । कृष्ण के साथ हमारे व्यवहार इतने प्रगाढ़ हों कि उनके साथ कृष्ण की बाल-लीलाओं के श्रवण मात्र से ही प्रत्येंक मनुष्य जन्म तथा मृत्यु के अविद्या-सागर को पार किया कर सकें ।" ब्रह्माजी ने उन्हें यह वर दे दिया जिसके फलस्वरूप द्रोण वृन्दावन में नन्द महाराज के रूप में और धरा नन्द की पत्नी माता यशोदा के रूप में प्रकट हुईं ।

इस प्रकार नन्द महाराज तथा उनकी पत्नी यशोदा ने श्रीभगवान् को पुत्र रूप में प्राप्त करके अपनी शुद्ध भक्ति बढ़ाई और समस्त गोपियों तथा ग्वालों ने जो कृष्ण के सहयोगी थें सहज ही कृष्ण के लिए अपनी प्रेम भावनाएँ विकसित कीं ।

अतः ब्रह्माजी के वरदान की पूर्ति करने के लिए ही कृष्ण अपने पूर्ण अंश बलराम सहित प्रकट हुए और समस्त वृन्दावनवासियों के दिव्य आनन्द को बढ़ाने के लिए सारी बाल-लीलाएँ सम्पन्न कीं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " विराट् रूप का दर्शन " नामक आठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 9
माता यशोदा द्वारा कृष्ण का बाँधा जाना

एक बार अपनी दासी को कोई दूसरा कार्य करते देखकर माता यशोदा स्वयं दही मथने लगीं । दधि मंथन करते समय वे कृष्ण की बाल-लीलाएँ गुनगुनाने और अपने पुत्र के विषय में सोच-सोचकर आनन्दित होने लगीं ।

दही मथते समय उनकी साड़ी का सिरा दृढ़तापूर्वक लिपटा था और जब वे दोनों हाथों से परिश्रमपूर्वक दही मथने के कारण दही मथ रही थीं, तो उत्कट पुत्र-प्रेम के कारण उनके स्तनों से, जो दोनों हाथों से परिश्रमपूर्वक यही मथने के कारण हिल रहे थें, दूध चूने लगा । उनके हाथ की चूड़ियाँ तथा कंगन एक दूसरे का स्पर्श करने के कारण रुनझुन कर रहे थे और उनके कर्णाभूषण तथा स्तन हिल रहे थें उनके मुखमण्डल पर पसीने की बूँदें थीं और शीश की पुष्पमाला इधर-उधर बिखर गई थी । इस अनूठे दृश्य के समक्ष भगवान् कृष्ण बाल रूप में प्रकट हुए । वे भूखे थे और अपनी माँ के दुलार को बढ़ाने के लिए वे चाहते थे कि माता दही मथना बन्द कर दे । उन्होंने संकेत किया कि माँ का पहला कार्य दूध पिलाना था और दही मथना बाद का कार्य था ।

यशोदा ने अपने पुत्र को गोद में उठा लिया और उसके मुख में अपना स्तन दे दिया । जब कृष्ण दूध पी रहे थे, तो माता हँस-हँस कर अपने पुत्र के मुख की सुन्दरता निहारती जा रही थीं । अकस्मात् आग पर चढ़ा हुआ दूध उफनने लगा । दूध को गिरने से बचाने के लिए यशोदा तुरन्त ही कृष्ण को एक ओर बिठाकर चूल्हे के पास गई । माँ द्वारा इस प्रकार छोड़े जाने के कारण कृष्ण अत्यन्त क्रुद्ध हुए जिससे उनके होंठ तथा नेत्र लाल हो गए । उन्होंने अपने दाँत तथा होंठ बन्द कर लिये और हाथ में एक कंकड़ी लेकर तुरन्त माखन की मटकी तोड़ डाली । उन्होंने

उसमें से मक्खन निकाल लिया और आँखों में कृत्रिम आँसू भर कर वे एकान्त में जाकर मक्खन खाने लगे ।

इस बीच यशोदा कड़ाही से उफनते दूध को ठीक करके पुनः मथने के स्थान पर लौट आईं । उन्होंने उस टूटी मटकी को देखा जिसमें दही रखा था । चूँकि उन्हें अपना पुत्र नहीं दिखाई दिया, अतः वे समझ गईं कि यह कार्य उसी का है । वे हँसने लगीं और सोचने लगी, बालक बहुत चतुर है । मटकी तोड़कर इस स्थान से दण्ड़ के भय से चला गया है । चारों ओर ढूँढ़ने के बाद उन्होंने उसे लकड़ी के एक उल्टे रखे बड़े मूसल पर बैठा पाया । वे छत से टंगे झूले पर लटके एक छींके से मक्खन निकाल-निकाल कर बन्दरों को खिला रहे थे । उन्होंने देखा कि कृष्ण अपने नटखट स्वभाव के कारण उनसे डर कर इधर-उधर देख रहा है । अपने पुत्र को इस तरह व्यस्त देख कर वे चुपचाप पीछे से आईं । किन्तु कृष्ण ने तुरन्त ही देख लिया कि उनकी माता हाथ में छड़ी लेकर उनकी ओर आ रही हैं, अतः वे तुरन्त मूसल से उतर कर डर के मारे भाग चलें ।

माता यशोदा उन श्रीभगवान् को पकड़ने के लिए घर के चारों कोनों में पीछा करती रहीं जिन तक बड़े-बड़े योगी भी ध्यान द्वारा नहीं पहुँच पाते । दूसरे शब्दों में, योगियों तथा चिन्तकों द्वारा पकड़ में न आने वाले भगवान् श्रीकृष्ण यशोदा माता जैसी महान् भक्त के साथ एक शिशु की भाँति खिलवाड़ कर रहे थें । किन्तु माता यशोदा अपनी पतली कमर तथा भारी शरीर के कारण तेज दौड़ने वाले बालक को सरलता से न पकड़ पाईं । फिर भी वे यथा-सम्भव तेजी से उसका पीछा करने लगीं । उनकी केशराशि शिथिल पड़ गई और केश पर लगा फूल पृथ्वी पर गिर पड़ा । यद्यपि वे थक गई थीं, किन्तु जिस-तिस भाँति वे नटखट बालक तक पहुँच गईं और उन्होंने उसे पकड़ लिया । जब कृष्ण पकड़े गये, तो वे रुआँसे हो गये । वे अपनी आँखें हाथों से मलने लगे, जिनमें काली काजल लगा हुआ था । बालक ने अपने पास खड़ी अपनी माता के मुख को देखा और

भय के कारण उनकी आँखें बेचैन हो उठीं । माता यशोदा यह समझ रही थी कि कृष्ण वृथा ही डरे हुए हैं और वे उसके लाभ के लिए उसका डर दूर करना चाह रही थीं ।

अपने पुत्र की सर्वाधिक हितैषिणी माता यशोदा सोचने लगीं, "यदि यह बालक मुझसे अत्यधिक डर गया, तो उसे कहीं कुछ हो न जाये?" तब यशोदा ने छड़ी फेंक दी । उसे दण्ड देने के लिए उन्होंने रस्सी से उनके दोनों हाथ बाँधने की ठानी । वे नहीं जान पाईं कि श्रीभगवान् को बाँध पाना उनके लिए असम्भव था । माता सोच रही थीं कि कृष्ण छोटा सा शिशु है । वे यह नहीं जान पाईं कि यह बालक अनन्त हैं, जिसका न तो अत्यन्तर हैं, न बाह्य; न आदि है और न अन्त । वे असीम तथा सर्वव्यापी है । निस्सन्देह वे ही यह सम्पूर्ण दृश्य जगत है । फिर भी यशोदा जी कृष्ण को अपना नन्हा-मुन्ना ही समझ रही थीं । यद्यपि वे समस्त इन्द्रियों की पहुँच के बाहर है, तो भी वे उन्हें काष्ठ के उलूख से बाँधने का प्रयत्न कर रही थीं किन्तु जब वे उन्हें बाँधने लगीं, तो रस्सी दो इंच छोटी पड़ गई । उन्होंने घर से और रस्सी एकत्र की, उसमें जोड़ा, किन्तु तब भी रस्सी उतनी ही छोटी पड़ी । इस प्रकार उन्होंने घर की सारी रस्सियाँ जोड़ डालीं, किन्तु जब अन्तिम गाँठ लगाई तब भी वह दो इंच छोटी निकली । माता यशोदा हँस रही थीं, किन्तु विस्मित थीं कि यह सब क्या हो रहा है?

वे श्रीकृष्ण को बाँधने के प्रयास में थक कर चूर हो गईं । उनके पसीना आ गया और शीश की माला नीचे गिर पड़ी । तब माता को इतना श्रम करते देख कृष्ण को दया आ गई और वे रस्सी द्वारा बंधाएँ जाने के लिए राजी हो गए । कृष्ण माता यशोदा के घर में एक मानवी बालक की भाँति अपनी चुनी हुई लीलाएँ कर रहे थे । निस्संदेह श्रीभगवान् को अपने वश में कौन कर सकता है? शुद्ध भक्त भगवान् के चरणकमलों पर स्वयं को अर्पित कर देता हैं, चाहे वे उसकी रक्षा करें या उसे मिटा दें । किन्तु भक्त अपने शरणागत पद को कभी नहीं भूलता । इसी प्रकार भगवान्

भी अपने भक्त की रक्षा करने में दिव्य प्रसन्नता का अनुभव करते हैं । इसका प्रत्यक्ष उदाहरण कृष्ण द्वारा माता यशोदा के प्रति समर्पण है ।

कृष्ण अपने भक्तों के लिए सभी प्रकार की मुक्ति के दाता हैं । किन्तु उन्होंने यशोदा को जो वरदान दिया उसका अनुभव ब्रह्माजी, शिवजी या लक्ष्मी देवी तक को कभी नहीं हो पाया ।

श्रीभगवान्, जो नन्द महाराज तथा यशोदा के पुत्र रूप में विख्यात हैं, योगियों तथा चिन्तकों तक के लिए भी कभी पूर्णरूपेण ज्ञेय नहीं हैं, किन्तु भक्तों के लिए सहज सुलभ हैं । न ही वे योगियों तथा चिन्तकों द्वारा समस्त आनन्द के परम आगार के रूप में जाने जाते है ।

अपने पुत्र को बाँध देने के बाद यशोदा गृहकार्य में लग गईं । उस समय उलूख में बँधे हुए कृष्ण ने अपने समक्ष वृक्षों की एक जोड़ी (यमल) देखी जिन्हें अर्जुन वृक्ष कहा जाता था । अतः परम आनन्दकन्द भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मन में विचार किया, "पहले मेरी माता ने मुझे पीने को पर्याप्त दूध नहीं दिया था जिससे मैंने दही की मटकी तोड़ दी थी और सारा मक्खन बन्दरों को बाँट दिया था । अब उन्होंने मुझे काष्ट के उलूख से बाँध दिया हैं । अतः मुझे पहले से अधिक शैतानी कार्य (उपद्रव) करना चाहिए ।" अतः उन्होंने अत्यन्त ऊँचे अर्जुन वृक्षों की जोड़ी को धराशायी करने का विचार किया ।अर्जुन वृक्षों की इस जोड़ी के पीछे एक इतिहास हैं अपने पूर्वजन्म में ये वृक्ष कुबेर के पुत्र-रूप में मानव शरीर धारण करके उत्पन्न हुए थे और इनके नाम नलकूवर तथा मणिग्रीव थे । सौभाग्यवश इन पर भगवान् की दृष्टि पड़ी । अपने पूर्वजन्म में इन्हें नारद ऋषि ने शाप दिया था, क्योंकि ये मद में चूर होकर अपना कर्तव्य भूल गए थे । किन्तु नारद

मुनि ने शाप के साथ यह वर भी दिया था कि कृष्ण भगवान् के दर्शन प्राप्त करने से उनका उद्धार हो सकेगा । यह कथा अगले अध्याय में दी गई है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " माता यशोदा द्वारा कृष्ण का बाँधा जाना " नामक नवमें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 10
नलकूवर तथा मणिग्रीव का उद्धार

यहाँ पर नलकूवर तथा मणिग्रीव के शापित होने और नारद ऋषि की परमेच्छा से उनके कृष्ण द्वारा उद्धार की कथा का वर्णन किया गया है ।

नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक दोनों महान् देवता भगवान् शिव के परम भक्त एवं देवताओं के कोषपाल कुवेर के पुत्र थे । भगवान् शिव की कृपा से कुवेर के भौतिक ऐश्वर्य का वारापार न था । जिस तरह धनी व्यक्ति के पुत्र प्रायः मदिरा तथा कामिनियों के प्रति आसक्त हो जाते हैं उसी तरह कुवेर के ये दोनों पुत्र भी मदिरा तथा मैथुन के शिकार थे । एक बार ये दोनों सुखोपभोग की इच्छा से मन्दाकिनी गंगा के तट पर स्थित कैलाश प्रान्त में भगवान् शिव के उद्यान में प्रविष्ट हुए । वहाँ मदिरापान करके उस सुगन्धित पुष्पों वाले उद्यान में वे साथ में गई हुई सुन्दरियों का मधुर संगीत सुनने में लीन हो गये । उसी मत्त अवस्था में ही वे दोनों कमल पुष्पों से युक्त गंगा के जल में घुस कर युवतियों के साथ इस तरह आनन्द लूटने लगे जैसे हाथी जल के भीतर हथिनियों के साथ करता है ।

जब वे इस प्रकार जलक्रीड़ा का आनन्द लूट रहे थें, तो उधर से सहसा नारद मुनि का आगमन हुआ । वे समझ गये कि नलकूवर तथा मणिग्रीव दोनों देवता इतने मदोन्मत्त हैं कि वे दोनों उन्हें आते भी न देख पाएँ । युवतियाँ देवताओं जितनी मदोन्मत्त न थीं, और वे नग्न होने के कारण नारद मुनि के समक्ष परम लज्जित हुईं और जल्दी में अपना-अपना शरीर ढकने लगीं । कुवेर के दोनों देव-पुत्र इतने मदान्ध थे कि उन्होंने नारद की उपस्थिति की परवाह न की, अतः वे अपने शरीरों को आच्छादित नहीं कर पाये । जब नारद ने देखा कि ये दोनों मदिरा के कारण इतने पतित हो गये हैं, तो उनके कल्याण की इच्छा से उन्होंने उन्हें शाप देकर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित की ।

चूँकि ऋषि उन पर दयालु थें, अतः वे चाहते थे कि इनका मदिरापान तथा तरुणियों की संगति का मिथ्या सुख छूट जाये और वे कृष्ण का साक्षात् दर्शन प्राप्त कर सकें, अतः उन्होंने शाप देने की सोची । उन्होंने कहा कि भौतिक सुख के प्रति आकर्षण का कारण रजोगुण की वृद्धि है । भौतिक जगत में, जब मनुष्य को धन तथा वैभव का लाभ होता है, तो उसे सामान्य रूप से तीन वस्तुओं की लत पड़ जाती है ।- नशा, मैथुन तथा द्यूतक्रीड़ा । ऐश्वर्यवान् मनुष्य सम्पत्ति एकत्र हो जाने के कारण गर्वित हो उठने से इतने निर्दय हो जाते हैं कि उनकी मृत्यु कभी नहीं होनी हैं । ऐसे मूर्ख व्यक्ति प्राकृतिक नियमों को भूल कर देह-वासना में लिप्त हो जाते है । वे भूल जाते है कि भौतिक शरीर, चाहे मनुष्य सभ्यता में उन्नत होकर देवताओं के पद को भी क्यों न प्राप्त हो जाए, अन्त में जलकर राख हो जाएगा । और जब तक कोई जीवित रहता है, तब तक शरीर की बाह्म दशा चाहे जैसी हो भीतर केवल मल, मूत्र तथा विविध प्रकार के कीड़े भरे रहते है । इस प्रकार अन्य जीवों के साथ ईर्ष्या तथा हिंसा में प्रवृत्त रह कर भौतिकवादी कभी जीवन के चरम-लक्ष्य को नहीं समझ पाता और जीवन-लक्ष्य को जाने बिना अगले जन्म में नरक की

ओर बढ़ता जाता है । अगले जन्म में ऐसे मूर्ख पुरुष इस नश्वर देह के कारण सभी प्रकार के पापकर्म करते हैं और वे यह भी नहीं सोच पाते कि यह शरीर वास्तव में उनका है भी कि नहीं । सामान्यतया यह कहा जाता है कि जो शरीर को पालता है शरीर उसी का होता है । अतः मनुष्य को यह समझना चाहिए । कि यह शरीर स्वयं उसी का है या उस स्वामी का है, जिसकी वह सेवा करता है । दासों का स्वामी अपने दासों पर पूर्ण स्वामित्व जताता हैं, क्योंकि वही उनको भोजन प्रदान करता है । तब यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि क्या यह शरीर उस पिता का है, जो इस शरीर का बीजदाता है या कि माता का है, जिसने अपने गर्भ में बालक के शरीर को विकसित किया?

मूर्ख लोग आत्मा और देह को एक मानने की भ्रान्ति के कारण सभी प्रकार के पाप करते रहते हैं । किन्तु मनुष्य को इतना बुद्धिमान तो होना ही चाहिए कि वह समझ सकें कि यह शरीर किसका है । मूर्ख व्यक्ति अपने शरीर-पालन के लिए अन्य पशुओं का वध करता हैं, किन्तु वह यह विचार नहीं करता कि यह शरीर उसका है, या उसके पिता का, या माता अथवा नाना का है । कभी-कभी या पिता अपनी पुत्री को किसी ऐसे व्यक्ति को दे देता हैं, जिससे वह पुत्री के पुत्र (नाती) को अपने पुत्र रूप में पुनः प्राप्त कर सके । यह शरीर ऐसे बलवान व्यक्ति का भी हो सकता है, जो उससे जबरन कार्य करा ले । कभी-कभी दास का शरीर किसी स्वामी को बेच दिया जाता है और उस दिन से उसका शरीर स्वामी का हो जाता है । और जीवन के अन्त में वही शरीर अग्नि का हो जाता है । क्योंकि शरीर अग्नि को समर्पित कर दिया जाता है और वह जल कर क्षार हो जाता है । अथवा यह शरीर सड़क पर फेंक दिया जाता है, जिससे उसे कुत्ते या गीध खा जाये ।

शरीर पालन के लिए सब प्रकार के पाप करने के पूर्व मनुष्य को यह जान लेना चाहिए कि यह शरीर किसका है । अन्ततोगत्वा यही

निष्कर्ष निकलता है । कि शरीर भौतिक प्रकृति का प्रतिफल है और अन्त में यह प्रकृति में ही मिल जाता हैं, अतः निष्कर्ष यही निकलता है कि शरीर प्रकृति का ही है । मनुष्य को भूल कर भी यह नहीं सोचना चाहिए कि यह शरीर किसका है । झूठा स्वत्व जताने के लिए भला मनुष्य हत्या में क्यों प्रवृत्त हो? शरीर पालन के लिए वह निर्दोष पशुओं का वध क्यों करें?

जब मनुष्य ऐश्वर्य की झूठी प्रतिष्ठा में पागल होता है, तो वह किसी प्रकार के नैतिक उपदेश की परवाह न करके मदिरा, प्रमदा तथा पशु-वध में प्रवृत्त हो जाता है । ऐसी स्थिति में गरीबी का मारा पुरुष ज्यादा अच्छा होता है क्योंकि गरीब व्यक्ति अपने आपको अन्य जीवों के परिप्रेक्ष्य में सोचता है । एक गरीब व्यक्ति प्रायः अन्य जीवों को हानि नहीं पहुँचाना चाहता, क्योंकि वह सरलता से समझ सकता है कि जब उसे कोई घाव पहुँचता है, तो उसे पीड़ा होती है । अतः नारद ऋषि ने सोचा कि चूँकि नलकूवर तथा मणिग्रीव नामक दोनों झूठी प्रतिष्ठा से अन्धे हैं अतः उन्हें ऐश्वर्यविहीन अवस्था में रख दिया जाए ।

जा तन लागे सोइ तन जाने - एक बुद्धिमान गरीबी की हालत में रहकर कभी नहीं चाहता कि अन्य कोई इस अवस्था को प्राप्त हों । सामान्य रूप से यह देखा जाता है कि जो गरीबी से उठकर धनी बनता है, वह जीवन के अन्त में कोई-न-कोई दातव्य संस्था बना जाता है, जिससे अन्य गरीब लोग लाभान्वित हो सकें । संक्षेप में एक दयावान व्यक्ति अन्यों के सुख तथा दुख के प्रति सहानुभूति रखता है । गरीब व्यक्ति गर्व से बहुत कम ही फूलता हैं- प्रायः वह सारे उन्माद से रहित होता है । ईश्वर की कृपा से उसे जो कुछ भी अपने निर्वाह के लिए मिल जाता हैं, उसी से वह सन्तुष्ट रहता है ।

गरीबी की अवस्था में रहते जाना एक प्रकार की तपस्या है । अतः वैदिक संस्कृति के अनुसार ब्राह्मण लोग भौतिक ऐश्वर्य की झूठी प्रतिष्ठा

से बचे रहने के लिए प्रायः गरीब बने रहता चाहते हैं । भौतिक सम्पन्नता में उन्नति होने से झूठी प्रतिष्ठा आध्यात्मिक उत्थान के लिए सबसे बड़ा अवरोध है । गरीबी का मारा व्यक्ति अधिकाधिक उत्थान के लिए सबसे बड़ा अवरोध है । गरीबी का मारा व्यक्ति अधिकाधिक खा-खाकर जरूरत से ज्यादा मोटा नहीं बन सकता; और आवश्यकता से अधिक न खा सकने के कारण उसकी इन्द्रियाँ अत्यधिक चंचल नहीं रहतीं । जब इन्द्रियाँ अधिक चंचल नहीं होतीं, तो वह हिंसक भी नहीं बन सकता ।

गरीबी का दूसरा लाभ यह है कि साधु पुरुष किसी गरीब के घर में सरलता से प्रवेश कर सकता है और गरीब व्यक्ति साधु पुरुष की संगति का लाभ उठा सकता हे । अधिक ऐश्वर्यवान् व्यक्ति किसी को अपने घर में नही घुसने देता, अतः साधु पुरुष उसके घर में नहीं जा सकता । वैदिक पद्धति के अनुसार साधु पुरुष एक संन्यासी का स्थान ले लेता है, अतः गृहस्थ जो गृहकार्यों में व्यस्त रहने के कारण आध्यात्मिक उन्नति के विषय में सामान्यतः सब कुछ भूला रहता है, साधु पुरुष की संगति से लाभ उठा सकता है । साधु की संगति द्वारा एक गरीब मनुष्य को मुक्त होने के लिए काफी अवसर मिलता रहता है । यदि लोग साधु पुरुषों तथा भगवद्भक्तों की संगति से वंचित रह कर भौतिक ऐश्वर्य तथा झूठी प्रतिष्ठा से फूले रहें, तो इससे क्या लाभ?

तत्पश्चात् नारद ऋषि ने सोचा कि यह उनका धर्म है कि इन देवताओं को वे ऐसी स्थिति में पहुँचा दें जहाँ वे भौतिक ऐश्वर्य तथा प्रतिष्ठा से झूठे ही गर्वित न हों । नारद दयालु थे और वे उन्हें पतित जीवन से उबारना चाह रहे थे । किन्तु वे तमोगुणी थे और अपनी इन्द्रियों को वश में न रख सकने के कारण विषयी जीवन के प्रति लिप्त थें । उन्हें इस गर्हित अवस्था से बचाना नारद जैसे साधु पुरुष का कर्तव्य था । पशु जीवन में पशु को इतना ज्ञान नहीं होता कि वह नंगा है । किन्तु कुवेर तो देवताओं का कोषपाल था और एक अत्यन्त उत्तरदायी पुरुष और नलकूवर तथा

मणिग्रीव दोनों उसके पुत्र थें । तो भी वे ऐसे पशुवत् एवं लापरवाह हो गये थे कि मदोन्मत होकर वे यह न समझ पाये कि वे नंगे हैं । अधोभाग को वस्त्र से ढके रहना मानवीय सभ्यता का नियम है और जब मनुष्य या स्त्रियाँ इस नियम को भूल जाते है, तो वे पशुओं से बेहतर नहीं रह जाते । अतः नारद ने सोचा कि उनके लिए सबसे उत्तम दण्ड यही होगा कि उन्हें जड़ जीव या वृक्ष बना दिया जाय । वृक्ष स्वभाव से जड़ (अचर) होते हैं । यद्यपि वृक्ष तमोगुण से आच्छादित होते हैं, किन्तु वे कोई हानि नहीं पहुँचा सकते । नारदमुनि ने सोचा कि इनके लिए उपयुक्त यही होगा कि ये दोनों भाई मेरी कृपा से वृक्ष बन जाँए, किन्तु उनमें इतनी स्मृति बनी रहे जिससे वे जान सकें कि उन्हें क्यों दण्डित किया जा रहा है । शरीर बदल जाने पर जीवात्मा सामान्य रूप से अपने पूर्व जीवन को भूल जाता है किन्तु विशेष परिस्थितियों में, ईश्वर की कृपा होने पर, वह स्मरण रख सकता है, जैसाकि नलकूवर तथा मणिग्रीव के साथ हुआ ।

अतः नारद मुनि ने विचार किया कि इन दोनों देवों का देवताओं के एक सौ वर्ष तक वृक्षों के रूप में क्यों न रहने दूँ और इसके बाद भगवान् की अहैतुकी कृपा से इन्हें भगवान् के साक्षात् दर्शन हो सकेंगे । इस प्रकार वे पुनः देवताओं का तथा भगवद्भक्तों का जीवन प्राप्त कर सकेंगे ।

इसके बाद ऋषि नारद अपने धाम नारायण आश्रम को लौट आये और वे दोनों देवता वृक्ष में परिणत हो गये जिनका नाम यमलार्जुन पड़ा । इन दोनों देवताओं पर नारद की अहैतुकी कृपा हुई थी जिससे वे नन्द के आँगन में उग सके और भगवान् कृष्ण का साक्षात् दर्शन कर सकें ।

यद्यपि बालक कृष्ण काष्ठ की उलूख में बँधे थे, किन्तु वे अपने परम भक्त नारद की भविष्यवाणी को पूरा करने के लिए यमल वृक्षों की ओर बढ़ते गये । भगवान् कृष्ण को ज्ञात था कि नारद उनके परम भक्त है और उनके समक्ष खड़े यमलार्जुन वृक्ष वास्तव में कुवेर के पुत्र हैं । उन्होंने

सोचा, अब मुझे अपने परम भक्त नारद के वचनों को पूरा करना चाहिए । अतः वे इन दोनों वृक्षों के बीच के मार्ग से आगे निकल गये, किन्तु काष्ठ का ऊखल पड़ा होने के कारण दोनों वृक्षों के बीच फँस गया । इस अवसर का लाभ उठाकर श्रीकृष्ण उलूख से बँधी रस्सी को जोर से खींचते रहे । ज्योंही उन्होंने बल लगा कर रस्सी खींची त्योंही दोनों वृक्ष धड़ तथा शाखाओं समेंत धम्म से पृथ्वी पर गिर पड़े । इन गिरे टूटे वृक्षों में से अग्नि के समान प्रज्जवलित दो महापुरुष प्रकट हुए । उनकी उपस्थिति से सारी दिशाएँ । प्रकाशित हो उठीं । वे दोनों विशुद्ध पुरुष बालक कृष्ण के समक्ष उपस्थित हुए और प्रणाम करने के लिए झुक कर इस प्रकार स्तुति करने -- हे कृष्ण! आप आदि भगवान् तथा योगेश्वर हैं । विद्वान ब्राह्मण जानते है कि यह दृश्य जगत आपकी उन शक्तियों का विस्तार हैं, जो कभी प्रकट होती हैं और कभी अप्रकट होती है । आप समस्त प्राणियों के जीवन, शरीर तथा इन्द्रियों के आदि दाता है । आप शाश्वत ईश्वर भगवान् विष्णु हैं, जो सर्वव्यापी हैं तथा प्रत्येक वस्तु के शाश्वत नियामक और नित्य काल है । आप इस दृश्य जगत के मूल स्रोत हैं, जो प्रकृति के तीन गुणों सत्त्व, रज तथा तमस् के अधीन कार्य कर रहा हैं । आप नाना रूपधारी प्राणियों में परमात्मा रूप में निवास करते हैं और आप भलीभाँति जानते हैं, कि उनके शरीरों तथा मनों के भीतर क्या हो रहा है । अतः आप समस्त जीवात्माओं से समस्त कार्यों के श्रेष्ठ निदेशक है । यद्यपि आप माया के गुणों के वशीभूत वस्तुओं के बीच रहते हैं, किन्तु आप ऐसे कलुषित गुणों से प्रभावित नहीं होते । भौतिक गुणों के वशीभूत होकर कोई भी आपके दिव्य गुणों को नहीं समझ सकता, क्योंकि वे सृष्टि की उत्पत्ति के पहले से विद्यमान थे, अतः आप परब्रह्म कहलाते हैं, जो अपनी अंतरंगा शक्तियों के कारण महिमामण्डित हैं ।

हे भगवान् वासुदेव! हम आपके चरणकमलों में सादर नमस्कार करते हैं । इस संसार में आप अपने नाना अवतारों के द्वारा ही जाने जाते

हैं । यद्यपि आप विभिन्न शरीर धारण करते रहते हैं, किन्तु ये शरीर इस भौतिक सृष्टि के अंगस्वरूप नहीं होते । ये शरीर असीम ऐश्वर्य, बल, सौंदर्य, यश, बुद्धि तथा त्याग की दिव्य शक्तियों से पूरित रहते है । इस संसार में शरी ति शरीरी में अन्तर होता हैं किन्तु आप अपने मूल आध्यात्मिक शरीर में प्रकट होते रहते हैं, अतः आपके लिए ऐसा भेद नहीं रहता । जब आप प्रकट होते हैं, तो आपके असामान्य कार्य सूचित करते हैं कि आप श्री भगवान् हैं । ऐसे असामान्य कार्य करना इस जगत में रहने वाले किसी भी प्राणी के लिए सम्भव नहीं । आप परम भगवान् जीवों के जन्म, मृत्यु तथा मुक्ति के कारण हैं और आप अपने सभी अंशो से पूर्ण हैं । आप किसी को कोई भी वर दे सकते हैं । हे भगवान्! के भाग्य तथा कल्याण के कारणस्वरूप! हम आपको सादर नमस्कार करते हैं । आप सर्वव्यापी, शान्तिदाता तथा यदुवंश के परम पुरुष हैं । हे प्रभु! हमारे पिता कुवेर आपके दास हैं । इसी तरह, ऋषि नारद भी आपके सेवक हैं और यह उन्हीं की कृपा है । कि हमें आपके साक्षात् दर्शन हो सके है । अतः हम प्रार्थना करते हैं कि हम आपकी ही महिमा का कथन करते तथा आपके दिव्य कार्यकलापों का श्रवण करते हुए आपकी दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगे रहें । हमारें हाथ तथा अन्य अंग आपकी सेवा में रत रहें और हमारें मन आपके चरणकमलों में केन्द्रित रहें और हमारे सिर आपके सर्वव्यापक विराट स्वरूप के समक्ष सदा नत रहें ।

जब नलकूवर तथा मणिग्रीव ने अपनी स्तुति समाप्त की तो गोकुलाधीश बालकृष्ण, जो यशोदा द्वारा ऊलूख से बाँधे गये थे, हँसे और बोले, यह मुझे पहले से ज्ञात था कि मेरे प्रिय भक्त नारद ने तुम दोनों को देवकुल के अद्वितीय सौन्दर्य तथा ऐश्वर्य के कारण उत्पन्न गर्व की गर्हित स्थिति से उबारने के लिए अहैतुकी दया प्रदर्शित की है । उन्होंने तुम्हें नरम में जाने से बचाया है । ये सारी बातें मुझे पहले से ज्ञात हैं तुम लोग भाग्यशाली हो कि उन्होंने न केवल तुम्हें शाप दिया अपितु तुम दोनों ने

उनके दर्शन भी किये । यदि कोई बद्धजीव संयोगवश नारद जैसे साधु पुरुष का साक्षात् दर्शन प्राप्त करता है ।, जो सदैव गम्भीर और सब पर दयालु रहते हैं, तो वह तुरन्त ही मुक्त हो जाता है । यह तो वेसा ही हुआ जैसे कोई सूर्य के पूर्ण प्रकाश में हो - तब किसी प्रकार का दृष्टि-व्यवधान नहीं हो सकतीं । अतः हे नलकूवर तथा मणिग्रीव! अत तुम्हारा जीवन सफल हो गया है, क्योंकि तुम्हारे हृदय में मेरे प्रति उत्कृष्ट प्रेम उत्पन्न हो चुका है । इस संसार में यह तुम्हारा अन्तिम जन्म है । अब तुम अपने पिता के धाम स्वर्गलोक को जा सकते हो और भक्ति करते रहने के कारण तुम इसी जीवन में मुक्त हो सकोंगें ।

इसके पश्चात् उन दोनों ने भगवान् की कई परिक्रमाएँ कीं और पुनः पुनः प्रणाम करके वे वहाँ से चले गए । और भगवान् उसी प्रकार उखल से बँधे वहीं पर रहें ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " नलकूवर तथा मणिग्रीव का उद्धार " नामक दसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 12
अघासुर वध

एक दिन प्रातः काल भगवान् कृष्ण ने ग्वालबालों सहित जंगल को जाने की इच्छा की जहाँ एकत्र होकर सब लोग एकसाथ कलेवा कर सकें । ज्योंही वे सोकर जगे, तो उन्होंने महिष सींग बजाया और अपने मित्रों को बुलाकर एकत्र किया । वे सब बछड़ों को आगे करके एक जलूस के रूप में जंगल के लिए रवाना हुए । इस प्रकार कृष्ण ने अपने हजारों ग्वाल मित्र एकत्र कर लिए । उनमें से हर एक एक छड़ी, बाँसुरी, सींग तथा कलेऊ का झोला लिये था और उनमें से प्रत्येंक हजारों बछड़ों की

रखवाली कर रहा था । उस पर्यटन से सभी बालक अत्यन्त प्रमुदित प्रतीत हो रहे थे । उनमें से हर एक अपने-अपने बछड़ों के प्रति चौकन्ना था जब वे उन्हें जंगल के विभिन्न भागों में चरा रहे थे । लड़के सभी तरह के स्वर्ण आभूषणों से अलंकृत थे और क्रीड़ा करने के बहाने वे फूल, पत्तियाँ, डालें, मोर पंख तथा विभिन्न स्थानों से गेरू एकत्र करने लगे और विविध प्रकार से अपने आपकों आभूषित करने लग । जंगल में जाते हुए बालक एक दूसरे का कलेवा चुराकर तीसरे के पास पहुँचा देते और जब वह बालक, जिसका कलेऊ चोरी गया होता, यह जान जाता, तो वह वापस पाने का प्रयत्न करता । किन्त् तब तक वह लड़का दूसरे के पास उसे फेंक देता । बच्चों के बीच इस प्रकार का खेलवाड़ बाल-लीलाओं के रूप में चलता रहता ।

जब भगवान् कृष्ण कोई सुन्दर दृश्य देखने के बहाने आगे दूर चले जाते, तो उनके पीछे के लड़के दौड़कर उन्हें छूने कके लिए प्रयत्नशील होते और इस तरह भारी होड़ लग जाती । एक कहता, मै कृष्ण को पहिले छूऊँगा, । तब तक दूसरा कहता, अरे! तुम नहीं जा सकते । कृष्ण को पहले मैं छूऊँगा । कुछ अपनी बंशी बजाते और कुछ महिष-सींग द्वारा नाद उत्पन्न करते । उनमें से कुछ प्रसन्नतापूर्वक मोरों का पीछा करने लगें और कुछ कोयल की बोली का अनुकरण करने लगे । कुछ लड़कें आकाश में उड़तें पक्षियो की पृथ्वी पर पड़ रही छाया का अनुसरण करते हुए उसके साथ-साथ चलने लगे । कुछ बन्दरों के पास जाकर उनकी बगल में चुपके बैठ गये और कुछेक मोर-नृत्य कर अनुकरण करने लगे । कुछ बन्दरों की पूछ पकड़ कर उनके साथ खेलते और जब बन्दर वृक्षों पर कूदते तो बच्चें भी उनका अनुकरण करते । जब कोई बन्दर अपना चेहरा और अपने दान्त दिखाते, तो कोई लड़का उसकी नकल करके उसे भी अपने दान्त दिखाता । कुछ लड़के यमुना-तट पर मेंढकों से खेलते और जब मेंढक डर के मारे पानी में कूद जाते

। तो वे भी उनके पीछे डुबकी लगाते, और जब वे पानी में अपनी ही परछाईं देखते, तो पानी के बाहर निकल आते, खड़े होकर अनुकरण कतरे, व्यंग्य करते और हँसते । वे सूखें कुएँ के पास जाकर जोर से शब्द करते और जब प्रतिध्वनि आती, तो वे गाली देकर हँसते ।

जैसाकि भगवान् ने स्वयं भगवद्गीता में कहा है अध्यात्मवादी उन्हें ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् के रूप में अनुपात में अनुभव करते हैं । यहाँ पर इसी कि नकी पुष्टि में भगवान् कृष्ण, जो अपने शरीर-तेज से निर्विशेषवादियों को ब्रह्म-साक्षात्कार कराते हैं, भगवान् के रूप में अपने भक्तों को भी आनन्द प्रदान करते हैं । जो लोग माया के वाश में हैं, वे उन्हें केवल सुन्दर बालक समझते हैं । फिर भी, उन्होंने अपने साथ खेलने वाले ग्वालों को पूर्ण दिव्य आनन्द प्रदान किया । पुण्यों के संचित होने पर ही वे ग्वालबाल भगवान् की संगति करने का लाभ उठा पाये । भला वृन्दावनवासियों के दिव्य भाग्य का अनुमान कौन लगा सकता हैं? वे उन भगवानफ को साक्षात् अपने सम्मुख देख रहे थे जिन्हें अनेक योगी कठिन तपस्या करके भी प्राप्त नहीं कर पाते, यद्यपि वे प्रत्येक हृदय में विराजमान हैं । ब्रह्म-संहिता में भी इसकी पुष्टि हुई है । भले ही कोई कृष्ण की खोज में वेदों तथा उपनिषदों के पन्ने पलटता रहे, किन्तु उन्हें वहाँ खोज पाना कठिन होता है । यदि उसे किसी भक्त की संगति करने का सुयोग प्राप्त हो जाता है, तो वह भगवान् को साक्षात् देख सकता हैं । पूर्वजन्मों में पुण्यों को संचित करते रहने से ग्वालाल कृष्ण को साक्षात् देख रहे थे और मित्र रूप में उनके साथ खेल रहे थे । वे यह कभी नहीं जान पाये कि कृष्ण श्रीभगवान् हैं, अपितु वे उनके प्रति प्रगाढ़ प्रेम के कारण उनके साथ घनिष्ठ गित्र के रूप में खेल रहे थे ।

जब भगवान् कृष्ण इस प्रकार अपने बाल-संगियों के साथ अपनी बाल-लीलाओं का आनन्द ले रहे थे, तो अघासुर नामक एक असुर अत्यन्त आतुर हो उठा । वह कृष्ण को सहर्ष खेलते न देख सका, अतः उन्हें मार

डालने के विचार से वह बालकों के सक्ष प्रकट हुआ । यह अघासुर इतना घातक था कि इससे स्वर्ग के निवासी तक भयभीत रहते थे । यद्यपि स्वर्ग के निवासी नित्य ही दीर्घायु बनने के लिए अमृतपान करते, किन्तु वास्तविकता तो यह है कि उन्हें अपनी अमरता पर विश्वास न था । दूसरी ओर, कृष्ण के साथ खेलने वाले ग्वालबालों को असुरों का भय न था । वे भय से मुक्त थे । मृत्यु से रक्षा करने के सारे भौतिक प्रबन्ध अनिश्चित होते हैं, किन्तु यदि कोई कृष्णभावनाभावित हो, तो उसकी अमरता निश्चित है ।

यह अघासुर कृष्ण तथा उनके साथियों के समक्ष प्रकट हुआ । वह पूतना तथा बकासुर का छोटा भाई था । उसने विचार किया, इस कृष्ण ने मेरे भाई तथा मेरी बहन का बध किया है । अब मैं इसे इसके साथियों तथा बछड़ों सहित मार डालूँगा । अघासुर कंस द्वारा प्रेरित किया गया था, अतः वह दृढ़संकल्प होकर आया था । अघासुर सोचने लगा कि जब वह अपने भाई तथा बहन की स्मृति में अन्न तथा जल की अंजलि (पिण्डदान) देगा और ग्वालबालों समेत कृष्ण को मार देगा, तो वृन्दावन केसमस्त वासी स्वतः मर जाते हैं । सामान्यतया गृहस्थों के जीवनाधार उनके बच्चें ही होते है । जब सारे बच्चें मर जाएँगे, तो स्वाभाविक है कि उनके प्रेमवश उनके माता-पिता भी मर जाएँ

इस प्रकार वृन्दावन के समस्त वासियों का वध करने का निश्यच करके अघासुर ने महिमा नामक योगसिद्धि के द्वारा अपने शरीर का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया । सामान्यतया सारे असुर सभी प्रकार योगशक्तियाँ अर्जित करने में पटु होते हैं । योग पद्धति में महिमा-सिद्धि द्वारा मनुष्य इच्छानुसार अपना विस्तार कर सकता हैं । अघासुर ने अपने आपको आठ मील तक फैला कर एक मोटे सर्प का रूप धारण किया । ऐसा आश्चर्यजनक शरीर प्राप्त करके उसने अपना मुँह पर्वत की गुफा के

समान खेल लिया और कृष्ण तथा बलराम समेत समस्त बालकों को तुरन्त निगल जाने की इच्छा से रास्ते पर बैठ गया ।

इस असुर ने भारी मोटे सर्प के रूप में अपने ओंठ पृथ्वी से आकाश तक फैला लिये । उसका निचला ओंठ बादलों को छू रहा था । उसके जबड़े एक विशाल अन्तहीन पर्वत की मृफा जैसे लग रहे थे और उसके दाँत पर्वत-शिखरों की भाँति प्रतीत हो रहे थे । उसकी जीभ राजमागर्र् जैसी लग रही थी और वह अंधड़ के समान साँस ले रहा था । उसकी आँखों से अग्नि निकल रहीथी । पहले तो बालकों ने समझा कि यह कोई मूर्ति हैं, किन्तु भलीभाँति देखने - परखने पर लगा कि यह कोई भारी सर्प हैं, जो मुँह फैलाकर मार्ग पर लेटा है । सारे बालक परस्पर बातें करने लगे कि यह मूर्ति तो किसी विशाल पशु की लगती है, जो इस प्रकार बैठा है मानों हम सबकों निगल जाना चाहता है । जरा देखों न - कहीं यह बड़ा-सा सर्प तो नहीं हैं, जसने हम सबों को खा जाने के लिए अपना मुँह फैला रखा हों?

उनमें से एक बोला, हाँ, तुम्हारा कहना ठीक हैं । इस जानवर का ऊपरी ओंठ सूर्चप्रकाश जैसा प्रतीत होता हैं और इसका निचला ओंठ भूमि पर लाल-लाल सूर्य प्रकाश के प्रतिबिम्ब जैसा लगता है । मित्रो! इस जानवर में मुँह की दाईं और बाईं ओर तो देखों । इसका मुँह एक विशाल पर्वत-गुफा जैसा लग रहा है और इसकी ऊँचाई का कोई उनमान नहीं लगाया जा सकता । इसकी ठुड्डी पर्वत शिखर की भाँति उठी हुई हैं । यह लम्वा-सा राजमार्ग उसकी जीभ लगता है । और इसके मुँह के भीतर वैसा ही अंधकार है जैसाकि पर्वत-गुफा के भीतर होता

है । यह गर्म हवा, जो अंधड़ जैसी बह रही है, उसका श्वास है और उसके मुख से निकलने वाली सड़ी मछली जैसजी दुर्गंध उसकी आँतों की गंध है ।

फिर उन सबों ने परस्पर मंत्रणा की, यदि हम सभी इस विशाल सर्प के मुँह में एकसाथ प्रवेश कर चलें, तो भला यह हम सबको कैसे निगल पाएगा? और यदि हम सबों एक साथ निगल भी जाए तो कृष्ण को कैसे निगल पाएगा? कृष्ण इसे तुरन्त मार डालेंगे, जैसा कि उन्होंने बकासुर को किया था। इस प्रकार बातें करते हुए उन्होंने कृष्ण के कमल के समान सुन्दर मुख को देखा और ताली बजा-बजा कर हँसने लगे। इस तरह वे आगे बढ़े और उस भीमकाय सर्प के मुँह में घुस गए।

इसी बीच प्रत्येंक के हृदय में परमात्मा रूप में वास करने वाले कृष्ण समझ गये कि यह मूर्ति जैसी आकृति कोई असुर है। किन्तु ग्वालबाल इसे नही जानते थें। और अभी कृष्ण योजना बना ही रहे थे कि अपने अन्तरंग मित्रों को विनास से कैसे बचाया जाए कि सारे बालक अपने बछड़ों समेत सर्प के मुँह के भीतर प्रविष्ट हो गए। किन्तु कृष्ण नहीं गए। वह असुर कृष्ण के प्रवेश की प्रतीक्षा कर रहा था और सोच रहा था, मेरे भाई तथा बहन को मारने वाले कृष्ण के अतिरिक्त सभी प्रवेश कर चुके हैं।

कृष्ण प्रत्येक व्यक्ति की सुरक्षा के आश्वासन हैं। किन्तु जब उन्होंने देखा कि उनके सारे मित्र उनके हाथ से निकल कर इस विशाल सर्प के उदर में जा चुके हें तो वे एक क्षण के लिए शोकाकुल हो उठे। उन्हें आश्चर्य भी हुआ कि माया कितने विचित्र ढंग से कार्य करती है। फिर वे विचार करने लगे कि इस असुर का किस प्रकार वध किया जाए और बालकों तथा बछड़ों को कैसे बचाया जाये? यद्यपि कृष्ण को इसके लिए चिन्तित होने का कोई कारण न था, किन्तु वे इस तरह सोच रहे थें। अन्त में कुछ सोच-विचार के बाद वे भी असुर के मुँह के भीतर प्रविष्ट हो गए। जब कृष्ण भतीर चले गये, तो सारे देवता , जो तमाशा देखने के लिए बादलों के पीछे छिपे थे, हाय-हाय करके अपने भाव प्रकट करने लगे। उस समय, अघासुर के सारे मित्र, विशेषतया कंस, जो मांस तथा रक्त

का भोजन करने के आदी थे, यह सोच कर कि कृष्ण असुर के मुँह के भीतर चले गये हैं, प्रसन्नता व्यक्त करने लगे ।

जब यह असुर कृष्ण तथा उसके साथियों को चकना-चूर करने का ्रपयास कर रहा था, उसी समय कृष्ण ने देवताओं का हाय-हाय करते सुना । उन्होंने तुरन्त ही असुर के गले के भीतर अपने आप को विस्तारित करना प्रारम्भ किया । यद्यपि असुर का शरीर विराट था, किन्तु कृष्ण के विस्तार के कारण उसका गला रुद्ध होने लगा । उसकी बड़ी-बड़ी आँखें तीव्रता से घूमने लगीं और तुरन्त ही उसका दम घुटने लगा । उसकी प्राणवायु किसी भी छिद्र से बाहर न आ सकी पर अन्त में उसकी खोपड़ी के ऊपरी भाग के एक छेद से बाहर फूट निकली । इस प्रकार उसके प्राण निकल गये । असुर में मर जाने पर कृष्ण ने अपनी दिव्य दृष्टि से ही सभी बालकों तथा बछड़ों को सचेत किया और उन सबों के साथ असुर के मुख से वे बाहर आ गये । जब कृष्ण अघासुर के मुँह में थे तभी असुर की आत्मा प्रज्ज्वलित प्रकाश की भाँति बाहर आ गई जिससे सभी दिशाएँ दीप्त हो उठीं और वह आत्मा आकाश में रुकी रही । ज्योंही कृष्ण ग्वालबालों तथा बछड़ों सहित उस असुर के मुँह से बाहर निकल आये, वह प्रज्ज्वलित तेज तुरन्त् ही देवताओं के देखते-देखते कृष्ण के शरीर में मिल गया ।

देवताओं ने अत्यधिक प्रसन्न होकर भगवान् पर फूलों की वर्षा की और उनकी पूजा की । स्वर्ग के निवासी प्रसन्नता से नाचने लगे और गंधर्वलोक के वासी विविध प्रकार की स्तुतियाँ करने लगे । वादक हर्ष से नगाड़े बजाने लगे । ब्राह्मण वेदों से स्तुतियाँ सुनानें लगें और भगवान् के सारे भक्त जय जय तथा भगवान् कृष्ण की जय शब्दों का उच्चारण करने लगें ।

जब ब्रह्मा ने सम्पूर्ण स्वर्गलोक में प्रतिध्वनित यह शुभ निनाद सुना, तो वे तुरन्त यह देखने के लिए नीचे उतरे कि क्या घटना घटी हैं । उन्होंने देखा कि असुर का वध हो चुका है । वे भगवान् श्रीकृष्ण की अलौकिक यशस्वी लीलाएँ देखकर चकित थे । उस असुर का विशाल मुँइ कई दिनों तक खुला रहा और धीरे-धीरे सुख गया । वह वहीं पर सभी ग्वालबालों के खिलवाड़ के लिए रह गया ।

जब अघासुर का वध हुआ, तो कृष्ण तथा उनके सारे संगी पाँच वर्ष से कम आयु के थे । पाँच वर्ष से कम आयु के बालक कुमार कहलाते हैं, पाँच से दस वर्ष के बालक पौगण्ड तथा दस से पन्द्रह वर्ष की आयु वाले बालक किशोर कहलाते हैं । पंन्द्रह वर्ष के बाद बालक तरुण या युवक कहलाते है । एक वर्ष तक व्रज ग्राम में अघासुर की घटना पर कोई चर्चा नहीं चली । किन्तु जब वे सब छह वर्ष के हो गए, तो उन्होंने इस घटना का उल्लेख आश्चर्यसहित अपने मात-पिता से किया ।

भगवान् श्रीकृष्ण जो ब्रह्मा जैसे देवताओं से भी महान् हैं । उनके लिए किसी को अपने नित्य शरीर के साथ तदाकार होने का अवसर प्रदान करना सहज हैं । उन्होंने अघासुर को ऐसा अवसर प्रदान किया । अघासुर निश्चय ही सबसे बड़ा पापी जीव था और पापी के लिए परम सत्य से तदाकार होना सम्भव नहीं होता । किन्तु इस विशिष्ट घटना में चूँकि कृष्ण अघासुर के शरीर के भीतर प्रविष्ट हुए थे, अतः यह असुर अपने समस्त पाप-कृत्यों से मुक्त हो गया । जो व्यक्ति विग्रह रूप में भगवान् का या मानसिक रूप में शाश्वत स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करते हैं, उन्हें ईश्वर का साम्राज्य रूपी दिव्य गन्तव्य प्राप्त करने तथा भगवान् के साहचर्य का अवसर प्राप्त होता है । अतः हम अघासुर जेसे किसी व्यक्ति के उच्च पद की कल्पाना कर सकते हैं, जिसके शरीर में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं प्रवेश किया था । ऋषि, ध्यानकर्ता तथा भक्तगण निरन्तर भगवान् के रूप को हृदय में धारण करते हैं या मन्दिरों में भगवान् के विग्रह स्वरूप का

दर्शन करते हैं । इस प्रकार वे समस्त् भौतिक कल्मष से मुक्त हो जाते हैं और शरीर का विनाश होने पर ईश्वर के धाम में प्रवेश करते हैं । यह सिद्धि तभी सम्भव है जब भगवान् के स्वरूप को मन के भीतर बनाये रखा जाए । किन्तु अघासुर के शरीर में तो भगवान् स्वयं प्रविष्ट हुए । अतः अघासुर का पद किसी सामान्य भक्त या बड़े योगी के पद से श्रेष्ठतर है ।

भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं के श्रवण में लीन महाराज परीक्षित (जिनको रक्षा कृष्ण ने उनकी माता के गर्भ में स्थित रहते समय की) उनके विषय में सुनने के लिए और भी उन्मुख हो गए । अतः उन्होंने उन शुकदेव गोस्वामी से प्रश्न किया, जो उन्हें श्रीमद्भागवत सुना रहे थे ।

राजा परीक्षित को यह जानकर कुछ विस्मय हुआ कि अघासुर-वध की चर्चा एक वर्ष तक नहीं चली जब तक कि सारे बालक पौगंड अवस्था को प्राप्त नहीं हो गए । महाराज परीक्षित इस घटना को जानने के लिए और भी उतसुक हुए, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि इसका सम्बन्ध कृष्ण की विविध शक्तियों की कार्यप्रणाली से था ।

सामान्य रूप से क्षत्रिय अथवा शासक वर्ग सदैव अपने राजनीतिक मामलों में व्यस्त रहते है । उन्हें भगवान् कृष्ण की दिव्य लीलाओं के श्रवण करने का बहुत कम अवसर प्राप्त हो पाता हैं । क्न्तु जब परीक्षित महाराज इन दिव्य लीलाओं का श्रवण कर रहे थे, तो उन्होंने इसे अपना परम सौभाग्य समझा, क्योंकि वे न केवल कृष्ण की लीलाओं को सुन रहे थे अपितु वे इन्हें परम पण्उित शुक्रदेव गोस्वामी से सुन रहे थे, जो श्रीमद्भागवतम् के महान अधिकारी थे । इस प्रकार महाराज परीक्षित द्वारा पूछे जाने पर शुक्रदेव गोस्वामी के श्रीकृष्ण के रूप, गुण, यश तथा साज-सम्मान सम्बन्धित दिव्य लीलाओं का वर्णन जारी रखा ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " अघासुर वध " नामक बारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 13
ब्रह्मा द्वारा बालकों तथा बछड़ों की चोरी

जब महाराज परीक्षित ने प्रश्न किया कि ग्वालों ने अघासुर की मृत्यु के पश्चात् एक वर्ष तक उसकी चर्चा क्यों नहीं की, तो शुक्रदेव गोस्वामी अत्यन्त प्रोत्साहित हुए । उन्होंने कहा, हे राजा! आप अपनी उत्सुकता के कारण कृष्ण की दिव्य लीलाओं को नवीनता प्रदान कर रहे हैं ।

कहा जाता है कि यह भक्त का स्वभाव है कि वह कृष्ण के विषय में श्रवण तथा कीर्तन करने में अपना मन, शक्ति, वाणी, कान सभी कुछ लगा देता है । यह कृष्णभावनामृत कहलात है और जो व्यक्ति कृष्ण के विषय में श्रवण तथा कीर्तन में लीन रहता है उसके लिए यह विषय कभी नीरस या बासी नहीं होता । भौतिक विषय तथा दिव्य विषय के मध्य यही अन्तर है कि भौतिक कथावस्तु बासी पड़ जाती हैं, और कोई भी एक ही विषय-वस्तु को दीर्घकाल तक सुनना नहीं चाहता । किन्तु जहाँ तक दिव्य कथावस्तु का सम्बन्ध है, यह तो नित्य नवनवायमान कहलाती है । इसका अर्थ यह हुआ कि कोई चाहे तो भगवान् के विषय में कितना भी कीर्तन तथा श्रवण करता रहे, किन्तु वह कभी थकता नहीं, अपितु वह अधिकाधिक सुनने के लिए उत्सुक रहता है ।

गुरु का कर्तव्य है कि वह अपने जिज्ञासु तथा निष्ठावान् शिष्य को सारी गुह्य कथावस्तु बता दे । इस प्रकार शुक्रदेव गोस्वामी यह बताने लगे कि अघासुर बध की चर्चा एक वर्ष तक क्यों नही चलाई गई । शुक्रदेव गोस्वामी ने राजा से कहा, अत इस रहस्य को सावधान होकर सुनो । भगवान् कृष्ण अपने मित्रों को अघासुर के मुख से निकाल कर और उस असुर का वध करके मित्रों सहित यमुना के तट पर आयें और उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया, मित्रों! देखो न, यह स्थान कलेवा करने तथा

यमुना के रेतीले तट पर खेलने के लिए कितना सुन्दर है । देखो न, जल में ये कमल-पुष्प किस प्रकार खिल रहे है और चतुर्दिक् अपनी सुगन्ध बिखेर रहे हैं । पक्षियों का कलरव और मोरों की केका वृक्षों की पत्तियों की सरसराहट से कमलकर ऐसी ध्वनि उत्पन्न करते हैं जिससे प्रतिध्वनि उत्पन्न होती है । इससे यहाँ के वृक्षों द्वारा उपस्थित सुन्दर दृश्यावली में श्रीवृद्धि होती है । चलो, हम सब यही कलेवा करें क्योंकि पहले ही काफी देर हो चुकी है और हमें भूख लगी है । बछड़ों को अपने निकट ही रहने दें और यमुना का जल पीने दें । जब तक हम कलेवा करते हैं तब तक ये बछड़ें भी इस स्थान पर उगी घास चरते रहेंगे ।

कृष्ण से इस प्रस्ताव को सुनकर सारे बालक अत्यन्त प्रसन्न हुए और बोले, निश्चय ही हम यहीं कलेवा करेंगे । तब उन्होंने बछड़ों को घास चरने के लिए छोड़ दिया । कृष्ण को बीच में बैठा कर सारे बालक उनके चारों ओर जमीन पर बैठ गये और घर से लाए अपने अपने भोजन की पोटली खोलने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण केन्द्र में बैठे थे और सभी बालक कृष्ण की ओर मुख करके बैठे थे । कृष्ण कमल के फूल मे मध्य भाग जैसे प्रतीत हो रहे थे और सारे ग्वालबाल उसकी पंखड़ियाँ लग रहे थे । सारे बालक फूल, पत्तियाँ तथा वृक्षों की छाल एकत्र कर करके उन्हें अपनी-अपनी पोटली के नीचे रखकर अथवा अपनी पोटली मे से ही कृष्ण के साथ-साथ कलेवा करने लगे । कलेवा करते हुए हर बालक कृष्ण के साथ अपना-अपना सम्बन्ध प्रदर्शित कर रहा था और वे सब परस्पर हँसी-ठट्ठा करके आनन्द लूट रहे थे । वे जब इस प्रकार मित्रों के साथ कलेवा करने का आनन्द उठा रहे थे, तो उन्होंने अपनी बाँसुरी अपने फेंट में और अपना महिष-सींग तथा अपनी लकुटी अपने सव्व की बाईं ओर धकेल दी । उन्होंने दही, मक्खन, चावल तथा फलों के खण्ड से तैयार किये गये भोजन को अपनी बाईं हथेली पर रखा जो उनके कमलदल जैसी अँगुलियों के पोरों के बीच से दिखाई पड़ रहा था । श्रीभगवान्, जो

समस्त महान यज्ञों के फल को स्वीकार करने वाले हैं, हँसते-हँसते वृन्दावन में अपने मित्रों के साथ कलेवे का आनन्द लूट रहे थे । यह दृश्य देवतागण आकाश से देख रहे थे । सारे बालक श्रीभगवान् के साथ दिव्य आनन्द का सुख भोग रहे थें ।

उसी समय, पास चरते हुए बछड़ें नई उगी घास के लालच में निकटवर्ती घने जंगल में चले गये और क्रमशः दृष्टि से ओझल हो गये । जब बालकों ने देखा कि बछड़ें उनके पास नहीं हैं, तो वे उनकी सुरक्षा के विषय में भयभीत हुए और तुरन्त ही कृष्ण कृष्ण कर कर चिल्ला उठे । कृष्ण साक्षात् भय के हन्ता हैं । प्रत्येंक व्यक्ति साक्षात् भय से भयभीत रहता है, किन्तु यही साक्षात भय कृष्ण से भरभीत रहता है । कृष्ण शब्द चिल्लाने से बच्चों का भय तुरन्त जाता रहा । अपने प्यार के कारण कृष्ण नही चाह रहे थे कि उनके मित्र कलेऊ का आनन्द त्याग कर बछड़ों की खोज करने जाए । अतः उन्होंने कहा, मेरे मित्रों! तुम्हें अपना कलेवा छोड़नें की आवश्यकता नहीं है । इसका आनन्द उठाते रहो । मैं स्वयं जाकर देखता हूँ कि बछड़े कहाँ हैं । इस प्रकार भगवान् कृष्ण अपने बाएँ हाथ में केलवा का टुकड़ा लिए हुए तुरन्त की बछड़ों को गुफाओं तथा झाड़ियों में खोजने के लिए चल पड़े । उन्होंने पर्वत की दरारों तथा जंगलों में खोज की, किन्तु वे बछड़े कहीं न मिल पायें ।

जिस समय अघासुर का वध हुआ था और देवता इस घटना को अत्यन्त विस्मय के साथ देख रहे थे उसी समय विष्णु की नाभि से उगने वाले कमल-पुष्प से जन्म ग्रहण करने वाले ब्रह्या भी देखने आये थें । उन्हें आश्चर्य हुआ था कि किस प्रकार कृष्ण जैसा छोटा-सा बालक इतने आश्चर्यमय कार्य कर सकता हे । यद्यपि उन्हें बताया जा चुका था कि यह नन्हा ग्वालबाल श्रीभगवान् है, तथापि वे भगवान् की अनय यशस्वी लीलाएँ देखना चाह रहे थे, अतः उन्होंने सारे ग्वालबालों तथा बछड़ों को हर लिया और उन्हें किसी दूसरे स्थान में ले गये । इसीलिए भगवान् कृष्ण ढूँढ़ने पर

भी उन बछड़ों को नहीं पा सके, यहाँ तक कि वे यमुना तट पर कलेवा करते हुए अपने मित्रों को भी खो बैठे । एक ग्वाले के रूप में भगवान्कृष्ण ब्रह्माजी से बहुत छोटे थे, किन्तु भगवान् होने के कारण उन्हें यह समझने में देर न लगी कि सारे बछड़े तथा बालक ब्रह्माजी द्वारा चुरा लिये गये हैं । कृष्ण सोचने लगे, ब्रह्मा ने सारे बालकों तथा बछड़ों का अपहरण कर लिया है । अब मैं वृन्दावन कौन-सा मुँह लेकर जाऊँगा? सबकी माताएँ अत्यन्त शोकाकुल होंगी ।

अतः अपने मित्रों की मातओं को प्रसन्न करने तथा ब्रह्मा को श्रीभगवान् की सर्वोच्चता से आश्वस्त कराने की दृष्टि से उन्होंने तुरन्त ही ग्वालों तथा बछड़ों के रूप में अपना विस्तार किया । वेदों में कहा गया है कि श्रीभगवान् अपनी शक्ति के द्वारा असंख्य जीवों के रूप में विस्तार कर चुके है । अतः उनके लिए इतने बालकों तथा बछड़ों के रूप में दोबारा विस्तार करना कोई कठिन काम नहीं था । उन्होंने अपना विस्तार ठीक उतने ही बालकों के अनुरूप किया, जो विभिन्न आकृति, मुख तथा शरीर की बनावट वाले एवं अपने वस्त्रों तथा आभूषण में एवं आचरण तथा व्यक्तिगत कार्यकलापों में भिन्न-भिन्न थे । दूसरे शब्दों में, यद्यपि जीवात्मा होने के कारण प्रत्येक व्यक्ति की अपनी पृथक् रुचि होती है और पृथक्-पृथक् काय्र तथा आचरण होता हैं, तफर भी कृष्ण ने स्वयं को विभिन्न बालकों के स्वरूपादि में ठीक उसी रूप में विस्तारित किया । वे बछड़ें भी बने जो अपने आकार, रंग, कार्य में सर्वथा भिन्न थे । यह सब इसलिए सम्भव हो सका, क्योंकि प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण की शक्ति का विस्तार है । विष्णु पुराण में कहा गया है- परस्य ब्रह्मणः शक्ति । अर्थात् इस दृश्य जगत में हम जो कुछ भी देखते हैं, चाहे वह पदार्थ हो या जीवों के कार्य-कलाप, वह सब कुछ भगवान् की शक्तियों का विस्तार हैं, ठीक उसी प्रकार जिस तरह उष्मा तथा प्रकाश अग्नि के विभिन्न विस्तार है ।

इस प्रकार अपने आपको ग्वाल-बालों तथा बछड़ों के रूप में विस्तारित करते हुए एवं ऐसे विस्तारों से घिरकर श्रीकृष्ण वृन्दावन में प्रविष्ट हुए । व्रजवासियों को कृछ भी ज्ञात न था कि क्या घटना घटी है । वृन्दावन में प्रवेश करने के पश्चात् सारे बछड़ें अपनी-अपनी शालाओं में चले गये और सारे बालक अपने-अपने घरों तथा माताओं के पास पहुँच गये ।

उनके प्रवेश के पूर्व बालकों की माताओ के वंशी की ध्वनि सुनी, अतः वे उन्हें लेने के लिए अपने-अपने घरों से बाहर आ गईं और उन्होंने उनका आलिंगन किया । वात्सल्य के कारण उनके स्तनों से दूध की धारा बह निकली और उन्होंने बालकों को स्तन-पान कराया । किन्तु यह दूध पिलाना अपने बालकों जैसा न होकर भगवान् को दूध पिलाने जैसा था, जिन्होंने इन बालकों के रूप में अपना विस्तार किया था । यह एक अवसर था कि वृन्दावन की माताएँ भगवान् को अपना स्तन-पान करा रही थीं । अतः कृष्ण ने इस बार न केवल यशोदा केा दूध पिलाने का अवसर दिया अपितु उन्होंने समस्त वयोवृद्ध गोपिकाओं को भी यह अवसर प्रदान किया ।

सारे बालक अपनी-अपनी माताओं के साथ पूर्ववत् व्यवहार करने लगे और माताएँ भी संध्या होने पर , अपने-अपने बालकों को नहला कर तिलक तथा आभूषणों से सुसज्जित करने तथा दिन-भर के श्रम के बाद भोजन देने की व्यवस्था करने लगीं । इसी प्रकार गाएँ भी चरागाहों से संध्या समय लौटीं और अपने-अपने बछड़ों को पुकराने लगी । बछड़ें तुरन्त अपनी माताओं के पास आये और उनकी माताएँ (गौवें) उनके शरीरों को चाटने लगीं । गौवों तथा गोपियों का अपने-अपने बछड़ों तथा बालकों के प्रति यह सम्बन्ध पहले की तरह बना रहा, यद्यपि वास्तव में मूल बछड़ें तथा बालक वहाँ नहीं थें । वस्तुतः गायों का बछड़ों के प्रति और गोपिकाओं का अपने बालकों के प्रति यह वात्सल्य अकारण ही बढ़

गया । उनका वात्सल्य सहज ही बढ़ गया, यद्यपि ये बछड़ें तथा बालक उनकी सन्तानें न थे । यद्यपि गोपिकाएँ कृष्ण को अपनी-अपनी सन्तानों से अधिक प्रेम करती थीं, किन्तु इस घटना के बाद उनकरा यह प्रेम (वात्सल्य) अपनी सन्तानों के प्रति भी उसी तरह बढ़ गया जिस तरह वह कृष्ण के प्रति था । कृष्ण ने लगातार एक वर्ष तक बछड़ों तथा बालकों के रूप में स्वयं को विस्तारित रखा और चरागाहों में भी उपस्थित रहे ।

जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, कृष्ण का विस्तार प्रत्येक हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित हैं । इसी प्रकार स्वयं को परमात्मा रूप में विस्तारित न करके लगातार एक वर्ष तक वे बछड़ों तथा ग्वालों के रूप में विस्तारित रहते रहें ।

एक दिन एक वर्ष समाप्त होने से कुछ दिन पहले जब कृष्ण बलराम के साथ जंगल में बछड़ों को चरा रहे थे, तो उन्होंने गोवर्धन पर्वत की चोटी पर कुछ गौवों को चरते देखा । ये गौवें वही से नीचे घाटी में ग्वालों द्वारा अपने बछड़ों की रखवाली होते देख सकती थीं । अतः सहसा अपने बछड़ों को देख कर गौवें उनकी ओर दोड़ने लगीं । वे अगले तथा पिछले पाँव बँधे होने पर भी पहाड़ी से नीचे कूद आईं । ये गौवें अपने बछड़ों के प्रेम से इतनी द्रवित हो गईं कि उन्होंने गोवर्धन पर्वत की चोटी से नीचे चरागाह तक के ऊबड़-खाबड़ मार्ग की तनिक भी परवाह न की । उनके थन दूध से पूरित थे और वे अपनी पूँछें ऊपर उठाये अपने-अपने बछड़ों के पास पहुँच गईं । जब वे पहाड़ के नीचे आ रही थीं, तो उकने थनों से अपने बछड़ों के प्रेमवश दूध की धारा चू रही थीं, यद्यपि ये बछड़े उनके अपने बछड़ें न थे । इन गायों के अपने-अपने बछड़ थे और गोवर्धन के नीचे, जो बछड़े चर रहे थे वे उनवसे कुछ बड़े थे; इन बछड़ों से भी यह आशा नहीं की जाती थी कि वे इन गायों का दूध सीधे स्तनों से पियेंगे; वे तो घास चर कर अपनी तृप्ता थें । फिर भी गाएँ तुरन्त नीचे आईं और

उनके शरीर चाटने लगीं और बछड़े भी गायों के थन से दूध पीने लगे । इन गौवों तथा बछड़ों में प्रगाढ़ प्रेम-बन्धन दीख पड़ा ।

जब गौवें गोवर्धन पर्वत सेनीचे की ओर दौड़ रही थीं, तो उनकी रखवाली करने वाले व्यक्तियों ने उन्हें रोकने का प्रयास किया । प्रायः बड़ी गायों की रखवाली पुरुष करते हैं और बछड़ों की रखवाली बालक करते हैं जहाँ तक सम्भव होता है बछड़ों को गायों से प्थक् रखा जाता है, जिससे वे गायों का सारा दूध न पी जाएँ । अतः जो व्यक्ति गोवर्धन की चोटी पर गायों की रखवाली कर रहे थें उन्होंने उन्हें रोकने का प्रयास किया, किन्तु वे असफल रहे । अपनी असफलता के कारण वे बहुत लज्जित, क्रुद्ध और प्रसन्न थे, किन्तु जब वे पर्वत से उतर कर नीचे आये और देखा कि उनके बालक गौवों के बछड़ों की ठीक से देख-रेख कर रहे हैं, तो वे उनके प्रति अत्यन्त प्रेम-विहल हो उठे । यह अत्यन्त आश्चर्यजनक था । यद्यपि सारे पुरुष निराश, व्यग्र तथा क्रुद्ध होकर पर्वत से नीचे आये थे, किन्तु ज्योंही उन्होंने अपने पुत्रों को देखा, तो उनके हृदय प्रेम में द्रवित हो उठे । उनका क्रोध, असन्तोष तथा अप्रसन्नता सभी तुरन्त छूमन्तर हो गये । वे अपने पुत्रों के प्रति पिता का प्रेम प्रदर्शित करने लगे और ब्रें ही स्नेह से उन्हें अपनी गोद में उठाकर उनका आलिंगन करने लगे । फिर उन्होंने उनके सिर सूँघे और उनके साथ परम प्रसन्नता का अनुभव किया । अपने पुत्रों का आलिंगन करने के बाद वे पुनः अपनी गायों को गोवर्धन की चोटी पर ले गये । रास्तें में वे अपने पुत्रो के विषय में सोचते रहे और उनके नेत्रों से प्रेमाश्रुओं की वर्षा होती रही ।

जब बलराम ने गौवों तथा बछड़ों एवं पिता तथा पुत्रों के मध्य इस प्रकार प्रेम का अद्भूत आदान-प्रदान देखा- विशेषरूप से जब बछड़ों या बालकों को इतनी देख-रेख की आवश्यकता न थी- तो उन्हें आश्चर्य होने लगा कि यह असामान्य बात क्यों हो रही है । वे यह देखकर आश्चर्यचकित थे कि वृन्दावन के समस्त निवासी अपनी-अपनी सन्तानों

के प्रति उसी प्रकार वत्सल हैं जिस प्रकार कि वे कृष्ण के प्रति हैं । इसी तरह सारी गौवें अपने-अपने बछड़ों के प्रति उतनी ही वत्सल थीं जितनी कि कृष्ण के प्रति । अतः बलराम ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह प्रेम का अद्‌भूत प्रदर्शन रहस्यात्मक है, जो या तो देवताओं द्वारा सम्पन्न हो रहा हो या किसी शक्तिशाली व्यक्ति द्वारा । अन्यथा यह अद्‌भूत परिवर्तन कैसे आता? उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि यह रहस्यातमक परिवर्तन हो न हो कृष्ण द्वारा लाया गया है, जिन्हें बलराम अपना पूज्य भगवान् मानते थे । उन्होंने सोचा, यह कृष्ण द्वारा सम्पादित है । अरे! मै भी इसकी रहस्यात्मक शक्ति को रोक न पाया । इस प्रकार बलराम समझ गए कि ये बालक तथा बछड़ें कृष्ण के ही विस्तार हैं ।

बलराम ने कृष्ण से वास्तविक स्थिति जाननी चाही । अतः वे बोले, हे कृष्ण! पहले मैं सोच रहा था, कि ये सारे, बछड़े तथा ग्वाले या तो ऋषि-मुनि हैं या देवता हैं किन्तु अब मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि ये सब तुम्हारे विस्तार है । ये सब तुम्ही हो और तुम स्वयं बछड़ों की लीा कर रहे हो । इसका क्या रहस्य है? वे सारे अन्य बछड़े तथा बालक कहाँ हैं? और तुम स्वयं को बछड़ों और ग्वालों में क्यों विस्तार कर रहे हो? क्या तुम मुझे बता सकोगे कि क्या कारण हैं? बलराम की प्रार्थना पर कृष्ण ने संक्षेप में सारी स्थिति बतला दी कि किस तरह ब्रह्या ने सारे बछड़े तथा बालक चुरा लिये थे और किस तरह उन्होंने इस घटना को छिपाने के लिए स्वयं का विस्तार किया जिससे व्रजवासी यह न जान पाएँ कि उनके असली बछड़े तथा बालक खो गये है ।

जब कृष्ण तथा बलराम इस प्रकार बातें कर रहे थे तो ब्रह्या एक क्षण के अनन्तर (अपनी आयु के अनुसार) लौट आयें । हमें भगवद्गीता से भगवान् ब्रह्या की आयु की जानकारी प्राप्त होती हैं । ब्रह्या के बारह घण्टे चारों युगों की अवधि से एक हजार गुने अर्थात 46,20,000द्ध1,000 वर्ष के तुल्य होते है । इसी प्रकार ब्रह्य का एक क्षण हमारें एक सौर वर्ष के

तुल्य है । अपनी गणना के अनुसार ब्रह्या एक क्षण बद ही अपने द्वारा बालकों तथा बछड़ों के चुराये जाने से उत्पन्न कौतुक देखने के लिए लौटे । किन्तु वे मन ही मन भयभीत थे कि यह आग के साथ खिलवाड़ करने जैसा है । कृष्ण मेरे स्वामी हैं और मैनें कौतुकवश ही उनके बछड़ें तथा बालक चुराये है । वे सचमुच चिन्तित थे, अतः वे देर तक वहाँ नही रह पाये, वे अपनी गणना के अनुसार एक क्षण बाद ही वापस चले आये । उन्होंने देखा कि सारे के सारे बालक तथा, बछड़ें गौवें कृष्ण के साथ पूर्ववत् क्रीड़ा-रत हैं, यद्यपि उन्हें विश्वास था कि वे उन्हें चुरा ले जा चुके है । और अपनी योगशक्ति से उन्हें सुला रखा हे । अतः ब्रह्या सोचने लगे, मैंने तो सारे बालक तथा बछड़े चुरा लिए थे और मुझे ज्ञात है कि वे अब भी सो रहे हैं, तो फिर यह कैसे सम्भव है कि वैसे ही बछड़ें तथा बालक कृष्ण के साथ क्रीड़ा कर रहे हैं? कहीं वे मेरी योगशक्ति से अप्रभावित तो नहीं है? क्या वे एक वर्ष तक कृष्ण से लगातार खेलते रहे हैं? ब्रह्या जानने का प्रयत्न करते रहे कि वे सब कौन थे और उनकी योगशक्ति से किस प्रकार अप्रभावित रह रहे थे, किन्तु वे निश्चित नहीं कर पाये । दूसरें शब्दों में, वे स्वयं अपनी योगशक्ति के वशीभूत हो गये । उनकी योगशक्ति अंधकार में हिम के समान अथवा दिन में जुगनू के समान प्रतीत होने लगी । रात्रि के अंधकार में जुगनू अपने प्रकाश का कुछ प्रदर्शन कर सकता है और दिन के समय पर्वत की चोटी की संचित या भूमि पर पडी हिम चमक सकती हे । किन्तु रात्रि में हिम में वह श्वेत दीप्ति नहीं रहतीं और न जुगनू में ही दिन के समय प्रकाशित करने की शक्ति रहती हैं इसी प्रकार ब्रह्यपा ने कृष्ण की योगशक्ति के समक्ष जो अपनी लघु योगशक्ति प्रदर्शित की वह रात्रि के समय हिम या दिन के समय जुगनू के समान थी ।जब कोई लघु योगशक्ति वाला व्यक्ति महान योगशक्त् के समक्ष अपनी शक्ति प्रदर्शित करना चाहता हैं तो वह स्वयं अपने प्रभाव को घटा देता है, उसमें वृद्धि नहीं करता । यहाँ तक कि ब्रह्या जैसे महान पुरुष ने जब कृष्ण के समक्ष अपनी योगशक्ति का प्रदर्शन

करना चाहा, तो वह हास्यास्पद हो गईं । इस प्रकार ब्रह्या अपनी निजी योगशक्ति के सम्बन्ध में भ्रमित थें ।

ब्रह्या को इस बात से विश्वस्त करने के लिए कि ये सब बछड़ें तथा बालक, जो कृष्ण के साथ खेल रहे हैं, असली नहीं है , वे सब विष्णु रूप में रूपान्तरित हो गये थें । वास्तव में असली ग्वालबाल तथा बछड़ें तो ब्रह्या की योगशक्ति के कारण सोये हुए थे, किन्तु जिन रूपों को ब्रह्या देख रहे थे वे कृष्ण या विष्णु के अंश थे । चूँकि विष्णु कृष्ण के अंश हैं, अतः ब्रह्या के समक्ष इतने विष्णु-रूप प्रकट हुए । सारे विष्णु रूप साँवले रंग के थे और पीताम्बर धारण किये थे, सबों के चार-चार भुजाएँ थीं जिनमें वे शंख, चक्र, पुष्प, गदा धारण किये थें । उनके शीशों पर स्वर्णमण्डित रत्नजटित देदीप्यमान मुकुट थे ।वे मोतियों तथा कर्णाभूषणों से मण्डित थे और फूलों की मालाएँ धारण किये थे । उनके वृक्षस्थलों पर श्रीवत्स का चिन्ह था, उनकी भुजाएँ बाजुबन्दों तथा अन्य रत्नों से मंडित थीं । उनकी ग्रीवाए । शंख के समान थीं उनके पैरों में नूपुर थें, कटि में सुनहरी घंटिकाएँ थीं और अँगुलियों में रत्नजटित मुद्रिकाएँ थीं । ब्रह्या ने यह भी देखा कि प्रत्येंक विष्णु के सारे शरीर पर, चरणकमलों से लेकर सिर तक, ताजा तुलसीदल अर्पित किये गए थे । विष्णु-रूपों की अन्य विशेषता यह थी कि वे सब दिव्य यप से अत्यन्त सुन्दर लगते थे । उनकी मुस्कन चन्द्रपकाश से मिलती थी और उनकी चितवन अतः उदय होते हुए सूर्य के समान थी । वे तमो तथा रजोगुणों के स्त्रष्टा तथा पालक प्रतीत हो रहे थे । विष्णु सतोगुण के, ब्रह्या रजोगुण के तथा शिव तमोगुण के प्रतीक है । अतः इस दृश्य जगत में प्रत्येक वस्तु के पालक के रूप में विष्णु ब्रह्या तथा शिव के भी स्त्रष्टा तथा पालक हैं ।

विष्णु भगवान् की इस अभिव्यक्ति के बाद ब्रह्या ने देखा कि विष्णु को चारों ओर से घेर कर अनेक ब्रह्या, शिव, देवता, तथा एक क्षुद्र चींटी और तिनके से लेकर जड़-जंगम सारे जीव नाच रहे हैं । उनके नृत्य के

साथ अनेक प्रकार का संगीत जब रहा है और वे सब विष्णु की पूजा कर रहे हैं । ब्रह्मा को ज्ञान हुआ कि विष्णु के वे सारे रूप योगशक्ति से पूर्ण हैं उनमें अणिमा (अणु के समान सूक्ष्म बनने की सिद्धि) से लेकर दृश्य जगत जैसे असीम होने की सिद्धियाँ हैं विष्णु के शरीर में ब्रह्मा की सारी योगशक्तियों, शिव, सारे देवता तथा दृश्य जगत के चौबीसों तत्त्वों को पूरा प्रतिनिधित्व प्राप्ता था । भगवान् विष्णु के प्रभाव से सारी अधीन योग-शक्तियाँ उनकी पूजा में लगी थीं । काल, आकाश, दृश्य जगत , संस्कार , इच्छा, कर्म तथा भौतिक प्रकृति के तीनों गुण उनकी पूजा कर रहे थे । ब्रह्मा को यह भी अनुभव हुआ कि भगवान् विष्णु समस्त सत्, चित् तथा आनन्द के आगार है । वे सच्चिदानन्दस्वरूप है । और उपनिषदों के अनुयायियों के द्वारा पूज्य हैं । ब्रह्मा ने अनुभव किया कि बालकों तथा बछड़ों के ये रूपान्तरित विष्णु-रूप किसी योगी की योगशक्ति या देवताओं में निहित किसी शक्ति द्वारा नहीं बने है । ये विष्णुरूप (मूर्तियाँ) किसी विष्णु-माया के प्रदर्शन न होकर साक्षात् विष्णु हैं । विष्णु तथा विष्णु-माया के गुण क्रमशः अग्नि तथा उसके ताप के सदृश हैं । ताप में अग्नि का गुण उष्णता रहती है । किन्तु फिर भी ताप अग्नि नहीं होता । बालकों तथा बछड़ों के विष्णुरूप ताप के समान हीं, अपितु वे अग्नि तुल्य थे- वे सारे के सारे असली विष्णु थें वस्तुतः विष्णु का गुण है उनका पूर्ण सत्य, पूर्ण ज्ञान तथा पूर्ण आनन्द । दूसरा उदाहरण भौतिक वस्तुओं का दिया जा कसता है । जो अनेकानेक रूपों में प्रतिबिम्बित होती है । उदाहरणार्थ, सूर्य अनेक जलपात्रों मे प्रतिबिम्बित होता है किन्तु इन पात्रों में सूर्य के प्रतिबिम्ब वास्तविक सूर्य नहीं होते । पात्र में सूर्य का वास्तविक ताप या प्रकाश नहीं रहता, यद्यपि वह सूर्य जैसा प्रतीत होता है । किन्तु कृष्ण ने जो स्वरूप धारण किये थे उनमें से प्रत्येंक पूर्ण विष्णु थे । इस सम्बन्ध में जिस विशेष शब्द का उपयोग किया गया हैं वह सत्यज्ञानान्तानंद है । सतय का अर्थ सच्चाई, ज्ञान का अर्थ पूर्ण ज्ञान, अनन्त का अर्थ है असीम और आनन्द का अर्थ है पूर्ण हर्ष ।

भगवान् की दिव्य महिमाए इतनी विशाल हैं कि उपनिषदों के निर्गुण अनुयायी ज्ञान के उस धरातल तक नहीं पहुँच पाते कि उन्हें समझ सकें । विशेषतया भगवान् के दिव्य रूप इन निर्विशेषवादियों की पहुँच के परे हैं, क्योंकि ये उपनिषदों के अध्ययन द्वारा इतना ही समझ पाते है कि परम सत्य न तो पदार्थ है और न भौतिक दृष्टि से सीमित है । ब्रह्माजी कृष्ण के विष्णु रूपों में विस्तार (अंश) से अपनी सीमित शक्ति द्वारा यह समझ गए कि परमेश्वर की शक्ति के विस्तार से ही इस दृश्य जगत की सारी जड़ तथा जंगम वस्तुएँ विद्यमान है ।

जब ब्रह्म इस प्रकार अपनी सीमित शक्ति से हतप्रीा होकर और अपनी ग्यारहों इन्द्रियों के भीतर अपने सीमित कर्मों से अवगत होकर खड़े थे तब वे यह अनुभव कर सके कि वे स्वयं कठपुतली के समान भौतिक शक्ति (माया) की ही सृष्टि हैं । जिस प्रकार कठपुतली में नाचने की स्वतंत्र शक्ति नहीं होती, और अपने स्वामी के आदेशानुसार नाचती है उसी प्रकार सारे देवता तथा जीव भी श्रीभगवान् के अधीन हैं । जैसाकि चैतन्य-चरितामृत में कहा गया है कृष्ण ही एकमात्र स्वामी हैं और अन्य सभी उनके दास है सारा संसार भौतिक तरंगों के वश में है और सारे प्राणी तिनकों के समान जल में तैर रहे । अतः उनका जीवन-संघर्ष चलता रहता है ।किन्तु ज्योंही मनुष्य को यह बोध हो जाता है । कि वह भगवान् का शाश्वत दास है, तो यह माया या जीवन-संघर्ष तुरन्त समाप्त हो जाता है ।

इस प्रकार ज्ञान की देवी के अधिष्ठाता तथा वैदिक ज्ञान के सर्वोत्कृष्ट अधिकारी ब्रह्माजी भगवान् द्वारा प्रकट असामान्य शक्ति को न समझ पाने के कारण अतयधिक व्यग्र थे । प्राकृतिक जगत में ब्रह्मा जैसा व्यक्ति भी परमेश्वर की योगशक्ति (माया) को समझ पाने में असमर्थ रहता है । वे न केवल उन्हें समझने में असमर्थ थें, अपितु कृष्ण ने उनके समक्ष जो कुछ प्रकट किया था उसे देख कर भी व्यग्र थे ।

कृष्ण को ब्रह्मा पर दया आ गई कि वे यह देखते हुए कि कृष्ण किस प्रकार स्वयं को बछड़ों तथा ग्वालों में रूपान्तरित करके विष्णु के रूपों का प्रदर्शन कर रहें थें इसे समझने में असमर्थ थे, अतः उन्होंने सहतसा उस दृश्य पर से अपनी योगमाया का आवरण हटा लिया । भगवद्गीता में कहा गया है कि भगवान् योगमाया द्वारा फैलाये गये आवरण के कारण दृश्य जगत से परे नहीं समझ पाता । किन्तु जो शक्ति भगवान् को अंशतः प्रकट करती है और अंशतः मनुष्य को दखेने नहीं देती वह योगमाया कहलाती है । ब्रह्माजी कोई सामान्य बद्धजीव नहीं हैं वे अनय सभी देवताओं से कही अधिक श्रेष्ठ हैं; फिर भी वे श्रीभगवान् के प्रदर्शन को समझ पाये, अतः कृष्ण ने जानबूझ कर और आगे शक्ति का प्रदर्शन बन्द कर दिया । बद्धजीव न केवल मोहग्रस्त हो जाता हे, अपितु समझ पानें में पूर्णतः असमर्थ रहता है । योगमाया का आवरण इसलिए हटा दिया गया जिससे ब्रह्माजी और अधिक व्यग्र न हो जायें

जब ब्रह्माजी की व्यग्रता दूर हुई, तो ऐसा लगा मानो वे मृतक अवस्था से जग हों । वे अपने नेत्र कठिनाई से खोल पा रहे थे । तब उन्होंने बाह्य दृश्य जगत को सामान्य चक्षुओं से देखा । उन्हें अपने चारों ओर वृन्दावन का अत्यन्त मनोहारी दृश्य दिया जिसमें वृक्ष ही वृक्ष थे और जो समस्त जीवों का जीवन-स्त्रोत है । उन्हें वृन्दावन की दिव्य भूमि का अनुमान लग सका जहाँ के सारे वासी दिव्य है । वृन्दावन के जंगल में शेर तथ अन्य हिस्त्र पशु हिरणों तथा मनुष्यों के साथ शान्तिपूर्वक निवास करते है । वे यह जान सके कि वृन्दावन में भगवान् कृष्ण की उपस्थित के कारण यह स्थान अन्य स्थानों की अपेक्षा दिव्य है जहाँ न काम-वासन है और न लोभ । इस प्रकार ब्रह्मा ने भगवान् श्रीकृष्ण को एक छोटे से ग्वाले का अभिनय करते देखा - वे अपने बाएँ हाथ में का एक टुकड़ा रोटी लिए अपने मित्रों, बछड़ों को ढूँढ़ रहे हैं, जिस प्रकार वे एक वर्ष पूर्व इन सबके अन्तर्धान होने के पूर्व ढूँढ़ रहे थे ।

ब्रह्मा तुरन्त अपने वाहन हंस से उतर आये और भगवान् के समक्ष इस प्रकार गिर पड़े मानो कोई सोने का दण्ड हो । वैष्णवों में सम्मान प्रदान करने के लिए दण्डवत शब्द का व्यवहार किया जाता है । इस शब्द का अर्थ है दण्ड (डंडा) के समान गिरना । मनुष्य को चाहिए कि श्रेष्ठ वैष्णव को सम्मान प्रदर्शित करने के लिए वह दण्ड के समान पडे प्रतीत हुए । चूँकि ब्रह्माजी का वर्ण सुनहरी है, वे भगवान् कृष्ण के समक्ष एक सुनहरे दण्ड के समान पडे हुए प्रतीत हुए ब्रह्मा के चारों शिरों के मुकुट कृष्ण के चरणकमलों को छू रहे थे । ब्रह्मा अत्यधिक प्रसन्नता के कारण अश्रुपात करने लगे और उन्होंने अपने अश्रुओं से कृष्ण के चरणकमलों को धो डाला । ज्यों-ज्यों उन्हें भगवान् के अद्भूत कार्यकलापों का स्मरण होता रहा त्यों-त्यों वे बारम्बार उठते और गिरते रहे । अनेक बार प्रणाम करने के बाद ब्रह्माजी उठे और अपने हाथों से उन्होंने अपनी आँखें पोछीं । भगवान् को अपने समक्ष देखकर वे कम्पित होकर अत्यन्त सम्मान, विनय तथा ध्यानपूर्वक प्रार्थना करने लगें ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " ब्रह्मा द्वारा बालको तथा बछडो की चोरी " नामक तेरहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 14

ब्रह्मा द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति

ब्रह्मा ने कहा, हे भगवान्! आप ही एकमात्र आराध्य परमेश्वर हैं, अतः मैं आपको विनीत प्रणाम करता हूँ और आपको प्रसन्न करने के लिए स्तुति कर रहा हूँ । आपका शरीर जलपूरित बादलों के रंग वाला है । आप अपने पीताम्बर से उद्भासित रजत रश्मिमंडल से चमचमा रहे हैं ।

मैं महाराज नन्द के उन पुत्र को बारम्बार सादर नमस्कार करता हूँ जो मेरे समक्ष शंख, कुण्डल तथा शिर में मोरपंख धारण किये खड़ें हैं । आपका मुख सुनछर हैं, आप मुकुट धारण किये हैं, वनफूलों की माला पहने हैं और हाथ में भोजन का एक ग्रास लिये खड़े हैं । आप हाथ में लकुट, बिगुल, सींग तथा वंशी पकड़ें हैं । आप लघु चरणकमल वाले भगवान हैं!

हे प्रभु! लोग मुझे समस्त वैदिक ज्ञान का स्वामी कहते हैं और मुझे ही इस ब्रह्माण्ड का स्त्रष्टा कहा जाता है, किन्तु अब यह सिद्ध हो चुका है कि मैं आपकों नहीं समझ सकता, भले ही आप बाल-रूप में मेरे समक्ष उपस्थित हैं । आप अपने बाल-मित्रों तथा बछड़ों के साथ खेल रहे हैं, जिसका यह अर्थ लगाया जा सकता है कि बापको पर्याप्त शिक्षा प्राप्त नहीं हुई हैं । आप एक गँवई बालक की भाँति अपने हाथ में अपना भोजन लिए अपने बछड़ों की खोज कर रहे हैं । तो भी आपके तथा मेरे शरीर में इतना अधिक अन्तर है कि मैं आपकी शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता । जैसाकि मैं ब्रह्मा-संहिता में पहले ही कह चुका हूँ आपका शरीर भौतिक नहीं हैं ।

ब्रह्मा-संहिता में बताया गया है कि भगवान् का शरीर आध्यात्मिक (चिन्मय) हैं । भगवान् के शरीर तथा उनमें कोई अन्तर नहीं हैं । उनके शरीर का प्रत्येंक अंग अन्य किसी अंग का कार्य सम्पन्न कर सकता हैं । भगवान् अपने हाथों से देख सकते हैं, अपनी आँखों से सुन सकते हैं, अपने पाँवो से भेंट स्वीकार कर सकते हैं तथा मुख से सृष्टि उत्पन्न कर सकते हैं ।

ब्रह्मा ने आगे कहाः ग्वालबाल के रूप में आपका जन्म भक्तों के लाभ हेतु हुआ है और यद्यपि मैंने आपके, बछड़ें तथा बालक चुराकर आपके चरणकमलों के प्रति अपराध किया हैं, किन्तु मैं समझ सकता हूँ कि आपने मुझ पर दया की है । यह आपका दिव्य गुण हैं । कि आप

अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल रहते हैं । किन्तु मैं अपने प्रति आपका स्नेह होते हुए भी, आपकी शरीरिक शक्तियों की क्षमता का अनुमान नहीं लगा सकता । यह समझना होगा कि जब मैं इस ब्रह्माण्ड का परम पुरुष ब्रह्मा होकर बालरूप श्रीभगवान् के शरीर का अनुमान नहीं लगा सकता तो फिर अन्यों का क्या कहना? और यदि मैं आपके बाल-शरीर की आध्यात्मिक शक्ति का अनुमान नहीं लगा सकता, तो फिर मैं आपकी दिव्य लीलाओं को कैसे समझ सकता हूँ? अतः जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है कि जो कोई भगवान् की दिव्य लीलाओं, उनके आविर्भाव तथा तिरोधान के विषय में थोड़ा भी समझ सकता हैं, वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के बाद भगवान् के धाम मेप्रवेश करने का अधिकारी बन जाता हैं । इस कथन की पुष्टि वेदों में भी हुई हैं । जिनमें कहा गया हैः भगवान् को समझने मात्र से ही कोई भी जन्म-मृत्यु के चक्र से छूट सकता है । अतः मैं तो यही स्तुति करूँगा कि लोगों को चाहिए कि वे चिन्तन द्वारा आपको समझने का प्रयत्न न करें ।

आपको समझने की सर्वोत्तम विधि यह है कि चिन्तन को विनम्र भाव से त्याग कर आपके विषय में या तो आपसे सुना जाये जैसाकि आपने ही भगवद्गीता तथा अन्य समान वैदिक साहित्य में वक्तव्य दिये हैं, अथवा किसी सिद्ध भक्त से सुना जाए जिसने आपके चरणकमलों में शरण ले रखी हो । मनुष्य बिना किसी ऊहापोह के भक्त से श्रवण करे । उसे अपनी सांसारिक स्थिति में परिवर्तन करने की जरुरत नहीं, उसे केवल आपका संदेश सुनना होता हैं । यद्यपि आप भौतिक इन्द्रियों द्वारा ज्ञेय नहीं हैं, किन्तु केवल आपके विषय में श्रवण करने से अज्ञान के अधंकार को दूर किया जा सकता है । आप अपनी अनुकम्पा से ही भक्तों के समक्ष प्रकट होते हैं । आप अन्य किसी साधन द्वारा अज्ञेय हैं । भक्ति के बिना शुष्क ज्ञान आपकी खोज करने में समय का अपव्यय मात्र है । भक्ति इतनी महत्त्वपूर्ण है कि थोड़े से प्रयासे ही मनुष्य उच्चत्तम सिद्धि की

अवस्था को प्राप्त हो सकता हैं । अतः मनुष्य को चाहिए कि भक्ति की कल्याणदायिनी विधि की उपेक्षा करके चिन्तन विधि का प्रश्रय न ले । चिन्तन द्वारा भले ही आपे दृश्य जगत का आंशिक ज्ञान प्राप्त हो ले, किन्तु प्रत्येंक वस्तु के मूल स्वरूप आप को समझने का प्रयास करना समय का अपव्यय चिन्तन में लगे रहते हैं उनका आप को समझने का कप्रयास करना समय का अपव्यय ही हैं, जैसे धान के लिए भूसे को पीटना । थोड़े से धान की चक्की में दल कर दल कर चावल के कुछ दाने प्राप्त किये जा सकते हैं, किन्तु धान का छिलका (भूसा) तो पहले ही चक्की से पिस चुका होता है और भूसे की बड़ी मात्रा को पीटने से दाने नहीं निकलते । यह तो व्यर्थ का श्रम हैं ।

हे भगवान्! मानव-समाज के इतिहास में ऐसे अनेक उदाहरण प्राप्त हैं जब कि मनुष्य दिव्य पद प्राप्त न होने पर मन, वचन तथा कर्म से भक्ति में लग कर सिद्धि प्राप्त करके आपके धाम को जा सका है । भक्ति के बिना चिन्तन या ध्यान द्वारा आपकों समझने की सारी विधियाँ व्यर्थ हैं । अतः मनुष्य को चाहिए कि सांसारिक कार्यों में लगे रह कर भी वह आपकी भक्ति करे और आपके दिव्य यश का श्रवण तथा कीर्तन करते हुए आपके निकट रहे । केवल श्रवण तथा कीर्तन से ही मनुष्य आपके धाम में प्रवेश करने की परम सिद्धि को प्राप्त कर सकता हैं । अतः यदि कोई आपके यशों का श्रवण तथा कीर्तन करते हुए आपका सान्निध्य सदा प्राप्त करता है और अपने सारे कर्मफलों को आपकी तुष्टि के लिए अर्पित करता हैं । जिन लोगों ने अपने हृदय सारे कल्मष से शुद्ध कर लिये हैं उन्हें आपका साक्षात्कार होता है । हृदय की यह शुद्धि आपके यशों के श्रवण तथा कीर्तन द्वारा सम्भव हैं ।

भगवान् सर्वव्यापक हैं । जैसाकि भगवान् ने स्वयं भगवद्गीता में कहा है सब कृछ मेरे द्वारा पालित हैं, किन्तु फिर भी मैं सबों में नहीं हूँ । चूँकि भगवान् सर्वव्यापक हैं, अतः ऐसी कोई वस्तु नहीं हैं, जिसका पता

उन्हें न हो । भगवान् की सर्वव्यापकता कभी भी जीव के संकुचित ज्ञान में समाहित नहीं हो सकती । अतः जिस व्यक्ति नें भगवान् के चरणकमलों में अपने मन को स्थिर कर लिया हैं, वही भगवान् को कुछ हद तक समझ सकता हैं । मन का तो यह काम हैं कि वह इन्द्रियतृप्ति के लिए विविध विषयों के पीछे दौड़ता रहता है । अतः जो व्यक्ति अपने मन को निरन्तर भगवान् की सेवा में लगायें रहता हैं, वही मन को वश में कर सकता है । और भगवान् के चरणकमलों में स्थिर हो सकता हैं । भगवान् के चरणकमलों में मन की यह एकाग्रता समाधि कहलाती है । इस समाधि अवस्था को प्राप्त हुए बिना वह भगवान् के स्वभाव को नहीं समझ सकता । कुछ दार्शनिक या विज्ञानी विराट प्रकृति के एक-एक अणु का अध्ययन कर सकते हैं; वे इतने प्रगतिशील भी हो सकते हैं कि विराट आकाश या आकाश के समस्त ग्रहों तथा नक्षत्रों के परमाणुओं का, यहाँ तक कि सूर्च या कि आकाश, तारों तथा अन्य ज्योतिष्कों के चमकीले अणुओं की गणना कर सकते हैं । किन्तु श्रीभगवान् के गुणों की गणना कर पाना सम्भव नहीं हैं ।

जैसाकि वेदान्सूत्र के प्रारम्भ में कहा गया है । परम पुरुष समस्त गुणों का मूलाधार है । उन्हें सामान्यतया निर्गुण कहा जाता है । निर्गुण का अर्थ होता है । गुणों से रहित (निःगुण) । किन्तु निर्विशेषवादी निर्गुण शब्द का अर्थ किसी भी गुण से विहीन लगाते हैं । चूँकि वे भगवान् के गुणों का अनुमान लगाने में असमर्थ हैं, अत वे इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि भगवान् में कोई गुण नहीं होता । किन्तु वस्तुस्थिति यह नहीं हैं । असल बात तो यह हैं कि वे समस्त गुणों के मूलाधार हैं । सारे गुण सदा उन्हीं से उद्भूत होते रहते हैं । अतः एक ससीम व्यक्ति किस तरह भगवान् के गुणों की गणना कर सकता हैं? वह किसी एक क्षण के लिए भगवान् के गुणों की गणना कर भी ले, किन्तु दूसरे ही क्षण इन गुणों की संख्या बढ़ जाती हैं, अतः भगवान् के दिव्य गुणों का अनुमान लगाना

सम्भव नहीं हैं । इसीलिए वे निर्गुण कहलाते हैं- वे जिनके गुणों की गणना नहीं हो सकतीं ।

अतः मनुष्य को भगवान् के गुणों की गणना के अनुमान का निरर्थक प्रयास नहीं करना चाहिए । योगसिद्धि प्राप्त करने के लिए शुष्क चिन्तन (ज्ञानयोग) या शारीरिक प्रयास करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं । मनुष्य को इतना ही समझ लेना होगा कि इस शरीर में सुख तथा दुख पूर्वनिर्धारित हैं । इस शरीर के दुखों को दूर करने या सुख प्राप्त करने के लिए विविध आसन लगाने की कोई आवश्यकता नहीं हैं । सर्वोत्कृष्ट मार्ग तो यह हैं कि मनसा वाचा कर्मणा भगवान् की शरण ग्रहण की जाये और निरन्तर उनकी सेवा में संलग्न रहा जायें । यह दिव्य श्रम सार्थक हैं, किन्तु परम सत्य को समझने के अन्य सारे प्रयास असफल होते है । अतः कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति चिन्तन या योगशक्ति द्वारा उस परम पुरुष को समझने का प्रयास नहीं करता, अपितु वह भक्ति में लगकर भगवान् पर ही आश्रित रहता है । वह जानता हैं कि इस शरीर को जो कुछ भी होता हैं, वह उसके पूर्वकर्मों का फल हैं । यदि कोई इस प्रकार का सरल भक्तिमय जीवन व्यतीत करता हैं, तो वह स्वतः भगवान् के दिव्य धाम का उत्तराधिकारी बन जाता है । वास्त्व में प्रत्येक जीव परमेश्वर का भिन्नांश और भगवान् का पुत्र है । प्रत्येक व्यक्ति को भगवान् के दिव्य आनन्द में हाथ बँटाने का प्राकृतिक अधिकार हैं, किन्तु पदार्थ के सम्पर्क में आने से बद्धजीव इस उत्तराधिकार से वंचित होते रहे हैं । यदि कोई अपने आपकों भक्ति में लगाने की सरल विधि अपनाता हैं, तो वह स्वतः भौतिक कल्मष से मुक्त होकर परमेश्वर के साहचर्य का दिव्य पद प्राप्त करने का अधिकारी हो जाता हैं ।

ब्रह्माजी ने भगवान् कृष्ण के समक्ष अपने आपकों सर्वाधिक दंभी जीव के रूप में प्रस्तुत किया क्योंकि वे भगवान् की निजी शक्ति की परीक्षा करना चाह रहे थें । उन्होनें भगवान् के ग्वालों तथा बछड़ों को

इसलिए चुरा लिया था कि जरा देखें वे उन्हें किस तरह ढूँढ़ पाते हैं । अपनी चाल के बाद ब्रह्मा ने यह स्वीकार किया कि उनका यह प्रयास अत्यन्त धृष्ट था, क्योंकि वे आदि शक्ति के समक्ष अपनी शक्ति की परीक्षा लेने का प्रयत्न कर रहे थें । अपनी चेतना के लौटने पर ब्रह्मा ने देखा कि यद्यपि वे इस संसार के अन्य समस्त जीवों की नजरों में अत्यन्त शक्तिमान प्राणी हैं, किन्तु भगवान् के बल तथा शक्ति की तुलना में उनकी शक्ति कफछ भी नहीं हैं । इस भौतिक जगत के विज्ञानियों ने परमाणु हथियार जैसे आश्चर्यों की खोज कर ली हैं और जब इनका परीक्षण किसी नगर या इस लोक के किसी नगण्य स्थान में किया जाता हैं, तो ऐसे शक्तिशाली हथियारों से तथाकथित तहलका मच जाता हैं, किन्तु यदि इन परमाणु हथियारों का परीक्षण सूर्य में हो, तो उनकी क्या महत्ता रह जाएगी? ऊे वहाँ पर नगण्य हैं । इसी प्रकार ब्रह्मा द्वारा श्रीकृष्ण के बछड़ों तथा ग्वालों का चुराया जाना उनकी योगशक्ति का विस्मयकारी प्रदर्शन भले ही लगा हो, किन्तु जब श्रीकृष्ण ने अपनी विस्तृत शक्ति का प्रदर्शन नाना बछड़ों तथा बालकों के रूप में किया और बिना प्रयास के उन सबका भरण किया, तो ब्रह्मा की समझ में आ गया कि उनकी अपनी शक्ति कितनी नगण्य हैं ।

ब्रह्मा ने भगवान् कृष्ण को अच्युत कहकर सम्बोधित किया क्योंकि भगवान् अपने भक्त द्वारा की गई छोटी से छोटी सेवा को भी नहीं भूल पाते । वे अपने भक्तों के प्रति इतने दयालु तथा वत्सल हैं कि वे उनके द्वारा सम्पन्न थोड़ी सी सेवा को भी बड़ा करके मानते हैं । ब्रह्मा ने निश्यच ही भगवान् की अत्यधिक सेवा की थी । इस विशेष ब्रह्माण्ड का भार सँभालने वाले परम पुरुष कृष्ण के वे निस्सन्देह आज्ञाकारी दास हैं, अतः वे कृष्ण को प्रसन्न कर सकें । उन्होनें भगवान् से कहा कि वे उन्हें अपना अधीनस्थ दास समझकर उनकी छोटी से छोटी भूल तथा धृष्टता को क्षमा कर दें । उन्होंने स्वीकार किया कि उन्हें अपने शक्तिशाली पद (ब्रह्मत्व)

के कारण गर्व हो गया था । चूँकि वे इस भौतिक जगत में रजोगण के अवतार हैं, अतः ऐसा होना स्वाभाविक था और इसीलिए उनसे यह भूल हो गईं । किन्तु ब्रह्माजी आज्ञा करते थे कि चूँकि वे भगवान् के अधीनस्थ थें, अतः भगवान् कृष्ण उन पर कृपा करेंगे और इस भारी भूल के लिए उसे क्षमा कर देंगे ।

ब्रह्मा को अपनी वास्तविक स्थिति का बोध हुआ । निश्यच ही वे इस ब्रह्माण्ड के परम शिक्षक हैं और इस भौतिक प्रकृति के निर्माण के लिए उत्तरदायी हैं, जो अहंकार, आकाश, वायु, अग्नि, जल तथा पृथ्वी आदि सम्पूर्ण भौतिक शक्ति से युक्त हैं । ऐसा ब्रह्माण्ड विराट होते हुए भी मापा जा सकता हैं । जिस प्रकार कि हमारा शरीर सात बित्ते का मापा जाता हैं । सामान्यतया प्रत्येक मनुष्य के शरीर की माप सात बित्ते (साढे तीन हाथ) परिगणित की जाती है । भले ही यह ब्रह्माण्ड एक विराट शरीर के समान दिखाई दे, किन्तु इसकी माप ब्रह्मा के सात बित्ते ही हैं । इस ब्रह्माण्ड के अतिरिक्त भी अन्य असंख्य ब्रह्माण्ड हैं, जो इस ब्रह्मा के अधिकार-क्षेत्र के बाहर हैं । जिस प्रकार एक जालीदार खिड़की के छिद्रों में से होकर अंसख्य सूक्ष्म परमाणु कण निकलते रहते हैं उसी प्रकार महाविष्णु के रोमकूपों से लाखों-करोड़ों ब्रह्माण्ड बीज रूप में प्रकट होते हैं, और ये महाविष्णु कृष्ण के सम्पूर्ण विस्तार के अंशमात्र ही होते हैं । ऐसी अवस्था में यद्यपि ब्रह्मा इस ब्रह्माण्ड में सर्वोपरि जीव हैं, किन्तु भगवान् कृष्ण के सामने उनकी क्या बिसात हैं ।

अतः ब्रह्मा ने अपनी तुलना उस शिशु से की जो अपनी माता के गर्भ में रहता हैं । यदि यह शिशु गर्भ में अपने हाथ-पैर चलाता हैं । और इस तरह खेलते समय वह अपनी माता का शरीर स्पर्श करता हैं, तो क्या माता इस शिशु से नाराज होती हैं? निस्सन्देह नहीं । इसी प्रकार ब्रह्मा चाहे कितने ही महान पुरुष क्यों न हों, वे तथा अन्य सारे लोग भगवान् के गर्भ के भीतर स्थित हैं । भगवान् की शक्ति सर्वत्र व्याप्त है; इस सृष्टि में

कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ यह शक्ति कार्य नहीं कर रही हों । चूँकि प्रत्येक वस्तु भगवान् की शक्ति के अन्तर्गत हैं, अतः चाहे इस लोक के ब्रह्मा हों या अन्या लाखों करोड़ों ब्रह्माण्डों के ब्रह्मागण हों, वे सब भगवान् की शक्ति के अन्तर्गत ही विद्यमान हैं । अतः भगवान् को माता और माता के गर्भ में स्थित प्रत्येंक वस्तु को उसका शिशु माना जाता हैं । भली माता कभी शिशु से नाराज नहीं होती, यद्यपि वह अपने पाँवों को हिला जुला कर अपनी माता के शरीर को छूता रहता हैं ।

तब ब्रह्मा ने कहा कि उनका जन्म नारायण के नाभिकाल से हुआ जो तीनों लोकों भूलोंक, भुवलोंक तथा स्वलोंक के विनाश के बाद खिला । यह ब्रह्माण्ड तीन भागों में विभाजित हैं । इनके नाम हैं- स्वर्ग, मर्त्य तथा पाताल । प्रलय (विनाश) के समय ये तीनों लोक जल में विलीन हो जाते हैं । उस समय कृष्ण के पूर्ण अंश (स्वांश) नारायण जल में शयन करते हैं और क्रमशः उनकी नाभि से कमलनाल निकलता है और उस कमल-पुष से ब्रह्मा का जन्म होता हैं । अतः स्वाभाविक तौर पर निष्कर्ष निकाला है कि नारायण ब्रह्मा की माता हैं । चूँकि ब्रह्माण्ड के विनाश के पश्चात भगवान् समस्त प्राणियों के आश्रय हैं, अतः वे नारायण कहलाते हैं । नर का अर्थ है समग्र जीवात्माएँ तथा अयन का अर्थ हैं आश्रय (वासस्थान) । गर्भोदकशायी विष्णु को नारायध कहा जाता है, क्योंकि वे जल पर शयन करते हैं । साथ ही वे समस्त सजीव प्राणियों के आश्रय भी हैं । इसके अतिरिक्त नारायण प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में उपस्थित हैं, जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि की गई हैं । इस अर्थ में भी वे नारायण हैं, क्योंकि आश्रय के साथ-साथ अयन का एक अर्थ ज्ञान का स्त्रोत भी हैं । भगवद्गीता में इसकी भी पुष्टि हुई हैं कि जीव की स्मृति हृदय के भीतर परमात्मा की उपस्थिति के कारण हैं । शरीर परिवर्तन होने पर प्राणी अपने गत जीवन की हर बात भूल जाता हैं, किन्तु उसके हृदय में भगवान् नारायण का वास होने के कारण उसे अपनी पूर्व इच्छा के अनुसार कर्म करने का

स्मरण उन्हीं के द्वारा कराया जाता हैं । ब्रह्माजी यह ऋह्व करना चाहते थे कि कृष्ण आदि नारायण हैं, वे ही नारायण के स्त्रोत हैं और नारायण बहिरंगा शक्ति (माया) के प्रदर्शन नहीं, अपितु आध्यात्मिक शक्ति के विस्तार हैं । बहिरंगा शक्ति या माया के कार्य इस दृश्य जगत की उत्पत्ति के बाद ही प्रकट हो पाते हैं और नारायण की आदि आध्यात्मिक शक्ति सृष्टि-रचना के पहले से कार्य शील थी । अतः नारायण से कारणेदकशयी विष्णु तक, कारणोदकशायी विष्णु से गर्भोदकशायी विष्णु तक गर्भोदकशायी विष्णु से क्षीरोदकशायी विष्णु तक और क्षीरोदकशायी विष्णु से जन-जन के हृदय में वास करने वाले नारायण के विस्तार कृष्ण के विस्तार और उनकी आध्यात्मिक शक्ति की अभिव्यक्तियाँ हैं । उनका संचालन भौतिक शक्ति (माया) द्वारा न होने के कारण वे क्षणिक नहीं हैं । माया द्वारा संचालित कोई भी वस्तु क्षणिक होती हैं, किन्तु आध्यात्मिक शक्ति द्वारा कोई भी वस्तु शाश्वत हैं ।

ब्रह्मा ने अपने कथन की पुनः पुष्टि की कि भगवान् कृष्ण आदि नारायण हैं । उन्होनें कहा कि विराट शरीर अब भी गर्भोदक-सागर में लेटा हुआ हैं । वे इस प्रकार बोले ब्रह्माण्ड रूपी यह विराट शरीर आपकी शक्ति की एक अन्य अभिव्यक्ति हैं । जल में शयन करने के कारण यह विराट रूप नारायण भी है और हम सब इस नारायण रूप के गर्भ में स्थित हैं । मुझे आपके विभिन्न नारायण रूपों का सर्वत्र दर्शन हो रहा हैं । मैं आपका दर्शन जल में, अपने हृदय में और अब अपने समक्ष भी कर रहा हूँ । आप ही आदि नारायण हैं ।

हे प्रभु! आपने इस अवतार में यह सिद्ध कर दिया है कि आप माया के परम नियन्ता हैं । आप इस जगत में रहते हैं, किन्तु यह सारा जगत आपके भीतर हैं । यह तथ्य आप पहले ही सिद्ध कर चुके हैं जब आपने अपनी माता के समक्ष अपने मुख के भीतर सारे ब्रह्माण्ड को प्रदर्शित

किया था । आप बिना किसी बाहरी सहायता के अपनी योगमाया की अकल्पनीय शक्ति से ऐसी वस्तुएँ बना सकते हैं ।

हे कृष्ण! इस समय हम जिस सारे दृश्य जगत को देख रहे हैं वह आपके शरीर के भीतर हैं । फिर भी मैं आपकों शरीर के बाहर देख रहा हूँ और आप भी मुझे बाहर देख रहे हैं । ऐसे कार्य आपकी अकल्पनीय शक्ति से प्रभावित हुए बिना कैसे घटित हो सकते हैं?

यहाँ पर ब्रह्मा ने इस बात पर बल दिया कि श्रीभगवान् की अकल्पनीय (अचिन्त्य) शक्ति को स्वीकार किये बिना वस्तुओं की जिस रूप में हैं उस रूप में व्याख्या नहीं की जा सकती । उन्होंने आगे कहा, हे प्रभु! यदि हम अन्य सारी बातें छोड़कर केवल आज जो कुछ हुआ हैं- मैनें जो देखा है- उस पर विचार करें तो क्या यह सब आपकी (अचिन्त्य) शक्ति के कारण नहीं हुआ? सर्वप्रथम मैंने आपको अकेला देखा; तत्पश्चात् आपने अपना विस्तार अपने ग्वाल-मित्रों, बछड़ों तथा वृन्दावन की प्रत्येक वस्तु में कर लिया; फिर मैंने आपको तथा सारे बालकों तथा बछड़ों को चतुर्भज विष्णुओं के रूप में देखा जिसकी पूजा सारे तत्त्व तथा मुझ सहित सारे देवता कर रहे थे । वे फिर से ग्वाल-बाल अदृश्य हो गये और आप पूर्ववत् अकेले रह गये । क्या इसका आशय यह नहीं है कि आप परमेश्वर नारायण हैं, जो प्रत्येक वस्तु के आदि हैं तथा सभी वस्तुएँ आपसे निकलती हैं और पुनः आपमें प्रवेश करती हैं और आप जैसे के तैसे बने रहते हैं?

जो व्यक्ति आपकी अचिन्त्य शक्ति से परिचित नहीं हैं, वे यह नहीं समझ सकते कि अकेले आप ही स्त्रष्टा ब्रह्मा, पालक विष्णु तथा संहारकर्त्ता शिव के रूप में अपना विस्तार करते हैं । जो लोग वस्तुओं को ठीक-ठीक नहीं जानते वे मुझ ब्रह्मा को स्त्रष्टा, विष्णु को पालक तथा शिव को संहारकर्त्ता के रूप में समझतें हैं । वास्तव में आप ही सब कुछ हैं-स्त्रष्टा, पालक तथा संहर्ता । इसी प्रकार आप अपना विस्तार विभिन्न अवतारों के रूप में करते हैं; देवताओं में आप वामनदेव के रूप में, महान

ऋषियों में परशुराम के रूप में और मनुष्यों में आप स्वयम् के रूप में भगवान् कृष्ण अथवा भगवान् राम के रूप में, पशुओं में वराह रूप में तथा जलचरों में मत्स्य कें रूप में अवतर्अीं होते हैं । फिर भी आपका कोई स्वरूप नहीं हैं, आप शाश्वत हैं । आपका प्राकटय तथा तिरोधान आप की अचिन्त्य शक्ति से भक्तों को सुरक्षा प्रदान करने तथा असुरों के विनाश के लिए होता हैं । हे भगवान्! के सर्वव्यापी भगवान्! के परमात्मा! हे समस्त योग शक्तियों के नियन्ता! इन तीन जगतों में आपकी दिव्य लीलाओं का सही-सही आकलन करनें में कोई भी व्यक्ति समर्थ नहीं हैं । कोई इसका अनुमान नहीं लगा सकता कि आपने अपना योगमाया तथा अवतारों को कैसे विस्तार किया और आप अपनी दिव्य शक्ति से किस प्रकार कार्य करते हैं? हे भगवान्! यह सारा दृश्य जगत स्वप्न तुल्य हैं और इसका क्षणिक अस्तित्व मन को विचलित कर देता हैं । फलतः हम इस जगत में चिन्ताओं से परिपूर्ण रहते हैं और इस भौतिक जगत में रहने का अर्थ है मात्र दूख और क्लेश । और इस जगत का क्षणिक अस्तित्व मोहक तथा प्रिय लगता हैं, क्योंकि यह आपके सच्चिदानन्द शरीर से उत्पन्न हैं ।

अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि आप परमात्मा, परम सत्य तथा आदि पुरुष हैं और यद्यपि आपने अपनी अचिन्त्य दिव्य शक्तियों के द्वारा अपने आपकों अनेक विष्णु रूपों या जीवों तथा शक्तियों में विस्तारित कर रखा है, किन्तु आप परम अद्वितीय हैं, आप परम परमात्मा हैं । असंख्य जीव मूल अग्नि के स्फुलिंग मात्र की भाँति हैं । हे भगवान्! परमात्मा को निर्गुण मानना असत्य है क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि आप ही आदि पुरुष है । एक अल्पज्ञ व्यक्ति सोच सकता है कि माराज नन्द के पुत्र होने के कारण आप आदि पुरुष नहीं हैं । और एक मनुष्य की भाँति उत्पन्न हुए हैं । किन्तु वे सब भूल रहे हैं । आप वास्तवातिक आदि पुरुष हैं, ऐसा मेरा निष्कर्ष हैं । आप नन्द के पुत्र होकर भी आदि पुरुष हैं और इसमें कोई सन्देह नहीं हैं । आप परम सत्य हैं और इस भौतिक अंधकार

से सम्बद्ध नहीं हैं । आप मूल ब्रह्मज्योति तथा सूर्च, चन्द्र एवं नक्षत्रों जैसे भौतिक ज्योतिष्कों के स्त्रोत हैं। आपका दिव्य तेज ब्रह्मज्योति के समरूप हैं । जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया हैं, ब्रह्मज्योति और कुछ न होकर साक्षात् आपका शारीरिक तेज हैं । विष्णु के अनेक अवतार हैं और आपके विभिन्न गुणों के भी अवतार हैं, किन्तु वे सब अवतार समान स्तर के नहीं है, । आप आदि दीपक हैं । अन्य अवतारों में भी आदि दीपक जैसी प्रकाश शक्ति (कैंडल पावर) ही सकती हैं, किन्तु आदि दीपक सारे प्रकाश का शुभारम्भ हैं । और चूँकि आप इस भौतिक जगत में उद्भूत नहीं है, अतः आपका अस्तित्व इस जगत के संहार के बाद भी इसी रूप में बना रहेगा ।

चूँकि आप आदि पुरुष हैं, अतः आपको गोपाल-तापनी उपनिषद् तथा ब्रहा-संहिता में गोविन्दम् आदि पुरुषम् कहा गया है । गोविन्द आदि पुरुष और सब कारणों के कारण हैं । भगवद्गीता में भी कहा गया है कि आप ही ब्रह्मतेज के स्त्रोत हैं । किसी को यह निष्कर्ष नहीं निकालना चाहिए कि आपका शरीर किसी सामान्य भौतिक शरीर के समान हैं । आपका शरीर अक्षर हैं । भौतिक शरीर सदा ही त्रिविध तापों से पूर्ण रहता हैं, किन्तु आपका शरीर सच्चिदानन्दविग्रह है अर्थात् आनन्द, ज्ञान तथा अमरता से पूर्ण है । आप निरंजन भी है क्योंकि आपकी लीलाएँ, चाहे वे यशोदा के नन्हें पुत्र के रूप में हों या गोपियों के प्रेमी के रूप में हों, कभी भौतिक गुणों से कल्मषग्रस्त नहीं होती । यद्यपि आपने अनेक अनेक ग्वालों, बछड़ों के रूप में अपने आपकों प्रदर्शित किया हैं, किन्तु इससे आपकी दिव्य शक्ति कम नहीं हुई । आप सदैव पूर्ण रहते हैं । जैसाकि वैदिक साहित्य में वर्णित हैं, यदि पूर्ण-परम सत्य-में से पूर्ण घटाया भी जाये तो पूर्ण परम सत्य ही शेष बचता है । और यद्यपि पूर्ण के अनेक विस्तार देखने में आते हैं, पूर्ण अद्वितीय ही रहता है । चूँकि यद्यपि पूर्ण के अनेक विस्तार देखने में आते हैं, पूर्ण अद्वितीय ही रहता हैं । चूँकि

आपकी सारी लीलाएँ आध्यात्मिक हैं, अतः प्रकृति के गुणों द्वारा उनके कल्मषग्रस्त होने की कोई सम्भावना नहीं रहती । जब आप अपने पिता नन्द तथा माता यशोदा के अधीन रहते हैं, तो आपकी शक्ति घटती नहीं; यह अपने भक्तों के प्रति आपके वात्सल्य की अभिव्यक्ति हैं । आपके अतिरिक्त आपकी स्पर्धा करने वाला कोई अन्य नहीं हैं अल्पज्ञ व्यक्ति समझता है कि आपकी लीलाएँ तथा आविर्भाव केवल भौतिक उपाधियाँ हैं । आप अज्ञान तथा ज्ञान से परे हैं जैसाकि गोपाल-तापनी उपनिषद् से पुष्टि होती हैं । आप मूल अमृत हैं, अक्षय हैं । जैसाकि वेदों में पुष्टि हुई हैं, अमृतं शाश्वतं ब्रह्मे । ब्रह्म नित्य, प्रत्येक वस्तु की परम उत्पत्ति हैं, जिसका न तो जन्म होता है न मृत्यु ।

उपनिषदों में कहा गया है कि परब्रह्म सूर्य के समान तेजस्वी तथा प्रत्येक वस्तु का मूल हैं और जो कोई भी उस मूल पुरुष को समझ सकता हैं, वह भौतिक बद्ध जीवन से मुक्त हो जाता हैं । जो भी भक्ति द्वारा आप में अनुरक्त हो सकता हैं, वही आपकी वास्तविक स्थिति, आपका जन्म, प्रादुर्भाव, तिरोधान तथा कार्यकलाप जान सकता हैं । जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है, आपकी स्वाभाविक स्थिति, प्रादुर्भाव तथा तिरोधान को जान लेने से ही मनुष्य तुरन्त इस शरीर को त्यागकर आध्यात्मिक लोक को प्राप्त होता है । अतः भौतिक अज्ञान के सागर को तैरने के लिए बुद्धिमान मनुष्य आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है और अत्यन्त सुगमतापूर्वक आध्यात्मिक जगत को चला जाता है ।

ऐसे अनेक तथाकथित ध्यानी हैं, जिन्हें यह पता नहीं है कि आप परम आत्मा हैं । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया हैं आप प्रत्येक हृदय में स्थित परम आत्मा है । अतः आपसे परे किसी वस्तु के विषय में ध्यान करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं । जो भी आपके मूल कृष्ण रूप के ध्यान में सदा मग्न रहता हैं, वह भौतिक अज्ञान-सागर को सरलता से पार कर लेता हैं । किन्तुजो लोग यह नहीं जानते कि आप परम आत्मा हैं, वे

अपने तथाकथित ध्यान के बावजूद इसी संसार में रहते जाते हैं । यदि कोई मनुष्य आपके भक्तों की संगति से यह जान पाता है कि भगवान् कृष्ण ही आदि परमात्मा हैं, तो उसके लिए भौतिक अज्ञान-सागर को सरलता से पार कर लेता है । किन्तु जो लोग यह नहीं जानते कि आप परम आत्मा हैं, वे अपने तथाकथित ध्यान के बावजूद इसी संसार मे रहते जाते हैं यदि कोई मनुष्य आपके भक्तों की संगति से यह जान पाता है कि भगवान् कृष्ण ही आदि परमात्मा हैं, तो उसके लिए भौतिक अज्ञान-सागर को पार कर पाना सम्भव होता हैं । उदाहरणार्थ, ज्योंही मनुष्य रस्सी को सर्प समझ लेता है वह भयभीत हो जाता हैं, परन्तु जैसे ही वह समझ जाता है कि रस्सी साँप नहीं है, वह भय से मुक्त हो जाता हैं अतः जो आपके व्यक्तिगत उपदेशों द्वारा आपकों समझ जाता है जैसाकि भगवद्गीता का कथन है या जो आपके शुद्ध भक्तों के उपदेशों के माध्यम से आपकों जान लेता है जैसाकि श्रीमद्भागवत् तथा अन्य वैदिक साहित्य में कहा गया है और या अनुभव करने लगता है कि आप ज्ञान के चरम लक्ष्य हैं, तो उसे इस जगत से और अधिक डरने की आवश्यकता नहीं रह जाती ।

तथाकथित मुक्ति तथा बन्धन उस व्यक्ति के लिए निरर्थक हैं जो आपकी भक्ति में पहले ही लग चुका है, जिस प्रकार जो व्यक्ति यह जान लेता है कि यह सर्प नहीं अपितु रस्सी है, वह भय से रहित हो जाता है । भक्त जानता है कि यह भौतिक जगत आपका हैं, अतः वह अपनी प्रत्येक वस्तु को आपकी दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगा देता हैं । इस प्रकार उसके लिए कोई बन्धन नहीं रहता । जो व्यक्ति पहले से सूर्यलोक में स्थित हो, उसके लिए दिन रात में सूर्य के उदय या अस्त का प्रश्न ही नहीं उठता । यह भी कहा जाता है कि आप सूर्य तुल्य हैं और माया अंधकार जैसी हैं । सूर्य की उपस्थिति में अंधकार होने का पश्न नहीं उठता, अतः जो लोग आप की सेवा में लगे रह कर आपके समक्ष रहते है उनके लिए बन्ध्र या

मोक्ष का प्रश्न ही नहीं रह जाता । वे पहले से ही मुक्त हैं । दूसरी ओर, जो लोग आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण किये बिना ही अपने आपकों मुक्त समझते हैं, वे नीचे गिर जाते है क्योंकि उनकी बुद्धि विमल नहीं होती ।

अतः यदि कोई सोचता हो कि परमात्मा आपसे भिन्न कोई वस्तु है और इस तरह वह परमात्मा को या परम ब्रह्म को अन्यत्र- जंगलों या हिमालय की गुफाओं में-ढूँढ़ता है तो उसकी दशा अत्यन्त दयनीय हैं

भगवद्गीता में आपने उपदेश दिया है कि मनुष्य को आत्म-साक्षात्कार की अन्य समस्त विधियों का परित्याग करके केवल आपकी शरण ग्रहण करनी चाहिए, क्योंकि वही पूर्ण है । चूँकि आप हर प्रकार से सर्वोपरि हैं, अतः जो लोग ब्रह्मतेज की खोज में हैं, वे भी आपको ही खोजते हैं और जो लोग परमात्मा के साक्षात्कार की खोज में हैं, वे भी आपकों ही खोजते रहते है । आपने भगवद्गीता में कहा है कि आप स्वयं अपने आंशिक निरूपण से परमात्मा के रूप में इस दृश्य भौतिक जगत में प्रवेश किए हुए हैं । आप हर एक के हृदय में उपस्थित हैं, और परमात्मा को अन्यत्र कहीं ढूँढ़ने की आवश्यकता नहीं है । यदि कोई ऐसा करता है, तो वह अज्ञानवश करता हैं जो ऐसी स्थित से ऊपर हैं, वह जानता है कि आप असीम हैं । आप भीतर भी हैं तथा बाहर भी । अतः आप सर्वत्र हैं । परमात्मा को अन्यत्र न ढूँढ़कर भक्त अपने मन को अपने भीतर आप पर ही एकाग्र करता है । वास्तव में जो देहात्मबुद्धि से मुक्त हैं, वे ही आपकी खोज कर सकते हैं, अन्य कोई नहीं कर सकता । रस्सी को सर्प समझने की उपमा केवल उन पर लागू होती है, जो अब भी आपके विषय में अज्ञानी बने हुए है । वास्तव में जब मनुष्य रस्सी को सांप समझ लेता है, तो उसका अस्तित्व केवल मन के भीतर है । इसी तरह माया का अस्तित्व केवल मन के भीतर होता है, माया आपके प्रति अज्ञानता के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं हैं । जब कोई आपके व्यक्तित्व को भूल

जाता हैं, वह माया की बद्ध अवस्था में होता है, अतः जो भीतर तथा बाहर से आप में स्थिर हो चुका हैं, वह मोहग्रस्त नहीं होता ।

जिसे कुछ भक्ति प्राप्त हो चुकी हो वह आपकी महिमा को समझ सकता है । यदि कोई ब्रह्म-साक्षात्कार या परमात्मा-साक्षात्कार के लिए प्रयास करता हैं, तो वह आपके विभिन्न रूपों को तब तक नहीं समझ पाता जब तक वह भक्ति का थोड़ा सा फल न पा ले । कोई व्यक्ति अनेक निर्विशेषवादियों का गुरु हो सकता हैं, या जंगल अथवा पर्वत की गुफा में जा सकता है और अनेकानेक वर्षों तक साधु की तरह ध्यान धर सकता हैं, किन्तु वह तब तक आपकी महिमा को नहीं समझ सकता जब तक उसे कुछ भक्ति प्राप्त न हो ले । ब्रह्म-साक्षात्कार या परमात्मा-साक्षात्कार तब तक सम्भव नहीं हो पाता जब तक कि भक्ति का विचित्र प्रभाव उसका स्पर्श नहीं कर लेता, भले ही कोई वर्षों तक खोज क्यों न करें ।

हे प्रभु! मेरी प्रार्थना है कि इस जन्म में या अगले जन्म में मैं जहाँ भी जन्म लूँ मुझे आपका एक भक्त माना जाने का सौभाग्य प्राप्त हो । मैं चाहे जहाँ भी होऊँ मेरी प्रार्थना है कि मैं आपकी भक्ति में लगा रहूँ । मुझे इसकी तनिक भी परवाह नहीं है कि भविष्य में मुझे कैसा जीवन प्राप्त होगा, क्योंकि मैं देखता हूँ कि गौवों तथा बछड़ों या ग्वालबालों के रूप में भी भक्त इतने भाग्यवान् होते है कि वे आपकी दिव्य प्रेमा-भक्ति तथा साहचर्य में लगे रहते है । अतः मेरी इच्छा है कि मैं वर्तमान की भाँति सम्मानित पुरुष न होकर उन्हीं के समान बनूँ, क्योंकि मैं अज्ञान से पूर्ण हूँ । वृन्दावन की गोपिकाएँ तथा गौवें इतनी भाग्यवान् है कि वे आपको अपने स्त्न का दूध दे सकी हैं । वे व्यक्ति जो बड़े-बड़ें यज्ञ करने में लगे रहते हैं तथा अनेक कीमती बकरों की बलि चढ़ाते हैं, वे आपकों ठीक से नहीं समझ पाते , किन्तु केवल भक्ति करने से ये अनजान ग्राम-वधुएँ तथा गौवें आपकों अपने दुग्ध से प्रसन्न कर सकी हैं; आपने जी भरकर उनका दुग्ध-पान किया हे, फिर भी आप यज्ञ में व्यस्त लोगों से कभी-भी इतने

सन्तुष्ट नहीं हुए । अतः मुझे महाराज नन्द, माता यशोदा यथा गोप-गोपियों के भाग्य पर आश्चर्य हो रहा हैं, क्योकि आप परम सत्य श्रीभगवान् के रूप में उनके अत्यन्त प्रिय पात्र हैं । हे प्रभु! इन वृन्दावनवासियों के सौभाग्य को कोई भी भली-भाँति नहीं जान सकता । हम सारे देवता जीवों की विविध इन्द्रियों को नियंत्रित करते हैं और हम इसी पर गर्वित रहते हैं, किन्तु हमारी स्थिति तथा इन वृन्दावनवासियों की स्थिति की कोई तुलना नहीं की जा सकती, क्योंकि वे अपने संवेदनात्मक कार्यो से आपकी उपस्थिति तथा संगति का वास्तविक आनन्द उठा रहे हैं । भले ही हमें इन्द्रियों के नियामक होने का गर्व हो, किन्तु यहाँ के वृन्दावनवासी इतने दिव्य हैं कि वे हमारे नियंत्रण में नहीं आते । वास्तव में वे आपकी सेवा के माध्यम से इन्द्रियों का सुखोपभोग कर रहे हैं । अतः इसे मैं अपना परम सौभाग्य मानूँगा यदि भविष्य में मुझे वृन्दावन की इस स्थली में जन्म लेने का सुअवसर प्राप्त हो सके ।

अतः हे प्रभु! मुझे न तो भौतिक ऐश्वर्य की कामना है न मुक्ति की ही । आपके चरणकमलों में यही विनीत प्रार्थना हैं कि आप इस वृन्दावन जंगल के अन्तर्गत मुझे किसी भी प्रकार का जन्म दें जिससे मुझे वृन्दावन के कृछ भक्तों की चरण-रज प्राप्त करने का अवसर मिल सकें । यदि मुझे इस भूमि पर तुच्छ घास बनकर उगने का अवसर दिया जाये, तो वह मेरे लिए अत्यन्त कल्याणकारी जन्म होगा । किन्तु यदि मै इतना भाग्यशाली न होऊँ कि वृन्दावन-जंगल के अन्तर्गत जन्म ले सकू , तो वृन्दावन के बाहर के क्षेत्र (परिक्रमा) में ही मुझे जन्म लेने की अनुमति दी जाये जिससे भक्तगण चलते समय मेरे ऊपर चरण रख सकें । यह भी मेरे लिए परम सौभाग्य होगा । मैं तो ऐसे ही जन्म की कामना करता हूँ जिसमें मैं भक्तों की चरण-रज से धूसरित होता रहूँ । क्योंकि मैं देख रहा हूँ कि यहाँ सारे व्यक्ति कृष्णभावनामृत से ओत-प्रोत हैं; वे मुकुन्द अथवा

कृष्ण के चरणकमलों के अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते । निस्सन्देह सारे वेद उन्हीं की खोज करते हैं ।

भगवद्गीता में इसकी पुष्टि की गई है कि वैदिक ज्ञान का उद्देश्य कृष्ण की खोज हैं । ब्रह्य-संहिता में कहा गया है कि वैदिक साहित्य के क्रमबद्ध अध्ययन से भगवान् श्रीकृष्ण को प्राप्त कर पाना कठिन हैं किन्तु शुद्ध भक्त की कृपा से वे सहज उपलब्ध हो सकते हैं । वृन्दावन के शुद्ध भक्त भाग्यशाली हैं, क्योंकि वे पूरे समय मुकुन्द (भगवान कृष्ण) का दर्शन करते रहते हैं । मुकुन्द शब्द को दो प्रकार से समझा जा सकता है । मुक् का अर्थ है मोक्ष । भगवान् कृष्ण मोक्ष देने वाले है अर्थात् दिव्य आनन्द के दाता हैं । यह शब्द उनके हास्यमय मुख का भी द्योतक है, जो कुन्द पुष्प की तरह हैं । कुन्द एक अत्यन्त सुन्दर फूल हैं, तो हँसता जैसा प्रतीत होता हैं इसीलिए यह उपमा दी जाती है ।

वृन्दावन के विशुद्ध भक्तों तथा अन्य भक्तों में यही अन्तर है कि वृन्दावन के वासियों में कृष्ण के सान्निध्य के अतिरिक्त कोई कामना नहीं रहती । कृष्ण भक्तों पर निरन्तर दयालु होने के कारण उनकी इच्छाओं को पूरा करते हैं और चूँकि वे कृष्ण का निरन्तर साहचर्य चाहते हैं, इसीलिए भगवान् इसके लिए सदा तैयार रहते हैं । वृन्दावन के भक्त स्वाभाविक प्रेमी भी हैं । उन्हें विधि-विधानों के पालन करने की आवश्यकता नहीं पड़ती, क्योंकि उनमें पहले से कृष्ण के लिए दिव्य प्रेम विकसित रहता हैं । इन विधि-विधानों की आवश्यकता उन लोगों को पड़ती है जिन्होनें इस स्वाभाविक प्रेम की स्थिति प्राप्त नहीं की हैं । ब्रह्या भी भगवान् के भक्त हैं, किन्तु वे एक सामान्य भक्त हैं, जिन्हे विधि-विधानों का पालन करना होता हैं । वे कृष्ण से प्रार्थना करते हैं कि उन्हें वृन्दावन में जन्म लेने का अवसर प्राप्त हो जिससे वे सहस प्रेम की स्थिति को प्राप्त कर सकें ।

ब्रह्मा ने आगे कहा, हे भगवान्! कभी-कभी मैं शंकित हो जाता हूँ कि आप इन वृन्दावनवासियों की भक्ति से किस प्रकार उऋण हो सकेंगे । यद्यपि मैं जानता हूँ कि आप समस्त आशीषों में परम स्त्रोत हैं, किन्तु मैं यह सोच कर आशंका में पड़ जाता हूँ कि आप वृन्दावन के वासियों की जितनी सेवाएँ प्राप्त कर रहे हैं उनके किस प्रकार उऋण हो सकेंगे । मैं सोचता हूँ कि आप कितने दयालु, कितने उदार हैं कि पूतना भी, जो अत्यन्त वात्सल्यमयी माता को वेष धारण करके आपको ठगने आईं थीं, मोक्ष तथा असली माता का पद प्राप्त कर सकी । उसी कुल के अन्य असुरों, यथा अघासुर तथा बकासुर को भी मोक्ष मिला और वे आपकों पा सके । ऐसी अवस्था में मुझे आश्चर्य हो रहा है । इन वृन्दावनवासियों ने आपको सर्वस्व-अपना शरीर, मन, प्रेम तथा घर अपना धन-दौलत-अर्पित कर दिया हैं । उनकी हर वस्तु आपके काम में लाई जाती हैं । अतः उनके इस ऋण को आप किस प्रकार चुका सकेंगे? आपने स्वयं को पहले ही पूतना को समर्पित कर दिया हैं । मेरी निश्चित धारणा है कि आप वृन्दावनवासियों की प्रेमपूर्ण सेवा से कभी भी उऋण नहीं हो सकेंगे, उनके सदैव ऋणी बने रहेंगे । हे प्रभु! मैं जानता हूँ कि वृन्दावनवासियों की सेवा सर्वोत्कृष्ट इसलिए हैं, क्योंकि वे अपनी सारी भावनाओं को आपकी सेवा में हर समय रत रखते हैं । कहा जाता है कि भौतिक वस्तुओं तथा घर के प्रति आसक्ति का कारण मोह हैं, जिससे जीव इस संसार में बँध जाता हैं । किन्तु ऐसा उन लोगों के साथ होता हैं जो कृष्णभावनाभावित नहीं होते । वृन्दावनवासियों के साथ ऐसे अवरोध, यथा घर-बार की आसक्ति, हैं ही नहीं । चूँकि उनकी आसक्ति आपमें केन्द्रित हो चुकी है और उनके घर मन्दिर बन चुके हैं, क्योंकि आप वहाँ सदैव उपस्थित रहते हैं और चूँकि वे आपके लिए सब कुछ भूल चुके हैं अतः उनके समक्ष कोई अवरोध नहीं रह गया । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए घर-बार जैसी वस्तु का न तो अवरोध है, न कोई मोह ।

मैं यह भी जानता हूँ कि एक नन्हें ग्वाल-बाल के रूप में आपका प्राकट्य कोई भौतिक क्रिया नहीं हैं । आप उनके प्रेम के प्रति अत्यधिक कृतज्ञ हैं और आप अपनी दिव्य उपस्थिति के द्वारा उन्हें अधिकाधिक प्रेमा-भक्ति के लिए प्रेरित करने आये हैं । वृन्दावन में भौतिक तथा आध्यात्मिक वस्तुओं में कोई अन्तर नहीं हैं, क्योंकि प्रत्येक वस्तु आपकी सेवा में समर्पित है । हे भगवान्! आपकी ये वृन्दावनलीलाएँ आपके भक्तों को प्रेरणा देने के लिए ही हैं । यदि कोई आपकी वृन्दावनलीलाओं को ऐहिक मानता हैं, तो वह भ्रम में होगा ।

हे कृष्ण! जो लोग यह कर कर आपकी हँसी उड़ाते हैं कि आपको सामान्य पुरुष जैसा भौतिक शरीर प्राप्त हुआ हैं, उन्हें भगवद्गीता में आसुरी तथा अल्पज्ञ कहा गया हैं । आप तो सदैव दिव्य हैं अभक्त लोग इसलिए ठगे जाते हैं क्योंकि वे आपकी उत्पत्ति भौतिक मानते हैं वस्तुतः आपने यह सामान्य ग्वाल-बाल का शरीर अपने भक्तों की श्रद्धा तथा उनका दिव्य आनन्द बढ़ाने के लिए धारण किया हैं ।

हे भगवान्! मुझे उन लोगों के विषय में कुछ नहीं कहना, जो यह विज्ञापित करते हैं कि उन्हें ईश्वर का साक्षात्कार हो चुका है या आपकी अनुभूति के कारण वे स्वयं ईश्वर बन गये हैं । किन्तु जहाँ तक मेरा प्रश्न हैं, मैं यह स्पष्ट स्वीकार करता हूँ । कि मेरे लिए मनसा, वाचा या कर्मणा आपकों समझ पाना सम्भव नहीं है । भला मैं आपके विषय में कह ही क्या सकता हूँ या आपकों अपनी इन्द्रियों के द्वारा किस तरह समझ सकता हूँ ? मैं इन्द्रियों के स्वामी मन के द्वारा आपके विषय में ठीक से सोच भी नहीं सकता । इस संसार में कोई भी कर सके । केवल आपकी कृपा से ही कोई कुछ हद तक जान सकता हैं कि आप क्या हैं । हे स्वामी! आप समस्त सृष्टि के परमेश्वनर हैं, यद्यपि भ्रान्तिवश कभी-कभी मैं अपने आपकों इस ब्रह्माण्ड का स्वामी मान बैठता हूँ । मैं इस ब्रह्माण्ड का स्वामी होऊँ भी तो ऐसे तो अंसख्य ब्रह्माण्ड हैं और ऐसे असंख्य ब्रह्मा हैं, जो उन

ब्रह्माण्डों के नियामक हैं । किन्तुवास्तव में आप उन सबके स्वामी हैं । प्रत्येक प्राणी के हृदय में परमात्मास्वरूप रहकर आप हर बात जानते हैं । अतः आप मुझे अपनी शरण में ले लें । मुझे आश है कि मैंने आपके ग्वालबालों तथा बछड़ों के साथ आपकी लीलाओ में जो व्यवधान डाला है उसके लिए मुझे क्षमा कर देंगे । यदि आप अब मुझे आज्ञा दें, तो मैं चला जाऊँ जिससे आप मेरी अनुपस्थिति में अपने मित्रों तथा बछड़ों के साथ आनन्द भोग सकें ।

हे कृष्ण! आपका नाम ही यह बताता है कि आप सबों को आकर्षित करने वाले है । सूर्य तथा चन्द्रमा का आकर्षण आपके ही कारण है । सूर्य के आकर्षण द्वारा आप यदुवंश को सौन्दर्य प्रदान कर रहे हैं । चन्द्रमा के आकर्षण के कारण आप भूमि, देवताओं, ब्राह्मणों, गायों तथा सागरों की शक्ति को बढ़ा रहे हैं । आपके परम आकर्षण के कारण ही कंस आदि असुरों का संहार हुआ । अतः मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि इस सृष्टि में आप ही एकमात्र पूजनीय विग्रह हैं । कृपया इस जगत के संहार तक मेरा सदर नमस्कार स्वीकार करें । जब तक इस जगत में सूर्य का प्रकाश हैं, तब तक मेरा विनत प्रणाम स्वीकार करें ।

इस प्रकार इस ब्रह्माण्ड के स्वामी ब्रह्मा भगवान् को सादर प्रणाम करके तथा तीन बार उनकी परिक्रमा कर लेने के बाद अपने धाम ब्रह्मालोक को जाने के लिए उद्यत हुए । भगवान् के संकेत द्वारा उन्हें वापस जाने की अनुमति दे दी । जैसे ही ब्रह्मा चले गये, श्रीकृष्ण तुरन्त यमुना तट पर लौट आए और अपने बछड़ों तथा ग्वाल मित्रों के साथ आ मिले जो उसी अवस्था में थे जिस दिन वे गुम होने की स्थिति में थे ।

कृष्ण ने अपने मित्रों को यमुना तट पर कलेवा करते छोड़ा था और यद्यपि वे ठीक एक वर्ष बाद लौटे थे, किन्तु उन्हें लग रहा था कि वे एक सेकंड (क्षण) में ही वापस आ गए हैं । कृष्ण की विभिन्न शक्तियों तथा कार्यो की यही शैली हैं । भगवद्गीता में कहा गया है कि कृष्ण स्वयं सबके

हृदयों में वास करते हैं और वे ही स्मृति तथा विस्मृति उत्पन्न करते हैं । सारे जीवों का संचालन कृष्ण की परा प्रकृति द्वारा होता हैं । और ये जीव कभी अपनी स्वाभाविक स्थिति को स्मरण रखते हैं, तो कभी भूल जाते है । उनके मित्र इस प्रकार से नियंत्रित होने के कारण यह न जान पाये कि श्रीकृष्ण एक वर्ष तक यमुना के तट से दूर रहे और ब्रह्मा की माया के वश में थे । जब वे बालकों के समक्ष प्रकट हुए, तो उन्होंने समझा कि कृष्ण एक मिनट के भीतर लौट आये हैं । वे यह सोचकर हँसने लगे कि कृष्ण कलेवा के समय भी उनका साथ नहीं छोड़ना चाह रहे थे । वे अत्यन्त प्रसन्न थे, अतः उन्होनें कृष्ण को बुलाया, हे कृष्ण! तुम इतनी जन्दी लौट आये । ठीक है, अभी तो हमने कलेवा करना शुरू भी नहीं किया, एक भी कौर नहीं खाया । आओं और हमारे साथ कलेवा करो । कृष्ण हँसे और उनका आमंत्रण स्वीकार कर मित्रों की मण्डली का आनन्द लूटने लगे । कलेवा करते समय कृष्ण सोच रहे थे, ये बालक सोच रहे हैं कि मै एक क्षण में लौट आया हूँ, किन्तु ये यह नहीं जानते है कि मैं विगत एक वर्ष से ब्रह्मा के माया-कर्मों में लगा रहा हूँ ।

कलेवा समाप्त करके कृष्ण तथा उनके मित्र बछड़ों के सहित अपने घर वृन्दावन वापस आने लगे । घर आते समय उन्होनें विशाल सर्प रूप में अघासुर के मृत कंकाल को देखा । जब कृष्ण व्रजभूमि लौट आये, तो वृन्दावन के समस्त वासियों ने उन्हें देखा । वे अपने मुकुट में मोर पंख लगाये थे और वह वनफूलों से सजा हुआ था । उन्होनें फूलों की मालाएँ भी पहन रखी थीं और गोवर्धन पर्वत की गुफाओं से एकत्र किये गए विविध रंगीन खनिजों से शरीर को रँग रखा था । गोवर्धन पर्वत प्राकृतिक लाल रंगो का सदैव से प्रदाता रहा है और कृष्ण तथा उनके मित्रों ने इन रंगों से अपने शरीरों को रंग रखा था । हर एक के पास भैंस के शृंग से बना एक बिगुल एक लकुट तथा एक वंशी थी और हर एक अपने-अपने बछड़ों को उनके नाम ले-लेकर बुला रहा था । उन्हें कृष्ण के अद्‌भुत

कार्यों पर इतना गर्व था कि जब वे गाँव में प्रवेश कर रहे थे तो सबों ने कृष्ण का यशोगान किया । वृन्दावन की समस्त गोपियों ने सुन्दर कृष्ण को गाँव में घुसते देखा । बालकों ने सुन्दर-सुन्दर गीत बनायें जिनमें इसका वर्णन था कि वे किस प्रकार भयंकर सर्प द्वारा निगल लिए जाने से बचाये गये थे और सर्प किस तरह मारा गया । कोई कृष्ण को यशोदा का पुत्र कहता, तो कोई नन्द महाराज का । वे कहने लगे, वे इतने अद्‌भुत हैं कि उन्होंने हमें भयंकर सर्प के चंगुल से बवाया और उसका वध किया । किन्तु उन्हें इसका बिल्कुल पता न था कि अघासुर को मारे एक वर्ष का समय हो गया था ।

इस प्रसंग में महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि वृन्दावनवासियों में सहसा कृष्ण के प्रति इतना प्रेम क्यों उमड़ने लगा, यद्यपि कृष्ण उनके परिवारों के सदस्य न थे । महाराज परीक्षित ने पूछा, असली ग्वालबालों की अनुपस्थिति में जब कृष्ण ने अपना विस्तार किया, तो फिर इन ग्वालाबालों के माता-पिता अपने पुत्रों की अपेक्षा कृष्ण के प्रति इतने वत्सल क्यों हो उठे? यही नहीं, गौवें भी इन बछड़ों के प्रति अपने निजी बछड़ों की अपेक्षा क्यों अधिक स्नेहिल हो गईं ।

शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बताया कि प्रत्येक जीव मूलतः अपने प्रति अत्यधिक आसक्त होता हैं । घर, परिवार, मित्र, देश, समाज, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, यश जैसी बाह्य सामग्रियाँ जीव को प्रसन्न करने म ेंं केवल गौंण हैं । ये सब इसलिए अच्छी लगती हैं, क्योंकि इनसे सुख प्राप्त होता है । इसीलिए मनुष्य आत्मकेन्द्रित होता है और शरीर तथा आत्म के प्रति वह पत्नी, संतान तथा मित्र जैसे परिजनों की अपेक्षा अधिक अनुरक्त रहता है । यदि किसी के ऊपर कोई आसन्न संकट आता हैं, तो वह पहले अपनी (आत्म की) रक्षा करता हैं, और दूसरों की बाद में । यह स्वाभाविक भी है । इसका अर्थ यह हुआ कि वह अन्य किसी वस्तु ककी अपेक्षा अपने आपकों (आत्म को) प्यार करता है । तत्पश्चात् दूसरी वस्तु,

जो उसे स्वयं के बाद प्रिय होती हैं, वह उसका भौतिक शरीर हैं । जिस व्यक्ति को आत्मा के विषय में कुछ पता नहीं रहता वह अपने शरीर के प्रति अत्यधिक आसक्त रहता हैं ।, यहाँ तक कि बुढ़ापे में भी वह अपने शरीर को कई कृत्रिम साधनों से बनाये रखना चाहता हैं, क्योंकि वह सोचता है कि उसका वृद्ध तथा जर्जर शरीर बचाया जा सकता है । प्रत्येक व्यक्ति या तो देहात्मबुद्धि के कारण या आध्यात्मिक बोध के कारण अपने आपको आनन्द प्रदान करने के लिए अहर्निश श्रम करता रहता है । हम भौतिक वस्तुओं के प्रति इसीलिए आसक्त रहते हैं, क्योंकि वे इन्द्रियों को या शरीर को सुख प्रदान करती है । इस शरीर के प्रति आसक्ति का एकमात्र कारण यही है कि इस शरीर के भीतर मैं अर्थात् आत्मा है । इसी प्रकार जब मनुष्य और ऊपर उठ जाता हैं, तो वह समझने लगता है कि आत्मा प्रिय हैं, क्योंकि यह कृष्ण का अंश हैं अन्ततोगत्वा कृष्ण ही प्रिय एवं आकर्षण हैं । वे ही हर वस्तु की परम आत्मा हैं और हमें यही जानकारी देने के लिए कृष्ण अवतरित होते हैं और बताते हैं कि वे ही समस्त आकर्षण के केन्द्र हैं । कृष्ण का अंश बने बिना कुछ भी आकर्षक नहीं हैं ।

दृश्य जगत में जो भी आकर्षण हैं, वह कृष्ण के कारण है । अतः कृष्ण समस्त आनन्द के आगार हैं । कृष्ण ही प्रत्येक वस्तु के सक्रिय तत्त्व हैं और जितने परम सिद्ध अध्यात्मवादी हैं, वे हर वस्तु को उन्हीं से सम्बन्धित देखते हैं । चैतन्य-चरितामृत में यह कहा गया है कि महाभागवत अर्थात् अत्यन्त सिद्ध भक्त कृष्ण को समस्त चराचर जीवों का सक्रिय तत्त्व मानता है । अतः वह इस दृश्य जगत की प्रत्येक वस्तु को कृष्ण से सम्बन्धित देखता है । जिस भाग्यशाली व्यक्ति ने कृष्ण की शरण ग्रहण कर ली है उसके लिए पहले से मुक्ति रखी है । वह इस भौतिक जगत से दूर रहता है । इसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई है । जो भी कृष्ण की भक्ति में लगा हुआ हैं, वह पहले से ब्रह्मभूत पद पर हैं । कृर्त्ी

नाम ही पवित्रता तथा मुक्ति का सूचक हैं जो भी कृष्ण के चरणारविन्द की शरण में आता है, वह अज्ञान-सागर पार करने के लिए नाव में चढ़ जाता हैं । उसके लिए इस जगत का महान विस्तार गोखुर में जल जैसा नगण्य बन जाता है । कृष्ण समस्त महान आत्माओं के केन्द्र हैं और समस्त जगतों के आश्रय भी हैं । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए वैकुण्ठ दूर नहीं हैं । वह इस भौतिक जगत में नहीं रहता, जहाँ पद-पद पर संकट हैं ।

इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज से पूरी तरह से कृष्णभावनामृत (भक्ति) की व्याख्या की । यहाँ तक कि शुकदेव जी ने उन्हें भगवान् ब्रह्मा के वक्तव्य तथा उनकी प्रार्थनाएँ भी सुनाई । भगवान् कृष्ण की ये बाल-लीलाएँ-बालकों के साथ क्रीड़ा करना, यमुना तट पर उनके साथ कलेवा करना तथा ब्रह्मा द्वारा उनकी स्तुति- ये सारी घटनाएँ दिव्य है । जो कोई इन्हें सुनता हैं, पढ़ता हैं, या इनका कीर्तन करता हैं उसकी समस्त आध्यात्मिक इच्छाएँ पूरी होती हैं । इस प्रकार वृन्दावन में कृष्ण के बाल्यकाल की बलराम तथा ग्वालबालों के साथ क्रीड़ा का वर्णन किया गया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " ब्रह्मा द्वारा भगवान् कृष्ण की स्तुति " नामक चौदहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 15
धेनुकासुर का वध

इस प्रकार श्रीकृष्ण अपने अग्रज बलराम के साथ अपनी कौमारवस्था बिताकर पौगण्ड अवस्था में प्रविष्ट हुए । यह अवस्था छठवें वर्ष से दसवें वर्ष तक थी । तब सभी ग्वालों ने परस्पर मंत्रणा की और वे इसके लिए राजी हो गये कि जो जो बालक पाँच वर्ष के हो गए हैं, उन्हें चरागाह में गौवें ले जाने का उत्तरदायित्व दिया जाए । गौवों का उत्तरदायित्व प्राप्त हो जाने पर कृष्ण तथा बलराम ने अपने कमल जैसे चरण-चिन्हों से वृन्दावन की भूमि पवित्र की ।

ग्वालों तथा बलराम के साथ कृष्ण अब गौवों को आगे किये हुए फूलों, साग-सब्जियों तथा घास से पूर्ण वृन्दावन के जंगल में प्रविष्ट होने पर अपनी वंशी बजाने लगे । वृन्दावन का जंगल भक्त के विमल मन के समान स्वच्छ था और मधुमक्खियों, फूलों तथा फलों के लदा था । उसमें पक्षी चहक रहे थें और स्वच्छ जल वाले सरोवर समस्त श्रम को हरने वाले थे । वहाँ सदा मधुर सुगंधित वायु बहती रहती थी । जिससे मन तथा शरीर प्रफुल्लित हो जाते । कृष्ण अपने सखाओं तथा बलराम सहित जंगल में प्रविष्ट हुए और अनुकूल वातावरण देखकर उन्होनें जी-भर कर आनन्द लूटने की इच्छा की । कृष्ण ने देखा कि सारे वृक्ष फलों से लदे हैं और नई-नई टहनियाँ नीचे आकर पृथ्वी का स्पर्श कर रही हैं, मानों वे उनके चरणकमलों का स्पर्श करके उनका स्वागत कर रही हों । वे वृक्षों, फूलों तथा फलों के इस तरह के भाव से अत्यन्त प्रसन्न थे और उनकी इच्छाएँ जानकर हँसने लगे ।

तब कृष्ण अपने बड़ें भाई बलराम से इस प्रकार बोलेः हे भ्राता! आप हम सबसे श्रेष्ठ हैं और देवता आपके चरणकमलों की पूजा करते है । आप देखते नहीं कि ये फलों तथा फूलों से लदे वृक्ष आपके चरणकमलों

की पूजा करने के लिए नीचे झुके हैं । ऐसा प्रतीत होता है कि वृक्षों का रूप धारण करने के कारण ये अंधकार से निकलने का प्रयास कर रहे हैं । वस्तुतः वृन्दावन की भूमि में उत्पन्न वृक्ष सामान्य जीव नहीं हैं । अपने पूर्वजन्मों में निर्गुण दृष्टिकोण रखने के कारण इन्हें इस जड़ जीवन में रहना पड़ रहा है, किन्तु अब इन्हें वृन्दावन में आपके दर्शन का अवसर प्राप्त हुआ है और वे आपके सान्निध्य के द्वारा आध्यात्मिक जीवन में आगे बढ़ने के लिए प्रार्थना कर रहे है ।

सामन्यतया तमोगुणी जीव वृक्ष का शरीर ग्रहण करते हैं । निर्विशेषवादी चिन्तक उसी तमस (अधंकार) में रहतें हैं, किन्तु आपकी उपस्थिति का पूरा-पूरा लाभ उठाकर वे उसे समूल नष्ट कर देते हैं । मेरे विचार से जो भौंरे आपके चारों ओर भनभना रहे हैं, वे पूर्वजन्म में आपके भक्त रहे होंगे । वे आपका साथ नहीं छोड़ना चाहते, क्योंकि आपसे बेहतर तथा वत्सल अधिक स्वामी और कौन हो सकता हैं? आप परम तथा आदि भगवान् हैं और ये भौंरे हर क्षण मनमना कर आपके यश को फैलाने का प्रयत्न कर रहे हैं । मेरे विचार से इनमें से कुछ अवश्य ही महान ऋषि तथा आपके भक्त होंगे, और उन्होनें भौंरो के रूप में अपना वेश छुपा रखा हैं, क्योंकि वे एक क्षण भी आपका साथ छोड़नें को तैयार नहीं हैं । हे भ्राता! आप परम पूज्य ईश्वर हैं । जरा देखो तो किस तरह ये मोर आनन्द-विभोर होकर आपके समक्ष नाच रहे हैं । सारे मृग, जिनका आचरण गोपियों के समान हैं, आपका उसी प्यार के साथ स्वागत कर रहे हैं । और इस जंगल में रहने वाली कोयलें आपका अत्यन्त हर्ष तथा मधुर ध्वनि के साथ स्वागत कर रही हैं, क्योंकि वे सोचती हैं कि उनके घरों में आपका प्राकट्य अत्यन्त मंगलकारी है । यद्यपि वे सब पशू तथा वृक्ष हैं, तो भी ये वृन्दावनवासी आपका गुणगान कर रहे हैं । वे आपका स्वागत अपने सामर्थ्य-भर करने को तैयार हैं जिस प्रकार महात्मागण अपने घर पर अन्य महापुरुष का स्वागत करते हैं । जहाँ तक यहाँ की भूमि का

प्रश्न हैं, वह अत्यन्त पवित्र तथा भाग्यशाली हैं, क्योंकि इस के शरीर पर आपके चरणकमलों के पद चिन्ह बने हुए है ।

इन वृन्दावनवासियों के लिए स्वाभाविक ही है कि आप जैसे महापुरुष का इस प्रकार स्वागत करें । जड़ी-बूटियाँ, लताएँ तथा वृक्ष भी आपके पादपद्यों का स्पर्श पाकर धन्य है और ये छोटे-छोटे पौधे अपनी टहनियों से आपकी अंगुलियों के नाखूनी द्वारा छुए जाने के कारण कृतकृत्य हो गए हैं । पर्वत तथा नदियाँ भी अपने को धन्य मानती हैं, क्योंकि आप उनकी ओर देख रहे हैं । इन सबसे ऊपर ये व्रजांगनाएँ या गोपियाँ हैं, जिनके सौन्दर्य से मोहित होकर आप अपनी विशाल भुजाओं से उनका आंलिगन करते है ।

इस प्रकार कृष्ण तथा बलराम दोनों ही यमुनातट पर अपने बछड़ों तथा गायों को चराते हुए व्रजवासियों को पूर्णरूपेण आनन्दित करने लगे । कुछ स्थानों में कृष्ण तथा बलराम के साथ उनके सखा भी होते । ये बालक गाते, भौंरो के गुन-गुन की नकल उतारते और पुष्पहारों से विभूषित कृष्ण तथा बलराम के साथ-साथ चलते । घूमते हुए ये बालक कभी-कभी सरोवरों में तैरते हंसों की बोलियाँ बोलते या जब वे किसी मोर को नाचते देखते, तो वे श्रीकृष्ण के समक्ष उसका अनुकरण करते । कृष्ण भी अपनी गरदन हिलाते और नाचने का स्वांग भरते हुए अपने मित्रों को हँसा देते ।

कृष्ण जिन गौवों को चराते थे उनके अलग-अलग नाम थे और वे उन्हें दुलारवश पुकारते । कृष्ण को पुकारते सुनकर ये गौवें रँभाती हुई तुरन्त दौड़तीं और ग्वालबाल इस आदान-प्रदान भरपेट मजा लेते । वे विभिन्न प्रकार के पक्षियों की ध्वनि-तरंगो का अनुकरण करते जिनमें से चकोर, मोर, कोयल तथा भारद्वाज प्रमुख थे । कभी-कभी दुर्बल पशुओं को सिंह तथा चीते की आवाज सुनकर डर जाने के कारण दौड़ते देखकर कृष्ण तथा बलराम सहित सारे बालक भी उन पशुओं के पीछें-पीछें दौड़

पड़ते । जब वे कुछ थक जाते, तो बैठ जाते और बलराम कुछ आराम करने के लिए अपना सिर किसी बालक की गोद में रख देते और कृष्ण तुरन्त आ जाते और बलराम के पाँव दबाने लगते और कभी-कभी ताड़ का पंखा लेकर बलराम के ऊपर झलते जिससे सुखद हवा निकलने पर उन्हें थकान से कुछ राहत मिलती । कभी-कभी बलराम के विश्राम करते समय बालक नाचते या गाते और कभी-कभी वे आपस में कुश्ती लड़ते या फिर कूदते-फाँदते । जब बालक इस प्रकार व्यस्त होते, तो कृष्ण भी उनके साथ हो लेते और उनके हाथ पकड़ कर उनकी संगति का लाभ उठाते या उनके कार्यों की प्रशंसा करके हँसते । जब कृष्ण थक जाते, तो वे किसी बड़ें वृक्ष के नीचे या किसी ग्वालबाल की गोद को तकिया बना कर लेट जाते । तब कुछ बालक आकर उनके पाँव दबाते और कुछ पत्तियों से बनाये गये पंखे से हवा झलते । कुछ अधिक प्रतिभाशली बालक उन्हें प्रसन्न करने के लिए मीठी तान में गाना गाते । इस तरह शीघ्र ही उनकी थकान दूर हो जाती ।भगवान् कृष्ण, जिनके पाँव लक्ष्मी जी दबाती हैं, अपनी अन्तरंगा शक्ति का विस्तार करके एक ग्रामीण बालक के रूप में प्रकट होकर ग्वालबालों के साथ मिलकर उनका साथ देते । किन्तु एक ग्रामीण बालक की भाँति प्रकट होने के बावजूद ऐसे अवसर आते रहते जब वे अपने को श्रीभगवान् सिद्ध कर देते । कभी-कभी लोग अपने को भगवान् बताकर अबोध लोगों को ठगते हैं । वे केवल ठग सकते है । ईश्वर की शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर सकतें ।

जब श्रीकृष्ण इस प्रकार अपने परम सौभाग्यशाली ग्वालबालों के साथ अपनी अन्तरंगा शक्ति का प्रदर्शन करते हुए अपनी दिव्य लीलाओं में व्यस्त थें, तो उन्हें अपनी ईश्वरीय अतिमानवी शक्ति को प्रकट करने का एक अन्य अवसर प्राप्त हुआ । उनके परम मित्र सुदामा, सुबल तथा स्तोक कृष्ण ने उन्ळें तथा बलराम को अत्यन्त स्नहेवश इस प्रकार सम्बोधित किया, हे बलराम! तुम अत्यन्त बलवान् हो, तुम्हारी भुजाएँ

अत्यन्त सुदृढ़ हैं । हे कृष्ण! तुम सभी प्रकार के उपद्रवकारी असुरों का वध करने में अत्यन्त पटु हो । क्या तुम दोनों को पता है कि इस स्थान के निकट ही तालवन नामक एक बड़ा जंगल हैं? यह बन ताड़ के वृक्षों से पूर्ण है और सारे वृक्ष फलों से लदे हैं । इन फलों में से कुछ गिर चुके हैं और कुछ वृक्ष परही पक कर लगे हुए हैं । वह अत्यन्त रमणीक स्थान हैं, किन्तु महान असुर धेनुकासुर के कारण वहाँ जाना अत्यन्त कठिन है । कोई भी जाकर वृक्षों के फल नहीं ला सकता । हे कृष्ण तथा बलराम! यह असुर एक गधें के रूप में वहाँ रहता हैं और उसके साथ वैसा ही रूप धारण करके अन्य असुर रहते है । वे सबके सब अत्यन्त बलशाली हैं, अतः उस स्थान तक पहुँचना बहुत कठिन हैं प्रिय भाइयों! तुम्हीं दोनों एकमात्र ऐसे पुरुष हो, जो इन राक्षसों को मार सकते हो । प्राण-भय से वहाँ आपके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जाता । यहाँ तक कि पशु भी नहीं जाते और वहाँ एक भी पक्षी निवास नहीं करता । सबों ने बसेरा छोड़ दिया है । केवल उस स्थान से आने वाली सुगन्ध का ही आनन्द लूटा जा सकता है । ऐसा प्रतीत होता हैं कि अभी तक उन मधुर फलों का किसी ने भी स्वाद नहीं चखा हैं । हे कृष्ण! हम तुमसे स्पष्ट कहे देते हैं कि हम इस मधुर सुगन्ध से अत्यधिक आकर्षित हैं । हे बलराम! यदि तुम चाहों तो, चलकर इन फलों का आनन्द लिया जाये । इन फलों की सुगन्ध चारों ओर फैल रही है । क्या तुम्हें यहाँ उनकी सुगन्ध नहीं आ रहीं?

जब बलराम तथा कृष्ण से उनके घनिष्ठ मित्रों ने इस तरह प्रार्थना की तो वे उन्हें प्रसन्न करने के उद्देश्य से अपने मित्रों के साथ हँसते हुए उस बन की ओर चल पड़ें । तालवन में प्रवेश करते ही बलराम अपनी हाथी-जैसी शक्ति को दिखाते हुए वृक्षों को हिलाने लगे । इस झटके से सारे पके फल पृथ्वी पर आ गिरें । फल गिरने की आवाज सुनकर, वहाँ पर गधे के वेश में वास कर रहा धेनुकासुर उस ओर तेजी से बढ़ने लगा । इससे सारी धरती और सारे वृक्ष हिलने लगे मानो भूकम्प आया हो ।

सर्वप्रथम यह असुर बलराम के समक्ष प्रकट हुआ और उनकी छाती पर अपनी पिछली टांगों से दुलती मारी । बलराम पहले कुछ नहीं बोले, किन्तु वह असुर पुनः अधिक बलपूर्वक तेजी से दुलत्ती मारने लगा । इस बार बलराम ने तुरन्त ही अपने एक हाथ से उस गधे के पैर पकड़ कर उसे चारों ओर घुमाकर वृक्ष की चोटी पर फेंक दिया । जब बलराम उसे घुमा रहे थे तभी असुर के प्राण निकल गये । बलराम ने उसे सबसे ऊँचे ताड़ वृक्ष के ऊपर फेंका । इस असुर का शीर इतना भारी था कि वह वृक्ष टूटकर अन्य वृक्षों पर गिरा जिससे अन्य अनेक वृक्ष धराशायी हो गये । ऐसा प्रतीत हुआ मानों इस वन में भारी अंधड़ आया हो और सारे वृक्ष एक-एक करके गिर रहे हों । इस तरह के असामान्य बल का प्रदर्शन विस्मयकारी नहीं हैं, क्योंकि बलराम अनन्त शेषनाग के रूप में श्रीभगवान् हैं, जो अपने सहस्त्रों फनों पर समस्त लोकों को धारण किये हैं । यह सम्पूर्ण विराट जगत उनके द्वारा उसी प्रकार पालित हैं, जिस प्रकार समस्त एवं सीधे खड़े धागे कपड़े की बुनाई को धारण किये रहते हैं ।

जब यह असुर वृक्षों के ऊपर फेंक दिया गया, तो धेनुकासुर के सारे मित्र तथा सहयोगी एकत्र हो गए और उन्होनें अत्यन्त वेग से बलराम तथा कृष्ण पर आक्रमण कर दिया । वे अपने मित्र की मृत्यु का प्रतिशोध लेने पर तुले थे ।किन्तु कृष्ण तथा बलराम हर गधे की पिछली टाँगे पकड़ कर उसी प्रकार चारों ओर घुमा देते । इस प्रकार उन सबों को मार कर वृक्षों के ऊपर फेंक दिया । गधों के शवों के कारण अत्यन्त अद्‌भुत दृश्य हो गया । ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों विविध रंगों के बादल वृक्षों के ऊपर एकत्र हो रहे हों । इस महान घटना को सुनकर देवतागण स्वर्गलोक से कृष्ण तथा बलराम पर पुष्पों की वर्षा करने लगे और दुन्दुभियाँ बजाकर स्तुतियाँ करने लगें ।

धेनुकासुर के वध के कुछ दिनों बाद लोग तालवन जा-जाकर फल एकत्र करने लगे और पशु भी निर्भय हो वहाँ उगी सुन्दर घास चरने के लिए आने लगे । कृष्ण तथा बलराम के इन दिव्य कार्यों तथा लीलाओं को मात्र सुनकर या उनका कीर्तन करके मनुष्य पुण्य अर्जित कर सकता है ।

जब कृष्ण, बलराम तथा उनके साथियों ने वृन्दावन ग्राम में प्रवेश किया, तो उन्होंने बाँसुरी बजाई और बालकों ने वन में उनके असाधारण कार्यों की प्रशंसा की । उनके मुखमंडल तिलक से सुशोभित थे और गाँवों की चरण-रज से धूसरित थे । कृष्ण के सिर पर मोरपंख शोभायमान थे । बलराम तथा कृष्ण दोनों ने वंशी बजाई और तरुण गोपिकाएँ कृष्ण को घर लौटते देखकर लालायित हो उठीं । वे कृष्ण की अनुपस्थित के कारण अत्यन्त खिन्न रहती थी । सारे दिन वन में रहते या चरागाह में गौवें चराते कृष्ण का वे चिन्तन करती रहतीं । अतः जब उन्होंने कृष्ण को लौटते देखा, तो उनकी चिन्ताएँ तुरन्त समाप्त हो गई और वे उनके मुख की ओर उसी तरह देखने लगी जिस प्रकार भौंरे कमलपुष्प के मधु पर मँडराते रहते हैं । जब कृष्ण गाँव में घुसे, तो तरुण गोपियाँ मुस्कराईं और हँसीं । कृष्ण ने बाँसुरी बजाते हुए गोपियों के सुन्दर हास्यमय मुखड़ों का आनन्द लिया ।

तदनन्तर कृष्ण तथा बलराम का स्वागत उनकी माताओं, यशोदा तथा रोहिणी, ने किया और समयानुसार वे अपने लाडले पुत्रों की इच्छाओं की पूर्ति करने लगीं । माताओं ने सेवा करने के साथ ही अपने दिव्य पुत्रों को आशीष भी दिया । उन्होंने अपने पुत्रों को नहलाया और वस्त्रों से सज्जित किया । कृष्ण को पीला वस्त्र पहनाया गया और बलराम को नीला और इसके साथ ही उनको सभी प्रकार के आभूषण तथा फूलों की मालाएँ दी गईं । दिन भर चरागाह के श्रम की थकान से मुक्त होकर वे दोनों ताजा तथा सुन्दर लग रहे थे ।

उनकी माताओं ने उन्हें स्वादिष्ट भोजन दिया और उन्होंने बड़े चाव से सब व्यंजन खाये । फिर उन्हें स्वच्छ बिस्तर पर बैठा कर माताएँ उनके कार्यकलापों से सम्बन्धित गीत गाने लगीं । ज्योंही वे बिस्तर पर लेटे कि उन्हें प्रगाढ़ निद्रा आ गई इस प्रकार कृष्ण तथा बलराम ग्वालों के रूप में वृन्दावन के जीवन का आनन्द भोगते रहें ।

कभी-कभी कृष्ण अपने बाल सखाओं तथा बलराम के साथ यमुना तट पर गौवें चराने जाते और कभी अकेले जाते । धीरे-धीरे ग्रीष्म ऋतु का आगमन हुआ और एक दिन जब सारे बालक तथा खेत में चरती गौवें अत्यन्त प्यासी हुईं, तो वे जाकर यमुना जल पीन लगीं । किन्तु नदी का जल कालिय नामक विशाल सर्प के विष से जहरीला हो चुका था ।

चूँकि पानी इतना जहरीला था, अतः सारी गौवें तथा बालक जल पीते ही तुरन्त प्रभावित हो गये । से सब अचानक जमीन पर गिर पड़े और मृत जैसे लगने लगें । तब समस्त प्राणों के प्राण कृष्ण ने उन सब पर अपनी कृपा दृष्टि डाली जिससे सारे बालकों तथा गौवों में पुनः चेतना आ गई और वे सब एक दूसरे को अत्यन्त विस्मयपूर्वक देखने लगें । वे समझ गये कि यमुना का जल पीने से वे मृत हो गये थे, परन्तु कृष्ण के कृपाकआक्ष से वे सब जीवित हुए हैं । इस प्रकार उन सबों ने योगेश्वर कृष्ण की योगशक्ति की प्रशंसा की ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " धेनुकासुर का वध " नामक पन्द्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 16
कालिय दमन

जब श्रीकृष्ण जान गये कि यमुना का जल काले सर्प या कालिय दूषित कर रहा हैं, तो उन्होंने उसके विरुद्ध कार्यवाही की और उसे यमुना छोड़कर अन्यत्र जाने के लिए बाध्य कर दिया । इस तरह यमुना जल शुद्ध हो गया । जब शुकदेव गोस्वामी यह कथा सुना रहे थे, तो महाराज परीक्षित को श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं के विषय में अधिक सुनने की जिज्ञासा हुई । उन्होनें शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि श्रीकृष्ण ने उस कालिय को किस प्रकार दण्डित किया, जो वर्षों से जल में रह रहा था? वस्तुतः महाराज परीक्षित कृष्ण की दिव्य लीलाओं को सुनने के लिए अधिकाधिक उत्सुक हो रहे थे और उन्होंने अपना प्रश्न बडी ही रुचि के साथ पूछा ।

शुकदेव महाराज ने इस कथा को इस प्रकार सुनायाः यमुना नही में एक विशाल झील थी जिसमें कालिय नाग रहता था । उसके विष से सारा क्षेत्र सारा क्षेत्र इतना दूषित हो गया था कि उसमें से चौबीसों घण्टे विषैली भाप निकलती रहती थी । यदि कोई पक्षी उस स्थान के ऊपर से धूल से भी निकलता, तो वह तुरन्त मर कर जल में गिर जाता था ।

यमुना की भाप के विषैले प्रभाव के कारण यमुना नदी के तटवर्ती सारे वृक्ष तथा तृण सूख गये थें । श्रीकृष्ण ने देखा कि इस विशाल सर्प के विष के प्रभाव से वृन्दावन से होकर बहने वाली पूरी नदी घातक बन चुकी थी ।

वे कृष्ण, जिन्होंने संसार के समस्त दुष्टों का वध करने के लिए अवतार लिया था, तुरन्त यमुना तट स्थित एक विशाल कदम्ब वृक्ष पर चढ़ गये । कदम्ब एक गोल पीले फूल वाला वृक्ष हैं, जो सामान्यतया वृन्दावन क्षेत्र में ही दिखता है । इस वृक्ष की चोटी पर चढ़कर उन्होंने अपना फेंटा

कसा और पहलवान की भाँति अपनी भुजाएँ ठोंक कर वे उसी विषैली झील के बीचोंबीच कूद पडें । श्रीकृष्ण जिस कदम्ब वृक्ष से कूदे, एकमात्र वही वृक्ष था, जो सूखने से बचा हुआ था । कुछ भाष्यकारों का कहना है कि श्रीकृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श पाकर वह वृक्ष तरुन्त जीवित हो उठा । अन्य पुराणों में कहा गया हैं कि विष्णु के शाश्वत बाहन गरुड को पता था कि विष्य में कृष्ण ऐसा कार्य करेंगे, अतः उसने इस वृक्ष को जीवित रखने के लिए उस पर कुछ अमृत डाल दिया था । ज्योंही भगवान् कृष्ण जल में कूदे त्योंही नही के किनारे एक सौ गज की दूरी तक आप्लावित हो उठे मानों जल में कोई बहुत बडी वस्तु गिरी हो । कृष्ण द्वारा शक्ति का यह प्रदर्शन अलौकिक नहीं है क्योंकि वे सारी शक्ति के आगार हैं ।

श्रीकृष्ण ने तैरते हुए एक विशाल बलशाली हाथी के समान गर्जना की जिसे कालिय नाम ने सुना । यह गर्जना उसके लिए असह्य थी और उसे समझते देर न लगी कि यह उसके आवास पर आक्रमण करने का प्रयास हैं । अतः वह तुरन्त कृष्ण के सामने आ गया । उसने देखा कि कृष्ण सचमुच दर्शनीय है, क्योंकि उनका शरीर इतना सुन्दर तथा कोमल था-उनका रंग नीले बादल के समान था । और उनके पाँव कमल-पुष्प जैसे थे-वे श्रीवत्स, रत्नों तथा पीताम्बर से सुशोभित थे । उनके सुन्दर मुख पर मुसकान थी । वे अत्यन्त शक्ति से यमुना नदी में क्रीडा कर रहे थे । किन्तु कृष्ण की इतनी सुन्दरता के बावजूद कालिय अपने मन में अत्यन्त क्रुद्ध हुआ, अतः उसने उन्हें अपनी कुंडली में दबोच लिया । कृष्ण को इस आविश्वसनीय प्रकार से सप्र की कुंडली में बँधा देख कर स्नेही ग्वाले तथा वृन्दावन के अन्य वासी अतयन्त भयभीत हो उठे । उन्होंने अपना सर्वस्व अपने प्राण, सम्पत्ति,द प्रेम, कार्यकलाप-कृष्ण को अर्पण कर रखे थे । कृष्ण को उस स्थिति में देखकर वे अत्यन्त भयभीत होकर भूमि पर गिरप डे । सारी गौवें, बैल तथा बछडे शोक-संतप्त हो उठे और वे सब

चिन्तातुर होकर कृष्ण को देखने लगे । भय के कारण वेदनावश वे केवल रो सके । वे अपने प्यारे कृष्ण को सहायता पहुँचाने में असमर्थ थे और मात्र यमुना के तट पर खडे रहे ।

जब यह घटना यमुना तट पर घट रही थी, तो कुछ अपशकुन भी प्रकट होने लगे थे । पृथ्वी हिलने लगी थी, आकाश से उल्कापिंड गिरने लगे थे और मनुष्यों के शरीर के बाएँ अंग काँपने लगे थे । ये सब आसन्न महान संकट के संकेत थे । इन अशुभ संकेतों को देखकर महाराज नन्द समेंत सारे ग्वाले भयवश अतयन्त चिन्तित हो उठे । उसी समय उन्हें सूचित किया गया कि कृष्ण अपने बडे भाई बलराम के बिना ही चरागाह गये हैं । ज्योंही नन्द, यशोदा तथा ग्वालों ने यह खबर सुनी, तो वे और अधिक चिन्तित हो उठे । कृष्ण के प्रति अत्यधिक स्नेह के कारण ति कृष्ण की शक्ति से अपरिचित होने के कारण वे सब शोक तथा चिन्ता से अभिभूत हो उठे, क्योंकि उन्हें कृष्ण से अधिक प्रिय और कुछ न था और उन्होंने कृष्ण के लिए अपना जीवन, धन, स्नेह, मन तथा कर्म-सब कुछ अर्पित कर दिया था । कृष्ण के प्रति अत्यधिक आसक्ति होने से उन्होंने सोचा, आज कृष्ण अवश्य ही विनष्ट हो जाएँगे ।

वृन्दावन के सारे वासी कृष्ण के देखने के लिए गाँव से बाहर आ गये । इस मंडली में बच्चें, युवक तथा वृद्ध, स्त्रियाँ, पशु एवं सारे जीव थे । वे जानते थे कि कृष्ण ही उनका एकमात्र जीवनाधार हैं । जब यह सब घटना घट रही थी, तो समस्त ज्ञान के स्वामी बलराम खडे-खडे हँस रहे थें । उन्हें पता था कि उनका छोटा भाई कृष्ण कितना शक्तिशाली हैं, और जब कृष्ण एक सामान्य संसारी सर्प से लड रहे थे, तो चिन्ता की कोई बात न थी । इसलिए उन्होंने स्वयं इस चिन्ता में कोई भाग नही लिया । दूसरी ओर वृन्दावन के सारे वासी जो विचलित होने के कारण कृष्ण भाग नही लिया । दूसरी ओर वृन्दावन के सारे वासी जो विचलित होने के कारण कृष्ण के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए उन्हें ढूँढ़ने लगे थे और इस

तरह ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे तेजी से यमुना के तट की ओर आगे बढ़े । अन्ततोगत्वा ध्वजा, बाण तथा शंख से अंकित पदचिन्हों का अनुसरण करते-करते वृन्दावनवासी नदी तट पर आ पहुँचे और देखा कि सारी गौवें तथा बालक कृष्ण को कालिय नाग की कुंडली में बँधा देखकर विलाप कर रहे थे । तब वे सब और भी अधिक शोकमग्न हो गये ।

यद्यपि उनके विलाप पर बलराम हँस रहे थे, किन्तु सारे ब्रजवासी तो दुख के सागर में निमग्न थे क्योंकि वे सोच रहे थे कि कृष्ण का अन्त हो चुका हैं । यद्यपि वृन्दावनवासी कृष्ण के विषय में अधिक नहीं जानते थे, किन्तु कृष्ण के प्रति उनका प्रेम अतुलनीय था । ज्योंही उन्होंने देखा कि कृष्ण कालियनाग की कुण्डली में बँधे हैं और सारी गौंवें तथा बालक विलाप कर रहे हैं, तो उन्हें कृष्ण की मैत्री, उनका हँसमुख चेहरा, उनके मीठे शब्द तथा अपने साथ उनके व्यवहार की बाते यादि आने लगी । यह सब सोचते हुए तथा यह देखकर कि कृष्ण अब कालिय-नाग के चंगुल में फँसे हैं, उन्हें तीनों लोक शून्य प्रतीत होने लगे । भगवान् चैतन्य ने भी कहा है कि कृष्ण के बिना उन्हें तीनों लोक शून्य प्रतीत हो रहे थें । कृष्णभावनामृत की यह चरम अवस्था हैं । वृन्दावन के लगभग समस्त वासी कृष्ण के लिए सर्वाधिक प्यार रखते थे ।

जब माता यशोदा वहाँ आईं, तो वे यमुना नदी में घुसने लगीं, किन्तु जब लोगों ने उन्हें रोक दिया, तो वे मूर्च्छित हो गईं । अन्य सन्तप्त मित्रों के नेत्रों से अश्रुओं की झडी लगी थी जो नदी की तरंग्रों जैसे उमड रही थी, किन्तु वे सब माता यशोदा को सचेत करने के लिए कृष्ण की दिव्य लीलाओं का जोर-जोर से वर्णन करने लगे । फिर भी वे निश्चल बनी रहीं मानों मृत हो, जो कृष्ण पर अपने प्राण न्यौछावर कर रखे थे, यमुना जल में घुसने को सन्नद्ध थे, किन्तु बलराम ने उन सबकों मना कर दिया, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि कृष्ण को किसी तरह का संकट नही हैं ।

दो घंटे तक कृष्ण सामान्य शिशु की भाँति कालिय की कुंडली में बँधे रहे, किन्तु जब उन्होंने देखा कि गोकुल के सारे वासी-उनके माता-पिता, गोपियाँ, ग्वाले तथा गाएँ सभी-मृतप्राय हैं और आसन्न मृत्यु से उसको कोई छुटकारा नहीं हैं, तो कृष्ण ने तुरन्त अपने को मुक्त कर लिया । वे अपने शरीर का विस्तार करने लगे । अतः जब सर्प ने उन्हें पकडे रखना चाहा, उसे काफी जोर (खींचतान) लगाना पडा । इस जोर के कारण उसकी कुण्डली शिथिल पड गई और अब उसके पास भगवान् कृष्ण को छोड देने के अतिरिक्त और कोई चारा न रह गया । तब कालिय अत्यन्त क्रुद्ध हुआ उसने अपने विशाल फन फैला लिये । उसने अपने नथुनों से विषैली फूत्कार की, उसकी आँखे अग्नि के समान दहक उठीं और उसके मुख से ज्वाला निकलने लगी । वह विशाल नाग कुछ काल तक शान्त भाव से कृष्ण को देखता रहा । फिर अपनी दुधारी जीभ से होंठ चाटते हुए दोहरे फनों और विषैले नेत्रों वाले उस नाग के कृष्ण को देखा । कृष्ण तुरन्त उस पर टूट पडे, जिस प्रकार गरुड सर्प पर झपटता है । इस प्रकार हमला किये जाने पर कालिय ने कृष्ण को डसना चाहा, किन्तु कृष्ण उसके चारो ओर घूमने लगे । कृष्ण तथा कालिय दोनों के चक्कर काटते रहने से सर्प धीरे-धीरे थकने लगा और उसका बल घअने लगा । कृष्ण ने तुरन्त सर्प के फनों को नीचे दबाया और झट से कूद कर उनपर चढ़ गये । भगवान् ने चरणकमल सर्प के फनों की मणियों की किरणों से लाल रंग के दिख रहे थे । फिर नृत्य जैसी सम्पूर्ण कलाओं के मूल अधीश्वर भगवान्-कृष्ण सर्प के फनों पर नाचने लगे जो इधर-अधर हिल रहे थे । यह देखकर स्वगै के निवासी उन पर पुष्पों की वर्षा करने लगे, दुंदुभियाँ बजाने लगे और विविध प्रकार की बाँसुरियाँ बजाकर गीत तथा स्तुतियाँ गाने लगे । इस प्रकार गन्धर्व, सिद्ध तथा देवता आदि स्वर्ग के निवासी अत्यन्त प्रसन्न हुए ।

जब कृष्ण कालिय के फनों पर नाच रहे थे, तो उसने अन्य फनों के द्वारा उन्हें नीचे गिराना चाहा । कालिय के लगभग एक सौ फन थे, किन्तु कृष्ण ने सबों को अपने वश में कर रखा था । वे उन पर अपने चरणकमलों की प्रहार कर रहे थे, जो कालिय के लिए असह्य हो रहा था । धीरे-धीरे कालिय के प्राणें पर आ बनी । वह सभी प्रकार का मल वमन करने लगा और अपने फूत्कार से अग्नि निकालने लगा । इस प्रकार अपने भीतर से विषैले पदार्थ निकाल-निकाल कर कालिय पापमय स्थिति को प्राप्त हो गया । वह अत्यन्त क्रोध से आत्मरक्षा के लिए संघर्ष करने लगा और भगवान् को मारने के लिए उसने अपना एक फन उठाया । किन्तु उन्होंने तुरन्त उसे पकड कर पाद-प्रहार द्वारा वश में कर लिया और उस पर नाचने लगे । ऐसा लग रहा था मानों भगवान् विष्णु की पूजा हो रही हो; सर्प के मुख से निकल रहे विष पुष्पाञ्जलि-से प्रतीत हो रहे थे । फिर कालिय अपने मुख से विष के स्थान पर रक्त वमन करने लगा और बुरी तरह थक गया । उसका सारा शरीर भगवान् के चरण-प्रहारों से जर्जर हो उठा । अन्ततः वह अपने मन में समझ गया कि कृष्ण श्रीभगवान् हैं,; अतः वह उनकी शरण में आया । असे अनुभव हुआ कि कृष्ण ही सबों के स्वामी परमेश्वर हैं ।

तब सर्पपत्नियों ने देखा कि उनका पति उन भगवान् के पाद-प्रहार द्वारा वशीभूत किया जा चुका हैं और वह मरणासन्न है । भगवान् के भारी बोझ को उठाने के कारण जिनके उदर में सारा ब्रह्माण्ड समाया है । कालिय की पत्नियों ने जल्दी-जल्दी भगवान् की पूजा करने की तैयारी की । इस जल्दी में उनके वस्त्र, केश तथा आभूषण अस्त-व्यस्त हो गये । उन्होंने भी भगवान् को आत्मसमर्पण कर दिया और उनकी प्रार्थना करनी शुरू कर दी । वे अपनी-अपनी सन्तानों को सामने किये उनके समक्ष आईं और यमुना के तट पर पृथ्वी पर गिरकर उन्हें प्रणाम करने लगी । नागपत्नियाँ जानती थीं कि कृष्ण समस्त शरणागतों के शरण हैं और वे

अपनी प्रार्थनाओं द्वारा भगवान् को प्रसन्न करके अपने पति को आसन्न संकट से छुडाने के लिए इच्छुक थीं ।

नागपत्नियों ने इस प्रकार प्रार्थना की , हे भगवान्! आप समदर्शी हैं । आपके लिए अपनें पुत्रों, मित्रों या शत्रुओं में कोई भी अन्तर नहीं हैं । अतः अपने कालिय को जो दण्ड दिया है, वह सर्वथा अनुकूल हैं । हे स्वामी! आप दुष्टों के संहार के लिए ही इस जगत में अवतरित हुए हैं और चूँकि आप परम सतय है अतः आपकी परम कृपा समझती हैं, क्योंकि जब आप किसी को दण्ड देते हैं, तो उसका अर्थ यह लगाया जाता है उसके पापकर्मों का फल समूल नष्ट हो गया हें यह स्पष्ट हैं कि कालिय नाग के शरीर में प्रकट यह तुच्छ प्राणी समस्त प्रकार के पापों से पूरित हो चुका होगा, अन्यथा उसे सर्प का शरीर क्यों प्राप्त होता? उसके फनों पर आपके नाचने से उसके सर्प-शरीर से उत्पन्न सारे पापों के फल क्षीण हो चुके हैं अतः यह अत्यन्त शुभ है कि आपने क्ररुद्ध होकर उसे इस प्रकार दण्डित किया । हम सभी आश्चर्यचकित है कि आप इस सर्प पर इतने प्रसन्न क्यों हुए हैं? निश्चय ही इसने पूर्वजन्म में विभिन्न धार्मिक कृत्य किये होंगे और कई प्रकार की तपस्याएँ की होगी जिन से, सभी लोग प्रसन्न हुए होंगे और उसने समस्त जीवों के लिए विश्वव्यापी कल्याण-कार्य किये होंगे ।

नागपत्नियों से इसकी पुष्टि होती है कि जब तक कोई पूर्वजन्म में भक्ति द्वारा सुकृत नहीं करता तब तक उेस कृश्ण का सानिध्य प्राप्त नहीं होता । भगवान् चैतन्य ने अपने शिक्षाष्टक में कहा है कि मनुष्य को अत्यन् विनीत भाव से अपने को तृण से भी तुच्छ मानकर तथा अपने सम्मान की परवाह न करके दूसरों को सभी प्रकार से सम्मान देते हुए हरे कृष्ण मंत्र का उच्चारण करना चाहिए । नागपत्नियों आश्चर्यचकित थीं कि यद्यपि अत्यन्त भयानक पापकर्मों के कारण कालिय को सर्प का शरीर प्राप्त हुआ था, किन्तु तो भी वह कृष्ण के चरणकमलों का सान्निध्य प्राप्त कर

रहा था । निश्चय ही यह किसी साधारण पुण्यकर्म का फल न था । इन दो विरोधी तथ्यों से वे विस्मित थीं । इस तरह से वे आगे प्रार्थना करती रहीं, हे भगवन्! हमें यह देखकर विस्मय है कि उसे अपने सिर पर आपके चरणकमलों की धूति धारण करने का शुभ अवसर मिला । इसकी कामना बडे-बडे साधु लोग करते हैं । यहाँ तक कि लक्ष्मीजी तक को आपके चरणकमलों की धूलि का सौभाग्य प्राप्त करने के लिए कठिन तपस्या करनी पडी, अतः यह कैसे सम्भव हो सका कि कालिय नाग को अपने शीश पर आपकी चरणधूलि धारण करने का अवसर इतनी आसानी से प्राप्त हुआ? हमने शास्त्रों से सुन रखा है कि जिन्हें आपके चरणकमलों की रज का वरदान प्राप्त हो जाता हैं वे इस ब्रह्माण्ड में ब्रह्मा जैसे सर्वोच्च पद या किस स्वर्ग का राजत्व अथवा इस लोक की सार्वभौम सत्ता तक की परवाह नहीं करते । न ही वे इस पृथ्वी के ऊपर स्थित लोकों, यथा सिद्धलोक पर राज्य करने की आकांक्षा करते हें, न ही वे योगद्वारा योगशक्ति प्राप्त करने की इच्छा करते हैं । हे नाथ! यद्यपि यह सर्प प्रकृति के अत्यन्त निकृष्ट गुण द्वारा पालित योनि में जन्मा हें और यह क्रोध से युक्त है, किन्तु इस सर्पराज को अत्यन्त दुर्लभ वस्तु प्राप्त हुई हैं । सारे जीव जो इस ब्रह्माण्ड में चक्कर लगा रहे हैं और विभिन्न योनियों को प्राप्त हो रहे है, केवल आपकी कृपा से ही सर्वश्रेष्ठ वर प्राप्त कर सकते हैं ।

चैतन्य चरितामृत में इसकी भी पुष्टि हुई हैं कि इस ब्रह्माण्ड में सारे जीव विविध योनियों में घूमते रहते हैं किन्तु कृष्ण तथा गुरु की कृपा से उन्हें भक्ति का बी प्राप्त हो सकता हैं और इस प्रकार उनकी मुक्ति का मार्ग साफ हो जाता हैं ।

नागपत्नियों ने आगे निवेदन किया, अतः हे स्वामी! हम आपको सादर नमस्कार करती हैं, क्योकि आप परम पुरुष हैं और प्रत्येक जीव के भीतर परमात्मा रूप में निवास करते हैं; आप इस दृष्य जगत में परे

हैं, किन्तु आप परह ी सब कुछ निर्भर हैं । आप साक्षात् दुर्दान्त काल हैं । सम्पूर्ण काल-शक्ति आप में स्थित हैं, अतः आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य; मास, दिन, घंटा, क्षण के रूप में समग्र काल के द्रष्टा और प्रतिरूप है । दूसरें शब्दों में, हे भगवान्! आप प्रत्येक क्षण, घंटा, दिन, वर्ष ति भूत, वर्तमान, भविष्य में घटित होने वाले सारे कार्य-कलापों को भली-भाँति देख सकते हैं । आप स्वयं विराट रूप हैं, तो भी आप इस ब्रह्माण्ड से भिन्न हैं आप एक ही समय इस ब्रह्माण्ड से अभिन्न तथा भिन्न है ।अतः हम आपको सादर नमस्कार करती हैं । आप साक्षात् पूर्ण ब्रह्माण्ड हैं, फिर भी आप उसके स्रष्टा हैं । आप ही इस समस्त ब्रह्माण्ड के अधीक्षक तथा पालक हैं और आप ही इसके आदि कारण भी हैं ।यद्यथ्प् आप अपने त्रिगुणात्मक अवतारों-ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश्वर-के रूप में इस ब्रह्माण्ड में व्याप्त हैं, तथापि आप भौतिक सृष्टि से परे हैं । यद्यपि आप सभी प्रकार के जीवों, उनकी इन्द्रियों, प्राणों, मनों तथा बुद्धि की उत्पत्ति के कारण हैं किन्तु आप अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा जाने जाते हैं । अतः हम आपको सादर नमस्कार करती हैं, क्योंकि आप अनन्त, सूक्ष्मतम से सूक्ष्मतर समस्त उत्पत्ति के केन्द्र तथा सब कुछ जानने वाले हैं । विविध श्रेणी के चिन्तक आप तक पहुँचने का यत्न करते रहते हैं । आप ही समस्त दार्शनिक प्रयासों के चरम लक्ष्य हैं और वस्तुतः आप ही समस्त दर्शनों तथा विभिन्न सिद्धान्तों द्वारा वर्णित हैं । हम आपको सादर प्रणम करती है, क्योंकि आप समस्त शास्त्रों के तथा ज्ञान के स्त्रोत हैं । आप समस्त साक्ष्यों के मूल हैं और आप हम सबों को परम ज्ञान प्रदान करने वाले परम पुरुष हैं । आप समस्त इच्छाओं के कारण हैं और सभी प्रकार की संतुष्टि के कारण हैं । आप साक्षात् वेद हैं, अतः हम आपकों सादर नमस्कार करती हैं । हे भगवान्! आप भगवान् श्रीकृष्ण है और परम भोक्ता भी हैं, जो अब सात्विक भाव रूप वसुदेव के पुत्र रूप में प्रकट हुए हैं । आप मन तथा बुद्धि के अधिष्ठाता अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न हैं और समस्त वैष्णवों के स्वामी हैं । आप अपने चतुर्त्यूह रूप में वासुदेव,

संकर्षण, अनिरुद्ध तथा प्रद्युम्न है और मन तथा बुद्धि के विकास के कारणस्वरूप हैं । आपके कार्यकलापों से ही सारे जीव या तो विस्मृति से आवृत हो जाते हैं या अपने असली स्वरूप को पहचान लेते है । इसकी पुष्टि भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में भी इस प्रकार हुई हैं भगवान् सबों के हृदय में परमात्मा रूप में स्थित हैं और उनकी उपस्थिति के कारण ही जीव या तो अपने आपको भूल जाता है या अपने आदि स्वरूप को पहचान लेता हैं । हम कुछ-कुछ समझती हैं कि आप हमारे हृदयों में हमारे सारे कार्यों के साक्षी रूप में स्थित है । किन्तु आपकी उपस्थिति की अनुभूति कर पाना अत्यन्त कठिन है, यद्यपि हममें से प्रत्येक कुछ सीमा तक ऐसा कर सकती हैं । आप भौतिक तथा आध्यात्मिक शक्तियों के परम नियन्ता हैं, अतः आप परम अग्रणी हैं । यद्यपि आप इस दृश्य जगत से भिन्न है । आप इस दृश्य जगत के प्रत्येक अवयव के साक्षी तथा स्रष्टा हैं । अतः हम आपको नमस्कार करती है । हे भगवान्! आपको इस दृश्य जगत की उत्पत्ति करने में व्यक्तिगत रूप से कुछ भी नहीं करना पडता; आप अपनी विविध शक्तियों-सतों, रजो तथा तमो गुणों-के द्वारा इस दृश्य जगत की उत्पत्ति, पालन तथा संहार करते है । आप समस्त काल शक्ति के नियन्ता रूप में अपने भृकुटिविलास मात्र से ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति करते हें और प्रकृति की उन विभिन्न शक्तियों कों, जो विभिन्न प्राणियों पर विभिन्न रूप से कार्य कर रही हैं, शक्ति प्रदान करते हें । अतः कोई भी इसका अनुमान नहीं लगा सकता कि इस ंसार के भीतर आपके कार्यकलाप किस तरह चलते रहते हैं । हे प्रभु! यद्यपि आपने उत्पात, पालन तथा संहार के लिए ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव, इन तीन प्रमुख देवों के रूप में अपना विस्तार किया है, किन्तु भगवान् विष्णु के रूप में आपका अवतार प्राणियों के वरदान के लिए हैं । अतः जो लोग शान्त है और परम शान्ति के इच्छुक हैं उनके लिए आपके विष्णु रूप शान्त अवतार की पूजा की संस्तुति की जाती हैं ।

हे भगवान्! हम आपके समक्ष प्रार्थना कर रही हैं आप यह जान सकते हैं कि यह बेचारा सर्प अपना प्राण त्यागने वाला है । आप जानते है कि हम स्त्रियों के लिए हमारा पति ही सर्वस्व हैं, अतः हमारी प्रार्थना है कि आप हमारे पति कालिय नाग को क्षमा कर दें, क्योंकि यदि यह सर्प मर जाता है, तो हम सब घोर संकट में पड जाएँगी । आप हम पर कृपा करें और इस परम पापी को क्षमादान करें । हे प्रभु! प्रत्येक जीव आपकी सन्तान हैं, अतः आप इसे क्षमा करें, भले ही इसने आपकी शक्ति को जाने बिना आपके प्रति अपराध किया है । हमारी प्रार्थना है कि इसे इस बार क्षमा करें । हे प्रभु! हम आपको अपनी प्रेममयी सेवाएँ अर्पित कर रही हें, क्योंकि हम सभी आपकी नित्य सेविकाएँ हैं । आप हमें जो भी आदेश देगें हम उसका पालन करेंगी । यदि कोई आपके आदेशों का पालन करें, तो वह अपनी सारी निराशा से मुक्त हो सकता हैं ।

नागपत्नियों द्वारा प्रार्थना किये जाने पर भगवान् कृष्ण ने कालिय को अपने पाश से मुक्त कर दिया । कालिय पहले ही भगवान् के प्रहार से अचेत था । अतः चेतना आने पर तथा पाश से मुक्त होने पर कालिय में प्राण का संचार हुआ हैं और उसकी इन्द्रियाँ चैतन्य हो उठीं । वह हाथ जोडकर परम भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करने लगा, मेरा जन्म ऐसी योनि में हुआ कि मैं तमोगुण के कारण स्वभाव से क्रोधी और ईर्ष्यालु हूँ । आप भली-भाँति जानते हें कि प्राकृति स्वभाव को त्याग पाना कितना कठिन है, यद्यपि इस स्वभाव के कारण ही जीव एक शरीर से दूसरे में देहान्तर करता रहता हैं । भगवद्गीता में भी कहा गया है कि भौतिक प्रकृति के चंगुल से छुटकारा पाना अतीव कठिन हैं, किन्तु यदि मनुष्य भगवान् कृष्ण की शरणमें चला जाता है, तो प्रकृति के उन समस्त गुणों के मूल स्रष्टा हैं । जिनसे इस ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति होती है । आप जीवों की उन विभिन्न प्रवृत्तियों के कारणस्वरूप हैं जिनके कारण उन्हें विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं । हे स्वामी! मैं सर्प के रूप में उत्पन्न हुआ हूँ, अतः स्वभाव

से ही मैं अत्यन्त क्रोधी हूँ, अतः आपकी कृपा के बिना इस स्वभाव को त्याग सकना कैसे सम्भव हो सकता है? आपकी माया के बंधन से छूट पाना बहुत कठिन हैं । आपकी माया से ही हम दास बने हुए हैं । हे भगवन्! मेरी इन अपरिहार्य भौतिक प्रवृत्तियों के लिए मुझे क्षमा प्रदान करें । मैं आपकी शरण में आया हूँ । अब आप चाहे तो मुझे दण्ड दें या मुझे बचा लें ।

यह सुनकर बालरूप श्री भगवान् ने सर्प को इस प्रकाद आदेश दिया,द तुम तुरन्त इस स्थान को छोडकर सागर में चले जाओ । अब इसमे तनिक भी विलम्ब न लगे । तुम अपने साथ अपनी पत्नियाँ, पुत्र तथा अपनी सम्पत्ति ले जा सकते हो । अब तुम यमुना के जल को दूषित न करना जिससे इसके निर्मल जल को निर्बाध होकर हमारी गौंवे तथा ग्वालबाल पी सकें । तब भगवान् ने घोषण की कि कालिय ना को दिया गया आदेश सब कोई सुन लें जिससे अब कोई कालिय से न डरें ।

जो कोई कालिय दमन की इस कथा को सुनता है उसे सर्पों के ईर्ष्यालु कर्मों से डरने की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी । भगवान् ने यह भी उद्घोष किया, यदि कोई इस कालियझील में स्नान करता है जहाँ मैंने तथा मेरे ग्वालबालों ने स्नान किया है या यदि कोई एक दिन उपवास उपवास रख कर इसके जल से पितरों का तर्पण करता है, तो वह सारे पापों के फलों से मुक्त हो जाएगा । भगवान् ने कालिय को भी आश्वासन दिया तुम यहाँ गरुड के भय से भाग कर आये थे, क्योंकि वह समुद्र की निकटवर्ती सुन्दर भूमि पर तुम्हारा भक्षण करना चाहता था । अब तुम्हारे सिर पर मेरे चरणकमलों के चिन्ह देखकर गरुड तुमसे कोई नहीं करेगा ।

भगवान् कालिय तथा उसकी पत्नियों पर प्रसन्न हुए । उनका आदेश पाते ही कालिया तथा उसकी पत्नियाँ सुन्दर वस्त्र, फूल, माला, रत्न, आभूषण, चन्दन, कमलपुष्प तथा फलों की भेंट चढाकर उनकी पूजा

करने लगे । इस प्रकार उन्होंने अपने शत्रु गरुड के स्वामी को प्रसन्न कर लिया जिस से वे बहुत भयभीत थें । फिर कृष्ण के आदेश का पालन करते हुए उन्होंने यमुना-झील छोड दी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " कालिय दमन " नामक सोलहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 17
दावाग्नि का शमन

कालिय दमन की कभा सुनने के बाद राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा कि कालिय ने अपना सुन्दर स्थान क्यों त्यागा था? और गरुड उनके प्रति विरोध क्यों रखता था? शुकदेव गोस्वामी ने राजा को बताया कि नागालय नामक द्वीप सर्पों से बसा था और कालिय विहँ का प्रमुख सर्प था । उस द्वीप में सर्प खने का आदि होने के कारण , गरुड सर्प खाने को आता था और इच्छानुसार अनेक सर्पों को मारता था । उनमें से वह कुछ को खा जाता, किन्तु अन्यों का वृथा ही वध करता रहता । इससे सर्प-समाज इतना भयभीत हो उठा था कि उनके मुखिया वासुकि ने ब्रह्माजी से रक्षा करने की प्रार्थना की । ब्रह्माजी ने ऐसी अमावस्या को सर्प-समाज गरुड को एक सर्प की भेंट दिया करे । यह सर्प वृक्ष के नीचे गरुड को बलि रूप में रख दिया जाता । गरुड इस भेंट से प्रसन्न था, अतः वह अन्य सप विहँ का प्रमुख सर्प था । उस द्वीप में सर्प खने का आदि होने के कारण , गरुड सर्प खाने को आता था और इच्छानुसार अनेक सर्पों को मारता था । उनमें से वह कुछ को खा जाता, किन्तु अन्यों का वृथा ही वध करता रहता । इससे सर्प-समाज इतना भयभीत हो उठा था कि उनके मुखिया वासुकि ने ब्रह्माजी से रक्षा करने की प्रार्थना की । ब्रह्माजी ने ऐसी अमावस्या को सर्प-समाज गरुड को एक सर्प की भेंट

दिया करे । यह सर्प वृक्ष के नीचे गरुड को बलि रूप में रख दिया जाता । गरुड इस भेंट से प्रसन्न था, अतः वह अन्य सर्पो को तंग नहीं करता था ।

किन्तु धीरे-धीरे कालिय ने इस स्थिति का लाभ उठाया । उसे वृथा ही अपने एकति विष की मात्रा का तथा अपनी भौतिक शक्ति का गर्व हो उठा, अतः उसने सोचा, गरुड को यह भेंट क्यों दी जाये? अतः उसने भेंट देना बन्द कर दिया और गरुड को जाने वाली भेंट स्वयं खाने लगा । जब विष्णु के वाहन भक्त गरुड को पता चला कि कालिय ऐसा करता हे तो वह अत्यन्त क्रुद्ध हुआ और इस आक्रामक सर्प को मारने के लिए द्वीप की ओर बढ़ा । कालिय ने अपने अनेक फनों तथा विषैले तीक्ष्ण दाँतो द्वारा गरुड से लडने का प्रयत्न किया । उसने गरुड को काटना चाहा, किन्तु ताक्ष्र्य के पुत्र ने अत्यन्त क्रोध तथा वेग के साथ अपने तेजमय स्वर्णिम पंखों से कालिय के शरीर पर प्रहार किया । कालिय, जो कद्रु के पुत्र अर्थात कद्रुसुत के नाम से भी विख्यात हैं, तुरन्त भागकर कालियझील पहुँचा जो यमुना नदी के भीतर हैं, क्योंकि गरुड वहाँ नहीं पहुँच सकता था ।

कालिय ने निम्नलिखित कारण से यमुना के जल के भीतर निवास किया । जिस तरह गरुड कालिय सर्प के द्वीप में जाता था उसी प्रकार वह यमुना से भी मछली पकड कर उन्हें खाने के लिए जाता था । किन्तु वहाँ सौभरि मुनि नाम के एक महान योगी रहते थे, जो जल के भीतर ध्यान धरते थे । और मछलियों के प्रति सहानुभूति दिखाते थे । उन्होंने गरुड को कहा कि वह मछलियों को तंग करने वहाँ न आए । यद्यपि वह भगवान् विष्णु का वाहन होने के कारण किसी की आज्ञा के अधीन न था, किन्तु उसने इस महान योगी की आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया । उसने बहुत सारी मछलियाँ खाने की बजाये एक बहुत बडी मछली पकड ली जो मछलियों की सरदार थी । सौभरि मुनि अत्यन्त दुखी हुए कि गरुड

मछलियों के सरदार को ले गया । उनकी सुरक्षा के विषय में सोचते हुए उन्होंने गरुड को शाप दिया, यदि आज से तुम यहाँ मछलियाँ पकडने यहाँ आओगे, तो मैं यह बलपूर्वक कहता हूँ कि तुम तुरन्त मारे जाओगे ।

यह शाप केवल कालिय को ज्ञात था, अतः वह आश्वस्त था कि गरुड यहाँ नही आ सकेगा । इसीलिए उसने यमुना दह में शरण लेने की ठानी । किन्तु कालिय द्वारा सौभरि मुनि की शरण में जाना सफल नही हुआ; उसे गरुड के स्वामी कृष्ण ने यमुना से मार भगाया । यहाँ यह देने योग्य है कि गरुड का साधा सम्बन्ध श्रीभगवान् से है और वह इतनी बलशाली है कि उसे न कोई आदेश दे सकता है, न शप । वस्तुतः गरुड को जिन्हें श्रीमद्भागवत में भगवान् के स्तर के समकक्ष बताया गया है सौभरि मुनि द्वारा शाप दिया जाना अपराध था । यद्यपि गरुड ने प्रतिशोध लेने का यत्न नहीं लिया, किन्तु एक वैष्णव पुरुष के प्रति किया गया मुनि का यह अपराध क्षम्य नहीं था । इस अपराध के कारण मुनि को अपने योगी पद से नीचे गिरना पडा और बाद में भौतिक संसार में इन्द्रिय का भोक्ता एक गृहस्थ बनना पडा । इस प्रकार ध्यान के द्वारा आध्यात्मिक आनन्द में लीन रहने वाले सौभरि मुनि का पतन वैष्णवों के प्रति अपराध करने वालों को शिक्षा देता है ।

जब अन्ततः कृष्ण कालियदह से बाहर आ गये, तो उनके सारे मित्रों तथा सम्बन्धियों ने उन्हें यमुना-तट पर देखा । वे उन लोगों के समक्ष अत्यन्त विभूषित रूप में, सारे शरीर में चन्दन चर्चित किये, अमूल्य रत्नों से तथा मणियों से सुशोभित एवं लगभग पूर्णतया स्वर्ण से आच्छादित प्रकट हुए । वृन्दावन के वासियों, ग्वालों, गोपियों, माता यशोदा, महाराज नन्द तथा समस्त गायों एवं बछडों ने कृष्ण को यमुना से आते देखा और उन्हें ऐसा लगा मानों उनके प्राण वापस गए हो । जब किसी को जीवन का पुनः लाभ होता है, तो वह स्वभावतः आनन्द तथा प्रसन्नता में लीन जाता हैं । उन सबों ने एक-एक करके कृष्ण को कण्ठ से लगाया और

अत्यन्त शान्ति का अनुभव किया । माता यशोदा, रोहिणी, महाराज नन्द तथा ग्वाले इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने जब कृष्ण का आंलिगन किया, तो सोचा कि उन्हें जीवन का अन्तिम लक्ष्य प्राप्त हो गया हैं ।

बलराम ने भी कृष्ण का आंलिगन किया, किन्तु वे हँस रहे थे, क्योंकि उन्हें पता था कि जब सारे लोग चिन्तामग्न होंगे, तो कृष्ण क्या करेंगे । वहाँ पर कृष्ण के प्रकट होने के कारण यमुना-तट के सारे वृक्ष, सारी गौंवे, बैल तथा बछडे अत्यन्त प्रसन्न थे । वृन्दावन के सभी ब्राह्मण तथा उनकी पत्नियाँ कृष्ण तथा उनके पारिवारिक जनों को तुरन्त बधाई देने आईं । चूँकि ब्राह्मणों को समाज का गुरु माना जाता है, अतः उन्होंने कृष्ण तथा उनके परिवार को कृष्ण के छूटने पर आशीर्वाद दिये । उन्होंने इस अवसर पर नन्द महाराज से दान देने के लिए भी कहा । महाराज नन्द कृष्ण की वापसी से प्रसन्न होकर ब्राह्मणों को अनेक गौवें तथा प्रभूत सोना दान में देने लगे । जब नन्द महाराज इस तरह व्यस्त थे, तो माता यशोदा कृष्ण का आंलिगन मात्र करके उन्हें अपनी गोद में बैठाकर निरन्तर अश्रुपात करती रहीं ।

चूँकि रात्रि हो चुकी थी और गौवों तथा बछडो समेत वृन्दावन के समस्त वासी अत्यधिक थहे थे, अतः उन्होंने नदी-तट पर ही विश्राम करने का निर्णय लिया । अर्द्धरात्रि में, जब सारे लोग सोये हुए थे, तो सहसा एक विशाल दावाग्नि लग गई और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो यह शीघ्र ही सारे वृन्दावनवासियों को निगल जाएगी । उन्हें ज्योंही अग्नि की तपन का अनुभव हुआ त्योंही उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण कर ली, यद्यपि वे उनके शिशु की भाँति खेल में मग्न थे । वे सब कहने लगे हे कृष्ण! हे भगवान्! हे बल के आगार प्रिय बलराम! हमें इस सर्वभक्षी तथा विनाशक अग्नि से बचाएँ । हमारे पास तुम्हारे अतिरिक्त कोई अन्य शरण नहीं हैं । यह विनाशकारी अग्नि हम सबको लील जाएगी । इस तरह उन्होंने यह कहते हुए उनसे प्रार्थना की कि वे उनके चरणकमलों के

अतिरिक्त अन्य किसी की शरण ग्रहण नहीं करेंगे । भगवान् कृष्ण ने अपने ग्रामवासियों पर कृपालु बन कर तुरन्त ही सम्पूर्ण दावाग्नि को निगल लिया और उन्हें बचा लिया । यह कृष्ण के लिए असम्भव न था, क्योंकि वे इच्छानुसार कुछ भी कर सकने की असीम शक्ति से युक्त हैं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " दावाग्नि का शमन " नामक सत्रहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 18
प्रलम्बासुर का वध

विनाशकारी अग्नि को बुझाकर कृष्ण पुनः अपने परिजनों, मित्रों, गौवों, बछडों तथा बैलों से घिर कर और उनके गायन से महिमामण्डित होकर वृन्दावन में प्रविष्ट हुए, जो सदैव गायों से परिपूर्ण रहता है । जब कृष्ण तथा बलराम वृन्दावन में ग्वालों तथा गोपियों के मध्य जीवन का आनन्द लूट रहे थें, तो क्रमशः ग्रीष्म ऋतु आ गई । भारत में ग्रीष्म ऋतु का कोई स्वागत नहीं करता, क्योंकि वहाँ इसमें अत्यधिक गर्मी पडती है, किन्तु वृन्दावन के सारे लोग प्रसन्न थे, क्योंकि वहाँ ग्रीष्म ऋतु वसन्त की भाँति प्रकट हुई थी । ऐसा कृष्ण तथा बलराम के वहाँ रहने के कारण हो सका, क्योंकि वे दोनों ब्रह्मा तथा शिव के भी नियामक हैं । वृन्दावन में अनेक झरने हैं जिनसे निरन्तर पानी गिरता रहता है और उनकी ध्वनि इतनी मीठी होती है कि इससे झींगुरों की झनकार दब जाती हैं । सर्वत्र जल बहने के कारण वन सदैव अत्यन्त हरा-भरा तथा सुन्दर दिखता है ।

वृन्दावनवासी सूर्य की झुलसाने वाली गर्मी से या अधिक ताप से कभी भी विचलित नहीं होते थे । वृन्दावन की झीलें हरी घास से घिरी रहती हैं और उनमें कहलार, कंज और उत्पल जैसे नाना प्रकार के कमल-पुष्प खिलते रहते और वृन्दावन में बहने वाली वायु कमल के

सुवासित मकरन्द कणों को अपने साथ ले जाती रहती हैं । जब यमुना की तरंगों, झीलों तथा झरनों के जल-कण वृन्दावनवासियों के शरीर का स्पर्श करते थे, तो वे स्वतः शीतलता का अनुभव करते थे । अतः वे ग्रीष्म ऋतु के द्वारा तनिक भी विचलित नहीं होते थे ।

वृन्दावन सुरम्य स्थल है । यहाँ सदैव फूल खिलते रहते है । यहाँ अनेक प्रकार के अलंकृत हिरन भी रहते हैं । पक्षी कलरव करते हैं, मयूर कूजते हैं और नाचते है तथा मधुमक्खिँ भनभनाती है । कोयलें पंचमस्वर में गाती हैं ।

अतः आनन्दकन्द कृर्त्ती वंशी बजाते, अपने अग्रज बलराम तथा अन्य ग्वालबालों एवं गायों को साथ लिए वृन्दावन के सुन्दर वन में वातावरण का आनन्द लेने के लिए आये । वे वृक्षों के नव-किसलयों के बीच गये जिनके पुष्प मोरपंखो जैसे थे । उन्होंने इस पुष्पों की माला पहनी और केसर-रज से विभूषित हुए । कभी वे नाचते और गाते, तो की वे एक दूसरे से कुश्ती लडते । जब कृष्ण नाचते, तो कुछ ग्वालबल गाते और कुछ बाँसुरी बजाते , कुछ शृङ्ग बजाते, कुछ ताली देते और कृशण की प्रशंसा करते, हे बन्धु! तुम बहुत सुन्दर नाचते हो । वस्तुतः ये सारे बालक देवता थे, जो स्वर्गलोक से कृष्ण को उनकी लालाओं में सहायता करने आये थे । ये देवता ग्वालबालों के वेश में कृष्ण को नाचने में प्रोत्साहन दे रहे थे, जिस प्रकार एक कलाकार दूसरे की प्रशंसा करके प्रोत्साहित करता है । तब तक कृष्ण तथा बलराम का मुण्डन संस्कार नहीं हुआ था, अतः उनके बाल कौओं के पंखों की भाँति इकठ्ठे हो गए थे । वे अपने मित्रों के साथ सदा आँखमिचौली खेलते या परस्वर लडते-भिडते रहते । कभी-कभी जब उनके मित्र कीर्तन करते तथा नाचते होते, तो कृष्ण उनकी प्रशंसा करते, मित्रो! तुम लोग अत्युत्तम नाच तथा गायन कर रहे हो । लडके बैल और गोल-गोल आमलकी फलों को गेंद बनाकर खेलते । कभी-कभी वे जंगली हिरणों तथा विविध पक्षियों का अनुकरण करते,

वे एक दूसरे के साथ मेंढक की बोली का अनुकरण करके हँसी उडाते और वृक्षों के नीचे झूलने में आनन्द लेते । कभी-कभी वे परस्पर राजा तथा प्रजा का खेल खेलते । इस प्रकार कृष्ण तथा बलराम अपने मित्रों के साथ सभी प्रकार के खेल खेलते और नदियों, सरोवरों, नालों, सुन्दर वृक्षों तथा उत्तमोत्तम फूलों-फलों से पूर्ण वृन्दावन के सुखदायक वातावरण का आनन्द लूटते ।

एक बार जब से सब अपनी दिव्य लीलाओं में लीन थे, तो प्रलम्बासुर नामक एक असुर उनकी टोली में बलराम तथा कृष्ण दोनों को चुराने के उद्देश्य से घुस आया । यद्यपि कृष्ण एक ग्वालबाल का अभिनय कर रहे थे, किन्तु भगवान् के रूप में वे भूत, वर्तमान तथा भविष्य सब कुछ जानते थे । अतः जब प्रलम्बासुर उनकी टोली में घुस आया, तो कृष्ण सोचने लगे कि इस असुर का किस तरह वध किया जाये, किन्तु बाहर से वे उससे मित्र रूप में मिले और कहा,, प्रिय मित्र! अच्छा हुआ कि तुम हमारी लीलाओं में भाग लेने आये हो । फिर कृष्ण ने अपने समस्त मित्रों को बुलाकर आज्ञा दी, अब हम अपनी-अपनी जोडी बनकार खेलेंगे और जोडे में ही रहकर ललकारेंगे । इस प्रस्ताव के साथ ही सारे बालक एकत्र हो गये ।कुछ बलराम की पाली में हो लिये और कुछ कृष्ण की पाली में और अपनी-अपनी जोडी के साथ खेलने लगे । इसमें हारे हुए खिलाडी को अपनी पीठ पर विजयी खिलाडी को चढाना होता था जिस प्रकार घोडा अपने मालिक को चढाता हैं । वे खेलने लगे और भांडीरवन से होकर जाते समय साथ-साथ गौंवे चराते रहे । श्रीदामा तथा वृषभ सहित बलराम की टोली विजयी हुई , अतः कृष्ण की टोली को इन सबों को अपनी पीठ पर बैठाकर भांडीरवन से होकर जाना पडा । भगवान् श्रीकृष्ण ने हारने केके कारण श्रीदामा को अपनी पीठ पर चढाया और भद्रसेन ने वृषभ को । इस खेल का अनुकरण करते हुए ग्वालबाल के रूप में आये प्रलम्बासुर ने बलराम को अपनी पीठ पर चढा लिया ।

प्रलम्बासुर असुरों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण था और उसने अनुमान लगा लिया था कि ग्वालबालों में कृष्ण ही सर्वाधिक शक्तिमान हैं ।

कृष्ण की टोली से बचने के उदेश्य से प्रलम्बासुर बलराम को दूर ले गया । निस्संदेह यह असुर अत्यन्त बलवान था, किन्तु वह तो बलराम को पर्वत के तुल्य लिए जा रहा था अतः वह उनके भार से थकने लगा, और उसने अपना असली रूप धारण कर लिया । अपने इस रूप में वह सुनहरे मुकुट तथा कुण्डलों से सुशोभित था और ऐसा लग रहा था मानों विद्युतमय बादल चन्द्रमा को धारण किये हो । बलराम ने देखा कि इस असुर का शरीर बादल की सीमा तक फैला है, उसकी आँखे अग्नि के समान जल रही हैं और उसके तीक्ष्ण दाँत मुँह के भीतर चमक रहे हैं ।पहले तो बलराम उस असुर को देखकर चकित हुए और सोचने लगे, यह कैसे हुआ कि अचानक यह वाहक सब तरह से बदल गया है? किन्तु मन विमल होने पर वे तुरन्त समझ गये कि उन्हें कोई असुर उनके मित्रों से दूर लिये जा रहा है और मार डालना चाहता हैं । अतः उन्होंने तुरन्त ही असुर के सिर पर उसी प्रकार मुष्टिप्रहार किया, जिस प्रकार इन्द्र पर्वत पर अपना व्रजप्रहार करता हैं । बलराम के मुष्टिप्रहार से वह असुर चोट खाये सर्प की भाँति मुँह से रक्त वमन करता हुआ मर गया । जब असुर गिरा, तो उसने भीषण गर्जना की, मानों इन्द्र के वज्रप्रहार से विशाल पर्वत गिरा हो । तब सारे बालक उस स्थान की ओर झपटे । इस भयानक दृश्य को देखकर वे बहुत अच्छा! बहुत अच्छा! कहकर बलराम की प्रशंसा करने लगे । फिर यह सोचकर कि बलराम मृत्यु से उबरे हें, वे सब उनका अत्यन्त स्नेहपूर्वक आलिंगन करने लगे और अपनी-अपनी बधाईयाँ तथा आशीष देने लगे । स्वर्गलोक के सारे देवता अत्यन्त प्रसन्न हुए और उन्होंने बलराम के दिव्य शरीर पर पुष्पवर्षा की । इस महा असुर प्रलम्बासुर को मारने के लिए उन्हें आशीष तथा बधाइयाँ भी दीं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " प्रलम्बासुर का वध " नामक अठारहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 19

दावानल-पान

जब बलराम, कृष्ण तथा उनके संगी उपर्युक्त लीलाओं में मस्त थे, तो गौवें बिना रखवाली के मनमाना विचरण करती हुई हरी घास करने के लालच से बन से सुदूर भाग में पहुँच गई । सारी बकरियाँ, गौवें तथा भैंसे एक वन पार करके दूसरे में पहुँची और फिर इषिकाटवी बन में घुस गईं । यह वन हारी घास से पूर्ण था, अतः वे सभी आकृष्ट हो गई, किन्तु जब वे वहाँ पहुँचीं, तो उन्होंने देखा कि वहाँ दावाग्नि लगी हैं, अतः वे सब चीत्कार करने लगीं । इधर जब कृष्ण, बलराम तथा उनके संगियों ने अपने पशुओं को नहीं देखा, तो वे सब बहुत चिन्तित हुए । वे गौवों को उनके पदचिन्हों तथा चरी हुई घास का अनुसरण करते हुए ढूँढ़ने लगे । सभी बालक डरे हुए थे कि उनकी जीविका की साधन रूप गौवें खो गई हैं । गौओं की खोजने से वे भी थक गए और प्यासे हो गए । किन्तु शीघ्र ही उन्हें आपी गौवों की चीत्कार सुनाई दी । कृष्ण जोर-जोर से गौवों का नाम ले-लेकर बुलाने लगीं । किन्तु उस समय तक दावाग्नि ने उन सबों को चारों और से घेर लिया था और स्थिति अत्यन्त भयानक हो गई थी । ज्यों-ज्यों वायु तेजी से चलने लगीं त्यों-त्यों लपटें बढने लगीं और ऐसा प्रतीत होने लगा मानो सारी जड तथा जंगम वस्तुएँ कालकवलित हो जाएँगी । सारी गौवें तथा बालक अत्यन्त भयभीत हो उठे और वे बलराम की ओर उसी तरह देखने लगे जिस प्रकार मरणासन्न व्यक्ति भगवान् के चित्र की ओर देखता हें वे पुकार रहे थें, हे कृष्ण! हे बलराम! आप बहुत बलवान् हैं । हम इस दहकती अग्नि के ताप से जले जा रहे है । हमें अपने

चरणकमलों में शरण दें । हम जानते है कि आप ही इस संकट से हमारी रक्षा कर सकते हैं । हे प्रिय कृष्ण ! आप हमारे घनिष्ठ मित्र है । यह अच्छा नहीं है । कि हम इस तरह कष्ट उठाएँ । हम सभी आप पर पूरी तरह आश्रित हैं और आप समस्त धर्मों के ज्ञाता हैं । हम आपके अतिरिक्त अन्य किसी को नहीं जानते ।

भगवान् कृष्ण ने अपने मित्रों की आर्तवाणी सुनी और उन पर स्नेहमयी दृष्टि डाली । उन्होंने आँखों से ही अपने मित्रों को बता दिया कि डरने का कोई कारण नही हैं तब परम योगी, शक्तिमान ईश्वर श्रीकृष्ण ने तुरन्त ही अग्नि की सारी लपटों का पान कर लिया । इस प्रकार सारी गौवें तथा बालक काल के ग्रास से बच गये । सारे बालक भय से प्रायः मूर्च्छित थे, किन्तु जब उन्हें होश आया और उन्होंने अपनी आँखें खोलीं, तो अपने आपको कृष्ण, बलराम तथा गौवों के बीच भांडीरवन जंगल में पाया । वे आश्चर्यचकित थे कि वे दहकती अग्नि से बाल-बाल बच गये हैं और उनकी गौवें सुरक्षित हैं । उन्होंने मन ही मन सोचा कि कृष्ण कोई सामान्य बालक न होकर देवता हैं ।

संध्या समय कृष्ण तथा बलराम ग्वालबालों तथा गौवों को साथ लिए बाँसुरी बजाते वृन्दावन आये । जब वे सब गाँव पहुँचे गौव पहुँचे, तो गोपियाँ परम प्रसन्न हो गईं । जब कृष्ण वन में होते, तो गोपियाँ सारे दिन उनके विषय में सोचती रहतीं और उनकी अनुपस्थिति में उनका एक-एक क्षण बारह वर्षों की भाँति व्यतीत होता ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " दावानल-पान " नामक उन्नीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 20
शरद का वर्णन

कृष्ण तथा बलराम द्वारा प्रलम्बासुर वध तथा विध्वंसक दावानल-पान की चर्चा वृन्दावन के घर-घर में चलने लगी । ग्वालों ने इन अद्‌भुत कार्यों का वर्णन अपनी पत्नियों तथा अन्य सबों से किया और वे सभी आश्चर्यचकित थे । वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि कृष्ण तथा बलराम देवता थे, जो कृपा करके उनके बालक बनकर वृन्दावन में आये थे इस तरह वर्षाऋतु आई । भारतवर्ष में ग्रीष्म के भीषण आतप (गर्मी) के बाद वर्षाऋतु का आगमन अत्यन्त सुहावना लगात है । आकाश में बादल घिरकर सूर्य तथा चन्द्रमा को ढकते रहते हैं, जो लोगों को अत्यन्त चित्ताकर्षक लगते हैं और प्रतिक्षण वर्षा की आशा रहती है । ग्रीष्म के बाद, वर्षा ऋतु का आगमन जन-जन को जीवनदायी लगता हैं । धन-गर्जन तथा बीच-बीच मे बिजी की चमक लोगों को पुलकित करती रहती हैं ।

वर्षा ऋतु के लक्षणों की तुलना जीवों से की जा सकती हैं, जो प्रकृति के तीन गुणों से आवृत होते हैं । अनन्त आकाश मानो परब्रह्म हो और क्षुद्र जीव मानों बादलों से घिरा आकाश हो अथवा तीनों गुणों से आवतृत्त ब्रह्म हों । मूलतः प्रत्येक जीव ब्रह्म का अंश हैं । परब्रह्म या अनन्त आकाश कभी भी बादल से आच्छन्न नहीं रह सकता । हाँ, उसका एक अंश आच्छन्न हो सकता हैं । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया हैं, जीव श्रीभगवान् के अंश के यप में है । किन्तु वे परमेश्वर के एक नगण्य अंश होते हैं । यह अंश प्रकृति के तीनों गुणों द्वारा प्रच्छन्न रहता है और इसी कारण जीवात्माएँ भौतिक जगत में वास करती हैं । ब्रह्मज्योति सूर्यप्रकाश की भाँति हैं । जिस प्रकार सूर्यप्रकाश में सूक्ष्म चमकीले कण रहते हैं । उसी प्रकार ब्रह्मज्योति भगवान् के सूक्ष्म अंशो से भरी रहती हैं । परमेश्वर

के इसी सूक्ष्म अंश के असीम विस्तार में से कुछ जीव प्रकृति के प्रभाव से प्रच्छन्न रहते हैं और कुछ उससे मुक्त रहते हैं ।

पृथ्वी से सूर्यप्रकाश द्वारा जो जल खिंचता हैं, वही बादल बन जाता है । सूर्य निरन्तर आठ मास तक पृथ्वी की सतह से सभी प्रकार के जल को भाप में परिणत करता रहता है और यही जल बादलों के रूप में एकत्र होता जाता है, जो आवश्यकता के समय वर्षा-जल के रूप में वितरित होता हैं । इसी प्रकार सरकार नागरिकों से आयकर विक्रीकर संग्रह करती है, जो अपने विभिन्न कार्यकलापों यथा कृषि, व्यापार तथा उद्योग आदि द्वारा धन दे सकते हैं इसी तरह सरकार आयकर तथा बिक्रीकर के रूप में कर लगाती हैं । इसकी तुलना सूर्य द्वारा पृथ्वी से जल निष्कासन से की गई हैं । जब पृथ्वी की सतह पर पुनः जल की आवश्यकता पडती है, तो वही सूर्य जल को बादल में बदलकर उस जल को सारे विश्व में वितरित करता हैं इसी तरह सरकार द्वारा संचित कर पुनः लोगों में शैक्षिक कार्य, जन कार्य, सफाई के कार्य आदि के लिए वितरित हो जाना चाहिए । अच्छी सरकार के लिए यह अत्यन्त आवश्यक हैं । सरकार को मनमाना व्यय करने के लिए कर संग्रह नहीं करना चाहिए, अपितु संचित कर का उपयोग राज्य के जन-कल्याण कार्यों में किया जाना चाहिए ।

वर्षा ऋतु में समूचे देश में तेज हवाएँ चलती हैं, जो बादलों को एक स्थान से दूसरे स्थान तक ले जाकर जरूरत मंद जीवों में जल वितरण कराने के लिए वर्षा कराती हैं । ग्रीष्म ऋतु के बाद जल (वर्षा) की नितान्त आवश्यकता होती है, अतः ये बादल उस धनी व्यक्ति के समान हैं, जो आवश्यकता पडने पर अपना पूरा कोष लुटा देता है । इसी तरह ये बादल पूरे विश्व में जल वितरित करके अपने को रिक्त कर देते हैं ।

जब भगवान् रामचन्द्र के पिता महाराज दशरथ अपने शत्रुओं से लडते थे, तो कहा जाता है कि वे उस किसान की तरह उनके पास पहुँचते थे, जो खेत में उगे अनावश्यक पेड-पौधों को समूल नष्ट कर देता हैं । और

जब दान देने का अवसर आता था, तो वे उसी प्रकार धन वितरित करते जिस प्रकार बादल जल बरसाते हैं । बादलों द्वारा वर्षाजल की वितरण इतनी प्रचुर मात्रा में होता हैं । कि इसकी उपमा अत्यन्त उदार धनी पुरुष द्वारा धन-वितरण से की जाती हैं । बादलों से इतनी वर्षा होती है कि जहाँ जल की आवश्यकता नहीं होती, यथा चट्टानों, पर्वतों तथा समुद्रों में, वहाँ भी प्रचुर जल बरसता हैं ये बादल उस दानी पुरुष जैसे हैं, जो पात्र-कुपात्र का विचार किये बिना ही दान के लिए अपना कोष खोल देता हैं । वह मुक्तहस्त दान देता है ।

वर्षा के पूर्व सम्पूर्ण धरातल विभिन्न प्रकार की शक्तियों से लगभग क्षीण हो जाता है और अत्यन्त कृश प्रतीत होता हैं । किन्तु वर्षा के बाद पूरा धरातल वनस्पति से हरा-भरा होकर अत्यन्त स्वस्थ तथा बलिष्ठ प्रतीत होने लगता है । यहाँ पर उस व्यक्ति से तुलना की गई है, जो अपनी भौतिक इच्छा की पूर्ति के लिए तपस्या करता है । वर्षा के बाद पृथ्वी का हरा-भरा होना भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के समान है । कभी-कभी जब देश में अवांछित सरकार का शासन होता हैं । तो लोग सरकार को वश में करने के लिए कठिन तपस्या करते हैं और शासन सँभाल लेने पर वे मोटे-मोटे वेतन लेकर समृद्ध बन जाते हैं । यह क्षणिक लाभ वर्षा ऋतु में पृथ्वी के हरे-भरे हो जाने के समान हैं । वस्तुतः आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के उदेश्य से ही कठिन तपस्या की जानी चाहिए । श्रीमद्भागवत में संस्तुति की गई है कि परमेश्वर के साक्षात्कार के लिए ही तपस्या करना चाहिए । भक्ति में तपस्या करते हुए मनुष्य आध्यात्मिक जीवन की पुनः प्राप्ति कर सकता हैं और उसके बाद उसे असीम आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति होती है । किन्तु यदि कोई भौतिक लाभ को दृष्टि में रख का कठिन तपस्या करता है, तो भागवत के अनुसार उसके परिणाम क्षणिक होते हैं और केवल अल्पज्ञ ही ऐसी इच्छा करते हैं ।

वर्षाऋतु में संध्या समय वृक्षों की चोटी पर इधर-उधर अनेक जुगनू दिखते हैं जो दीपों की भाँति टिमटिमाते हैं किन्तु आकाश के ज्योतिष्क यथा सूर्य तथा चन्द्रमा नहीं दिखते । इसी प्रकार इस कलियुग में नास्तिक या दुष्ट लोग सर्वत्र दिखते हैं, किन्तु वास्तविक आध्यात्मिक उत्थान के लिए वैदिक नियमों का पालन करने वाले लोगों का अभाव हो जाता हैं । इस कलियुग की तुलना जीवों की मेघाच्छादित ऋतु से की गई हैं । इस युग में वास्तविक ज्ञान तो सभ्यता की भौतिक उन्नति के द्वारा आच्छादित रहता हैं । इसमे शुष्क चिन्तक, नास्तिक एवं तथाकथित धर्मनिर्माता जुगनुओं की तरह प्रगट होते रहते हैं, जबकि वैदिक नियमों या शास्त्रों का पालन करने वाले व्यक्ति इस युग के बादलों से प्रच्छन्न हो जाते हैं । लोगो को आकाश के असली ज्योतिष्कों, सूर्य, चन्द्र एवम् नक्षत्रों से प्रकाश ग्रहण करना सीखना चाहिए, न कि जुगनुओं से । वस्तुतः जुगनू रात्रि के अंधकार में प्रकाश नही दे सकता । जिस प्रकार वर्षाऋतु में कभी-कभी सूर्य, चन्द्र तथा तारे दिख जाते हैं उसी प्रकार इस कलियुग के भी कुछ लाभ हैं-यथा इसमें भगवान् चैतन्य का वैदिक आन्दोलन अर्थात हरे कृष्ण मंत्र का वितरण सुनाई पड जाता हैं । जो लोग वास्तविक प्रकाश की खोज में हैं उन्हें शुष्क चिन्तकों एवं नास्तिकों के प्रकाश की वाट न जोह कर इस आन्दोलन का लाभ उठाना चाहिए ।

पहल वर्षा के बाद जब बादलों की गर्जना सुनाई पडती हैं, तो सभी मेंढक टर्र-टर्र करने लगते हैं मानो विद्यार्थी अपने अध्ययन के समय अचानक बोल-बोल कर पढने लग जाएं । विद्यार्थियों को सामान्य रूप से प्रातःकाल जल्दी उठना होता है । वे प्रायः अपने आप न जगकर मन्दिर में या सांस्कृतिक शाला में घंटी बजने पर जगते हैं । अपने गुरु की आज्ञा पाकर वे तुरन्त उठते हैं और प्रातःकालीन कार्य समाप्त करके वे वेदों का अध्ययन या वैदिक मंत्रों का पाठ करने के लिए बैठ जाते है । कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति अंधकार में सोता रहता है, किन्तु जब कोई महान आचार्य

आता हो, तो उसकी पुकार मात्र पर वह वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेदाध्ययन में जुट जाता हैं । वर्षाऋतु में अनेक ताल-तलैया, नदी-नद जल से भर जाते है, अन्यथा वर्ष भर में वे सूखे रहते हैं इसी प्रकार भौतिकतावादी पुरुष शुष्क (नीरस) होते हैं, किन्तु कभी-कभी जब वे तथाकथित ऐश्वर्यशाली स्थिति में होते हैं-उनके घर-बार, सन्तान तथा बैंक पूँजी होती हैं- तो वे संवृद्धि करते प्रतीत होते हैं, किन्तु शीघ्र ही नदी-नद की भाँति पुनः सूख जाते है । महाकवि विद्यापति ने कहा है कि मित्र, परिवार, सन्तान, पत्नी आदि के समाज में निश्चय ही कुछ-न-कुछ आनन्द हैं, किन्तु यह मरुस्थल में जल की एक बूँद के समान हैं । हर व्यक्ति सूख के पीछे उसी तरह दौड रहा है, जिस तरह मरुस्थल मे वह जल के लिए भागता हैं । यदि मरुस्थल में जल एक बूँद हो, तो नाम के लिए तो वह जल कहा जाता है, किन्तु उस जल की बूँद का लाभ नगण्य होता हैं हम अपने मरुस्थल जैसे भौतिकतावादी जीवन मे सुख के अथाह सागर की खोज में लगे रहते हैं, किन्तु हमें मिल पाता । कभी-भी हमारी तुष्टि नहीं हो पातीं, जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु में कभी ताल, तलैया, नदी, नद जल से नहीं भर पाते ।

वर्षा के पूर्व सम्पूर्ण धरातल विभिन्न प्रकार की शक्तियों से लगभग क्षीण हो जाता है और अतयन्त कृश प्रतीत होता हैं । किन्तु वर्षा के बाद पूरा धरातल वनस्पति से हरा-भरा होकर अत्यन्त स्वस्थ तथा बलिष्ठ प्रतीत होने लगता हैं । यहाँ पर उस व्यक्ति से तुलना की गई है, जो अपनी भौतिक इच्छा की पूर्ति के लिए तपस्या करता हैं । वर्षा के बाद पृथ्वी का हरा-भरा होना भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के लिए तपस्या हैं । वर्षा के बाद पृथ्वी का हरा-भरा होना भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के समान हैं । कभी-कभी जब देश में अवांछित सरकार का शासन होता है, तो लोग सरकार को वश में करने के लिए कठिन तपस्या करते हैं और शासन सँभाल लेने पर वे मोटे-मोटे वेतन लेकर समृद्ध बन जाते हैं । यह क्षणिक लाभ वर्षा

ऋतु में पृथ्वी के हरे-भरे हो जाने के समान हैं । वस्तुतः आध्यात्मिक सुख प्राप्त करने के उदेश्य से ही कठिन तपस्या की जानी चाहिए । श्रीमद्भागवत में संस्तुति की गई है कि परमेश्वर के साक्षात्कार के लिए ही तपस्या करनी चाहिए । भक्ति में तपस्या करते हुए मनुष्य आध्यात्मिक जीवन की पुनः प्राप्ति कर सकता है और उसके बाद उसे दृष्टि में रख का कठिन तपस्या करता हैं ।, तो भागवत के अनुसार उसके परिणाम क्षणिक होते हैं और केवल अल्पज्ञ ही ऐसी इच्छा करते हैं ।

वर्षाऋतु में संध्या समय वृक्षों की चोटी पर इधर-उधर अनेक जुगनू दिखते हैं जो दीपों की भाँति टिमटिमाते हैं । किन्तु आकाश के ज्योतिष्क यथा सूर्य तथा चन्द्रमा नहीं दिखते । इसी प्रकार इस कलियुम में नास्तिक या दुष्ट लोग सर्वत्र दिखते हैं किन्तु वास्तविक आध्यात्मिक उत्थान के लिए वैदिक नियमों का पालन करने वाले लोगों का अभाव हो जाता हैं । इस कलियुग की तुलना जीवों की मेघाच्छादित ऋतु से की गई हैं । इस युग में वास्तविक ज्ञान तो सभ्यता की भौतिक उन्नति के द्वारा आच्छादित रहता है । इसमें शुष्क चिन्तक, नास्तिक एवं तथाकथित धर्मनिर्माता जुगनुओं की तरह प्रगट होते रहते हैं, जबकि वैदिक नियमों या शास्त्रों का पालन करने वाले व्यक्ति इस युग के बादलों में प्रच्छन्न हो जाते हैं । लोगों को आकाश के असली ज्योतिष्कों, सूर्य, चन्द्र एवम् नक्षत्रों से प्रकाश ग्रहण करना सीखना चाहिए, न कि जुगनुओं से । वस्तुतः जुगनू रात्रि के अंधकार में प्रकाश नहीं दे सकता । जिस प्रकार वर्षाऋतु में कभी-कभी सूर्य, चन्द्र तथा तारे दिख जाते हैं उसी प्रकार इस कलियुग के भी कुछ लाभ हैं-यथा इसमें भगवान् चैतन्य वैदिक आन्दोलन अर्थात् हरे कृष्ण मंत्र का वितरण सुनाई पड जाता हैं । जो लोग वास्तविक प्रकाश की खोज में हैं उन्हें शुष्क चिन्तकों एवं नास्तिकों के प्रकाश की बाद न जोह कर इस आन्दोलन का लाभ उठाना चाहिए ।

पहली वर्षा के बाद जब बादलों की गर्जना सुनाई पडती हैं, तो सभी मेंढक टर्र-टर्र करने लगते है, मानो विद्यार्थी अपने अध्ययन के समय अचानक बोल-बोल कर पढ़ने लग जाएं । विद्यार्थियों को सामान्य रूप से प्रातःकाल जल्दी उठाना होता हैं । वे प्रायः अपने आप न जगकर मन्दिर में या सांस्कृतिक शाला में घंटी बजने पर जगते हैं । अपने गुरु की आज्ञा पाकर वे तुरन्त उठते हैं और प्रातःकालीन कार्य समाप्त करके वे वेदों का अध्ययन या वैदिक मंत्रों का पाठ करने के लिए बैठ जाते हैं कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति अंधकार (रात्रि) में सोता रहता हैं, किन्तु जब कोई महान आचार्य आता हो, तो उसकी पुकार मात्र पर वह वास्तविक ज्ञान प्राप्त करने के लिए वेदाध्ययन में जुट जाता है । वर्षाऋतु में अनेक ताल-तलैया, नदी-नद जल से भर जाते हैं, अन्यथा वर्ष भर वे सूखे रहते है । इसी प्रकार भौतिकतावादी पुरुष शुष्क (नीरस) होते हैं, किन्तु कभी-कभी जब वे तककथित ऐश्वर्यशाली स्थिति में होते हैं-उनके घर-बार, सन्तान तथा बैंक-पूँजी होती हैं-तो वे संवृद्धि करते प्रतीत होते है, किन्तु शीघ्र ही नदी-नद की भाँति पुनः सूख जाते हैं । महाकवि विद्यापति ने कहा है कि मित्र, परिवार, सन्तान, पत्नी आदि के समाज में निश्चय ही कुछ-न-कुछ आनन्द हैं, किन्तु यह मरुस्थल में जल की एक बूँद के सजान हैं । हर व्यक्ति सुख के पीछे उसी तरह दौड़ रहा हैं, जिस तरह मरुस्थल में वह जल के लिए भागता हैं । यदि मरुस्थल में जल की एक बूँद हो, तो नाम के लिए तो वह जल कहा जाता हैं, किन्तु उस जल की बूँद की लाभ नगण्य होता हैं । हम अपने मरुस्थल जैसे भौतिकतावादी जीवन में सुख के अथाह सागर की खोज में लगे रहते हैं, किन्तु हमें समाज, मित्र तथा सांसारिक प्यार के रूप में एक जल-बिन्दु से अधिक कुछ नहीं मिल पाता । कभी-भी हमारी तुष्टि नहीं हो पातीं, जिस प्रकार ग्रीष्मऋतु में कभी ताल, तलैया, नदी, नद जल से नहीं भर जाते ।

वर्षा के कारण तृण, वृक्ष तथा वनस्पतियाँ हरी-भरी लगती हैं । कभी-कभी तृण के ऊपर लाल रंग के कीड़े (बीरबहूटी) एकत्र हो जाते हैं । छाते जैसे कुकुरमुत्तों के साथ मिलकर हरा तथा लाल रंग ऐसा दृश्य उपस्थित करते हैं मानो कोई व्यक्ति अचानक धनवान बन गया हो । किसान अपने खेतों को शस्य से पूरित देखकर प्रसन्न होता है, किन्तु पूँजीपति- जो अलौकिक शक्ति के कार्यों से अपरिचित रहता है-अप्रसन्न होता है क्योंकि वह अधिक उपज के कारण मन्दी से भयभीत रहता हैं । कुछ देशों की सरकारों के पूंजीपति किसानों पर अधिक अन्न उत्पादन के लिए प्रतिबन्ध लगा देते हैं क्योंकि उन्हें यह ज्ञात नहीं हैं कि अन्न का वास्तविक दाता तो भगवान् है । वैदिक आदेश के उनसार -एको बहूनां यो विद्धाति कामान्- भगवान् इस सृष्टि का पालन करता है, अतः वह जीवों की आवश्यकता के अनुसार पूर्ति की व्यवस्था करता हैं । जब जनसंख्या वढ़ जाती हे, तो उसका भरण-पोषण परमेश्वर का उत्तरदायित्व होता हैं किन्तु जो नास्तिक हैं या बदमाश हैं, वे अपने व्यापार में अवरोध मान कर यह नहीं चाहते कि प्रभूत अन्नोत्पादन हो ।

वर्षाऋतु में सारे जलचर, स्थलचर तथा नभचर उसी तरह प्रसन्न हो उठते हैं जिस प्रकार दीर्घकाल से भगवान् की दिव्य सोवा करने वाला व्यक्ति होता है । हम अर्न्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ के विद्यार्थियों का व्यावहारिक अनुभव है । विद्यार्थी बनने के पूर्व वे अत्यन्त मैले-कुचैले लगते थे, यद्यपि उनका प्राकृतिक स्वरूप सुन्दर था; कृष्ण-चेतना विषयक ज्ञान न होने के कारण वे मलिन तथा दयनीय प्रतीत होते थे । किन्तु जब से वे कृष्णभावनाभावित हुए हैं, उनका स्वास्थ्य सुधर गया है । और विधि-विधानों का पालन करने से उनकी शारीरिक कान्ति बढ़ गई हैं । जब वे केसरिया रंग का वस्त्र धारण करके मस्तक पर तिलक लगाकर अपने हाथों तथा गर्दन में मालाएँ पहन लेते हैं, तो वे इस तरह लगते हैं मानो सीधे वैकुण्ठलोक से आए हों ।

वर्षाऋतु में नदियाँ उमड़कर सागर की ओर भागती हैं, तो ऐसा लगता है कि वे सागर को क्षुब्ध कर रही हैं । इसी प्रकार योगाभ्यास में प्रवृत्त व्यक्ति यदि आध्यात्मिक जीवन में अग्रसर नहीं होता, तो उसे कामवासना क्षुब्ध कर सकती है । किन्तु उच्च पर्वतों पर चाहे मूसलाधार वर्षा क्यों न हो, वे बदलते नहीं; उसी तरह कृष्णभावनाभावित व्यक्ति, चाहे कितनी ही कठिनाई में क्यों न पडा हो, कभी चिन्तित नहीं होता क्योंकि जो व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से अग्रसर होता है, वह जीवन की किसी भी विषम परिस्थिति भी भगवान् की कृपा मानता है और इस तरह वह वैकुण्डलोक जाने का भागी बन जाता हैं ।

वर्षाऋतु में जिन मार्गों पर यातायात ज्यादा नहीं होता उनमें लम्बी-लम्बी घासें उग आती हैं । यह वैसा ही हैं, जिस प्रकार कि वेदों के अध्ययन तथा संस्कारों से अनभ्यस्त कोई ब्रह्माण माया रूपी घास से आवृत हो जाये । ऐसी दशा में वह अपनी स्वाभाविक स्थिति भूज जाने से भगवान् के प्रति अपने नित्य सेवक भाव को भी भूल जाता हैं । सभी तरह माया द्वारा उत्पन्न इस लम्बी-लम्बी घास से विपथ होकर मनुष्य अपने को मायारूप मानकर अपने आध्यात्मिक जीवन को भूल जाता है और मोह मे पड जाता हैं ।

वर्षाऋतु में बिजल कभी इस बादल समूह में दिखती हैं, तो दूसरे ही क्षण दूसरे बादलों में । यह दशा उस विषयी स्त्री की सी हैं, जो अपने मन को किसी एक व्यक्ति पर स्थिर नहीं कर पाती । मेघों की तुलना योग्य शक्ति से की गई है, क्योंकि वह पानी बरसा कर अनेक लोगों को जीवनदान देता हैं । इसी प्रकार योग्य व्यक्ति अपने परिवार वालों तथा व्यापार में लगे अन्य अनेक लोगों को सहारा देता हैं दुर्भाग्यवश यदि उसकी पत्नी उसका परित्याग कर दे, तो उसका सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो सकता है, और जब पति विक्षिप्त हो जाता है, तो सारा परिवार नष्ट हो व्यस्त हो सकता हैं, और बच्चे तितर-बितर हो जाते हैं या सारा व्यापार ठप्प हो जाता है और प्रत्येक काम का असर पडता हैं । अतः यह संस्तुति की

जाती है कि जो स्त्री कृष्णभावनामृत में आगे बढ़ना चाहती हो वह अपने पति के साथ शान्तिपूर्वक रहे और उनकी जोडी किसी भी परिस्थिति में विलग न हो । पति-पत्नी को आत्मसंयम रखते हुए कृष्णभक्ति में मन केन्द्रित करना चाहिए जिससे जीवन सार्थक हो । आखिर इस संसार में पुरुष को स्त्री की आवश्यकता होती हे और स्त्री को पुरुष की चाह होती हैं । साथ-साथ होने पर वे शान्तिपूर्वक कृष्णभावनामृत में लग सकते हैं । उन्हें बिजली की भाँति चंचल नहीं होना चाहिए, और एक बादल से दूसरे में नहीं चमकते रहना चाहिए ।

कभी-कभी घन-गर्जन के अतिरिक्त इन्द्रधनुष भी दिखाई पडता हैं, जो बिना डोरी वाले धनुष की तरह होता है । वास्तव में जब धनुष के दोनों सिरों की डोरी से बाँध दिया जाता है, तो वह झुक जाता है, किन्तु इस इन्द्रधनुष में कोई डोरी नहीं रहती फिर भी यह आकाश में इतने सुन्दर ढंग से टिका रहता है । इसी प्रकार जब भगवान् इस भौतिक जगत में अवतरित होते हैं, तो वे सामान्य व्यक्ति की भाँति प्रतीत होते हैं, किन्तु वे किसी भौतिक आधार पर टिके नहीं होते । भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि मैं अपनी ही अन्तरंगा शक्ति से प्रकट होता हूँ, जो बहिरंगा शक्ति के बंधन से सर्वथा स्वतंत्र रहती हैं । सामान्य व्यक्ति के लिए, जो बन्धनतुल्य हैं, वही भगवान् के लिए स्वतंत्रता है । वर्षाऋतु में बादलों के कारण चाँदनी ढकी रहती है । और कभी-कभी ही दृष्टिगोचर होती हैं । कभी-कभी चन्द्रमा बादलों के साथ चलता प्रतीत होता हैं । किन्तु वह स्थिर होता है । बादलों के कारण वह चलायमान लगता है । इसी प्रकार, जो व्यक्ति इस चलायमान भौतिक जगत के साथअपनी पहचान करता हैं, उसी वास्तविक आध्यात्मिक क्रान्ति मोह से ढक जाती है और भौतिक कार्यों की गति के साथ वह अपने को जीवन के विविध क्षेत्रों में गतिशील मानता हैं यह अहंकार के कारण हैं, जो आध्यात्मिक तथा भौतिक सत्ता के बीच विभाजक रेखा हैं । जिस प्रकार चलता हुआ बादल चाँदनी तथा

अधंकार के बीच की विभाजक रेखा होता है । वर्षाऋतु में जब बादल पहल बार दिखते हैं, तो मोर उन्हें देखकर आनन्दित होकर नाच उठते है । मोरों की तुलना उन व्यक्तियों से की जा सकती है जो भौतिक जीवन से त्रस्त हैं और यदि उन्हें किसी भगवद्-भक्त का सानिध्य प्राप्त हो जाता है, तो उनमें प्रकाश जाग उठता है और उनका मन-मयूर नाच उठाता हैं । हमें इसका व्यावहारिक अनुभव हैं । हमारे बहुत से विद्यार्थी कृष्णभावनामृत आन्दोनल में आने के पूर्व अत्यन्त शुष्क तथा खिन्न थे, किन्तु भक्तों के संसर्ग में आने पर वे मयूरों की भाँति थिरकते दिख रहे हैं ।

पौधें तथा लताएँ पृथ्वी से जल ले कर बढ़ाते हैं । इसी तरह तपस्यारत व्यक्ति शुष्क दिखने लगता हैं किन्तु तपस्या पूरी होने पर और उसका फल प्राप्त कर लेने के बाद वह अपने परिवार, समाज, प्रेम, घर तथा अन्य साज-सामान के साथ जीवन का आनन्द भोगने लगता है । वह नए उगे पौधों तथा घास की भाँति प्रसन्नचित हो जाता हैं । कभी-कभी सारस तथा बत्तख सरोवरों तथा नदियों के किनारों पर निरन्तर घूमतें देखे जाते हैं, भले ही ये किनारे कीचड़ तथा कँटीली लताओं से युक्त क्यों न हों । इसी तरह कृष्णभावनामृत से रहित गृहस्थजन अनेक भौतिक असुविधाओं के रहते हुए भी भौतिक जीवन में निरन्तर बने रहते है । चाहे वह पारिवारिक जीवन हो या अन्य किसी प्रकार का जीवन, कृष्णभावनाभावित हुए बिना पूर्ण सुख नहीं मिल सकता । श्रील नरोत्तमदास ठाकुर प्रार्थना करते हैं कि उन्हें किसी न किसी व्यक्ति की संगति चाहिए- चाहे वह गृहस्थ हो या संन्यासी- जो सदा भगवान् की प्रेमा-भक्ति में लगा रहता हो और भगवान् चैतन्य का पवित्र नाम लेता हों । भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए सांसारिक कृत्य दुखदायी बन जाते हैं, किन्तु कृष्णभावनाभावित व्यक्ति के लिए प्रत्येक वस्तु प्रसन्नतापूर्वक स्थित प्रतीत हैं ।

कभी-कभी अतिवृष्टि के कारण खेतों की मेड़ें टूट जाती हैं । इसी तरह कलियुग में अवैध नास्तिक प्रचार के कारण वैदिक आदेशों की सीमाएँ भंग हो रहती है । इस तरह लोग धीरे-धीरे ईश्वरविहीनता को प्राप्त हो जाते हैं । वर्षाऋतु में वायु द्वारा इधर-उधर ले जाये गये बादल अमृततुल्य वृष्टि करते हैं । जब वेदों के अनुयायी ब्राह्मणजन राजाओं तथा वैश्यों को महान यज्ञ सम्पन्न हो जाने पर दान के लिए प्रेकिरत करते है, तो ऐसा धन-वितरण भी अमृततुल्य होता है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र-ये चारों वर्ण शान्तिपूर्वक सहयोग से जीवन बिताने के लिए हैं; यह तभी सम्भव होता है जब पटु वैदिक ब्राह्मण यज्ञ सम्पन्न करके तथा धन का समान वितरण करके उनका मार्गदर्शन करते हैं ।

वर्षा से वृन्दावन की शोभा बढ़ गई और वह पके खजूर, आम, जामुन तथा अन्य फलों से भर उठा । भगवान् कृष्ण तथा उनके संगी एवं बलराम ने नई वर्षाऋतु का आनन्द लूटने के उदेश्य से वन में प्रवेश किया । गाएँ हरी घास चरकर अत्यन्त हष्ट-पुष्ट हो गई और उनके थन दूध से भर गये ।जब कृष्ण ने उन्हें उनके पास ले लेकर बुलाया, तो वे अत्यन्त प्रेमवश तुरन्त ही उनके पास आ गई और इस प्रसन्नता में उनके थनों से दूध की धारा बह निकली । जब कृष्ण गोवर्धन पर्वत के पास ही स्थित वृन्दावन विपिन से होकर जा रहे थे, तो वे अत्यन्त प्रसन्न थे । उन्होंने यमुना तट पर वृक्षों को मधुमक्खी के छत्तों से सुशोभित देखा जो मधु टपका रहे थे । गोवर्धन पर्वत पर अनेक झरने थे जिनके बहने से मधुर ध्वनि हो रही थी । जब कृष्ण ने पर्वत गुफाओं में झांका, तो उन्हें यह ध्वनि सुनाई पडी । अभी वर्षा ऋतु समाप्त नहीं हुई थी, किन्तु धीरे-धीरे शरद्ऋतु आ रही थी । अतः कभी-कभी जब वन में वृष्टि होती रहती, तो कृष्ण तथा उनके साथी किसी वृक्ष के नीचे या गोवर्धन पर्वत की कन्दराओं में बैठ जाते और पके फलों का स्वाद लेते तथा आनन्दपूर्वक परस्पर बातें करते रहते । जब कृष्ण तथा बलराम दिन-भर वन में रहते, तो माता यशोदा उनके भोजन

के लिए चावल तथा दही, फल एवं मिठाईयाँ भेजा करतीं । कृष्ण उन्हें लेकर यमुना-तट पर एक शिला पर बैठ जाते और अपने सखाओं को साथ देने के लिए बुला लेते । भोजन करते-करते कृष्ण, उनके साथी तथा बलराम गौवों, बछडों तथा बैलों, की रखवाली करते रहते । गाएँ अपने दुग्धपूरित भारी थनों के कारण खडी-खडी थकी हुईं लगतीं, वे बैठकर जुगाली करने लगतीं और प्रसन्न हो जातीं; कृष्ण उन्हें देखकर प्रमुदित होते । वे वर्षाऋतु के कारण वन की शोभा देखकर अत्यन्त हर्षित थे । यही उन्हीं की शक्ति (माया) का प्रदर्शन हैं ।

ऐसे अवसरों पर कृष्ण वर्षाकालीन प्रकृति के विशिष्ट कार्यकलापों की प्रशंसा करते थे । भगवद्गीता में कहा गया है कि भौतिक शक्ति या प्रकृति अपने कार्यों के लिए स्वतंत्र नहीं हैं । वह कृष्ण के अधीन कार्य करती हैं । ब्रह्म-संहिता में इसकी भी पुष्टि की गई हैं, जो यह कहती है कि दुर्गा नाम से विख्यात भौतिक प्रकृति कृष्ण की छाया रूप में कार्य करती हैं । कृष्ण जो भी आदेश देते हैं, प्रकृति उसका पालन करती है । अतः यह प्राकृतिक सौन्दर्य कृष्ण के संकेतों पर ही वर्षाऋतु द्वारा उत्पन्न किया गया था, जो भौतिक प्रकृति के मोहक कार्यकलाप देख कर गर्वित अनुभव करने लगे । जब कृष्ण तथा बलराम वर्षाऋतु के उपहारों का इस प्रकार आनन्द ले रहे थे, शीत ऋतु आ गई और शीर्घ ही सारे जलाशय स्वच्छ तथा सुहावने दिखने लगे और शरद् के आगमन से सर्वत्र मन को प्रसन्न करने वाली वायु बहने लगी । आकाश से सारे बादल साफ हो गये और आकाश अपने स्वाभाविक नीले रंग का हो गया । वन में स्वच्छ जल में खिले कमल के फूल उस योगभ्रष्ट व्यक्ति की तरह प्रतीत हो रहे थे, जो योगाभ्यास के पतित हो गया हो किन्तु आध्यात्मिक जीवन को प्राप्त हो जाने पर फिर से सुन्दर बन गया हो ।

शरद्ऋतु का आगमन होते ही सारी वस्तुएँ स्वाभाविक रूप से सुन्दर लगने लगती हैं । इसी तरह जब कोई भौतिकतावादी व्यक्ति

कृष्णभावनामृत अंगीकार करता है, तो वह भी शरद्कालीन आकाश तथा जल की भाँति निर्मल हो जाता हैं शरद्ऋतु में श्याम मेघों का उमड़ना रुक जाता है और जल दूषित नहीं रहता । स्थल का गन्दा वातावरण समाप्त हो जाता हैं । इसी तरह जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है उसका सारा अन्तः तथा बाह्म मल दूर हो जाता हें अतः कृष्ण हरि कहलाते है हरिक आ अर्थ है हरण करने वाला । जो भी कृष्णभावनामृत अपनाता है, कृष्ण उसकी सारी गंदी आदते हर लेते है । शरद्कालीन बादल श्वेत होते हैं क्योंकि उनमें पानी नहीं रहता ।इसी प्रकार अवकाश प्राप्त व्यक्ति (वानप्रस्थ) अपने पारिवारिक कार्यों के उत्तरदायित्व से मुक्त होकर पूर्णतः कृष्णभावनामृत अपनाने पर समस्त चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है और शारदीय बादल की भाँति श्वेत (निर्मल) दिखता हैं । शरद्ऋतु में कभी-कभी झरने पर्वत की चोटी से नीचे आकर स्वच्छ जल प्रदान करते हैं, तो कभी वे अवरुद्ध हो जाते हैं । इसी प्रकार कभी कभी साधुपुरुष विमल ज्ञान का वितरण करते हैं, तो कभी वे मौन हो जाते हैं । छोटे-छोटे पोखर, जो वर्षाऋतु के कारण जल से भर गये थे, धीरे-धीरे शरद्ऋतु में सूखने लगते है । इन जलाशयों में रहने वाले छोटे-छोटे जलचर प्राणी यह नहीं जान पाते कि दिन-अनुदित इन जलाशयों की संख्या घटती जा रही हैं, जिस प्रकार कि भौतिकता में निमग्न व्यक्ति यह नहीं समझ पाते कि उनकी आयु दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जा रही हैं ऐसे लोग गाय, धन, सन्तान, स्त्री, समाज तथा मित्रता बनायें रखने में लगे रहते है । शरद्ऋतु में जल घटने तथा प्रखर आतप से इन जलाशयो में रहने वाले छोटे-छोटे प्राणी अत्यधिक विचलित हो उठते हैं । ये उन विवश व्यक्तियों के तुल्य हैं, जो न तो जीवन का आनन्द भोग पाने अथवा, न ही पारिवारिक सदस्यों का भरण कर पाने के कारण सदा दुखी रहते है । धीरे-धीरे पंकिल धरती सुख जाती हें और नवांकुरित वनस्पतियाँ मुरझाने लगती है । इसी प्रकार जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत स्वीकार करता है, उसकी पारिवारिक सुख-भोग लालसा धीरे-धीरे समाप्त होती जाती है ।

शरद् काल के प्रकट होते ही सागर का जल उसी तरह शान्त और गम्भीर हो जाता है जिस प्रकार आत्म-साक्षात्कार हो जाने पर मनुष्य को प्रकृति के तीनों गुण नहीं सता पाते । शरद्ऋतु में सिन अपने खेतों के चारो ओर मेडें बाँध देते हैं, जिससे उनके खेता का पानी बहकर बाहर न निकल पाये । चूँकि अब आगे वर्षा की कोई आशा नहीं रह जाती इसलिए खेत में जितना पानी रहता हे उसके वह सुरक्षित रखना चाहता हे । इसी प्रकार स्वरूपसिद्ध व्यक्ति अपनी शक्ति की रक्षा इन्द्रियों के संयम द्वारा करता है । यह सलाह ही जाती है कि मनुष्य पचास वर्ष की आयु के बाद गृहस्थ जीवन से विरक्त होकर अपनी शक्ति का संचय कृष्णभावनामृत को अग्रसर करने के लिए करें । जब तक मनुष्य अपनी इन्द्रियों को वश में करके उन्हें मुकुन्द की दिव्य प्रेमा-भक्ति में नहीं लगाता तब तक मुक्ति की कोई सम्भावना नहीं हैं ।

शरद् में दिन के समय कडी धूप होती है, किन्तु रात्रि में स्वच्छ चाँदनी से लोगों को दिन की थकान से छुटकारा मिलता हैं ।इसी प्रकार यदि मनुष्य मुकुन्द या कृष्ण की शरण ग्रहण करता हैं, तो वह अपने आपको शरीर समझने की भ्रान्ति से मुक्त हो सकता हैं । मुकुन्द या कृष्ण वृन्दावन की गोपियों के लिए भी सान्त्वना प्रदान करने वाले हैं । ब्रजभूमि की गोपियाँ कृष्ण के विरह के कारण सदैव दुखी रहती हैं, किन्तु जब वे शरद्कालीन चाँदनी रात में कृष्ण से मिलती हैं, तो उनकी वियोक्षेनित क्लान्ति मिट जाती है । जिस तरह बादलों से रहित आकाश में रात्रि के समय तारे अत्यन्त सुन्दरता से चमकते हैं उसी तरह कृष्णभावनाभावित व्यक्ति समस्त कल्मष से रहित होकर शरद्कालीन आकाश में तारों की भाँति सुन्दर लगने लगते हैं । यद्यपि वेदों में योगाभ्यास के लिए ज्ञान अर्जित करने हेतु और यज्ञों द्वारा कर्म करने हेतु आदेश दिए हुए हैं, किन्तु उनका चरम प्रयोजन भगवद्गीता में वर्णित हैं । मनुष्य को चाहिए कि वेदों के प्रयोजन को ठीक से समझ कर कृष्णभावनामृत स्वीकार करें । अतः

कृष्णभावनामृत में लीन भक्त के विमल हृदय की तुलना शरद्कालीन शुभ्र आकाश से की जा सकती हैं । शरद्ऋतु में निर्मल आकाश में तारों समेत चन्द्रमा अत्यन्त चमकीला लगता हैं । कृष्णभगवान् स्वयं यदुवंश के आकाश में प्रकट हुए । वे यदुवंशियों से घिरकर तारों से घिरे चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे । जब उद्यान में अनेक फूल खिले रहते हैं, तो ग्रीष्म तथा वर्षा ऋतु से त्रस्त पुरुष को ताजी सुगंधित वायु अत्यन्त सुखद लगती हैं । दुर्भाग्यवश गोपियों को ऐसी वायु से कोई लाभ नहीं मिल सका, क्योंकि वे अपना हृदय कृष्ण को अर्पित कर चुकी थीं । सामान्य लोगों को शरद्कालीन उत्तम मन्द समीर भले ही आनन्दप्रद लगा हो, किन्तु गोपियाँ कृष्ण के आलिंगन बिना प्रसन्न न थीं ।

शरद्ऋतु आने पर सारी गौवें, हिरन, पक्षी तथा अन्य मादाएँ गर्भ धारण करती हैं क्योंकि इस ऋतु में सारे नर (पति) कामाभिभूत हो उठते हैं । ऐसी गर्भवती मादाएँ ठीक उन अध्यात्मवादियों की भाँति हैं जिनको भगवान् की कृपा से जीवनलक्ष्य प्राप्त होने का वरदान मिल गया हो । श्रील रूप गोस्वामी ने अपने उपदेशामृत में उपदेश दिया है कि मनुष्य को चाहिए कि अत्यन्त उत्साह, धैर्य तथा संकल्प के साथ भक्ति का पालन करें, विधि-विधानों को माने, भौतिक कल्मष से अपने को दूर रखें और भक्तों के सान्निध्य में रहे । जो इन छः सिद्धान्तों का पालन करता है उसे भक्ति का वांछित फल अवश्य मिलता है । जो मनुष्य धैर्यपूर्वक भक्ति के अनुष्ठानों को पालता हैं, उसे समय आने पर उसी प्रकार फल प्राप्त होगा, जिस प्रकार पत्नियों की गर्भधारण करने पर सन्तान-सुख मिलता हैं ।

शरद्ऋतु में सरोवरों में असंख्य कमल के फूल खिलते हैं, क्योंकि कुमुदिनियाँ नहीं रहतीं । वैसे दिन के समय कमल तथा कुमुदिनी साथ-साथ खिलते हैं, किन्तु शरद्ऋतु में प्रचण्ड आतप (धूप) के कारण केवल कमल ही खिल पाते हैं । यह दृष्टान्त उस देश की तरह है जहाँ का राजा या शासन प्रबल होता हैं; उसमें चोर तथा डाकू जैसे अवांछित तत्व न हीं

पनप पाते । जब नागरिकों को विश्वास हो जाता है कि उन पर डाकुओं का आक्रमण नहीं होगा, तो वे सन्तोषजनक विकास करते है । प्रबल शासन की तुलना शरद्कालीन प्रचण्ड धूप से की गई है; कुमुदिनियाँ डाकू इत्यादि अपवांछित तत्वों जैसी हैं और कमल-पुष्पों की तुलना संतुष्ट नागरिकों से की गई हैं । शरद्ऋतु में खेत पके अन्न से भर जाते हैं । लोग फसल से अत्यन्त प्रमुदित हो उठते हैं और अनेक प्रकार के उत्सव मनाते हैं-यथा नवान्न या भगवान् को नवीन अन्न की भेंट करना । नया अन्न सर्वप्रथम विविध मन्दिरों में अर्चा-विग्रहों को भेंट चढ़ाया जाता है और सबों को इस नए अन्न से बनी खीर खाने के लिए न्यौता जाता हें इसके अतिरिक्त अन्य धार्मिक उत्सव तथा पूजाविधियाँ हें जिनमें से विशेष रूप से बंगाल में दुर्गापूजा नामक सबसे बडा उत्सव मनाया जाता है ।

उस काल वृन्दावन में भगवान् कृष्ण तथा बलराम की उपस्थिति के कारण शरद्ऋतु अत्यन्त आकर्षक बनी हुई थी । व्यापारिक समुदाय, राजसीय वर्ग तथा ऋषि सभी वांछित वर प्राप्त करने के लिए इधर-उधर जाने के लिए स्वतंत्र थे । इसी प्रकार भौतिक शरीर के बन्धन से मुक्त होकर अध्यात्मवादी भी मनवांछित फल प्राप्त करते थे । वर्षाऋतु में व्यापारी वर्ग एक स्थान से दूसरे स्थान को नहीं जा सकता, अतः उसे वांछित फल नहीं मिल सकता । यहाँ तक कि साधु पुरुष भी जिन्हें दिव्य ज्ञान का उपदेश करने के लिए विचरण करना पडता हैं, वर्षाऋतु में वैसा नहीं कर पाते । किन्तु शरद्ऋतु में सभी लोग अपना-अपना बसेरा छोडने लगते हैं । एक अध्यात्मवादी-चाहे वह ज्ञानी हो या योगी या भक्त-शरीर होने से आध्यात्मिक उपलब्धि का भोग नहीं कर सकता । किन्तु शरीर त्याग करते ही या मृत्यु के पश्चात् ज्ञानी परमेश्वर के तेज में लीन हो जाता हैं, योगी उच्चलोकों को चला जाता है और भक्त भगवान् के लोग, गोलोक वृन्दावन या वैकुण्ठलोक को जाता है, जहाँ वह शाश्वत आध्यात्मिक जीवन भोगता हैं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " शरद् का वर्णन " नामक बीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 21
वंशी द्वारा मोहित गोपियाँ

सुन्दर शरद्ऋतु के आगमन से सरोवरों तथा नदियों में जल स्फटिक के समान स्वच्छ हो गया और वे सुगन्धित कमल के फूलों से भर गये और मधुर हवाएँ चलने लगीं । वन के इस वातावरण से कृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए क्योंकि फूल खिले हुए थे और भौंरे तथा मधुमक्खियाँ आनन्दित होकर गुंजार कर रहे थे । पक्षी, वृक्ष तथा शाखाएँ सभी अत्यन्त प्रसन्न लग रहे थे । तभी गौवें चराते, साथ में श्रीबलराम तथा ग्वालबालों को लिए, श्रीकृश्ण अपनी दिव्य बाँसुरी (मुरली, वंशी) बजाने लगे । कृष्ण की बाँसुरी की ध्वनि सुनकर वृन्दावन की गोपियाँ न उनका स्मरण किया और वे परस्पर बातें करने लगीं कि कृष्ण कितनी सुन्दर बाँसुरी बजा रहे है । जब गोपियाँ कृष्ण के मुरलीवादन की बात चलातीं, और वे उनकी लीलाओं का भी स्मरण करतीं । इस तरह उनका मन विचलित हो जाता, तो वे सुन्दर ध्वनि का वर्णन करने में अपने को असमर्थ पातीं । मुरली की दिव्य ध्वनि की चर्चा चलाते समय वे यह भी स्मरण करतीं कि कृष्ण किस प्रकार का वेश धारण करते हैं । उनके सिर पर मोरपंख इस तरह सुशोभित होते हैं मानो वे कोई नर्तक हों । वे अपने कानों में नीले फूल खोंसे रहते । उनका वस्त्र पीत-स्वर्णिम कान्ति वाला होता और वे गलें में वैजयन्ती माला पहने होते । इस प्रकार का आकर्षक वेष धारण किये, कृष्ण अपने होठों से निस्सृत अमृत से वंशी के छिद्रों को पूरित करते रहते । इस तरह वे

उन्हें स्मरण करतीं कि वे वृन्दावन में किस प्रकार प्रविष्ट होते हैं, जो कृष्ण तथा उनके सखाओं के पदचिन्हों से गौरान्वित है ।

कृष्ण वंशीवादन में अत्यन्त पटु थे और गोपियाँ उस ध्वनि पर मोहित थीं, जो न केवल उन्हें अपितु प्रत्येक सुनने वाले जीव को आकृष्ट करने वाली थी । एक गोपी ने अपनी सखी से कहा, नेत्रों की चरम सिद्धि इसी में है कि कृष्ण तथा बलराम को वन में जाते, वंशी बजाते तथा अपने मित्रों के साथ गौवें चराते देखा जाए ।

जो व्यक्ति कृष्ण की मुरली बजाते तथा उनके वृन्दावन के जंगल में प्रवेश करते हुए तथा ग्वालबालों के साथ गौवें चराते हुए देखने के दिव्य ध्यान में अन्तः तथा बाह्य रूप से निरन्तर लगे रहते हैं, उन्हें वास्तविक रूप में समाधिक प्राप्त हो चुकी होती है । समाधि का अर्थ है इन्द्रियों के समस्त कार्यों का एक विशिष्ट विषय में लीन होना और गोपियाँ यह सूचित करती हैं कि कृष्ण लीलाएँ समस्त ध्यान तथा समाधि की सिद्धि हैं । भगवद्गीता में भी इसकी पुष्टि की कई है कि जो कोई कृष्ण के ध्यान में निरन्तर लीन रहता है, वह सर्वोच्च योगी है ।

दूसरी गोपी बोली कि गौवें चराते हुए कृष्ण तथा बलराम रंगमंच पर अभिनय करने के लिए जाते हुए अभिनेताओं की तरह प्रतीत होते हैं । कृष्ण पीताम्बर और बलराम नील वस्त्र धारण किये थे और अपने हाथों में आम्र-मंजरी, मोरपंख तथा फूलों का गुच्छा (गुलदस्ता) लिए हुए थे । वे कमल-पुष्पों की माला धारण किए थे तथा कभी-कभी दोनों मित्र-मंडली में मधुर ध्वनि से गाते थे । एक अन्य गोपी ने अपनी सखी से कहा, कृष्ण तथा बलराम कितने सुन्दर लगते हैं । एक अन्य गोपी ने कहा, हे सखी! हम उनकी इस बाँस की बाँसुरी के विषय में कुछ सोच भी नहीं पातीं- इसने न जाने कौन से पुण्यकर्म किये हैं कि यह कृष्ण के अधरामृत का पान कर रही हैं जो वास्तव में गोपियों की निधि हैं? कृष्ण कभी-कभी गोपियों का चुम्बन करते थे, अतः उनके अधरों का दिव्य अमृत केवल

उन्हीं को प्राप्त हैं । अतः गोपियों ने पूछा, यह कैसे सम्भव है कि एक बाँस की बनी बाँसुरी कृष्ण के अधरामृत का निरन्तर पान करती रहती है? परमेश्वर की सेवा में लगे रहने के कारण इस बाँसुरी के माता-पिता अवश्य ही प्रसन्न होते होंगे ।

सरोवरों तथा नदियों को वृक्षों की माता कहा गया है, क्योंकि वृक्ष केवल जल पीकर रहते हैं । अतः वृन्दावन के सरोवरों तथा नदियों का जल है और कमल-पुष्पों से पूरित हैं, क्योंकि वे सोचते हैं कि किस तरह मारा पुत्र, बाँस, कृष्ण के अधरामृत का सुख भोग रहा है । नदियाँ तथा सरोवरों के तट पर खड़े बाँस के पेड अपनी सन्तान को भगवान् की सेवा में लगे देख कर उसी तरह परम प्रसन्न होते हैं जैसे दिव्य ज्ञान में उन्नत व्यक्ति अपनी संतानों को भगवान् की सेवा में लगे देखकर प्रसन्न होते हैं । सारे वृक्ष हर्षातिरेक के कारण अपनी टहनियों से लटकते मधुमक्खी के छत्तों से मधु की वर्षा कर रहे हैं ।

एक अन्य गोपी अपनी सखियों से कृष्ण के विषय में इस प्रकार कहतीं हे सखियाँ! हमारा यह वृन्दावन सम्पूर्ण पृथ्वी के यश को उद्धोदित कर रहा है, क्योंकि यह लोक देवकी के पुत्र के चरण-चिन्हों से महिमामण्डित है । इसके अतिरिक्त, जब गोविन्द वंशी बजाते हैं, तो तुरन्त ही सारे मोर मदोन्मत्त हो उठते हैं । मानों उन्होंने किसी नए मेघ की गर्जना सुनी हो । जब गोवर्धन पर्वत या घाटी के सारे पशु, पौधें तथा वृक्ष इन मोरों को नाचते देखते हैं, तो वे निश्चल होकर वंशी की दिव्य ध्वनि को मनोयोग से सुनते हैं । हमारे विचार से यह वरदान अन्य किसी लोक में न तो सम्भव है, न उपलब्ध है । यद्यपि गोपियाँ ग्राम्यबालाएँ थीं, किन्तु उन्हें अत्यन्त अधिक वैदिक ज्ञान था । ऐसा है वैदिक सभ्यता का प्रभाव! अधिकाधिक स्रोतों से वेदों के श्रवण-मात्र से सर्वोच्च सत्य सीखा जा सकता है ।

एक अन्य सखी बोली, अरी सखियो! इन हिरनियों को तो देखो! यद्यपि ये मूक पशु हैं, किन्तु वे महाराज नन्द के पुत्र के कृष्ण के पास तक पहुँच चुकी हैं । ये न केवल कृष्ण तथा बलराम की वेशभूषा से आकृष्ट हैं, अपितु ये वंशी की ध्वनि सुनते ही अपने-अपने पतियों समेत भगवान् को अत्यन्त प्यार से देखकर सादर प्रणाम करती हैं । गोपियों को इन हिरनियों से ईर्ष्या होती थी क्योंकि वे सब अपने पतियों समेत कृष्ण की सेवा कर पाती थीं । गोपियाँ अपने को इतना भाग्यशाली नहीं मानती थीं, क्योंकि जब भी वे कृष्ण के पास जाना चाहतीं, तो उनके पति प्रसन्न नहीं होते थे ।

एक अन्य गोपी ने कहा, अरी सखियो! कृष्ण तो इतना सुन्दर वेश बनाये हुए हैं कि वे स्त्रियों के विविध उत्सवों को प्रेरणा प्रदान करने वाले दिखते है । उनकी वंशी की दिव्य ध्वनि सुनकर स्वर्ग के देवताओं की पत्नियाँ तक मोहित हो जाती हैं । यद्यपि वे अपने पतियों के साथ विमान द्वारा आकाश में विचरण करती होती हैं, किन्तु कृष्ण की वंशी की ध्वनि सुनते ही वे विचलित हो उठती हैं, उनके केशपाश शिथिल हो जाते हैं और उनकी कसी हुए पेटिया ढीली हो जाती हैं । इसका अर्थ यह हुआ कि कृष्ण वंशी की दिव्य ध्वनि ब्रह्माण्ड के चारों कोनों तक फैल चुकी थी, और यह भी महत्वपूर्ण बात हैं कि गोपियों को आकाश में उडने वाले विभिन्न प्रकार के वायुमानों का पता था । एक और गोपी अपनी सखियों से बोली सखियो! गाएँ भी कृष्ण की मुरली की दिव्य ध्वनि सुनकर मुग्ध हो जाती हैं । यह ध्वनि उन्हें अमृतवर्षा के समान प्रतीत होती है, जिसे संचित करने के लिए वे अपने लम्बे-लम्बे कानों को तुरन्त फैला देती है । बछडे अपनी-अपनी माताओं के स्तन अपने मुँह में दबाए रह जाते हैं और वे दूध नहीं पी पाते । वे भक्ति से विह्वल हो जाते हैं और उनकी आँखों से अश्रु ढरकने लगते हैं, जिससे यह स्पष्ट लगता है जैसे वे कृष्ण को अपने हृदय से लगा रहे हों । ये सब क्रियाएँ यह इंगित करती है कि

वृन्दावन में गौएँ और बछडे कृष्ण के लिए रोना और उनका आलिङ्गन करना जानते थे । वस्तुतः आँखो से अश्रुपात करना ही कृष्णप्रेम की पराकाष्ठा है ।

एक किशोरी गोपिका अपनी माता से बोली, अरी माँ! देखो न विभिन्न वृक्षों की डालों पर बैठे हुए ये सारे पक्षी कितने मनोयोग से कृष्ण को वंशी बजाते हुए देख रहे हैं । उनके स्वरूपों से ऐसा प्रतीत हो रहा है मानो ये अपनी सुधि-बुधि खोकर कृष्ण की वंशी सुनने मात्र में तल्लीन हैं । इससे यह सिद्ध होता है कि ये सामान्य पक्षी नहीं, अपितु ऋषि-मुनि तथा भक्त हैं, जो कृष्ण की बाँसुरी सुनने के लिए ही वृन्दावन में पक्षी रूप में अवतरित हुए हैं । बड़े-बड़े ऋषि-मुनि तथा विद्वान ज्ञान में रुचि रखते हैं, किन्तु भगवद्गीता में वैदिक ज्ञान का सार इस प्रकार बताया गया हैं-वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः-वेदों के ज्ञान द्वारा कृष्ण को समझना होता है । इन पक्षियों के आचरसण से ऐसा प्रतीत हो रहा था मानों ये वैदिक ज्ञान के पंडित हों और इन्होंने वैदिक ज्ञान की सारी शाखाओं को त्याग कर केवल कृष्ण की दिवय ध्वनि को अंगीकार कर लिया हो । यहाँ तक कि यह यमुना नदी कृष्ण की वंशी की दिव्य ध्वनि सुनकार उनके चरणकमलों का स्पर्श पाने की इच्छा से अपनी उत्ताल तरंगों को त्याग कर मन्द गति से प्रवाहित होती हुई एवं अपने हाथ में कमल-पुष्प धारण किए तीव्र प्रेमभाव से इन पुष्पों को मुकुन्द को भेंट करने जा रही हैं ।

कभी-कभी जब शरद्कालीन आतप (धूप) असह्म हो जाता तो अपनी मुरली बजाने में लीन कृष्ण, बलराम तथा उनके मित्रों के प्रति सहानुभूति दिखाने के लिए बादल छाया कर देते । उस समय ऐसा प्रतीत होता मानों उनसे मैत्री स्थापित करने के लिए ये बादल उनके सिरों पर छाता ताने हों । गँवार किशोरियाँ कृष्ण के चरमणकमलों के स्पर्श से रक्तिम हुई वृन्दावन रज को अपने मुखों तथा वक्षस्थलों पर लेपकर अपने को धन्य मान रही थीं । इन भोली किशोरियों के स्तन उभरे थे और वे

अत्यन्त कामाभिभूत थीं, किन्तु वे अपने-अपने प्रेमियों द्वारा किए गए स्तन-स्पर्श से सन्तुष्ट नहीं थीं । जब वे जंगल के मध्य पहुँचीं तो उन्होंने देखा कि कृष्ण के चलते समय उनके चरणकमलों से गिरे कुंकुम चूर्ण से वृन्दावन की कुछ लताएँ और पत्ते लाल-लाल हो गए थे । गोपियाँ उनक चरणकमलों के कुंकुम से रंजित रज को अपने स्तनों से लगातीं । जब कृष्ण बलराम तथा ग्वालबालों के साथ वृन्दावन के जंगल से होकर जाते, तो यह लाल-लाल चूर्ण वृन्दावन की भूमि पर उन्हें लाल-लाल कुंकुम दिखता, तो वे तुरन्त उसे उठाकर अपने मुख तथा स्तनों पर लगा लेतीं । इस प्रकार जो किशोरियाँ अपने प्रेमियों द्वारा स्तन-स्पर्श किए जाने से संतुष्ट नहीं होती थीं वे चरण-रज के स्पर्श के सन्तुष्ट हो जातीं । बात यह है कि सारी भौतिक वासनाएँ कृष्णभावनामृत के सम्पर्क में आते ही तुष्ट हो जाती है ।

एक अन्य गोपी गोवर्धन पर्वत की अद्वितीय स्थित की प्रशंसा इस प्रकार करने लगीः यह गोवर्धन पर्वत कितना भाग्यशाली है कि इसे अपने ऊपर चलते हुए कृष्ण तथा बलराम का सानिध्य प्राप्त हो रहा है । गोवर्धन पर्वत को भगवान् के चरणकमलों का निरन्तर स्पर्श प्राप्त है । इसी कृतज्ञता के कारण गोवर्धन पर्वत तरह-तरह के फल, मूल, औषधियाँ तथा अपने सरोवरों से स्वच्छ जल भेंट के रूप में प्रदान करता है । गोवर्धन पर्वत की सर्वोत्तम भेंट तो गौओं और बछडों के लिए नई उगी घास है । गोवर्धन पर्वत भगवान् के प्रिय साथियों, गौवों तथा बछडों को प्रसन्न करके भगवान् को प्रसन्न करने की कला जानता था है ।

एक अन्य गोपी ने कहा कि जब कृष्ण तथा बलराम अपनी बाँसुरी बजाते हुए और समस्त चराचर से मित्रता स्थापित करते हुए वृन्दावन के जंगल से होकर निकलते हैं, तो प्रत्येक वस्तु आश्चर्यजनक लगती है । जब वे अपनी दिव्य बाँसुरी बजाते हैं, तो जंगल के चलते प्राणी चकित होकर अपने कार्य रोक देते हैं और वृक्ष तथा वनस्पति जैसे अचर प्राणी आनन्द

से झूम उठते हैं । कृष्ण तथा बलराम की दिव्य बाँसुरियों की धुनों की ये आश्यर्चजनक प्रतिक्रियाएँ हैं ।

कृष्ण तथा बलराम सामान्य ग्वालबालों की तरह अपने कंधों तथा हाथों में गौवों को बाँधने की रस्सियाँ लिए रहते । दुहते समय सारे बालक गौवों के पिछले पाँवों को एक छोटी रस्सी (नोई) से बाँध देते । इस रस्सी को ग्वाले सदैव अपने कन्धों पर लटकाए रहते और यह रस्सी कृष्ण तथा बलराम के कंधों पर भी देखी जा सकती थी । भगवान् होते हुए भी वे ग्वालबालों की तरह क्रीड़ाएँ करते, अतः सारी बातें आश्चर्यजनक तथा आकर्षक लगतीं । जब कृष्ण वृन्दावन के जंगल में या गोवर्धन पर्वत पर गौवें चराने में व्यस्त रहते उस समय ग्राम की गोपियाँ उनके विषय में सोचने तथा उनकी विविध लीलाओं के बखान करने में लीन रहतीं । यह कृष्ण के ही विचारों में निरन्तर लीन रहने का सम्यक् उदाहरण है । यही प्रवृत्ति गोपियों के आचरण में सदैव स्पष्ट पायी जाती है, अतः भगवान् चैतन्य ने घोषित किया कि परमेश्वर की पूजा की अन्य कोई विधि गोपियों की इस विधि से श्रेष्ठ नहीं है । ये गोपियाँ ब्राह्मण या क्षत्रिय जैसे उच्च कुलों में उत्पन्न न होकर वैश्य-कुल में उत्पन्न हुई थीं और वह भी व्यापारियों की किसी उच्च श्रेणी में न होकर ग्वालों के कुल में हुई थीं । वे ठीक से शिक्षित भी न थीं, किन्तु उन्होंने वेदों के अधिकारी ब्राह्मणों से सारा ज्ञान सुन रखा था । गोपियों का एकमात्र कार्य था कृष्ण के विचारों में दिन-रात मग्न रहना ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " वंशी द्वारा मोहित गोपियाँ" नामक इक्कीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 22
गोपियों का चीर हरण

वैदिक सभ्यता के अनुसार दस से चौदह वर्ष तक की कुमारियों को अच्छे पति की प्राप्ति के लिए या तो शिव की या फिर देवी दुर्गा की पूजा करने होती है । किन्तु वृन्दावन की कुमारियाँ तो पहले सही कृष्ण के सौन्दर्य के प्रति आकृष्ट थीं । वे हेमन्त ऋतु (शीत ऋतु के पूर्व) के प्रारम्भ में देवी दुर्गा का पूजन किया करती थीं । हेमन्त का पहला मास अग्रहायण (अक्टूबर-नवम्बर) है और इस मास में वृन्दावन की सारी कुमारी गोपिकाएँ व्रत रखकर देवी दुर्गा की पूजा करने लगीं । सर्वप्रथम उन्होंने (हविष्यान्न) ग्रहण किया, जिसे मूँग की दाल तथा चावल में कोई मसाला या हल्दी डाले बिना उबाल कर तैयार किया जाता है । वैदिक आदेश के अनुसार कोई भी अनुष्ठान करने के पूर्व शरीर को शुद्ध करने के लिए ऐसे भोजन की संस्तुति की जाती है । वृन्दावन की सारी कुमारी गोपियाँ यमुना नदी में नित्य प्रातः स्नान करके देवी कात्यायनी की पूजा करती थीं । कात्यायनी देवी दुर्गा का ही दूसरा नाम है । इस देवी की पूजा यमुना की बालू से प्रतिमा बनाकर की जाती है । वैदिक शास्त्रों में संस्तुति की गई है कि अर्चाविग्रह की रचना विभिन्न प्रकार के पदार्थों से की जा सकती है । इसे रँगा जा सकता है, इसे धातु, रत्न, काष्ठ, मिट्टी या पत्थर से बनाया जा सकता है या फिर पूजने वाला अपने हृदय के भीतर उसका चिन्तन कर सकता है । मायावादी चिन्तकों के अनुसार ये सारे अर्चाविग्रह काल्पनिक हैं, किन्तु वैदिक साहित्य में इन्हें वास्तव में परमेश्वर या विभिन्न देवताओं के समरूप माना जाता है ।

सारी कुमारी गोपिकाएँ देवी दुर्गा का अर्चाविग्रह तैयार करके चन्दन लेप, माला, धूप, दीप तथा फल, अन्न तथा पौधों की शाखाओं जैसी भेंटें चढ़ाकर पूजा करतीं थीं । पूजा के बाद वरदान माँगने की प्रथा है । ये

कुमारिकाएँ देवी कात्यायनी की पूजा अत्यन्त भक्तिपूर्वक करतीं और उन्हें इस प्रकार सम्बोधित करती हे भगवान् की परम बहिरंगा शक्ति! हे परम योगशक्ति! हे जगत की परम नियन्ता! हे देवी! आप हम पर दयालु हों और नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण से हमारा विवाह कराने की व्यवस्था करें । सामान्यतः वैष्णवजन किसी देवता को नहीं पूजते । श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने उन लोगों को, जो विशुद्ध भक्ति में अग्रसर होना चाहते हैं, देवताओं की पूजा करने से नितान्त मना किया है । फिर भी गोपियाँ, जिनका कृष्ण-प्रेम अद्वितीय हैं, दुर्गा की पूजा करती थीं । देवताओं की पूजा करने वाले कभी-कभी उल्लेख करते हैं कि गोपियाँ भी देवी दुर्गा की पूजा करती थी, किन्तु हमें गोपियों का मन्तव्य समझना चाहिए । सामान्य रूप से लोग किसी भौतिक वरदान के लिए देवी दुर्गा की पूजा करते हैं, किन्तु यहाँ तो गोपियाँ देवी से भगवान् कृष्ण की पत्नियाँ बनने का वरदान माँगती थीं । कहने का तात्पर्य यह कि यदि हमारे कर्म का केन्द्रबिन्दु कृष्ण हो, तो अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए भक्त किसी भी साधन को अपना सकता है । गोपियाँ कृष्ण की सेवा करने या उन्हें प्रसन्न करने के लिए कोई भी साधन अपना सकती थीं । यह गोपियों की सर्वोत्कृष्ट विशेषता थीं । उन्होंने कृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए पूरे एक मास तक देवी दुर्गा की पूजा की । वे प्रतिदिन नन्द महाराज के पुत्र कृष्ण को अपना पति बनाने के लिए प्रार्थना करतीं ।

ये गोपियाँ बड़े-सवेरे यमुना के तट पर स्नान करने जातीं । ये वहाँ एकत्र होतीं और एक दूसरे का हाथ पकड़ कर कृष्ण की विचित्र लीलाओं का उच्च स्वर में गान करतीं । भारत की युवतियों तथा स्त्रियों में यह पुरानी प्रथा है कि जब वे नदी में स्नान करती हैं, तो वे अपने सारे वस्त्र किनारे पर रख देती हैं और तब पूर्णतया नग्न होकर जल में डुबकी लगाती हैं, अतः नदी के जिस भाग में वे स्नान करती हैं वहाँ पुरुषों के आने पर कडा प्रतिबन्ध रहता है और यह प्रथा आज तक चालू है । भगवान् कृष्ण इन

कुमारी तरुण गोपियों के मन की बात जानते थे, अतः उन्होंने उनकी मनोकामना पूरी की । उन्होंने कृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने की प्रार्थना की थी और कृष्ण उनकी इस मनोकामना को पूरा करना चाह रहे थे ।

महीना पूरा होने पर कृष्ण अपने साथियों समेत वहाँ पर प्रकट हुए । कृष्ण का दूसरा नाम योगेश्वर है । ध्यान का अभ्यास करके योगी अन्य पुरुषों की मानसिक स्थिति का पता लगा सकता है, अतः कृष्ण गोपियों के समस्त वस्त्र उठाकर पास के वृक्ष पर चढ़ गए और मुस्कुराते हुए उनसे बोलेः हे युवतियो! तुम एक-एक करके यहाँ आओ और मुझसे प्रार्थना करके अपने-अपने वस्त्र ले जाओ । मैं तुम लोगों से कोई हँसी नहीं कर रहा । मैं तुमसे सच-सच कह रहा हूँ । तुम लोगों से हँसी करने का मेरा कोई इरादा नहीं है, क्योंकि तुम देवी कात्ययानी की पूजा करते हुए एक मास तक अनुष्ठान करके थक गई हैं । हाँ, तुम सक एकसाथ यहाँ मत आओ, तुम अकेले-अकेले आओ, मैं तुम में से प्रत्येको तुम्हारे पूर्ण सौन्दर्य के साथ देखना चाहता हूँ, क्योंकि तुम सभी क्षीण कटि वाली हो । मैंने तुम सबों से एक-एक करके आने के लिए कहा है, अतः मेरी आज्ञा का पालन करो ।

जब जल के भीतर स्थित कुमारिकाओं ने कृष्ण के ऐसे परिहास भरे शबद सुने, तो वे एक दूसरे की ओर देख-देख कर हँसने लगीं । वे कृष्ण के इस निवेदन को सुनकर परम प्रसन्न हुईं, क्योंकि वे पहले से उन्हें प्यार करती थीं । वे लज्जावश एक दूसरे की ओर देखती रहीं, किन्तु जल से निकल कर बाहर न आईं, क्योंकि वे नग्न थीं । उन्हें अधिक काल तक जल के भीतर रहने से ठंड सताने लगी जिससे वे थरथराने लगीं । फिर भी गोविन्द के मोहक तथा परिहासपूर्ण वचन सुनकर उनके मन परम प्रसन्नता से अशान्त होने लगे । वे कृष्ण से कहने लगीं हे नन्दलाल! कमसे इस प्रकार की हँसी न करो । यह हमारे साथ घोर अन्याय है । तुम नन्द

महाराज के पुत्र होने के कारण अत्यन्त प्रतिष्ठित हो और हमें अत्यन्त प्रिय हो, किन्तु तुमको इस समय हमारे साथ ऐसा परिहास नहीं करना चाहिए, क्योंकि हम ठंडे जल के कारण ठिठुर रही हैं । कृपा करके हमें तुरन्त हमारे वस्त्र दे दो, अन्यथा हमें कष्ट होगा । वे पुनः कृष्ण से अत्यन्त विनीत भाव से कहने लगीं हे श्यामसुन्दर! हम तुम्हारी शाश्वत दासी हैं । तुम हमें जो भी आज्ञा दोगे उसे हम बिना हिचक के करने के लिए वाध्य हैं, क्योंकि हम उसे अपना पुनीत कर्तव्य समझती हैं । किन्तु यदि तुम हमारे समक्ष ऐसा प्रस्ताव रखोगे, जिसे सम्पन्न करना असम्भव हो, तो यह समझ लो कि हमें नन्द महाराज से तुम्हारी शिकायत करनी पड़ेगी । यदि नन्द महाराज उस पर कोई कार्यवाही नहीं करेंगे, तो हम तुम्हारे इस दुर्व्यवहार को राजा कंस से कहेंगी ।

कुमारी गोपिकाओं की यह विनती सुनकर कृष्ण ने कहा, हे बालिकाओं! यदि तुम अपने को मेरी शाश्वत सेविकाएँ मानती हो और मेरी आज्ञा का पालन करने के लिए सदैव तैयार रहती हो, तो मेरी यह विनती हैं कि तुम प्रसन्न मुख एक-एक करके यहाँ आओ और अपने-अपने वस्त्र ले जाओं । यदि तुम नहीं आतीं और मेरे पिता से शिकायत करोगी, तो मैं कोई परवाह नहीं करूँगा, क्योंकि मैं जानता हूँ कि मेरे पिता वृद्ध हैं और मेरे विरुद्ध वे कुछ भी नहीं कर सकते ।

जब गोपियों ने देखा कि कृष्ण दृढ़संकल्प हैं, तो उनके पास आज्ञा-पालन के अतिरिक्त अन्य कोई चारा न था । वे एक-एक करके जल से निकल कर बाहर आईं, किन्तु पूर्ण नग्न होने के कारण अपनी नग्नता छिपाने के लिए वे अपने गुप्तांगों पर अपना बायाँ हाथ रखे थीं । ऐसी मुद्रा में वे थराथरा रही थीं । उनके इस सरल स्वभाव के कारण कृष्ण उन पर प्रसन्न हो गए । इस प्रकार जिन कुमारी गोपियों ने कृष्ण को पति रूप में पाने के लिए कात्यायनी से प्रार्थना की थी वे सब प्रसन्न होगईं । कोई भी स्त्री अपने पति के अतिरिक्त अन्य किसी पुरुष के समक्ष नंगी नहीं हो

सकती । ये अविवाहित गोपिकाएँ कृष्ण को पतिरूप में चाहती थीं और कृष्ण ने उनकी इच्छा इस तरह पूरी की । वे उनसे प्रसन्न होकर उनके वस्त्रों को अपने कंधे में डालकर इस प्रकार बोलेः हे बालिकाओ! तुमने यमुना नदी के भीतर नग्न होकर बहुत बडा अपराध किया है । इस कारण यमुना के अधिष्ठाता वरुणदेव तुम लोगों से अप्रसन्न हो गए हैं, अतः तुम सब हाथ जोडकर वरुणदेव के समक्ष झुक कर प्रणाम करों जिससे वे तुम्हारे इस अपराध-कार्य को क्षमा कर दें । गोपियाँ अत्यन्त सरल जीवात्माएँ थीं और कृष्ण जो भी कहते उसे वे सत्य मान लेतीं, अतः वरुणदेव के कोप से मुक्त होने तथा अपनी मनोकामना की पूर्ति करने एवं अन्ततः आराध्यदेव कृष्ण को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने तुरन्त उनकी आज्ञा मान ली । इस तरह वे कृष्ण की सर्वोच्च प्रेमिकाएँ तथा उनकी परम आज्ञाकारिणी दासियाँ बन गईं ।

गोपियों की कृष्णभक्ति की कोई बराबरी नहीं कर सकता । वास्तव में गोपियों को वरुण या किसी अन्य देवता की कोई परवाह न थी; वे तो केवल कृष्ण को प्रसन्न करना चाहती थीं । कृष्ण गोपियों के सरल आचरण से अत्यधिक प्रभावित तथा प्रसन्न थे, अतः उन्होंने तुरन्त ही उनके वस्त्र वापस कर दिये । यद्यपि कृष्ण के इन तरुण गोपिकाओं को ठगा था और उन्हें अपने समक्ष नग्न खडा रखा था तथा उनसे परिहास का आनन्द लूटा था और यद्यपि उन्होंने उन सबको पुत्तलिकाएँ समझकर उनके वस्त्र चुरा लिए थे, तो भी वे सब उनसे प्रसन्न थीं और उन्होंने कभी भी उनकी शिकायत नहीं की । गोपियों के इस मनोभाव का वर्णन चैतन्य महाप्रभु की इस प्रार्थना में मिलता है , हे भगवान् कृष्ण! आप चाहे मुझे प्यार करें या पैरों के नीचे रौंद दें या मेरे समक्ष प्रकट न होकर मुझे भग्नहृदय कर दें । आपको जो भाए सो करें, क्योंकि आपकी पूरी छूट हैं । किन्तु तो भी आप मेरे स्वामी हैं; मेरा कोई अन्य आराध्य नहीं हैं । कृष्ण के प्रति गोपियों का ऐसा था मनोभाव!

कृष्ण उनसे प्रसन्न थे और चूँकि वे सभी उन्हें पति-रूप में चाहती थी, अतः उन्होंने उनसे कहा, हे शिष्ट बालिकाओं! मैं अपने प्रति तुम्हारी इच्छा से परिचित हूँ और यह भी जानता हूँ कि तुम ने कात्यायनी की पूजा क्यों की । मैं तुम्हारे इस कार्य का पूरा अनुमोदन करता हूँ ।जिस किसी की पूर्ण चेतना, भले ही काम-वासना में रहकर ही क्यों न मुझमें तल्लीन रहती हो, वह उच्च पद प्राप्त करता है । जिस प्रकार भूना हुआ बीज नहीं उग सकता उसी प्रकार मेरी प्रेमाभक्ति के प्रसंग में कोई भी इच्छा सकाम फल नहीं देती जैसाकि सामान्य कर्म में होता है ।

ब्रह्म-संहिता का एक कथन है कर्माणि निर्दहति किन्तु च भक्तिभाजाम् । प्रत्येक मनुष्य अपने कर्मों से बँधा हैं, किन्तु चूँकि भक्त भगवान् को प्रसन्न करने के लिए ही कर्म करते हैं, अतः उन्हें ऐसे कर्म-फल भोगने नहीं पड़ते । इसी प्रकार कृष्ण के प्रति गोपियों का मनोभाव, यद्यपि वासनामय जान पड़ता है, किन्तु उसे सामान्य स्त्रियों की काम-इच्छाओं के समान नहीं समझना चाहिए । इसका कारण कृष्ण ने स्वयं बताया है । कृष्ण की भक्ति के हेतु किये गए किसी भी कर्म-फल से परे हैं ।

कृष्ण ने आगे कहा, हे गोपियो! मुझे पति-रूप में पाने की तुम्हारी इच्छा पूरी होगी, क्योंकि तुम सबों ने इसी इच्छा से देवी कात्यायनी की पूजा की है । मैं वचन देता हूँ कि मैं तुम सबसे अगली शरद् ऋतु में मिलूँगा और तुम अपने पति-रूप में मेरे साथ आनन्द भोग सकोगी ।

थोडे समय बाद कृष्ण अपने सखाओं सहित वृक्षों की छाया में बैठकर अत्यन्त प्रसन्न हो गए । चलते समय उन्होंने वृन्दावन वासियो को सम्बोधित किया, हे स्तोककृष्ण, हे वरूथप, हे भद्रसेन, हे सुदामा, हे सुबल, हे अर्जुन, हे विशाल, हे ऋषभ! जरा, वृन्दावन के इन परम भाग्यशाली वृक्षों को तो देखो! इन्होंने परोपकार में अपना जीवन उत्सर्ग कर दिया है । ये अकेले-अकेले अन्धड़, वर्षा की झड़ी, प्रचण्ड आतप

तथा बेधन वाली शीत जैसे प्राकृतिक प्रकोपों को सह लेते हैं, किन्तु ये हमारे श्रम को हरने तथा हमें शरण देने में अत्यन्त सतर्क रहते हैं । मेरे विचार से ये वृक्षों के रूप में इस जन्म में धन्य हैं । ये दूसरों को शरण देने में इतने सतर्क रहते हैं कि वे उन सहृदय तथा दानी व्यक्तियों के समान हैं, जो पास आने वाले किसी व्यक्ति को भी दान देने से इनकार नहीं करता । ये वृक्ष किसी को भी छाया देने से इनकार नहीं करते । ये मानव-समाज को विविध प्रकार की सुविधाएँ प्रदान करते हैं-यथा पत्तियाँ, फूल, फल, छाया, मूल, जड़, सुगंध तथा ईंधन । ये उदात्त जीवन के सर्वोत्तम उदाहरण हैं । ये उन उदार व्यक्तियों के समान हैं जिन्होंने अपना सर्वस्व-अपना तन, मन, कर्म, बुद्धि तथा वाणी-समस्त प्राणियों की भलाई में अर्पित कर दिया है ।

इस तरह भगवान् श्रीकृष्ण वृक्षों के फलों, पत्तों तथा टहनियों का स्पर्श करते एवं उनके यशस्वी परोपकारी कार्यों की प्रशंसा करते यमुना-तट पर विहार करते रहे । विभिन्न प्रकार के लोग अपनी-अपनी दृष्टियों से मानव-समाज के काल्यण हेतु कुछ कल्याण-कार्य करते हैं, किन्तु सामान्य जनों के शाश्वत लाभ के लिए जो परोपकार किया जा सकता है, वह हे कृष्णभावनामृत आन्दोलन का प्रसार । प्रत्येक व्यक्ति को इस आंदोलन के प्रचार के लिए उद्यत रहना चाहिए । जैसाकि भगवान् चैतन्य ने उपदेश दिया है, मनुष्य को भूमि की घास से भी विनम्र तथा वृक्ष से भी अधिक सहिष्णु होना चाहिए । स्वयं भगवान् कृष्ण ने वृक्षों की सहिष्णुता का वर्णन किया है और जो लोग कृष्णभावनामृत का उपेदश देते हैं उन्हें भगवान् कृष्ण तथा चैतन्य की प्रत्यक्ष गुरु-परम्परा से शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए ।

यमुना-तट स्थित वृन्दावन के जंगल से जाते हुए कृष्ण एक सुन्दर स्थान पर बैठ गए और गौवों को यमुना का स्वच्छ शीतल जल पीने दिया । थक जाने के कारण कृष्ण, बलराम तथा ग्वालों ने भी पानी पिया । कृष्ण

ने गोपियों को यमुना में स्नान करते देखने के बाद शेष प्रातःकाल लड़कों के साथ बिताया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " गोपियों का चीर हरण" नामक बाइसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 24
गोवर्धन पूजा

जब कृष्ण तथा बलराम वैदिक यज्ञों को सम्पन्न करने वाले ब्राह्मणों से बातें करने में व्यस्त थे, तो उन्होंने यह भी देखा कि स्वर्ग के राजा तथा वर्षा के लिए उत्तरदायी इन्द्र को प्रसन्न करने के लिए सारे ग्वाले एक वैसे ही यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं । जैसाकि चैतन्य चरितामृत में कहा गया है कि कृष्ण-भक्त का यह दृढ़ विश्वास है कि यदि वह केवल कृष्णभावनामृत तथा कृष्ण की दिव्य प्रेमा-भक्ति में लगा रहे, तो वह अन्य समस्त ऋणों से मुक्त हो जाता है । कृष्ण के विशुद्ध भक्त को वेदों द्वारा बताये गए किसी अनुष्ठान को नहीं करना होता, न ही उसे किसी देवता की पूजा करनी होती हैं । कृष्ण-भक्त होने से यह मान लिया जाता है कि उसने सारे वैदिक अनुष्ठान या देवताओं की पूजा सम्पन्न कर ली है । वैदिक अनुष्ठान करने से या देवताओं की पूजा करने से ही कृष्णभक्ति उत्पन्न नहीं हो जाती । बल्कि यह समझ लेना चाहिए कि जो भगवान् की सेवा में पूर्णरूपेण लगा रहता है । वह पहले से सारे वैदिक आदेशों को पूरा किये रहता है ।

कृष्ण अपने भक्तों द्वारा ऐसे कार्य बन्द करवाने के लिए अपनी उपस्थिति में वृन्दावन में अनन्य भक्ति स्थापित कर देना चाहते थे । सर्वज्ञ कृष्ण को ज्ञात था कि सारे ग्वाले इन्द्र-यज्ञ की तैयारी कर रहे हैं, किन्तु शिष्टाचारवश उन्होंने अत्यन्त विनय से तथा आदरपूर्वक नन्द महाराज

तथा अन्य गुरुजनों से इसके सम्बन्ध में पूछना प्रारम्भ कर दिया । उन्होंने अपने पिता से पूछा, हे पिताजी! विशाल यज्ञ के लिए यह सारा प्रबन्ध क्यों हो रहा है? इस यज्ञ का क्या फल है और यह किसके निमित्त है? यह किस तरह सम्पन्न होता है? कृपा करके मुझे बताएँ क्योंकि मैं इसका उद्देश्य जानने का इच्छुक हूँ । उनकी इस पूछताछ पर उनके पिता नन्द महाराज यह सोचकर मौन बने रहे कि यह तरुण बालक यज्ञ सम्पन्न करने की मुत्थियों को नहीं समझ सकेगा । किन्तु कृष्ण ने हठ कियाः हे पिता! उदार तथा सन्त पुरुषों के लिए कुछ भी गोपनीय नहीं होता । वे किसी को भी न तो मित्र मानते हैं और न शत्रु और न ही तटस्थ क्योंकि वे सबों के प्रति सदैव उदार होते हैं । यहाँ तक कि जो लोग इतने उदार नहीं होते वे भी अपने परिवार के सदस्यों तथा मित्रों से कुछ नहीं छिपाते । हाँ, जो लोग शत्रुता रखते हैं उनसे गोपनीयता बरती जा सकती हैं । अतः आप मुण्से कुछ भी गोपनीय न रखें । सारे के सारे मनुष्य सकाम कर्म में लगे रहते हैं । इनमें से कुछ जानते रहते हैं कि ये कर्म क्या हैं और उन्हें फल का भी पता रहता है । कुछ लोग ऐसे हैं, जो उद्देश्य या फल को जाने बिना कर्म करते हैं । जो व्यक्ति पूरी समझ में कर्म करता है उसे पूरा फल मिलता है और जो बिना जाने ऐसा करता है उसे पूरा फल नहीं मिलता । अतः आप मुझे इस यज्ञ का प्रयोजन बता दें, जिसे आप करने जा रहे हैं । क्या यह वैदिक आदेशानुसार है? या यह केवल लौकिक उत्सव है? कृपा करके मुझे इस यज्ञ के विषय में विस्तार से बताएँ ।

कृष्ण से यह प्रश्न सुनकर महाराज नन्द ने उत्तर दिया, मेरे बेटे! यह उत्सव न्यूनाधिक परम्परागत है । चूँकि वर्षा राजा इन्द्र की कृपा से होती है और बादल उसके प्रतिनिधि हैं और चूँकि हमारे जीवन के लिए जल इतना महत्वपूर्ण है, अतः हमें वर्षा के नियामक महाराज इन्द्र के प्रति कुछ कृतज्ञता प्रकट करनी चाहिए । अतः हम राजा इन्द्र को प्रसन्न करने का प्रबन्ध कर रहे हैं क्योंकि उसने कृषिकर्मों को सफल बनाने के लिए

ही बादलों को प्रचुर वर्षा करने के लिए भेजा है । जल अत्यन्त आवश्यक है, जब के बिना न तो हम जोत-बो सकते हैं, न अन्न उत्पन्न कर सकते हैं । यदि वर्षा न हो, तो हम जीवित नहीं रह सकते । यह वर्षा धर्म, अर्थ तथा मोक्ष के लिए आवश्यक है । अतः हमें परम्परागत उत्सवों को छोड़ना नहीं चाहिए; यदि कोई काम, लोभ या भय के कारण इनका परित्याग करता है, तो यह उसे शोभा नहीं देता ।

इसे सुनकर भगवान् कृष्ण अपने पिता तथा वृन्दावन के समस्त प्रौढ़ ग्वालों के समक्ष इस प्रकार बोले जिससे स्वर्ग का राजा इन्द्र अत्यन्त कुपित हो जाएँ । उन्होंने सुझाया कि यह यज्ञ बन्द कर दिया जाऐं । इन्द्र को प्रसन्न करने वाले इस यज्ञ का निषेध करने के दो कारण थे । पहला-जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है किसी भौतिक उन्नति के लिए देवताओं की पूजा करना व्यर्थ है, देवताओं की पूजा से प्राप्त होने वाले सारे फल क्षणिक होते हैं और केवल अल्पज्ञ ही ऐसे; क्षणिक फलों में रुचि रखते हैं । दूसरा-देवताओं की पूजा से जो भी क्षणिक फल प्राप्त होता है, वह वस्तुतः भगवान् की कृपा से होता है । भगवद्गीता में स्पष्ट कथन है-मायैव विहितान् हि तान् । देवताओं से जो भी लाभ मिलता है, वह वास्तव में भगवान् द्वारा प्रदत्त है । भगवान् की अनुमति के बिना कोई किसी को लाभ नहीं पहुँचा सकता । किन्तु कभी-कभी देवता भौतिक प्रकृति के वशीभूत होकर गर्वित हो उठते हैं और अपने को सर्वस्व समझ कर भगवान् की सर्वोच्चता भूल जाते हैं । श्रीमद्भागवत में स्पष्ट उल्लेख हैं कि इस प्रसंग में तो कृष्ण राजा इन्द्र को कुपित करना चाहते थे । कृष्ण का अवतार असुरों के विनाश तथा भक्तों की रक्षा के लिए हुआ था । इन्द्र निश्चित रूप से भक्त था, असुर नहीं, किन्तु चूँकि वह गर्वित था, इसलिए कृष्ण उसे पाठ पढ़ाना (शिक्षा देना) चाहते थे । सर्वप्रथम उन्होंने इन्द्र को कुपित करने के लिए वृन्दावन में ग्वालों द्वारा की जाने वाली इन्द्रपूजा बन्द करा दी ।

इस उद्देश्य से कृष्ण इस प्रकार बातें करने लगे मानो वे नास्तिक हों और कर्म-मीमांसा दर्शन के समर्थक हों । इस दर्शन के समर्थक भगवान् की सर्वोच्चता को स्वीकार नहीं करते । वे यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यदि कोई अच्छा कार्य करता है, तो उसका फल अवश्य प्राप्त होगा । उनके मत से यदि मनुष्य को उसके कर्मों का फल देने वाला ईश्वर विद्यमान भी हो, तो उसके पूजन की कोई आवश्यकता नहीं हैं क्योंकि जब तक मनुष्य कर्म नहीं करता तब तक वह कोई फल नहीं दे सकता । उनका कहना है कि देवता या ईश्वर की पूजा करने के बजाय मनुष्यों को चाहिए कि अपने कर्तव्यों की ओर ध्यान दें और इस प्रकार अवश्य ही अच्छा फल प्राप्त होगा । भगवान् कृष्ण अपने पिता से कर्म-मीमांसा दर्शन के इन्हीं सिद्धान्तों के अनुसार बातें करने लगे । उन्होंने कहा, हे पिता! मेरे विचार से अपने कृषिकार्यों की सफलता के लिए आपको किसी भी देवता के पूजने की आवश्यकता नहीं है । प्रत्येक जीव अपने पूर्वकर्म के अनुसार उत्पन्न होता है और वर्तमान कर्म के फल को साथ लेकर इस जीवन को त्याग देता है । प्रत्येक जीव अपने पूर्वकर्मों के अनुसार विविध योनियों में जन्म ग्रहण करता है और इस जीवन में जैसा कर्म करता है उसी के अनुसार अगला जन्म पाता है । विभिन्न प्रकार के भौतिक सुख तथा दुख, लाभ तथा हानि भिन्न-भिन्न प्रकार के कर्मों के प्रतिफल हैं, जो पूर्वजन्म में या इस जन्म में किए जा चुके हैं ।

महाराज नन्द तथा अन्य गुरुजनों ने तर्क दिया कि प्रमुख देवता को प्रसन्न किए बिना केवल भौतिक कर्मों द्वारा कोई शुभ फल की प्राप्ति नहीं कर सकता । यही तथ्य है । उदाहरणार्थ, कभी-कभी देखा जाता है । कि उत्तम डाक्टर द्वारा उत्तमोत्तम चिकित्सा तथा उपचार करने पर भी रोगी की मृत्यु हो जाती है । अतः यह निष्कर्ष निकलता है कि उत्तम उपचार या उत्तम डॉक्टर द्वारा किया गया प्रयास ही रोगी के अच्छा होने के कारण नहीं हैं; इसमें भगवान् का हाथ अवश्य होना चाहिए । इसी प्रकार माता-

पिता द्वारा अपनी सन्तानों का लालन-पालन ही बच्चों के सुख का कारण नहीं होता । कभी-कभी देखा जाता है कि माता-पिता द्वारा समस्त सावधानी बरतने के बावजूद बच्चें बिगड़ जाते हैं या मर जाते हैं । अतः फल के लिए भौतिक कारण पर्याप्त नहीं हैं । इसमें भगवान् की स्वीकृति (प्रसाद) आवश्यक हैं । अतः नन्द महाराज ने दलील दी कि कृषिकर्म में अच्छा फल पाने के लिए हमें वर्षा के अधिष्ठाता देव इन्द्र को प्रसन्न करना चाहिए । भगवान् कृष्ण ने इस तर्क को काटते हुए कहा कि देवता केवल उन व्यक्तियों को फल देते हैं, जो अपने कर्तव्यों का पालन करते हैं । देवता ऐसे व्यक्ति को कभी कोई फल नहीं दे सकते जिसने अपना नियत कर्म पूरा न किया हो । अतः देवता कर्म सम्पन्नता (कर्मपरायणता) पर आश्रित है और उन्हें किसी को अच्छा फल देने की पूरी छूट नहीं है । अतः किसी को उनकी परवाह क्यों करनी चाहिए?

भगवान् कृष्ण ने कहा, हे पिताजी! इन्द्रदेव की पूजा करने की कोई आवश्यकता नहीं हैं प्रत्येक जीव को अपने कर्म का फल प्राप्त होता है । हम देखते हैं कि अपने कर्म की स्वाभाविक प्रवृति के अनुसार हर व्यक्ति कार्यरत हो जाता है और सारे जीव-चाहे मनुष्य हों या देवता-इसी प्रवृति के द्वारा अपना-अपना फल प्राप्त करते हैं । सारे जीवन अपने-अपने कर्म के अनुसार उच्च या निम्न शरीर प्राप्त करते हैं और शत्रु या मित्र बनाते हैं । मनुष्य को अपनी सहज प्रवृति के अनुसार ही कर्म करना चाहिए और विविध देवताओं की पूजा में ध्यान नहीं मोड़ना चाहिए । सारे देवता समस्त कर्मों के सही कार्यान्वयन से प्रसन्न होंगे, अतः उनकी पूजा की कोई आवश्यकता नहीं है । अच्छा यही है कि हम अपना कर्तव्य सुचारु रीति से करें । वस्तुतः कोई भी व्यक्ति निर्दिष्ट कर्म किए बिना सुखी नहीं हो सकता । अतः जो ढ़ंग से निर्दिष्ट कर्म नहीं करता वह व्यभिचारिणी स्त्री के समान है । ब्राह्मण का उचित निर्दिष्ट कर्तव्य वेदों का अध्ययन है, प्रशासक वर्ग अर्थात क्षत्रियो का कर्तव्य नागरिकों को सुरक्षा प्रदान करना

है, वैश्यों का कर्तव्य कृषि, व्यापार तथा गौवों की सुरक्षा करना है और शूद्रों का कर्तव्य है उच्च वर्गों अर्थात् ब्राह्मणों, क्षत्रियों तथा वैश्यों की सेवा करना । हम वैश्य जाति के हैं और हमारा वास्तविक कर्तव्य खेती करना, कृषि उत्पादनों का व्यापार, गौवों की रक्षा या बैंक में लेन-देन का कार्य करना है ।

कृष्ण ने अपना सम्बन्ध वैश्य जाति से जोड़ा क्योंकि नन्द महाराज अनेक गायों की रक्षा कर रहे थे और कृष्ण उनकी देखरेख करते थे । उन्होंने वैश्य जाति के चार प्रकार के कार्य गिनाये हैं- कृषि, व्यापार, गोरक्षा तथा बैंक की व्यवस्था । यद्यपि वैश्यगण इनमें से कोई भी कार्य कर सकते हैं, किन्तु वृन्दावनवासी मुख्यतः गोरक्षा में ही लगे हुए थे ।

कृष्ण ने अपने पिताजी को आगे भी बताया, यह दृश्य जगत प्रकृति के तीन गुणों-सतो, रजो तथा तमो-के अधीन चल रहा है । ये तीन गुण उत्पत्ति, पालन तथा संहार के कारणव्स्वरूप है । बादल की उत्पत्ति रजोगुण के प्रभाव से होती है, अतः वर्षा का कारण यही रजोगुण है । इस वर्षा के बाद ही जीवों को फल अर्थात कृषि कार्य में सफलता मिलती है । तो फिर इन्द्र को इस कार्य से क्या प्रयोजन है? यदि आप इन्द्र को प्रसन्न न भी करें, तो वह क्या कर सकता है? हमें इन्द्र से कोई विशेष लाभ नहीं मिलता । यदि वह हो भी तो वह समुद्र के ऊपर भी तो जल बरसाता है जहाँ उसकी कोई आवश्यकता नहीं है । अतः हम पूजा करें या न करें, वह समुद्र तथा पृथ्वी पर जल की वर्षा करता हैं । जहाँ तक हमारी बात है, हमें किसी अन्य नगर या गाँव या विदेश जाने की आवश्यकता नहीं है । नगरों में बड़े-बड़े महल हैं, किन्तु हम तो वृन्दावन के इसी जंगल में रहने से ही संतुष्अ हैं । हमारा सम्बन्ध गोवर्धन पर्वत तथा वृन्दावन के जंगल से हैं, अन्य कहीं से नहीं । अतः हे पिता! मेरी आपसे प्रार्थना है कि आप ऐसा यज्ञ करें जिससे स्थानीय ब्राह्मण तथा गोवर्धन पर्वत सन्तुष्ट हो सकें । हमें इन्द्र से कोई सरोकार नहीं है ।

कृष्ण के इस कथन को सुनकर नन्द महाराज ने उत्तर दिया, मेरे बेटे! चूँकि तुम कह रहे हो इसलिए मैं स्थानीय ब्राह्मणों तथा गोवर्धन पर्वत के लिए एक पृथक् यज्ञ का आयोजन किये देता हूँ । किन्तु इस समय मुझे यह इन्द्र-यज्ञ करने दो ।

किन्तु कृष्ण का प्रत्युत्तर था, पिताजी! आप विलम्ब न करें । आप गोवर्धन पर्वत तथा स्थानीय ब्राह्मणों के लिए जिस यज्ञ का प्रस्ताव रख रहे हैं उसमें काफी समय लगेगा । अतः अच्छा हो यदि इन्द्र-यज्ञ के लिए आपने जितनी तैयारियाँ की हैं, उनसे तुरन्त गोवर्धन पर्वत तथा स्थानीय ब्राह्मणों को संतुष्अ कर दिया जायें ।

अन्ततोगत्वा महाराज नन्द को पसीजना पड़ा । तब ग्वालों ने कृष्ण से पूछा कि वे यज्ञ को किस तरह करना चाहते हैं । तो कृष्ण ने उन्हें ये आदेश दिए, यज्ञ के पकौड़ी, पूड़ी तथा दूध के व्यजंन-यथा खीर, रबडी, रसगुल्ला, सन्देश एवं लड्डू बनाए जायँ और फिर विद्वान ब्राह्मणों को बुलवा कर वैदिक मंत्रों के उच्चारणसहित अग्नि को आहुति प्रदान की जाए । ब्राह्मणों को दान में सभी प्रकार के अन्न दिये जाएँ । सारी गौवो को सजाकर उन्हें अच्छा चारा दिया जाए । इसके बाद ब्राह्मणों को दान में धन दिया जायें । जहाँ तक निम्न स्तर के पशुओं या लोगों का प्रश्न है, कुत्तों और चण्डालों और अपूत समझे जाने वाले पंचम श्रेणी के लोगों को भी पेट भर कर प्रसाद दिया जाए । गौवों को उत्तम घास खिलाकर तुरन्त ही गोवर्धन पूजा प्रारम्भ की जायें । इस यज्ञ से मैं परम सन्तुष्ट रहूँगा ।

कृष्ण के इस कथन में वैश्य जाति की समस्त अर्थव्यवस्था का वर्णन हुआ है । मानव-समाज की सभी जातियों में तथा पशु-जगत में गायों, कुत्तों, बकरियों आदि में, प्रत्येक जीव को अपनी-अपनी भूमिका अदा करनी होती है । हर एक सदस्य को सम्पूर्ण समाज के लाभ के लिए सहयोग से काम करना होता है । इस ममें न केवल सजीव पदार्थ, अपितु पर्वत तथा भूमि जैसे निर्जीव पदार्थ भी सम्मिलित हैं । वैश्य जाति का

विशेष दायित्व रहता है कि समाज के आर्थिक विकास के लिए वह अन्न उत्पन्न करें, गौवों की रक्षा करें, आवश्यकता पड़ने पर खाद्य पदार्थों का यातायात करें तथा बैकिंग और अर्थ को सँभाले ।

इस कथन से हमें यह भी ज्ञात होता है कि यद्यपि कुत्ते तथा बिल्लियाँ अब इतनी महत्वपूर्ण हो गई हैं कि इनकी भी उपेक्षा नहीं की जानी चाहिए । किन्तु गौवों की रक्षा कुत्तों-बिल्लियों की सुरक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है । इस कथन से हमें एक अन्य संकेत यह मिलता है कि उच्चवर्गों को चण्डाल या अस्पृश्य की उपेक्षा नहीं करना चाहिए और उन्हें आवश्यक रक्षा प्रदान की जानी चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति का अपना महत्व है, किन्तु इनमें से कुछ मानव-समाज की प्रगति के लिए प्रत्यक्ष उत्तरदायी है और कुछ अप्रत्यक्ष रूप से । किन्तु कृष्णभावनामृत होने पर हर एक के लाभ का ध्यान रखा जाता है ।

कृष्णभावनामृत-आन्दोलन गोवर्धन पूजा नामक यज्ञ को मान्यता देता है । भगवान् चैतन्य की संस्तुति है कि चूँकि कृष्ण पूजनीय हैं, अतः उनकी भूमि वृन्दावन तथा गोवर्धन पर्वत भी पूजनीय हैं । इस कथन की पुष्टि के लिए कृष्ण ने कहा कि गोवर्धन की पूजा उनकी पूजा के ही समान है । तब से आजतक गोवर्धन पूजा की जाती हैं, जो अन्नकूट नाम से विख्यात है । इस उत्सव पर वृन्दावन तथा वृन्दावन के बाहर के मन्दिरों में भी प्रचुर मात्रा में भोजन तैयार किया जाता है और जनता में खुले दिल से बाँट दिया जाता है । कभी-कभी यह भोजन भीड़ में फेंक दिया जाता है और लोग उसे जमीन से भी उठाकर खानें में प्रसन्नता का अनुभव करते हैं । इस से हम समझ सकते हैं कि कृष्ण को अर्पित प्रसाद कभी-भी दूषित नहीं होता, भले ही वह भूमि पर क्यों न फेंका गया हो । अतः लोग इसे एकत्र करके परम प्रसन्नतापूर्वक खाते हैं ।

अतः भगवान् श्रीकृष्ण ने ग्वालों को सलाह दी कि इन्द्र-यज्ञ बन्द करके इन्द्र को दण्डित करने के लिए गोवर्धन-पूजा प्रारम्भ की जायें

क्योंकि इन्द्र स्वर्ग का परम नियन्ता होने के कारण अत्यन्त गर्वीला हो गया था । नन्द महाराज तथा सीधे-सादे ईमानदान ग्वालों ने कृष्ण का प्रस्तवा मानकर उनके द्वारा संस्तुत सब कार्य विस्तार से सम्पन्न किए । उन्होंने गोवर्धन की पूजा तथा उसकी परिक्रमा सम्पन्न की (गोवर्धन-पूजा के उद्धाटन के बाद आज भी वृन्दावनवासी सुन्दर वस्त्र पहन कर गोवर्धन पर्वत की पूजा करने और गौवों को आगे करके परिक्रमा करने के लिए उसके निकट एकत्र होते हैं ।) भगवान् के आदेशानुसार नन्द महाराज तथा ग्वालों ने विद्वान ब्राह्मणों को बुलाया और वैदिक मंत्रोच्चार के साद समर्पण करके गोवर्धन की पूजा की । वृन्दावनवासी एकत्र हुए, उन्होंने अपनी-अपनी गौवें सजाईं और उन्हें हरी-हरी दूब दी । फिर गौवों को आगे करके गोवर्धन पर्वत की परिक्रमा करने लगे । गोपियों ने भी अपने को अच्छे वस्त्रों से सजाया और वे बैलगाड़ियों में बैठकर कृष्ण की लीलाओं का कीर्तन करने लगीं । यहाँ एकत्रित ब्राह्मणों ने गोवर्धन-पूजा के लिए पुरोहित बनकर ग्वालों तथा उनकी पत्नियों (गोपियों) को आशीर्वाद किया । जब सब कुछ पूरा हो गया तो कृष्ण महान् दिव्य रूप धारण किया और वृन्दावनवासियों के समक्ष घोषित किया कि वे स्वयं गोवर्धन पर्वत हैं जिससे भक्तों को विश्वास हो जाये कि स्वयं कृष्ण तथा गोवर्धन पर्वत अभिन्न हैं । तब वहाँ पर अर्पित सारे व्यंजनों (भोग) को कृष्ण खाने लगे । आज भी कृष्ण तथा गोवर्धन पर्वत की अभिन्नता का सम्मान किया जाता है और परम भक्तगण गोवर्धन पर्वत से शिलाखण्ड लेकर उसकी उसी प्रकार पूजा करते हैं जिस प्रकार मन्दिरों में कृष्ण के श्रीविग्रह की हैं । इसीलिए कृष्णभावनामृत अनुयायी गोवर्धन पर्वत से छोटी-छोटी शिलाएँ एकत्र करके अपने घर में उनकी पूजा कर सकते हैं क्योंकि यह पूजा श्रीविग्रह पूजा के ही समान है । जिस रूप में कृष्ण ने भोग लगाया था उसको अलग से बनाकर कृष्ण तथा अन्य वृन्दावनवासियों ने उसे तथा गोवर्धन पर्वत को नमस्कार किया । साक्षात् कृष्ण तथा गोवर्धन पर्वत के विशाल रूप को नमस्कार करते हुए कृष्ण

ने उस सभा में घोषित किया, "जरा देखो तो कि गोवर्धन पर्वत किस प्रकार यह विशाल रूप धारण किये है और सारी भेंटे स्वीकार करके हम पर अनुग्रह कर रहा है । मैंने स्वयम् गोवर्धन को पूजा जिस प्रकार से सम्पन्न की है, यदि कोई उस रूप में नहीं करेगा, तो वह सुखी नहीं रहेगा । गोवर्धन पर्वत में अनेक सर्प हैं और जो गोवर्धन पूजा सम्बन्धी निर्धारित कर्तव्य का पालन नहीं करेगा उसे ये साँप काटेंगे और वह मर जावेगा । गौवों तथा अपने कल्याण के लिए विश्वस्त होने के लिए गोवर्धन के निकटवर्ती समस्त वृन्दावनवासियों को इस पर्वत की पूजा उसी रूप में करनी चाहिए जैसा मैंने बनाया है ।"

इस प्रकार गोवर्धन-पूजा रूपी यज्ञ सम्पन्न करके वृन्दावन के समस्त वासियों ने वसुदेव के पुत्र कृष्ण की आज्ञा का पालन किया और बाद में वे अपने-अपने घरों को चले गए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "गोवर्धन-पूजा" नामक चौबीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 25
वृन्दावन में प्रलयंकारी वर्षा

जब इन्द्र को ज्ञात हुआ कि वृन्दावन में ग्वालों द्वारा सम्पन्न होने वाला यज्ञ कृष्ण द्वारा रोक दिया गया है, तो वह अत्यन्त कुरद्ध हुआ और नन्द महाराज आदि वृन्दावनवासियों के ऊपर अपना गुस्सा उतारने लगा, यद्यपि उसे यह पूर्णतः ज्ञात था कि साक्षात् कृष्ण उनकी रक्षा कर रहे हैं । विविध प्रकार के बादलों के निदेशक के रूप में इन्द्र ने सांवर्तक नामक बादल का आह्वान किया । इसका आह्वान समस्त दृश्य जगत के संहार के लिए किया जाता है । इन्द्र ने सांवर्तक को आदेश किदया कि वह वृन्दावन जाकर सारे क्षेत्र को व्यापक बाढ़ से आप्लावित कर दे । इन्द्र

अपने को असुरों की तरह सर्वशक्तिमान परम पुरुष मानता था । जब असुर प्रबल हो उठते हैं, तो वे परम नियन्ता श्रीभगवान् की अवहेलना करते । यद्यपि इन्द्र असुर न था, किन्तु अपने भौतिक वैभव से गर्वित था और वह परम नियन्ता को ललकारना चाह रहा था । वह उस समय अपने-आपको कृष्ण के ही समान शक्तिशाली मान बैठा । उसने कहा, "जरा वृन्दावनवासियों की धृष्टता तो देखो! वे जंगल के रहने वाले हैं, किन्तु अपने मित्र कृष्ण के बहकारवे में आकर, जो एक सामान्य मनुष्य से अधिक कुछ नहीं है, देवताओं की अवहेलना का दुस्साहस कर रहे हैं ।"

भगवद्गीता में कृष्ण ने घोषित किया है कि देवताओं की पूजा करने वाले अधिक बुद्धिमान नहीं होते । उन्होंने यह भी घोषित किया है कि मनुष्य को चाहिए कि सब तरह की पूजा छोड़कर केवल कृष्णभावनामृत में मन को केन्द्रित करें । कृष्ण का पहले इन्द्र पर कुपित होना और बाद में उसे दण्डित करना भक्तों के लिए स्पष्ट संकेत हैं कि जो लोग कृष्णभावनामृत में लगे हैं उन्हें किसी देवता की पूजा करने की आवश्यकता नहीं है, भले ही वह देवता कुरद्ध क्यों न हो जाए । कृष्ण अपने भक्तों को संरक्षण प्रदान करते हैं, अतः उन्हें उनकी कृपा पर पूर्णतः निर्भर रहना चाहिए ।

इन्द्र ने वृन्दावनवासियों के इस कृत्य की आलोचना की और कहा, "तुम लोग देवताओं की सत्ता को चुनौती देकर इस संसार में कष्ट भोगोगे । देवताओं को बलि न देने के कारण तुम भव्यवस्थागर के अवरोधों को पार नहीं कर सकोगे ।" वृन्दावन के ग्वालों ने इस वाचाल बालक कृष्ण के कहने पर मेरी सत्ता की उपेक्षा की है । यह तो निरा बालक है किन्तु इस बालक पर विश्वास करके इन्होंने मुझे कुपित किया है । इस प्रकार उसने सांवर्तक को आदेश दिया कि वह जाए और वृन्दावन का सारा वैभव नष्ट कर दें । इन्द्र ने कहा, ये वृन्दावनवासी अपने भौतिक ऐश्वर्य तथा अपने नन्हें मित्र पर विश्वास करने के कारण अत्यन्त गर्वित हो उठे हैं ।

वह केवल वाचाल, क्षुद्र तथा सांसारिक परिस्थिति से अनजान हैं, किन्तु वह अपने को ज्ञान में बढ़ा-चढ़ा के कहने को गंभीरता से लेते हैं । चूँकि वे कृष्ण को मानते हैं, अतः उन्हें दण्ड मिलना चाहिए और उन्हें उनकी गौओं समेत नष्ट कर देना चाहिए । इस प्रकार इन्द्र ने सांवर्तक को आदेश दिया कि वह वहाँ जाकर उस स्थान को जल से आप्लावित कर दें ।

यहाँ यह इंगित हुआ है कि गाँवों में या नगरों के बाहर, निवासियों को अपने वैभव के लिए गायों पर निर्भर रहना चाहिए । यदि गाएँ नष्ट कर दी जाती है, तो लोग सभी प्रकार के वैभव से विहीन हो जाते हैं । जब इन्द्र ने सांवर्तक तथा अनय संगी बादलों को वृन्दावन जाने का आदेश दिया, तो बादल इस दुष्कृत्य को करने से भयभीत थे । किन्तु राजा इन्द्र ने उन्हें आश्वस्त किया, तुम आगे-आगे चलो, मैं भी पीछे-पीछे हाथी पर सवार होकर और अंधड़ को साथ लेकर आऊँगा । मैं वृन्दावनवासियों को दण्डित करने में अपनी सारी शक्ति लगा दूँगा ।

राजा इन्द्र को आदेश पाकर समस्त घातक बादल वृन्दावन के ऊपर प्रकट हुए और अपनी सारी शक्ति से निरन्तर वर्षा करने लगे । वहाँ निरन्तर बिजली तथा गर्जन प्रबल झंझा तथा अनवरत वर्षा होने लगी । वर्षा तीखे बाणों के समान बेधने लगी । मोटे-मोटे स्तम्भों के समान अविराम वर्षा करते हुए बादलों ने धीरे-धीरे वृन्दावन की भूमि को जलमग्न कर दिया जिससे ऊँची तथा नीची भूमि में कोई अन्तर न रह गया । इससे पशुओं के लिए स्थिति भयानक हो गई । वर्षा के साथ प्रबल वायु चल रही थी जिससे वृन्दावन का प्रत्येक प्राणी शीत से थरथराने लगा । गौवें विशेष रूप से भारी वर्षा के कारण दुःखी होकर अपना सिर नीचे किए और बछड़ो को अपने नीचे छिपाये भगवान् के पास आईं और उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करने लगीं । उस समय समस्त वृन्दावनवासी भगवान् कृष्ण से प्रार्थना करने लगे, "हे कृष्ण! आप

सर्वशक्तिमान हैं और अपने भक्तों के प्रति अत्यधिक वत्सल हैं । कुपित इन्द्र ने हम सबको बहुत सता रखा है, अतः हमारी रक्षा करें ।"

इस प्रार्थना को सुनकर कृष्ण को भी पता लग गया कि इन्द्र यज्ञ-सम्मान न पाने के कारण मूसलाधार वर्षा कर रहा है, जिसके साथ असयम में बड़े-बड़े ओले पड़ रहे हैं और प्रबल झंझा चल रहा है । कृष्ण समझ गए कि इन्द्र जानबूझ कर अपने कोप का प्रदर्शन कर रहा है । अतः उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला, अपने को परम शक्तिशाली समझने वाले इस देवता ने अपने महान पराक्रम को दिखा दिया, किन्तु मैं अपने पद के अनुसार इसका उत्तर दूँगा और उसे दिखा दूँगा कि ब्रह्माण्ड के कार्यों के संचालन में वह स्वतंत्र नहीं हैं । मैं सबका परमेश्वर हूँ, अतः मैं इसकी उस झूठी प्रतिष्ठा को समाप्त कर दूँगा, जिसे उसने अपनी शक्ति से प्राप्त किया है । सारे देवता मेरे भक्त हैं, अतः वे मेरी श्रेष्ठता को कभी भूल नहीं सकते, किन्तु यह न जाने कैसे भौतिक शक्ति से गर्व से फूल गया है और मदान्ध हो गया है । मैं इसके झूठे गर्व को चूर-चूर कर दूगा । मैं वृन्दावन के अपने सारे भक्तों को शरण दूँगा, जो पूर्णतः मेरी कृपा पर निर्भर हैं और जिन्हें मैंने शरण दे रखी है । मैं अपनी योगशक्ति से उन्हें बचाऊँगा ।

ऐसा सोचते हुए भगवान् कृष्ण ने तुरन्त ही एक हाथ से गोवर्धन पर्वत उठा लिया ठीक उस तरह जिस प्रकार कोई बालक धरती से छत्रक (कुकुरमुत्ता) उखाड़ लेता है । इस प्रकार उन्होंने अपनी दिव्य गोवर्धन-धारण-लीला का प्रदर्शन किया । फिर उन्होंने अपने भक्तों को सम्बोधित किया, हे भाइयों, हे पिता, हे वृन्दावनवासियों! अब आप मेरे द्वारा उठाये गए इस गोवर्धन पर्वत के छत्र के नीचे कुशल-पूर्वक प्रवेश करें । इस पर्वत से डरे नहीं और यह भी न सोचें कि यह मेरे हाथ से गिर जाएगा । आप लोग मूसलाधार वर्षा तथा प्रचंड वायु से अत्यधिक पीड़ित हुए हैं, अतः मैंने इसे उठा लिया है और यह बहुत बडे छाते के समान आपकी

रक्षा करेगा । मेरे विचार से आप लोगों को आसन्न संकट से बचाने का यह उचित प्रबंध है । इस विशाल छाते के नीचे अपने पशुओं समेत सुख से रहें । भगवान् कृष्ण द्वारा आश्वस्त किए जाने पर सारे वृन्दावनवासी अपनी-अपनी सम्पत्ति तथा अपने पशुओं समेत गोवर्धन पर्वत के नीचे आ गए और वहाँ पर अपने को सुरक्षित अनुभव करने लगे ।

वृन्दावन के वासी अपने पशुओं समेत भूख-प्यास अथवा किसी और असुविधा से पीडित हुए बिना एक सप्ताह तक वहाँ रहे । उन्हें आश्चर्य हो रहा था कि कृष्ण किस तरह बाएँ हाथ की तर्जनी से पर्वत को धारण किए हुए है । कृष्ण की इस असाधारण योगशक्ति को देखकर स्वर्ग के राजा इन्द्र पर मानो वज्रपात हो गया और उसका संकल्प डिगने लगा । उसने तुरन्त बादलों को बुलाया और वर्षा बन्द करने के लिए कहा । जब आकाश निरभ्र हो गया और फिर से सूर्य निकल आया, तो प्रचंड का वायु बहना रुक गया । उस समय गोवर्धनधारी भगवान् कृष्ण ने कहा, हे ग्वालो! अब तुम लोग अपनी पत्नियों, गौवों तथा धन सहित यहाँ से जा सकते हों, क्योंकि सारा उत्पात समाप्त हो चुका है । नदी की बाढ़ तथा यह जल-प्लावन समाप्त हो गया है

तब सारे लोगों ने अपना सामान गाडियों में लादा और वे अपनी गौवों तथा अन्य सामग्री सहित वहाँ से धीरे-धीरे रवाना होने लगे । जब सब लोग चले गए, तो कृष्ण ने शनैः शनैः गोवर्धन पर्वत को फिर उसी स्थिति में रख दिया । जब सब कुछ समाप्त हो गया, तो सारे वृन्दावन के निवासी कृष्ण के पास आए और आनन्दविभोर होकर वे उनका आलिंगन करने लगे । गोपियाँ जो स्वभावतः कृष्ण से प्रेम करती थीं, उन्हें अपने अश्रुओं से मिश्रित दही देने लगीं और उन्होंने उन्हें अनेक आशीष दिए । माता यशोदा, माता रोहिणी, नन्द तथा सर्व-बलशाली बलराम ने स्नेहवश एक-एक करके कृष्ण का आलिंगन किया और बारम्बार आशीष दिया । सिद्धलोक, गन्धर्वलोक तथा चारणलोक के विभिन्न देवों ने भी परम

प्रसन्नता प्रदर्शित की । उन्होंने पृथ्वी पर फूलों की वर्षा की और शंखध्वनि की ढोल बजने लगे और दैवी भावनाओं से पूरित होकर गन्धर्वलोक के वासी भगवान् को प्रसन्न करने के लिए अपने-अपने तम्बूरे बजाने लगे । इस घटना के पश्चात् भगवान् अपने प्रिय मित्रों तथा पशुओं समेत अपने घर वापस आये । सदा की भाँति गोपियों ने अत्यन्त श्रद्धाभाव से भगवान् कृष्ण की पुण्य लीलाओं का कीर्तन किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "वृन्दावन में प्रलयंकारी वर्षा" नामक पच्चीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 26

अद्‌भुत कृष्ण

भगवान् कृष्ण की लीलाओं की जटिलताओं को समझे बिना तथा उसके असाधारण आध्यात्मिक ऐश्वर्य को जाने बिना, सीधे सादे ग्वाले तथा वृन्दावन के वासी कृष्ण के अद्‌भुत कार्यों की चर्चा करने लगे ।

उनमें से एक ने कहा, "मित्रों! उनके अद्‌भुत कार्यों को देखते हुए यह कैसे सम्भव हो सकता है कि ऐसा असाधारण बालक वृन्दावन आकर हम लोगों के साथ रह सकें? सचमुच ऐसा सम्भव नहीं है । जरा सोचो तो! अभी वे केवल सात वर्ष के हैं । उनके लिए अपने एक हाथ से गोवर्धन पर्वत को उठाकर उसे धारण करना कैसे सम्भव हो सकता है, जैसे कोई गजराज कमल का फूल उठाये हो । हाथी के लिए कमल का फूल उठाना तुच्छ कार्य है उसी प्रकार कृष्ण ने बिना किसी श्रम के गोवर्धन पर्वत को उठा लिया है । अभी वे शिशु थे और ठीक से देख भी नहीं सकते थे, तभी उन्होंने पूतना जैसी बड़ी राक्षीसनी का वध किया था; उसका स्तन-पान करते हुए उसके प्राण भी चूस लिए । कृष्ण ने पूतना को उसी प्रकार मारा

जिस प्रकार समय आने पर शाश्वत काल प्राणी को मारता है । जब वे केवल तीन मास के थे और एक छकड़े के नीचे सो रहे थे, तो माता का दूध पीने के लिए रोने लगे और ऊपर की ओर पाँव चलोन लगे । उनके छोटे-छोटे पाँव लगने से वह छकड़ा टूटकर खण्ड-खण्ड हो गया । जब वे एक वर्ष के हुए, तो बवंडर के वेश में तृणावर्त असुर उन्हें उड़ाकर आकाश में बहुत ऊँचाई तक ले गया, तब वे उस असुर की गर्दन पर लटक गए और उसे आकाश से नीचे गिरने पर बाध्य कर दिया जिससे वह तुरन्त मर गया । एक बार उनकी माता ने, उनकी माखन चोरी से ऊबकर उन्हें लकडी के उलूख से बाँध दिया, तो वे उसे यमलार्जुन वृक्षों की ओर खींच कर ले गए जिससे वे वृक्ष पृथ्वी पर गिर पड़े । इसी तरह एक बार वे अपने बड़े भाई बलराम के साथ बछड़े चरा रहे थे, तो बकासुर नाम का असुर प्रकट हुआ । कृष्ण ने तुरन्त ही असुर की चोंच के दो खण्ड कर दिये । जब वत्सासुर नामक राक्षस कृष्ण के बछडों को मारने के उद्देश्य से उनके बीच में घुस आया, तो उन्होंने तुरन्त उस असुर को पहचान लिया और उसे मारकर वृक्ष के ऊपर फेंक दिया । जब कृष्ण बलराम सहित तालवन में प्रविष्ट हुए, तो गधे के रूप में धेनुकासुर ने आक्रमण कर दिया । बलराम ने तुरन्त ही उसके पिछले पाँवों को पकड़ कर तालवृक्ष के ऊपर फेंक दिया । यद्यपि धेनुकासुर के साथी अन्य गधे भी उसकी सहायता कर रहे थे, किन्तु वे सभी मार डाले गए और तालवन सभी पशुओं तथा वृन्दावनवासियों के लिए खुल गया । जब प्रलम्बासुर कृष्ण ने अपने मित्रों तथा गौवों को भयंकर दावाग्नि से बचाया, यमुनादह में कालियनाग को दण्ड दिया तथा उसे यमुना नदी छोडने के िइश बाध्य किया जिससे यमुना का जल विष रहित हो गया ।"

नन्द महाराज के एक और मित्र ने कहा, "हे नन्द! हम यही नहीं जान पा रहे कि आपके पुत्र कृष्ण के प्रति हम इतने आकृष्ट क्यों हैं? हम उन्हें भुलाना चाहते हैं, किन्तु भुला नहीं पाते । हम उनके प्रति प्राकृतिक रूप

से इतने वत्सल क्यों हैं? जरा सोचो तो यह कितना अद्‌भुत हैं? कहाँ केवल सात वर्ष का बालक और कहाँ गोवर्धन जैसा विशाल पर्वत, किन्तु उन्होंने उसे इतनी आसानी उठा लिया! हे नन्द! हम अत्यन्त संदिग्ध हैं-हो न हो आपका पुत्र कृष्ण कोई देवता है । वह कोई सामान्य बालक नहीं । हो सकता है कि वह भगवान् ही हो ।"

वृन्दावन में ग्वालों से कृष्ण की प्रशंसा सुनकर नन्द बोले, "दोस्तो! अपने उत्तर में मैं गर्ग मुनि के वचनों को बताना चाहता हूँ जिससे तुम लोगों का सन्देह दूर हो जाये । जब वे नामकरण संस्कार करने पधारे थे, तो उन्होंने बताया था कि विभिन्न कालों में यह बालक विविध रंग धारण करके प्रकट होता रहा है और इस बार वह वृन्दावन में श्याम रंग में प्रकट होने के कारण कृष्ण कहलाएगा । पूर्व जन्म में इसके रंग श्वेत, फिर लाल ओर पीले थे । उन्होंने यह भी कहा था कि यह बालक एक बार वसुदेव का पुत्र भी था, अतः जो भी इसके पूर्वजन्म से परिचित है, वह इसे वासुदेव नाम से पुकारता है । वस्तुतः उन्होंने बताया था कि मेरा यह पुत्र अपने गुणों तथा कर्मो के अनुसार अनेक नाम धारण करता है । गर्गाचार्य ने मुझे आश्वस्त किया था कि यह बालक मेरे परिवार के लिए कल्याणकारी होगा और यह वृन्दावन में सभी ग्वालों तथा गौवों को दिव्य आनन्द प्रदान करेंगा । यद्यपि हम लोग अनेक कष्टों में फँसते रहेंगे, किन्तु इस बालक के अनुग्रह से हम उनसे मुक्त होते रहेंगे । उन्होनें यह भी कहा था कि पूर्वकाल में इतने संसार को दुर्व्यवस्था से उबारकर सत्यनिष्ठ पुरुषों को असत्यवादियों के चंगुल से बचाया था । जो भाग्यशाली व्यक्ति इस बालक कृष्ण के प्रति अनुरक्त होगा उसे उसके शत्रु कभी परास्त नहीं कर पाएँगे । कहने का तात्पर्य यह कि यह बालक भगवान् विष्णु के समान है, जो देवताओं के पक्षधर रहते हैं जिससे देवता असुरों से कभी परास्त नहीं होते । गर्गाचार्य ने निष्कर्ष निकाला कि यह बालक दिव्य रूप, गुण, कर्म, प्रभाव तथा यश में विष्णु के ही अनुरूप होगा, अतः हमें इसके अद्‌भुत

कार्यों से चकित नहीं होना चाहिए । यह कहकर गर्गाचार्य अपने घर चले गये थे और तब से हम इस बालक के अद्‌भुत कार्यों का अवलोकन करते आ रहे हैं । गर्गाचार्य के कथनानुसार मैं विचार करता हूँ कि ये अवश्य ही साक्षात् नारायण या नारायण के अंश होंगे ।"

जब सब ग्वालों ने नन्द महाराज के मुख के गर्गाचार्य के कथनों को ध्यान से सुना, तो वे कृष्ण के अद्‌भुत कार्यों को भलीभाँति समझ गए और परम प्रसन्न तथा सन्तुष्ट हुए । वे नन्द महाराज की प्रशंसा करने लगे, क्योंकि उनसे बातें करने से कृष्ण के बारें में उन सबके सन्देह दूर हो गए । उन्होंने कहा, "जो कृष्ण इतने दयालु, सुन्दर तथा करुणापूर्ण हैं, वे हमारी रक्षा करें । जब कुरद्ध इन्द्र ने मूसलाधार वर्षा के साथ उपलवृष्टि तथा प्रबल झंझा भेजा, तो कृष्ण ने तुरन्त हम पर दया की और जिस प्रकार एक बालक कुकुरमुत्ता उखाड देता है उसी तरह हम पर दया की और जिस प्रकार हमारे परिवारों, गौवों तथा अमूल्य सम्पत्ति को बचा लिया । उनकी कृपादृष्टि हम पर तथा हमारी गौवों पर बनी रहें । हम अद्‌भुत कृष्ण की छाया में शान्तिपूर्वक जीवित रहें!

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "अद्‌भुत कृष्ण" नामक छब्बीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 27
स्वर्ग के राजा इन्द्र द्वारा स्तुति

जब कृष्ण ने गोवर्धन पर्वत उठाकर इन्द्र के कोप से वृन्दावनवासियों को बचा लिया, तो उनके समक्ष गोलोक वृन्दावन से सुरभि गाय तथा स्वर्ग से राजा इन्द्र प्रकट हुए । स्वर्ग के राजा इन्द्र को कृष्ण के प्रति किए गए अपने अपराध का ज्ञान था, अतः वह चुपके से एक निर्जन स्थान में उनके समक्ष प्रकट हुआ । वह तुरन्त ही कृष्ण के चरणकमलों पर गिर पड़ा, यद्यपि उसका अपना मुकुट सूर्य के समान दीप्तिमान था । इन्द्र को कृष्ण

के महान पद का ज्ञान था, क्योंकि वे इन्द्र के स्वामी हैं, किन्तु उसे विश्वास नहीं हो रहा था कि कृष्ण अवतार लेकर वृन्दावन के ग्वालों के बीच रह सकते हैं । जब कृष्ण ने उनकी सत्ता को चुनौती दी, तो इन्द्र कुरद्ध हो गया क्योंकि वह सोचता था कि इस ब्रह्माण्ड का सर्वेसर्वा मैं ही हूँ और मेरे समान कोई भी बलशाली नहीं है । किन्तु इस घटना के बाद उसका झूठा अहंकार नष्ट हो गया । अतः अपनी अधीन अवस्था समझकर वह हाथ जोड़कर कृष्ण के समक्ष प्रकट हुआ और इस प्रकार स्तुति करने लगाः

हे प्रभु! मैंने झूठे अहंकार के वश में होकर सोचा कि आपने ग्वालों को इन्द्र-यज्ञ करने से रोक कर मेरा अपमान किया है और आप स्वयं यज्ञ की सारी सामग्री की भोग करना चाहते हैं । मैंने सोचा कि आप गोवर्धन-पूजा के नाम पर मेरा भाग ग्रहण कर रहे हैं, अतः मैंने आपके पद को गलत समझा । अब आपकी कृपा से मैं समझ पाया हूँ कि आप परमेश्वर, श्रीभगवान् हैं और समस्त भौतिक गुणों से परे हैं । आपकी दिव्य स्थिति विशुद्ध सत्त्व की है, जो सतोगुण के पद से ऊपर है और आपका दिव्य धाम भौतिक गुणों के उत्पात से परे है । आपके नाम, यश, रूप, गुण, साज सामग्री तथा लीला सभी इस प्रकृति से परे हैं और तीनों गुणों का इन पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता । आपका धाम उसी को प्राप्त होता है, जो कठिन तपस्या करता है और रजो तथा तमो गुणों के प्रभाव से मुक्त रहता है । यदि कोई यह सोचता है कि जब आप इस जगत में अवतरित होते हैं तब आप प्रकृति के गुणों को स्वीकार करते हैं, तो वह भ्रम में है । भौतिक गुणों की तरंगे आपको स्पर्श भी नहीं कर पातीं और न ही आप उन्हें स्वीकार करते हैं । आप प्रकृति के नियमों द्वारा कभी बद्ध नहीं होते ।

“हे स्वामी! आप इस दृश्य जगत के आदि पिता हैं । आपही इसके परम गुरु हैं और सभी वस्तुओं के आदि स्वामी हैं । आप शाश्वत काल के

रूप में अपराधियों को दण्डित करने के अधिकारी है । इस संसार में मेरे समान अनेक मूर्ख हैं, जो अपने आपको परमेश्वर या इस ब्रह्माण्ड का सर्वेसर्वा मानते हैं । आप इतने दयालु हैं कि आप उनके अपराधों को स्वीकार न करके ऐसा उपाय निकाल लेते हैं कि उनका अहंकार दमित हो जाये और वे जान लें कि आप ही एकमात्र श्रीभगवान् हैं और कोई नहीं ।

हे नाथ! आप परम पिता, परम गुरु तथा परम राजा है । अतः जब भी जीवात्माओं के आचरण में कोई त्रुटि आए, तो उन्हें दण्डित करने का आपको अधिकार है । पिता, गुरु तथा राज्य का परम कार्यकारी अधिकारी सदैव क्रमशः अपने पुत्र, शिष्य तथा प्रजा के शुभचिन्तक होते हैं, अतः शुभचिन्तक होने के नाते उन्हें अपने आश्रितों को दण्डित करने का अधिकार है । आप स्वेच्छा से इस धरा पर विविध शाश्वत शुभ रूपों में अवतरित होते हैं, आप इस धरा-लोक को महिमामण्डित करने तथा विशेषतः अपने को झूठे ही ईश्वर घोषित करने वाले व्यक्तियों को दण्डित करने के लिए आते हैं । इस भौतिक जगत में समाज का सर्वोच्च नायक बनने के लिए विभिन्न प्रकार के जीवों में निरन्तर स्पर्धा चलती रहती है और नायकत्व का उच्च स्थान न प्राप्त करने के कारण वे मूर्ख हताश होकर अपने को ईश्वर या भगवान् मान लेते हैं । इस संसार में मेरे जैसे मूर्ख हैं, किन्तु कालान्तर में जब उन्हें ज्ञान होता है, तो वे आपकी शरण ग्रहण करते हैं और पुनः आपकी सेवा में अपने को लगा देते हैं । आपसे ईर्ष्या करने वाले व्यक्तियों को आपके दण्डित करने का यही कारण है ।

"हे भगवान्! मैने आपकी असीम शक्ति को जाने बिना अपने भौतिक ऐश्वर्य के अहंकार के कारण आपके चरणकमलों के प्रति महान अपराध किया है । अतः हे भगवान्! मुझे क्षमा कर दें, क्योंकि मैं परले दर्जे का मूर्ख हूँ । कृपया मुझे आशीर्वाद दें जिससे मैं पुनः ऐसा मूर्खतापूर्ण कार्य न करूँ । यदि आप सोचें कि मेरा अपराध इतना बड़ा है । कि क्षमा

नहीं किया जा सकता, तो मेरी प्रार्थना है कि मैं आपका शाश्वत दास बना रहूँ । इस जगत में आपका अवतरण आपके शाश्वत दासों की रक्षा करने तथा उन शत्रुओं का विनाश करने के लिए होता है, जो महान सैन्य-शक्ति रखकर पृथ्वी को अपने भार से बोझिल बनाते हैं । मैं आपका शाश्वत दास हूँ, अतः मुझे क्षमा कर दें ।

"हे नाथ! आप भगवान् हैं । मैं आपकों सादर नमस्कार करता हूँ क्योंकि आाप परम पुरुष तथा परमात्मा है । आप वसुदेव के पुत्र तथा शुद्ध भक्तों के स्वामी परमेश्वर कृष्ण हैं । कृपया मेरा दण्डवत प्रणाम स्वीकार करें । आप साक्षात् परम ज्ञान हैं आप स्वेच्छा से कहीं भी अपने किसी एक नित्य रूप में अवतार लेस कते हैं । आप सृष्टि के मूल कारण तथा समस्त जीवों के परमात्मा है । मैंने अपनी निपट मूर्खता के कारण मूसलाधार वृष्टि तथा उपल वृष्टि कराकर वृन्दावन में उपद्रव मचवाया । मैंने आपके द्वारा मेरी तुष्टि के लिए होने वाला यज्ञ रोके जाने से उत्पन्न परम क्रोध के कारण ही ऐसा उपद्रव मचवाया । किन्तु हे स्वामी! आप मुझ पर इतने दयालु हैं कि आपने मेरा झूठा अहंकार खण्डित करके मेरे ऊपर कृपा की है । अतः मैं आपके चरणों की शरण ग्रहण करता हूँ । आप न केवल परम नियन्ता, अपितु समस्त जीवों के गुरु भी है ।

इस प्रकार भगवान् कृष्ण इन्द्र द्वारा प्रशंसित होने के बाद मुस्कुराते हुए गड़गड़ाहट मेघ की भाँति गम्भीर वाणी में बोले, "हे इन्द्र! मैंने तुम्हारा यह यज्ञ तुम पर अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने और तुमकों यह स्मरण दिलाने के लिए कि मैं तुम्हारा शाश्वत स्वामी हूँ, रोक द्दिया है । मैं न केवल तुम्हारा अपितु अन्य सारे देवताओं का भी स्वामी हूँ । तुम्हें यह स्मरण रखना चाहिए कि तुम्हारा सारा भौतिक ऐश्वर्य मेरी कृपा के कारण है । कोई भी व्यक्ति स्वतंत्र रूप से ऐश्वर्यवान् नहीं बन सकता; उस मेरी कृपा होनी चाहिए । हर व्यक्ति को सदैव स्मरण रखना चाहिए कि मैं परमेश्वर हूँ । मैं किसी पर भी कृपा कर सकता हूँ और किसी को भी प्रताडित कर

सकता हूँ, क्योंकि मुझसे श्रेष्ठ कोई नहीं है । यदि मैं देखता हूँ कि कोई अहंकार के वशीभूत हो चुका है, तो उस पर अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने के लिए मैं उसका सारा वैभव हर लेता हूँ ।

यह ध्यान देने योग्य है कि कृष्ण 'कभी-कभी धनी व्यक्ति को अपनी शरण ग्रहण कराने के लिए उसका सारा ऐश्वर्य हर लेते हैं यह भगवान् की विशेष अनुकम्पा है । कभी-कभी यह देखा जाता है कि अत्यन्त ऐश्वर्यशाली व्यक्ति अपनी भक्ति के कारण दरिद्रता को प्राप्त हो जाता है । किन्तु किसी को कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि चूँकि उसने परमेश्वर की पूजा की इसिलए वह निर्धन हो गया । कहने का वास्तविक तात्पर्य यह है कि जब कोई शुद्ध भक्त होता हैं, किन्तु गलत गणना से वह प्रकृति पर अपना प्रभुत्व जताना चाहता हैं, तो भगवान् उसका सारा ऐश्वर्य हर कर उस पर विशेष अनुग्रह प्रदर्शित करते हैं, जिससे अन्ततः वह परमेश्वर की शरण ग्रहण कर ले ।

इन्द्र को शिक्षा देने के बाद कृष्ण ने उसे अपने स्वर्गधाम लौट जाने तथा सदैव यह स्मरण रखने के लिए कहा कि कभी अपने को सर्वोच्च न मानना, अपितु परमेश्वर के अधीनस्थ समझना । उन्होंने उसे स्वर्ग का राजा बने रहने किन्तु झूठे अहंकार से बचने के लिए कहा ।

तत्पश्चात् इन्द्र के साथ कृष्ण का दर्शन करने आई दिव्य सुरभि गाय ने उन्हें सादर नमस्कार किया और उनकी पूजा की । सुरभि ने इस प्रकार स्तुति की, "हे कृष्ण! आप समस्त योगियों में सर्वाधिक शक्तिशाली हैं क्योंकि आप ब्रह्माण्ड-भर के आत्मा हैं और अपसे ही यह दृश्य जगत उत्पन्न हुआ हैं । अतः यद्यपि इन्द्र ने वृन्दावन में मेरे-वंशधरों अर्थात गौओं को मारने का यथाशक्ति प्रयास किया, किन्तु वे आपकी शरण में बनी रहीं और आपने उन सबों की रक्षा की । हम अन्य किसी को परमेश्वर नहीं जानती, न ही हम अपनी रक्षा के लिए किसी अन्य देवता या देवताओं के पास जाती हैं । अतः आप हमारे इन्द्र हैं, इस दृश्य जगत के परम पिता

हैं और आप गौ, ब्राह्मण, देवता तथा अपने शुद्ध भक्तों के रक्षक तथा उद्धारक हैं । हे ब्रह्माण्ड के परमात्मा! मैं आपको अपने दूध से स्नान कराना चाहती हूँ क्योंकि आप हमारे इन्द्र हैं । हे भगवन्! आप इस पृथ्वी पर अशुद्ध कर्मों के भार को कम करने के लिए प्रकट होते हैं ।

इस प्रकार कृष्ण का अभिषेक सुरभि गाय ने अपने दुग्ध से तथा इन्द्र ने अपने हाथी की सूँड द्वारा आकाश गंगा के जल से किया । इसके बाद सुरभि गायों तथा अन्य देवों तथा उनकी माताओं ने कृष्ण को गंगाजल तथा सुरभि के दूध के स्नान कराने में इन्द्र का साथदिया और प्रार्थना की । इस प्रकार कृष्ण सब पर प्रसन्न हुए । गन्धर्वलोक, पितृलोक, सिद्धलोक तथा चारणलोक से सारे वासियों ने मिलकर भगवन्नाम का जप करते हुए भगवान् को यशोगान किया । उनकी पत्नियाँ तथा अप्सराएँ अत्यन्त हर्ष के कारण नाचने लगीं । उन्होंने आकाश से निरन्तर पुष्प वर्षा करके भगवान् को प्रसन्न किया । जब सब कुछ हँसी-खुशी से सम्पन्न हो गया, तो गौवों ने अपने दुग्ध से सारी पृथ्वी को आप्लालित कर दिया । नदियों का जल उमड कर विविध स्वादों से पूरित होकर बहने लगा और वृक्षों की पोषण पहुँचाने लगा, जिससे उनमें विविध स्वादों से पूरित होकर बहने लगा और वृक्षों को पोषण पहुँचाने लगा, जिससे उनमें विविध रंगों तथा स्वाद के फूल तथा फल उत्पन्न होने लगे । वृक्षों से मधु चूने लगा । पर्वत तथा पहाड़ियाँ विविध औषधियाँ एवं बहुमूल्य रत्न उत्पन्न करने लगीं । कृष्ण की उपस्थिति के कारण ये सारी घटनाएँ ढ़ंग से घटती गईं और अधम पशु, जो सामान्यतया ईर्ष्यालु होते हैं, ईर्ष्यारहित हो गए ।

वृन्दावन में समस्त गौवों के स्वामी तथा गोविन्द नाम से विख्यात श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के बाद इन्द्र ने स्वर्ग को लौट जाने की अनुमति माँगी । उसके चारों ओर देवता थे, जब इन्द्र आकाश मार्ग से जा रहे थे । यह महान घटना इसका ज्वलन्त उदाहरण है कि किस प्रकार

कृष्णभावनामृत से विश्वकल्याण होता है । यहाँ तक कि अधम पशु भी ईर्ष्याभाव भूल कर देवताओं के गुणों को प्राप्त होते हैं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "स्वर्ग के राजा इन्द्र द्वारा स्तुति" नामक सत्ताइसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 28
वरुणपाश से नन्द महाराज की मुक्ति

गोवर्धन-उत्सव प्रतिपदा के दिन सम्पन्न हुआ । तत्पश्चात् सात दिनों तक इन्द्र द्वारा मूसलाधार वर्षा तथा उपल वृष्टि होती रहीं । शुक्ल पक्ष की नवमी बीत जाने पर दशमी को इन्द्र ने कृष्ण की पूजा की और सारा मामला संतोषपूर्वक तय हो गया । फिर एकादशी आई । महाराज नन्द ने दिन भर एकादशी व्रत रखाा और अगले दिन द्वादशी को बड़े प्रातः वे यमुना नदी में स्नान करने गए । वे नदी के गहने जल में घुस गए; जहाँ वरुणदेव के एक दास ने उन्हें तुरन्त बन्दी बना लिया । वह दास उन्हें लेकर वरुण के पास पहुँचा और उनपर गलत समय में नदी में स्नान करने का आरोप लगाया । ज्योतिष गणना के अनुसार जिस समय नन्द ने जल में प्रवेश किया था, वह आसुरी समय था । बात यह थी कि नन्द महाराज सूर्योदय के पूर्व स्नान कर लेना चाहते थे, किन्तु वे न जाने कैसे कुछ जल्द चले गए जिससे अशुभ समय में स्नान हुआ । अतः वे बन्दी बना लिए गए ।

जब वरुण का दास नन्द महाराज को पकड़ कर चला गया, तो उनके साथ चिल्ला-चिल्लाकर कृष्ण-बलराम को पुकारने लगे । कृष्ण

तथा बलराम तुरन्त समझ गए कि नन्द महाराज वरुण के दास द्वारा ले जाए गए हैं, अतः वे वरुण के धाम पहुँचे । जो भगवान् के शुद्ध भक्त हैं और श्रीभगवान् ही जिनके आश्रय हैं क्योंकि व उन वृन्दावनवासियों की रक्षा प्रदान करने के लिए दृढ़ संकल्प थे । बच् चों की तरह रक्षा के लिए कृष्ण को पुकारते हैं ठीक उसी प्रकार जैसे बच्चें माता-पिता द्वारा रक्षा किए जाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं जानते । वरुणदेव ने कृष्ण तथा बलराम का स्वागत करते हुए कहा, "हे भगवन्! आपकी उपस्थिति से मेरा वरुण देवता का जीवन इसी क्षण सफल हो गया है । यद्यपि मैं जल के सारे कोष का स्वामी हूँ, किन्तु मैं जानता हूँ कि इनके होने से जीवन सार्थक नहीं होता । किन्तु इस क्षण आपका दर्शन करने से मेरा जीवन धन्य हो गया क्योंकि मुझे अब आगे भौतिक शरीर धारण नहीं करना पडेगा । अतः हे स्वामी, हे भगवान्, हे परब्रह्म तथा जन-जन के परमात्मा! मैं आपको नमस्कार करता हूँ । आप परम दिव्य पुरुष हैं, अतः आप पर प्रकृति का प्रभाव पडने की कोई सम्भावना नहीं है । मुझे खेद हैं कि मूर्खतावश यह न जानने के कारण कि क्या करणीय है और क्या नहीं, मेरे दास ने भूल से आपके पिता नन्द महाराज को बन्दी बना लिया है । अतः मैं अपने दास के अपराध के लिए क्षमाप्रार्थी हूँ । मैं सोच रहा हूँ कि मुझे दर्शन देने की यह आपकी योजना थी । हे कृष्ण, हे गोविन्द! मुझ पर कृपा करें-यह रहे आपके पिता! आप इन्हें तुरन्त वापस ले जा सकते हैं ।"

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पिता को छुड़ाया और उन्हें उनके मित्रों के समक्ष लाकर परम हर्षोल्लास सहित प्रस्तुत किया । नन्द महाराज विस्मित थे कि परम ऐश्वर्यवान होते हुए भी उस देवता ने कृष्ण का इतना सम्मान किया । यह नन्द के लिए विस्मयजनक था और वे अत्यन्त आश्चर्यपूर्वक अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों से इस घटना का वर्णन करने लगे ।

यद्यपि कृष्ण सचमुच इतनी आश्चर्यजनक रीति से कार्य कर रहे थे, तो भी महाराज नन्द तथा माता यशोदा यह न सोच पाए कि वे श्रीभगवान् हैं । इसके विपरीत वे उन्हें सदैव अपना लाडला पुत्र समझते रहें । अतः नन्द महाराज ने इस तथ्य को स्वीकार नहीं किया कि वरुण ने कृष्ण की इसलिए पूजा की क्योंकि वे श्रीभगवान् थे । वे तो यह मान रहे थे कि इतना आश्चर्यजनक बालक होने के कारण वरुण तक ने कृष्ण का सम्मान किया । नन्द महाराज के सारे ग्वालमित्र यह जानने के लिए उत्सुक थे कि क्या सचमुच कृष्ण श्रीभगवान् हैं और क्या वे उन्हें मोक्ष दे देंगे? जब वे इस प्रकार परस्पर मंत्रणा कर रहे थे, तो कृष्ण उनके मन की बात समझ गए, और उन्हाने उन सबको आध्यात्मिक जगत में उनके भाग्यों के प्रति आश्वस्त करने के उद्देश्य से उन्हें आध्यात्मिक आकाश (चिदाकाश) का दर्शन कराया । साधारणतः सामान्य व्यक्ति इस जगत में कठोर श्रम करने में लगे रहते हैं और उन्हें इसकी कोई जानकारी नहीं रहतीं कि इस लोक के परे भी कोई अन्य लोक हैं, जिसे चिदाकाश कहते हैं, जहाँ जीवन शाश्वत, आनन्दमय तथा ज्ञान के पूर्ण रहता है । जैसाकि भगवद्गीता में वर्णित हैं, जो व्यक्ति चिदाकाश (वैकुण्ठ) को जाता है, वह फिर इस जन्म-मृत्यु वाले जगत में लौट कर कभी नहीं आता ।

भगवान् कृष्ण बद्धजीव को यह सूचित करने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं कि इस भौतिक आकाश के परे तथा समूची भौतिक शक्ति के भीतर इन असंख्य ब्रह्माण्डों के परे अत्यन्त दूरी पर चिदाकाश (दिव्याकाश) लोक है । निस्सन्देह कृष्ण प्रत्येक बद्धजीव पर अत्यन्त दयालु हैं, किन्तु जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, वे शुद्ध भक्तों के प्रति विशेष कृपा करते है । इन प्रश्नों को सुनकर कृष्ण ने सोचा कि उनके वृन्दावन के भक्तों को आध्यात्मिक आकाश तथा उसके भीतर वैकुण्ठलोकों के विषय में जानकारी दे दी जाए । इस संसार में प्रत्येक बद्धजीव अज्ञान के

अंधकार में है । इसका अर्थ यह हुआ कि सारे बद्धजीव देहात्मबुद्धि से ग्रस्त है ।

प्रत्येक जीव की यही धारणा है कि वह इसी भौतिक जगत से सम्बद्ध है और इस जीवन-बोध के कारण प्रत्येक जीव विभिन्न रूपों में अज्ञानवश कार्य कर रहा है । किसी विशेष प्रकार के जीव के कार्य कर्म कहलाते हैं । सारे बद्धजीव देहात्मबुद्धि के कारण अपने-अपने शरीर के अनुसार कार्य कर रहे है । ये कार्य भावी बद्ध जीवन का निर्माण करते है । चूँकि उन्हें आध्यात्मिक कार्य नहीं करते, जिन्हें भक्तियोग कहते हैं । जो सफलतापूर्वक भक्तियोग का अभ्यास करते हैं, वे इस वर्तमान शरीर को त्यागकर सीधे आध्यात्मिक जगत को जाते हैं, जहाँ वे किसी एक वैकुण्ठलोक में स्थिर हो जाते हैं । वृन्दावन के सारे निवासी शुद्ध भक्त हैं । इस शरीर को त्यागने पर उनका गन्तव्य कृष्णलोक है । वे वैकुण्ठलोक से भी आगे चले जाते है । तथ्य यह है कि जो लोग कृष्णभावनामृत तथा प्रौढ़ शुद्ध भक्ति में लगे हुए हैं उन्हें मृत्यु के बाद इसी भौतिक जगत में विभिन्न ब्रह्माण्डों में से किसी में कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त करने का अवसर प्रदान किया जाता है । कृष्ण की लीलाएँ इस ब्रह्माण्ड में या अन्य ब्रह्माण्ड में निरन्तर चलती रहती हैं । जिस प्रकार इस पृथ्वीलोक में सूर्य कई स्थानों से होकर गुजरता रहता है, उसी प्रकार कृष्ण-लीला भी इस ब्रह्माण्ड में सतत या अन्य ब्रह्माण्ड में चलती रहती है । वे प्रौढ़ भक्त जिन्होंने कृष्णभावनामृत को पूर्ण रूप से सम्पन्न किया है, तुरन्त उस ब्रह्माण्ड को भेज दिए जाते है जहाँ कृष्ण प्रकट होने वाले होते हैं । उस ब्रह्माण्ड में भक्तों को कृष्ण के सान्निध्य का प्रथम प्रत्यक्ष अवसर प्राप्त होता है । यह अभ्यास चलता रहता है जैसाकि इस लोक में हम कृष्ण की वृन्दावनलीला में देखते हैं । इसीलिए कृष्ण ने वैकुण्ठलोकों की सही-सही जानकारी उद्घाटित कर दी जिससे वृन्दावनवासी अपने-अपने गन्तव्य को समझ सकें ।

इस प्रकार कृष्ण ने उन्हें नित्य विद्यमान आध्यात्मिक जगत का दर्शन कराया, जो असीम है और ज्ञान से पूर्ण है । इस भौतिक जगत में स्वरूपों की विभिन्न श्रेणियाँ हैं और इन्हीं श्रेणियों के अनुपात में उनमें ज्ञान प्रकट होता है । उदाहरणार्थ, एक बालक के शरीर में जितना ज्ञान है, वह वयस्क व्यक्ति के शरीर के ज्ञान से कम पूर्ण है । सर्वत्र जीवों में विभिन्न श्रेणियाँ हैं, चाहे जलचर हों, वृक्ष हों, कीड़े-मकोड़े हों, पक्षी हों या सभ्य तथा असभ्य मनुष्य हों । मनुष्यों के ऊपर ब्रह्मलोक तक जहाँ ब्रह्मा रहते हैं, देवता, चारण तथा सिद्ध है । इन देवताओं में ज्ञान की विभिन्न श्रेणियाँ है । किन्तु इस जगत से आगे आध्यात्मिक आकाश में प्रत्येक व्यक्ति ज्ञान से पूर्ण है । सारे जीव वैकुण्ठ लोक में या कृष्णलोक में, भगवान् की भक्ति में, लगे रहते हैं ।

जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है पूर्णज्ञान का अर्थ है कृष्ण को श्रीभगवान् के रूप में जानना । वेदों तथा भगवद्गीता में यह भी उल्लेख है कि ब्रह्मज्योति में धूप, चाँदनी या बिजली की आवश्यकता नहीं रहती । वहाँ सारे लोक स्वतः आलोकित हैं और वे सभी शाश्वत रूप से स्थित है । ब्रह्मज्योति में न तो उत्पत्ति का और न ही संहार का कोई प्रश्न उठता है । भगवद्गीता से भी इसकी पुष्टि होती है कि भौतिक आकाश से आगे एक अन्य नित्य आध्यात्मिक आकाश होता है, जहाँ हर प्रत्येक वस्तु शाश्वत रूप से विद्यमान रहती है । आध्यात्मिक आकाश की जानकारी केवल ऋषि तथा साधु पुरुषों को ही मिल सकती है ।, जो भक्ति में रहने के कारण त्रिगुणातीत होते हैं । आध्यात्मिक (दिव्य) पद पर स्थित हुए बिना आध्यात्मिक प्रकृति को समझ पाना सम्भव नहीं है ।

अतः यह संस्तुति की जाती है कि मनुष्य भक्तियोग को ग्रहण करें और चौबीसों घण्टे कृष्णभावनामृत में लगा रहे जिससे वह त्रिगुणातीत हो जाए । कृष्णभावनाभावित होने पर वह चिदाकाश तथा वैकुण्ठलोक की प्रकृति को समझ सकता है । अतः वृन्दावन के वासी निरन्तर कृष्णभक्ति में लगे

रहने के कारण वैकुण्ठलोकों की दिव्य प्रकृति को सरलता से समझ सकते थे ।

इस प्रकार श्रीकृष्ण नन्द महाराज इत्यादि समस्त ग्वालों को लेकर उस सरोवर में गए जहाँ बाद में अक्रूरर को वैकुण्ठलोकों का दर्शन कराया गया । उन सबों ने स्नान किया और वैकुण्ठलोक की वास्तविकता के दर्शन किए । चिकाकाश तथा वैकुण्ठलोकों का दर्शन कर लेने के बाद नन्द महाराज आदि ग्वालों को अपूर्ण आनन्द हुआ और सरोवर से बाहर निकलने पर उन सबों ने देखा कि कृष्ण की पूजा श्रेष्ठ स्तुतियों द्वारा की जा रही थी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "वरुणपाश से नन्द महाराज की मुक्ति" नामक अट्ठाइसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 29
रासलीला का शुभारम्भ

श्रीमद्भागवत में बताया गया है कि शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात में रासलीला सम्पन्न हुईं । पिछले अध्यायों के वर्णन से यह प्रतीत होता है । कि गोवर्धन-पूजा कार्तिक के कृष्ण पक्ष के तुरन्त बाद हुई थी; तत्पश्चात् भ्रातृद्वितीया (भइयादूज) सम्पन्न हुई, तब इन्द्र का कोप प्रदर्शित हुआ जिससे मूसलाधार वर्षा तथा उपल वृष्टि हुई एवं कृष्ण ने सात दिन तक (नवमी तक) गोवर्धन पर्वत धारण किए रखा । फिर दशमी को वृन्दावनवासी आपस में कृष्ण के अद्भुत गुणों का वर्णन कर रहे थे और अगले दिन नन्द महाराज ने एकादशी व्रत रखा । अगले दिन द्वादशी नन्द

महाराज ने एकादशी व्रत बन्दी बना लिया और फिर कृष्ण ने उन्हें मुक्त कराया । तब ग्वालों सहित नन्द महाराज को आध्यात्मिक आकाश का दर्शन कराया गया ।

इस प्रकार शरद् ऋतु की पूर्णिमा बीत गई । अश्विन मास की पूर्णिमा शरद् पूर्णिमा कहलाती हैं । श्रीमद्भागवत के वर्णन से ऐसा प्रतीत होता है कि गोपियों के साथ रासलीला का आनन्द भोगने के लिए श्रीकृष्ण को एक वर्ष तक प्रतीक्षा करनी पड़ी । चूँकि उन्होंने सात वर्ष की आयु में गोवर्धन धारण किया था, अतः यह रासलीला आठवें वर्ष में हुई ।

वैदिक साहित्य से ऐसा प्रतीत होता है कि जब रंगमंच का अभिनेता अनेक नर्तकी-बालाओं के साथ नाचता है, तो इस समूह-नृत्य को रास-नृत्य या रासलीला कहते हैं । जब कृष्ण ने देखा कि शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात्रि आ गई हैं, और शरद् ऋतु अनेक मौसमी फूलों से, विशेषतया मल्लिका फूलों से सजी हुई है, जो अत्यधिक सुगंधित होते हैं तो उन्हें देवी कात्यायनी के प्रति गोपियों द्वारा की गई प्रार्थनाएँ स्मरण हो आई जिनमें उन्होंने कृष्ण को अपने पति रूप में प्राप्त करने की प्रार्थना की थी । उन्होंने सोचा कि शरद् पूर्णिमा की रात्रि ऐसे सुन्दर नृत्य के लिए सर्वथा उपयुक्त रहेगी । फलतः परिरूप में कृष्ण को प्राप्त करने की गोपियों की कामना फलवती हो सकेगी ।

इस प्रसंग में श्रीमद्भागवत में भगवान् अपि शब्दों का प्रयोग हुआ है । इसका अर्थ यह हुआ कि यद्यपि कृष्ण श्रीभगवानृ हैं, उनकी कोई ऐसी कामना नहीं, जिसे पूरा करना आवश्यक होगा क्योंकि वे सदा छहों ऐश्वयों से पूर्ण है । फिर भी वे रासलीला में गोपियों की संगति का आनन्द उठाना चाहते थे । भगवान् अति यह बताता है कि यह रासलीला युवकों तथा युवतियों का सामान्य नृत्य न थी । इसके लिए श्रीमद्भागवत में योगमायामुपाश्रितः विशिष्ट शब्द प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ है कि गोपियों के साथ यह नृत्य महामाया स्तर पर नहीं, अपितु योगमाया स्तर

पर, हुआ । इस संसार में युवकों तथा युवतियों का नृत्य महामाया के स्तर पर होता हैं किन्तु कृष्ण और गोपियों की रासलीला योगमाया के स्तर पर होती है । योगमाया के अन्तर से की गई है । धातुकर्म की दृष्टि से सोना तथा लोहा दोनों ही धातुएँ हैं, किन्तु उनके गुण सर्वथा भिन्न होते हैं । इसी प्रकार यद्यपि गोपियों के साथ कृष्ण का रासनृत्य सामान्य तरुणों एवं तरुणियों के नृत्य जैसा प्रतीत होता है, किन्तु उनके गुण में भेद है । इस भेद को परम वैष्णवजन समझते हैं क्योंकि वे कृष्णप्रेम तथा काम में अन्तर समझ सकते हैं ।

महामाया स्तर पर नृत्य इन्द्रियतृप्ति के आधार पर होते है । किन्तु जब कृष्ण ने गोपियों को अपनी वंशी की ध्वनि से बुलाया, तो गोपियाँ तुरन्त ही कृष्ण को प्रसन्न करने की दिव्य कामना से रासनृत्य के स्थान की ओर दौड़ पड़ीं । चैतन्य-चरितामृत के लेखक कृष्णदास कविराज गोस्वामी ने बताया है कि काम का अर्थ इन्द्रियतृप्ति है और प्रेम का भी अर्थ इन्द्रियतृप्ति है-किन्तु कृष्ण के प्रति । दूसरे शब्दों में, जब व्यक्तिगत इन्द्रियतृप्ति के स्तर पर कर्म किए जाते हैं, तो वे भौतिक कर्म कहलाते हैं, किन्तु जब वे कृष्ण की तुष्टि के लिए किए जाते हैं, तो वे आध्यात्मिक कर्म माने जाते हैं । कर्म के किसी भी स्तर पर इन्द्रियतृप्ति भगवान् श्रीकृष्ण के लिए होती है, जबकि भौतिक स्तर पर यह कर्ता के लिए की जाती है । उदाहरणार्थ, भौतिक स्तर पर जब कोई नौकर (दास) अपने स्वामी की सेवा करता है, तो वह स्वामी की इन्द्रियों को तुष्ट करने का प्रयत्न न करके अपनी निजी इन्द्रियों की तुष्टि होती है । किन्तु आध्यात्मिक स्तर पर श्रीभगवान् का दास उनकी सेवा किसी वेतन के बिना करता है और समस्त परिस्थितियों में सेवा जारी रखता है । कृष्णचेतना तथा भौतिक चेतना में यही अन्तर है ।

ऐसा प्रतीत होता है कि जब श्रीकृष्ण आठ वर्ष के थे, तो उन्होंने गोपियों के साथ रास-नृत्य का आस्वादन लिया । उस समय अनेक

गोपियाँ विवाहिता थीं क्योंकि प्राचीनकाल में विशेषतः भारत में लड़कियों का विवाह कम आयु में कर दिया जाता था । ऐसे अनेक उदाहरण मिलते हैं जहाँ बारह वर्ष की कन्या ने बालक को जन्म दिया । ऐसी दशा में, वे सारी गोपियाँ जो कृष्ण को पति-रूप में चाहती थीं, पहले से विवाहिता थीं । फिर भी वे यह आशा बनाए रहीं कि कृष्ण उनके पति बनेंगे । कृष्ण के प्रति उनका झुकाव उपस्त्री (परकीया) प्रेम जैसा था, अतः कृष्ण तथा गोपियों के प्रेम-व्यापार को परकीया-रस कहा गया है । एक विवाहित पुरुष या स्त्री जो अन्य स्त्री या पुरुष की कामना करते हैं वह भाव परकीया-रस कहलाता है ।

वास्तव में कृष्ण सबों के पति हैं, क्योंकि वे ही परम भोक्ता हैं । गोपियाँ उन्हें अपने पति रूप में चाहती थीं, किन्तु तथ्य तो यह है कि उनके लिए समस्त गोपियों के साथ विवाह कर सकना असम्भव था । किन्तु चूँकि गोपियों में कृष्ण को अपने परम पति के रूप में स्वीकार करने की स्वाभाविक प्रवृति थीं, अतः कृष्ण तथा गोपियों का सम्बन्ध परकीया-रस कहलाता है । यह परकीया-रस गोलोक वृन्दावन के आध्यात्मिक आकाश में सदा विद्यमान रहता है जहाँ उस मादकता के लिए कोई स्थान नहीं है, जो भौतिक जगत के परकीया-रस का प्रमुख लक्षण है । भौतिक जगत में परकीया-रस अत्यन्त गर्हित हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत (वैकुण्ठलोक) में यह कृष्ण तथा गोपियों के परमोच्च सम्बन्ध के रूप में पाया जाता है । कृष्ण के साथ अनेक सम्बन्ध (रस) हैं- स्वामी तथा दास, मित्र-मित्र, पिता-पुत्र, प्रेमी तथा प्रेमिका । किन्तु इन समस्त रसों में परकीया-रस सर्वोपरि माना जाता है ।

यह भौतिक जगत आध्यात्मिक जगत का उल्टा प्रतिबिम्ब है । यह किसी जलाशय के तट पर खड़े हुए वृक्ष के प्रतिबिम्ब के समान है, जिसमें वृक्ष का शीर्ष भाग सबसे नीचे दिखता है । इसी प्रकार जब परकीया-रस उल्टा प्रतिबिम्बित होता है, तो वह अत्यन्त घृणित बन जाता है । अतः जब

लोग कृष्ण तथा गोपियों के रास-नृत्य का अनुकरण करते हैं, तो वे दिव्य परकीया-रस को भोग पाना असम्भव है । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि स्वप्न या कल्पना में भी इस परकीया-रस का अनुकरण नहीं करना चाहिए । जो ऐसा करते हैं वे घोर हलाहल पान करते हैं ।

जब परम भोक्ता कृष्ण ने शरद् ऋतु की उस पूर्णिमा की रात में गोपियों के संग का आनन्द उठाना चाहा, उसी क्षण आकाश में नक्षत्रपति चन्द्रमा अपना सुन्दरतम रूप लेकर उदित हुआ । शरद् पूर्णिमा की रात वर्ष-भर की सर्वोत्कृष्ट रात होती है । भारतवर्ष में उत्तर प्रदेश के आगरा नामक स्थान में ताजमहल नाम का एक विशाल मकबरा है, जो उत्तमोत्तम संगमरमर पत्थर का बना हुआ है । शरद् ऋतु की पूर्णिमा की रात में अनेक विदेशी पर्यटक इस मकबरे पर चाँद का प्रतिबिम्ब देखने आते हैं इस प्रकार पूर्णिमा की यह रात आज भी अपने सौन्दर्य के लिए विख्यात है ।

जब पूर्व में चन्द्रमा उदय हुआ, तो सारी वस्तुएँ लालिमा से रँग गईं । चन्द्रमा के उदय होते ही सारा आकाश लाल कुंकुम से पुता हुआ लगने लगा । जब कोई पति अपनी पत्नी से बहुत दिन दूर रह कर घर लौटता है, तो वह अपनी पत्नी के मुख को लाल कुंकुम से सजाता है । शरद् ऋतु का यह चिर-प्रतीक्षित चन्द्रोदय पूर्वी आकाश को रंजित कर रहा था ।

चन्द्रोदय के कारण गोपियों के साथ नृत्य करने की श्रीकृष्ण की इच्छा बलवती हो उठी । सारे जंगल सुगन्धित पुष्पों से लदे थे । वातावरण शान्तिदायक तथा आनन्दप्रद था । जब कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाने लगे, तो सारे वृन्दावन की गोपियाँ मोहित हो गईं । पूर्ण चन्द्रोदय, लाल क्षितिज, शान्त वातावरण तथा खिलते हुए पुष्पों के कारण वंशी-ध्वनि के प्रति उनका आकर्षण (सम्मोहन) हजार गुना बढ़ गया । समस्त गोपियाँ स्वभाव से ही कृष्ण सौन्दर्य के प्रति अत्यधिक आकृष्ट थीं, अतः जब उन्होंने वंशी की ध्वनि सुनीं, तो वे कृष्ण की इन्द्रियों की तुष्टि के लिए अधीर हो उठीं ।

वंशी की ध्वनि सुनते ही उन सबों ने अपने काम-काज बन्द कर दिए और उस स्थान की ओर चल दीं जहाँ कृष्ण खड़े थे । जब वे अत्यन्त तेजी से दौड़ रही थीं, तो उनके कान के झुमके हिलडुल रहे थे । वे सब वंशीवट नामक स्थान की ओर लपकीं । उनमें से कुछ दूध दुह रहीं थीं, किन्तु वे आधे में ही दुहना छोड़कर तुरन्त ही कृष्ण के पास चली गईं । एक तुरन्त ही दूध दुह कर उसे दोहनी में रख कर गरम करने जा रही थीं, किन्तु उसने इसकी परवाह नहीं की कि दूध उबलकर गिर जाएगा-वह तुरन्त ही कृष्ण का दर्शन करने चल पडी । उनमें से कुछ गोपियाँ अपने बच्चोंको स्तन पान करा रही थीं और कुछ अपने पारिवारिक सदस्यों को भोजन परोस रही थीं, किन्तु उन सबों ने सारे काम-छोड़ दिए और वे तुरन्त उस स्थान की ओर दौड़ पडीं जहाँ कृष्ण वंशी बजा रहे थे । कुछ गोपियाँ अपने पतियों को भोजन परोस रही थीं और कुछ स्वयं भोजन करने बैठी थीं, किन्तु उनमें से किसी ने न तो अपने पति की, न ही अपने खाने की परवाह की और वे तुरन्त वहाँ से चल पड़ीं । कुछ कृष्ण के पास जाने के पूर्व अपने-अपने मुखों में अंगराग लगाकर सुन्दर वस्त्र पहनना चाहती थीं, किन्तु कृष्ण से मिलने की बेचैनी के कारण वे न तो मुख में अंगरंग लगा पाईं और न ठीक से वस्त्र पहन पाईं । उनके मुखमण्डल जल्दबाजी में सजाये गये थे । कुछ गोपियों ने तो अपने वस्त्रों को उल्टे ही पहन लिया जिससे निम्न भाग का वस्त्र ऊपर की ओर और ऊपर का भाग नीचे हो गया था ।

इस प्रकार से जब गोपियाँ अपने-अपने घरों को हड़बड़ी में छोड़ रही थीं, तो उनके पति, भाई तथा पिता सभी ठगे के ठगे रह गए और सोचने लगे कि वे सब की सब कहाँ जा रही हैं? तरुणी होने के कारण उनकी रक्षा का भार या तो उनके पतियों या फिर बडें भाइयों या पिताओं पर था । उन सबके संरक्षकों ने उन्हें कृष्ण के पास जाने से मना किया, किन्तु उन्होंने परवाह नहीं कीं । जब मनुष्य कृष्ण के प्रति आकृष्ट होता

है और पूर्ण कृष्णभावनामृत में रहता है, तो वह किसी सांसारिक कार्य की परवाह नहीं करता, चाहे वह कार्य कितना ही आवश्यक क्यों न हो । कृष्णभावनामृत इतना बलवान होता है कि यह प्रत्येक व्यक्ति को भौतिक कार्यों से छुटकारा दिलाता है । श्रील रूप गोस्वामी ने एक सुन्दर पद्य लिखा हैं, जिसमें एक गोपी दूसरे को उपदेश देती है, "हे सखी! यदि तुम भौतिक समाज, मित्रता तथा प्रेम को भोगना चाहती हो, तो तुम इस हँसीले गोविन्द का दर्शन करने मत जाओं जो यमुना के तट पर खड़ा होकर अपनी वंशी बजा रहा है और जिसके अधर पूर्ण चन्द्रमा की किरणों से चमक रहे हैं ।" श्रील रूप गोस्वामी यह बताना चाहते हैं कि जो कृष्ण के सुन्दर स्मित आनन से मोहित हो गया है उसके लिए सारे भौतिक भोग व्यर्थ हैं । कृष्णभावनामृत में प्रगति की यही कसौटी है कि जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में अग्रसर हो रहा है, उसे भौतिक कार्यों तथा व्यक्तिगत इन्द्रियतृप्ति से मुख मोड लेना होगा ।

कुछ गोपियों को उनके पतियों ने कृष्ण के पास जाने से रोका और उन्हें कमरे में बन्द करके ताला लगा दिया । कृष्ण के पास जाने में असमर्थ होने के कारण वे आँखें बन्द करके कृष्ण के दिव्य रूप का ध्यान करने लगीं । उनके मनों में पहले से कृष्ण का रूप समाया था । वे सर्वोच्च योगी सिद्ध हुईं । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है कि जो व्यक्ति श्रद्धा तथा प्रेम से अपने हृदय में कृष्ण का निरन्तर चिन्तन करता रहता है, वह योगियों में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है । वास्तव में योगी अपने मन को विष्णु के स्वरूप पर केन्द्रित करता है । यही असली योग है । कृष्ण समस्त विष्णु तत्त्वों के आदि रूप हैं । गोपियाँ कृष्ण के पास स्वयं नहीं जा सकीं, अतः वे सिद्ध योगी की भाँति उनका ध्यान करने लगीं ।

जीवों की बद्ध अवस्था में दो प्रकार के कर्मफल होते हैं-जो बद्धजीव पापकर्म में लगा रहता है, वह दुःख या सुख की भौतिक प्रकृति द्वारा बँधा हुआ है ।

कृष्ण की संगिनी गोपियाँ, जो कृष्ण के अवतार लेने वाले स्थान में एकत्र हुई थीं, विभिन्न समूहों में आईं थीं । अधिकांश गोपियाँ कृष्ण की शाश्वत संगिनियाँ थीं । ब्रह्म-संहिता में कहा गया है- आनन्दचिन्मयरसप्रतिभाविताभिः-वैकुण्ठलोक में कृष्ण के सहयोगी, विशेषरूप से गोपियाँ, भगवान् कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की अभिव्यक्ति हैं । वे श्रीमती राधारानी की विस्तार (अंश) हैं । किन्तु जब श्रीकृष्ण इस भौतिक जगत के कुछ ब्रह्माण्डों में अपनी दिव्य लीलाओं को प्रकट करते हैं, तो उनके साथ न केवल उनके शाश्वत संगी रहते हैं, अपितु वे भी जो इस भौतिक जगत में उस पद तक ऊपर उठ रहे होते हैं । जिन गोपियों ने इस भौतिक जगत में श्रीकृष्ण की लीलाओं में भाग लिया वे सामान्य मानवी थीं । यदि वे कर्म से बँधी होतीं, तो कृष्ण का निरन्तर ध्यान करने के कारण वे कर्म-फल से पूरी तरह मुक्त होतीं । कृष्ण को न देख पाने के कारण उत्पन्न तीव्र वेदना के कारण वे समस्त पापों से मुक्त हो गईं और कृष्ण की अनुपस्थिति में उनके दिव्य प्रेम की अनुभूति उनके समस्त भौतिक पुण्यकर्मों के फल से बढ़कर हो गई । बद्धजीव अपने पुण्य या पाप कर्मों के कारण बारम्बार जन्म-मृत्यु से प्रभावित होता हैं, किन्तु वे गोपियाँ, जिन्होंने कृष्ण का चिन्तन प्रारम्भ किया, इन दोनों स्थितियों को पार करके शुद्ध हो गईं और उन गोपियों के पद को प्राप्त हुईं जो कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति के कारण प्रकट हुई थीं । वे सारी गोपियाँ, जो परकीया प्रेम भाव में कृष्ण पर अपना मन केन्द्रित करती थीं, इस प्रकृति के समस्त कर्मफलों से निष्कलुषित हो गईं और कुछ न तो अपने त्रिगुणात्मक शरीर को वहीं त्याग दिया ।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से रास नृत्य के लिए कृष्ण के साथ समवेत गोपियों की दशा का वर्णन सुना । जब उन्होंने यह सुना कि कुछ गोपियाँ उप-पति के रूप में कृष्ण को केवल ध्यान करती हुईं भौतिक जन्म तथा मृत्यु के सारे कल्मष से मुक्त हो गईं, तो उन्होंने कहा,

"गोपियाँ यह नहीं जानती थीं कि कृष्ण श्रीभगवान् हैं । वे उन्हें एक सुन्दर बालक के रूप में अपना उप-पति मानती थीं । अतः उप-पति के तौर पर चिन्तन करती हुईं वे किस तरह भौतिक अवस्था से मुक्त हो सकीं?" यहाँ पर यह विाचार करना होगा कि कृष्ण तथा सामान्य जीव गुणात्मक दृष्टि से एक हैं । सामान्य जीव भी कृष्ण के अंश होने के कारण ब्रह्म हैं, किन्तु कृष्ण परब्रह्म हैं । अतः प्रश्न यह उठता है कि यदि कोई भक्त केवल कृष्ण के चिन्तन से भौतिक कल्मष्रस्त अवस्था से मुक्त हो सकता है, तो अन्य लोग जो किसी अन्य का चिन्तन करते हैं क्यों नहीं मुक्त हो जाते? यदि कोई पति या पुत्र के विषय में सोचता है या कोई किसी अन्य जीव के विषय में सोचता है और चूँकि सारे जीव भी ब्रह्म हैं, तो वे सारे के सारे जो दूसरों के बारें में सोचते हैं, इस प्रकृति की कल्मषग्रस्त अवस्था से क्यों मुक्त नहीं हो जाते? यह एक अत्यन्त बुद्धिमानी का प्रश्न है क्योंकि नास्तिक सदा ही कृष्ण का अनुकरण करते हैं । कलियुग के इस काल में ऐसे अनेक पाखंडी (धूर्त) हैं, जो अपने को कृष्ण के समान महान मानते हैं और उन लोगों को ठगते हैं, और उन्हें विश्वास दिलाते हैं कि इनके विषय में सोचना कृष्ण-विषय में सोचने के ही तुल्य है । अतः परीक्षित महाराज ने आसुरी नक्कालों के अन्ध अनुयायियों की घातक स्थिति को ध्यान में रखकर यह प्रश्न किया और सौभाग्यवश यह प्रश्न श्रीमद्भागवत में अबोध लोगों को यह चेतावनी देने के लिए अंकित है कि सामान्य व्यक्ति तथा कृष्ण के विषय में सोचना (चिन्तन) एक-सा नहीं है ।

वस्तुतः देवताओं का चिन्तन भी कृष्ण-चिन्तन की तुलना नहीं कर सकता । वैष्णव तंत्र में यह चेतावनी दी गई हैं कि जो व्यक्ति विष्णु, नारायण या कृष्ण को देवताओं के समकक्ष मानता है, वह पाखण्डी या धूर्त हैं । महाराज परीक्षित के इस प्रश्न को सुनकर शुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दियाः "हे राजन्! आपके प्रश्न का उत्तर इस घटना के पूर्व ही दिया जा चुका है ।"

चूँकि परीक्षित महाराज स्थिति को स्पष्ट कर लेना चाहते थे, अतः उनके गुरु ने अत्यन्त बुद्धिमानी से इसका उत्तर दिया, "तुम उसी विषय को फिर क्यों पूछ रहें हो जिसका उत्तर पहले ही दिया जा चुका है । तुम इतने भुलक्कड़ क्यों हों?" गुरु का पद सदैव शिष्य से ऊँचा होता है । अतः वह अपने शिष्य को इस प्रकार दण्ड दे सकता है । शुकदेव गोस्वामी जानते थे कि महाराज परीक्षित ने यह प्रश्न अपने लिए नहीं अपितु उन भावी अबोध व्यक्तियों को सचेत करने के लिए पूछा है, जो अन्यों को कृष्ण के तुल्य मान सकते हैं ।

तब शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज को शिशुपाल की मुक्ति का स्मरण कराया । शिशुपाल सदैव कृष्ण से ईर्ष्या करता था और अपनी ईर्ष्या के कारण ही वह कृष्ण द्वारा मारा गया । चूँकि कृष्ण श्रीभगवान् हैं, अतः उनके दर्शन-मात्र से ही शिशुपाल को मोक्ष प्राप्त हुआ । यदि कोई ईर्ष्यालु व्यक्ति केवल कृष्ण पर ध्यान केन्द्रित करने से मोक्ष पा सकता है, तो फिर गोपियों के लिए क्या कहा जाए, जो कृष्ण को इतनी प्रिय थीं? प्रेमवश वे उन्हीं का चिन्तन करती रहती थीं । शत्रु तथा मित्र में कुछ अन्तर अवश्य होना चाहिए । यदि कृष्ण के शत्रु भी भौतिक कल्मष से मुक्त होकर परमेश्वर से तदाकार हो गए, तो निश्चय ही उनके अभिन्न मित्र, जैसे कि गोपियाँ, भगवान् के साथ रहकर मुक्त हो सकती थीं ।

इसके अतिरिक्त भगवद्गीता में कृष्ण को हृषीकेश कहा गया है । शुकदेव गोस्वामी ने भी कृष्ण को हृषीकेश अर्थात परमात्मा कहा जबकि सामान्य व्यक्ति भौतिक शरीर से आवृत बद्धजीव है, कृष्ण तथा कृष्ण का शरीर दोनों एक हैं क्योंकि कृष्ण हृषीकेश हैं । जो कोई कृष्ण तथा उनके शरीर में भेद-भाव करता है, वह पहले दर्जे का मूर्ख है । कृष्ण हृषीकेश तथा अधोक्षज हैं । इस प्रसंग में शुकदेव गोस्वामी ने इन दोनों शब्दों का प्रयोग किया है । हृषीकेश का अर्थ परमात्मा है और अधोक्षज का अर्थ परम पुरुषोत्तम श्रीभगवान् जो भौतिक प्रकृति से परे है । सामान्य जीवों

पर कृपा करने के लिए अपनी अहैतुकी कृपा से वे जैसे हैं उसी रूप में प्रकट होते हैं । दुर्भाग्यवश मूर्ख व्यक्ति उन्हें एक सामान्य व्यक्ति मानने की भूल करते हैं जिससे वे नरक जाने के भागी होते हैं ।

शुकदेवी गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को आगे बताया कि कृष्ण सामान्य व्यक्ति नहीं है । वे समस्त आध्यात्मिक गुणों से युक्त श्रीभगवान् हैं अपरिमेय, विनाशी तथा भौतिक कल्मष से रहित । वे अपनी अहैतुकी कृपा से इस जगत में अवतरित होते हैं और वह भी बिना परिवर्तन के । इसकी पुष्टि भगवद्गीता में कृष्ण के कथन से भी होती है कि वे अपनी आध्यात्मिक शक्ति से प्रकट होते है । वे भौतिक शक्ति के अधीन प्रकट नहीं होते । भौतिक शक्ति उनके अधीन है । भगवद्गीता मे बताया गया है कि भौतिक शक्ति उनकी अध्यक्षता में कार्य करती है । इसकी पुष्टि ब्रह्म-संहिता में भी हुई है कि दुर्गा नाम से अभिहित भौतिक शक्ति छाया की भाँति कार्य कर रही है, जो वस्तुओं की गति के साथ गति करती है । निष्कर्ष यह है कि यदि कोई किसी तरह, चाहे उनके सौन्दर्य, गुण, ऐश्वर्य, यश, शक्ति, त्याग या ज्ञान अथवा काम, क्रोध, भय, प्यार या मैत्री के कारण, कृष्ण के प्रति आसक्त हो जाता है, तब भौतिक कल्मष से उसका मोक्ष तथा उसकी मुक्ति निश्चित है ।

भगवद्गीता के अठारहवें अध्याय में भगवान् का भी कथन है कि, जो कोई कृष्णभावनामृत का उपदेश करता है, वह उन्हें परम प्रिय है । उपदेशक को शुद्ध कृष्णभावनामृत का उपदेश करते समय अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है । कभी-कभी तो उसे शारीरिक प्रहार सहने होते हैं और कभी-कभी तो मृत्यु भी चूमनी पड़ती है । कृष्ण इसे परम तपस्या मानते हैं । इसीलिए कृष्ण ने कहा है कि ऐसा उपदेशक उनको अतिशय प्रिय है । यदि कृष्ण के शत्र1 उन पर अपना ध्यान केन्द्रित करने से ही मोक्ष की आशा कर सकते हैं, तो जो लोग कृष्ण को परम प्रिय हैं उनके लिए क्या कहा जाए? निष्कर्ष यह निकला कि जो लोग

संसार-भर में कृष्णभावनामृत का उपदेश करने में लगे हुए हैं उनका मोक्ष तो ध्रुव है । किन्तु ऐसे उपदेशक मोक्ष की कभी परवाह नहीं करते क्योंकि जो कृष्णभावनामृत में लगा है उसे पहले से मोक्ष प्राप्त रहता है । इसीलिए शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित को आश्वस्त किया कि वे निश्चिन्त रहें क्योंकि जो कृष्ण के प्रति आकृष्ट है उसे भौतिक बन्धन से मुक्ति मिल जाती है क्योंकि कृष्ण योगेश्वर हैं ।

जब सारी गोपियाँ कृष्ण के समक्ष एकत्र हो गईं, तो कृष्ण ने बातों-बातों में ही उनका स्वागत किया और शब्द-चातुरी से उन्हें निरुत्साहित भी किया । कृष्ण परम वक्ता हैं; वे भगवद्गीता के वक्ता है । वे दर्शन, राजनीति, अर्थशास्त्र जैसे प्रत्येक उच्चस्तरीय विषय पर बोल सकते हैं और अपनी सर्वाधिक प्रिय गोपियों के समक्ष भी बोले । उन्होंने शब्दचातुरी से उन्हें मोहित करना चाहा, अतः वे इस प्रकार बोलने लगे-

"हे वृन्दावन की बालाओ! तुम अत्यन्त भाग्यशालिनी हो और मुझे अत्यन्त प्रिय हो । मैं परम प्रसन्न हूँ कि तुम सब यहाँ आई हो और मैं आशा करता हूँ कि वृन्दावन में कुशल-मंगल है । अब मुझे आज्ञा दो । मैं तुम लोगों के लिए क्या करूँ? अर्धरात्रि में यहाँ आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? कृपा करके बैठ जाओं और मुझसे कहो कि मैं तुम लोगों के लिए क्या करूँ?"

गोपियाँ तो कृष्ण की संगति का आनन्द उठाने, उनके साथ नाचने, उनका आलिंगन करने और चुम्बन लेने आई थीं और जब कृष्ण उनके साथ औपचारिकता एवं शिष्टाचार बरतने लगे, तो वे आश्चर्यचकित हुईं । वे उन्हें समाज की सामान्य महिलाएँ मान रहे थे । अतः वे परस्पर हँसने लगीं और कृष्ण को उस तरह उत्सुकतापूर्वक बातें करते सुनती रहीं । तब कृष्ण बोले,'सखियों! तुम जान लो कि अब अर्धरात्रि है और यह जंगल अत्यन्त डरावना हैं इस समय जंगल के सारे हिंसक पशु-बाघ, भालू, सियार तथा भेड़िये-इधर-उधर शिकार के लिए घूम रहे हैं अतः तुम लोगों

के लिए ये अत्यन्त घातक है । अत तुम्हें कोई सुरक्षित स्थान नहीं मिल सकता । तुम जहाँ भी जाओगी वहीं ये पशु शिकारी की खोज में घूमते मिलेंगे । अतः मेरे विचार से तुम लोग अर्धरात्रि में यहाँ आकर बड़ा खतरा मोल ले रही हों । अतः कृपा करके तुरन्त वापस चली जाओ ।"

जब कृष्ण ने देखा कि वे हँसती चली जा रही हैं, तो वे बोले,"मुझे तुम लोगों के शरीर के अंग-प्रत्यंग अच्छे लगते हैं । तुम सबकी कमरें अत्यन्त पतली तथा सुन्दर हैं ।" वहाँ की सारी गोपियाँ अतीव सुन्दर थीं । उनका वर्णन सुमध्यमा शब्द से किया जाता है । जब स्त्री के शरीर का मध्य भाग पतला हो, तो स्त्री की सुन्दर ता का मानदण्ड सुमध्यमा कहलाता है ।

कृष्ण उनको यह जताना चाह रहे थे अभी वे इतनी प्रौढ़ नहीं हैं कि अपनी रखवाली स्वयं कर सकें । वस्तुतः उन्हें सुरक्षा की आवश्यकता थी । इस अर्धरात्रि में कृष्ण के पास आना उनके हित में न था । कृष्ण ने यह भी इंगित किया कि वे तरुण है और गोपियाँ भी तरुण है । "अर्धरात्रि में तरुणियों तथा तरुणों को एकसाथ रहना शोभा नहीं देता ।" यह उपेदश सुनकर गोपियाँ प्रसन्न नहीं हुईं, अतः कृष्ण ने इस बात को दूसरे ढ़ंग से कहना शुरू किया ।

"हे सखियो! मैं समझ सकता हूँ कि तुम लोगों ने अपने संरक्षकों की अनुमति के बिना अपना-अपना घर छोडा हैं; अतः तुम्हारी माताएँ, तुम्हारे पिता, तुम्हारे बड़े भाई, यहाँ तक कि तुम्हारे पुत्र तुम्हें ढूँढ़ लाने के लिए अत्यन्त उत्सुक होंगे, तुम्हारे पतियों का तो कहना ही क्या? जब तक तुम लोग यहाँ हो तब तक वे विभिन्न स्थानों में तुम्हें खोजते रहेंगे और उनके मन अशान्त रहेंगे । अतः अब विलम्ब न करो । कृपा करके जाओं और उन्हें शान्त करो ।"

जब गोपियाँ कृष्ण की इस सहज सलाह से कुछ विचलित तथा क्ुरद्ध प्रतीत हुईं, तो उन्होंने अपना ध्यान वन की शोभा निहारने की ओर लगा दिया । उस समय सारा वन तेज चमकते चन्द्रमा से प्रकाशित हो रहाथा और वायु चुपके से खिलते फूलों के ऊपर से बह रही थी और वृक्षों की हरी-भरी पत्तियाँ मन्द समीर से हिल-डुल रही थीं । कृष्ण ने उनके वन निहारने के इस अवसर का लाभ उन्हें उपदेश देने में उठाया, "मुझे लगता है कि तुम लोग इस रात्रि में सुन्दर वृन्दावन का जंगल देखने आई हो । किनतु अब तक तुम संतुष्ट हो चुकी होगी । अतः तुम लोग बिना विलम्ब किए अपने-अपने घर लौट जाओं । मैं जानता हूँ कि तुम सब अत्यन्त पतिव्रता स्त्रियाँ हो और चूँकि तुम अब वृन्दावन के जंगलों का सुन्दर वातावरण देख चुकी हो, अतः तुम लोग घर लौट जाओं और जाकर अपने अपने पतियों की निष्ठूपर्ण सेवा करो । यद्यपि तुम अल्पवयस वाली हो, किन्तु कुछ के इस समय तक बच्चे भी होंगे और तुम लोग उन्हें घर पर छोड कर आई होगी; वे बेचारे रो रहे होंगे । अतः तुम लोग कृपा करके उन बच् चों को स्तन-पान कराने के लिए शीघ्र लौट जाओं । मैं यह भी जानता हूँ कि तुम लोगों के मन में मेरे प्रति अत्यधिक स्नेह है और तुम मेरी मुरली का बजाना सुनकर दिव्य स्नेहवश यहाँ आई हों । मेरे प्रति तुम लोगों के स्नेह तथा प्रेम की भावनाएँ अत्यन्त उचित हैं क्योंकि मैं भगवान् हू । सारे जीव मेरे अंश हैं, अतः स्वाभाविक है कि वे मुझे अत्यन्त चाहते हैं । अतः तुम्हारे स्नेह का स्वागत है और इसके लिए मैं तुम सबकों बधाई देता हूँ । अब तुम अपने घर वापस जा सकती हो । एक अन्य बात जो मैं तुम लोगों को बताना चाहता हूँ वह यह है कि पतिव्रता स्त्री के लिए बिना किसी द्वैतभाव के पति की सेवा सर्वश्रेष्ठ धर्म है । एक स्त्री को न केवल अपने पति के प्रति आज्ञाकारी होना चाहिए अपितु अपेन पति मित्रों, उसके माता-पिता और देवरों के प्रति वत्सल होना चाहिए, अपितु सबसे महत्वपूर्ण बात तो यह है कि उसे अपनी सन्तानों का पालन-पोषण करना चाहिए ।"

इस प्रकार कृष्ण ने एक स्त्री के कर्तव्य(धर्म) बताए । उन्होंने पति-सेवा पर बल देते हुए का,"भले ही वह चरित्रहीन, निर्धन, वृद्ध, रोग के कारण अशक्त क्यों न हो, स्त्री को चाहिए कि यदि वह वास्तव में मृत्यु के बाद स्वर्गलोक को जाना चाहती है, तो वह अपने पति का त्याग न करे । इसके अतिरिक्त, यदि कोई स्त्री अपने पति के प्रति निष्ठाहीन हो और दूसरे पुरुष की तलाश में रहती हो, तो समाज के लिए यह कलंक हैं । ऐसी आदते स्त्री के उच्चलोक जाने में बाधक होती है और उनका परिणाम अत्यन्त गर्हित होता है । विवाहिता स्त्री को उपपति नहीं बनाना चाहिए क्योंकि जीवन के वैदिक सिद्धान्तों में इसकी मान्यता नहीं है । यदि तुम सोचती हो कि मुझ पर अत्यधिक आसक्त हो और मेरा सान्निध्य चाहती हो, तो मेरी सलाह है कि मेरे साथ आनन्द उठाने का प्रयास न करो । श्रेयस्कर यह होगा कि तुम घर जाओं और मेरे विषय में बातें करों, मेरे विषय में सोचो और इस प्रकार के निरन्तर स्मरण तथा मेरे नाम के कीर्तन से तुम लोग आध्यात्मिक पद को प्राप्त कर सकोगीं । मेरे निकट रहने की कोई आवश्यकता नहीं है । कृपया घर वापस जाओं ।"

भगवान् ने गोपियों को जो ये उपदेश दियें हैं, वे रंचमात्र भी व्यंग्यात्मक नहीं है । समस्त ईमानदार स्त्रियों को इन उपदेशों को गम्भीरतापूर्वक ग्रहण करना चाहिए । यहाँ पर भगवान् ने स्त्रियों के पातिव्रत्य पर विशेष बल दिया है । अतः जो भी स्त्री उच्चलोक को जाने की कामना करती है उसे इस सिद्धान्त का पालन करना चाहए । कृष्ण समस्त जीवों के समस्त स्नेह के केन्द्र हैं । जब कोई इस स्नेह को कृष्ण के प्रति बढ़ाता है, तो वह सारे वैदिक आदेशों को पार कर जाता है । गोपियों के लिए यह सम्भव था, क्योंकि वे उन्हें अपने समक्ष देख रही थीं । बद्ध अवस्था में ऐसा कर पाना किसी भी स्त्री के लिए सम्भव नहीं । दुर्भाग्यवश कभी-कभी गोपियों के साथ कृष्ण के व्यवहार का अनुकरण करते हुए कुछ धूर्त कृष्ण का स्थान ग्रहण कर लेते हैं और वे अद्वैतवाद

या तादात्म्य के दर्शन का पालन करते हैं । वे इस रासलीला का लाभ भोलीभाली स्त्रियों को फँसाने तथा आत्म-साक्षात्कार के नाम पर उन्हें पथ-भ्रष्ट करने में उठाते हैं । अतः भगवान् कृष्ण ने चेतावनी के रूप में यहाँ यह इंगित किया है कि जो कुछ गोपियों के लिए सुलभ था वह सामान्य स्त्रियों के लिए सम्भव नहीं हैं यद्यपि स्त्री बढ़े-चढ़े कृष्णभावनामृत द्वारा वास्तव में ऊपर उठ सकती है, किन्तु उसे अपने भक्ति कार्यों को कृष्ण के मनन, चिन्तन और कीर्तन में केन्द्रित करना चाहिए । उसे तथाकथित सहजिया भक्तों तथा अनुकरण नहीं करना चाहिए, जो किसी बात को गम्भीरता से नहीं लेते ।

जब कृष्ण ने ऐसे निरुत्साहित ढंग से गोपियों से बातें कीं तो वे अत्यन्त खिन्न हो उठीं क्योंकि उन्होंने सोचा कि कृष्ण के साथ नृत्य करने की उनकी इच्छा विफल हो गई; अतः वे अत्यधिक चिन्तित हो उठीं । अत्यन्त खिन्नता के कारण वे जोर-जोर से साँसें लेने लगीं । उन्होंने कृष्ण का मुख न देखने के बजाये अपना नीचे सिर झुका लिया और पृथ्वी पर तरह-तरह से नख-रेखाएँ बनाने लगीं । वे अश्रुपात कर रही थीं जिससे उनके मुखों का सारा अंगराग धुल गया था । उनके आँसू उनके वक्षस्थलों पर लेपित कुंकुम से मिलकर पृथ्वी पर गिर रहे थे । वे कृष्ण से कुछ कह न सकीं, केवल मूक बनी खडी रहीं । उन्होंने अपने मौन से यह बता दिया कि उनके हृदय क्षत-विक्षत हो चुके हैं ।

गोपियाँ सामान्य स्त्रियाँ न थीं । स्पष्ट रूप से वे कृष्ण के समान-स्तर पर थीं । वे उनकी शाश्वत संगिनी हैं । जैसाकि ब्रह्म-संहिता में पुष्टि हुई हैं, वे कृष्ण की ह्लादिनी शक्ति की विस्तार हैं और उनकी शक्तिरूपा वे उनसे अभिन्न हैं । यद्यपि वे कृष्ण के वचनों से निराश थीं, किन्तु उन्होंने कृष्ण के विरुद्ध कटु शब्द नहीं कहें । फिर भी वे कृष्ण को निष्ठुर वचनों के लिए फटकारना चाह रही थीं, अतः उन्होंने अवरुद्ध वाणी में बोलना प्रारम्भ किया । वे कृष्ण से कोई कटु वचन नहीं कहना चाह रही थीं

क्योंकि वे उन्हें उनकी आत्मा तथा हृदय से अत्यन्त प्रिय थे । गोपियों ने कृष्ण को ही अपने हृदयों में बिठा रखा था । वे कृष्ण के प्रति पूर्णतया समर्पित तथा अनुरक्त थीं । स्वाभाविक है कि जब उन्होंने ऐसे कटु वचन सुने तो कुछ उत्तर देना चाहा, किन्तु ऐसा करने के प्रयास में उनके नेत्रों से आँसुओं की धारा बह चली । अन्ततोगत्वा वे किसी तरह यह कह पाईं ।

उन्होंने कहा,"हे कृष्ण! तुम अत्यन्त क्रूर हो । तुम्हें इस तरह नहीं कहना चाहिए । हम पूर्णतया शरणागत हैं । कृपा करके हमें अपना लें और इतनी क्रूरता से बातें ने करें । निस्सन्देह आप श्रीभगवान् हैं और आप जो चाहें सो कर सकतें हैं, किन्तु ऐसी क्रूरता से हमारे साथ व्यवहार करना आपको शोभा नहीं देता । हम अपना सर्वस्व त्याग कर आपके चरणकमलों में शरण लेने आईं हैं । हमें ज्ञात हैं कि आप पूर्णतया स्वतंत्र हैं और जो चाहें सो कर सकते हैं, किन्तु हमारी विनती है कि हमें ठुकराएँ नहीं । हम आपकी भक्त हैं । आप हमें उसी तरह स्वीकार करें जिस प्रकार नारायण अपने भक्तों को करते हैं । भगवान् नारायण के ऐसे अनेक भक्त हैं, जो अपनी मुक्ति के लिए उनकी पूजा करते हैं और वे उन्हें मुक्ति दे देते हैं । तो आप हमें किस प्रकार ठुकरा सकते हैं, जब आपके पाद-पद्मों के अतिरिक्त हमारा अन्य कोई आश्रय नहीं है ।

"हे कृष्ण! आप परम शिक्षक हैं । इसमें कोई सन्देह नहीं है । आपके य उपदेश शास्त्र-सम्मत हैं कि स्त्रियाँ अपने पतियों के प्रति निष्ठावान हों, अपने बच्चों के प्रति दयालु हों, वे अपने गृहकार्यों को सँभालें और परिवार के गुरुजनों के प्रति आज्ञाकारिणी हों । किन्तु हम यह भी जानती हैं कि सारे शास्त्रों के इन उपदेशों का तब भी पूर्णतया पालन हो जाता है जब कोई आपके चरणकमलों का आश्रय ग्रहण करें । हमारे पति, मित्र, परिजन तथा पुत्र सभी हमें आपकी उपस्थिति के कारण ही प्रिय एवं अच्छे लगते हैं क्योंकि आप ही समस्त जीवों के परमात्मा हैं । आपके बिना सब

कुछ व्यर्थ हैं । जब आप शरीर को छोड़ते हैं, तो वह तुरन्त मर जाता है और शास्त्रों का आदेश है कि मृत शरीर को तुरन्त नदी में प्रवाहित कर दिया जाए या जला दिया जाए । अतः अन्ततोगत्वा आप ही इस संसार में सर्वाधिक प्रिय पुरुष हैं । आप पर अपनी श्रद्धा तथा प्यार स्थापित करने पर हमें अपने पतियों, मित्रों, पुत्रों या पुत्रियों से बिछुडने का कोई अवसर नहीं आएगा । यदि कोई स्त्री आपको अपने पति रूप में स्वीकार करती है, तो वह पति से कभी वियुक्त नहीं होगी जिस तरह कि देहात्मबुद्धि होने पर होता है । यदि हम आपको अपना परम पति मान लेती हैं, तो फिर हमें विलग होने, पतिविहीन होने या विधवा होने का प्रश्न नहीं उठता । आप शाश्वत पति, शाश्वत पुत्र, शाश्वत मित्र तथा शाश्वत स्वामी हैं और जो कोई आपसे सम्बन्ध स्थापित करता है, वह सदा सुखी रहता है । चूँकि, आप समस्त धर्मों के शिक्षक हैं, अतः सर्वप्रथम आपके चरणकमलों की पूजा की जानी चाहिए । इसलिए शास्त्रों का कथन है कि आचार्य-उपासना अर्थात आपके चरणकमलों की पूजा ही मूल सिद्धान्त है । इसके अतिरिक्त श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि आप ही एकमात्र भोक्ता, स्वामी तथा एकमात्र मित्र है । इसलिए हम अपने समस्त तथाकथित मित्र, समाज तथा प्यार को त्याग कर आपके पास आईं हैं और अब आप ही हमारे भोक्ता हैं । आप हमारा अनन्त काल तक भोग करें, हमारे स्वामी बनें क्योंकि आपका यह प्राकृतिक अधिकार है । आप हमारे परम मित्र बनें क्योंकि आप स्वभाव से वैसे हैं हमें अपनी परम प्रेयसी की भाँति अपना आलिंगन करने दें ।

तत्पश्चात् गोपियों ने कमल-नयन कृष्ण से कहा,"हमें आपकों पति रूप में प्राप्त करने की चिर-अभिलाषा है । कृपया हमें निरुत्साहित न करें । कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति, जो अपने स्वार्थ का ध्यान रखता है अपनी प्रिय आत्मा को आप में आश्रित कर देता है । जो लोग माया द्वारा भ्रमित हैं, जो झूठे विचारों से सन्तुष्ट होना चाहते हैं, वे ही आपसे अलग

रह कर भोग करना चाहते हैं । तथाकथित पति, मित्र, पुत्री या माता तथा पिता ये सबके सब दुःख के कारण हैं । कोई भी इस जगत में इन सबके कारण सुखी नहीं रहता । यद्यपि माता-पिता से आशा की जाती है कि वे बच्चों का लालन-पालन करेंगे, किन्तु ऐसे अनेक बालक हैं, जो भोजन तथा आश्रय न मिल पाने के कारण कष्ट उठाते हैं । अच्छे चिकित्सकों की कमीं नहीं हैं, किन्तु जब रोगी मर जाता है, तो कोई भी चिकित्सक उसे पुनः जीवित नहीं कर सकते । यद्यपि सुरक्षा के अनेक साधन हैं, किन्तु जब अन्त आ जाता है, तो कोई साधन काम नहीं करता । आपकी सुरक्षा के बिना सुरक्षा के सारे तथाकथित साधन निरन्तर यातना के साधन बन जाते हैं । अतः हे स्वामी! हमारी प्रार्थना है कि आप को परम पति रूप में पाने की हमारी चिर अभिलाषा को आप इस तरह तोड़ें नहीं ।

"हे कृष्ण! इसमें सन्देह नहीं कि जब हम गृहकार्यों में व्यस्त रहती हैं, तो स्त्रियों के रूप में हम परम प्रसन्न रहती हैं, किन्तु हमारे हृदयों को तो आपने पहले ही चुरा लिया है । अब हमारा मन गृहकार्यों में नहीं लगता । और आप हैं कि लगातार हमें घर जाने के लिए कह रहे हैं । यद्यपि यह उचित उपदेश है, किन्तु दुर्भाग्यवश हम लाचार है । हमारे पाँवों में शक्ति नहीं रह गई कि आपके चरणकमलों को छोडकर एक पग भी चल सकें । अतः यदि आपके अनुरोध से हम घर लौट भी जाए, तो वहाँ हम क्या कर सकेंगी । हम आपके बिना कुछ भी करने की शक्ति खो चुकी हैं । अब हम अपना मन महिलाओं के रूप में गृहस्थी के कार्यों में लगा कर एक भिन्न प्रकार की काम-वासना का अनुभव कर रही हैं जिससे हमारे हृदय जल रहे हैंअतः हे कृष्ण! हमारी प्रार्थना है कि आप अपनी सुन्दर मुस्कान तथा अपने होठों से निस्सृत दिवय वाणी से इस अग्नि को बुझा दें । यदि आप ऐसा नहीं करते, तो हम वियोग की अग्नि में जल जाएँगी । उस अवस्था में हम आपका तथा आपके सुन्दर स्वरूप का चिन्तन करती हुई अपना शरीर तुरन्त त्याग देंगी । इस तरह हमारा विचार है कि हम

अगले जन्म में आपके चरणकमलों पर निवास कर सकेंगी । हे कृष्ण! यदि आप कहते हैं कि हम घर जाएँ और हमारे पति हमारी इस काम-वासना को तुष्ट कर सकेंगे, तो हमारा यही कहना है कि ऐसा अब असम्भव है । आपने हमें अवसर प्रदान किया है कि हम वन में आपके द्वारा भोगी जाए और भूतकाल में भी आप हमारे स्तनों को स्पर्श कर चुके हैं, जिसे हमने लक्ष्मी के समान वैकुण्ठलोक में ऐसा सुख प्राप्त करते हुए आशीर्वाद मान लिया है । चूँकि हमें इस दिव्य आनन्द का किसी के पास जाने में रुचि नहीं रखतीं । हे कृष्ण! लक्ष्मी के चरणकमल देवताओं द्वारा सदैव आराधित हैं । यद्यपि वे वैकुण्ठलोक में आपके वक्षस्थल पर विराजमान रहतीं हैं किन्तु उन्होंने तुलसीदल से सदा आच्छादित आपके चरणकमलों की शरण प्राप्त करने के लिए कठोर तप किया था । आपके चरणकमल आपके सेवकों की उचित शरण हैं और देवी लक्ष्मी आपके वक्षस्थल में न विराजकल नीचे उतर कर आपके चरणकमलों की पूजा करती हैं । अब हमने आपके चरणों की धूलि में अपने को रख लिया है । कृपया हमें ठुकराएँ नहीं क्योंकि हम पूर्णतया शरणागत हैं ।

"हे कृष्ण! आप हरि कहलाते हैं, आप समस्त जीवों के समस्त दुःखों को नष्ट करते हैं, विशेषतया उनके जिन्होंने घर-बार छोडकर आपकी पूर्ण शरण ग्रहण कर ली हैं । हमने इसी आशा से अपने घर छोड़े हैं कि हम आपकी सेवा पूर्णरूपेण कर सकें । हमारी एकमात्र यही विनती है कि आप हमें अपनी दासी बना लें । हम आपेस अपनी पत्नी बनाने को नहीं कहतीं । हमें केवल अपनी दासी बना लें । चूँकि आप श्रीभगवान् हैं और परकीया-रस का भोग करना चाहते हैं और आप दिव्य स्त्री-आखेटक के रूप में प्रसिद्ध हैं, अतः हम आपकी दिव्य इच्छाएँ पूरी करने आईं हैं । हम अत्यन्त कामुक हो उठी हैं । हम आपके समक्ष सारे आभूषणों तथा वस्त्रों से सुसज्जित होकर आईं हैं, किन्तु जब तक आप हमारा आलिंगन नहीं करते हमारा यह सारा शृंगार तथा सौन्दर्य अपूर्ण है

। आप परम पुरुष हैं और यदि हमारे शृंगार को पुरुष भूषण के रूप में पूर्ण बना सकें, तो हमारी सारी इच्छाएँ तथा शारीरिक सज्जा पूर्ण हो जाए ।

"हे कृष्ण! हम आपके तिलक तथा कुंडल एवं घुँघराली लटों से आवृत मुखमंडल तथा आपकी अलौकिक मुस्कान को देख कर मोहित हो गई हैं । यही नहीं, हम आपकी बाहों से भी आकर्षित हैं, जो शरणागतों को आश्वासन देने वाली हैं । यद्यपि हम आपके वक्षस्थल से भी आकृष्ट हैं, क्योंकि उसका आलिंगन सदा देवी लक्ष्मी द्वारा किया जाता है ।, किन्तु हम उनका स्थान ग्रहण करना नहीं चाहतीं । हम तो आपकी दासी बनकर ही सन्तुष्ट रहेंगी । यदि हम पर यह आरोप लगाते हैं कि हम वैश्यावृत्ति को वढ़ावा देने वाली हैं, तो हमें आपसे इतना ही पूछना है कि तीनों लोकों में ऐसी कौन स्त्री होगी, जो आपके सौन्दर्य तथा आपकी दिव्य बाँसुरी की सुरीली ध्वनि से सम्मोहित न हो? इन तीनों लोकों में आपके प्रति स्त्री तथा पुरुष के सम्बन्ध में कोई भेद नहीं है क्योंकि स्त्री तथा पुरुष दोनों ही आप की तटस्था शक्ति या प्रकृति से सम्बन्धित हैं । वस्तुतः कोई भी भोक्ता या नर नहीं है, हर कोई आपके द्वारा भोग्य है । तीनों लोकों में कोई ऐसी स्त्री नहीं, जो एक बार आपके प्रति आकृष्ट होकर अपने पातिव्रत्य के पथ से डिग न जाए, क्योंकि आपका सौन्दर्य इतना दिव्य है कि न केवल स्त्री तथा पुरुष अपितु गौवें, पक्षी, पशु, यहाँ तक कि वृक्ष, फल तथा फूल भी मोहित हो जाते हैं, तो हम लोगों का क्या कहना? किन्तु इतना तो निश्चित है कि चूँकि भगवान् विष्णु सदा से असुरों के आक्रमण से देवताओं की रक्षा करते आए हैं, अतः आप भी हमारी सभी प्रकार के कष्टों से रखा करने के लिए वृन्दावन में अवतरित हुए हैं । हे दुखियों के मित्र! आप अपना हाथ हमारे दग्ध वक्षस्थलों तथा शिरों पर रखियें क्योंकि हमने आपकी नित्य दासी के रूप में अपने आपको समर्पित कर दिया है । यदि आप सोचते हैं कि आपकी कमल जैसी हथेलियाँ हमारे वक्षस्थलों को

स्पर्श करते ही दग्ध होकर राख बन जाएगी, तो हम विश्वास दिलाती है कि आपकी हथेलियाँ पीड़ा के बजाय आनन्द का अनुभव करेंगी जिस प्रकार कमल का फूल अत्यन्त कोमल होते हुए भी सूर्य के प्रखर ताप का आनन्द लेता हैं ।

गोपियों का अनुनय-विनय सुनकर श्रीभगवान् आत्म-निर्भर होने पर भी हँसने लगे और गोपियों के प्रति अत्यधिक दयार्द्र होने के कारण भगवान् उनकी इच्छानुसार उनका आलिंगन-चुम्बन करने लगे । जब कृष्ण ने मुस्कुराते हुए गोपियों के मुखड़ों को देखा, तो उनके मुखों की शोभा सौगुनी बढ़ गई । जब वे उनके मध्य में उनका भोग कर रहे थे, तो असंख्य प्रकाशमान नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा जैसे प्रतीत हो रहे थे । इस तरह नाना रंग के फूलों की मालाओं से अलंकृत सैकड़ों गोपियों से घिरकर श्रीभगवान् वृन्दावन के जंगल में विचरण करने लगें, जहाँ वे कभी स्वयं गाते और कभी गोपियों के साथ-साथ गाते थे । इस प्रकार भगवान् तथा गोपियाँ यमुना के शीतल रेतीले तट पर पहुँच गए जहाँ कमल तथा कुमुदिनियाँ खिली थीं । ऐसे दिव्य वातावरण में गोपियाँ तथा कृष्ण एक दूसरे के साथ आनन्द-विहार करने लगे । यमुना तट पर विचरण करते हुए कभी वे गोपियों के सिर, वक्षस्थल या कमर को अपनी बाहों में भर लेते, तो कभी एक दूसरें को चुटकी काटते और परिहास करते । वे एक दूसरे को देख-देखकर आनन्द लूटने लगे । जब कृष्ण गोपियों के शरीर का स्पर्श करते, तो उनकी आलिंगन लूटने लगे । जब कृष्ण गोपियों के शरीर का स्पर्श करते, तो उनकी आलिंगन की वासना बढ़ जाती । उन सबों ने इन लीलाएं का आनन्द लूटा । इस प्रकार श्रीभगवान् की कृपा पा कर सारी गोपियाँ धन्य हुईं क्योंकि उन्होंने रंचमात्र संसारी यौन जीवन के बिना उनके सान्निध्य का आनन्द उठाया ।

किन्तु शीर्घ ही गोपियों को यह सोचकर गर्व होने लगा कि उन्हे कृष्ण के सान्निध्य का सुयोग प्राप्त हुआ है, अतः वे इस ब्रह्माण्ड में सर्वाधिक

भाग्यशालिनी हैं । किन्तु भगवान् कृष्ण, जिन्हें केशव कहा जाता हैं, उनके इस गर्व को तुरन्त पहचान गए और उन्हें अपनी अहैतुकी कृपा दिखाने के उद्देश्य से तथा उनके झूठे गर्व को दमन करने के लिए वे तुरन्त उस स्थान से अन्तर्धान हो गए, जो उनके वैराग्य-ऐश्वर्य का सूचक है । श्रीभगवान् सदैव छः प्रकार के ऐश्वर्यों मे पूर्ण हैं और यह उनके वैराग्य-ऐश्वर्य का उदाहरण है । यह वैराग्य कृष्ण की पूर्ण अनासक्ति की पुष्टि करता है । वे सदैव स्वावलम्बी (आत्माराम) हैं और किसी पर निर्भर नहीं रहते । यही मंच है जहाँ उनकी दिव्य लीलाएँ सम्पन्न होती है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "रासलीला का शुभारम्भ" नामक उन्तीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 30
कृष्ण का गोपियों से छिपना

जब कृष्ण सहसा गोपियों की टोली से अदृश्य हो गए, तो वे उन्हें प्रत्येक स्थान में ढूँढ़ने लगीं । किन्तु कहीं भी उन्हें न पाकर वे भयभीत हो गईं और उनके पीछे पागल सी हो उठीं । वे अत्यन्त प्रेम तथा स्नेह से कृष्ण की लीलाओं का ही चिन्तन करने लगीं । उनके ध्यान मग्न होने के कारण उनकी स्मृति जाती रही और अश्रुपूरित नेत्रों से वे कृष्ण की सारी लीलाएँ-उनके साथ हुए सुन्दर वार्तालान, उनके आलिंगन, चुम्बन तथा अन्य कार्यकलाप-देखने लगीं । कृष्ण के प्रति अत्यधिक आकृष्ट होने से वे उनके नाचने, चलेन, हँसने का इस तरह अनुकरण करने लगीं माने वे स्वयं कृष्ण हों । कृष्ण के न होने से वे सब पागल हो उठीं, वे एक दूसरे से कहने लगीं कि वे ही स्वयं कृष्ण हैं वे सब शीघ्र ही एकत्र हो गईं और

जोर से कृष्ण नाम का उच्चारण(कीर्तन) करने लगीं, वे उन्हें ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जंगल के एक सिरे से दूसरे सिरे तक पहुँच गईं ।

वस्तुतः कृष्ण सर्वव्यापी हैं, वे आकाश में हैं, वन में हैं, हृदय के भीतर है और सर्वत्र विराजमान हैं । अतः गोपियाँ वृक्षों तथा पौधों से कृष्ण के विषय में पूछने लगीं । जंगल में अनेक प्रकार के बड़े तथा छोटे वृक्ष थे । गोपियाँ इन वृक्षों की सम्बोधित करने लगीं, "हे वटवृक्ष! क्या तुमने नन्न महाराज के पुत्र को इधर से जाते, हँसते तथा वंशी बजाते देखा हैं? वह हमारे चित्त चुरा कर चला गया है । यदि तुमने उसे देखा है, तो हमें बताएँ कि वह किधर गया है? हे प्रिय अशोक वृक्ष! हे नागपुष्प के वृक्ष! हे चम्पक वृक्ष! तुम ही बाते दो कि क्या बलराम के छोटे भाई को इधर से जाते देखा है? वे हमारे गर्व के कारण अन्तर्धान हो गए हैं।" गोपियों को कृष्ण के अन्तर्धान होने का कारण ज्ञात था । वे जानती थी कि जब वे कृष्ण के साथ आनन्दमग्न थीं, तो वे अपने को ब्रह्माण्ड की सर्वाधिक भाग्यशालिनी स्त्रियाँ समझ रही थीं और चूँकि अपने को गर्वित अनुभव कर रहीं थीं, अतः श्रीकृष्ण उनके गर्व का दमन करने के लिए तुरन्त अन्तर्धान हो गए हैं । कृष्ण नहीं चाहते कि उनके प्रति किन्तु वे यह नहीं चाहतें कि एक भक्त अपने को दूसरे से अधिक गर्वीला अनुभव करें यदि कभी ऐसी भावना उत्पन्न हो जाती है, तो श्रीकृष्ण उसके प्रति अपना भाव बदल कर उस भावना को समाप्त कर देते हैं ।

तब गोपियाँ तुलसी के वृक्षों को सम्बोधित करने लगीं,"हे तुलसी! तुम कृष्ण को अत्यन्त प्रिय हो क्योंकि तुम्हारे पत्ते (दल) उनके चरणकमलों पर चढ़ते हैं ।" "हे मालती! हे मल्लिका! हे चमेली! हमें दिव्य आनन्द प्रदान करने के बाद इधर से जाते हुए श्रीकृष्ण ने तुम सबा अवश्य स्पर्श किया होगा । क्या तुमने माधव को इस ओर से जाते देखा हैं? हे आम्र वृक्ष, हे कटहल, हे नाशपति तथा आसन वृक्षो! हे जामनु, बेल वृक्षो तथा कदम्ब पुष्प के वृक्ष! तुम सब यमुना के तट पर रहने के कारण अत्यन्त

पवित्र हो । इधर से कृष्ण अवश्य गए होंगे । क्या तुम सब बता सकोगे कि वे किस ओर गये हैं?"

तत्पश्चात् गोपियों ने जिस पृथ्वी पर वे चल रही थी उसे सम्बोधित करना प्रारम्भ किया,"हे पृथ्वी! हमें ज्ञात नहीं कि आपने कृष्ण के चरण-चिन्हों को अपने ऊपर धारण करने के लिए कितना तप किया होगा । आप बड़ी प्रसन्नचित्त हैं । ये प्रमुदित वृक्ष तथा पौधे ही आपकी रोमावलियाँ हैं । श्रीकृष्ण अवश्य ही आप पर अत्यधिक प्रसन्न रहें होंगे अन्यथा वराह रूप में उन्होंने आपका आलिंगन क्यों किया होता? जब आप जलमग्न थीं, तो उन्होंने आपका सारा भार अपने दाँतों पर उठाकर आपका उद्धार किया था ।"

अनेक वृक्षों, पौधों और पृथ्वी को सम्बोधित करने के पश्चात् उन्होंने अपना मुँह उन सुन्दर हरिणों की ओर फेरा जो उनकी ओर प्रसन्नतापूर्वक देख रहे थे । उनको सम्बोधित करते हुए गोपियों ने कहा,"ऐसा लगता है कि साक्षात् परम नारायण कृष्ण अपनी संगिनी लक्ष्मी समेत अवश्य इस रास्ते से होकर गुजरे होगें अन्यथा यह कैसे सम्भव है कि यहाँ समीर में उनके पुष्पहार की सुगन्ध लक्ष्मीजी के वक्षस्थल में लेप किए गए कुंकुम की सुगंध से युक्त अनुभव की जा रही हों? ऐसा लगता है कि वे यहाँ से अवश्य गुजरे होंगे और उन्होंने तुम्हारें शरीरों का स्पर्श किया होगा जिससे तुम सब इतने प्रसन्न लग रहे हो और हमारी ओर करुण-दृष्टि से देख रहे हो । अतः कृपा करके क्या हमें बता सकोगे कि कृष्ण किधर गए हैं? कृष्ण वृन्दावन के शुभचिन्तक हैं, वे तुम पर उतने ही दयालु हैं जितने हम पर; अतः हमें त्यागने के बाद वे अवश्य ही तुम लोगों के संग रहे होंगे । हे भाग्यशाली वृक्षो! हम बलराम के छोटे भाई कृष्ण का चिन्तन कर रहीं है । वे अपना एक हाथ लक्ष्मी देवी के कन्धे पर रखे और दूसरे हाथ में कमल का पुष्प घुमाते हुए इधर से गए होंगे और तुम लोगों के नमस्कार करने पर प्रसन्न हुए होंगे और तुम सबको प्रसन्नतापूर्वक निहारा होगा ।"

तब कुछ गोपियाँ अपनी अन्य गोपी सखियों को सम्बोधित करने लगीं, "सखियो! तुम इन लताओं से क्यों नहीं पूछ रहीं, जो इन विशाल वृक्षों का प्रसन्नतापूर्वक आलिंगन कर रही हैं मानों वे इनके पति हों? ऐसा लगता है कि इन लताओं के फूलों को कृष्ण ने अपने नखों से अवश्य ही स्पर्श किया होगा, अन्यथा वे इतनी प्रसन्न क्यों हैं?"

जब गोपियाँ श्रीकृष्ण को इधर-अधर खोज कर थक गईं, तो वे प्रमत्ताओं की तरह बातें करने लगीं । वे कृष्ण की विविध लीलाओं का अनुकरण करके अपने आपको संतुष्ट करने लगीं । एक ने पूतना राक्षसी का अनुकरण किया और दूसरों ने कृष्ण बनकर उसका स्तन-पान किया । एक गोपी छकडा बन गई और दूसरी इस छकडे के नीचे लेटकर अपनी टाँगे हिलाने लगी, जिससे वे छकडे के पहियों को छू जाएँ, जिस प्रकार कृष्ण ने शकटासुर का वध करने के लिए किया थां एक गोपी बालक कृष्ण का अनुकरण करते हुए भूमि पर लेट गई और एक गोपी तृणावर्त बन कर उसे नन्हें बालक कृष्ण को बलपूर्वक आकाश में उठा ले गई; एक गोपी ने कृष्ण का अनुकरण घुटनों के बल चलते तथा अपनी क्षुद्र घंटिका बजाते हुए किया । दो गोपियाँ कृष्ण तथा बलराम और अन्य अनेक गोपयाँ ग्वाल-बाल बन गईं । एक गोपी ने बकासुर का रूप धरा और दूसरी ने उसे बलपूर्वक पृथ्वी पर गिरा दिया, जैसे बकासुर गिरा था जब उस का वध हुआ था । इसी प्रकार एक अन्य गोपी ने वत्सासुर को हराया । जिस प्रकार कृष्ण अपनी गायों को उनके नाम से लेकर पुकारते थे उसी प्रकार गोपियाँ उनका अनुकरण करने लगीं और गौओं को उनका नाम ले लेकर पुकारने लगी । एक गोपी बाँसुरी बजाने लगी और दूसरी उसकी वैसी ही प्रशंसा करने लगी और, जिस प्रकार ग्वाले कृष्ण की वंशी बजाते समय करते थे । एक गोपी दूसरी गोपी को अपने कंधों पर उसी प्रकार चढ़ाने लगी जिस प्रकार कृष्ण अपने ग्वाल मित्रों को करते थे । जो गोपी अपनी सखी को इस तरह कन्धों पर चढ़ायें थी वह शेखी

मारने लगी कि, "मैं कृष्ण हूँ, तुम सब मेरी चाल क्यों नहीं देखतीं!" एक गोपी ने अपने वस्त्र और हाथ उठाते हुए कहा, "अब मूसलाधार वर्षा तथा प्रबल चक्रवात से मत डरो, मैं तुम सबको बचाऊँगी ।" इस प्रकार उसने गोवर्धन-धारण का अनुकरण किया । एक गोपी अपना पैर दूसरी गोपी के सिर पर बलपूर्वक रखते हुए बोली,"अरे दुष्ट कालिय! मैं तुम्हें कठोर दण्ड दूँगी । तुम इस स्थान को छोड दो । इस पृथ्वी पर मेरा अवतार सभी तरह के दुष्टों को दण्ड देने के लिए हुआ है ।" दूसरी गोपी अपनी सखियों से बोली, "देखो न! दावाग्नि की लपटें हमें लीलने आ रही हैं । अपनी आँखे बन्द करो, मैं तुम्हें इस आसन्न संकट से तुरन्त बचा लूँगी ।

इस प्रकार सारी गोपिकाएँ कृष्ण की अनुपस्थिति से उन्मत्त हो रही थीं । उन्होंने कृष्ण के विषय में वृक्षों तथा पौधों से पूछा । कई स्थानो में उन्हें उनके चरण-चिन्ह दिखाई पडे जिनमें ध्वजा, कमल, त्रिशूल, वज्र आदि अंकिग थे । इन चरण-चिन्हों को देखकर वे फूट-फूट कर रो पडीं- "अरे! ये तो कृष्ण के पैरों के चिन्ह हैं । सारे लक्षण-ध्वजाए कमल पुष्प, त्रिशूल तथा वज्र-बिल्कुल स्पष्ट दिख रहे हैं ।" वे उन पादचिन्हों का अनुकरण करने लगीं तभी उन्हें पास ही दूसरे चरण चिन्ह दिखाई पडे । वे तुरन्त अत्यन्त दुखी हुईं, और बोल उठी "प्यारी सखियो! जरा देखो न! ये दूसरे चरणचिन्ह किसके हैं? ये महाराज नन्द के पुत्र के चरणचिन्हों के पास-पास हैं । निश्चय ही कृष्ण किसी अन्य गोपी पर अपना हाथ टेके इधर से उसी प्रकार किये हैं जिस तरह हाथी अपनी प्रिया के साथ-साथ चलता है । अतः हमें यह जान लेना चाहिए कि इस विशिष्ट गोपी ने कृष्ण की सेवा हम सबों से अधिक प्रेम तथा स्नेह से की है । इसीलिए वे हमें त्याग कर भी उसका संग नहीं छोड़ पाये । वे उसे अपने साथ लेते गए हैं । सखियो! जरा विचारो तो कि इस स्थान की दिव्य धूलि कितनी धन्य है । कृष्ण की चरणधूलि की पूजा ब्रह्मा, शिव तथा देवी लक्ष्मी तक करती हैं । किन्तु हमें इसका दुःख है कि यह विशिष्ट गोपी कृष्ण के साथ गईं है और

वह हमें विलाप करती छोडने के लिए कृष्ण के चुम्बनों का अमृत पान कर रही हैं । हे सखियो! जरा देखो तो! इस स्थान पर हमें उस गोपी के चरणचिन्ह नहीं दिख रहे । ऐसा लगता है कि यहाँ पर सूखी घास के काँटे थे इसलिए कृष्ण ने राधारानी को अपने कन्धे का उठा लिया होगा । ओह! वह उन्हें इतनी प्यारी है! कृष्ण ने राधारानी के प्रसन्न करेन के लिए यहाँ कुछ फूल तोडे होंगे । यहाँ पर वे ऊँची डालों से फूल तोडने के लिए सीधे खड़े हुए होंगे अतः हमें उनके अधूरे चरणचिन्ह दिख रहे हैं । सखियो, देखो ने! यहाँ पर राधारानी के साथ बैठकर किस तरह कृष्ण ने उनके बालों में फूल सजाए होंगे । तुम इतना निश्चय जानों कि यहाँ पर वे दोनों बैठे थे । कृष्ण आत्माराम हैं, उन्हें किसी अन्य स्रोत से किसी आनन्द को भोगने की आवश्यकता व्यवहार किया जिस प्रकार एक कामी तरुण अपनी तरुणी प्रेमिका के साथ करता है । कृष्ण इतने दयालु हैं कि वे अपनी सखियों द्वारा उत्पन्न समस्त उत्पातों को सहन करते हैं ।

इस प्रकार सारी गोपियाँ उस विशिष्ट गोपी के दोषों का वर्णन करने लगीं, जिसे कृष्ण अकेले ले गए थे । वे कहने लगीं कि प्रमुख गोपी राधारानी अपने को सर्वश्रेष्ठ गोपी समझ कर अपने पद पर गर्वित होगी । "तो भी कृष्ण हम सबको एक और छोड़कर उसे ही अकेले कैसे ले गए, जब तक वह अद्वितीय सुन्दरी न हों? वह कृष्ण को घने जंगल में ले जाकर बोली होगी,"हे प्रिय कृष्ण! मैं अब बहुत थक गई हूँ, मैं अब और नहीं चल सकती । अब आप मुझे चाहे जहाँ ले जाएं लेकिन उठा कर ले जाओं ।" जब कृष्ण से उसने इस तरह कहा होगा, तो उन्होंने भी राधारानी से कहा होगा, "अच्छा! तुम मेरे कंधे पर चढ़ जाओं ।" किन्तु कृष्ण तुरन्त अदृश्य हो गए होंगे और अब राधारानी उनके लिए विलाप कर रही होगी, "मेरे प्रेमी, मेरे प्रियतम! आप इतने अच्छे और शक्तिशाली हैं । आप कहाँ गए? मैं आपकी परम आज्ञाकारिणी दासी हूँ । मैं अत्यधिक दुःखी हूं । कृपया आइये और पुनः मेरे साथ हो लीजिए ।" किन्तु कृष्ण उसके पास नहीं आ

रहे होंगे । वे उसे दूर से देख-देखकर उसके शोक से आनन्दित हो रहे होंगे ।"

तदनन्तर सभी गोपियाँ कृष्ण की खोज में जंगल के भीतर दूर तक चली गईं, किन्तु जब उन्हें पता चला कि सचमुच ही कृष्ण ने राधारानी को अकेले छोड़ दिया है, तो वे अत्यन्त दुःखी हुईं । यही कृष्णभावनामृत की परीक्षा है । प्रारम्भ में उन्हें कुछ-कुछ ईर्ष्या थी कि कृष्ण हम सब गोपियों को छोड़कर राधारानी को ही क्यों लेते गए, किन्त जैसे ही उन्हें पता लगा कि कृष्ण ने राधारानी को भी छोड दिया है और वह अकेले उनके लिए विलाप कर रही है, तो वे उसके पति दयार्द्र हो उठीं । गोपियों को राधारानी मिल गई और उससे उन्होंने सब कुछ सुना कि किस तरह उसने कृष्ण के साथ दुर्व्यवहार किया और किस प्रकार उसे गर्व हुआ और फिर अपने गर्व के लिए अपमानित होना पड़ा । यह सब सुनकर गोपियाँ सचमुच उसके प्रति दयार्द्र हो उठीं । तब राधारानी समेत सारी गोपियाँ जंगल में तब तक आगे बढ़ती गई जब तक उन्हें चाँदनी दिखनी बन्द हो गईं ।

जब उन्होंने देखा कि क्रमशः अंधकार होता जा रहा है, तो वे रुक गईं । उनके मन तथा बुद्धि कृष्ण के विचारो में मग्न हो गए, वे सब कृष्ण के कार्यकलापों तथा उनकी बातों का अनुकरण करने लगीं । अपना हृदय तथा अपनी आत्मा कृष्ण पर न्यौछावर करने के कारण वे अपने परिवार को भूलकर उनकी महिमा का गान करने लगीं । इस प्रकार सारी गोपियाँ यमुना तट पर लौटकर वहाँ एकत्र हो गईं और यह सोच-सोच कर कि कृष्ण उनके पास लौटकर आएँगे, श्रीकृष्ण की महिमा का कीर्तन करने लगीं-

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।

हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे॥

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "कृष्ण का गोपियों से छिपना" नामक तीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 31
गोपी गीत

एक गोपी बोली, "हे कृष्ण! जब से आपने इस व्रजभूमि में जन्म लिया तब से प्रत्येक वस्तु धन्य लगती है । वृन्दावन की भूमि धन्य हो गई है और ऐसा प्रतीत होता है मानों यहाँ स्वयं लक्ष्मीजी निवासी कर रही हों । किन्तु यदि कोई दुःखी है, तो वह हमीं हैं, क्योंकि हम आपको निरन्तर खोजती रहती हैं, फिर भी आपके दर्शन नहीं पा रहीं । हमारा जीवन आप पर ही आश्रित हैं, अतः हमारी प्रार्थना है कि आप पुनः हमारे पास आ जाएँ ।"

एक अन्य गोपी बोली,"हे प्रिय कृष्ण! आप उस कमल फूल के भी प्राण हैं, जो शरद् ऋतु की स्वच्छ वर्षा के कारण पारदर्शी बने सरोबर के जल में उगता है । यद्यपि कमल फूल देखने में इतने सुन्दर हैं, किन्तु आपके देखे के बिना वे मुरझा जाते हैं । इसी प्रकार आपके बिना हम भी मरणासन्न हैं । वस्तुतः हम आपकी पत्नियाँ नहीं हैं किन्तु आपकी दासियाँ हैं । आप हम पर एक छदाम भी नहीं खर्चते, फिर भी हम आपकी चितवन मात्र के प्रति आकृष्ट हैं । अब यदि हम आपकी चितवन पाये बिना मर जाती हैं, तो आप ही हमारी मृत्यु के लिए उत्तरदायी होंगे । स्त्रियों का वध महान पाप है और यदि हमें देखने नहीं आते और हम मर जाती हैं, तो आपको इस पाप का फल भोगना पडेगा । अतः कृपा करके हमें देखने आ जाइयें । आप यह न सोंचे कि केवल अस्त्र-शस्त्र से ही कोई मारा जा सकता है । हम तो आपके अभाव में मरी जा रही हैं । आपको सोचना

चाहिए कि आप स्त्रियों के वध के लिए किस प्रकार उत्तरदायी हैं । हम आपके प्रति सतत कृतज्ञ हैं, क्योंकि आपने हमारी कई बार रक्षा की है- आपने यमुना के विषैले जल से, कालिय सर्प से, बकासुर से, इन्द्र की मूसलाधार वर्षा तथा उसके कोप से, दावाग्नि से तथा अन्य अनेक दुर्घटनाओं से हमें बचाया हैं आप सबसे महान तथा सर्वशक्तिमान हैं । यह आश्चर्य की बात है कि आपनें हमें अनेक संकटों से बचाया हैं, किन्तु हमें आश्चर्य हो रहा है कि इस अवसर पर आप हमारी उपेक्षा क्यों कर रहे हैं । हे सखा! हे कृष्ण! हमें भलीभाँति ज्ञात है कि आप माता यशोदा अथवा नन्द महाराज के पुत्र नहीं हैं । आप तो श्रीभगवान् तथा समस्त जीवों के परमात्मा है । आप अपनी अहैतुकी कृपा से इस संसार की रक्षा करने के लिए ब्रह्माजी की प्रार्थना पर अवतरित हुए हैं । यह तो आपकी कृपा ही है कि आप यदुवंश में प्रकट हुए हैं । हे यदुकुल श्रेष्ठ! यदि कोई इस भौतिक जगत से डर कर आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता है, तो आप कभी उसकी रक्षा करने से इनकार नहीं करते । आपकी चाल रमणीक है तथा आप स्वतंत्र हैं आप एक हाथ से देवी लक्ष्मी का स्पर्श करते हें और दूसरे में कमल का फूल लिए रहते हैं । यह आपका अलौकिक स्वरूप हैं । अतः आप कृपा करके हम सबके समक्ष आइयें और हाथ में कमलपुष्प धारण करके आशीर्वाद दीजिए ।

"हे कृष्ण! आप वृन्दावनवासियों के समस्त भयों के हर्ता हैं । आप परम शक्तिमान वीर हैं और हम जानती है कि आप अपनी सुन्दर मुस्कान से ही अपने भक्तों के वृथा गर्व को तथा हम जैसी स्त्रियों के गर्व को भी खण्डित कर सकते हैं । हम मात्र आपकी दासियाँ हैं, अतः कृपा करके अपना कमल सरीखा सुन्दर मुखडा दिखाकर हमें अंगीकार कीजिए ।

"हे कृष्ण! वास्तव में हम सब आपके चरणकमलों का स्पर्श पाकर अतयन्त कामुक हो उठी हैं । आपके चरणकमल उन भक्तों के सभी पापों को ध्वंस कर देते हैं, जो आपकी शरण में आये हैं । आप इतने

दयालु हैं कि साधारण पशु तक आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करते है । आपके चरणकमल लक्ष्मीजी के भी निवास स्थान है फिर भी आप ने उनसे कालिय नाग के फनों पर नृत्य किया । अब हम प्रार्थना करती हैं कि आप हमारे वक्षस्थलों पर अपने चरणकमल रखें जिससे आपका स्पर्श पाने की हमारी काम-इच्छा शान्त हों ।

"हे प्रभु! आपके कमल जैसे नेत्र कितने सुन्दर तथा आकर्षक हैं! आपके मीठे वचन इतने मोहक हैं कि बडे से बडे विद्वान भी आकर्षित होकर आप पर प्रसन्न हो जाते हैं । हम भी आपकी वाणी तथा आपके मुख एवं नेत्रों की सुन्दरता से आकृष्ट हैं । अतः आप हमें अपने अमृत सदृश चुम्बन से संतुष्ट कीजिए । आपके द्वारा बोले गए शब्द अथवा आपके कार्यकलापों का वर्णन करने वाले शब्द अमृत से युक्त है और आपके शब्दों के श्रवणमात्र से मनुष्य इस संसार की प्रज्जवलित अग्नि से बच सकता हैं । ब्रह्मा तथा शिव जैसे महान देवता सदा आपकी वाणी की महिमा का गुणगान करते रहते हैं । वे ऐसा इस भौतिक जगत के जीवों के पापकर्मों के उच्छेदन के लिए ही करते हैं । आपके दिव्य शब्दों के श्रवण मात्र से मनुष्य पुण्यकर्म करने के स्तर तक उठ जाता है । वैष्णवों के लिए तो आपके शब्द दिव्य आनन्द देने वाले है और जो साधु पुरुष आपके दिव्य संदेश को सारे संसार में वितरित करने में लगे हैं, वे उत्तम कोटि के दानी व्यक्ति हैं ।" (इसकी पुष्टि रूप गोस्वामी द्वारा होती है जब उन्होंने भगवान् चैतन्य को अत्यन्त दानली अवतार बताया, क्योंकि वे सारे संसार में कृष्ण के शब्दों तथा कृष्ण के प्रेम का निःशुल्क वितरण कर रहे थे ।)

गोपियाँ कहतीं रहीं, "हे कृष्ण! आप बडे चतुर हैं । आप कल्पना करें कि हम सब आपकी चातुरीपूर्ण हँसी, आपकी मोहकर चितवन, वृन्दावन में अपने साथ आपका विचरण तथा आपके शुभ ध्यान को स्मरण कर करके कितनी दुःखी हैं । आपकी एकान्त वार्ता हृदय को गुदगुदाने

वाली होती थी । अब हम आपके व्यवहार को स्मरण करके संतप्त हैं । कृपया हमारी रक्षा करें । हे कृष्ण! आपको भलीभाँति ज्ञात है कि जब आप वृन्दावन गाँव से गौवें चराने के लिए जंगल में जाते थें, तो हम कितनी उदास हो जाती थी । हम यह सोचकर कितनी दुःखी है कि आपके कोमल चरणकमलों में शुष्क कुश तथा जंगल के कंकड़ गड़ रहे होंगे । हम आपके प्रति इतनी आसक्त हैं कि निरन्तर आपके चरणकमलों का ही चिन्तन करती रहती है ।

"हे कृष्ण! जब आप पशुओं सहित चरागाह से लौटते हैं, तो हम आपके मुखमंडल को घुँघराले बालों से ढका तथा गोरज से सना देखती हैं । हम आपके मन्द मुस्कान-मुक्त चेहरे को देखतीं हैं, तो आपके समागम से आनन्द प्राप्त करने की हमारी इच्छा बढ़ जाती है । हे कृष्ण! आप परम प्रेमी हैं और शरणागतों को सदा आश्रय देने वाले हैं आप सबों की इच्छापूर्ति करने वाले हैं, आपके चरणकमलों की पूजा ब्रह्माण्ड के स्रष्टा ब्रह्माजी भी करते हैं । जो भी आपके चरणकमलों की पूजा करता हैं, उसे आप वरदान करते हैं । अतः आप हम पर प्रसन्न हों और हमारे वक्षस्थलों पर अपने चरण रखकर इस दुःख से हमें उबारें । हे कृष्ण! हम उस चुम्बन की याचना कर रही हैं, जो आप अपनी बाँसुरी को भी प्रदान करते हैं आपकी बाँसुरी की ध्वनि सारे संसार को और हमारे हृदय को भी मोह लेती है । अतः आप कृपा करके लौट आएँ और अपने अमृत-मुख से हमारा चुम्बन लें ।"

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "गोपी गीत" नामक इकतीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 32
कृष्ण लौटकर गोपियों के पास आते हैं

अन्ततोगत्वा जब कृष्ण पुनः गोपियों के मध्य प्रकट हुए, तो वे अतीव सुन्दर लग रहे थे, जो समस्त ऐश्वर्यों से युक्त व्यक्ति के अनुकूल था । ब्रह्म-संहिता में कहा गया है-आनन्दचिन्मयरसपतिभाविताभिः-कृष्ण अकेले विशेष सुन्दर नहीं लगते, किन्तु जब उनकी शक्ति-विशेषतः राधारानी के रूप में उनकी ह्लादिनी शक्ति विस्तार करती है, तो वे अत्यन्त भव्य प्रतीत होते है । शक्तिरहित परम सत्य की पूर्णता की मायावादी विचारधारा अपूर्णज्ञान के कारण है । वस्तुतः अपनी विभिन्न शक्तियों के प्रदर्शन विभिन्न शक्तियों के प्रदर्शन के बिना परम सत्य पूर्ण नहीं हैं । आनन्दचिन्मय-रस का अर्थ है कि उनका शरीर नित्य आनन्द तथा ज्ञान का दिव्य स्वरूप है । कृष्ण विभिन्न शक्तियों से निरन्तर घिरे रहते हैं, अत5 वे पूर्ण तथा सुन्दर है । हमें ब्रह्म-संहिता तथा स्कन्द पुराण से पता चलता है कि कृष्ण निरन्तर हजारों लक्ष्मियों से घिरे रहते हैं । ये गोपियाँ लक्ष्मियाँ ही हैं जिनके साथ कृष्ण यमुना के तट पर हाथ में हाथ डाल कर घूमते थें ।

स्कन्द पुराण के अनुसार हजारों गोपियों में से 16000 गोपियाँ प्रमुख हैं, और इनमें से भी 108 गोपियाँ विशेषरूप से विख्यात हैं । इन 108 में से भी 8 अत्यधिक प्रधान हैं; इन आइ में से राधारानी तथा चन्द्रावली प्रमुख हैं और इन दो गोपियों में से राधारानी सर्वोपरि है ।

जब कृष्ण ने यमुना तट पर स्थित जंगल में प्रवेश किया, तो चाँदनी से आस-पास का सारा अंधकार दूर हो गया । ऋतु के अनुकूल कुन्द तथा कदम्ब फूल खिल रहे थे और मन्द वायु उनकी सुगन्ध को फैला रही थी । सुगन्धि को मधु समझ कर वायु के साथ मधुमक्खियाँ भी मँडरा रहीं थीं

। गोपियों ने नर्म बालू को बराबर किया और उसके ऊपर वस्त्र रखकर कृष्ण के बैठने के लिए गुदगुदा आसन तैयार कर दिया ।

वहाँ पर जितनी गोपियाँ एकत्र थीं लगभग वे सब वेदान्ती थीं पूर्वजन्म में भगवान् रामचन्द्र के अवतार के समय ये वैदिक विद्वान थीं जिन्होंने माधुर्य प्रेम में भगवान् रामचन्द्र के सान्निध्य की इच्छा की थी । रामचन्द्र जी ने उन्हें वर दिया था कि वे भगवान् कृष्ण के अवतार पर वे उपस्थित होगी और वे उनकी इच्छाओं की पूर्ति करेंगें । कृष्ण के अवतार के समय इन वैदिक विद्वानों ने वृन्दावन में तरुण गोपियों के रूप में जन्म लिया और अपने पूर्वजन्म की इच्छापूर्ति के लिए उन्हें कृष्ण का सान्निध्य प्राप्त हुआ । उनका चरम मन्तव्य प्राप्ता हो चुका था और वे इतनी प्रसन्न थीं कि उन्हें और किसी वस्तु की इच्छा नहीं रह गई थी । इसकी पुष्टि भगवद्गीता में हुई हैं-यदि किसी को श्रीभगवान् प्राप्त हो जाते हैं, तो फिर उसे किसी प्रकार की इच्छा नहीं होती । जब गोपियों को कृष्ण की संगति प्राप्त हो गई, तो उनके सारे दुःख तो दूर हुए ही, साथ ही कृष्ण के अभाव में जितना विलाप था उससे भी मुक्ति मिल गई । उन्हें लगा कि उन्हें किसी प्रकार की इच्छा नहीं है । कृष्ण की संगति से परम तुष्ट होकर उन्होंने भूमि पर अपने वस्त्र फैला दिये । ये वस्त्र रेशमी थे और उनके वक्षस्थलों पर लेपित लाल कुंकुम से सने थे । उन्होंने बडी सावधानी से कृष्ण के लिए आसन बिछाया । कृष्ण तो उनके जीवन-धन थे, अतः उन्होंने उनके लिए अत्यन्त सुखदायक आसन बनाया ।

गोपियों के बीच इस आसन पर बैठे कृष्ण और अधिक सुन्दर लगने लगे । यद्यपि शिव, ब्रह्मा, यहाँ तक कि शेष तथा अन्य बड़े-बड़े योगी अपने अन्तःकरण में कृष्ण का ध्यान धरते हैं, किन्तु यहाँ पर गोपियाँ साक्षात् कृष्ण को अपने समक्ष अपने वस्त्रों पर आसीन देख रही थीं । गोपी-समाज में कृष्ण अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे । गोपियाँ तीनों लोकों की सर्वाधिक सुन्दर रमणियाँ थीं और वे कृष्ण के चारों ओर समवेत थीं ।

कृष्ण प्रत्येक गोपी के पास बैठे थे । यहाँ यह प्रश्न किया जा सकता है कि ऐसा उन्होंने कैसे किया इस श्लोक में एक महत्वपूर्ण शब्द है-ईश्वर! जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है-ईश्वरः सर्वभूतानाम् । ईश्वर जन-जन के हृदय में स्थित परमात्मा का सूचक है । कृष्ण ने भी गोपियों की इस मंडली में परमात्मा रूप में अपनी इस विस्तार शक्ति का प्रदर्शन किया । कृष्ण प्रत्येक गोपी के निकट आसीन थे, किन्तु दूसरी गोपियों से अलक्षित थे । कृष्ण गोपियों पर इतने दयालु थे कि उनके हृदयों में विराजमान होकर योगध्यान में अवगम्य होने के बजाय वे गोपियों के निकट आसीन हो गए । अपने आपको बाहर आसीन करके उन्होंने गोपियों पर विशेष कृपा की, क्योंकि वे सारी सृष्टि की चुनी हुई सुन्दरियाँ थीं । अपने प्राणप्यारे को पाकर गोपियाँ अपनी भौंहे मटका कर उन्हें प्रसन्न करने लगीं और अपना क्रोध छिपाकर हँसने लगीं । कुछ गोपियाँ उनके चरणकमलों को अपनी गोद में लेकर सहलाने लगीं और हँस-हँस कर अपना गौण क्रोध इस प्रकार प्रकट करने लगीं, "हे कृष्ण! हम वृन्दावन की सामान्य स्त्रियाँ हैं और वैदिक ज्ञान के विषय में अधिक नहीं जानतीं कि क्या सही हैं और क्या गलत । अतः हम आपसे प्रश्न कर रही हैं और आप परम विद्वान हैं, अतः आप सही-सही उत्तर दे सकते हैं । हम देखती हैं कि प्रेमी पुरुषों की तीन श्रेणियाँ हैं । एक श्रेणी तो केवल प्रेम ग्रहण करती हैं, दूसरी अनुकूल होकर प्रतिदान करती हैं, भले ही प्रेमिका विपरीत हो और तीसरी न तो अनुकुल होती हैं न ही प्रतिकूल । अतः आप इन तीनों में से किसे पसन्द करते हैं या किसे सत्य मानते हैं?"

प्रत्युत्तर में कृष्ण ने कहा,"सखियो! जो लोग प्रेम व्यापार में केवल प्रतिदान करना जानते हैं, वे व्यापारी तुल्य हैं । वे उतना ही देना जानते हैं जितना उन्हें प्राप्त होता हैं । अतः यहाँ पर प्रेम का प्रश्न ही नहीं उठता । यह तो मात्र स्वार्थपूर्ण अथवा स्वकेन्द्रित व्यापार है-भले ही इन रंचभर प्रेम भी न हो, वे व्यापारियों से श्रेष्ठ हैं । दूसरी श्रेणी के लोग पहल श्रेणी से

श्रेष्ठ हैं, जो दूसरे पक्ष से विरोध पाने पर भी प्रेम करते हैं जब माता-पिता अपनी सन्तानों को उनकी उपेक्षा के बावजूद प्रेम करते हैं, तो वह एकनिष्ठ प्रेम है । तीसरी श्रेणी के लोग न तो प्रतिदान करते हैं, न उपेक्षा । इनकी दो उपश्रेणियाँ हैं । एक आत्मतुष्ट रहती है, जिसे किसी के प्रेम की आवश्यकता नहीं है; ये लोग आत्माराम कहलाते हैं अर्थात वे भगवान् के विचारों में ही लीन रहते हैं, अतः उन्हें इसकी परवाह नहीं रहती कि कोई उन्हें प्रेम करता है अथवा नहीं । किन्तु दूसरी उपश्रेणी कृतघ्नों की है । ये लोग अपने गुरुजनों के प्रति विद्रोह करते हैं । उदाहरणार्थ, एक पुत्र अपने प्रिय माता-पिता से सारी वस्तुएँ प्राप्त करके भी कृतघ्न होकर प्रतिदान नहीं करता । इस श्रेणी के लोग सामान्यतः गुरुद्रुह कहलाते है जिसका अर्थ है कि वे अपने माता-पिता अथवा गुरु की कृपा प्राप्त करके भी उनकी उपेक्षा करते हैं ।"

इस प्रकार कृष्ण ने गोपियों के उन प्रश्नों का भी उत्तर दे दिया, जो अप्रत्यक्ष रूप में उनसे सम्बन्धित थे कि उन्होंने गोपियों के व्यवहार को ठीक से नहीं समझा । उत्तर में कृष्ण ने कहा कि भगवान् रूप में वे आत्मतुष्ट (आत्माराम) हैं । उन्हें किसी के प्रेम की आवश्यकता नहीं है, किन्तु साथ ही उन्होंने यह भी कहा कि वे कृतघ्न नहीं हैं ।

कृष्ण ने आगे कहा,"सखियो! कदाचित् मेरे शब्दों तथा कार्यों से तुम्हें पीड़ा पहुँची हो, किन्तु तुम्हें ज्ञात हो कि कभी-कभी मैं अपने प्रति भक्तों द्वारा किये गए कार्यों का प्रत्युत्तर नहीं देता । मेरे भक्त मुझ पर अत्यधिक आसक्त हैं, किन्तु कभी-कभी मैं ठीक से उनके भावों का प्रत्युत्तर नहीं देता जिससे मेरे प्रति उनका प्रेम और बढ़े । यदि मैं सरलता से उपलब्ध हो जाऊँ, तो वे सोच सकते हैं कि कृष्ण इतने सर्वसुलभ हैं । अतः मैं कभी-कभी प्रत्युत्तर नहीं देता । यदि किसी पुरुष के पास धन न हो, किन्तु कुछ काल बाद यदि वह कुछ सम्पत्ति का संचित कर ले और तब यह सम्पत्ति नष्ट हो जायें तो वह इस नष्ट हुई सम्पत्ति का चिन्तन चौबीसों घंटे

करेगा । इसी प्रकार अपने भक्तों के प्रेम को बढ़ाने के उद्देश्य से कभी-कभी मैं उनसे ओझल हुआ प्रतीत होता हूँ और वे मुझे भुलाने के बजाय मेरे प्रति अपनी प्रेमानुभूति बढ़ी हुई अनुभव करते हैं । प्रिय सखियो! तुम कभी यह मत सोचना कि मैं तुम्हारे साथ सामान्य भक्तों जैसा व्यवहार करता रहा हूँ । मैं ही जानता हूँ कि तुम क्या हो । तुमने सारी सामाजिक तथा धार्मिक मर्यादाओं का त्याग किया है । तुमने माता-पिता से अपने सारे सम्बन्ध तोड लिये हैं । तुम सामाजिक बन्धनों तथा धार्मिक मर्यादा की परवाह न करके मेरे पास आईं और मुझे प्यार किया, अतः मैं तुम लोगों का अत्यन्त कृतज्ञ हूँ इसलिए मैं तुम्हें सामान्य भक्तों के रूप में नहीं मानता । तुम यह मत सोचो कि मैं तुमसे दूर था । मैं तुम्हारे पास ही था । मैं तो यही देख रहा था कि मेरी अनुपस्थिति में तुम मेरे लिए कितनी चिन्तित रहती हो । अतः कृपा करके मुझमें दोष न निकालो । चूँकि तुम लोग मुझे इतना प्रिय मानती हो, अतः यदि मैंने कोई त्रुटि की हो तो मुझे क्षमा कर दो, मैं तुम्हारे अविरत प्रेम से उऋण नहीं हो सकता, चाहे मेरा जीवन अवधि स्वर्ग के देवताओं जितनी ही क्यों न हो । तुम्हारे ऋण से उऋण होना या तुम्हारे प्रेम के प्रति कृतज्ञता प्रकट कर पाना असम्भव है, अतः तुम लोग अपने पुण्यकार्यों से संतुष्ट होओ । तुम लोगों ने मेरे प्रति आदर्श अनुराग का प्रदर्शन किया है और पारिवारिक सम्बन्धों से उत्पन्न सारी कठिनाइयों को पार किया है । कृपया अपने उच्च आदर्श चरित्र से प्रसन्न होओं क्योंकि तुम्हारे ऋण को चुका पाना मेरे लिए सम्भव नहीं हैं ।"

वृन्दावन के भक्तों द्वारा प्रकट यह आदर्श भक्तिभाव भक्ति का विशुद्धतम रूप है । प्रामाणिक शास्त्रों का आदेश है कि भक्ति को अहैतुक तथा अप्रतिहत होना चाहिए । इसका अर्थ यह हुआ कि कृष्णभक्ति को किसी राजनीतिक या धार्मिक मर्यादा से नहीं आंका जा सकता । भक्ति सदा दिव्य होती है । गोपियों ने कृष्ण के प्रति विशेष रूप

से शुद्ध भक्ति प्रदर्शित की यहाँ तक कि कृष्ण स्वयं उनके ऋणी बने रहें । अतः भगवान् चैतन्य ने कहा है कि वृन्दावन में गोपियों द्वारा प्रदर्शित भक्ति भगवान् तक पहुँचने की अन्य समस्त विधियों को लाँघ गई थी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "कृष्ण लौटकर गोपियों के पास आते हैं" नामक बत्तीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 34
विद्याधर मोक्ष तथा शंखाचूड़ वध

एक बार नन्द आदि ग्वालों ने शिवरात्रि मनाने के लिए अम्बिकावन जाने की इच्छा प्रकट की । रासलीला शरद्ऋतु में सम्पन्न हुई थी और उसके बाद दूसरा बड़ा उत्सव होली या दोलयात्रा होता हैं । दोलयात्रा तथा रासलीला के मध्य एक महत्वपूर्ण उत्सव मनाया जाता है, जिसे शिवरात्रि कहते हैं, जो शिवजी के भक्तों या शैवों द्वारा सम्पन्न की जाती हैं । किन्तु कभी-कभी वैष्णव भी इस उत्सव को मनाते हैं, क्योंकि वे शिवजी को परम वैष्णव मानते हैं । किन्तु भक्तों या कृष्ण के भक्तों द्वारा शिवरात्रि का यह समारोह नियमित रूप से नहीं मनाया जाता । ऐसी परिस्थिति में श्रीमद्भागवत में बताया गया है कि नन्द महाराज समेत ग्वालो ने "एक बार इच्छा की ।" इसका यही अर्थ होता है कि वे शिवरात्रि उत्सव को नियमित रूप से नहीं मनाते थे, किन्तु एक बार वे उत्सुकतावश अम्बिकावन जाने के इच्छुक हुए । अम्बिकावन गुजरात प्रदेश में कहीं पर हैं । कहा जाता है कि यह सरस्वती नदी के तट पर स्थिति है, किन्तु गुजरात प्रदेश में सरस्वती नाम की कोई नदी नहीं है, वहाँ की एक मात्र नदी साबरमती है । भारत के सारे महान तीर्थस्थान गंगा, यमुना, सरस्वती,

नर्मदा, गोदावरी, कावेरी आदि उत्तम नदियों के तट पर स्थिति हैं । अम्बिकावन सरस्वती नदी के तट पर स्थित था और सारे ग्वाले तथा नन्द महाराज वहाँ गए ।

उन्होंने शिवजी तथा अम्बिका की मूर्तियों की पूजा अत्यन्त भक्तिभाव से प्रारम्भ कर दीं । यह सामान्य प्रथा है कि जहाँ कभी-भी शिवजी का मन्दिर होता है, वहीं अम्बिका (दुर्गा) का भी मन्दिर होता है क्योंकि अम्बिका शिवजी की पत्नी हैं और स्त्रियों में परम पतिव्रता हैं । वे अपने पति के संग से पृथक् नहीं रहतीं । अम्बिकावन पहुँचकर वृन्दावन के ग्वालों ने सर्वप्रथम सरस्वती नदी में स्नान किया । यदि कोई किसी तीर्थस्थान पर जाता है, तो उसका पहला कर्तव्य है कि वह स्नान करे और कभी-कभी लोग अपना सिर भी मुँड़ाते हैं । यह पहला कार्य होता है । स्नान के बाद लोगों के श्रीविग्रहों की पूजा की और पवित्र स्थानों में दान दिया ।

वैदिक प्रथा के अनुसार, दान ब्राह्मणों को दिया जाता है । वैदिक शास्त्रों में कहा गया है कि केवल ब्राह्मण तथा संन्यासी ही दान ग्रहण कर सकते हैं । वृन्दावन के ग्वालों ने ब्राह्मणों को स्वर्णाभूषणों तथा सुन्दर हारों से सज्जित गौवें दान कीं । ब्राह्मणों को दान इसलिए दिया जाता है, क्योंकि वे कोई व्यापार नहीं करते । उनसे आशा की जाती है कि वे भगवद्गीता में वर्णित ब्राह्मण-कर्मों में लगे रहें । ये हैं-उन्हें अत्यन्त विद्वान होना चाहिए और तपस्या करनी चाहिए । उन्हें न केवल स्वयं विद्वान होना चाहिए अपितु अन्यों को भी शिक्षा देनी चाहिए । ब्राह्मणों को केवल ब्राह्मण ही नहीं होना चाहिए, उन्हें अन्य ब्राह्मण भी उत्पन्न करने चाहिए । यदि कोई व्यक्ति किसी ब्राह्मण का शिष्यत्व स्वीकार करने पर राजी हो जाता है, तो उसे भी ब्राह्मण बनने का अवसर प्रदान किया जाता है । ब्राह्मण सदा ही भगवान् विष्णु की पूजा करने में लगा रहता है । अतः ब्राह्मण पर प्रकार के दान स्वीकार करने में योग्य माने जाते हैं । किन्तु यदि ब्राह्मणों को

अधिक दान प्राप्त होता हे, तो उन्हें इसे विष्णु के सेवार्थ वितरित कर देना होता है । अतः वैदिक शास्त्रों में ब्राह्मणों को दान देने की संस्तुति है क्योंकि ऐसा करने से भगवान् विष्णु तथा सारे देवता प्रसन्न होते हैं ।

सारे यात्री स्नान करते हैं, श्रीविग्रह को पूजते हैं और दान देते हैं । उन्हें कम से कम एक दिन उपवास करना होता है । उन्हें चाहिए कि वे तीर्थयात्रा के स्थल पर जाँय और वहाँ पर कम से कम तीन दिन तक रुकें । पहला दिन उपवास रखने में बीत जाता है और रात में थोड़ासा जल पिया जाता है, क्योंकि जल से व्रत भंग नहीं होता ।

नन्द महाराज समेत सारे ग्वालों ने सरस्वती के तट पर ही रात बिताई । उन्होंने दिन भर उपवास रखा और रात्रि में थोड़ा-सा जल पिया । किन्तु जब वे विश्राम कर रहे थे, तो पास के जंगल से एक विशाल सर्प निकल कर उनके समक्ष प्रकट हुआ और भूख के मारे नन्द महाराज को निगलने लगा । नन्द असहाय होकर चिल्लाने लगे,"बेटे कृष्ण! आओ और इस संकट से मुझे उबारो । यह सर्प मुझे निगलने जा रहा है ।" जब नन्द ने टेर लगाई, तो सारे ग्वाले जग गये और उन्होंने सारी घटना देखी । उन्होंने तुरन्त जलते लट्ठे उठा लिये और वे उन्हीं से सर्प को मारने लगे, किन्तु तब भी सर्प नन्द महाराज को निगलना नहीं छोड़ रहा था ।

उस समय कृष्ण उस स्थान पर प्रकट हुए और सर्प को अपने चरणकमलों से छुआ । पाँव का स्पर्श पाते ही उसने अपना रंगता हुआ शरीर त्याग दिया और एक अत्यन्त सुन्दर देवता के रूप में प्रकट हुआ जिसका नाम विद्याधर था । उसका शरीर इतना सुन्दर था कि वह पूजा-योग्य लगता था । उसके शरीर से कान्ति तथा तेज फूट रहा था और वह सोने का हार पहने था । उसने कृष्ण को नमस्कार किया और अत्यन्त विनीत भाव से उनके समक्ष खड़ा हो गया । तब कृष्ण ने उस देव से पूछा, "तुम अत्यन्त सुन्दर देव प्रतीत होते हो जिस परल क्ष्मी जी की कृपा हैं । तुमने ऐसा कौनसा घृणित कार्य किया कि तुम्हें सर्प का शरीर मिला?"

तब उस देव ने अपने पूर्वजन्म की कथा कहनी प्रारम्भ की,"हे भगवान्! अपने पूर्वजन्म में मेरा नाम विद्याधर था और मैं सारे संसार में अपनी सुन्दरता के लिए विख्यात था । विख्यात व्यक्ति होने के कारण मैं अपने विमान में सर्वत्र विचरण करता रहता था । विचरण करते हुए मुझे अंगिरा नामक ऋषि दिखे । वे अत्यन्त कुरूप थे और चूँकि मुझे अपनी सुन्दरता का गर्व था, अतः मैंने उनका उपहास किया । इसी पापकर्म के कारण ऋषि ने मुझे सर्प बनने का शाप दे डाला ।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि कृष्ण की कृपा के पहले मनुष्य सदैव प्रकृति के गुणों के अधीन रहता है, चाहे वह भौतिक दृष्टि से कितना ही ऊपर क्यों न उठा हो विद्याधर भौतिक दृष्टि से ऊपर उठा हुआ देवता था और वह अत्यन्त सुन्दर था उसको अच्छा भौतिक पद प्राप्त था और वह विमान से सर्वत्र विचरण कर सकता था । फिर भी उसे अगले जन्म में सर्प बनने का शाप मिला । कोई भी भौतिक दृष्टि से ऊपर उठा व्यक्ति, यदि वह सावधानी नहीं बरतता, घृणित निम्न योनि में जाने के लिए शापित हो सकता है । लोगों की यह भ्रान्त धारणा है कि एक बार मनुष्य देह प्राप्त करके कोई नीचे नहीं गिरता । विद्याधर स्वयं बतलाता है कि यद्यपि वह देवता था, किन्तु उसे सर्प बनना पड़ा । किन्तु जब कृष्ण ने अपने चरणकमलों से उसका स्पर्श कर दिया, तो वह तुरन्त कृष्णभावनामृत को प्राप्त हो गया । किन्तु उसने यह स्वीकार किया कि पूर्वजन्म में वह सचमुच पापी था । कृष्णभावना-भावित पुरुष जानता है कि वह कृष्ण का दासानुदास है; वह अत्यन्त तुच्छ है और जो कुछ भी सद्कार्य वह करता है, वह सब कृष्ण तथा गुरु की कृपा के कारण होता हैं ।

वह देव विद्याधर श्रीकृष्ण से बातें करता रहा, "अंगिरा के कुरूप स्वरूप का उपहास उड़ाया । उन्होंने मेरे पाप के लिए शाप दे दिया और मैं सर्प बन गया । अब मैं सोचता हू कि उस ऋषि का शाप नहीं, अपितु मेरे लिए महान वरदान था । यदि उन्होंने शाप न दिया होता, तो मुझे सर्प

का शरीर न धारण करना पड़ता और आपके चरणकमलों की ठोकर न खाई होती और इस प्रकार सारे भौतिक कल्मष से मुक्त न हो पाता ।"

इस संसार में चार चीजें अत्यन्त मूल्यवान हैं-उत्तम कुल में जन्म लेना, धनी होना, विद्वान होना तथा सुन्दर होना । ये सब भौतिक सम्पदा समझे जाते हैं । दुर्भाग्यवश, कृष्णभावनामृत के बिना, ये भौतिक सम्पदाएँ कभी-कभी पाप एवं अपयश के कारण बन जाती हैं । विद्याधर देवता होते हुए भी और सुन्दर शरीर वाला होकर भी गर्व के कारण सर्प का शरीर प्राप्त करने के शाप से शापित हुआ । अतः इस घटना से हमें यह शिक्षा मिल सकती हैं कि जिन लोगों को अपनी भौतिक सम्पदा का अत्यन्त गर्व होता है, और ये दूसरों के प्रति शत्रु-भाव रखते हैं, उन्हें सर्प का शरीर मिलताा है । सर्प सर्वाधिक क्रूर तथा ईर्ष्यालु जीव माना जाता हैं, किन्तु जो लोग मनुष्य होकर अन्यों से ईर्ष्या करते हैं, वे सर्पों से भी अधिक दोषी समझे जाते हैं । सर्प को मंत्रों तथा औषधियों के बल पर दमित या नियंत्रित किया जा सकता है, किन्तु जो ईर्ष्यालु है, उसे कोई भी वश में नहीं ला सकता ।

विद्याधर ने आगे कहा, "हे प्रभु! अब मैं सोचता हूँ कि समस्त पापकर्मों से मुक्त होकर अपने घर स्वर्ग वापस जाने के लिए आपकी अनुमति प्राप्त कर लूँ ।" यह प्रार्थना सूचित करती है कि जो लोग सकाम कर्मों में अनुरक्त हैं और उच्च लोकों में जाकर सुख भोगना चाहते हैं, वे श्रीभगवान् में यह भी कहा गया है कि अल्पज्ञ लोग भौतिक लाभ की कामना करते रहते हैं, फलतः तरह-तरह के देवताओं को पूजते हैं, किन्तु वास्तव में वे भगवान् विष्णु या कृष्ण की अनुमति से ही देवताओं से वरदान प्राप्त करते हैं । देवताओं में किसी प्रकार का लाभ या वरदान देने की शक्ति नहीं होती । यदि किसी को भौतिक वर माँगने ही हैं, तो वह भगवान् कृष्ण की पूजा करके उनसे माँग सकता है । कृष्ण भौतिक वरदान देने में भी सक्षम हैं । किन्तुएक देवता से भौतिक वरदान की याचना करने

तथा कृष्ण से याचना करने में अन्तर हैं । ध्रुव महाराज ने भौतिक वरदान के लिए भगवान् की पूजा की थी, किन्तु जब उन्हें वास्तव में भगवान् की कृपा प्राप्त हुई और उनके दर्शन हुए, तो वे इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने कोई भी भौतिक वरदान लेना अस्वीकार कर दिया । बुद्धिमान व्यक्ति कभी-भी न तो देवताओं की कृपा की आकांक्षा करता है, न उन्हें पूजता है । वह सीधे कृष्णभावनाभावित बन जाता है और यदि उसके मन में किसी भौतिक लाभ की कामना होती भी है, तो वह देवताओं से न माँग कर कृष्ण से माँगता है ।

विद्याधर, जो स्वर्ग वापस जाने के लिए कृष्ण की अनुमति की प्रतीक्षा कर रहा था, बोला, "आपके पादस्पर्श से मैं सभी प्रकार की भौतिक पीड़ाओं से मुक्त हो गया हूँ । आप योगेश्वर हैं । आप आदि श्रीभगवान् हैं । आप समस्त भक्तों के स्वामी हैं । आप स्वर्ग के स्वामी हैं, अतः मैं आपकी अनुमति चाहता हूँ । आप मुझे पूर्णतः शरणागत बना लें । मैं भली-भाँति जानता हूँ कि जो आपके पवित्र नाम का निरन्तर जप करता हैं, वह समस्त पापों के फलों से मुक्त हो जाता है और जिन लोगों को साक्षात् आपका चरणस्पर्श प्राप्त हो वे तो निश्चित रूप से मुक्त हो जाते हैं । अतः मेरा दृढ़ विश्वास है कि आपके दर्शन से तथा चरणस्पर्श से मैं ब्राह्मण-शाप से मुक्त हूँ ।"

इस प्रकार विद्याधर को कृष्ण से अपने घर स्वर्गलोक जाने की अनुमति प्राप्त हो गई । इस अनुमति को प्राप्त करने के बाद उसने भगवान् की परिक्रमा की और प्रणाम करके वह अपने स्वर्गधाम को चला गया । इस प्रकार नन्द महाराज भी सर्प के द्वारा निगले जाने से बच गए ।

सारे ग्वाले शिव तथा अम्बिका का पूजन करने के पश्चात् वृन्दावन लौटने की तैयारी करने लगे । लौटते समय उन्हें कृष्ण के अद्‌भुत कार्यकलाप याद आते रहें । विद्याधर की मुक्ति का बखान करने से वे

कृष्ण के और अधिक आसता हो गए वे तो शिव तथा अम्बिका पूजन के लिए आये थे, किन्तु हो गए वे कृष्ण के प्रति अधिकाधिक अनुरक्त हो गए । इसी प्रकार गोपियाँ भी काम्यायनी का पूजन करके कृष्ण के प्रति अधिकाधिक अनुरक्त हुई थीं । भगवद्गीता में कहा गया है कि जो लोग ब्रह्मा, शिव, इन्द्र तथा चन्द्र जैसे देवताओं की पूजा किसी स्वार्थ से करते हैं, वे अल्पज्ञ हैं और वे जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूल गए हैं । किन्तु वृन्दावन के ग्वाले सामान्य व्यक्ति न थे । उन्होंने जो कुछ किया कृष्ण के लिए किया । यदि कोई ब्रह्मा तथा शिव की पूजा कृष्ण के प्रति अनुराग बढ़ानके लिए करता है, तो वह मान्य है । किन्तु यदि कोई निजी लाभ के लिए देवताओं के पास जाता है, तो वह निन्दनीय है ।

इस घटना के पश्चात् एक सुहानी रात में कृष्ण तथा उनके अग्रज बलराम जो आकहयनीय रूप से शक्तिशाली हैं, दोनों ही वृन्दावन के जंगल में गए । उनके साथ ब्रजांगनाएँ भी थीं और वहाँ वे परस्पर मंगल मनाने लगे । व्रजांगनाएँ सुन्दर वस्त्रों से आभूषित थीं, वे चन्दन का लेप किए थीं और फूलों से सजी थीं । आकाश में चन्द्रमा चमक रहा था और उसके चारों ओर तारे टिमटिमा रहे थे । मन्द वायु बह रही थी जिसमें मल्लिका पुष्पों की सुगंध मिश्रित थी और भौंरे इस गन्ध के पीछे पागल हो रहे थे । इस मनोहर वातावरण में कृष्ण तथा बलराम दोनों मधुर स्वग में गाने लगे । बालाएँ उनकी स्वर-लहरी में ऐसी लीन हुईं कि वे अपनी सुधि-बुधि खो बैठीं, उनके केश खुल गए, वस्त्र शिथिल पड़ गऐ और उनकी मालाएँ पृथ्वी पर गिरने लगीं ।

जब वे इस प्रकार तल्लीन थीं और प्रायः मदान्ध थीं, तो कुबेर का एक असुर पार्षद वहाँ प्रकट हुआ । इस असुर का नाम शंखाचूड़ था क्योंकि इसके मस्तक पर शंख की आकृति की एक मणि थी । जिस प्रकार कुबेर के दो पुत्रों ने अपने ऐश्वर्य के मद में नारद की परवाह नहीं की थी, उसी प्रकार शंखाचूड़ अपने ऐश्वर्य से इतराया हुआ था । उसने

सोचा कि कृष्ण तथा बलराम सामान्य ग्वाले है, जो अनेक सुन्दर लड़कियों के साथ आनन्द मना रहे हैं । सामान्यतया भौतिक जगत में धनवान व्यक्ति सोचता है कि सुन्दर स्त्रियों का भोग उसे ही करना चाहिए । शंखाचूड़ भी यही सोच रहा था, क्योंकि वह कुबेर के धनाढ्य परिवार का था, अतः कृष्ण तथा बलराम को नहीं, अपितु उसे ही इतनी सुन्दर बालाओं का आनन्द लूटना चाहिए । अतः उसने उन पर आक्रमण करने का निश्चय किया । वह कृष्ण, बलराम तथा व्रजांगनाओं के समक्ष प्रकट हुआ और उन सुन्दर लड़कियों को उत्तर की ओर ले चला । कृष्ण तथा बलराम के होते हुए वह उनपर इस प्रकार रोब जमा रहा था मानो वह उनका स्वामी तथा पति हो । शंखाचूड़ द्वारा इस प्रकार अपहरण की जा रही व्रजबालाएँ रक्षा के लिए कृष्ण तथा बलराम का नाम ले-लेकर पुकारने लगीं । दोनों भाई अपने हाथ में सार की लट्ठ लेकर उसका पीछा करने लगे । वे गोपियों से कहते जा रहे थे, "डरना नहीं । हम इस असुर को दण्ड देने के लिए तुरन्त आ रहे हैं ।" और वे तुरन्त शंखासुर के पास पहुँच गए । जब शंखाचूड़ ने सोचा कि ये दोनों भाई अत्यन्त बलवान हैं, तो वह डर के मारे गोपियों को छोड़कर और अपनी जान लेकर भागा । किन्तु कृष्ण ने उसे जाने नहीं दिया । उन्होंने बलराम की गोपियाँ सौंप दीं और स्वयं जहाँ-जहाँ शंखाचूड़ भागा उसका पीछा करते रहे । कृष्ण जी उसके सिर के शंख सदृश मणि को लेना चाह रहे थे । थोडी दूरी तक पीछा करने के बाद उन्होंने उसे पकड़ लिया और अपनी मुठ्ठी से उसके सिर पर प्रहार करके उसे मार डाला । फिर उन्होंने वह मणि ले ली और वापस चले गए । उन्होंने समस्त व्रजांगनाओं की उपस्थिति में वह मणि अपने भाई बलराम को सौंप दी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "विद्याधर मोक्ष तथा शंखाचूड़ वध" नामक चौंतीसवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 35
गोपियो का वियोग

वृन्दावन की गोपियाँ कृष्ण के प्रति इतनी अनुरक्त थीं कि वे रात्रि के रासनृत्य मात्र से सन्तुष्ट नहीं हुईं । वे दिन में भी उनके सान्निध्य का रस लूटना चाहती थीं । जब कृष्ण अपने ग्वाल मित्रों तथा गौवों के साथ जंगल जाते, तो गोपियाँ शरीर से उनके साथ तो नहीं होती थीं, किन्तु उनके मन उन्हीं के साथ होते थे । मन के चले जाने पर वे वियोग (विरह) की प्रबल भावना से उनके संग का आनन्द ले सकती थीं । वियोग की इस प्रबल भावना को प्राप्त करना ही भगवान् चैतन्य तथा उनकी गुरु-परम्परा के गोस्वामियों का लक्ष्य रहा है । जब हम कृष्ण के शारीरिक सम्पर्क में नहीं होते उस समय हम गोपियों की भाँति वियोग की भावना द्वारा उनका सान्निध्य प्राप्त कर सकते हैं । कृष्ण का दिव्य रूप, गुण, लीलाएँ तथा उनके संगी उनसे एकाकार हैं । भक्ति के नौ प्रकार हैं । वियोगावस्था में कृष्ण की भक्ति करने से भक्त उच्चत्तम सिद्धि के पद को, जो गोपियों का पद है, प्राप्त कर सकते हैं ।

श्रीनिवासाचार्य द्वारा षड्गोस्वामियों की प्रार्थना में यह कहा गया है कि उन्होंने सरकारी नौकरी के वैभव तथा जीवन के राजसी ठाट को त्याग दिया और वृन्दावन चले गए जहाँ वे सामान्य साधुओं की भाँति द्वार-द्वार भिक्षा माँग कर रहने लगे । किन्तु उनमें गोपियों की वियोगावस्था का इतना प्राबल्य हुआ कि उन्हें प्रतिक्षण दिव्य आनन्द की प्राप्ति होने लगी । इसी प्रकार जब भगवान् चैतन्य जगन्नाथ पुरी में थे, तो वे राधारानी की

भूमिका (राधा-भाव) सम्पन्न करते हुए कृष्ण के वियोग का अनुभव करते रहे । जो लोग माध्व गौड़ीय सम्प्रदाय की गुरु-परम्परा के हैं उन्हें कृष्ण के वियोग का अनुभव सदा करना चाहिए, उनके दिव्य रूप की पूजा करनी चाहिए और उनके दिव्य उपदेशों, उनकी लीलाओं, गुणों तथा उनके पार्षदो-संगियों के विषय में बातें करनी चाहिए । इस से शिष्य भक्ति की पराकाष्ठा तक पहुँच जाएँगे । कृष्णभावनामृत की पूर्णता इसी में है कि भगवान् की सेवा में लगे रहकर निरन्तर वियोग का अनुभव किया जाए ।

गोपियाँ परस्पर कृष्ण के विषय में इस प्रकार चर्चा चलाती रहती थीं-एक सखी कहती, "सखियो! क्या तुम जानती हो कि जब कृष्ण भूमि पर शयन करते हैं, तो वे अपनी बाइर्द भुजा के बल लेटते हैं और उनका सिर उनकी बाईं भुजा पर टिका रहता है । वे कोमल अगुँलियों से बाँसुरी बजाते समय अपनी आकर्षक भौंहें मटकाते हैं और जो ध्वनि उत्पन्न होती है उस से इतना उत्तम वातावरण पैदा होती है कि उसे सुनकर स्वर्गलोक के निवासी अपनी पत्नियों तथा प्रेमिकाओं सहित आकाश मार्ग से जाते हुए अपने विमान रोक देते हैं, क्योंकि यह उन्हें स्तस्मित कर देती हैं । तब विमान में बैठी देवताओं की पत्नियाँ अपने संगीत पर तथा संगीत की योग्यताओं पर लज्जित हो उठती हैं । इतना ही नहीं, वे दाम्पत्य प्रेम से पीड़ित हो उठती हैं और उनके केश तथा चुस्त वस्त्र शिथिल होने लगते हैं ।"

दूसरी गोपी बोली, "हे सखियो! कृष्णजी इतने सुन्दर हैं कि लक्ष्मीजी सदैव उनके वक्षस्थल पर निवास करती हैं और वे गलें में सदैव सुनहरी माला पहने रहते हैं । सुन्दर-घनश्याम अनेक भक्तों के हृदयों को जीवित करने के लिए अपनी वंशी बजाते हैं । वे दीन-दुखियारों के एकमात्र मित्र हैं । जब वे बाँसुरी बजाते हैं, तो वृन्दावन की सारी गौवें तथा पशु चारा चबाना छोड़कर मुँह का तृण मुँह में ही रखे रह जाते हैं । वे कान उठाकर

स्तम्भित हो उठते हैं । वे जीवित नहीं अपितु चित्र-लिखे से प्रतीत होते हैं । कृष्ण का वंशीवादन इतना मोहक हैं कि पशु तक मोहित हो जाते हैं, हम लोगों का तो कुछ कहना ही नहीं ।"

एक अन्य गोपी कहने लगी, "सखियो! पशुओं की बात छोड़ दें, वृन्दावन की नदियाँ तथा सरोवर जैसी जड़ वस्तुएँ भी कृष्ण को सिर पर मोर पंख लगाये और वृन्दावन-रज (गैरिक) लपेटे जाते देखकर स्तम्भित हो जाती हैं । वे अपने शरीर को पत्तियों तथा फूलों से अलंकृत किये हुए एक वीर (अभिनेता) की तरह लगते हैं । जब वे बाँसुरी बजाकर गौवों तथा बलराम को बुलाते हैं, तो यमुना नदी बहना बन्द कर देती हैं और वायुद्वारा उनके चरणकमलों की धूल ले जाने की प्रतीक्षा करती है । किन्तु बेचारी यमुना भी हमारी तरह अभागी है, उसे कृष्ण-कृपा प्राप्त नहीं हो पाती । नदी बेचारी स्तम्भित होकर अपनी तरंगे रोक देती है, जिस प्रकार हम निराश होकर कृष्ण के लिए विलाप करना बन्द कर देती हैं ।"

कृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियाँ निरन्तर आँसू बहाती रहती थीं, किन्तु कभी-कभी जब उन्हें आशा बँधती कि वे आ रहे हैं, तो विलाप करना बन्द कर देतीं । किन्तु जब गोपियाँ देखतीं कि वे नहीं आ रहे हैं तो निराश होकर पुनः रोने लगतीं । कृष्ण आदि भगवान् और समस्त विष्णु-रूपों के मूल हैं । सारे ग्वाले देवता हैं । भगवान् विष्णु, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र, चन्द्र आदि देवतओं से सदैव पूजित हैं और घिरे रहते हैं । जब श्रीकृष्ण वृन्दावन के जंगल में विचरण करते या गोवर्धन पर्वत पर जाते, तो उनके साथ-साथ ग्वाल-बाल रहते । विचरण करते हुए वे अपनी गौवों को पुकारने के लिए वंशी बजाते । जंगल के सारे वृक्ष, पौधे तथा अन्य वनस्पतियाँउनके सान्निध्य-मात्र से कृष्णभावनाभावित हो गई थी । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति कृष्ण के लिए सर्वस्व त्याग देता है । यद्यपि वृक्ष तथा पौधे कृष्ण चेतना में अत्यधिक उन्नत नहीं थे, किन्तु कृष्ण तथा उनके मित्रों की संगति से वे भी कृष्णभावनाभावित हो गए । तब वे अपना

सर्वस्व-अपने फल, फूल तथा टहनियों से टपकता मधु-न्यौछावर करने को तत्पर रहतीं थीं ।

जब कृष्ण यमुनातट पर विचरण करते, तो वे अपने ललाट पर तिलक लगाए रहते । वे विविध वन-फूलों की माला पहने रहते तथा उनका शरीर चन्दन तथा तुलसी-दल के लेप से लिप्त रहता । वायुमण्डल की मधुर सुगन्ध के पीछे भौंरे दीवाने रहते । वे भौंरों की गुंजार से प्रसन्न होकर अपनी वंशी बजाते और उस गुंजार से मिलकर सारी ध्वनियाँ इतनी मधुर हो जातीं कि सारस, हंस, बत्तख तथा अन्य जलचर सम्मोहित हो जाते । तैरने अथवा उड़ने की बजाये वे स्तम्भित हो जाते और अपनी आँखें बन्द करके कृष्ण की पूजा में समाधिस्थ हो जाते ।

एक गोपी बोली, "हे सखी! कृष्ण तथा बलराम सुन्दर कुंडलों तथा मोती की मालाओं से सुसज्जित हैं । वे गोवर्धन पर्वत की चोटी पर आनन्द ले रहे हैं । जब कृष्ण अपनी बाँसुरी बजाते हैं, तो सारी सृष्टि सम्मोहित हो जाती है और सारी सृष्टि सम्मोहित हो जाती है और सारी वस्तुएँ दिव्य आनन्द में डूब जाती हैं । जब वे वंशोवादन करते हैं, तो डर के मारे बादल अपना गरजना बन्द कर देते हैं । वे वंशी की ध्वनि के विचलित न करके मन्द स्वर से अपने मित्र को बधाई देते हैं ।"

कृष्ण को बादलों का मित्र माना जाता है क्योंकि बादल तथा कृष्ण दोनों ही मनुष्यों की विचलित अवस्था में उन्हें प्रसन्न करते हैं । जब लोग भीषण गर्मी से जल उठते हैं, तो बादल वर्षा द्वारा उन्हें प्रसन्न करता है । इसी तरह जब लोग भौतिक वेदनाओं की ज्वाला से संतप्त हो उठते हैं, तो कृष्णभावनामृत बादल की भाँति राहत देता हैं । कृष्ण तथा बादलों के शरीर का रंग भी एक जैसा है, फलतः वे मित्र हैं । फलतः बादलों ने अपने वरिष्ठ मित्र कृष्ण का सत्कार करने के लिए उनके ऊपर जल-वृष्टि ही नहीं की, अपितु उनके ऊपर फूल बरसाये और ऊपर से छाया कर दी जिससे कड़ी धूप से उनकी रक्षा हो सके ।

एक गोपी ने माता यशोदा से कहा, "हे माता! आपका पुत्र ग्वाल-बालों में अत्यन्त पटु हैं । वह समस्त विभिन्न कलाएँ जानता है कि किस तरह गाएँ चराई जाती हैं और किस तरह बाँसुरी बजाई जाती है । वह अपने गीत स्वयम् रचता है और उन्हें गाने के लिए अधरों पर वंशी धरता है । जब भी वह वंशी बजाता है, चाहे सुबह हो या शाम, शिव, ब्रह्मा, इन्द्र तथा चन्द्र जैसे सारे देवता उसे मस्तक झुकाते हैं और बड़े ध्यान से वंशी सुनते हैं । परम विद्वान एवं पटु होते हुए भी वे वंशी की तानों को नहीं समझ पाते । वे ध्यान से केवल सुनते हैं और समझने का यत्न करते हैं, किन्तु मोहित हो जाते हैं और समझ नहीं पाते"

अन्य गोपी बोली, "हे सखी! जब कृष्ण अपनी गौवों समेत घर लौटते हैं, तो पृथ्वी को गौवों के चलने से जो पीड़ा होती है, वह कृष्ण के चरणचिन्हों से-जिसमें ध्वजा, वज्र, त्रिशूल तथा कमल फूल अंकित रहते हैं-दूर हो जाती है । उनके लम्बे डग अत्यधिक आकर्षक लगते हैं । वे बाँसुरी लिए रहते हैं । हम तो उन्हें देखकर ही उनकी संगति का आनन्द लेने के लिए कामाभिभूत हो जाती हैं । उस समय हमारी गति बन्द हो जाती हैं । हम वृक्ष के समान जड़ बन जाती है । हम इतना तक भूल जाती हैं कि हम कैसी हमारे केश तथा वस्त्र ढीले हो रहे हैं ।"

कृष्ण के पास सहस्रों गाएँ थीं और ये उनके रंगों के अनुसार टोलियों में बँटी थीं । रंगों के अनुसार ही उनके नाम थे । जब वे चरागाह से लौटने वाले होते, तो वे सारी गौवों के एकत्र कर लेते । जिस प्रकार वैष्णवजन अपनी माला पर 108 गुरियों को जपते हैं, जो 108 गोपियों की सूचक हैं, उसी तरह कृष्ण गौवों की टोलियों का 108 गुरियों की तरह जप करते ।

एक गोपी ने अपनी सखी से कृष्ण का इस तरह वर्णन किया, "जब कृष्ण लौटते हैं, तो तुलसी की माला पहने रहते हैं । वे अपना हाथ किसी ग्वाल-मित्र के कंधे पर रखे रहते हैं और अपनी दिव्य बाँसुरी बजाना प्रारम्भ करते हैं । उनकी वंशी की ध्वनि वीणा की ध्वनि के समान होती है,

जिसे सुनकर श्याम हिरनियाँ (कृष्णसार मृग-पत्नियाँ) सम्मोहित हो जाती हैं । ये हिरनियाँ इतनी मोहित हो जाती है कि वे कृष्ण के पास आकर शान्त खड़ी रहती हैं और वे अपने घर तथा पतियों की सुधि भूल जाती हैं । जिस प्रकार हम कृष्ण के दिव्य गुणों के सागर द्वारा गोहित हैं उसी तरह हिरनियाँ भी उनकी वंशी की ध्वनि से सम्मोहित होती हैं ।"

एक अन्य गोती माता यशोदा से बोली, "हे माता! जब आपका लाडला घर लौटता है, तो वह कुन्द कलियों की माला पहल लेता है और अपने मित्रों को प्रसन्न करने के लिए बाँसुरी बजाता है । दक्षिण से बहने वाली बयार सुगन्धित एवं शीतल होने के कारण वायुमण्डल को प्रमुदित करती है और गन्धर्व तथा सिद्ध जैसे छोटे देवता इस वायुमण्डल का लाभ उठाते हैं तथा अपनी दुन्दुभि तथा बिगुल बजाकर कृष्ण की स्तुति करते हैं । कृष्ण वृन्दावनवासियों तथा व्रजभूमि के प्रति अत्यन्त सदय हैं और जब वे अपनी गौवों तथा मित्रों समेत लौटकर आते हैं, तो वे गोवर्धनकारी के रूप में स्मरण किये जाते हैं । इस अवसर का लाभ उठाकर ब्रह्मा तथा शिव जैसे बड़े-बड़े देवता नीचे उतर कर सन्ध्या की प्रार्थना करते हैं और ग्वालों के साथ मिलकर कृष्ण के गुणों का इस प्रकार गान करते हैं ।"

कृष्ण देवकी के गर्भ रूपी समुद्र से उत्पन्न चन्द्रमा के तुल्य हैं । जब वे सायंकाल लौटते हैं, तो वे थके प्रतीत होते हैं, किन्तु फिर भी वे अपनी शुभ उपस्थिति से वृन्दावनवासियों को प्रमुदित करने का प्रयत्न करते हैं । जब वे फूलों की माला पहने लौटते हैं, तो उनका मुख स्वर्ण कुंडलों से सजा हुआ होने के कारण सुन्दर लगता है । वे हाथी जैसी चाल से वृन्दावन में विचरण करते हुए अपने घर में मन्दगति से प्रविष्ट होते हैं । उनके आते ही वृन्दावन के सारे पुरुष, स्त्रियाँ तथा गौवें तुरन्त ही दिन की प्रखर गर्मी को भूल जाती हैं ।"

कृष्ण की दिव्य लीलाओं तथा कार्यकलापों का यह वर्णन गोपियों द्वारा वृन्दावन से उनकी अनुपस्थिति में किया जाता था । इससे हमें पता

चलता है कि कृष्ण कितने आकर्षक हैं-न केवल मनुष्यों की ओर बल्कि सभी जड़-चेतन वस्तुओं की ओर वृन्दावन में हर व्यक्ति तथा हर वस्तु कृष्ण द्वारा आकर्षित होती है, जिसमें वृक्ष, पौधें जल और हिरण तथा गौवों जैसे पशु भी सम्मिलित हैं-कृष्ण के आकर्षण का यही पूर्ण विवरण है । जो लोग कृष्णभावनामृत में तल्लनी रहने का प्रयास करते हैं उनके लिए गोपियों का उदाहरण अत्यन्त शिक्षाप्रद है । कोई भी व्यक्ति कृष्ण की दिव्य लीलाओं के स्मरण-मात्र से उनका सान्निध्य प्राप्त कर सकता है । प्रत्येक व्यक्ति में किसी-न-किसी से प्रेम करने की प्रवृत्ति होती है । कृष्णभावनामृत का केन्द्रबिन्दु ही कृष्ण को प्रेम का लक्ष्य बनाता है । निरन्तर हरे कृष्ण मंत्र के कीर्तन तथा कृष्ण की दिव्य लीलाओं के स्मरण से मनुष्य पूर्णतया कृष्णभावनाभावित हो सकता है और इस प्रकार वह अपने जीवन को सफल तथा भव्य बना सकता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "गोपियो का वियोग" नामक पैंतीसवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 36

श्रीकृष्ण को लाने के लिए कंस का अक्रूर हो भेजना

वृन्दावन सदैव श्रीकृष्ण के चिन्तन में मग्न रहता था । सभी उनकी लीलाओं का स्मरण करते थे और सदैव दिव्य आनन्द में डूबे रहते थे । किन्तु यह भौतिक जगत इतना दूषित् है कि असुर वृन्दावन में भी वहाँ की शान्ति भंग करने का प्रयास करते रहते थे ।

एक बार अरिष्टासुर नामक एक असुर ने साँड के रूप में वृन्दावन में प्रवेश किया । उसका शरीर और सींग अत्यन्त विशाल थे । अपने खुरों से धरती को खोदता हुआ वह वृन्दावन में प्रविष्ट हुआ । जब उस राक्षस ने वृन्दावन में प्रवेश किया, तो सारी धरती ऐसे हिलने लगी जैसे भूकम्प

आया हो । उसने भयंकर गर्जना की और नदी के तट की भूमि को खोद डाला । तत्पश्चात् उसने गाँव के मुख्य भाग में प्रवेश किया । उस साँड की तीव्र, भयानक गर्जना के कारण कुछ गर्भवती गायों और स्त्रियों के गर्भ गिर गए । उसका शरीर अत्यन्त विशाल, सुदृढ़ और इतना बलशाली था । कि उसके शरीर पर एक मेघ ऐसे मँडराने लगा जैसे मेघ पर्वत पर मँडराते हैं । अरिष्टासुर ने इतने भयानक रूप में वृन्दावन में प्रवेश किया कि उसे देखने मात्र से सब नर-नारी भयभीत हो गए और गायें व अन्य पशु ग्राम छोड़ कर भाग गए ।

स्थिति अत्यन्त भयंकर हो गई और वृन्दावन के सब निवासी आर्तनाद कर उठे, "कृष्ण! कृष्ण! हमारी रक्षा करो ।" श्रीकृष्ण ने गायों को भागते हुए देखा और तत्काल उत्तर दिया, "डरो मत, डरो मत ।" फिर उन्होंने अरिष्टासुर के समक्ष उपस्थित होकर कहा, "तुम जीवात्माओं में निकृष्टतम हो । तुम गोकुल के निवासियों को क्यों भयभीत कर रहे हों? तुम्हें इस कार्य से क्या प्राप्त होगा? यदि तुम मेरी सत्ता को चुनौती देने के लिए आए हो, तो मैं तुमसे युद्ध करने को तत्पर हूँ ।" इस प्रकार श्रीकृष्ण ने उस असुर को चुनौती दी । उनके इन शब्दों को सुन कर वह असुर अत्यन्त क्रोधित हो उठा । श्रीकृष्ण अपने एक सखा के कंधे पर हाथ रख् कर उस साँड के सामने खड़ थे । क्रोधित साँड श्रीकृष्ण की ओर बढ़ने लगा । अपने खुरों से धरती खोदते हुए अरिष्टासुर ने अपनी पूँछ ऊपर उठाई । ऐसा प्रतीत हो रहा था जैसे मेघ उसकी पूँछ पर मँडरा रहे हो । उसके नेत्र लाल थे और क्रोध में इधर-उधर घूम रहे थे । अपने सींगों को श्रीकृष्ण की ओर करके उसने इन्द्र के वज्र की भाँति उन पर आक्रमण कर लिया । किन्तु श्रीकृष्ण ने तत्काल ही उसके सींग पकड कर उसे उठाकर दूर फेंक दिया जैसे एक विशालकाय हाथी ने एक लघु विरोधी हाथी को दूर फेंक देता है । यद्यपि असुर अत्यन्त थका प्रतीत होता था और पसीने से लतपत् था फिर भी वह साहस करके उठा उसने अत्यधिक

क्रुद्ध हो कर पुनः श्रीकृष्ण पर अत्यन्त वेग से आक्रमण किया । श्रीकृष्ण की ओर दौड़ते हुए वह दीर्घ श्वासें ले रहा था । श्रीकृष्ण ने पुनः उसके सींगों को पकड लिया और तत्काल उसे धरती परप टक दिया जिस से उसके सींग टूट गए । तदुपरान्त श्रीकृष्ण उसके शरीर पर इस प्रकार पदाघात करने लगे जैसे कोई गीले वस्त्र को धरती पर निचोडे । इस प्रकार श्रीकृष्ण के पदाघात करने से अरिष्टासुर उलट गया और तीव्रता से अपने पैर चलोन लगा । उसके नेत्र पथरा गए । रक्तस्राव करता हुआ तथा मलमूत्र का त्याग करता हुआ वह यमलोक को सिधार गया ।

इस आश्चर्यजनक उपलब्धि के लिए देवगण स्वर्गलोक से श्रीकृष्ण पर पुष्पवर्षा करने लगे । श्रीकृष्ण पहले से ही वृन्दावन-निवासियों के सर्वस्व थे । साँड रूप इस असुर का उद्धार करने के पश्चात् वे सबकी आँखों का तारा बन गए । विजय पाने के बाद उन्होंने बलराम सहित ग्राम में प्रवेश किया । ग्रामवासियों ने अत्यन्त आनन्दपूर्वक उनका और बलरामजी का यशगान किया । किसी के द्वारा कोई आश्चर्यजनक कार्य सम्पादित करने पर उसके बन्धु-बान्धव, सम्बन्धी और मित्र स्वाभाविक रूप से अत्यन्त हर्षित हो उठते हैं ।

इस घटना के पश्चात् ही नारद मुनि ने कंस को श्रीकृष्ण का रहस्योद्घाटन कर दिया । नारद मुनि को साधारणतया देवदर्शन कहा जाता है । इसका अर्थ है कि देवगण अथवा उनके स्तर के व्यक्ति ही नारद मुनि का दर्शन कर सकते हैं । किन्तु नारद मुनि कंस के पास गए, जिसे देवताओं के स्तर का न होते हुए नारद मुनि का कहना ही क्या? साधारणतया भगवान् एवं उनके भक्तों का दर्शन करने के लिए शुद्ध कहना ही क्या? साधारणतया भगवान् एवं उनके भक्तों का दर्शन करने के लिए शुद्ध दृष्टि होनी आवश्यक है अन्यथा वास्तविक लाभ नहीं मिल पाता । किन्तु यह भी सत्य है कि किसी शुद्ध भक्त से सम्पर्क होने पर एक इन्द्रियातीत लाभ होता है, जिसे अज्ञातसुकृति कहते हैं । जिसे यह

लाभ होता है, वह यह नहीं समझ पाता है कि उसकी प्रगति किस प्रकार हो रही है, फिर भी वह प्रभु के भक्त के दर्शन-मात्र से प्रगति करता है । नारद मुनि का ध्येय कार्य को शीघ्रातिशीघ्र समाप्त करना था । श्रीकृष्ण असुरों का उद्धार करने के लिए प्रकट हुए थे और कंस असुरों में प्रमुख था । नारद मुनि घटनाओं की गति में तीव्रता लाना चाहते थे । इसी उद्देश्य से वे समस्त वास्तिवक वृतान्त के साथ कंस के पास गए । नारद जी ने कंस को बताया, "वसुदेव जी का आठवाँ पुत्र तुम्हें मोरगा और वह आठवाँ पुत्र श्रीकृष्ण हैं । वसुदेवजी ने अपनी आठवीं सन्तान को लड़की बताकर तुम्हें भ्रमित किया है । वास्तव में वह कन्या नन्द महाराज की पत्नी यशोदा की पुत्री थी । वसुदेव जी ने उस कन्या को श्रीकृष्ण से बदल दिया था जिससे तुम्हें भ्रान्त किया गया । बलराम जी की भाँति श्रीकृष्ण भी वसुदेव जी के ही पुत्र हैं । वसुदेव जी तुम्हारे दुष्ट स्वभाव से भयभीत थे । अतः उन्होंने चतुराई से अपने पुत्रों को तुम्हारी दृष्टि से दूर वृन्दावन में छुपा दिया है । श्रीकृष्ण और बलराम जी अज्ञात रूप से नन्द महाराज की छत्र-छाया में रह रहे हैं । तुम्हारे साथी सभी असुर, जिनको तुमने विभिन्न बालकों को मारने के लिए वृन्दावन भेजा था, श्रीकृष्ण और बलराम जी के द्वारा मारे गए हैं ।"

नारद मुनि से यह वृतान्त प्राप्त होते ही कंस ने अपनी धारदार तलवार निकाल ली और इस कपट के लिए वह वसुदेव जी को मारने के लिए तत्पर हो गया । किन्तु नारद मुनि ने उसे शान्त किया, "तुम्हें मारने वाले वसुदेव जी नहीं हैं, फिर उन्हें मारने को आतुर क्यों हो? अच्छा यह होगा कि तुम श्रीकृष्ण और बलराम जी की हत्या करने का प्रयास करो ।" किन्तु अपने क्रोध को शान्त करने के लिए कंस ने वसुदेव जी और उनकी पत्नी को बन्दी बना लिया । और उन्हें लोहे की जंजीरों से बाँध दिया । नारदमुनि द्वारा प्राप्त ताज़ा जानकारी पर कार्य करते हुए कंस ने तत्काल केशी नामक असुर को बुलाया और श्रीकृष्ण और बलराम जी

को मारने के लिए उसे वृन्दावन भेज दिया । वास्तव में कंस ने केशी को वृन्दावन इसलिए भेजा था कि श्रीकृष्ण और बलराम के हाथों उसका उद्धार हो और इस प्रकार वह मोक्ष प्राप्त कर ले ।

तदुपरान्त कंस ने अपने कुशल महावतों को एवं चाणूर, मुष्टिक, शल और तोशल आदि मल्लयोद्धाओं को बलाया । उसने उनसे कहा, "प्रिय मित्रो! मेरी बात ध्यानपूर्वक सुनो । वृन्दावन में नन्द महाराज के भवन में दो भाई रहते हैं । उनके नाम कृष्ण तथा बलराम हैं । वे दोनों वास्तव में वसुदेव जी के पुत्र हैं । जैसाकि तुम्हें ज्ञात हैं, एक भविष्यवाणी के अनुसार मेरी मृत्यु कृष्ण के हाथों होने वाली है । अब मैं तुमसे निवेदन करता हूँ कि तुम एक मल्लयुद्ध का आयोजन करो । देश के विभिन्न भागों से लोग यह उत्सव देखने आयेंगे । मैं उन दोनों बालकों को यहाँ बुलवाने का प्रबन्ध कर दूँगा । तुम लोग मल्लयुद्ध की रंगभूमि में उनका वध करने का प्रयास करना ।"

उत्तर भारत में मल्लयुद्ध अभी भी लोकप्रिय है । श्रीमद्भागवत के अनुसार आज के पाँच हजार वर्ष पूर्व भी मल्लयुद्ध लोकप्रिय था । कंस ने भी मल्लयुद्ध का आयोजन किया तथा लोगों को उसमें आमंत्रित करने की योजना बनाई । उसने महावतों से भी कहा, "कुवलयापीड़ नामक हाथी को अवश्य लाओ और उसे रंगभूमि के द्वार पर रखो । कृष्ण तथा बलराम के आते हीं उन्हें बन्दी बनाने का प्रयास करो और हाथी द्वारा उनका वध करवा दो ।"

कंस ने अपने मित्रों को पशुबलि द्वारा शिवजी की पूजा एवं धनुर्यज्ञ का आयोजन करने का भी परामर्श दिया । उसने उन्हें चतुर्दशी का यज्ञ सम्पन्न करने को कहा । यह तिथि एकादशी के तीन दिन पश्चात् आती है और शिवजी की आराधना के लिए उपयुक्त मानी गई है । शिवजी का एक अंश कालभैरव के नाम से भी प्रसिद्ध है । असुरगण शिवजी के इसी रूप की उपासना करते हैं और उनके समक्ष पशुबलि देते हैं ।

वैद्यनाथधाम नामक स्थान पर यह प्रथा अभी भी प्रचलित है । असुरलोग वहाँ कालभैरव की मूर्ति के समक्ष पशुबलि देते हैं । कंस भी इसी असुर समूह में से एक था । वह एक चतुर कूटनीतिज्ञ भी था । अतः उसने अपने असुर मित्रों के द्वारा कृष्ण और बलराम के वध का शीघ्र ही प्रबन्ध कर लिया ।

तत्पश्चात् उसने अक्रूर को बुलाया । जो उसी यदुवंश के वंशज थे जिसमें श्रीकृष्ण ने वसुदेव-पुत्र के रूप में जन्म लिया था । जब अक्रूर जी कंस से भेंट करने आए, कंस ने उनका विनयपूर्वक स्वागत किया । कंस ने उनसे कहा, "प्रिय अक्रूर जी! भोज और यदु राजवंशों में आपसे श्रेष्ठ मेरा अन्य कोई मित्र नहीं हैं । आप अत्यन्त उदार व्यक्ति हैं । अतः एक मित्र के रूप में मैं आपसे दान की भिक्षा माँगता हूँ । जिस प्रकार राजा इन्द्र भगवान् श्रीविष्णु की शरण में जाते हैं, उसी प्रकार मैं आपकी शरण में आया हूँ । मैं आपसे तत्काल वृन्दावन जाने का निवेदन करता हूँ । वहाँ जाकर आप कृष्ण और बलराम नामक दो बालकों के विषय में जानकारी प्राप्त कीजिए । वे नन्द महाराज के पुत्र हैं । उन बालकों के लिए ही विशेष रूप से निर्मित यह रथ ले जाइए और उन्हें तुरन्त यहाँ ले आइए । मेरी आपसे यही विनती है । मेरी योजना इन दोनों बालकों का वध करने की है । जैसे ही वे मुख्य द्वार से अन्दर प्रविष्ट होंगे, कुवलयापीड़ नामक विशालकाय हाथी उनकी प्रतीक्षा कर रहा होगा । वह सम्भवतः उनकी हत्या करने में समर्थ होगा । किन्तु यदि वे किसी प्रकार सुरक्षित निकल आए तो फिर उनकी भेंट मल्लयोद्धाओं से होगी । वे योद्धा अवश्य ही उनकी हत्या कर देंगे । यही मेरी योजना है । इन दो बालकों का वध करने के पश्चात् मैं नन्द और वसुदेव जी का भी वध कर दूँगा, क्योंकि वे वृष्णि और भोज राजवंशो के पक्ष में हैं । मैं अपने पिता उग्रसेन और उनके भाई देवक का भी वध कर दूँगा, क्योंकि वास्तव में वे मेरे शत्रु से मुक्ति पा लूँगा ।तत्पश्चात् पृथ्वी पर निर्विघ्न रूप से आनन्दपूर्वक राज्य

करने में अत्यन्त आनन्द आएगा । आपको यह भी ज्ञात होगा कि शंबर, नरकासुर एवं बाणासुर मेरे घनिष्ठ मित्र हैं । जब मैं देवताओं के समर्थक राजाओं से युद्ध प्रारम्भ करूँगा तब वे मेरी अभीष्ट सहायता करेंगे । निश्चय ही मुझे तब शत्रुओं से मुक्ति मिल जाएगी । कृपया आप तत्काल वृन्दावन जाइए और बालकों को यहाँ ले आइए । उन्हें मथुरा के सौन्दर्य एवं मल्लयुद्ध प्रतियोगिता का आनन्द लेने के लिए यहाँ आने के लिए उत्साहित कीजिए ।

कंस की इस योजना को सुन कर अक्रूरजी ने उत्तर दिया, "प्रिय राजन्! कूटनीतिक गतिविधियों के मार्ग में आने वाली बाधाओं पर विजय पाने के लिए आपने अत्यन्त कुशलता से योजना बनाई है । किन्तु आपको विवेक भी बनाए रखना चाहिए, क्योंकि आपकी योजना फलदायी हो भी सकती है और नहीं भी । मनुष्य योजना बनाता है, किन्तु अन्ततः उसकी पूर्ति ईश्वराधीन है । हम बड़ी-बड़ी योजनाएँ बना सकते हैं, किन्तु जब तक श्रीभगवान् (परमसत्ता) उसकी अनुमति नहीं देते है, वे सब असफल हो जाएँगी । इस भौतिक जगत में सबको पता है कि अलौकिक शक्ति ही परम कर्ता-धर्ता है । अपने उर्वर मस्तिष्क से कोई कितनी ही भी विशाल योजना क्यों न बनाए है, किन्तु उसे यह भी ज्ञात होना चाहिए कि सकाम कर्म के फलस्वरूप दुःख या सुख का भागी भी उसे होना पड़ेगा । किन्तु मुझे आपके प्रस्ताव के विरोध में कुछ नहीं कहना है । एक मित्र के रूप में मैं आपकी आज्ञा का पालन करूँगा और आपकी इच्छा के अनुरूप मैं श्रीकृष्ण और बलराम जी को यहाँ ले आऊँगा ।

अपने मित्रों को विधि प्रकार से निर्देश देने के पश्चात् कंस ने विश्राम ग्रहण किया और अक्रूर जी वृन्दावन चले गए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण को लाने के लिए कंस का अक्रूर को भेजना" नामक छत्तीसवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 37
असुर केशी एवं व्योमासुर का उद्धार

कंस का निर्देश पाकर असुर केशी ने एक भयंकर अश्व का रूप धारण कर लिया । उसने वृन्दावन के क्षेत्र में मन की गति से प्रवेश किया । उसकी बड़ी सी अयाल उड़ रही थी एवं उसक खुर धरती को कुरेद रहे थे । वह हिनहिनाने लगा एवं सम्पूर्ण जगत को भयभीत करने लगा । श्रीकृष्ण समझ गए कि वह अश्व उन्हें युद्ध के लिए चुनौती दे रहा है । भगवान् ने उसकी चुनौती स्वीकार कर ली और असुर केशी के सम्मुख खड़े हो गए । जब उन्होंने उसे युद्ध के लिए ललकारा, तो वह अश्व सिंह गर्जना के समान भयंकर शब्द करता हुआ श्रीकृष्ण की ओर अग्रसर हुआ । केशी भगवान् की ओर वेग से दौड़ा । उसके जबड़े पूरी तरह खुले थे मानो वह सारे आकाश को निगल जाएगा । अपने शक्तिशाली, उग्र एवं शिला की भाँति कठोर पैरों से उसने श्रीकृष्ण को कुचलने का प्रयास किया । किन्तु श्रीकृष्ण ने तत्क्षण उसके पैरों को पकड़ लिया और इस प्रकार उसे व्यग्र कर दिया । कुछ क्रोधित होकर श्रीकृष्ण निपुणता से उस अश्व को चारों ओर घुमाने लगे । कुछ प्रदक्षिणाओं के पश्चात् उन्होंने उसे इस प्रकार सौ गज दूर फेंक दिया जैसे गुरुड़ एक विशाल सर्प को फेंकता है । श्रीकृष्ण द्वारा फेंके जाने पर वह अश्व तत्काल चेतनाशून्य हो गया । किन्तु कुछ काल पश्चात् उसकी चेतना लौटी और अत्यन्त क्रोध एवं उग्रता से वह फिर श्रीकृष्ण की ओर दोड़ा । इस बार उसका मुख खुला हुआ था । जैसे ही केशी उनके निकट आया, उन्होंने अपना बायाँ हाथ अश्व के मुख में डाल दिया । ऐसा लगता था जैसे एक बड़ा सर्प किसी खेत के निह में घुस गया हो । अश्व को इससे अत्यन्त कष्ट हुआ, क्योंकि उसे श्रीकृष्ण का हाथ तप्त लौट शलाका के समान प्रतीत हुआ । तत्क्षण उसके दाँत बाहर गिर पड़े । श्रीकृष्ण का हाथ उस अश्व के मुख में विस्तार पाने लगा

और केशी का कंठ अवरुद्ध होने लगा । जैसे-जैसे उस विशाल अश्व की सांस अवरुद्ध होने लगी उसके शरीर में पसीना आने लगा, वह अपने पैर इधर-उधर फेंकने लगा । उसकी अन्तिम सांस घुटने के साथ ही उसके नेत्र पथरा गए एवं उसने एक साथ मल-मूत्र त्याग दिया । इस प्रकार उसकी प्राणशक्ति समाप्त हो गए । अश्व के मरने पर उसका मुख शिथिल हो गया एवं श्रीकृष्ण ने अत्यन्त सरलता से अपना हाथ बाहर निकाल लिया । उन्हें इतनी सरलता से असुर के प्राणान्त होने पर कोई आश्चर्य नहीं हुआ, किन्तु आकाश में देवगण चकित हो गए और अपना अत्यन्त आभार व्यक्त करने के लिए उन्होंने पुष्पवर्षा के द्वारा श्रीकृष्ण का अभिनन्दन किया ।

इस घटना के पश्चात् भक्तशिरोमणि नारदमुनि श्रीकृष्ण से एकान्त स्थान पर भेंट करने आए और उनसे वार्तालान करने लगे । उन्होंने कहा, "मेरे प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण! आप अनन्त परमात्मा हैं; आप समस्त योगिक शक्तियों के परम नियंत्रक, अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी एवं सर्वव्यापी श्रीभगवान् हैं । समस्त भौतिक सृष्टि आप ही में लय हो जाती है;आप समस्त योगिक शक्तियो के परम नियंत्रक, अखिल ब्रह्माण्ड के स्वामी एवं सर्वव्यापी श्रीभगवान् हैं । समस्त भौतिक सृष्टि आप ही में लय हो जाती है; आप सब भक्तों के स्वामी एवं सबके प्रभु हैं । मेरे प्रिय भगवान्! समस्त जीवात्माओं के परमात्मा के रूप में आप उनके हृदय में उसी भाँति छुपे रहते हैं जैसे ईधन के प्रत्येक टुकड़े में अग्नि छिपी रहती है । आप जीवात्माओं के सब कर्मों के साक्षी हैं और उनके हृदयों में स्थित आप उनके परम नियंत्रक हैं । आप आत्म-निर्भर हैं, सृष्टि के पूर्व भी आप स्थित थे और आपने अपनी शक्ति से सम्पूर्ण भौतिक जगत की सृष्टि की है । आपकी पूर्ण योजना के अनुसार, प्रकृति के गुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया के द्वारा इस भौतिक जगत की सृष्टि हुई हैं । आप ही के द्वारा इसका पालन होता है और आप ही के द्वारा नाश होता है । यद्यपि आप इन सब

गतिविधियों से अप्रभावित रहते हैं तथापि आप ही शाश्वत रूप से परम नियंत्रक हैं । मेरे प्रिय भगवान्! आपने इस विश्व में केवल उन तथाकथित राजाओं को मारने के लिए अवतार लिया है, जो वास्तव में असुर हैं । ये राक्षस राजकुमारों के वेश में लोगों को छल रहे हैं । आपने अपना यह वचन पूर्ण करने के लिए इस धरती पर अवतार लिया है कि आप केवल धर्म की रक्षा एवं अवाञ्छित दुष्कर्मियों के संहार के लिए ही इस भौतिक जगत में आते हैं । अतएव मेरे प्रिय भगवान्! मुझे विश्वास है कि चाणूर, मुष्टिक जैसे असुरों, अन्य मल्लयोद्धाओं, हाथियों एवं स्वयं कंस को आपके द्वारा मारे जाते हुए परसों मैं देखूँगा । यह दर्शन मैं अपने नेत्रों से करूँगा । इसके पश्चात् मैं शंख, यवन, मुर एवं नरकासुर जैसे अन्य असुरों का मारा जाना भी देखने में समर्थ होऊँगा । आप स्वर्ग की राजधानी स पारिजात पुष्प कैसे ले जाते हैं एवं स्वयं स्वर्ग लोक के राजा इन्द्र को आप कैसे पराजित करते हैं, यह दर्शन भी मैं करूँगा ।"

नारद मुनि ने आगे कहा, "मेरे प्रिय भगवान्! तदनन्तर आप किस प्रकार शूरवीर भूपालों की कन्याओं अर्थात राजकुमारियों से क्षत्रिय शौर्य का मूल्य चुका कर विवाह करते हैं, यह दर्शन करने में भी मैं समर्थ होऊँगा ।" जब कभी कोई क्षत्रिय एक सम्राट की अनिद्य प्रतियोगियों से युद्ध करके विजयी होना पड़ता है । तभी उसे राजकन्या का हाथ दान में प्राप्त होता है ।

नारद मुनि ने कहा, "मैं यह भी देखूँगा कि आप किस प्रकार राजा नृग को नारकीय स्थिति से मुक्ति दिलाते हैं; यह कार्य आप द्वारका में सम्पादित करेंगे । आप अपनी पत्नी एवं स्यमंतक मणि को किस प्रकार प्राप्त करते हैं इस दृश्य का दर्शन करने में भी मैं समर्थ होऊँगा । किस प्रकार आप परलोक चले जाने के पश्चात् भी एक ब्राह्मण पुत्र की मृत्यु से रक्षा करते हैं, यह भी मैं देखूँगा । तदनन्तर पौण्ड्रक असुर के मारे जाने एवं काशी की राजधारी को जलाकर भस्मसात् किए जाने के समय भी आपके दर्शन

मैं करूँगा । महाराज युधिष्ठिर के महान यज्ञ के समय चेदि राजा एवं दन्तवक्र का वध करते हुए आपके दर्शन मैं करूँगा । इनके अतिरिक्त भी आपके द्वारकावास के काल में आपके अनेक शौर्यपूर्ण कार्यों के दर्शन करना मेरे लिए सम्भव होगा । आपके अनुग्रह से सम्पादित इन सब लीलाओं का सारे विश्व में महान कवियों द्वारा गान किया जाएगा । कुरुक्षेत्र के युद्ध में आप अपने मित्र अर्जुन के सारथी के रूप में भाग लेंगे एवं अजय मृत्यु के अवतार, शाश्वत महाकाल के रूप में, आप वहाँ एकत्र समस्त योद्धाओं का नाश कर देंगे । मैं अत्यन्त विशाल सेनाओं को रणभूमि में मोर जाते हुए देखूँगा । मेरे भगवान्! मैं आपके चरणकमलों में सादर प्रणाम अर्पित करता हूँ । आप पूर्ण रूप से पूर्ण ज्ञान एवं आनन्द की दिव्य स्थित में अवस्थित हैं । आप सब इच्छाओं को पूरा करने में पूर्ण हैं । अपनी अन्तरंगा शक्ति के प्रदर्शन के द्वारा आपने माया का प्रभाव स्थापित कर दिया है । आपकी अनन्त शक्ति अपार है । उसका कोई पार नहीं पा सकता । मेरे प्रिय भगवान्! आप परम नियंत्रक हैं आप अपनी ही अन्तरंगा शक्ति के अधीन हैं, एवं यह सोचना कि आप अपनी किसी सृष्टि पर निर्भर हैं, एकदम व्यर्थ है ।

"आपने यदुवंश में अथवा वृष्णि वंश में जन्म लिया है । मूल सच्चिदानन्द के रूप में भूतल पर आपका आविर्भाव आपकी स्वयं की ही लीला है । आप स्वयं के अतिरिक्त अन्य किसी पर निर्भर नहीं हैं; अतएव आपके पादपद्यों में मैं आदरपूर्वक प्रणामांजलि अर्पित करता हूँ" भगवान् कृष्ण को सादर प्रणाम करने के बाद नारद मुनि आज्ञा लेकर वहाँ से विदा हो गए ।

नारद मुनि जनसाधारण को यह प्रतीति करा देना चाहते थे कि श्रीकृष्ण पूर्णतः स्वतंत्र हैं । यदुवंश में उनका आविर्भाव अथवा अर्जुन से उनकी मैत्री आदि उनके कर्म उन्हें आवश्यक रूप से उन कर्मों का फल भोगने को बाध्य नहीं करते हैं । वे सब उनकी क्रीड़ाएँ हैं और यह सब

उनके लिए खेल है । किन्तु हमारे लिए, वे वास्तविक एवं प्रामाणिक तथ्य हैं ।

असुर केशी का उद्धार करने के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने सखाओं के साथ वन में गाएँ चराने के लिए इस प्रकार चले गए जैसे कोई नूतन घटना ही घटी न हो । श्रीकृष्ण अपने सखाओं, ग्वालबालों एवं गोपियों के साथ शाश्वत रूप से दिव्य गतिविधियों में रत रहते हैं । परन्तु कभी-कभी विभिन्न प्रकार के असुरों के वध के द्वारा वे श्रीभगवान् की असाधारण शक्ति का प्रदर्शन करते हैं ।

उस दिन प्रात-काल, से कुछ समय बाद श्रीकृष्ण अपने ग्वाल बालसखाओं के साथ गोवर्धन पर्वत पर क्रीड़ा करने गए । वे चोर एवं सिपाही का अभिनय करने का खेल खेल रहे थे । कुछ बालक सिपाही बन गए, कुछ चोर एवं कुछ बालक भेड़ें बन गए । जब वे इस प्रकार अपनी बाल-लीलाओं का आनन्द ले रहे थे तथी "आकाश में उड़ने वाला" व्योमासुर नामक एक असुर वहाँ आया । वह एक दूसरे महान दैत्य मय का पुत्र था । ऐसे असुर अद्‌भुत जादू कर सकते हैं । व्योमासुर ने चारे का अभिनय करने वाले एक बालक का रूप धारण कर लिया एवं भेड़ बने हुए अनेक बालकों को उठा ले गया । एक के पश्चात् एक वह लगभग सभी बालकों को उठा ले गया और उन्हें पर्वत की कन्दराओं में रख कर कन्दराओं का मुख शिलाओं से बन्द कर दिया । श्रीकृष्ण उस असुर के छल को समझ गए; अतएव उन्होंने उसे उसी प्रकार धर लिया जैसे कोई सिंह भेंड़ को दबोच लेता है । असुर ने अपने को पर्वत की भाँति विस्तृत करके बन्धन से बचने का प्रयास किया, किन्तु श्रीकृष्ण ने उसे अपने बन्धन से निकलने नहीं दिया । श्रीकृष्ण ने उसे तत्काल अत्यन्त अग्रता से धरती पर पटक दिया जिससे उसके प्राण-पखेरू उसी प्रकार उड़ गए जैसे वधशाला में किसी पशु का प्राणान्त हो जाता है । व्योमासुर को मारने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने अपने सभी सखाओं को गिरिकन्दराओं में से मुक्त

किया । तत्पश्चात् उनके सखाओं एवं देवताओं ने इन आश्चर्यजनक कर्मों के लिए उनकी स्तुति की । तदनन्तर वे अपने सखाओं एवं गौवों के साथ पुनः वृन्दावन लौट गए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "असुर केशी एवं व्योमासुर का उद्धार" नामक सैंतीसवे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 38
अक्रूर जी का वृन्दावन में आगमन

नारद मुनि ने श्रीकृष्ण द्वारा व्योमासुर के उद्धार का उल्लेख नहीं किया था, जिसका तात्पर्य यह है कि उसका उद्धार उसी दिन हुआ था जिस दिन असुर केशी का । असुर केशी का उद्धार प्रातःकाल हुआ था, और तदुपरान्त सभी बालक गोवर्धन पर्वत पर गौएँ चराने हेतु गए एवं व्योमासुर का उद्धार वहीं पर हुआ । दोनों ही असुरों का उद्धार प्रातःकाल हुआ था । कंस ने अक्रूर जी ने संध्याकाल तक वृन्दावन पहुँचने की प्रार्थना की थी । कंस का निर्देश प्राप्त करने के लिए उपरान्त दूसरे दिन प्रातःकाल अक्रूर जी ने रथ द्वारा वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । वृन्दावन जाते हुए अक्रूर जी श्रीभगवान् का यशोगान करने लगे, क्योंकि वे स्वयं भी श्रीभगवान् के महान भक्त थे । भक्तगण सदैव श्रीकृष्ण के चिन्तन में निमग्न रहते हैं, एवं अक्रूर जी निरन्तर श्रीकृष्ण के कमलनयनों का चिन्तन कर रहे थे ।

उन्हें ज्ञात नहीं था कि किन पुण्यकर्मों के फलस्वरूप उन्हें उस दिन श्रीकृष्ण तथा बलराम के दर्शनार्थ वृन्दावन जाने का सुअवसर प्राप्त हो रहा था । शुद्र भक्त कृष्ण के सेवा के लिए अपने आप को सदा अयोग्य समझता है । अतः अक्रूर जी सोचने लगे कि वे भगवान् के दर्शन का

दिव्य अवसर पाने के योग्य नहीं है ऐसा वे इसलिए सोच रहे थे जैसे एक भौतिकतावादी मनुष्य भगवद् ज्ञान समझने में था चतुर्थ श्रेणी का व्यक्ति (शुद्र) वेदाध्ययन के लिए अयोग्य होता है । किन्तु फिर अक्रूर जी सोचने लगे, "कृष्ण की कृपा से सबकुछ सम्भव है; अतः यदि उनकी इच्छा होगी तो मैं उनके दर्शन कर सकूँगा॥ जिस प्रकार नदी की लहरों पर तैरता हुआ घास का तिनका तट पर आकर संरक्षण पाने का सुअवसर प्राप्त कर सकता है । उसी प्रकार कोई भौतिकतावादी व्यक्ति कभी-कभी कृष्ण-कृपा से बचाया जा सकता है । "अक्रूर जी ने विचार किया कि यदि श्रीकृष्ण की इच्छा होगी, तो वे उनके दर्शन करने में सफल होंगे । जिनके दर्शनों के हेतु महान योगीगण लालायित रहते हैं, उन श्रीकृष्ण का वे दर्शन करेंगे, यह सोच कर अक्रूर जी ने स्वयं को परम भाग्यवान् समझा । उन्हें विश्वास था कि उस दिन श्रीकृष्ण के दर्शन मात्र से उनके गत जीवन के सभी पापों के फल नष्ट हो जाएँगे एवं भाग्य से प्राप्त उनकी मानव योनि कृतार्थ हो जाएगी । कंस उन्हें श्रीकृष्ण एवं बलराम जी को लाने के लिए भेज कर उन्हें भगवद्-दर्शन का अवसर दे रहा था, इसे भी वह स्वयं के प्रति कंस का विशेष पक्षपात समझ रहे थे । अक्रूर जी विचार कर रहे थे कि प्राचीन काल में साधुगणों एवं सन्तजनों ने श्रीकृष्ण के पादपद्मों के प्रभापूर्ण नखों के दर्शन-मात्र से भौतिक जगत से मुक्ति प्राप्त कर ली थी ।

अक्रूर जी ने विचार किया, "श्रीभगवान् अब एक साधारण मानव के यप में अवतरित हुए हैं और यह मेरा परम सौभाग्य है कि मैं उनका प्रत्यख दर्शन करने में समर्थ होऊँगा ।" शिवजी, नारद जी, ब्रह्माजी आदि महान देवता जिनकी वन्दना करते हैं, गोपिकाओं के कुमकुममण्डित स्तनों का स्पर्श करने वाले एवं वृन्दावन की भूमि पर विचरण करने वाले श्रीकृष्ण के उन चरणकमलों के दर्शन की आशा-मात्र से अक्रूर जी अत्यन्त रोमाञ्चित हो उठे । उन्होंने सोचा, "मैं इतना भाग्यवान हूँ कि आज

उन्हीं चरणारविन्दों का दर्शन कर सकूँगा । तिलक से विभूषित ललाट एवं नासिका वाले श्रीकृष्ण के सुन्दर मुख का दर्शन भी मैं निश्चित रूप से कर सकूँगा । आज मैं उनके हास्य एवं काली अलकों के भी दर्शन करूँगा । यह सुअवसर प्राप्त्ा होने का मुझे पूर्ण विश्वास है, क्योंकि मृग आज मेरे दाहिनी ओर से जा रहे हैं और यह एक मांगलिक लक्षण है । आज मेरे लिए विष्णु लोक के दिव्य धाम की शोभा का वास्तव में अवलोकन करना सम्भव होगा, क्योंकि श्रीकृष्ण परम विष्णु हैं और उन्होंने अपनी ही सदिच्छा से अवतार लिया है । वे सौन्दर्य-सिन्धु हैं; अतएव आज मेरे नयन तृप्त हो जाएँगे ।"

अकूरर जी को निस्सन्देह रूप से ज्ञात था कि श्रीकृष्ण परम विष्णु हैं । भगवान् विष्णु प्रकृति पर दृष्टिपात करते हैं और इस प्रकार भौतिक सृष्टि का जन्म होता है । यद्यपि भगवान् विष्णु इस भौतिक जगत के स्रष्टा हैं तथापि अपनी स्वयं की शक्ति के द्वारा वे प्रकृति के प्रभाव से मुक्त हैं । अपनी अन्तरंगा शक्ति से वे प्रकृति के अंधकार को भेद सकते हैं । आदि विष्णु श्रीकृष्ण ने उसी प्रकार से अपनी अन्तरंगा शक्ति के विस्तार से वृन्दावन के निवासियों की सृष्टि की । ब्रह्म-संहिता में यह भी पुष्ट किया गया है कि श्रीकृष्ण का धाम एंव वैशिष्ट्य उनकी अन्तरंगा शक्ति के विस्तार है । वही अन्तरंगा शक्ति जो वे गोकुल वृन्दावन में प्रदर्शित करते है । पृथ्वी पर वृन्दावन के रूप में प्रदर्शित हुई, जहाँ वे अपने माता-पिता, अपने सखाओं, ग्वालबालों एवं गोपिकाओं के सान्निध्य में आनन्द भोग करते हैं । अक्रूर जी के कथन से स्पष्ट है कि चूँकि श्रीकृष्ण प्रकृति के गुणों से परें दिव्य हैं, अतः रीभगवान् की प्रेमपूर्ण सेवा में संलग्न वृन्दावनवासी भी दिव्य हैं ।

अक्रूर जी ने श्रीभगवान् की दिव्य लीलाओं की आवश्यकता के विषय पर भी विचार किया । उन्होंने विचार किया कि श्रीकृष्ण के दिव्य कार्यकलान, निर्देश, गुण एवं लीलाएँ समस्त जनसाधारण के सौभाग्य के लिए हैं ।

श्रीभगवान् के दिव्य रूप गुणों, लीलाओं एवं वैशिष्ट्य की चर्चा के द्वारा मानव निरन्तर कृष्णभावनामृत में अवस्थित रह सकते हैं । ऐसा करने से अखिल ब्रह्माण्ड वस्तुतः मंगलपूर्वक रह सकता है एवं शान्तिपूर्वक प्रगति कर सकता है । किन्तु कृष्णभावनामृत के अभाव में सभ्यता एक मृत शरीर का अंलकारमात्र है । एक मृत शरीर का अलंकार-शृंगार किया जा सकता है, किन्तु चेतना के अभाव में यह साज-सज्जा व्यर्थ है । कृष्णभावनामृत के अभाव में मानव समाज व्यर्थ एवं प्राणहीन है ।

अक्रूर जी ने विचार किया, "वे श्रीभगवान्, श्रीकृष्ण अब यदुवंश के एक वंशज के रूप में आविर्भूत हुए हैं । धार्मिक सिद्धान्त उनके द्वारा व्यवस्थापित नियम हैं । जो इन नियमों को पालन करते हैं, वे देवता हैं और जो इनका पालन नहीं करते हैं, वे असुर हैं । परमेश्वर के नियमों के प्रति अत्यन्त कर्तव्यपरायण देवताओं के रक्षण हेतु ही उन्होंने स्वयं को आविर्भूत किया है । देवता एवं प्रभु के भक्तगण श्रीकृष्ण के नियमों का पालन करने में सुख अनुभव करते हैं । जैसाकि भगवद्गीता में पुष्ट किया गया है, भक्तों के रक्षण एवं असुरों के संहार के श्रीकृष्ण के इन कार्यकलापों का रवण एवं कथन सदैव ही मानव का कल्याण करते हैं । भक्तों एंव देवताओं के द्वारा भगवान् की इन तेजस्वी गतिविधियों के संकीर्तन में सदैव अभिवृद्धि होती रहेगी ।"

"श्रीकृष्ण, श्रीभगवान्, सर्व गुरुओं के गुरु हैं । वे सभी पतितात्माओं को मोक्ष प्रदान करने वाले है एवं तीनों लोकों के स्वामी हैं । भगवत्प्रेम का अञ्जन लगा कर कोई भी उनका दर्शन कर सकता है । आज मैं श्रीभगवान् के दर्शन कर सकूँगा जिन्होंने अपने दिव्य सौन्दर्य से सौभाग्य की देवी श्रीलक्ष्मी जी को सतत अपने सान्निध्य में रहने को आकर्षित कर लिया है । सम्पूर्ण सृष्टि एवं जीवात्माओं के स्वामी परमेश्वर को प्रणामाञ्जलि अर्पित करने के लिए मैं वृन्दावन पहुँचते ही रथ से उतर जाऊँगा एवं भूमि पर साष्टांग दण्डवत् प्रणाम करूँगा । महान योगीगण सदैव श्रीकृष्ण के

पदारविन्दों की पूजा करते हैं, अतएव मैं भी उनके पदारविन्दों की वन्दना करूँगा एवं वृन्दावन में ग्वालबालों के समान उनके सखाओं में से एक बन जाऊँगा । जब मैं इस रीति से श्रीकृष्ण के समक्ष नमन करूँगा तब निश्चित रूप से वे अपना अभय हस्त-कमल मेरे मस्तक पर रख देंगे । उनके पदारविन्दों में शरण लेने वाली सभी बद्धात्माओं को उनका अभय हस्त प्राप्त होता है । भौतिक अस्तित्व से भयभीत सभी प्राणियों के लिए श्रीकृष्ण ही जीवन के चरम लक्ष्य हैं । जब मैं उनके दर्शन करूँगा तब निश्चित रूप से वे मुझे अपने चरणकमलों में शरण दे देंगे । मैं अपने मस्तक पर उनके करकमलों के स्पर्श का आकांक्षी हूँ ।" जब उनके उस करकमल ने राजा इन्द्र और बलि को स्पर्श किया, वे ब्रह्माण्ड के स्वामी होने के योग्य बन गए और जब उसी कर-कमल ने गोपियों का स्पर्श किया जब वे रासलीला में कृष्ण के साथ नृत्य कर रही थी, तब उनकी सारी थकान दूर हो गईं ।

इस रीति से अक्रूर जी श्रीकृष्ण के हाथों से आशीर्वाद पाने की आशा करते थे । उन्हें ज्ञात था कि उच्चतर, मध्यम एवं निम्नतर तीनों लोकों के स्वामी एवं स्वर्गाधिपति इन्द्र ने श्रीकृष्ण को केवल जल अर्पित किया था, जिसे स्वीकार करके भगवान् ने उन्हें आशीर्वाद दिया था । उसी प्रकार बलि महाराज ने वामनदेव जी को केवल तीन पग भूमि एवं थोड़ा जल दान दिया था, जिसे वामनदेव जी ने स्वीकार कर लिया । उसी के फलस्वरूप बलि महाराज ने इन्द्र का स्थान प्राप्त किया । जब गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ रासनृतय करते करते श्रमित हो गई तब उनके मुख पर आए मुक्ता सदृश श्रमबिन्दुओं पर श्रीकृष्ण ने मानस सरोवर में उगे सुगन्धित कमल पुष्प की भाँति अपना हाथ फिराया और वे तत्क्षण विगतश्रम हो गईं । इस प्रकार अक्रूर जी श्रीकृष्ण के वरदहस्त से आशीर्वाद की आशा कर रहे थें । यदि वे कृष्णभावनामृत को अंगीकार कर लें, तो श्रीकृष्ण का वरदहस्त सभी प्रकार के मनुष्यों को आशीर्वाद

देने में सक्षम है । यदि कोई इन्द्र की भाँति भौतिक सुखों की कामना करता है, तो श्रीकृष्ण के वरदहस्त से उसे वही वरदान उपलब्ध हो सकता है । यदि कोई पवित्र एवं दिव्य कृष्ण-प्रेम में उनसे वैयक्तिक सम्पर्क एवं उनकी दिव्य देह के स्पर्श की कामना करता है, तो उसे भी उनके वरदहस्त से वरदान प्राप्त हो सकता है ।

इतने पर भी, अक्रूर जी श्रीकृष्ण के शत्रु कंस का प्रतिनिध नियुक्त होने से भयभीत थे । उन्होंने विचार किया, "मैं श्रीकृष्ण का दर्शन उनके शत्रु के सन्देशवाहक के रूप में करने जा रहा हूँ ।" उसी समय उन्होंने यह भी विचार किया कि, "परमात्मा के रूप में श्रीकृष्ण प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करते हैं, अतः उन्हें अवश्य ही मेरी हृदयगत भावना का ज्ञान होगा ।" यद्यपि अक्रूर जी का श्रीकृष्ण के शत्रु का विश्वास प्राप्त था, किन्तु उनका हृदय निर्मल था । वे श्रीकृष्ण के एक शुद्ध भक्त थे । उन्होंने श्रीकृष्ण से भेंट करने के लिए ही कंस के संदेश वाहक बनने का खतरा उठाया था । उन्हें विश्वास था कि यद्यपि वे कंस के प्रतिनिधि के रूप मे जा रहे थे, तथापि श्रीकृष्ण उन्हें एक शत्रु रूप में नहीं स्वीकारेंगे । "यद्यपि कंस के द्वारा प्रतिनिधि नियुक्त हो कर मैं एक पापपूर्ण दूतकर्म करने के हेतु जा रहा हूँ, परन्तु जब मैं श्रीभगवान् के सन्निकट जाऊँगा तब उनके सम्मुख पूर्ण विनम्रता से करबद्ध खड़ा होऊँगा । निश्चय ही मेरी भक्तिपूर्ण भावभंगिमा से वे प्रसन्न हो जाएंगे और सम्भवतः वे प्रेमपूर्ण मुस्कान दें एवं मुझ पर एक दृष्टिपात कर दें और इस प्रकार मुझे सर्वप्रकार के पापों के फल से मुक्त कर दें । तब मैं दिव्य आनन्द एवं ज्ञान के मंच पर पहुँच जाऊँगा । चूँकि श्रीकृष्ण मेरे हृदय को जानते हैं, अतः जब मैं उनके निकट जाऊँगा, वे मेरा आलिंगन कर लेंगे । मैं न केवल यदुवंश का एक सदस्य हूँ, अपितु उनका सम्बन्ध और एक निष्कलंक विशुद्ध भक्त भी हूँ । उनके दयापूर्ण आलिंगन से मेरा शरीर, मेरा हृदय एवं आत्मा शुद्ध हो जाएँगे और मेरे विगत जीवन के कर्म एवं उसके फल पूर्ण रूप से धुल

जाएँगे । जब वे मेरे शरीर को स्पर्श करेंगे तब मैं तत्क्षण विनयपूर्वक हाथ जोड़ कर खड़ा हो जाऊँगा । तब श्रीकृष्ण एवं बलराम जी निश्चित रूप से मुझे 'अक्रूर चाचा' कह कर पुकारेंगे और उस समय मेरा समस्त जीवन धन्य हो जाएगा । जब तक श्रीभगवान् किसी को मान्यता न दें, उसका जीवन सफल नहीं होता है ।"

यहाँ पर स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सबको अपनी सेवा तथा भक्ति से ऐसा प्रयत्न करना चाहिए कि श्रीभगवान् उन्हें मान्यता दें, क्योंकि इस मान्यता के अभाव में मानव योनि में जन्म निन्दित होता है । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, परमेश्वर श्रीभगवान् का प्राण-मात्र के प्रति समभाव होता है । न कोई उनका शत्रु है, न मित्र । किन्तु भक्तिपूर्वक प्रेम से अपनी सेवा करने वाले भक्त की ओर उनकी रुचि होती है । भगवद्गीता में यह भी कहा गया है कि परमेश्वर भक्त के द्वारा की गई भक्ति-सेवा मे प्रति सहानुभूति रखते हैं । अक्रूर जी ने विचार किया कि श्रीकृष्ण देवलोक के कल्पवृक्ष की भाँति हैं, जो पूजक के इच्छानुसार फल देता है । श्रीभगवान् सभी वस्तुओं के उद्गम भी हैं । एक भक्त को यह ज्ञात होना चाहिए कि किस प्रकार की सेवा करने से उसे प्रभु से मान्यता प्राप्त होगी । एतदर्थ चैतन्य चरितामृत में बताया गया है कि श्रीकृष्ण और गुरु की सेवा साथ-साथकरनी चाहिए और इस रीति से कृष्णभावनामृत में प्रगति करनी चाहिए । गुरु के निर्देश में की गई श्रीकृष्ण की सेवा ही प्रामाणिक सेवा है, क्योंकि गुरु श्रीकृष्ण के अभिव्यक्त प्रतिनिधि होते हैं । श्रीविश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर कहते हैं कि जब कोई गुरु को सन्तुष्ट कर लेता है, तब वह परमेश्वर को सन्तुष्ट कर लेता है । यह ठीक किसी शासकीय कार्यालय में कार्य करने जैसा है । हमें विभागीय अध्यक्ष के निरीक्षण में कार्य करना होता है । यदि विभाग का निरीक्षक में कार्य करना होता है । यिद विभाग का निरीक्षक किसी व्यक्ति-विशेष के कार्य में सन्तुष्ट हो, तो उसकी पदोन्नति एवं वेतन-वृद्धि स्वयमेव हो जाती है ।

तदनन्तर अक्रूर जी ने विचार किया, "जब श्रीकृष्ण एवं बलराम जी मेरे व्यवहार से प्रसन्न हो जाएँगे, तो निश्चिय ही वे मेरा हाथ पकड़ लेंगे, मुझे अपने घर के अन्दर ले जाएँगे और आदरपूर्वक मेरा अनेक प्रकार से आतिथ्य करेंगे । मुझसे कंस एवं उसके मित्रों की गतिविधियों के विषय में अवश्य ही प्रश्न करेंगे ।"

इस प्रकार श्वफल्क के पुत्र अक्रूर जी ने मथुरा से यात्रा करते समय श्रीकृष्ण का ध्यान किया । दिव्यवस्थावधान तक वे वृन्दावन पहुँच गए । श्रीकृष्ण के चिन्तन में लीन अक्रूर जी की समस्त यात्रा समय की गति का अनुभव किए बिना ही व्यतीत हो गई । जब वे वृन्दावन पहुँचे, सूर्यास्त हो रहा था । ज्योंही उन्होंने वृन्दावन की सीमा में प्रवेश किया उन्हें गोपद चिन्ह एवं श्रीकृष्ण के पगचिन्हों के दर्शन हुए । श्रीकृष्ण के चरणचिन्ह ध्वजा, त्रिशूल, वज्र एवं कमल पुष्पादि उनके पगतल के लक्षणों से युक्त थे । कृष्ण के दिव्य चरणकमलों के ये चिन्ह तीनों लोकों में सभी देवताओं और अन्य महान व्यक्तियों द्वारा पूजे जाते हैं । श्रीकृष्ण के पदचिन्हों के दर्शन होते ही वे रथ से नीचे कूद पड़े और आनन्दातिरेक से उनका शरीर प्रकम्पित हो उठा एवं उनके नेत्रों से अश्रु बहने लगे । श्रीकृष्ण के चरणकमलों के स्पर्श से पावन उस धूलि के दर्शन कर के हर्षातिरेक से अक्रूर जी मुख के बल धरती पर लौटने लगे ।

अक्रूर जी की वृन्दावन-यात्रा आदर्श है । वृन्दावन-यात्रा का विचार रखने वाले को अक्रूर जी के आदर्श पदचिन्हों का अनुसरण करना चाहिए एवं सदैव श्रीकृष्ण की गतिविधियों एवं लीलाओं का चिन्तन करना चाहिए । जैसे ही कोई वृन्दावन की सीमा पर पहुँचता हैस, उसे अपने भौतिक पद या प्रतिष्ठा का विचार किए बिना तत्काल वृन्दावन की पावन रज का अपनी देह पर आलेप करना चाहिए । श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने अपने सुप्रसिद्ध गीत में गाया है-विषय छाडिया कवे शुद्ध हबे मन । इसका अर्थ है "इन्द्रिय-सुख के दूषण को त्याग देने के पश्चात् जब मेरा

मन शुद्ध जो जाएगा तब मैं वृन्दावन की यात्रा करने में समर्थ होऊँगा ।" वास्तव में केवल टिकट क्रय कर के कोई वृन्दावन नहीं जा सकता है । अक्रूर जी ने वृन्दावन जाने की प्रक्रिया को दर्शाया है ।

जब अक्रूरर जी ने वृन्दावन में प्रवेश किया तब उन्हें गोदोहन के निरीक्षण में व्यस्त श्रीकृष्ण एवं बलराम जी के दर्शन हुए । श्रीकृष्णजी ने पीताम्बर एंव बलराम जी ने नीलाम्बर धारण किया था । अक्रूर जी ने शरद्ऋतु के पूर्ण विकसित कमलदल जैसे श्रीकृष्ण के नेत्रों का भी दर्शन किया । श्रीकृष्ण एवं बलराम जी यौवन के वस्न्त में पदार्पण कर चुके थे । यद्यपि शारीरिक आकृति में दोनों में सादृश्य था, किन्तु वर्ण में श्रीकृष्ण श्यामल एवं बलराम जी गौरवर्ण के थे । तथा मुख सुन्दर एवं शरीर पुष्ट था । वे गजों की भाँति बलशाली थे ।उनके पदचिन्हों के दर्शनापरान्त वास्तविक रूप से अक्रूर जी ने अब श्रीकृष्ण एंव बलराम जी के प्रत्यक्ष रूप से दर्शन किए । यद्यपि वे अत्यन्त प्रभावशाली व्यक्ति थे फिर भी वे स्मितमुख उनकी ओर देख रहे थे । अक्रूर जी समझ गए कि श्रीकृष्ण एवं बलराम जी वन गोचारण के पश्चात् लौटे है ।ं उन्होंने स्नानोपरान्त नवीन वस्त्र, पुष्प मालाएँ एवं रत्नजटित कंठहार धारण किए हैं । उनके शरीर पर चन्दन का आलेप किया गया था । पुष्प, चन्दन एवं भगवान् की सशरीर उपस्थिति की सुगन्ध की अक्रूर जी ने भूरि-भूरि सराहना की । भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके पूर्णांश बलराम जी के दर्शन करके उन्होंने स्वयं को कृतार्थ समझा, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि वे सृष्टि की आदि विभूतियाँ हैं ।

जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है, श्रीकृष्ण आदि श्रीभगवान् हैं एवं समस्त कारणों के कारण है । अक्रूर जी को यह ज्ञात हो सका कि श्रीभगवान् अपनी सृष्टि के कल्याण, धर्मसिद्धान्तों की पुनर्स्थापना एवं असुरों के संहार के लिए स्वयं आविर्भूत हुए हैं । अपनी अंग-कान्ति से दोनों भाई समस्त जगत के अंधकार को दूर कर रहे थे मानों वे दोनों

नीलमणि एवं रजत के दो पर्वत हों । अक्रूर जी तत्काल रथ से उतर आए एवं निस्संकोच श्रीकृष्ण एवं बलराम जी को दण्डवत् प्रणाम किया । श्रीभगवान् के चरणारविन्दों का स्पर्श करके वे दिव्य आनन्द में मग्न हो गए, उनका कंठ अवरुद्ध हो गया एवं वाणी मूक हो गई । उनके दिव्य आनन्द के कारण उनके नयनों से अविरत अश्रुधारा बह चली । वे आनन्द में ऐसे विभोर हो गए जैसे वे दृष्टि एवं वाणी की शक्ति से रहित हो गए हों । भक्तवत्सल श्रीकृष्ण ने अपने हाथों से अक्रूर जी को उठाया एवं उन्हें छाती से लगा लिया । ऐसा प्रतीत होता था मानों भगवानृ श्रीकृष्ण अक्रूर जी से अत्यन्त प्रसन्न थे । बलराम जी ने भी अक्रूर जी का आलिंगन किया । श्रीकृष्ण एवं बलराम जी उनका हाथ पकड़ कर उन्हें अपने कक्ष में ले आए एवं उन्हें बैठने के लिए उत्तर आसन दिया, पैर धोने के लिए जल दिया, उन्होंने मधु एवं अन्य सामग्रियों के उपयुक्त उपहारों के साथ उनका पूजन किया । जब अक्रूर जी ने सुखपूर्वक आसन ग्रहण कर लिया तब श्रीकृष्ण एवं बलराम जी ने उन्हें एक गऊ दान में दी । तत्पश्चात् वे उनके लिए सुस्वादु पकवान लाए जिन्हें अक्रूरर जी ने ग्रहण किया । जब अक्रूर जी ने भोजन कर लिया तब बलराम जी ने उन्हें पान व सुपारी भेंट की और उन्हें अधिक प्रसन्न एवं सुखी करने के लिए चन्दन का लेप अर्पित किया । श्रीकृष्ण ने अतिथि के स्वागत की वैदिक विधि का पूर्ण रूप से पालन किया जिससे कि अन्य सबकों यह शिक्षा मिल सके कि अपने घर मे अतिथि का स्वागत-सत्कार किस प्रकार करना चाहिए । वेद का यह निर्देश हे कि अतिथि यदि शत्रु भी हो, तो भी उसका इतना सुन्दर सत्कार होना चाहिए कि उसे अतिथि का स्वागत करने वाले से किसी भय की शंका न रहे । यदि मेजवान निर्धन हो तब भी उसे कम से कम चटाई का आसन एंव पीने को एक गिलास जल तो देना ही चाहिए । श्रीकृष्ण और बलराम जी ने अक्रूर जी के उच्च पद के अनुकूल ही उनका स्वागत किया ।

इस रीति से जब अकूरर जी का उचित स्वागत-सत्कार हो चुका तथा वे आसन ग्रहण कर चुके, तब श्रीकृष्ण के पोषक पिता नन्द महाराज ने उन्हें सम्बोधित किया "प्रिय अक्रूर जी, मैं आपसे क्या प्रश्न करूँ? मुझे ज्ञात है कि आप क्रूर एवं आसुरी प्रकृति वाले कंस के संरक्षण में हैं । जैसे वधशाला में पशुओं के लिए बधिक का संरक्षण होता है, जो भविष्य में पशुओं का वध कर देगा, कंस का संरक्षण उसी प्रकार का है । कंस इतना स्वार्थी है कि उसने अपनी ही बहन के पुत्रों का वध किया हैं, अतः मैं इस बात पर सच्चाई से विश्वास कैसे कर सकता हूँ कि वह मथुरावासियों की रखा कर रहा है ।" यह कथन अत्यन्त महत्वपूर्ण है । यदि राज्यों के राजनीतिक अथ्वा प्रशासकीय प्रमुख केवल आत्महित में लगे रहें, तो वे नागरिकों के हितों की सुरक्षा कभी नहीं कर सकते है ।

नन्द महाराज के मनमोहक वचनों को सुनकर अकूरर जी मथुरा से वृन्दावन की अपनी एकदिवसीय यात्रा का समस्त श्रम भूल गए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "अक्रूर जी का वृन्दावन में आगमन" नामक अड़तीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 39

अक्रूर जी की वापसी यात्रा व यमुना में विष्णु लोक के दर्शन

श्रीकृष्ण व नन्द महाराज ने अक्रूर जी का हार्दिक स्वागत किया तथा रात्रि में विश्राम करने के हेतु उन्हें समुचित स्थान दिया । इसी बीच बलराम व श्रीकृष्ण दोनों भाई भोजन करने गए । अक्रूर जी शैय्या पर बैठ कर विचार करने लगे कि मथुरा से वृन्दावन आते हुए उन्होंने जिन-जिन कामनाओं की पूर्ति की अपेक्षा की थी वे सभी पूर्ण हो गईं । लक्ष्मी के पति

श्रीकृष्ण अपने शुद्ध भक्त पर प्रसन्न हो कर उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर सकते हैं, किन्तु शुद्ध भक्त पर प्रसन्न हो कर उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण कर सकते हैं, किन्तु शुद्ध भक्त अपने व्यक्तिगत लाभ के लिए भगवान् से कुछ नहीं माँगता ।

भोजनोपरान्त श्रीकृष्ण व बलराम जी अक्रूर जी से रात्रि के लिए विदा लेने आए । श्रीकृष्ण ने अपने मामा कंस के विषय में पूछा, "वह अपने मित्रों तथा सगे-सम्बन्धियों से किस प्रकार व्यवहार कर रहे हैं?" उन्होंने कंस की योजनाओं के विषय में भी पूछा । श्रीभगवान् ने तत्पश्चात् अक्रूर जी को बताया कि वृन्दावन में उनके आगमन का स्वागत है । उन्होंने अक्रूर जी से पूछा कि उनके सभी सम्बन्धी व मित्र स्वस्थ व निरोग तो हैं! श्रीकृष्ण ने कहा कि उन्हें अपने मामा कंस के राज्याध्यक्ष होने का बहुत दुःख है । उन्होंने कहा कि समस्त प्रशासकीय प्रणाली में कंस सबसे बड़ा कालदोष हैं और उसके शासनकाल में नागरिकों के कल्याण की कोई अपेक्षा नहीं की जा सकती है । तदनन्तर श्रीकृष्ण ने कहा, "मेरे पिता को केवल मेरे पिता होने के कारण अनेक कष्ट सहन करने पड़े हैं । केवल इसी कारण से उन्होंने अपने अन्य पुत्रों को भी खो दिया है । आप मेरे मित्र व सम्बन्धी के रूप में आए हैं, इसे मैं अपना सौभाग्य मानता हूँ । मेरे प्रिय मित्र अक्रूर जी! कृपया अपने वृन्दावन आने का प्रयोजन बताइए ।"

इस प्रकार पूछे जाने पर यदुवंशी अक्रूर जी ने कंस द्वारा श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव जी को मारने के प्रयास सहित मथुरा में घटी सभी नवीन घटनाओं का विवरण श्रीकृष्ण को दिया । नारद जी के द्वारा श्रीकृष्ण के वसुदेव के पुत्र होने तथा नन्द महाराज के घर में छुपाये जाने के रहस्योद्घाटन के उपरान्त घटी सभी घटनाओं का भी विवरण अक्रूर जी ने दिया । अक्रूर जी ने कंस-विषयक सभी बातें बताई । उन्होंने श्रीकृष्ण को बताया कि किस प्रकार नारद मुनि ने कंस से भेंट की तथा किस प्रकार कंस ने स्वयं अक्रूर जी को अपना प्रतिनिधि बनाकर वृन्दावन भेजा

। अक्रूर जी ने कृष्ण को बताया कि नारद मुनि ने जन्मोपरान्त श्रीकृष्ण के मथुरा से वृन्दावन स्थानान्तरण तथा कंस द्वारा प्रेषित सभी असुरों के श्रीकृष्ण द्वारा संहार के विषय में भी कंस को बता दिया था । तदुपरान्त अक्रूर जी ने अपने वृन्दावन आने के प्रयोजन के विषय में श्रीकृष्ण को बताया कि वे उन्हें मथुरा ले जाने के लिए आए हैं । इन सब आयोजनों को सुन कर शत्रुवध में निपुण श्रीकृष्ण तथा बलराम कंस की योजनाओं पर मन्द हास करने लगे ।

उन्होंने नन्द महाराज से कहा कि कंस ने सभी ग्वालबालों को धनुर्यज्ञ-उत्सव में भाग लेने के लिए मथुरा जाने का निमंत्रण दिया है । कंस की इच्छा थी कि वे सब उत्सव में सम्मिलित होने के लिए वहाँ जाएँ । श्री कृष्ण के वचन सुन कर नन्द महाराज ने तत्काल सब ग्वालबालों को बुलाया तथा यज्ञ में उपहार देने के लिए सब प्रकार की दुग्धनिर्मित वस्तुओं तथा दूध का संग्रह करने का आदेश दिया । उन्होंने वृन्दावन के नगरपाल को निर्देश भेजा कि वह सभी निवासियों को कंस के महान धनुर्यज्ञ के विषय में सूचित कर दें तथा उन्हें उत्सव में सम्मिलित होने का निमंत्रण दे । नन्द महाराज ने ग्वालबालों को सूचित किया कि वे कल प्रातः काल चलेंगे । अतएव उन्होंने सबकी मथुरा-यात्रा के लिए गायों व बैलों का प्रबन्ध कर लिया ।

जब गोपियों ने देखा कि अक्रूर जी श्रीकृष्ण व बलराम जी को मथुरा ले जाने के लिए आए हैं, तो वे अत्यन्त व्याकुल हो उठीं । कुछ गोपिकाओं के सुख-दुःख से विवर्ण हो गए, उनकी हृदयगति तीव्र हो गई व वे दीर्घ निःश्वास लेने लगीं । उन्होंने देखा कि उनके केश व वस्त्र तत्काल शिथिल हो गए हैं । गृहकार्य में रत अन्य गोपियाँ श्रीकृष्ण व बलराम जी के मथुरा जाने की सूचना पाकर काम छोड़ कर ऐसी स्तब्ध हो गई जैसे सब कुछ विस्मृत हो गया हो । उनकी दशा वैसी ही थी जैसी उस प्राणी को होती है, जिसका अन्त समय आ गया हो और वह तत्काल इस जगत को छोड़

रहा हो । अन्य गोपियाँ श्रीकृष्ण-वियोग के कारण तत्क्षण मूर्च्छित हो गईं । स्वयं से उनके वार्तालाप तथा उनकी मनमोहक मुस्कान का स्मरण करके गोपियाँ दुःख में डूब गई । वे भगवान् श्रीकृष्ण के अभिलक्षणों का स्मरण करने लगीं कि किस प्रकार वे वृन्दावन की भूमि पर विचरण करते थे तथा विनोदपूर्ण वचनों से सबका हृदया आकर्षित कर लेते थे । श्रीकृष्ण तथा उनसे अपने आसन्न वियोग के विषय में चिन्ता करती हुई गोपियाँ धड़कते हृदय से एकसाथ एकत्र हो गईं । वे पूर्णतः कृष्ण के ध्यान में डूब गई और आँखों में अश्रु भर कर निम्न प्रकार से वार्तालाप करने लगीं ।

"हा दैव! तुम कितने क्रूर हो! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम्हें दूसरों पर दया करना नहीं आता है । तुम्हारी ही योजना से मित्र एक दूसरे से मिलते हैं, किन्तु उनकी मनोकामना पूर्ण हुए बिना ही तुम उन्हें विलग कर देते हो । यह ठीक बालकों की निरर्थक क्रीड़ा की भाँति हैं । पहले तो तुम हमें श्रीकृष्ण के दर्शनों का आयोजन कराते हो जिनकी काली कुंचित केशराशि उनके विशाल ललाट तथा तीक्ष्ण नासिका को और भी सुन्दर बनाती है तथा जो इस भौतिक जगत के संघर्ष को कम करने के लिए सदा मुस्काते रहते हैं । उन श्रीकृष्ण के दर्शन जब हमें हो जाते है तब तुम हमें उनसे वियोग कराने का आयोजन कर देते हो । अरे भाग्य! तुम कितने क्रूर हो किन्तु सबसे अधिक आश्चर्य तो यह है कि तुम अब उस अक्रूर के रूप में उपस्थित हुए हो जिसका अर्थ होता है, वह व्यक्ति "जो क्रूर न हो ।" प्रारम्भ में हम तुम्हारी सराहना करती थीं कि तुमने हमें श्रीकृष्ण के मनहर मुख के दर्शनार्थ ये नेत्र दिए हैं । किन्तु अब एक मूर्ख प्राणी की भाँति तुम हमारे नेत्र छीन लेना चाहते हो जिससे हम श्रीकृष्ण का पुनः यहाँ दर्शन न कर सकें । नन्दनन्दन श्रीकृष्ण भी अत्यन्त क्रूर हैं । उन्हें सदैव नवीन मित्र चाहिए । उन्हें किसी से भी अधिक समय तक मैत्री रखना भाता नहीं है । अपना घर-द्वार, मित्र या सम्बन्धी सबको त्याग कर हम वृन्दावन की गोपियाँ श्रीकृष्ण की दासियाँ बन गई हैं, किन्तु वे हमारी

उपेक्षा कर के जा रहे हैं । अब यद्यपि हम उनके प्रति पूर्ण रूप से समर्पित हैं फिर भी वे हमारी ओर देखते भी नहीं हैं । अब मथुरा की युवतियों को सुअवसर मिलेगा । वे श्रीकृष्ण के आगमन की आशा कर रही हैं वे मधुर मुस्कान से युक्त उनके मुख का दर्शन करेंगी व उसका मधुपान करेंगी । यद्यपि हम जानती हैं कि श्रीकृष्ण अत्यन्त स्थिरचित्त व दृढ़-निश्चय हैं, तथापि हमें भय है कि जब वे मथुरा की युवतियों के सुन्दर मुख देखेंगे, तो वे स्वयं को भूल जाएँगे । हमें भय है कि वे उनके वश में हो जाएँगे । फिर वे हम पर कृपालु नहीं रहेंगे । अतएव हमें श्रीकष्ण से वृन्दावन वापस आने की आशा नहीं है । वे मथुरा की बालाओं के संसर्ग को नहीं छोड़ेंगे ।"

तदुपरान्त गोपियाँ अक्रूर के कार्यों की निन्दा करने लगीं । वे कहने लगीं कि अक्रूर जी उनके प्रियतम से भी अधिक प्रिय, उनके नयनों की ज्योति, श्रीकृष्ण को लिऐ जा रहे हैं । अक्रूर जी गोपियों को बिना सांत्वना दिए, बिना बताए ही उन्हें उनकी दृष्टि से दूर ले जा रहे थे । अक्रूर जी को इतना निर्दय नहीं होना चाहिए था, उन्हें गोपियों से सहानुभूति दर्शानी चाहिए थी । गोपियों ने आगे कहा, "सबसे आश्चर्य की बात यह है कि नन्दनन्दन श्रीकृष्ण ने बिना कुछ विचार किए पहले से ही रथ पर आसन ग्रहण कर लिया है । इससे तो ऐसा प्रतीत होता है कि श्रीकृष्ण बहुत बुद्धिमान नहीं हैं हो सकता है कि वे बुद्धिमान भी हों पर दयावान नहीं हैं । न केवल श्रीकृष्ण अपितु सभी ग्वाल बाल भी इतने निष्ठुर हैं कि पहले से ही वे बैलों और बछड़ों को मथुरा यात्रा के लिए गाड़ियों में जोत रहे हैं । वृन्दावन के वयोवृद्ध भी निर्दय हैं । वे भी हमारी दुर्दशा को ध्यान में रख कर श्रीकृष्ण को मथुरा जाने से नहीं रोकते । देवता भी हमसे रुष्ट हैं, जो श्रीकृष्ण की मथुरा-यात्रा में बाधा नहीं डाल रहे हैं ।"

गोपियाँ देवताओं से प्रार्थना करने लगीं कि वे चक्रवात, तूफान अथवा अतिवृष्टि जैसी किसी प्राकृतिक बाधा पैदा कर दें जिससे कि

श्रीकृष्ण मथुरा जा सकें । तदनन्तर वे विचार करने लगीं, "अपने वयोवृद्ध माता पिता तथा संरक्षकों की उपस्थिति की चिन्ता न कर के हम सब स्वयं ही श्रीकृष्ण को मथुरा जाने से रोकेंगी । इस सीधी कार्यवाही के अतिरिक्त हमारे पास कोई दूसरा विकल्प नहीं है । हर कोई हमारे विरुद्ध है और श्रीकृष्ण को हमारी दृष्टि से दूर करना चाहता है । उनके बिना हम क्षण-भर भी जीवित नहीं रह सकती हैं ।" इस प्रकार गोपियों ने रथ के मार्ग को अवरुद्ध करने का निर्णय ले लिया । वे आपस में वार्तालान करने लगीं, "श्रीकृष्ण के साथ रासलीला करते हुए हमने एक लम्बी रात्रि एक पल के समान व्यतीत कर दी थी । हम उनके मन्दहास्य का दर्शन कर रही थीं व उनका आलिंगन कर रही थीं और उनसे बातें कर रही थीं । अब यदि वे हमसे दूर चले गए, तो हम एक पल भी कैसे जियेंगी? सूर्यास्त के समय अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम तथा सखाओं के साथ श्रीकृष्ण घर वापस आते थे । गोरज से उनका मुख मण्डित होता था तथा वे मन्द मुस्कान करते थे । वंशी बजाते हुए वे हम पर कृतापूर्ण दृष्टिपात करते थे । हम उन्हें कैसे भूल सकेंगी? हम अपने जीवन-धन श्रीकृष्ण को कैसे भुला सकेंगी? हमारे हृदय उन्होंने दिन रात कई प्रकार से पहले ही चुरा लिए हैं । अब यदि वे चले जाते हैं, तो हमारे जीवित रहने की कोई सम्भावना नहीं है ।" इस प्रकार विचार करते हुए श्रीकृष्ण के वियोग की कल्पना से गोपियाँ और भी अधिक दुःखित हो गईं । वे अपने मन को न रोक सकीं तथा श्रीकृष्ण के विभिन्न नामों, "हे प्यारे दामोदर! प्रिय माधव!" को पुकारती हुई उच्च स्वर में क्रन्दन करने लगीं ।

श्रीकृष्ण के प्रस्थान से पूर्व गोपिकाएँ सम्पूर्ण रात्रि क्रन्दन करती रहीं । सूर्योदय के साथ ही अक्रूर जी स्नानादि समाप्त कर के रथ पर बैठ गए तथा श्रीकृष्ण एवं बलराम सहित उन्होंने मथुरा के लिए प्रस्थान किया । दूध से निर्मित पदार्थों, दही, घी, दूध आदि को मिट्टी के पात्रों में भर कर, उन्हें बैलगाड़ी पर लाद कर नन्द महाराज तथा अन्य ग्वाले भी गाड़ियों में

बैठ गए । वे श्रीकृष्ण एवं बलराम जी के रथ का अनुगमन करने लगे । श्रीकृष्ण के द्वारा रथ का मार्ग अवरुद्ध न करने को कहने पर भी गोपियाँ रथ को घेर कर खड़ी हो गईं और दीन दृष्टि से श्रीकृष्ण की ओर देखने लगीं । गोपियों की दुर्दशा देख कर श्रीकृष्ण बहुत प्रभावित हुए, किन्तु जैसी कि नारद जी ने भविष्यवाणी की थी उनका कर्तव्य मथुरा को प्रस्थान करना था । अतएव श्रीकृष्ण ने गोपियों को धीरज बँधाया । उन्होंने कहा कि गोपियों को इतना दुःखी नहीं होना चाहिए । वे अपना कार्य समाप्त कर के शीघ्र ही वापस लौट आएँगे । किन्तु वे मार्ग छोड़ने को सहमत नहीं हुईं । फिर भी रथ पश्चिम की ओर बढ़ने लगा । जैसे-जैसे रथ आगे बढ़ा गोपियों के मनों ने यथासम्भव उसका अनुसरण किया । जब तक रथ की पताका दिखाई दी तब तक वे उसे देखती रहीं, अन्त में दूर रथ की केवल धूलि मात्र दिखाई दे रही थी । वे चित्रलिखित सी अविचल खड़ी थीं । गोपियों को निश्चय हो गया कि श्रीकृष्ण तत्काल वापस आने वाले नहीं हैं और अत्यन्त निराश मन से वे अपने-अपने घरों को लौट गईं । श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति से गोपियाँ अत्यन्त विचलित हो गई थीं । वे सम्पूर्ण दिवस श्रीकृष्ण की लीलाओं का चिन्तन करती रहती थीं और इस प्रकार उन्हें कुछ धैर्य मिलता था ।

अक्रूर तथा बलराम सहित भगवान् ने रथ को तीव्र गति से यमुनातट की ओर बढ़ाया । यमुना में स्नान करने मात्र से प्राणियों के सभी पाप-फल नष्ट हो जाते हैं । श्रीकृष्ण तथा बलराम जी दोनों ने नदी में स्नान किया और मुख धोया । यमुना के स्फटिक के समान पारदर्शी निर्मल जल का पान करने के पश्चात् वे पुनः रथ में बैठ गए । रथ बड़े-बड़े वृक्षों की छाया में खड़ा था और दोनों भाई वहाँ बैठ गए । तत्पश्चात् अक्रूर जी ने उनसे यमुना में स्नान करने की अनुमति माँगी । वैदिक रीति के अनुसार नदी में स्नानोपरान्त कटि तक जल में खड़े हो कर गायत्री मंत्र का पाठ करना चाहिए । जब अक्रूर जी नदी में खड़े थे, तो अचानक उन्हें जल में श्रीकृष्ण

व बलराम जी के दर्शन हुए । दोनों भाइयों को देख कर उन्हें आश्चर्य हुआ, क्योंकि उन्हें विश्वास था कि वे दोनों रथ में बैठे हैं । भ्रमित हो कर वे तत्क्षण जल से बाहर निकल आए और दोनों भाइयों को देखने के लिए रथ के समीप गए । उन्हें यह देख कर आश्चर्य हुआ कि वे पहले की ही भाँति रथ में बैठे हुए थे । जब उन्होंने उन दोनों को रथ में बैठे देखा, तो वे सोचने लगे कि उन्होंने उन्हें जल में देखा भी था या नहीं? अतएव वे पुनः नदी पर गए । इस बार उन्होंने न केवल श्रीकृष्ण एवं बलराम के दर्शन किए, अपितु अनेक देवताओं, सभी सिद्धों, चारणों व गंधर्वों के भी दर्शन किए । वे सभी भगवान् के समक्ष नतमस्तक खड़े थे । भगवान् शेषनाग की शैया पर विराजमान थे । उन्होंने सहस्रों फण वाले शेषनाग जी के भी दर्शन किए । शेषनाग जी ने नीले वस्त्र धारण किए थे और उनके कण्ठ श्वेत थे । उनके श्वेत कण्ठ हिमाच्छादित पर्वत शिखरों के समान दिखते थे । अक्रूर जी ने शेषनाग की कुण्डली में अत्यन्त गम्भीर रूप में बैठे हुए चतुर्भुज श्रीकृष्ण के दर्शन किए । उनके नयन रक्ताभ कमलदल के समान थे ।

दूसरे शब्दों में, अक्रूर जी ने वापस आने पर बलराम जी को शेषनाग के रूप में तथा श्रीकृष्ण को महाविष्णु के रूप में परिवर्तित देखा । उन्होंने मन्द हास्य करते हुए चतुर्भुज श्रीभगवान् के दर्शन किए । वे सबके प्रति आनन्ददायक थे तथा सबकी ओर कृपादृष्टि डाल रहे थे । अपनी उन्नत नासिका, विशाल भाल चौड़े कानों तथा लाल अधरों सहित वे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते थे । उनकी आजानु भुजाएँ अत्यन्त बलशाली थीं । उनके स्कन्ध उच्च थे । उनका वक्षस्थल अत्यन्त विशाल था तथा उनकी ग्रीवा शंख की भाँति थी । उनकी नाभि अत्यन्त गहरी थी तथा उनके उदर पर त्रिवली थी । किसी स्त्री के नितम्बों सदृश उनकी कटि चौड़ी और बड़ी थी और उनकी जंघाएँ हाथी की सूँड़ के समान पुष्ट थीं । उनके पगों के निम्न भाग व चरण तथा घुटने सभी सुन्दर थे । उनके चरणों के नख प्रभापूर्ण थे और उनके पदों की उँगलियाँ कमलदल के समान सुन्दर थीं

। उनता मुकुट मूल्यवान रत्नों से जटित था । उनकी कटि पर उत्तम करधनी थी तथा उनके चौड़े वक्ष पर यज्ञोपवीत शोभायमान था । उनकी कलाई में कंकण थे तथा भुजाओं में बाजूबंद । उनके पैरों में नुपूर थे । उनका देदीप्यमान सौन्दर्य नेत्रों के लिए असह्य थां उनके करतल पद्मपृष्प के समान थे । विष्णु मूर्ति के विभिन्न चिन्हों-शंख, चक्र, गदा तथा पद्म-को अपने हाथों में धारण किए वे और भी अधिक सुन्दर लग रहे थे । उनके वक्ष पर विष्णु भगवान् के विशिष्ट लक्षण मुद्रित थे और उन्होंने ताजे पुष्पों की माला धारण की हुई थी । इस प्रकार सम्पूर्ण रूप से उनका सौन्दर्य अत्यन्त मनोहारी था । अक्रूर जी ने श्रीभगवान् को अन्तरंग पार्षदों, जैसे चारों कुमारों, सनक, सनातन, सनन्द और सनत्कुमार-से घिरे हुए देखा । उनके अन्य पार्षद जैसे सुनन्द व नन्द, ब्रह्मा और शिवादिक देवता, नव योगेन्द्र ऋषिमण तथा प्रहलाद जैसे और नारद जैसे भक्त तथा आठ वसु निर्मल हृदय तथा विशुद्ध वचनों से भगवान् की वन्दना कर रहे थे । भगवान् के दिव्य व्यक्तित्व का दर्शन करके अक्रूर जी तत्क्षण भक्ति के सागर में निमग्न हो गए और उनके शरीर में दिव्य रोमाञ्च हो आया । यद्यपि एक क्षण के लिए वे मोहित हो गए थे तथापि अपनी शुद्ध चेतना बनाये रहे और भगवान् के समक्ष शीश झुका कर उन्होंने नमन किया । हाथ जोड़ कर गद्गद वाणी से वे भगवान् की स्तुति करने लगे ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "अक्रूर जी की वापसी यात्रा व यमुना में विष्णुलोक के दर्शन" नामक उनतालीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ।

अध्याय 47
गोपियों को श्रीकृष्ण का सन्देश प्रदान करना

गोपियों ने उद्धव जी के दर्शन किए, तो उन्होंने देखा कि उनकी और श्रीकृष्ण की मृखाकृति में अत्यधिक साम्य था । वे समझ गई कि वे श्रीकृष्ण के एक महान् भक्त हैं । उनकी भुजाएँ लम्बी थीं और उनके नेत्र कमलदल की भाँति थे । उन्होंने पीत वस्त्र धारण कर रखा था और कण्ठ में कमलपुष्पों की माला थी । उनका मुख अत्यन्त सुन्दर था । सारूप्य मुक्ति प्राप्त कर लेने के कारण उद्धव जी की शारीरिक आकृति भगवान् के जैसी ही थी और वे लगभग श्रीकृष्ण के समान ही दिखाई देते थे । श्रीकृष्ण की अनुपस्थिति में गोपियाँ नियमपूर्वक अपना कर्तव्य समझ कर प्रात:काल माता यशोदा के घर आती थीं । उन्हें ज्ञात था कि माता यशोदा तथा नन्द महाराज सदा दुख से आतुर रहते हैं, अत: वृन्दावन के वयोवृद्ध व्यक्तियों में सर्वश्रेष्ठ (नन्द व यशोदा) के पास आकर उन्हें प्रणाम करना उन्होंने अपना मुख्य कर्तव्य बना लिया था । कृष्ण की सखियों को देख कर नन्द जी तथा यशोदा जी दोनों श्रीकृष्ण का स्मरण करते थे और सन्तुष्ट हो जाते थे । गोपियों को भी नन्द तथा यशोदा जी के दर्शन करके प्रसन्नता होती थी । जब गोपियों ने देखा कि उद्धव जी शारीरिक आङ्गों में भी श्रीकृष्ण के प्रतिनिधि थे, तो उन्होंने विचार किया कि उद्धव जी पूर्णरूप से श्रीभगवान् के प्रति शरणागत भक्त होंगे । वे विचार करने लगीं, "ये कौन किशोर हैं, जो एकदम श्रीकृष्ण के समान दिखता है? श्रीकृष्ण के समान ही इनके भी कमल दल-से नयन हैं, वैसी ही उन्नत नासिका और सुन्दर मुख है । ये श्रीकृष्ण की ही भाँति मुस्कुरा भी रहे हैं । प्रत्येक दृष्टि से ये श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के सदृश ही हैं । इनका वेश भी एकदम श्रीकृष्ण के ही समान है । ये किशोर कहाँ से आए हैं? वह कौन सौभाग्यवती किशोरी है, जिसके ये पति हैं?" गोपियाँ इस प्रकार आपस में वार्तालाप करने लगीं । वे उनके विषय में जानने को अत्यन्त उत्सुक

थीं । चूँकि वे निश्छल ग्रामबालाएँ थीं, अत: वे उद्धव जी को घेर कर खड़ी हो गई । जब गोपियों को ज्ञात हुआ कि उद्धव जी श्रीकृष्ण का सन्देश लाए हैं, तो वे अत्यन्त प्रसन्न हो उठीं और उन्हें एकान्त स्थान में बुला लिया और उन्हें बैठने के लिए आसन दिया । वे उनसे अत्यन्त मुक्त रूप से वार्तालाप करना चाहती थीं । वे नहीं चाहती थीं कि कोई अज्ञात व्यक्ति कोई उलझन उत्पन्न करे । अत्यन्त विनम्रभाव से और विनीत शब्दों में उन्होंने उनका स्वागत करते हुए कहा: "हमें ज्ञात है कि आप श्रीकृष्ण के अत्यन्त अन्तरंग सखा हैं; इसीलिए उन्होंने अपने माता-पिता को धीरज बँधाने के निमित्त आपको वृन्दावन भेजा है । हम समझ सकती हैं कि पारिवारिक स्नेह अत्यन्त दृढ़ होता है । महान् मुनि भी जिन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया है, अपने परिवार के सदस्यों के प्रति स्नेह को शत प्रतिशत नहीं त्याग पाते हैं । यदा कदा वे उन्हें याद करते रहते हैं । अतएव श्रीकृष्ण ने आपको अपने माता-पिता के पास भेजा है, अन्यथा वृन्दावन में अब उनका कोई प्रयोजन नहीं है । अब वे नगर में हैं । अब वृन्दावन ग्राम अथवा गायों की गोचरभूमि के विषय में जान कर उन्हें क्या करना है? इन सब बातों का श्रीकृष्ण के लिए अब कोई उपयोग नहीं है, क्योंकि अब वे नगरनिवासी हो गए हैं । 'निश्चय ही अब उन्हें उन व्यक्तियों से कोई काम नहीं है, जो उनके परिवार के सदस्य नहीं हैं । कोई अपने परिवार से बाहर के व्यक्तियों की चिन्ता क्यों करे? विशेष रूप से दूसरों की पत्नियों से सम्बद्ध व्यक्ति तभी तक उनमें रुचि रखता है । जब तक इन्द्रिय-तृप्ति की आवश्यकता रहती है । वह उस भ्रमर की भाँति है जिसे पुष्पों में तभी तक रुचि है जब तक वह उनका मधु लेना चाहता है । यह अत्यन्त मनोवैज्ञानिक एवं स्वाभाविक है कि जैसे ही प्रेमी का धन समाप्त हो जाता है वैसे ही वेश्या की उसमें रुचि भी समाप्त हो जाती है । उसी भाँति जब नागरिकों को ज्ञात होता है कि शासन उनकी सुरक्षा करने में असमर्थ है, तब वे उस देश को त्याग देते हैं । एक विद्यार्थी अपनी शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् अपने विद्यालय तथा गुरु से सम्बन्ध त्याग देता है

। पूजा कराने वाले ब्राह्मण अपनी दक्षिणा के पश्चात् अपने यजमान को त्याग देते हैं । फल की ऋतु समाप्त होने पर पक्षियों की वृक्ष में रुचि भी समाप्त हो जाती हैं । किसी मेजबान के गृह में भोजन कर लेने के पश्चात् अतिथि उस गृहस्थ से सम्बन्ध तोड़ लेता है । दावाग्नि के पश्चात् जब वन में हरी घास की कमी हो जाती है, तब मृग तथा अन्य पशु उस वन को छोड़ देते हैं । इसी प्रकार एक पुरुष भी अपनी प्रिया सखी का भोग करने के बाद उससे सम्बन्ध त्याग देता है ।" इस प्रकार इतनी उपमाओं का उल्लेख करके गोपियाँ परोक्ष रूप से श्रीकृष्ण को दोष देने लगीं ।

उद्धव जी को ज्ञात था कि वृन्दावन की गोपिकाएँ केवल श्रीकृष्ण और उनकी बाल-लीलाओं के चिन्तन में ही मग्न थीं । उद्धव जी से श्रीकृष्ण के विषय में वार्तालाप करते हुए वे अपने घर के काम-काज को पूरी तरह से भूल गई । जैसे-जैसे श्रीकृष्ण में उनकी रुचि बढ़ती गई, उनको स्वयं का भी विस्मरण हो गया ।

उन गोपियों में से श्रीमती राधारानी नामक एक गोपी श्रीकृष्ण का व्यक्तिगत सान्निध्य पा चुकी थीं । इसी कारण वे श्रीकृष्ण के चिन्तन में इतनी मग्न हो गई कि वे वहाँ उड़ते हुए तथा उनके पदकमलों का स्पर्श करने का प्रयास करने वाले एक भ्रमर से संभाषण करने लगीं । जब अन्य गोपियाँ श्रीकृष्ण के दूत उद्धव जी से वार्तालाप कर रही थीं, तब श्रीमती राधारानी ने भ्रमर को श्रीकृष्ण का दूत समझा और उससे इस प्रकार वार्तालाप करने लगीं: "हे भ्रमर! तुम्हें पुष्पों का मधुपान करने का अभ्यास है, अतएव तुमने श्रीकृष्ण का दूत होने में रुचि प्रकट की है, क्योंकि उनका भी वही स्वभाव है जैसा तुम्हारा है । श्रीकृष्ण जब मेरी किसी प्रतिस्पर्धिनी युवती के स्तन का स्पर्श कर रहे थे, तब उनकी पुष्पमाला पर कुमकुम लग गया था । वही कुमकुम मैं तुम्हारी मूंछों पर लगा हुआ देख रही हूँ । तुम उस माला का स्पर्श करके अत्यन्त अभिमान का अनुभव कर रहे हो और तुम्हारी मूछे रक्ताभ हो गई हैं । तुम यहाँ मेरे लिए श्रीकृष्ण का

सन्देश ले कर आए हो । तुम मेरे चरणस्पर्श करने को व्याकुल हो । किन्तु हे भ्रमर! मैं तुम्हें चेतावनी देती हूँ कि तुम मेरा स्पर्श न करना । तुम अविश्वसनीय स्वामी के अविश्वसनीय सेवक हो । तुम्हारे अविश्वसनीय स्वामी श्रीकृष्ण का कोई भी सन्देश मुझे नहीं चाहिए ।" हो सकता है कि श्रीमती राधारानी ने जान बूझ कर श्रीकृष्ण के दूत उद्धव जी की आलोचना करने के लिए भ्रमर को इस प्रकार व्यंग्य करते हुए सम्बोधित किया हो । परोक्ष रूप से श्रीमती राधारानी ने उद्धव जी को न केवल शारीरिक आकृति में श्रीकृष्ण के अनुरूप पाया उन्होंने उन्हें श्रीकृष्ण के बराबर ही समझा । इस प्रकार उन्होंने परोक्षरूप से इंगित किया कि उद्धव जी भी उतने ही अविश्वसनीय हैं जितने कि स्वयं श्रीकृष्ण । राधारानी उन विशिष्ट कारणों को बताना चाहती थीं जिनसे वे श्रीकृष्ण तथा उनके दूत से असन्तुष्ट थीं । उन्होंने भ्रमर को सम्बोधित किया, "तुम्हारे स्वामी श्रीकृष्ण के गुण तुम्हारे जैसे ही हैं । तुम एक पुष्प पर बैठते हो, उसका थोड़ा मधु लेकर तुम तत्काल उड़ जाते हो और किसी दूसरे पुष्प पर बैठ कर उसका रसास्वादन करते हो । तुम ठीक अपने स्वामी श्रीकृष्ण की भाँति हो । उन्होंने मुझे अपने अधरामृत के रसास्वादन का अवसर एक ही बार दिया और फिर मुझे बिल्कुल त्याग कर चले गए । मुझे यह भी ज्ञात है कि नित्य कमलासन पर बैठने वाली भाग्य-देवी लक्ष्मी जी सतत श्रीकृष्ण की सेवा करती रहती हैं । किन्तु मुझे यह ज्ञात नहीं कि वे श्रीकृष्ण पर इतनी मोहित क्यों हो गई । यद्यपि उनको श्रीकृष्ण का वास्तविक चरित्र ज्ञात है, तथापि वे उन पर इतनी अनुरत क्यों हैं । हो सकता है कि वे कृष्ण के मीठे शब्दों में इतना फैंस गई हो कि वे उनके वास्तविक चरित्र को न समझ सकती हों । जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम उन लक्ष्मी जी से अधिक बुद्धिमती हैं । अब श्रीकृष्ण अथवा उनके दूत हमें और नहीं छल सकते ।" विशेषज्ञों के मतानुसार भाग्यदेवी लक्ष्मी श्रीमती राधारानी का ही एक अधीनस्थ विस्तार हैं । जिस प्रकार विष्णुमूर्तियों के रूप में श्रीकृष्ण के असंख्य विस्तार हैं, उसी प्रकार उनकी ह्लादिनी शक्ति राधारानी के भी लक्ष्मियों

के रूप में असंख्य विस्तार हैं । अतएव भाग्यदेवी लक्ष्मी जी सदैव ही गोपियों के पद तक उन्नत होने को उत्सुक रहती हैं । श्रीमती राधारानी ने आगे कहा, "अरे मूर्ख भ्रमर! तुम श्रीकृष्ण का यशगान करके और मुझे सन्तुष्ट करके पुरस्कार प्राप्त करना चाहते हो, किन्तु यह एक व्यर्थ का प्रयास है । हम गोपियाँ तो पूरी तरह से सम्पत्ति से विहीन हैं । हम अपने घरपरिवार से दूर हैं । हम श्रीकृष्ण के विषय में भलीभाँति जानती हैं । हमें तुमसे भी अधिक जानकारी है । अतएव तुम उनके विषय में जो कुछ भी कहोगे, वह हमारे लिए एक पुरानी कहानी के समान होगा । श्रीकृष्ण अब नगर में रहते हैं और अर्जुन के सखा के रूप में जाने जाते हैं । अब उनकी अनेक नवीन सखियाँ हैं और निस्सन्देह वे श्रीकृष्ण की संगति में अत्यन्त प्रसन्न हैं, क्योंकि उनके हृदय की ज्वलन्त पीड़ा श्रीकृष्ण ने अब दूर कर दी है, अतः वे प्रसन्न हैं । यदि तुम वहाँ जाकर श्रीकृष्ण का यशगान करो, तो सम्भवत: वे प्रसन्न होकर तुम्हें पुरस्कार दें । तुम अपने चाटुकार व्यवहार से मुझे शान्त करने का प्रयास कर रहे हो और इसीलिए तुमने अपना सिर मेरे चरणों के नीचे रख दिया है । किन्तु तुम जो छल करना चाहते हो वह मुझे ज्ञात है । मुझे ज्ञात है कि तुम एक बहुत बड़े छलिया श्रीकृष्ण के दूत बन कर आए हो, अतएव तुम मेरा पीछा छोड़ दो ।" "मैं समझ सकती हूँ कि तुम दो विरोधियों का पुनर्मिलन कराने में अत्यन्त कुशल हो, किन्तु तुम्हें भी यह ज्ञात होना चाहिए कि मैं न तो तुम पर भरोसा कर सकती हूँ और न ही तुम्हारे स्वामी श्रीकृष्ण पर । हमने केवल श्रीकृष्ण के लिए अपना परिवार, पति, सन्तान तथा सम्बन्धियों का त्याग कर दिया और इसके बदले उन्होंने हमारे प्रति कोई भी आभार नहीं अनुभव किया । अन्ततोगत्वा हमें उन्होंने पूरी तरह से अकेले छोड़ दिया है । क्या तुम सोच सकते हो कि हम पुन: श्रीकृष्ण पर विश्वास करेंगी? हमें ज्ञात है कि श्रीकृष्ण नवयुवतियों के संसर्ग के बिना एक क्षण भी नहीं रह सकते हैं । यह उनका स्वभाव है । उन्हें मथुरा में कठिनाई हो रही है, क्योंकि अब वे गाँव में भोलीभाली ग्वालबालाओं के मध्य नहीं हैं । श्रीकृष्ण

अब कुलीन समाज में है और उन्हें अन्य नवयुवतियों से मित्रता करने में कठिनाई हो रही होगी । सम्भवत: तुम यहाँ उनके पक्ष में तर्क करने आए हो, अथवा हमें वहाँ ले जाने के लिए आए हो । किन्तु श्रीकृष्ण यह अपेक्षा क्यों करते हैं कि हम वहाँ जाएँगी? श्रीकृष्ण तो न केवल वृन्दावन, मथुरा अपितु पूरे ब्रह्माण्ड में सभी युवतियों को फुसलाने की योग्यता रखते हैं । उनकी अद्‌भुत तथा मोहिनी मुस्कान इतनी मनोहारी है और उनकी भ्रू-भंगिमा इतनी सुन्दर है कि वे स्वर्गलोक, भूलोक अथवा पाताललोक से किसी भी स्त्री को बुला सकते हैं । भाग्य की सभी देवियों में प्रमुख महालक्ष्मी भी उनकी सेवा करने को लालायित रहती हैं । ब्रह्माण्ड की इन सभी युवतियों के समक्ष हम क्या हैं? हम तो अत्यन्त तुच्छ हैं । "श्रीकृष्ण स्वयं को अत्यन्त उदार कहते हैं और महान् सन्तगण उनकी स्तुति करते हैं । चूँकि हम अत्यन्त दीन तथा श्रीकृष्ण द्वारा उपेक्षित हैं, अत: यदि वे हम पर थोड़ी दया दिखाएँगे, तो उनके गुणों का वास्तविक उपयोग हो सकता है । हे दीन दूत ! तुम तो एक अल्पबुद्धि सेवक-मात्र हो । तुम्हें श्रीकृष्ण के विषय में अधिक ज्ञात नहीं है । तुम्हें ज्ञात नहीं है कि वे कितने अकृतज्ञ और कठोर हैं । ऐसा वे न केवल इस जीवन में अपितु पूर्वजन्मों में भी रहे हैं । यह सब हमने अपनी दादी पौर्णमासी से सुना है । उन्होंने हमें बताया है कि पिछले जन्म में श्रीकृष्ण एक क्षत्रिय परिवार में प्रकट हुए थे और श्रीरामचन्द्र के नाम से विख्यात थे । उस जन्म में अपने एक मित्र के शत्रु बालि का, एक क्षत्रिय की भाँति वध करने के स्थान पर, उन्होंने एक व्याध (शिकारी) की भाँति उसका वध किया । एक व्याध सुरक्षित स्थान में छुप कर पशु के सामने आए बिना ही उसका वध करता है । अत: भगवान् श्री रामचन्द्र को एक क्षत्रिय की भाँति बालि से प्रत्यक्ष युद्ध करना चाहिए था, किन्तु अपने मित्र द्वारा प्रेरित होकर उन्होंने एक वृक्ष के पीछे से उसका वध किया था । इस प्रकार उन्होंने एक क्षत्रिय के धार्मिक नियमों का उल्लंघन किया था । वे सीता-सौन्दर्य के प्रति इतने आकर्षित थे कि उन्होंने रावण की बहन शूर्पणखा की नाक

व कान काट कर उसे कुरूप कर दिया । शूर्पणखा ने राम जी के सामने विवाह का प्रस्ताव किया और एक क्षत्रिय के रूप में उन्हें उसे सन्तुष्ट करना चाहिए था । किन्तु वे इतने स्वार्थी थे कि वे सीता देवी को न भूल सके और शूर्पणखा को कुरूप बना दिया । क्षत्रिय रूप में उस जन्म के पूर्व, उन्होंने वामन देव के नाम से एक ब्राह्मण बालक के रूप में जन्म लिया था । उस समय उन्होंने बलि महाराज से दान माँगा था । बलि महाराज इतने उदार थे कि उन्होंने वामन देव को अपना सर्वस्व दे दिया, किन्तु वामन देव के रूप में श्रीकृष्ण ने अकृतज्ञता से उन्हें एक कौवे की भाँति बन्दी बना कर पाताल लोक की राजधानी में धकेल दिया । हमें श्रीकृष्ण के विषय में सब ज्ञात है कि वे कितने अकृतज्ञ हैं । किन्तु कठिनाई यही है कि उनके इतने क्रूर एवं कठोरहृदय होने पर भी उनके विषय में वार्तालाप करना छोड़ पाना हमारे लिए अत्यन्त कठिन है । न केवल हम ही यह वार्तालाप छोड़ने में असमर्थ हैं, अपितु महर्षि व सन्तगण भी उनके विषय में वार्तालाप करने में संलग्न रहते हैं । हम वृन्दावन की गोपियाँ इस श्यामवर्ण किशोर से और मैत्री नहीं करना चाहती हैं, किन्तु हमें यह नहीं ज्ञात है कि हम उनकी गतिविधियों के विषय में वार्तालाप करना और उनका स्मरण करना किस प्रकार त्यागें ?" चूँकि श्रीकृष्ण अद्वय (परम) हैं, अत: उनका तथाकथित निर्दय चरित्र भी उतना ही आस्वादनीय है, जितना कि उनका दयालु चरित्र । सन्तजन और महान् भक्त गोपियों के समान किसी भी परिस्थिति में श्रीकृष्ण को नहीं त्याग सकते हैं । अतएव भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने स्तुति की, "श्रीकृष्ण! आप प्रत्येक दृष्टि से मुक्त एवं स्वतंत्र हैं । आप या तो मेरा आलिंगन करें, अथवा मुझे अपने चरणों के नीचे कुचल दें-जैसी आपकी रुचि हो वैसा आप करें । मुझे पूरे जीवन भर अपने दर्शन न देकर आप मेरा हृदय भग्न कर सकते हैं, किन्तु आप ही मेरे प्रेम के केन्द्र हैं ।" श्रीमती राधारानी ने आगे कहा, "मेरे विचार में किसी को श्रीकृष्ण के विषय में नहीं सुनना चाहिए, क्योंकि जैसे ही श्रीकृष्ण के लीलामृत की एक बूंद भी कान में

पड़ती है वैसे ही व्यक्ति तत्काल राग और द्वेष के द्वन्द्व स्तर से ऊपर उठ जाता है । इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति भौतिक आसक्ति के संदूषण से पूर्णरूपेण मुक्त हो जाता है और इस भौतिक जगत, परिवार, गृह, पत्नी, सन्तान आदि उन सभी वस्तुओं का मोह त्याग देता है, जो भौतिक रूप से सभी मानव को प्रिय होती हैं । भौतिक उपलब्धियों से रहित होकर वह अपने सम्बन्धियों को भी दुखी करता है और स्वयं भी दुखी होता है । फिर वह मानव रूप में अथवा अन्य किसी भी योनि में, चाहे वह पक्षी-योनि ही हो, साधु बन कर श्रीकृष्ण की खोज में भटकता रहता है । श्रीकृष्ण को, उनके नाम, उनके गुण, उनके रूप, उनकी लीलाओं, उनकी साजसामग्री और उनके संगी-साथियों को तथ्य रूप से समझना अत्यन्त कठिन है ।" श्रीमती राधारानी ने श्रीकृष्ण के श्यामवर्ण दूत से आगे कहा, "कृपया अब श्रीकृष्ण के विषय में और बातें न करो । किसी और विषय में बातें करना श्रेष्ठ होगा । हम तो व्याध के मधुर संगीत की गूंज से मुग्ध चितकबरी जंगली हिरनी की भाँति पहले से ही शापित हैं । उसी की भाँति हम श्रीकृष्ण के मधुर वचनों से मोहित हो गई हैं और बारम्बार हम उनके चरणों के नखों की प्रभा का चिन्तन कर रही हैं और उनके संग के लिए हम और अधिक लालायित होती जा रही हैं, अतएव मेरी तुमसे विनती है कि श्रीकृष्ण के विषय में और चर्चा न करो ।" भ्रमर-दूत से श्रीमती राधारानी की यह वार्ता और उनके द्वारा श्रीकृष्ण को कई प्रकार से दोष देना, साथ ही साथ उनके विषय में चर्चा का त्याग करने में उनकी असमर्थता आदि महाभाव के लक्षण हैं । महाभाव श्रेष्ठतम दिव्य भाव का नाम है । इस महाभाव का प्राकटय केवल राधारानी और उनकी सखियों में ही सम्भव है । श्रील रूप गोस्वामी और विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर जैसे महान् आचार्यों ने राधारानी के इस महाभाव-उद्गार का विश्लेषण किया है । उन्होंने विभिन्न भावों को उद्धृण । अर्थात् विभ्रम तथा जल्पप्रतिजल्प अथवा प्रलाप को कई रूपों में वर्णन किया है । राधारानी में हमें उज्वल रस दिखाई देता है, जिसका अर्थ है सर्वाधिक

प्रदीप्त रत्न अथवा भगवत्प्रेम । जब राधारानी भ्रमर से वार्तालाप कर रही थीं और वह इधर-उधर उड़ रहा था, तो अचानक वह उनकी दृष्टि से लुप्त हो गया । श्रीकृष्ण के वियोग में वे अत्यन्त शोकाकुल थीं और भ्रमर से वार्तालाप करके आनन्द अनुभव कर रही थीं । यह सोचकर कि, वे श्रीकृष्ण के विरुद्ध जो बातें कर रही थीं उन्हें श्रीकृष्ण को बताने के लिए भ्रमर-दूत सम्भवत: उनके पास लौट गया हो, राधारानी विक्षिप्त-सी हो गई । उन्होंने सोचा "ये बातें सुनकर श्रीकृष्ण बहुत दुखी होंगे ।" इस प्रकार वे एक अन्य प्रकार के भाव में मग्न हो गई । इसी बीच वह भ्रमर इधर-उधर उड़ कर पुन: उनके समक्ष प्रकट हो गया । वे विचार करने लगीं, "श्रीकृष्ण अभी भी मुझ पर कृपालु हैं । दूत द्वारा फूट डालने वाला सन्देश लाने पर भी वे इतने दयालु हैं कि उन्होंने मुझे अपने पास बुला लाने के लिए भ्रमर को फिर भेजा है ।" इस बार श्रीमती राधारानी अत्यन्त सावधान थीं कि वे श्रीकृष्ण के विरुद्ध कुछ न कहें । उन्होंने कहा, "प्रिय सखा! मैं तुम्हारा स्वागत करती हूँ, श्रीकृष्ण इतने दयालु हैं कि उन्होंने तुम्हें पुनः भेज दिया है । श्रीकृष्ण इतने दयालु और मेरे प्रति स्नेही हैं कि उनके विरुद्ध मेरा सन्देश ले जाने पर भी सौभाग्यवश उन्होंने तुम्हें फिर भेज दिया है । प्रिय सखा! तुम्हारी जो इच्छा हो, तुम मुझसे माँग सकते हो । तुम मुझ पर इतने दयालु हो, अत: मैं तुम्हें कुछ भी दे दूँगी । श्रीकृष्ण यहाँ आने में असमर्थ हैं, अत: तुम मुझे उनके समीप ले जाने के लिए आए हो । वे मथुरा में नवीन सखियों से घिरे हुए हैं । किन्तु तुम तो एक छोटे से प्राणी हो । तुम मुझे कैसे ले जा सकते हो? जब श्रीकृष्ण लक्ष्मी जी को हृदय से लगाए हुए, उनके साथ शयन कर रहे होंगे, तब तुम उनसे मेरी भेंट कराने में मेरी सहायता किस प्रकार कर सकोगे? यह चर्चा छोड़ी । चलो, मेरे वहाँ जाने अथवा तुम्हें यहाँ भेजने के विषय में ये सब बातें भूल जाँए । कृपया मुझे यह बताओ कि मथुरा में श्रीकृष्ण कैसे हैं? क्या वे अब भी अपने पालक पिता नन्द महाराज, स्नेहमयी माता यशोदा, अपने ग्वालबाल सखाओं और अपनी दीन सखियों हम गोपियों का स्मरण करते

हैं? मुझे विश्वास है कि वे कभी-कभी हमारे विषय में अवश्य चर्चा करते होंगे जिन्होंने बिना किसी पारिश्रमिक के दासियों के समान उनकी सेवा की थी । क्या श्रीकृष्ण के यहाँ लौट आने और अपना अग्रु-सुगन्धित हाथ हमारे सिरों पर रखने की कोई सम्भावना है? कृपया ये सारे प्रश्न श्रीकृष्ण के समक्ष रखना ।" उद्धव जी समीप ही खड़े थे और उन्होंने राधारानी को इस प्रकार चर्चा करते सुना, जैसे वे श्रीकृष्ण के लिए प्राय: उन्मत्त हो गई थीं । उन्हें यह देखकर अत्यधिक आश्चर्य हुआ कि किस प्रकार गोपियाँ कृष्ण-भक्ति के सर्वश्रेष्ठ स्तर, महाभाव में सतत श्रीकृष्ण चिन्तन करने की अभ्यस्त हो गई थीं । वे श्रीकृष्ण का एक लिखित सन्देश लाए थे और गोपियों को सान्त्वना देने के लिए अब वे यह सन्देश उनके समक्ष प्रस्तुत करना चाहते थे । उन्होंने कहा, "अरे गोपियो! आपके मानव-जीवन का उद्देश्य अब पूर्ण हो गया है । आप सब श्रीभगवान् की अद्भुत भक्त हैं, अतः आप सभी प्रकार के व्यक्तियों द्वारा उपासना के योग्य हैं । आपके मन आश्चर्यजनक रूप से वासुदेव श्रीकृष्ण के चिन्तन में मग्न हैं, अत: आप तीनों लोकों में उपासना के योग्य हैं । दान देना, व्रतों का दृढ़ता से पालन करना, घोर तपस्या करना तथा यज्ञ की अग्नि को प्रज्वलित करना आदि सभी धार्मिक क्रियाओं व विधियों के पालन का लक्ष्य श्रीकृष्ण हैं । विभिन्न मंत्रों का उच्चारण, वेदों का अध्ययन, इन्द्रियदमन और ध्यान में मन को एकाग्र करने के पीछे एक ही प्रयोजन है और वह प्रयोजन श्रीकृष्ण ही हैं । आत्म-साक्षात्कार तथा जीवन की पूर्णता को प्राप्त करने की ये कुछ विधियाँ हैं । किन्तु वास्तव में इनका उद्देश्य श्रीकृष्ण की प्राप्ति और स्वयं को श्रीभगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में लगा लेना ही है । यही भगवद्गीता का भी अन्तिम निर्देश है । यद्यपि वहाँ आत्म-साक्षात्कार की विभिन्न प्रकार की विधियों का विवरण है, किन्तु अन्त में श्रीकृष्ण ने कहा है कि मानव को सब कुछ त्याग कर केवल उनकी शरण में आना चाहिए । अन्य सभी विधियों का उद्देश्य यही सिखाना है कि अन्त में श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण में किस प्रकार जाँए । भगवद्गीता का यह भी

कहना है कि एक निश्छल व्यक्ति, जो ज्ञान और तपस्या के मार्ग से आत्म-साक्षात्कार करने की चेष्टा करता है, वह कई जन्मों के पश्चात् इस शरणागति की विधि को पूरा करता है ।"

चूँकि इस प्रकार की तपस्या की पूर्णता गोपियों के जीवन में पूर्ण रूप से दिखती थी, अत: उद्धव जी उनकी दिव्य स्थिति को देखकर पूर्णरूप से सन्तुष्ट थे । उन्होंने आगे कहा, "प्रिय गोपियो! श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में जो भाव आपने बना लिया है उसे प्राप्त करना महर्षियों और सन्तों के लिए भी अत्यन्त कठिन है । आपने जीवन की सर्वोच्च सिद्धि की स्थिति प्राप्त कर ली है । आपके लिए यह एक महान् वरदान है कि आपने भगवान् श्रीकृष्ण पर अपना मन केन्द्रित कर लिया है और अपने परिवार, घर, सम्बन्धियों, पति और सन्तान को त्यागकर केवल श्रीकृष्ण को प्राप्त करने का निश्चय कर लिया है । क्योंकि अब आपका मन पूर्णरूप से परमात्मा श्रीकृष्ण में मग्न हो गया है, अतएव आप में अपने आप ही सार्वभौम प्रेम विकसित हो गया है । मैं इसे अपना परम सौभाग्य मानता हूँकि आपकी कृपा से ही आपकी यह स्थिति देखने का सुअवसर मुझे मिला है ।"

जब उद्धव जी ने कहा कि वे श्रीकृष्ण का एक सन्देश लाए हैं, तो गोपियाँ रूप से श्रीकृष्ण से सम्बन्धित हैं । किन्तु गोपियाँ श्रीकृष्ण से पूर्णरूपेण सहयोग अपनी सर्वश्रेष्ठ स्थिति के विषय में सुनने से अधिक उस सन्देश को सुनने को अधीर भावना से युक्त सम्बन्ध रखती हैं, जबकि माया से प्रभावित अन्य जीव श्रीकृष्ण का हो उठीं । अपनी उच्च स्थित की प्रशंसा सुनने में उनकी रुचि नहीं थी । उन्होंने विस्मरण कर देते हैं और स्वयं को श्रीकृष्ण से असम्बद्ध और पृथक् मानते हैं । वे श्रीकृष्ण का वह सन्देश सुनने के हेतु उद्विग्नता प्रदर्शित की जो उद्धव लाए थे । उद्धव सोचते हैं कि श्रीकृष्ण से उनका कोई सम्बन्ध नहीं है और वे स्वाधीन हैं ।

जी ने कहा, "प्रिय गोपियो! आप महान् और मृदुस्वभाव की भत हैं, आप तक यह अतएव कृष्णप्रेम अथवा कृष्णभावनामृत वस्तुओं को यथारूप

समझने के सन्देश भेजने के लिए मुझे विशेष रूप से नियुक्त किया गया है । श्रीकृष्ण ने मुझे वास्तविक ज्ञान की सिद्धावस्था है । हमारा मन कभी भी रित नहीं रह सकता है । मन आपके समीप विशेष रूप से भेजा है, क्योंकि मैं उनका सर्वाधिक अन्तरंग दास हूँ ।" सतत रूप से किसी न किसी विचार से पूर्ण रहता है और इस विचार का विषय

श्रीकृष्ण का जो लिखित सन्देश उद्धव जी लाए थे उसे उन्होंने गोपियों को नहीं श्रीकृष्ण की शक्ति के आठ तत्वों की परिधि से बाहर नहीं हो सकता है । जो व्यक्ति दिया, अपितु स्वयं ही उसे उनके समक्ष पढ़ कर सुनाया । वह सन्देश अत्यन्त विचारों के इस दार्शनिक पक्ष को जान लेता है, वह वास्तव में बुद्धिमान है और वह गम्भीरता से लिखा हुआ था जिससे कि न केवल गोपियाँ अपितु समस्त प्रयोग- श्रीकृष्ण की शरण में चला जाता है । गोपियाँ ज्ञान की इस सिद्धावस्था का एक वादी (ज्ञानी) दार्शनिक भी समझ सकें कि शुद्ध भगवत् प्रेम किस प्रकार भगवान् आदर्श सारांश हैं । वे केवल अनुमानकत्री नहीं हैं । उनके मन सदैव श्रीकृष्ण में लगे की विभिन्न शक्तियों से स्वाभाविक रूप से जुड़ा हुआ है । वैदिक ज्ञान से यह ज्ञात रहते हैं । मन श्रीकृष्ण की शक्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वास्तव में विचार, होता है कि भगवान् अनेक शक्तियों से युक्त हैं- परास्य शक्ति/वंविधवक्रूयते/ अनुभव तथा इच्छा कर सकने वाला कोई भी प्राणी श्रीकृष्ण से अलग नहीं किया जा गोपियाँ श्रीकृष्ण की इतनी अन्तरंग सखियाँ थीं कि उन्हें सन्देश लिखते समय वे सकता है । किन्तु जिस स्तर पर वह कृष्ण के साथ अपने सनातन सम्बन्ध को समझ अत्यन्त द्रवित हो गए थे और स्पष्ट रूप से नहीं लिख पाये । बृहस्पति के शिष्य सकता है, उस स्तर को कृष्णभावनामृत कहा जाता है । ऐसी रोगग्रस्त अवस्था, उद्धवजी की बुद्धि अत्यन्त तीव्र थी । अतएव लिखित सन्देश गोपियों को देने के जिसमें वह श्रीकृष्ण से अपने सनातन सम्बन्ध को नहीं समझ सकता है, एक दूषित स्थान पर उन्होंने उचित समझा कि वे स्वयं ही उसे

पढ़कर उन्हें सुना दें और उसकी अवस्था अथवा माया है । चूँकि गोपियाँ शुद्ध दिव्य ज्ञान के स्तर पर अवस्थित हैं, व्याख्या भी कर दें । अतएव उनके मन सदैव कृष्णभक्ति से पूर्ण रहते हैं । उदाहरणार्थ, जिस प्रकार अग्नि

उद्धव जी ने आगे कहा, "ये श्रीभगवान् के शब्द हैं । "प्रिय गोपियो! मेरी प्रिय तथा वायु में कोई पृथक्ता नहीं है, उसी भाँति श्रीकृष्ण और जीव भी पृथक् नहीं हैं । सखियो! कृपया यह समझ लो कि किसी भी काल, स्थान अथवा स्थिति में हम जब जीव श्रीकृष्ण को भूल जाता है, तब वह अपनी सामान्य दशा में नहीं होता । लोगों के मध्य वियोग असम्भव है, क्योंकि मैं सर्वव्यापी हूँ ।" | जहाँ तक गोपियों का सम्बन्ध है, सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करने के कारण वे ज्ञान

श्रीकृष्ण की इस सर्वव्यापकता को भगवद्गीता के सातवें और नवें अध्याय में की पूर्णता के सर्वोच्च स्तर पर स्थित हैं । तथाकथित प्रयोगवादी (ज्ञानी) दार्शनिक स्पष्ट किया गया है । नवें अध्याय में श्रीकृष्ण अपने निर्विशेष पक्ष में सर्वव्यापी बताए कभी-कभी सोचते हैं कि भक्ति मार्ग अल्पबुद्धि के व्यक्तियों के लिए है । किन्तु जब गए हैं । सब कुछ उन्हीं में अवस्थित है । किन्तु वे व्यक्तिगत रूप से सर्वत्र उपस्थित तक तथाकथित ज्ञानमार्गी भक्ति का अवलम्बन नहीं लेते हैं, उनका ज्ञान निश्चित रूप नहीं हैं । सातवें अध्याय में कहा गया है कि पंचभूत पृथ्वी, जल, अग्नि, समीर व से अशुद्ध और अपूर्ण है । वस्तुत: श्रीकृष्ण से अपने सनातन सम्बन्ध को भूल जाने गगन तथा तीन सूक्ष्म तत्व मन, बुद्धि तथा अहंकार सभी श्रीकृष्ण की अपरा (निम्न की स्थिति वियोग है, किन्तु वह भी भ्रमात्मक है, क्योंकि वास्तव में कोई वियोग श्रेणी की) शक्तियाँ हैं । किन्तु एक दूसरी पराशक्ति भी है, जिसे जीव कहते हैं । जीव नहीं है । गोपियाँ कभी-भी श्रीकृष्ण से विलग नहीं हुई थीं । दार्शनिक दृष्टिकोण से भी प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण के विभिन्न अंश हैं । अतएव श्रीकृष्ण प्रत्येक वस्तु के भी कोई वियोग नहीं था

। भौतिक और आध्यात्मिक दोनों कारण हैं । वे कारण और कार्य रूप में प्रत्येक वस्तु उद्धव श्रीकृष्ण का संदेश पढ़ते रहे । जगत भी श्रीकृष्ण से विलग नहीं है । में मिले हुए हैं । न केवल गोपियाँ अपितु सभी जीव सभी परिस्थितियों में, अपृथक् "मुझसे अलग कुछ भी नहीं है । सम्पूर्ण सृष्टि मुझ पर आश्रित है और मुझसे अलग नहीं है । सृष्टि के पूर्व भी मैं था ।" इस बात की पुष्टि वैदिक साहित्य में भी की गई है एको नारायण आसीन् न ब्रह्मा न ईशानः-सृष्टि से पूर्व केवल श्रीनारायण थे । न तो ब्रह्मा थे, न ही शिव । सम्पूर्ण सृष्टि का संचालन प्रकृति के तीन गुणों के द्वारा होता है । कहा जाता है कि ब्रह्मा ने जो रजोगुण के अवतार है इस ब्रह्माण्ड की रचना की किन्तु ब्रह्मा गौण रचयिता हैं, मूल रचयिता तो श्रीनारायण हैं । इसकी पुष्टि शंकराचार्य ने भी की है, 'नारायण, परोऽव्यकालू/"नारायण इस सृष्टि से परे हैं, दिव्य हैं ।" इस प्रकार इस सृष्टि के भीतर कुछ भी कृष्ण से पृथक नहीं है । श्रीकृष्ण विभिन्न अवतारों में अपना विस्तार करके समस्त सृष्टि की रचना करते हैं, उसका पालन करते हैं और संहार करते हैं । सब कुछ श्रीकृष्ण है और सब कुछ श्रीकृष्ण पर निर्भर है, किन्तु भौतिक शक्ति में उनकी प्रतीति नहीं होती है । अत: इसे माया अथवा भ्रम कहा जाता है । किन्तु आध्यात्मिक शक्ति में पग-पग पर तथा सभी परिस्थितियों में श्रीकृष्ण के दर्शन होते हैं । ज्ञान की इस पूर्णता की स्थिति की प्रतिनिधित्व गोपिया करती हैं । सृष्टि पूर्णरूप से श्रीकृष्ण पर निर्भर है, किन्तु वे उससे सदैव पृथक् रहते हैं । उसी भाँति जीव भी अपने भौतिक और बद्ध जीवन से पृथक् हैं यद्यपि आध्यात्मिक अस्तित्व के आधार पर भौतिक शरीर का विकास हुआ है । भगवद्गीता में समस्त सृष्टि को जीवों की माता तथा श्रीकृष्ण को पिता के रूप में स्वीकार किया गया है । जिस प्रकार पिता माता के गर्भ में इंजेक्षन देकर जीव का गर्भाधान करता है उसी भाँति श्रीकृष्ण ने सभी जीवों को भौतिक प्रकृति के गर्भ में इंजेक्शन दे कर स्थापित किया है । अपने विविध कर्मफलों के अनुसार वे विभिन्न प्रकार का शरीर ग्रहण करते हैं । किन्तु जीव सभी परिस्थितियों

में इस बद्ध भौतिक जीवन से पृथक् हैं । यदि हम केवल अपने शरीरों का ही अध्ययन करें, तो हम समझ सकते हैं कि किस प्रकार जीव इस शारीरिक आवरण से सदैव पृथक् है । शरीर की प्रत्येक क्रिया प्रकृति के तीनों गुणों की पारस्परिक अन्तक्रिया के कारण होती है । प्रत्येक क्षण हमें शरीर में अनेक परिवर्तन होते दिखाई देते हैं, किन्तु आत्मा इन सभी परिवर्तनों से पृथक् है । कोई भी प्रकृति के कार्यों की न तो सृष्टि कर सकता है न नष्ट कर सकता है और न इसमें हस्तक्षेप कर सकता है । अतएव जीव भौतिक शरीर में फँस जाता है और जागृति, सुषुप्ति तथा चेतनाहीन (स्वप्न) नामक तीन दशाओं में बद्ध हो जाता है । मन जीवन की इन तीनों दशाओं में कार्यशील रहता है । जीव को सुप्तावस्था में कोई वस्तु वास्तविक प्रतीत होती है, किन्तु वही वस्तु जाग्रतावस्थ में आने पर अवास्तविक प्रतीत होने लगती है । अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि किन्हीं विशेष परिस्थितियों में जीव किसी वस्तु को वास्तविक स्वीकार करता है, किन्तु दूसरी परिस्थितियों में वह उसी वस्तु को अवास्तविक मान लेता है । यह विषय प्रयोगवादी दार्शनिकों अथवा सांख्य योगी के अध्ययन की विषयवस्तु है । उचित निर्णय पर पहुँचने के लिए सांख्य योगी कठोर व्रत और तपस्या करते हैं । वे इन्द्रिय दमन और वैराग्य का अभ्यास करते हैं । जीवन के चरम लक्ष्य का निर्धारण करने वाले इन विभिन्न विधियों की तुलना नदियों से की गई है और श्रीकृष्ण की तुलना सागर से । जैसे सभी नदियाँ सागर की ओर प्रवाहित होती हैं, उसी भाँति ज्ञान प्राप्ति के सभी प्रयास श्रीकृष्ण की ओर जाते हैं । अनेकानेक जन्मों के प्रयास के पश्चात् जब कोई वास्तव में श्रीकृष्ण के समीप आ जाता है, तब उसे सिद्धि की अवस्था प्राप्त होती है । श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है, "सभी मुझे प्राप्त करने के पथ का अनुसरण कर रहे हैं, किन्तु भक्तिरहित मार्ग को अपनाने वालों को अपना प्रयास अत्यन्त कष्टकर प्रतीत होता है ।" क्लंशोऽधिकतरस्तेषामूअव्यक्त/सक्त चेतसाम् | भक्ति के बिन्दु तक पहुंचे बिना श्रीकृष्ण को नहीं समझा जा सकता है । भगवद्गीता में तीन

मार्गों का उल्लेख है-कर्मयोग, ज्ञानयोग तथा भक्तियोग । जिनको सकाम कर्म करने का घोर व्यसन पड़ गया है, उन्हें ऐसे कर्म करने का परामर्श दिया गया है, जो उन्हें भक्ति तक ले आएँ । जो ज्ञान के अभ्यस्त हो गए हैं उन्हें भी इस प्रकार कर्म करने की सलाह दी गई है कि वे भक्ति का साक्षात्कार कर सकें । कर्मयोग साधारण कर्म से भिन्न है और ज्ञानयोग साधारण ज्ञान से भिन्न है । अन्तत: जैसाकि भगवान् ने भगवद्गीता में कहा है- भक्त्या माम् अभिजानातिअन्तत: श्रीकृष्ण को भक्ति से ही समझ सकते हैं । गोपियों ने भक्ति के सिद्धि स्तर को प्राप्त कर लिया था, क्योंकि वे श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कुछ भी जानना नहीं चाहती थीं । इस बात की पुष्टि वेदों में की गई है, कस्मिन् भगवो विलाते सवम् इद विल/तम् भवति/ इसका अर्थ है कि केवल श्रीकृष्ण को जान लेने से अन्य सब ज्ञान अपने आप प्राप्त हो जाता है । उद्धव ने कृष्ण सन्देश आगे पढ़ते हुआ कहा, "परम का दिव्य ज्ञान अब तुम्हारे लिए आवश्यक नहीं है । तुमको जीवन के प्रारम्भ से ही मुझसे प्रेम करने का अभ्यास है ।" परम सत्य का ज्ञान विशेष रूप से भौतिक अस्तित्व से मुक्ति पाने की इच्छा रखने वालों के लिए है । किन्तु जिसने श्रीकृष्ण-प्रेम प्राप्त कर लिया है, वह पहले से ही मुक्ति के स्तर पर पहुँच चुका है । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है कि विशुद्ध भक्ति में संलग्न किसी भी व्यक्ति को मुक्ति के दिव्य स्तर पर स्थित समझना चाहिए । वास्तव में गोपियों को भौतिक अस्तित्व की वेदना का अनुभव नहीं हो रहा था, अपितु उन्हें श्रीकृष्ण के वियोग का अनुभव हो रहा था । अतएव श्रीकृष्ण ने कहा, "प्रिय गोपियो! अपने प्रति तुम्हारे सर्वोत्कृष्ट प्रेम की वृद्धि के लिए मैंने सोद्देश्य स्वयं को तुमसे दूर कर लिया है । मैंने ऐसा इसलिए किया है कि जिससे तुम लोग सतत मेरे ध्यान में मग्न रहो ।" गोपियाँ ध्यान की सिद्धावस्था में हैं । साधारणतया योगियों की रुचि भगवान् की भक्ति करने की अपेक्षा ध्यान में अधिक होती है । किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि योग-प्रणाली की पूर्णता भक्ति की आदर्श स्थिति की प्राप्ति ही है । भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि गोपियों द्वारा निरन्तर

श्रीकृष्ण का ध्यान करना सर्वोत्कृष्ट योग है । श्रीकृष्ण को स्त्री-मनोविज्ञान का भलीभाँति ज्ञान था । जब किसी स्त्री का प्रेमी उससे दूर रहता है, तब वह उसका ध्यान करती रहती है बजाये इसके कि जब वह उसके सम्मुख उपस्थित रहता है । श्रीकृष्ण गोपियों के आचरण के माध्यम से उपदेश देना चाहते थे कि जो गोपियों की भाँति निरन्तर ध्यानावस्थित रहता है, उसे निश्चित रूप से श्रीकृष्ण के चरणकमलों की प्राप्ति होती है । भगवान् श्री चैतन्य ने सामान्य जन को विप्रलम्ध सेवा का उपदेश दिया था । विप्रलम्भ विधि का अर्थ है विरह भाव में श्रीभगवान् की सेवा करने की विधि । षड्गोस्वामियों ने भी गोपियों की भाँति विरह भाव में श्रीकृष्ण की उपासना करने की शिक्षा दी थी । गोस्वामियों के विषय में श्रीनिवास आचार्य की स्तुतियों में इन विषयों की स्पष्ट व्याख्या की गई है । श्रीनिवास आचार्य ने कहा है कि गोस्वामी सदैव गोपीभाव में दिव्योन्माद के सागर में निमग्न रहते थे । जब वे वृन्दावन में निवास करते थे तब "श्रीकृष्ण कहाँ हैं? गोपियाँ कहाँ है? हे राधारानी, आप कहाँ हैं?" क्रन्दन करते हुए वे श्रीकृष्ण की खोज करते रहते थे । उन्होंने कभी यह नहीं कहा, "हमने अब राधा-कृष्ण के दर्शन कर लिए हैं, अत: हमारा ध्येय पूर्ण हो गया है ।" उनका ध्येय कभी पूर्ण नहीं हुआ, उनकी श्रीराधाकृष्ण से कभी भेंट नहीं हुई । कृष्ण ने गोपियों को स्मरण कराया कि रासलीला के समय जो गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ रासलीला में सम्मिलित न हो सकीं उन्होंने श्रीकृष्ण के चिन्तन-मात्र से अपने शरीर याग दिए । इस प्रकार वियोग का अनुभव करते हुए कृष्णभावनामृत में मग्न हो जाना श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों को प्राप्त करने की सर्वाधिक गतिशील विधि है । श्रीकृष्ण के अपने कथनानुसार गोपियों को विरह भाव की शक्ति की प्रतीति हो गई थी । उन्हें श्रीकृष्ण की उपासना की अलौकिक विधि का अनुभव हो रहा था यह इसे समझ कर कि कृष्ण उनसे दूर नहीं है प्रत्युत उनके साथ हैं । उन्हें अत्यन्त शान्ति व सुख प्राप्त हुआ । अत: गोपियाँ ने उद्धव का स्वागत प्रसन्नपूर्वक किया । वे इस प्रकार कहने लगी, 'हमने सुना है कि

यदुवंश के लिए कष्ट के स्रोत, कंस का अब वध कर दिया गया है । यह हमारे लिए सुखद समाचार है । अतएव हमें आशा है कि श्रीकृष्ण की संगति में यदुवंशी अत्यन्त प्रसन्न हैं क्योंकि वे अपने भक्तों की सभी इच्छाओं को पूर्ण कर सकते हैं । प्रिय उद्धव जी! कृपया हमें यह बताइए कि मथुरा की कुलीन तथा सुसंस्कृत युवतियों के मध्य रहते हुए श्रीकृष्ण कभी हमारे विषय में सोचते हैं अथवा नहीं? हमें ज्ञात है कि मथुरा की नारियाँ और कन्याएँ ग्रामबालाएँ नहीं हैं । वे चतुर और सुन्दर हैं । उनके लजापूर्ण और स्मितयुक्त दृष्टिनिक्षेप और अन्य स्त्रियोचित लक्षण श्रीकृष्ण को अत्यन्त मुदित करते होंगे । हमें भलीभाँति ज्ञात है कि श्रीकृष्ण को सुन्दर नारियों का व्यवहार सदैव प्रिय है । अत: ऐसा प्रतीत होता है कि वे मथुरा की नारियों के मोहपाश में बद्ध हो गए हैं । प्रिय उद्धव जी! कृपया आप हमें बताइए । कि दूसरी नारियों के मध्य रहते हुए श्रीकृष्ण को कभी हमारा स्मरण भी होता है?" दूसरी गोपी ने पूछा, "क्या कुमुदनी पुष्पों और चाँदनी से युक्त उस रात्रि का उन्हें स्मरण होता है जब वृन्दावन अत्यधिक सुन्दर हो गया था? श्रीकृष्ण हमारे साथ नृत्य कर रहे थे और वातावरण में धुंघुरुओं की झंकार गूँज रही थी । तब हमने अत्यन्त सुखद वार्तालाप किया था । क्या उन्हें उस विशेष रात्रि का स्मरण है? हमें उस रात्रि का स्मरण होता है, तो हम वियोग का अनुभव करती हैं और लगता है जैसे हमारे शरीर जल रहे हों । क्या यह अग्नि बुझाने के लिए वे वृन्दावन आने का प्रस्ताव रखते है जैसे वर्षा करके दावाग्नि बुझाने के लिए आकाश में बादल प्रकट होते हैं ।" एक अन्य गोपी ने कहा, "श्रीकृष्ण ने अपने शत्रु का वध कर दिया है और विजयी की तरह कंस के राज्य को प्राप्त कर लिया है । हो सकता है कि अब तक उन्होंने किसी राजकुमारी से विवाह कर लिया हो और अपने स्वजनों और मित्रों के मध्य अत्यन्त सुखपूर्वक रह रहे हों । अतएव श्रीकृष्ण अब इस वृन्दावन ग्राम में क्यों । आने लगे ?" एक अन्य गोपी ने कहा, 'श्रीकृष्ण भगवान् हैं! वे लक्ष्मी के पति हैं और आत्मनिर्भर हैं । उन्हें न तो हम जैसी वृन्दावन की वनबालाओं से, न ही

मथुरा की नगर-बालाओं से कोई प्रयोजन है । श्रीकृष्ण महान् परमात्मा हैं । यहाँ या वहाँ उन्हें हममें से किसी से भी कोई प्रयोजन नहीं है ।" एक अन्य गोपी ने कहा, "श्रीकृष्ण के वृन्दावन में हमारे पास लौट आने की अपेक्षा करना हमारी एक अनुचित आशा है । इसके स्थान पर हमें निराशा में भी सुखी होने का प्रयास करना चाहिए । महान् वेश्या पिंगला ने भी कहा है निराशा सबसे बड़ा सुख है । हम सबको इस सब बातों का ज्ञान है, किन्तु हमारे लिए श्रीकृष्ण के पुनः वापस लौटने की आशा का त्याग करना अत्यन्त कठिन है । जिनके वक्ष पर लक्ष्मी जी का नित्य निवास है, उन श्रीकृष्ण के साथ हुए एकान्त सम्भाषण को कौन भूल सकता है? चाहे श्रीकृष्ण उसकी कामना न करें पर वह युवती श्रीकृष्ण को नहीं भूल सकती है । प्रिय उद्धव जी! वृन्दावन नदियों, वनों और गउओं की भूमि है । यहाँ मुरली की ध्वनि सुनाई दी थी और अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी के साथ श्रीकृष्ण ने हमारे सान्निध्य में इस वातावरण का आनन्द लिया था । अतएव वृन्दावन का वातावरण हमें निरन्तर श्रीकृष्ण व बलराम जी का स्मरण कराता रहता है । श्रीदेवी लक्ष्मी के आश्रय श्रीकृष्ण के चरणचिह्नों की छाप वृन्दावन की भूमि पर है, और इन चिह्नों के कारण हम कृष्ण को नहीं भूल सकी हैं ।" गोपियों ने आगे भी कहा कि वृन्दावन अभी भी समस्त वैभव व सौभाग्य से परिपूर्ण है । जहाँ तक भौतिक आवश्यकताओं का प्रश्न है, वृन्दावन में कोई भी कमी नहीं है । किन्तु इस वैभव के होते हुए भी वे श्रीकृष्ण व बलराम जी को नहीं भूल सकती हैं । "श्रीकृष्ण की चाल, उनकी मुस्कान और उनके विनोदी शब्द आदि उन सुन्दर श्रीकृष्ण के विभिन्न आकर्षक लक्षणों का हम निरन्तर स्मरण करती रहती हैं । श्रीकृष्ण के व्यवहार ने हमें पूरी तरह से हर लिया है और उन्हें विस्मृत करना हमारे लिए असम्भव है । हम सदैव उनकी प्रार्थना करती रहती हैं और कहती हैं, "प्रिय भगवन्! प्रिय लक्ष्मीपति! हे वृन्दावन के स्वामी और दुखी भक्तों के मुक्तिदाता! हम अब दुख के सागर में गिर कर डूब गई हैं । अतएव कृपया आप पुन: वृन्दावन लौट

आइए और हमें इस दयनीय स्थिति से मुक्ति दिलाइए ।" उद्धव जी ने श्रीकृष्ण के विरह में गोपियों की दिव्य असामान्य दशा का सूक्ष्मता से अध्ययन किया और उन्होंने उनके साथ श्रीकृष्ण की सभी लीलाओं का बारम्बार गान करना ही श्रेयस्कर समझा । भौतिकतावादी व्यक्ति भौतिक दुखों की ज्वाला में सदैव दग्ध रहते हैं । गोपियाँ भी श्रीकृष्ण के विरह के कारण एक दिव्य ज्वाला में जल रही थीं । किन्तु गोपियों को व्याकुल करने वाली ज्वाला भौतिक जगत की अग्नि से भिन्न है । गोपियाँ श्रीकृष्ण के संग की सतत कामना करती थीं जबकि भौतिकतावादी व्यक्ति भौतिक सुखों के लाभ की इच्छा करते हैं ।

विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने कहा है कि जब ग्वाल-बालों ने आँखें बन्द कर रखी थीं तब श्रीकृष्ण ने प्रज्वलित दावानल से पल-भर में उनकी रक्षा की थी । उद्धव जी ने गोपियों को परामर्श दिया कि उसी भाँति यदि वे नेत्र बन्द करके श्रीकृष्ण की उनके सात शुरू से ही की गई लीलाओं का ध्यान करें, तो विरहाग्नि से उनकी रक्षा हो सकेगी । उद्धव-कृत वर्णनों को सुन कर गोपियाँ बाह्य रूप से श्रीकृष्ण की सभी लीलाओं की कल्पना कर सकती थीं और अन्त:करण से वे उन लीलाओं का स्मरण कर सकती थीं । उद्धव के निर्देशों से गोपियों को समझ में आ गया कि श्रीकृष्ण उनसे वियुक्त नहीं थे । जिस प्रकार वे श्रीकृष्ण का सतत चिन्तन कर रही थीं, वैसे ही मथुरा में रहते हुए श्रीकृष्ण भी निरन्तर उनके विषय में चिन्तन कर रहे उद्धवजी के निर्देशों और सन्देशों ने गोपियों को तत्काल मृत्यु से बचा लिया और गोपियों ने उद्धवजी के अनुग्रह को स्वीकार किया । उद्धवजी ने गोपियों के उपदेशक गुरु के समान कार्य किया और उसके बदले गोपियों ने उनकी वैसे ही उपासना की जैसे वे श्रीकृष्ण की उपासना करतीं । प्रामाणिक धर्मग्रन्थों में कहा गया है कि गुरु श्रीभगवान् के अत्यन्त अन्तरंग सेवक होते हैं, अतएव उनकी उपासना श्रीभगवान् के स्तर पर की जानी चाहिए । आचार्य इस बात को स्वीकार करते हैं कि

गुरु श्रीकृष्ण का बाह्य विस्तार है । यह ज्ञान होते ही कि श्रीकृष्ण उनके साथ हैं, गोपियों को दिव्य दाह की स्थिति से मुक्ति मिल गई । आन्तरिक रूप से वे श्रीकृष्ण के संग का अपने अन्त:करण में चिन्तन करती थीं और बाह्य रूप से उद्धव जी ने उन्हें निर्णायक निर्देश देकर श्रीकृष्ण को समझने में उनकी सहायता की ।

शास्त्रों में श्रीभगवान् को अधोक्षज कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वे इन्द्रियातीत हैं, उन्हें भौतिक इन्द्रियों की सहायता से देखना असम्भव है । यद्यपि वे इन्द्रियातीत हैं फिर भी वे सबके हृदय में उपस्थित हैं । साथ ही साथ वे ब्रह्म के सर्वव्यापी पक्ष के द्वारा सर्वत्र उपस्थित हैं । परम सत्य के तीन पक्ष हैं-श्रीभगवान्, अन्तर्यामी परमात्मा और सर्वव्यापक ब्रह्म । श्रीमद//वत में गोपियों की उद्धव जी से भेंट करते समय जिस दशा का वर्णन किया गया है, उसका अध्ययन करने मात्र से परम सत्य के उपयुक्त तीनों पक्षों को समझा जा सकता है ।

श्रीनिवास आचार्य ने कहा है कि षड्गोस्वामी सदैव गोपियों के कार्यकलापों ने चिन्तन में मग्न रहते थे । श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी गोपियों द्वारा श्रीभगवान् की उपासना की विधि का सर्वश्रेष्ठ विधि के रूप में अनुमोदन किया है । श्रील शुकदेव गोस्वामी ने भी कहा है कि गोपियों के श्रीकृष्ण से व्यवहार के विषय में उचित स्रोत से सुनने वाला व्यक्ति भक्ति की सर्वोच्च स्थिति को प्राप्त करता है । जो व्यकि पूर्ववर्ती आचार्यों द्वारा दिए गए निर्देशों का पालन करता है, वह भौतिक सुख की वासना को त्यागने में समर्थ होकर भक्ति की पराकठा पर पहुँच जाता है ।

सभी गोपियों को उद्धव जी के उपदेशों से सान्त्वना प्राप्त हुई और उन्होंने उद्धव जी से कुछ दिन और वृन्दावन में निवास करने की विनती की । उद्धव जी उनके प्रस्ताव से सहमत हो गए और न केवल कुछ दिन अपितु कुछ माह के लिए वहाँ रुक गए । उद्धव जी सदैव गोपियों को श्रीकृष्ण के दिव्य सन्देश तथा उनकी लीलाओं के चिन्तन में मग्न रखते थे । गोपियों

को ऐसा प्रतीत होता था मानो उन्हें प्रत्यक्ष श्रीकृष्ण की संगति का लाभ मिल रहा हो । जब तक उद्धव जी वृन्दावन में रहे, वहाँ के निवासियों ने उनकी संगति का आनन्द उठाया । जब वे श्रीकृष्ण के कार्यकलापो की चर्चा करते थे, तो दिवस क्षणों के समान व्यतीत हो जाते थे । वृन्दावन का प्राकृतिक वातावरण और यमुना नदी की उपस्थिति, विभिन्न प्रकार के फलपूर्ण वृक्षों के सुन्दर निकुंज, गोवर्धन पर्वत, गुफाएँ तथा खिलते हुए पुष्प आदि सभी उद्धव जी को श्रीकृष्ण-लीला का गान करने को प्रेरित करते थे । वहाँ के निवासियों ने उद्धव जी की संगति का उसी भाँति आनन्द उठाया जिस भाँति वे श्रीकृष्ण की संगति का आनन्द उठाते थे । चूँकि गोपियाँ श्रीकृष्ण पर पूर्णत: आसक्त अत: उनकी इस भावभंगिमा के प्रति उद्धवजी आकर्षित थे । श्रीकृष्ण के लिए गोपियों की व्याकुलता से उद्धव जी को प्रेरणा प्राप्त हुई । वे गोपियों को आदरपूर्वक प्रणाम करने लगे और उनके दिव्य गुणों की स्तुति में उन्होंने इस प्रकार के गीत रचे-'मानव जीवन प्राप्त सभी जीवों में गोपियाँ अपने जीवन के ध्येय में सर्वोत्कृष्ट रूप से सफल हैं । उनके विचार पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण के चरणकमलों में मग्न हैं । मुक्तिदाता मुकुन्द श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर ध्यान केन्द्रित करने का प्रयास महर्षि और हम सभी भी करते हैं, किन्तु गोपियों ने श्रीकृष्ण को प्रेम से अंगीकार कर लिया है, अत: उन्हें सहज ही इस बात का अभ्यास हो गया है । वे किसी योगिक साधन का आश्रय नहीं लेती हैं । इस सबसे यह निष्कर्ष निकलता है कि जिस व्यक्ति ने जीवन में गोपियों जैसी स्थिति प्राप्त कर ली है, उसे न भगवान् ब्रह्मा के रूप में अथवा ब्राह्मण परिवार में जन्म लेना पड़ता है और न ही ब्राह्मण की भाँति दीक्षा लेनी पड़ती है । । श्री उद्धव जी ने भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण के निम्नलिखित वचनों की पुष्टि की: उचित प्रयोजन से श्रीकृष्ण की शरण में आने वाला चाहे शूद्र हो अथवा रत्री हो, अथवा निम्न वर्ण का हो, उसे जीवन का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त होगा । गोपियो ने समस्त जगत के लिए भक्ति का एक मानदण्ड स्थापित कर दिया है । श्रीकृष्ण का निरन्तर

चिन्तन करके गोपियों के चरणचिहों पर चलकर व्यक्ति आध्यात्मिक जीवन की सर्वोच्च सिद्धावस्था को प्राप्त कर सकता है । गोपियों का जन्म किसी अत्यन्त सुसंस्कृत परिवार में नहीं हुआ था; वे अहीर-पुत्रियाँ थीं; फिर भी उन्होंने सर्वोच्च श्रीकृष्ण-प्रेम को विकसित कर लिया था-कृष्ण जो परमात्मा हैं, परमेश्वर हैं, और परम ब्रह्म हैं । आत्म-साक्षात्कार अथवा भगवत्-साक्षात्कार के लिए उच्चकुल में जन्म लेना आवश्यक नहीं है । इसके लिए केवल भगवत्-प्रेम को विकसित करने की आवश्यकता होती है । कृष्णभावनामृत में सिद्धि प्राप्त करने के लिए परमानन्द श्रीकृष्ण की प्रेममयी सेवा में निरन्तर संलग्न रहने के अतिरिक्त और किसी योग्यता की आवश्यकता नहीं होती है । श्रीकृष्ण समस्त सुख के सागर हैं और सर्वोत्कृष्ट अमृत हैं । कृष्णभावनामृत को अपनाने का प्रभाव अमृतपान करने की भाँति ही है । चाहे इसका ज्ञान हो अथवा न हो, इसका प्रभाव तो होगा ही । कृष्णभावनामृत का क्रियाशील सिद्धान्त, बिना यह विचार किए कि कोई कहाँ और कैसे जन्मा है, सर्वत्र प्रकाशित होगा । जो कोई कृष्णभावनामृत को अपनाएगा उस पर श्रीकृष्ण निस्सन्देह अपनी कृपा-दृष्टि करेंगे । उद्धव ने आगे कहा-अहीरों के कुल में जन्म लेने पर भी गोपियों को श्रीकृष्ण की जो परम कृपा प्राप्त हुई थी वह स्वयं लक्ष्मी जी को भी कभी प्राप्त नहीं हुई । निस्सन्देह उन स्त्रियों को भी नहीं प्राप्त हुई जिनके शरीर से कमल जैसी सुगन्ध निकलती है । गोपियाँ इतनी भाग्यवती हैं कि रासलीला के समय श्रीकृष्ण ने स्वयं अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन किया था । श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष उनका चुम्बन लिया था । गोपियों के अतिरिक्त यह सौभाग्य प्राप्त करना तीनों लोकों में किसी भी स्त्री के लिए सम्भव नहीं है । अत: मैं वृन्दावन में एक पौधे अथवा लता के रूप में जन्म लेना चाहता हूँ, जो इतने भाग्यशाली हैं कि गोपियाँ उन्हें पाँव लते रोंघती है । गोपियों ने मुक्तिदाता कृष्ण, मुकुन्द की जिन्हें महाऋषि-मुनि ढूँढ़ते रहते हैं, अत्यन्त प्रेम से सेवा की है । उनके लिए गोपियों ने सब कुछ त्याग दिया-अपने परिवार, अपनी सन्तान अपनी सखियाँ अपने

घर-बार तथा सभी संसार की आसक्ति । उद्धव जी गोपियों की इस उन्नत स्थिति का महत्व समझते थे और उनके चरणों पर गिर कर उनकी चरण-रज को शिरोधार्य करना चाहते थे । किन्तु गोपियों से उनकी चरण-रज माँगने का उन्हें साहस नहीं होता था । उन्हें भय था कि वे सम्भवत: इसके लिए सहमत नहीं होंगी । अतएव उनकी इच्छा थी कि गोपियों को ज्ञात हुए बिना वे उनकी पद-धूलि लेकर सिर पर लगा लें और वृन्दावन की भूमि पर तुच्छ घास अथवा वनस्पति बन जाँए । गोपियाँ श्रीकृष्ण के प्रति इतनी आकर्षित थीं कि जब वे उनकी मुरली का स्वर सुनती थीं, तो तत्काल ही वे अपना परिवार, सन्तान, सम्मान और स्त्रीसुलभ लजा को त्याग कर उधर दौड़ जाती थीं जहाँ श्रीकृष्ण खड़े रहते थे । उन्हें इसका भी ध्यान नहीं रहता था कि वे पथ पर जा रही हैं, अथवा वन में तथा अदृश्य रूप से वृन्दावन की छोटी घास तथा वनस्पतियों को उनकी चरणरज प्राप्त हो जाती थी । उद्धव जी को साहस नहीं होता था कि वे गोपियों की चरण-रज को इस जीवन में सिर पर लगाएँ अत: उन्होंने अगले जन्म में वृन्दावन में घास अथवा वनस्पति बनने की कामना की । तब उन्हें गोपियों की चरण-धूलि लेने का अवसर मिल सकेगा । nkjnk

उद्धव जी गोपियों के असामान्य सौभाग्य की सराहना करते थे जिन्होंने श्रीकृष्ण के पदकमलों को अपने उन्नत और सुन्दर स्तनों पर स्थापित करके स्वयं को सभी प्रकार के भौतिक दूषणों और चिन्ताओं से मुक्त कर लिया था । श्रीकृष्ण के चरणकमलों की उपासना न केवल लक्ष्मी जी करती हैं, अपितु ब्रह्मा, शिवादि उच्चकोटि के देवता भी उनकी वन्दना करते हैं और जिनके पदारविन्दों का उन महान् योगी भी अन्त:करण में ध्यान करते हैं । इस प्रकार उद्धव जी ने प्रार्थन की कि वे उन गोपियों के चरणकमल की धूल से निरन्तर सम्मानित हो सकें । जिन के द्वारा श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं का गान तीनों लोकों में प्रसिद्ध हो चुका है । वृन्दावन में कुछ दिन रहने के उपरान्त उद्धव जी ने श्रीकृष्ण के पास लौटने की

इच्छा व्यक्त की और नन्द महाराज तथा यशोदा जी से जाने की अनुमति माँगी । गोपियों से विदा लेने के लिए उन्होंने उनसे भी भेंट की और उनकी भी अनुमति लेने के पश्चात् मथुरा जाने के लिए वे अपने रथ पर सवार हो गए । जब उद्धवजी जाने के लिए तत्पर थे तब नन्द महाराज तथा यशोदा सहित वृन्दावन के सभी निवासी उन्हें विदा करने के लिए वहाँ आए और उन्हें वृन्दावन की अनेक प्रकार की मूल्यवान वस्तुएँ उपहार स्वरूप दीं । श्रीकृष्ण के प्रति प्रगाढ़ आसक्ति के कारण अश्रुपूरित नयनों के साथ उन्होंने अपनी भावनाओं को अभिव्यक्त किया । वे सभी उद्धव जी का आशीर्वाद चाहते थे । उनकी कामना थी कि वे सदैव श्रीकृष्ण के यशस्वी कार्यकलापों का स्मरण करते रहें, उनके मन सदैव श्रीकृष्ण के पदकमलों पर केन्द्रित रहें कि उनकी इच्छा थी; उनके शब्द सदैव श्रीकृष्ण के यशगान में संलग्न रहें और उनके शरीर सदैव श्रीकृष्ण को प्रणाम करते रहें और वे निरन्तर श्रीकृष्ण का चिन्तन करते रहें । वृन्दावनवासियों की यह प्रार्थना सर्वोत्कृष्ट प्रकार का आत्म-साक्षात्कार है । इसकी विधि अत्यन्त सरल है-मन सतत श्रीकृष्ण के चरणारविन्दों में केन्द्रित रहे, किसी अन्य विषय पर गए बिना निरन्तर श्रीकृष्ण के विषय में ही चर्चा करे और शरीर निरन्तर श्रीकृष्ण की सेवा में संलग्न रहे । विशेषरूप से इस मानव जीवन में व्यक्ति को अपना जीवन, साधन, वचन और बुद्धि सभी को भगवान् की सेवा में लगा देना चाहिए । इस प्रकार के कार्य ही मानव को सिद्धि के सर्वोच्च स्तर तक ले जा सकते हैं । सभी अधिकारियों का यही निर्णय है । वृन्दावन के निवासियों ने कहा, "भगवत् इच्छा तथा अपने कर्मफल के अनुसार प्रार्थना है कि हम केवल कृष्णभावनामृत में संलग्न रहें । भगवान् श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त कभी भी स्वर्ग या वैकुण्ठ अथवा गोलोक वृन्दावन गमन की कामना नहीं करते हैं, क्योंकि अपनी व्यक्तिगत सन्तुष्टि के हेतु उनकी कोई इच्छा नहीं होती है । शुद्ध भक्त स्वर्ग और नरक को एक समान समझता है । श्रीकृष्ण के बिना स्वर्ग भी नरक के सदृश है और श्रीकृष्ण के साथ नरक भी स्वर्ग है । जब उद्धव

जी का वृन्दावन के शुद्ध भक्तों द्वारा समुचित आदर कर लिया गया तब वे अपने स्वामी श्रीकृष्ण के पास वृन्दावन लौट आए । भगवान् श्रीकृष्ण और बलराम जी के सम्मुख सादर प्रणाम करके वे वृन्दावन के निवासियों के अद्भुत भक्तिमय जीवन का वर्णन करने लगे । तब वृन्दावन के वासियों ने उन्हें जो भी उपहार दिए थे वे सब उद्धव जी ने श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव जी तथा श्रीकृष्ण के नाना उग्रसने जी को अर्पित कर दिए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " गोपियों को श्रीकृष्ण का सन्देश प्रदान करना" नामक सैंतालीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 48

श्रीकृष्ण का भक्तों को आनन्द प्रदान करना

कई दिनों तक श्रीकृष्ण उद्धव जी से उनकी वृन्दावन यात्रा का विवरण सुनते रहे, विशेषकर अपने माता-पिता, गोपियों तथा ग्वालबालों की दशा का विवरण । भगवान् श्रीकृष्ण पूर्णतया सन्तुष्ट थे कि उद्धव जी अपने उपदेशों तथा श्रीकृष्ण के सन्देश द्वारा वृन्दावन के निवासियों को सान्त्वना देने में सफल हुए ।

तब भगवान् श्रीकृष्ण ने कुब्जा के घर जाने का निश्चय किया । कुब्जा वह कुबड़ी युवती थी जिसने श्रीकृष्ण को मथुरा में प्रवेश करते समय चन्दन अर्पण करके प्रसन्न कर दिया था । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है श्रीकृष्ण सदा अपने भक्तों को प्रसन्न करने का प्रयास करते हैं और भक्त श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने का । जैसे भक्त सदैव अपने हृदय में श्रीकृष्ण का चिन्तन करते हैं, उसी प्रकार श्रीकृष्ण भी अपने अन्त:करण में अपने

भक्तों का चिन्तन करते हैं । जब कुब्जा एक सुन्दर नगरबाला के रूप में परिवर्तित हो गयी तब उसकी इच्छा थी कि श्रीकृष्ण उसके घर याताया नगरबालाएँ अपने ग्राहकों को सन्तुट करने के लिए पुरुषों के उपभोग श अपना शरीर अर्पित करती हैं । किन्तु यह नगरवाला कुल श्रीकृष्ण के साथ अक्ती इन्द्रियतृप्ति करने की वासना के वशीभूत थी । जब श्रीकृष्ण ने कुब्जा के घर बात की इच्छा की तब निश्चय ही उन्हें इन्द्रियतृप्ति की कोई कामना नहीं थी । क्या को चन्दन का लेप अर्पित करके कुब्जा ने पहले ही उनकी इन्द्रियों को बात कर दिया था । उसकी इन्द्रियतृप्ति की विनती पर, श्रीकृष्ण ने उसके घर जाने अतिथय किया था । परन्तु वास्तव में उनका उद्देश्य इन्द्रियतृप्ति न होकर उसे एक लभत में परिवर्तित करना था । सहस्रों लक्ष्मियाँ निरन्तर श्रीकृष्ण की सेवा करती ती हैं, अतएव इन्द्रियतृप्ति के लिए उन्हें एक नगरबाला के पास जाने की कोई आवश्यकता नहीं थी । किन्तु वे सबके प्रति कृपालु हैं, अतएव उन्होंने कुब्जा के घर जाने का निश्चय किया । कहा जाता है कि कुटिल व्यक्ति के आँगन को भी चन्द्रमा अपनी चाँदनी से वंचित नहीं करता है । उसी भाँति श्रीकृष्ण किसी को भी अपनी दिव्य दया से वंचित नहीं करते हैं भले ही उसने काम, क्रोध, भय अथवा शुद्ध प्रेम किसी भी कारण से अपनी सेवा अर्पित की हो । चैतन्य-चरितामृत में कहा गया है कि यदि कोई श्रीकृष्ण की सेवा करना चाहता है और साथ ही साथ अपनी वासनात्मक इच्छाओं की तुष्टि भी करना चाहता है, तो श्रीकृष्ण उससे ऐसा व्यवहार करते हैं कि भक्त अपनी वासनात्मक इच्छाओं को भूल जाता है और पूर्णत: शुद्ध हो जाता है और सतत भगवान् की सेवा में संलग्न हो जाता है ।।

अपने वचनों को पूर्ण करने के लिए उद्धव सहित श्रीकृष्ण कुब्जा के घर गए जो अपनी कामवासनाओं की तुष्टि के लिए कृष्ण को बुलाने को अत्यन्त उत्सुक थी । जब श्रीकृष्ण उसके घर पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि

उसके घर की समस्त सजा इस प्रकार की गई थी, जो मानव की वासना को उतेजित कर सके । इससे ऐसा आभास मिलता है कि वहाँ बहुत से नग्न चित्र थे जिनके ऊपर मण्डप तथा मोतियों की मालाओं से सुसज्जित ध्वज थे, सुखदायक पलंग तथा गद्देदार आसन थे, कक्षों में पुष्पमालाएँ लटकी हुई थीं और वे धूप और अगुरु से सुगन्धित थे । कक्षों में सुगन्धित जल का छिड़काव किया गया था । सुन्दर दीपक कमरों को प्रकाशित कर रहे थे ।

जब कुब्जा ने देखा कि उसके घर आने के अपने वचन का पालन करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण उसके घर आए हैं, तो वह तत्काल उनके स्वागतार्थ आसन से उठ गई । अपनी अनेक सखियों के साथ वह श्रीकृष्ण से अत्यन्त आदर व सम्मानपूर्वक

पधारें जिससे कि वह अपनी रीति से उनका सत्कार और उनकी उपासना कर सके । वार्तालाप करने लगी । श्रीकृष्ण को बैठने के लिए उत्तम आसन प्रदान करने के पश्चात् उसने अपने पद के अनुकूल भगवान् कृष्ण की उपासना की । कुब्जा व उसकी सखियों ने उद्धव जी का भी इसी भाँति स्वागत किया । किन्तु उद्धव जी श्रीकृष्ण की बराबरी के स्तर पर बैठना नहीं चाहते थे, अत: वे धरती पर ही बैठ गए ।

साधारणतया ऐसी परिस्थितियों में लोग जैसा करते हैं, श्रीकृष्ण समय नष्ट किए बिना कुब्जा के शयन-कक्ष में प्रविष्ट हुए । इसी बीच कुब्जा ने स्नान करके अपने शरीर पर चन्दन का लेप लगा लिया । उसने उत्तम वस्त्र, मूल्यवान आभूषण तथा पुष्प मालाएँ धारण कीं । पान तथा अन्य नशीली वस्तुएँ चबाते हुए तथा अपने ऊपर सुगन्ध छिड़कते हुए वह श्रीकृष्ण के समक्ष आई । माधव नाम से प्रसिद्ध, लक्ष्मीपति श्रीकृष्ण के समक्ष वह अत्यन्त शिष्टता से खड़ी हो गई । उसकी स्मित दृष्टि और चंचल नेत्र स्त्रीसुलभ लजा से पूर्ण थे । जब श्रीकृष्ण ने देखा कि कुब्जा उनके निकट आने में असमंजस कर रही है, तो तत्काल उन्होंने चूड़ियों से सुशोभित

उसका हाथ पकड़ लिया । अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसे अपने पास खींच कर, उन्होंने उसे अपने समीप बैठा लिया । भगवान् श्रीकृष्ण को पहले चन्दन अर्पित करने मात्र से कुब्जा को सभी पापों के फल से मुक्ति मिल गई थी और वह श्रीकृष्ण के संग का आनन्द लेने के योग्य बन गई थी । तदनन्तर कुब्जा ने श्रीकृष्ण के चरणकमलों को उठा कर, वासना की ज्वाला से दग्ध अपने स्तनों पर रख लिया । श्रीकृष्ण के पदकमलों की सुगन्ध को सुंघ कर उसे तत्काल सभी वासनाओं से मुक्ति मिल गई । इस प्रकार उसे अपनी भुजाओं में श्रीकृष्ण का आलिंगन करने की अनुमति मिल गई और उसकी यह दीर्घकालीन कामना भी पूर्ण हुई कि श्रीकृष्ण उसके घर अतिथि बन कर आएँ ।

भगवद्गीता में कहा गया है कि भौतिक पापों के फल से मुक्ति मिले बिना कोई भी भगवान् की दिव्य प्रेममयी सेवा में संलग्न नहीं हो सकता है । श्रीकृष्ण को चन्दन का लेप अर्पित करने मात्र से कुब्जा को यह पुरस्कार प्राप्त हुआ । वह श्रीकृष्ण की उपासना की अन्य किसी भी रीति में प्रशिक्षित नहीं थी । अतएव वह अपने व्यवस्थाय के द्वारा श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करना चाहती थी । भगवद्गीता में इस बात की पुष्टि की गई है कि यदि कोई निश्छल हृदय से भगवान् के सुख के लिए, अपने व्यवस्थाय को अर्पित करे, तो व्यवस्थाय के द्वारा भी भगवान् की उपासना की जा सकती है । तदनन्दर कुब्जा ने श्रीकृष्ण से कहा, "प्रिय सखा! कृपया कुछ दिवस मेरे साथ रहिए । मेरे कमलनयन सखा! मेरे साथ कुछ दिन रहिए और मेरे साथ आनन्द भोग कीजिए । मैं आपको तत्काल नहीं छोड़ सकती हूँ । कृपया मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए ।"

जैसाकि वैदिक सूत्रों में कहा गया है श्री भगवान् की अनेक शक्तियाँ हैं । महाजनों के विचार में कुब्जा श्रीकृष्ण की भू-शकि का प्रतिनिधित्व करती है, जैसे कि श्रीमती राधारानी उनकी चित्-क्षति का प्रतिनिधित्व करती हैं

। यद्यपि कुब्जा ने श्रीकृष्ण से कुछ दिनों तक उसके साथ रहने की प्रार्थना की, किन्तु उन्होंने विनयपूर्वक उसे प्रतीति करा दी कि उनके लिए उसके साथ रहना सम्भव नहीं है । इस भौतिक जगत में श्रीकृष्ण कभी-कभी ही आते हैं, किन्तु आध्यात्मिक जगत से उनका सम्बन्ध नित्य है । वैकुण्ठ लोक अथवा गोलोक वृन्दावन में श्रीकृष्ण सदैव उपस्थित रहते हैं । आध्यात्मिक जगत में उनकी उपस्थिति के लिए जो परिभाषात्मक शब्द प्रयुक्त होता है वह है, "प्रकट लीला ।"

मधुर शब्दों से कुब्जा को सन्तुष्ट करने के उपरान्त श्रीकृष्ण सम्बन्ध उद्धव सहित अपने घर लौट आए । श्रीमद्भागवत में एक चेतावनी दी गई है कि श्रीकृष्ण की उपासना सरल नहीं है, क्योंकि वे विष्णु तत्वों में प्रमुख श्रीभगवान् हैं । श्रीकृष्ण की उपासना करना अथवा उनसे सम्बन्ध रखना कोई सरल कार्य नहीं है । विशेष रूप से उन भक्तों के लिए एक चेतावनी है, जो माधुर्य प्रेम के माध्यम से श्रीकृष्ण की ओर आकर्षित होते हैं । श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष सम्बन्ध के द्वारा इन्द्रियतृप्ति की कामना करना उनके लिए हितकर नहीं है । वास्तव में इन्द्रियतृप्ति की क्रियाएँ भौतिक हैं । आध्यात्मिक जगत में चुम्बन, आलिंगन जैसे लक्षण तो हैं, किन्तु भौतिक जगत में जैसी इन्द्रियतृप्ति की प्रक्रिया होती है वैसी वहाँ कोई प्रक्रिया नहीं है । यह चेतावनी मुख्यत: उन लोगों के लिए है, जो 'सहजिया" के नाम से जाने जाते हैं और यह मान कर चलते हैं कि श्रीकृष्ण एक सामान्य मानव हैं । वे एक विकृत तरीके से उनके साथ यौन जीवन भोगना चाहते हैं । आध्यात्मिक सम्बन्ध में इन्द्रियतृप्ति सर्वाधिक नगण्य है । जो कोई श्रीकृष्ण के साथ विकृत इन्द्रियतृप्ति का सम्बन्ध रखने की कामना करता है, उसे अल्पबुद्धि समझना चाहिए । उसकी प्रवृत्ति के शुद्धिकरण की आवश्यकता है ।

कुछ काल पश्चात् श्रीकृष्ण ने अक्रूर जी के घर जाने के अपने वचन को पूर्ण किया । श्रीकृष्ण से अक्रूर जी का उनके सेवक का सम्बन्ध था और

श्रीकृष्ण उनसे कुछ सेवा लेना चाहते थे । बलराम जी व उद्धव, दोनों के साथ श्रीकृष्ण अक्रूरजी के घर गए । जब श्रीकृष्ण, बलरामजी तथा उद्धव जी अक्रूर जी के घर पहुँचे, तब अक्रूर जी आगे आकर उद्धव से गले मिले और भगवान् कृष्ण और बलराम जी दोनों को सादर प्रणाम किया । श्रीकृष्ण, बलरामजी तथा उद्धव जी ने भी अक्रूर जी को प्रणाम किया । अक्रूर जी ने उन सबको बैठने के लिए उचित आसन दिया । जब वे सुविधापूर्वक बैठ गए तब अक्रूर जी ने उनके चरण पखारे और वह जल अपने सिर पर छिड़का । तत्पश्चात् नियमित उपासना के रूप में अक्रूर जी ने उन्हें उत्तम वस्त्र पुष्प तथा चन्दन का लेप अर्पित किया । वे तीनों ही अक्रूर जी के व्यवहार से अत्यन्त सन्तुष्ट हो गए । तत्पश्चात् भूमि पर शीश रख कर अक्रूर जी ने श्रीकृष्ण के समक्ष प्रणाम किया । इसके उपरान्त श्रीकृष्ण के पदारविन्दों को अपनी गोद में रख कर अक्रूर जी उन्हें धीरे-धीरे दबाने लगे । जब अक्रूर जी श्रीकृष्ण और बलराम जी की उपस्थिति से पूर्णरूप से सन्तुष्ट हो गए, तब कृष्णप्रेम के कारण उनके नयनों में अश्रु भर आए और वे इस प्रकार स्तुति करने लगे"प्रिय भगवन् कृष्ण तथा बलराम! यह आपकी अतीव कृपा है कि आपने कंस तथा उसके सहयोगियों का वध कर दिया । यदुवंश के समस्त परिवार को आपने महान् संकट से उबार लिया । महान् यदुवंश की रक्षा के आपके कार्य को यदुवंशी सदैव स्मरण करेंगे । प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम जी ! आप दोनों ही मूल पुरुष हैं जिनसे सभी वस्तुओं की उत्पत्ति होती है । आप सभी कारणों के मूल कारण हैं । आपकी शक्ति अचिन्त्य है और आप सर्वव्यापी हैं । आपके अतिरिक्त और कोई स्थूल या सूक्ष्म कार्य-कारण नहीं है । वेदों के अध्ययन से प्रतीत होने वाले परब्रह्म आप ही हैं । अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा आप हम सबके सम्मुख दृष्टिगोचर होते हैं । आप अपनी ही शक्तियों से इस सृष्टि की रचना करते हैं और आप स्वयं इसमें प्रवेश कर जाते हैं । जिस प्रकार पचंभूत, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा आकाश विभिन्न प्रकार के शरीरों द्वारा व्यक्त सभी पदार्थों में वितरित

रहते हैं, उसी भाँति अपनी ही शक्ति से निर्मित अनेक प्रकार के शरीरों में आप अकेले ही प्रवेश कर जाते हैं । आप शरीर में व्यष्टिक आत्मा के रूप में तथा साथ ही साथ स्वतंत्र परमात्मा के रूप में प्रवेश करते हैं । भगवद्गीता में इस बात की पुष्टि की गई है कि भौतिक शरीर का निर्माण आपकी अपरा शक्ति के द्वारा होता है । और आत्माएँ आपके ही विभिन्न अंश हैं तथा परमात्मा आपका अन्तर्यामी प्रतिनिधि है । यह भौतिक शरीर, जीव तथा परमात्मा एक व्यष्टिक प्राणी का निर्माण करते हैं, किन्तु मूल रूप से वे सब एक भगवान् की ही विभिन्न शक्तियाँ हैं । अक्रूरजी ने आगे कही, "इस भौतिक जगत में सत, रज तथा तम नामक त्रिगुणों की अन्तक्रिया के द्वारा आप समस्त सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार कर रहे हैं । आप उन भौतिक गुणों की क्रियाओं में नहीं फँसते हैं, क्योंकि आपका परम ज्ञान सर्वदा अप्रभावित रहता है, जबकि जीवों का ज्ञान प्रकृति के तीन गुणों से प्रभावित हो जाता है ।" भगवान् इस भौतिक सृष्टि में प्रविष्ट होते हैं और समयानुसार रचना, पालन व संहार करते हैं । उसी भाँति उनके विभिन्नांश जीव भौतिक तत्वों में प्रविष्ट होते हैं और उनके लिए भौतिक शरीर की रचना होती है । भगवान् तथा जीवों में यह अन्तर है कि जीव भगवान् का अंश है और उसकी प्रवृत्ति भौतिक गुणों की क्रियाप्रतिक्रिया से प्रभावित हो जाने की होती है । परब्रह्म श्रीकृष्ण सदैव पूर्ण ज्ञान में अवस्थित होने के कारण इन क्रियाओं से अप्रभावित रहते हैं; इसीलिए श्रीकृष्ण का नाम अच्युत है, जिसका अर्थ है, वह व्यक्ति जिसका कभी भी पतन नहीं होता है । श्रीकृष्ण के आध्यात्मिक स्वरूप का ज्ञान भौतिक क्रियाओं से कभी प्रभावित नहीं होता है, जबकि उनके विभिन्न सूक्ष्म अंश भौतिक क्रियाओं के कारण अपनी आध्यात्मिक पहचान भूल जाने की प्रवृत्ति रखते हैं । वैयक्तिक जीव नित्यरूप से भगवान् के विभिन्न अंश हैं । मूल अग्नि, श्रीकृष्ण, के चिल्कण के रूप में उनकी प्रवृत्ति बुझ जाने की होती है । अत: जीव भौतिक क्रियाओं से प्रभावित हो सकते हैं जबकि कृष्ण कभी नहीं हो सकते । अक्रूर जी ने आगे कहा, "अल्पज्ञ

मानव भ्रमवश आपके दिव्य रूप को भी भौतिक शक्ति (माया) से निर्मित समझते हैं । वह धारणा किसी भी रूप में आपके लिए प्रयुक्त नहीं की जा सकती है । वस्तुत: आप पूर्ण रूप से आध्यात्मिक हैं और आप में तथा आपके श्रीविग्रह में कोई भेद नहीं है । इसी कारण आपके बद्ध अथवा मुक्त होने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है । जीवन की किसी भी स्थिति में आप सर्वदा मुक्त हैं । जैसाकि श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है "केवल मूढ़ तथा दुर्जन ही आपको एक सामान्य मनुष्य मानते हैं ।" आपको अपने जैसा एक भौतिक प्रकृति से बद्ध प्राणी मानना हमारे अपूर्ण ज्ञान के कारण होने वाली एक त्रुटि है । जब लोग वेदों के मूल ज्ञान से विचलित हो जाते हैं, तब वे साधारण जीवों को आप भगवान् से एकात्म करने का प्रयास करते हैं । आप इस धरा पर इस शुद्ध ज्ञान की पुनस्र्थापना के हेतु अपने मूल रूप में प्रकट हुए हैं जीव न तो भगवान् के बराबर हैं, न ही उनसे एक है । प्रिय भगवन्! आप सदैव शुद्धसत्व में अवस्थित रहते हैं । वास्तविक वैदिक ज्ञान की स्थापना के हेतु आपका अवतार आवश्यक है । नास्तिक दर्शन यह प्रतिपादित करने का प्रयास करता है कि ईश्वर और जीव एक ही हैं, जब कि वैदिक ज्ञान इसके विरुद्ध है । प्रिय भगवन् श्रीकृष्ण! इस बार आप वसुदेव के घर उनके पुत्र के रूप में प्रकट हुए हैं । आपके साथ आपके पूर्ण अंश श्रीबलराम भी प्रकट हुए हैं । समस्त नास्तिक राजपरिवारों का उनकी विशाल सैन्य शक्ति के साथ वध करना आपका प्रयोजन है । पृथ्वी के भार को कम करने के लिए आप स्वयं अवतरित हुए हैं । इस ध्येय की पूर्ति के हेतु यदुवंश के एक परिवार के सदस्य के रूप में प्रकट होकर आपने यदुवंश को यशस्वी बनाया है । "प्रिय भगवन्! आपकी उपस्थिति से आज मेरा घर पावन हो गया है । मैं जगत का सर्वाधिक भाग्यशाली व्यक्ति हो गया हूँ । समस्त देवों, पितरों, जीवों, राजाओं तथा सम्राट्रों के पूज्य श्रीभगवान्, जो कि सबके परमात्मा हैं, मेरे घर पधारे हैं । उनके चरणकमलों का जल (गंगाजल) तीनों लोकों को पावन कर रहा है और अब वे दया करके मेरे घर पधारे हैं । वस्तुत:

तीनों लोकों के ज्ञानीजनों में ऐसा कौन है, जो आपके पदकमलों की शरण में आकर, आपके प्रति समर्पण नहीं करेगा? यह जानते हुए कि अपने भक्तों के प्रति आपके समान स्नेहमय और कोई नहीं हो सकता है, कौन ऐसा मूर्ख है, जो आपका भक्त बनना अस्वीकार करेगा? समस्त वैदिक साहित्य में यह घोषणा की गई है कि आप सभी जीवों के सर्वाधिक प्रिय मित्र हैं । भगवद्गीता में भी इस बात की पुष्टि की गई है- सुहृद सवभूतानामू/ आप अपने भक्तों की इच्छाओं को पूर्ण करने में पूर्णरूप से समर्थ श्रीभगवान् हैं । आप सबके सच्चे मित्र हैं । यद्यपि आप भक्तों को आत्मदान करते हैं फिर भी आपकी मूल शक्ति का कभी ह्रास नहीं होता है । आपकी शक्ति की न तो कभी क्षति होती है न कभी उसमें वृद्धि होती है । "प्रिय भगवन्! महान् योगियों और देवों के लिए भी आपकी लीलाओं को ठीक-ठीक समझना कठिन है । वे भी आप तक पहुँचने में असमर्थ हैं; फिर भी अपनी अहैतुकी दया के कारण आप मेरे घर आने को सहमत हुए हैं । मेरे भौतिक जीवन की यात्रा का यह सर्वाधिक मांगलिक क्षण है । आपकी अनुकम्पा से ही मैं अब समझ सकता हूँ कि मेरा घर, मेरी पत्नी, मेरी सन्तान और मेरी सांसारिक सम्पत्ति सब भौतिक जीवन के विभिन्न बन्धन हैं । कृपया इस ग्रन्थि को काट कर झूठे समाज, मैत्री तथा प्रेम के इस प्रगाढ़ बन्धन से मेरी रक्षा कीजिए ।" भगवान् श्रीकृष्ण अक्रूर जी की स्तुति से अत्यन्त प्रसन्न हुए । उनकी मुस्कान अक्रूर जी को और अधिक मुग्ध कर रही थी । भगवान् ने उनके विनम्र भक्तिमय कथन का इस प्रकार उत्तर दिया, "प्रिय अक्रूर जी ! आपकी विनम्रता के बावजूद मैं आपको अपने से श्रेष्ठ मानता हूँ । आप मेरे पिता, गुरु और सर्वाधिक हितैषी मित्र के स्तर के हैं । अतएव आप मेरे पूज्य हैं । आप मेरे चचा हैं, अत: आप सदैव मेरा रक्षण करेंगे । मैं चाहता हूँ कि आप मेरा पालन करें, क्योंकि मैं भी आपकी सन्तानों में से एक हूँ । इस वात्सल्य सम्बन्ध के अतिरिक्त भी आप सदैव पूज्य हैं । सौभाग्य की कामना करने वाले व्यक्तियों को आप जैसे महानुभाव की सादर वन्दना करनी चाहिए

। आप देवताओं से भी बढ़कर हैं । लोगों को जब किसी इन्द्रियतृप्ति की आवश्यकता होती है, तब वे देवताओं की उपासना करते हैं । देवता अपने भक्तों को अपनी उपासना करने के पश्चात् वर देते हैं । किन्तु अक्रूर जी जैसे भक्त लोगों का चरम कल्याण करने को सदैव तत्पर रहते हैं । एक सन्त या भत किसी का भी कल्याण करने के लिए मुक्त होता हैं, जबकि देवता लोग अपनी पूजा किए जाने के उपरान्त ही वर दे सकते हैं । तीर्थ स्थान का लाभ वहाँ जाने पर ही प्राप्त किया जा सकता है । किसी देवता विशेष की उपासना करने पर इच्छापूर्ति में बहुत अधिक समय लगता है, किन्तु प्रिय अक्रूर जी ! आपके समान सन्त भक्तों की सभी इच्छाओं की पूर्ति तत्काल कर सकते हैं । प्रिय अक्रूर जी ! आप सदैव हमारे मित्र तथा शुभचिन्तक हैं । आप सदैव हमारे कल्याण के लिए कार्य करने को तत्पर रहते हैं । अतएव आप कृपा करके हस्तिनापुर जाइए और देखिए कि पाण्डवों के लिए क्या व्यवस्था की गई है?" श्रीकृष्ण पाण्डु पुत्रों के विषय में जानने को अत्यन्त उत्सुक थे, क्योंकि जब पाण्डव अत्यन्त अल्पायु के थे तभी उनके पिता का देहाव्यवस्थान हो गया था । अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त दयालु होने के कारण श्रीकृष्ण उनके विषय में जानने के लिए उत्सुक थे । अतएव उन्होंने अक्रूर जी को अपना प्रतिनिधि बना कर वास्तविक स्थिति की जानकारी प्राप्त करने के लिए हस्तिनापुर जाने के लिए कहा । श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "मैंने सुना है कि राजा पाण्डु की मृत्यु के उपरान्त उनके अल्पायु पुत्र युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल और सहदेव अपनी विधवा माँ के साथ धृतराष्ट्र के सरंक्षण में आ गए हैं, जो उनके संरक्षक के रूप में उनकी देखरेख करने वाले हैं । किन्तु मैंने यह भी सुना है कि धृतराष्ट्र न केवल जन्म से ही अन्धे हैं, अपितु वे अपने क्रूर पुत्र दुर्योधन के स्नेह में भी अंधे हैं । पाँचों पाण्डव राजा पाण्डु के पुत्र हैं, किन्तु दुर्योधन की योजनाओं तथा कुचक्रों के कारण धृतराष्ट्र पाण्डवों के प्रति अनुकूल व्यवहार नहीं करते हैं । कृपया आप वहाँ जाइए और इस तथ्य का अध्ययन कीजिए कि धृतराष्ट्र पाण्डवों से कैसा व्यवहार कर रहे हैं ।

आपका विवरण मिलने पर मैं विचार करूंगा कि पाण्डवों पर किस प्रकार अनुग्रह किया जाए ।" इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूर जी को हस्तिनापुर जाने का आदेश दिया और तत्पश्चात् वे बलराम जी तथा उद्धव जी के साथ घर लौट आए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण द्वारा भक्तों को आनन्द प्रदान करना" नामक अड़तालीसवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 49
दुष्प्रेरित धृतराष्ट्र

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की आज्ञा पाकर अक्रूर जी हस्तिनापुर गए । कहा था । नई दिल्ली के उस भाग को जो अभी भी इन्द्रप्रस्थ के नाम से विख्यात है, सामान्यतया लोग पाण्डवों की पुरानी राजधानी मानते हैं । हस्तिनापुर नाम से ही आभास मिलता है कि वहाँ बहुत सारे हस्ती अर्थात् हाथी थे । चूँकि पाण्डवों ने राजधानी में अनेकानेक हाथी रखे थे, अत: इसका नाम हस्तिनापुर पड़ गया । हाथी पालने में अत्यधिक धन व्यय होता है, अत: अनेकानेक हाथी पालने के लिए राजधानी का अत्यन्त सम्पन्न होना आवश्यक है । हस्तिनापुर हाथी, घोड़े, रथ तथा अन्य वैभवों से परिपूर्ण था । हस्तिनापुर पहुँचने पर अक्रूर जी ने देखा कि राजधानी सभी प्रकार के वैभवों से परिपूर्ण थी । हस्तिनापुर के राजाओं को समस्त विश्व के शासक माना जाता था । समस्त राज्य में उनका यश दूर-दूर तक फैला हुआ था और वे विद्वान ब्राह्मणों के परामर्श के अनुसार राज-काज चलाते थे । वैभवपूर्ण राजधानी को देखने के पश्चात् अक्रूर जी ने राजा धृतराष्ट्र से भेंट की । उन्होंने राजा के साथ बैठे हुए भीष्म पितामह के भी

दर्शन किए । उनसे मिलने के पश्चात् वे विदुर जी तथा अपनी बहन कुन्ती के दर्शनार्थ गए । एक के पश्चात् एक करके वे राजा बाह्वीक, उनके पुत्र द्रोणाचार्य, कृपाचार्य, कर्ण तथा सुयोधन से मिले । (सुयोधन दुर्योधन का ही दूसरा नाम है) तब उन्होंने द्रोणाचार्य के पुत्र, अश्वत्थामा तथा पाँचों पाण्डव भाइयों तथा नगर में रहने वाले अन्य मित्रों तथा सम्बन्धियों से भेंट की । अक्रूर जी गान्दिनी के पुत्र के रूप में विख्यात थे, अत: वे जिस किसी से भी मिले उसने उनका स्वागत करने में प्रसन्नता अनुभव की और अपने सम्बन्धियों के कुशल समाचार और अन्य गतिविधियों के विषय में पूछा । अक्रूर जी को उत्तम के विषय में पूछा । चूँकि श्रीकृष्ण ने अक्रूर जी को हस्तिनापुर भेजा था, अतएव यह समझना चाहिए कि वे कूटनीतिक स्थिति का अध्ययन करने में अत्यन्त बुद्धिमान थे । राजा पाण्डु की मृत्यु के उपरान्त, पाण्डु के पुत्रों की उपस्थिति के बावजूद, धृतराष्ट्र विधान के विरुद्ध सिंहासन पर बैठे हुए थे । अक्रूर जी अच्छी तरह समझ गए थे कि दुष्प्रेरित धृतराष्ट्र का अपने पुत्रों के पक्ष में अधिक झुकाव है । वस्तुत: धृतराष्ट्र ने पहले से ही राज्य को हथिया लिया था । अब वे पाण्डवों का सफाया करने के लिए छल-कपट कर रहे थे । अक्रूर जी यह भी जानते थे कि दुर्योधन के नेतृत्व में धृतराष्ट्र के सब पुत्र कुटिल राजनीतिज्ञ हैं । धृतराष्ट्र भीष्म और विदुर के सदुपदेशों के अनुसार कार्य नहीं कर रहे थे । इसके विपरीत वे कर्ण और शकुनी जैसे लोगों की कुटिल सलाह से कार्य कर रहे थे । अक्रूर जी ने समस्त राजनीतिक स्थिति का अध्ययन करने के लिए कुछ माह तक हस्तिनापुर में रहने का निश्चय किया । धीरे-धीरे कुन्ती और विदुर से अक्रूर जी को ज्ञात हुआ कि पाँचों पाण्डव सैन्य विज्ञान में असामान्य रूप से दक्ष थे और उनकी शारीरिक शक्ति भी अत्यधिक विकसित थी । इसी कारण धृतराष्ट्र के पुत्र उनके प्रति असहनशील और विद्वेषी थे । पाण्डव सच्चे शूर-वीर के समान कार्य करते थे । उनमें क्षत्रियों के सभी सद्गुण थे । वे अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण राजकुमार थे और सदैव प्रजा का कल्याण करने की सोचते रहते थे ।

अक्रूर जी को यह भी ज्ञात हुआ कि धृतराष्ट्र के ईष्यालु पुत्रों ने पाण्डवों को विष देकर मारने का प्रयास किया था । अक्रूर जी कुन्ती के चचेरे भाई थे, अतएव उनसे मिलने के बाद कुन्ती ने अपने पैतृक सम्बन्धियों के विषय में पूछना आरम्भ किया । अपनी जन्मभूमि का स्मरण करके उनके नेत्र अश्रुपूर्ण हो गए । उन्होंने अक्रूर जी से पूछा कि क्या उनके पिता, माता, भाई, बहनें तथा घर पर अन्य मित्र अभी भी उन्हें स्मरण करते हैं? उन्होंने विशेष रूप से अपने यशस्वी भतीजों श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के विषय में पूछा । उन्होंने पूछा, "क्या भक्तवत्सल! भगवान् श्रीकृष्ण, मेरे पुत्रों का स्मरण करते हैं? क्या बलरामजी हमारा स्मरण करते हैं?" अपने अन्त:करण में कुन्ती को अपनी स्थिति सिंहों से घिरी हुई हिरनी के समान प्रतीत हो रही थी । वास्तव में उनकी स्थिति वैसी ही थी । अपने पति राजा पाण्डु की मृत्यु के पश्चात् कुन्ती को पाँचो पाण्डवों का लालन पोषण करना पड़ा, किन्तु धृतराष्ट्र के पुत्र सदैव उनके वध की योजना बनाते रहते थे । निश्चित रूप से वे अनेक सिंहों से घिरे हुए भोले-भाले पशु के समान रह रही थीं । भगवान् श्रीकृष्ण की भत होने के कारण वे सदैव उनका चिन्तन करती थीं और सोचती थीं कि एक दिन श्रीकृष्ण आएँगे और उन्हें उनकी भयावह स्थिति से बचाएँगे । उन्होंने अक्रूर जी से पूछा कि क्या पितृहीन पाण्डवों को धृतराष्ट्र और उसके पुत्रों की कपटी राजनीति से मुक्त होने का मार्ग बताने के लिए श्रीकृष्ण यहाँ आने का विचार रखते हैं? अक्रूर जी से इन सब विषयों पर चर्चा करके कुन्ती स्वयं को असहाय अनुभव करने लगीं और इस प्रकार पुकारने लगीं, "प्रिय कृष्ण ! प्रिय कृष्ण ! तुम परम योगी हो; समस्त ब्रह्माण्ड के परमात्मा हो । तुम समस्त ब्रह्माण्ड के यथार्थ हितैषी हो । प्रिय गोविन्द! इस समय तुम मुझसे बहुत दूर हो, किन्तु फिर भी मैं तुम्हारे चरणकमलों की शरण में आने की प्रार्थना करती हूँ । इस समय अपने पाँचों पितृहीन पुत्रों सहित मैं अत्यन्त दुखी हूँ । मैं अच्छी तरह से समझ सकती हूँ कि तुम्हारे पदकमलों के अतिरिक्त मेरी और कोई शरण अथवा आश्रय नहीं है । तुम श्रीभगवान् हो । अत: तुम्हारे

चरणकमल सभी दुखी आत्माओं को मुक्ति दे सकते हैं । केवल तुम्हारी दया से ही प्राणी बारम्बार जन्म-मृत्यु के बन्धन से सुरक्षित रह सकता है । प्रिय कृष्ण! तुम परम शुद्ध, परमात्मा तथा सभी योगियों के स्वामी हो । मैं क्या कह सकती हूँ? मैं तुमको केवल सादर प्रणाम कर सकती हूँ । कृपया मुझ पूर्णरूपेण शरणागत भत को स्वीकार करो ।" यद्यपि श्रीकृष्ण वहाँ उनके सम्मुख उपस्थित नहीं थे फिर भी कुन्ती ने उनकी स्तुति इस प्रकार की मानो वे श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित थीं । कुन्ती के चरणचिहों पर चल कर ऐसा करना किसी के लिए भी सम्भव है । सब जगह श्रीकृष्ण की शारीरिक रूप से उपस्थिति आवश्यक नहीं है । वे आध्यात्मिक शक्ति के द्वारा वास्तव में सब स्थानों पर उपस्थित रहते हैं और आवश्यकता केवल इस बात की है कि मनुष्य निश्छल मन से उनकी शरण में जाए । जब कुन्ती अत्यन्त भावपूर्वक श्रीकृष्ण की स्तुति कर रही थीं तब वे स्वयं को रोक न सकीं और अक्रूर जी के समक्ष उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगीं । विदुरजी भी वहाँ उपस्थित थे । अक्रूर जी तथा विदुर दोनों के हृदय पाण्डवों की माता के प्रति सहानुभूतिपूर्ण विचारों से भर गए । वे कुन्ती के पुत्रों युधिष्ठिर, अर्जुन, भीम, नकुल तथा सहदेव का यशगान करके उन्हें सान्वना देने लगे । यह कह कर कि उनके पुत्र असामान्य रूप से बलशाली हैं और कुन्ती को उनके विषय में चिन्तित नहीं होना चाहिए, अक्रूर जी और विदुर ने उन्हें सान्वना दी । उन दोनों ने यह भी कहा कि कुन्ती के पुत्र असाधारण रूप से बलशाली हैं और उन्हें चिन्ता नहीं करनी चाहिए, क्योंकि उनका जन्म यमराज, इन्द्र तथा वायु जैसे महान् देवताओं से हुआ था ।

अक्रूर जी ने घर वापस जाकर कुन्ती और उनके पाँचों पुत्रों की अत्यन्त विषम | पाण्डवों का उद्देश्य न्यायसंगत था, अत: उनकी विजय होगी और धृतराष्ट्र के पुत्रों का परिस्थिति का विवरण श्रीकृष्ण को देने का निश्चय किया । वे सर्वप्रथम धृतराष्ट्र को सद् परामर्श देना चाहते थे जिन का

झुकाव अपने पुत्रों के पक्ष में तथा पाण्डवों के विरोध में था । जब धृतराष्ट्र मित्रों और सम्बन्धियों के मध्य बैठे हुए थे तब अक्रूर जी ने उन्हें "वैचित्रवीर्य" के नाम से सम्बोधित किया । "वैचित्रवीर्य" का अर्थ है विचित्रवीर्य के पुत्र । धृतराष्ट्र के पिता का नाम विचित्रवीर्य था, किन्तु वे उनके आत्मज पुत्र नहीं थे । वे व्यासदेव के आत्मज पुत्र थे । पुराने समय में यह प्रथा थी कि यदि कोई पुरुष सन्तानोत्पत्ति में असमर्थ रहता था, तो उसका भाई उसकी पत्नी के गर्भ से सन्तानोत्पत्ति (देवरेण सुतोत्पति) कर सकता था । यह प्रथा अब कलियुग में निषिद्ध है । अक्रूर जी ने व्यंग्यपूर्वक धृतराष्ट्र को वैरचित्रवीर्य कह कर सम्बोधित किया, क्योंकि वस्तुत: उसकी उत्पत्ति उसके पिता से नहीं हुई थी । वे व्यासदेव के पुत्र थे । जब पत्नी के गर्भ से पति के भाई की सन्तान उत्पन्न होती थी, तब वह सन्तान पति की ही मानी जाती थी, किन्तु वस्तुत: वह सन्तान पति से नहीं प्राप्त होती थी । ये व्यंग्यपूर्ण वचन इंगित करते थे कि पैतृक आधार पर, धृतराष्ट्र का राजसिंहासन पर अधिकार जताना गलत था । वास्तव में पाण्डुपुत्र ही अधिकारी थे और पाण्डवों की उपस्थिति में धृतराष्ट्र को सिंहासन पर अधिकार नहीं करना चाहिए था ।

अक्रूर जी ने आगे कहा, "हे विचित्रवीर्य के पुत्र! आपने नियमविरोधी तरीके से पाण्डवों का सिंहासन ले लिया है । फिर भी किसी-न-किसी प्रकार से अब आप सिंहासनारूढ़ हैं । अतएव मैं आपको परामर्श देता हूँ कि आप नैतिक सिद्धान्तों के आधार पर राज्य पर शासन करें । यदि आप ऐसा करेंगे और अपनी प्रजा को प्रसन्न करेंगे, तो आपका नाम और कीर्ति अमर हो जाएगी । अक्रूर जी ने संकेत किया कि यद्यपि धृतराष्ट्र अपने भतीजों से दुर्व्यवहार कर रहे थे, फिर भी पाण्डव उनकी प्रजा

दुष्प्रेरित धृतयाष्ट्र थे । 'यदि आप उन्हें राजसिंहासन के स्वामी न मान कर उनसे अपनी प्रजा के समान व्यवहार करें, तब भी आपको निष्पक्ष रूप से उनके हित का चिन्तन इस प्रकार करना चाहिए, जैसे वे आपके अपने

ही पुत्र हों । किन्तु यदि आप इस सिद्धान्त का पालन नहीं करेंगे और इसके विरुद्ध कार्य करेंगें, तो प्रजा में आपकी निन्दा होगी और अगले जीवन में आपको नारकीय स्थिति में रहना पड़ेगा । अतएव मैं आशा करता हूँ कि आप अपने पुत्रों और पाण्डुपुत्रों के साथ एकसमान व्यवहार करेंगे ।" अक्रूर जी ने संकेत किया कि यदि धृतराष्ट्र पाण्डवों और अपने पुत्रों से समानता का व्यवहार नहीं करेंगे, तो निश्चय ही चचेरे भाइयों के दोनों वर्गों के मध्य युद्ध होगा । चूँकि वध हो जाएगा । यह एक भविष्यवाणी थी, जो अक्रूर जी ने धृतराष्ट्र से की । अक्रूर जी ने आगे धृतराष्ट्र को उपदेश दिया, "इस भौतिक जगत में कोई भी सदैव किसी का साथ नहीं दे सकता है । भाग्यवश हम एक परिवार, एक समाज, एक समुदाय अथवा एक राष्ट्र में एकत्र होते हैं । किन्तु सबको यह शरीर एक-न- एक दिन त्यागना पड़ता है, अत: अन्त में हम सबको अलग होना पड़ता है । अतएव किसी को परिवार के सदस्यों से अनावश्यक रूप से स्नेह नहीं करना चाहिए ।" धृतराष्ट्र का मोह अनुचित भी था और इससे यह लगता था कि वे अल्पबुद्धि हैं । सरल शब्दों में कहें तो अक्रूर जी ने संकेत किया कि धृतराष्ट्र के इस दृढ़ पारिवारिक प्रेम का कारण तथ्य के प्रति उनका पूर्ण अज्ञान अथवा नैतिक सिद्धान्तों की ओर अन्धापन था । यद्यपि हम परिवार, समाज अथवा राष्ट्र में एक दूसरे से मिले जुले प्रतीत होते हैं, किन्तु हममें से प्रत्येक का अपना व्यक्तिगत भाग्य होता है । प्रत्येक प्राणी अपने विगत व्यक्तिगत कर्माँ के कारण जन्म लेता है, अतएव प्रत्येक को अपने कर्म का फल व्यक्तिगत सुख अथवा दुख के रूप में भोगना पड़ता है । सहकारपूर्ण जीवन के द्वारा भाग्य में परिवर्तन नहीं किया जा सकता है । कभी-कभी ऐसा होता है कि किसी के पिता अवैध रीति से सम्पत्ति एकत्र करते हैं, किन्तु पुत्र वह सब धन ले जाता है, यद्यपि उस धन को श्रम करके पिता ने अर्जित किया था । यह ठीक वैसे ही है जैसे सागर में एक छोटी मछली दूसरी बूढ़ी बड़ी मछली के भौतिक शरीर को खा जाती है । अतएव कोई अपने परिवार, समाज, समुदाय अथवा

राष्ट्र की तृप्ति के लिए अवैध ढंग से धन एकत्र नहीं कर सकता है । पहले के समय में विकसित हुए अनेक बड़े साम्राज्य आज नहीं हैं, क्योंकि उनके धन को उनके बाद के वंशजों ने निरुद्देश्य व्यय कर दिया । यह तथ्य इस सिद्धान्त का ज्वलन्त उदाहरण है । जो कर्मफल के इस सूक्ष्म सिद्धान्त को नहीं जानता है और नैतिक सिद्धान्तों को त्याग देता है, वह अपने साथ केवल अपने पापों के फल ले जाता है । उसकी छल से प्राप्त की गई धन-सम्पत्ति कोई और ले जाता है और वह घोर नरक में चला जाता है । अतएव किसी को भी उसके भाग्य में जितना लिखा है उससे अधिक धन एकत्र नहीं करना चाहिए, अन्यथा वह वास्तव में अपने हित के प्रति आँखें बन्द कर लेगा । अपना स्वार्थ पूर्ण करने के स्थान पर वह अपने पतन के लिए उसके एकदम विपरीत कार्य करेगा । अक्रूर जी ने आगे कहा, "प्रिय धृतराष्ट्र! मैं आपको परामर्श देता हूँ कि आप भौतिक जीवन के तथ्य की ओर से आँखें न बन्द करें । भौतिक बद्ध जीवन को चाहे वह सुख में हो अथवा दुख में एक स्वप्न मानना चाहिए । सबको अपने मन तथा इन्द्रियों पर संयम करने का प्रयास करना चाहिए और शान्तिपूर्वक कृष्णभावनामृत में आध्यात्मिक प्रगति के लिए जीवित रहना चाहिए ।" चैतन्य-चरितामृत में कहा गया है कि कृष्णभावनामृत में स्थित व्यक्तियों के अतिरिक्त प्रत्येक व्यक्ति सदैव अशान्त मन:स्थिति में और व्याकुलता से पूर्ण होता है । मोक्ष प्राप्ति का प्रयास करने वाले, ब्रह्म के तेज में लीन हो जाने वाले अथवा योगिक सिद्धियाँ प्राप्त करने का प्रयास करने वाले योगी भी मानसिक शान्ति नहीं पा सकते हैं । श्रीकृष्ण के शुद्ध भक्त श्रीकृष्ण से कुछ नहीं माँगते हैं । वे केवल श्रीकृष्ण की सेवा करके ही सन्तुष्ट रहते हैं । वास्तविक शान्ति और मानसिक समता केवल पूर्ण कृष्णभावनामृत में ही प्राप्त की जा सकती है । अक्रूर जी से ये नैतिक उपदेश सुनकर धृतराष्ट्र ने उत्तर दिया, "प्रिय अक्रूर! यह आपकी दया है कि आप मुझे सदुपदेश दे रहे हैं, किन्तु दुर्भाग्यवश मैं इसे स्वीकर नहीं कर सकता । जिस व्यक्ति के भाग्य में मृत्यु लिखी हो, यदि उसे अमृत

पिलाया जाए तो भी वह अमृत के प्रभाव का उपयोग नहीं कर पाता है । मैं जानता हूँ कि आपके उपदेश अत्यन्त मूल्यवान हैं । दुर्भाग्यवश वे मेरे चंचल मन में उसी प्रकार स्थिर नहीं रह पाते, जैसे आकाश में चमकती हुई बिजली किसी एक मेघ में स्थिर नहीं रहती है । मैं केवल यह जानता हूँ कि भगवत् इच्छा की अग्रगामी गति को कोई भी नहीं रोक सकता है । मैं जानता हूँ कि भगवान् श्रीकृष्ण ने इस धरती के भार को कम करने के लिए यदु परिवार में अवतार लिया है ।" धृतराष्ट्र ने अक्रूर जी को संकेत दिया कि उसे भगवान् श्रीकृष्ण में पूर्ण विश्वास है, किन्तु साथ ही साथ उसकी प्रवृत्ति अपने परिवार के सदस्यों के प्रति अत्यन्त पक्षपातपूर्ण है । निकट भविष्य में श्रीकृष्ण उसके परिवार के सभी सदस्यों का नाश कर देंगे और असहायावस्था में धृतराष्ट्र श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण में चले जाएँगे । किसी भक्त के प्रति विशेष अनुग्रह का प्रदर्शन करने के लिए सामान्यतया श्रीकृष्ण उसकी सभी प्रिय भौतिक वस्तुओं को उससे छीन लेते हैं । इस प्रकार वे भौतिक रूप से भक्त को असहाय बना देते हैं जिससे कि उसके पास श्रीकृष्ण के चरणकमलों को स्वीकार करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रह जाता है । वस्तुतः कुरुक्षेत्र के युद्ध के समाप्त होने पर धृतराष्ट्र के साथ भी यही हुआ था ।

धृतराष्ट्र यह अनुभव कर रहे थे कि उनके समक्ष दो विरोधी तथ्य हैं । वे समझ सकते थे कि श्रीकृष्ण इस जगत के अनावश्यक भार को हटाने के लिए प्रकट हुए हैं । उनके पुत्र अनावश्यक भार थे, अतएव उन्हें आशा थी कि वे मारे जाएँगे । साथ ही वे अपने पुत्रों के प्रति अपने अवैध स्नेह का त्याग भी नहीं कर सकते थे । इन दो विरोधी तथ्यों को जानते हुए उन्होंने इस प्रकार श्रीभगवान् की स्तुति करनी प्रारम्भ की: ' भौतिक अस्तित्व की विरोधी विधियों को समझना अत्यन्त कठिन है । इनको केवल भगवान् की योजना के अकल्पनीय कार्य के रूप में समझा जा सकता है । भगवान् अपनी अचिन्तनीय शक्ति के द्वारा इस भौतिक जगत

की रचना करते हैं और इसमें प्रवेश करके प्रकृति के तीनों गुणों को गतिशील कर देते हैं । जब समस्त वस्तुओं की सृष्टि हो जाती है, तब वे प्रत्येक जीव तथा सूक्ष्मातिसूक्ष्म परमाणु में प्रवेश कर जाते हैं । परमेश्वर की गणनातीत योजनाओं को कोई नहीं समझ सकता है

इस कथन को सुनने के पश्चात् अक्रूर जी को स्पष्ट रूप से ज्ञात हो गया कि धृतराष्ट्र अपने पुत्रों के पक्ष में पाण्डवों के प्रति भेदभाव करने की अपनी नीति में परिवर्तन करने वाले नहीं थे । उन्होंने हस्तिनापुर में अपने मित्रों से तुरन्त विदा ली और यदुवंशियों की राजधानी अर्थात् अपने घर लौट आए । घर लौटने के पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्ण तथा बलराम जी को हस्तिनापुर की वास्तविक स्थिति और धृतराष्ट्र की इच्छाओं के विषयों में स्पष्ट रूप से बताया । श्रीकृष्ण ने अकूर जी को हस्तिनापुर में वहाँ की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिए भेजा था । भगवान् की कृपा से वे सफल हुए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "दुष्प्रेरित धृतराष्ट्र" नामक उनचासवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 50
श्रीकृष्ण द्वारा द्वारिका के दुर्ग का निर्माण करना

कंस की मृत्यु के पश्चात् कंस की दोनों पत्नियाँ विधवा हो गई थीं । वैदिक सभ्यता के अनुसार स्त्री कभी भी स्वतंत्र नहीं रहती है । उसके जीवन के तीन चरण होते हैं-बाल्यावस्था में स्त्री को अपने पिता के संरक्षण में रहना चाहिए युवती स्त्री को अपने युवा पति के संरक्षण में रहना चाहिए और पति की मृत्यु होने के पश्चात् उसे या तो अपने वयस्क पुत्रों के सरंक्षण में रहना चाहिए अथवा वयस्क पुत्र न होने पर उसे अपने पिता के घर जाकर

उसके संरक्षण में विधवा का जीवन व्यतीत करना चाहिए । ऐसा प्रतीत होता है कि कंस के कोई वयस्क पुत्र नहीं था । अत: विधवा होने पर उसकी पत्नियाँ अपने पिता के संरक्षण में चली गई । कंस की दो रानियाँ थीं । एक का नाम अस्ति था और दूसरी का प्राप्ति । वे दोनों ही बिहार प्रदेश (उन दिनों में मगधराज के नाम से प्रसिद्ध) के स्वामी राजा जरासन्ध की पुत्रियाँ थीं । घर पहुँच कर दोनों रानियों ने कंस की मृत्यु के उपरान्त अपनी विषम स्थिति का विवरण अपने पिता को दिया । कंस के वध के कारण उनकी दयनीय दशा के विषय में सुन कर मगधराज जरासन्ध शोकाकुल हुआ । कंस की मृत्यु का समाचार प्राप्त होते ही जरासन्ध ने पृथ्वी को यदुवंशियों से रहित करने का निश्चय कर लिया । उसने निश्चय किया कि चूँकि श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया था, अत: समस्त यदुवंश का विनाश कर देना चाहिए । उसने अपने अगणित सैन्य व्यूहों सहित मथुरा के राज्य पर आक्रमण करने के लिए विशाल स्तर पर प्रबन्ध करना प्रारम्भ कर दिया । उसके व्यूहों में कई सहस्र रथ, अश्व, गज तथा पैदल सैनिक थे । कंस की मृत्यु का प्रतिकार करने के लिए जरासन्ध ने इस प्रकार की तेरह अक्षौहिणी सेना एकत्र की और अपनी समस्त सैन्य शक्ति सहित उसने यदु राजाओं की राजधानी मथुरा को चारों ओर से घेर कर उसपर आक्रमण कर दिया । साधारण मानव के रूप में अवतार लेने वाले श्रीकृष्ण ने जरासन्ध की विशाल (सैन्य) शक्ति को देखा । उसकी सैन्य शक्ति किसी भी क्षण तट को ढक लेने को आतुर समुद्र की भाँति प्रतीत होती थी । उन्होंने यह भी देखा कि मथुरावासी भय से व्याकुल हो गए हैं । वे अपने अन्त:करण में एक अवतार के रूप में अपने उद्देश्य पर विचार करने लगे । वे यह विचार भी करने लगे कि प्रस्तुत परिस्थिति का सामना किस प्रकार किया जाए । उन्होंने सोचा कि चूँकि उन्हें मगधराज्य को नहीं जीतना था, अत: मगध के राजा जरासन्ध को मारने से कोई लाभ न था । उनका प्रयोजन समस्त जगत की बढ़ती हुई जनसंख्या को कम करना था, अतएव उन्होंने इतने अधिक पुरुषों, रथों, हाथियों तथा अश्वों

का सामना करने के अवसर का लाभ उठाया । जरासन्ध की सैन्य शक्ति उनके सम्मुख प्रस्तुत हुई थी और उन्होंने जरासन्ध की सम्पूर्ण सेना का वध करने का निश्चय किया जिससे कि वह फिर लौट कर पुनः अपनी सैन्य शक्ति का पुनर्गठन कर सके । जब भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार विचार कर रहे थे तभी उनके लिए सारथी, शस्त्रों, ध्वजों तथा अन्य उपकरणों से पूर्णरूप से सुसजित, दो रथ बाह्य आकाश से वहाँ पहुँचे । श्रीकृष्ण ने अपने सम्मुख उपस्थित दोनों रथों को देखा और तत्काल ही उन्होंने संकर्षण नाम से विख्यात अपने ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी से कहा, "प्रिय ज्येष्ठ भ्राता! आप आर्यश्रेष्ठ हैं, आप ब्रह्माण्ड के स्वामी हैं और विशेष रूप से आप यदुवंश के रक्षक हैं । जरासन्ध के सैनिकों के समक्ष यदुवंशियों को महान् संकट का अनुभव हो रहा है और वे अत्यन्त व्याकुल हैं । उनकी रक्षा करने के लिए ही अस्त्रों-शस्त्रों से पूर्ण आपका रथ भी यहाँ उपस्थित है । मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि रथ पर बैठ कर आप शत्रु की समस्त सैन्य शक्ति (इन सैनिकों) का विनाश कर दीजिए । इस प्रकार की अनावश्यक युद्धतत्पर शक्तियों का नाश करने तथा पुण्यात्मा भक्तों को सुरक्षा देने के लिए ही हम दोनों ने इस पृथ्वी पर अवतार लिया है । अब हमें अपना ध्येय पूर्ण करने का अवसर प्राप्त हुआ है । आइए, हम अपने ध्येय को पूरा करें ।"

इस प्रकार दशाह के वंशज श्रीकृष्ण तथा बलराम जी ने जरासन्ध की तेरह अक्षौहिणी सेना का नाश करने का निश्चय किया । सैनिक वर्दी पहन कर, कृष्ण और बलराम अपने अपने रथों पर सवार हो गए । जिस रथ के सारथी का नाम दारुक था; उस रथ पर विराजमान होकर वे शंख-ध्वनि करते हुए छोटी-सी सेना सहित मथुरा नगर के बाहर आए । आश्चर्य तो यह था कि यद्यपि दूसरे पक्ष की सैन्य शक्ति अधिक थी, फिर भी श्रीकृष्ण के शंख की ध्वनि को सुन कर शत्रुओं के हृदय काँप उठे । जब जरासन्ध ने बलराम जी तथा श्रीकृष्ण को देखा, तब उसे किंचित दया आ गई,

क्योंकि श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों का ही उससे दौहित्र (नाती) का सम्बन्ध था । उसने विशेष रूप से श्रीकृष्ण को पुरुषाधम कह कर सम्बोधित किया, जिसका अर्थ है पुरुषों में सर्वाधिक निकृष्ट । वास्तव में समस्त वैदिक साहित्य में श्रीकृष्ण पुरुषोत्तम नाम से विख्यात हैं, जिसका अर्थ है पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ । श्रीकृष्ण को पुरुषोत्तम नाम से सम्बोधित करने की जरासन्ध की कोई इच्छा नहीं थी । महान् विद्वानों ने पुरुषाधम का वास्तविक अर्थ यह निश्चित किया है कि, "वह पुरुष जो अन्य सभी व्यक्तियों को नीचा दिखा दे ।" वास्तव में श्रीभगवान् के बराबर अथवा उनसे श्रेष्ठ और कोई नहीं हो सकता है । जरासन्ध ने कहा, 'श्रीकृष्ण और बलराम जैसे बालकों से युद्ध करना मेरे लिए एक महान् अपमान होगा ।" चूँकि श्रीकृष्ण ने कंस का वध किया था, अत: जरासन्ध ने विशेष रूप से उन्हें स्वजनों का घातक कहकर सम्बोधित किया । कंस ने अपने इतने भाञ्जों का वध किया था, किन्तु जरासन्ध ने उस पर ध्यान नहीं दिया । चूँकि, श्रीकृष्ण ने अपने मामा कंस का वध किया था, अत: जरासन्ध ने उनकी आलोचना करने का प्रयास किया । आसुरी व्यवहार की यही रीति है । असुर अपने अथवा अपने मित्रों के दोष ढूँढने की अपेक्षा अपने शत्रुओं के दोष ढूँढ़ने का प्रयास करते हैं । जरासन्ध ने कृष्ण के क्षत्रिय न होने के लिए भी उनकी आलोचना की । चूँकि श्रीकृष्ण का पालन-पोषण महाराज नन्द ने किया था, अतएव श्रीकृष्ण एक क्षत्रिय न हो कर वैश्य थे । सामान्यतया वैश्यों को गुप्त कहा जाता है और गुप्त शब्द का प्रयोग "छुपे हुए" के लिए भी होता है । नन्द महाराज ने श्रीकृष्ण का पालन भी किया था और उन्हें छिपा कर भी रखा था । जरासन्ध ने श्रीकृष्ण पर तीन दोषारोपण किए । पहला यह कि उन्होंने अपने मामा का वध किया था, दूसरा यह कि उन्हें उनके बाल्यकाल में छिपा कर रखा गया था और तीसरा यह कि वे क्षत्रिय भी नहीं थे । यही कारण था कि जरासन्ध को उनसे युद्ध करने में लज्जा का अनुभव हो रहा था । तत्पश्चात् बलराम जी की ओर मुड़ कर जरासन्ध ने उन्हें सम्बोधित किया, 'बलराम! यदि तुम्हारी

इच्छा हो तो श्रीकृष्ण के साथ-साथ तुम भी मुझसे युद्ध कर सकते हो । यदि तुममें धैर्य है, तब तुम मेरे बाणों से मारे जाने की प्रतीक्षा कर सकते हो । इस प्रकार तुम्हें स्वर्गलोक प्राप्त होगा ।" भगवद्गीता में कहा गया है कि युद्ध करते हुए क्षत्रिय को दो प्रकार के लाभ हो सकते हैं । यदि वह युद्ध में विजय प्राप्त करता है, तो उसे विजय के फल भोगने का आनन्द प्राप्त होता है, किन्तु यदि वह युद्ध में वीरगति प्राप्त करता है, तब भी उसे स्वर्गलोक प्राप्त होता है जरासन्ध को इस प्रकार कहते सुनकर श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "प्रिय राजन् जरासन्ध! जो शूरवीर होते हैं, वे अधिक बातें नहीं करते । उसके स्थान पर वे अपना कौशल प्रदर्शित करते हैं । चूँकि तुम अत्यधिक बातें कर रहे हो । इस से प्रतीत होता है कि तुम्हें विश्वास है कि इस युद्ध में तुम्हारी मृत्यु होगी । हमें तुम्हारी और अधिक उस व्यक्ति की बातें सुनने से कोई लाभ नहीं ।" जरासन्ध ने श्रीकृष्ण से युद्ध करने के निमित्त उनको चारों ओर से विशाल सैन्य शक्ति द्वारा घेर लिया । जैसे सूर्य कोहरे और धूलि से ढका हुआ प्रतीत होता है उसी भाँति परम सूर्य श्रीकृष्ण को भी जरासन्ध की सैन्य शक्ति ने ढक लिया था । श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के रथ क्रमशः गरुड़ तथा तालवृक्षों के चित्रों से अड़ित थे । मथुरा की सभी नारियाँ इस अद्भुत युद्ध को देखने के लिए घरों, महलों तथा द्वारों के ऊपर खड़ी थीं । किन्तु जब जरासन्ध की सैन्य शक्ति ने श्रीकृष्ण के रथ को घेर लिया और वह अतृश्य हो गया तब वे इतनी भयभीत हो गई कि कुछ नारियाँ मूछिंत हो गई । श्रीकृष्ण ने स्वयं को जरासन्ध की सैन्य शक्ति से अभिभूत हुआ पाया । उनके मुट्ठी भर सैनिकों को जरासन्ध की सेना व्याकुल कर रही थी । अतएव श्रीकृष्ण ने तत्काल ही शार्ङ्ग नामक अपना धनुष उठा लिया । श्रीकृष्ण ने अपने तरकश में से एक के बाद एक बाण निकाल कर, उन्हें धनुष की डोरी पर रख कर शत्रु की ओर मारना प्रारम्भ कर दिया । उनके बाणों का लक्ष्य इतना अचूक था कि जरासन्ध के हाथी, अश्व और पैदल सैनिक अति शीघ्र मारे गए । श्रीकृष्ण की अनवरत बाण-वर्षा ऐसी प्रतीत होती थी मानो एक प्रज्वलित

अग्नि का बवन्डर हो, जो जरासन्ध की सेना का वध कर रहा था । जब श्रीकृष्ण ने बाण छोड़े, तो हाथियों के सिर बाणों से कट गए और सभी हाथी धीरे-धीरे गिरने लगे । उसी प्रकार सभी अश्वों की गर्दन कटने लगीं और वे गिर पड़े और ध्वज-सहित सारे रथ भी गिर गए । रथ पर सवार योद्धा तथा सारथी भी गिर गए । लगभग सभी पैदल सैनिकों के सिर, हाथ और पैर कट गए थे और वे युद्धभूमि में गिर गए थे । इस भाँति कई सहस्र हाथी, सैनिक तथा घोड़े मारे गए और उनका रक्त नदी की धारा के समान प्रवाहित होने लगा । उस नदी में सैनिकों की कटी हुई भुजाएँ सर्प के समान प्रतीत होती थीं, उनके सिर कछुए के समान तथा हाथियों के मृत शरीर छोटे-छोटे द्वीपों के समान प्रतीत होते थे । मृत अश्व शार्क मछलियों के समान प्रतीत होते थे । भगवान् की इच्छा से वहाँ युद्ध-सामग्रियों से पूर्ण रक्त की एक महान् नदी बह रही थी । पैदल सैनिकों के हाथ-पैर विभिन्न मछलियों के समान और उनके केश समुद्री धरपतवार और दलदल के समान तैर रहे थे और सैनिकों के तैरते हुए धनुष नदी की तंरगों के समान प्रतीत होते थे । सैनिकों तथा सेनापतियों के शरीरों के आभूषण रक्त की नदी में बहते हुए कंकड़ों के समान प्रतीत होते थे । संकषर्ण के नाम से प्रसिद्ध बलराम जी अपनी गदा से इतनी वीरता से युद्ध करने लगे कि श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित रक्त की नदी में बाढ़ आ गई । जो कायर थे वे इस भयंकर और विकराल दृश्य को देखकर अत्यधिक भयभीत हो गए और जो शूर वीर थे वे प्रसन्नतापूर्वक दोनों भाइयों के शौर्य के विषय में परस्पर चर्चा करने लगे । यद्यपि जरासन्ध के पास सैन्य शक्ति का एक विशाल सागर था, तथापि बलराम जी तथा भगवान् कृष्ण के युद्ध ने पूरी स्थिति को सामान्य युद्ध से कहीं बढ़कर एक भयंकर दृश्य में परिवर्तित कर दिया था । साधारण मस्तिष्क वाले व्यक्ति सोच भी नहीं सकते हैं कि यह किस प्रकार सम्भव हुआ । किन्तु जब इन गतिविधियों को श्रीभगवान् की लीला मान लें जिनकी इच्छा से प्रत्येक वस्तु सम्भव है, तब यह बात समझी जा सकती है । श्रीभगवान् अपनी इच्छा मात्र से सृष्टि

की रचना, पालन तथा संहार करते हैं । उनके लिए शत्रु से युद्ध करते हुए विनाश का इतना विशाल दृश्य निर्मित करना कोई इतनी अद्‌भुत घटना नहीं है । किन्तु फिर भी, चूँकि श्रीकृष्ण तथा बलराम जी जरासन्ध से साधारण मानवों की भाँति युद्ध कर रहे थे, अत: यह घटना अद्‌भुत प्रतीत हुई । जब जरासन्ध के सभी सैनिकों का वध हो गया था और वह अकेला ही जीवित बचा था, तो निश्चित रूप से वह उस समय अत्यन्त निराश हो गया । जिस प्रकार एक सिंह महान् शक्ति से दूसरे सिंह को पकड़ता है उसी प्रकार श्रीबलराम जी ने तत्काल उसे बन्दी बना लिया । किन्तु जब वे जरासन्ध को साधारण डोरी तथा वरुण पाश से बाँध रहे थे, तब भविष्य की एक अन्य बड़ी योजना का विचार करके श्रीकृष्ण ने उनसे कहा कि जरासन्ध को बन्दी न बनाएँ । तदनन्तर श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को मुक्त कर दिया । जरासन्ध महान् शूरवीर योद्धा था, अत: इस पराजय से वह अत्यन्त लजित हुआ । उसने निश्चय किया कि अब वह राजा का जीवन व्यतीत नहीं करेगा, अपितु अपने राजा के पद का त्याग करके वन में जाकर कठोर संयम तथा तपस्या करते हुए ध्यान का अभ्यास करेगा । जब वह अपने अन्य मित्र नृपों के साथ घर लौट रहा था तब उन्होंने उसे संन्यास न ग्रहण करने की मंत्रणा दी । उन्होंने उससे कहा कि वह निकट भविष्य में श्रीकृष्ण से पुन: युद्ध करने के निमित्त शक्ति एकत्र करे । जरासन्ध के मित्र राजा उसे उपदेश देने लगे कि सामान्यतया यदुराजाओं की शक्ति द्वारा उसकी पराजय सम्भव नहीं थी, किन्तु उसकी जो पराजय हुई थी उसका कारण केवल उसका दुर्भाग्य था । राजाओं ने जरासन्ध को प्रोत्साहित किया । उन्होंने कहा कि उसका युद्ध कौशल निश्चित रूप से शौर्यपूर्ण था; अतएव उसे अपनी पराजय को इतनी गम्भीरता से नहीं लेना चाहिए । उसकी पराजय का कारण उसके विगत कर्म थे । उसके युद्ध कौशल में कोई दोष नहीं था । इस प्रकार मगध देश का राजा जरासन्ध अपनी समस्त शक्ति खो कर और बन्दी बनाए जाने तथा उसके पश्चात् मुक्त किए जाने पर अपमानित होकर अपने राज्य को लौटने के

अतिरिक्त और कुछ न कर सका । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के सैनिकों पर विजय प्राप्त की । यद्यपि जरासन्ध की तुलना में श्रीकृष्ण की सेना छोटी सी थी, फिर भी उनकी सेना की अल्प मात्र भी क्षति नहीं हुई, जबकि जरासन्ध के सभी सैनिक मारे गए । उस समय स्वर्ग के निवासी अत्यन्त प्रसन्न हो गए और भगवान् का यशगान एवं उन पर पुष्प वर्षा करके उनको प्रणाम करने लगे । उन्होंने इस विजय की अत्यन्त प्रशंसा की । जरासन्ध अपने राज्य को लौट गया और इस प्रकार मथुरा नगर पर निकट भविष्य में आक्रमण का भय नहीं रहा । मथुरा के नागरिकों ने व्याव्यवस्थायिक गायकों जैसे सूत, मागधों तथा सुन्दर गीतों की रचना में पटु कवियों के सम्मिलित गान का आयोजन किया । वे कवि तथा गायक श्रीकृष्ण की विजय का यशगान करने लगे । विजय के उपरान्त जब भगवान् श्रीकृष्ण ने नगर में प्रवेश किया, तो अनेक तुरही, शंख तथा दुन्दुभी बजने लगीं । विभिन्न वाद्यों जैसे भेर्य, तूर्य, वीणा, मुरली तथा मृदंग की सम्मिलित ध्वनि ने उनका सुन्दर स्वागत किया । श्रीकृष्ण के नगर में प्रवेश के समय समस्त नगर अत्यन्त स्वच्छ किया गया था और विभिन्न गलियों तथा पथों पर जल का छिड़काव किया गया था । नगरनिवासी प्रसन्न थे और उन्होंने अपने घरों तथा अपनी दूकानों को कागज की रंगीन पट्टियों से सुसजित किया था । अनेक स्थानों पर ब्राह्मण लोग वैदिक मंत्रों का उच्चारण कर रहे थे । लोगों ने चौराहों, तथा गलियों पर द्वारों का निर्माण किया था । सुन्दरता से सजित मथुरा नगरी में, श्रीकृष्ण के उल्लसित भाव से प्रवेश करने के समय मथुरा की नारियों तथा कन्याओं ने इस अवसर को और अधिक शुभ बनाने के लिए विभिन्न प्रकार की पुष्पमालाएँ बनाई । वैदिक रीति के अनुसार उन्होंने ताजी दूर्वा मिश्रित दही लिया और विजयोल्लास को और अधिक शुभ बनाने के लिए उसे इधर-उधर छिड़कने लगीं । जब श्रीकृष्ण गलियों से होकर गए तब सभी स्त्रियाँ अत्यन्त स्नेह से उनका दर्शन करने लगीं । श्रीकृष्ण जी और बलराम रणक्षेत्र से एकत्र किए हुए आभूषण और रत्नादि अनेक प्रकार

की सामग्री लिये जा रहे थे, जिसे उन्होंने राजा उग्रसेन को उपहार में दिया । इस प्रकार श्रीकृष्ण ने अपने नाना के प्रति आदर प्रदर्शित किया, क्योंकि उस समय वही यदुवंश के राजा थे । मगधराज जरासन्ध ने मथुरा नगर पर न केवल एक बार आक्रमण किया, अपितु उतने ही सैन्य व्यूहों से सुसजित होकर, उसने मथुरा पर उसी तरह सत्रह बार आक्रमण किया । प्रत्येक बार उसकी पराजय हुई और उसके सभी सैनिकों का श्रीकृष्ण ने वध कर दिया । प्रत्येक बार जरासन्ध को उसी भाँति निराश लौटना पड़ा । प्रत्येक बार यदुवंशी राजा उसी प्रकार जरासन्ध को बन्दी बनाते थे और तत्पश्चात् अपमानजनक ढंग से मुक्त कर देते थे । प्रत्येक बार जरासन्ध निर्लज्जतापूर्वक घर लौट जाता था । जब जरासन्ध इसी प्रकार अठारहवें आक्रमण का प्रयास कर रहा था, तब मथुरा के दक्षिण में रहने वाले एक यवन राजा ने भी यदुवंश के ऐश्वर्य से आकर्षित हो कर नगर पर आक्रमण कर दिया । कहा जाता है कि इस यवन राजा कालयवन को आक्रमण करने के लिए नारद जी ने प्रेरणा दी थी । विष्णु पुराण में इस कथा का वर्णन आया है । एक बार यदुवंश के पुरोहित गर्गमुनि पर उनके साले ने व्यंग्य किया था । जब यदु राजाओं ने वह व्यंग्य सुना, तो वे गर्गमुनि पर हँस पड़े और गर्गमुनि यदु राजाओं पर कुपित हो गए । अतएव उन्होंने निश्चय किया कि वे ऐसे किसी व्यक्ति को उत्पन्न करेंगे जिससे यदुवंश भयभीत रहेगा । अत: उन्होंने शिवजी को प्रसन्न करके एक पुत्र का वरदान प्राप्त किया । एक यवन राजा की पत्नी के गर्भ से उन्होंने यह पुत्र उत्पन्न किया । इस कालयवन ने नारद जी से पूछा, "जगत में सर्वाधिक शक्तिशाली राजा कौन हैं?" नारद जी ने उसे जानकारी दी कि यदुवंशी सर्वाधिक शक्तिशाली हैं । नारद से इस प्रकार जानकारी प्राप्त करके कालयवन ने मथुरा नगर पर उसी समय आक्रमण कर दिया, जब जरासन्ध उस पर अठारहवीं बार आक्रमण करने का प्रयास कर रहा था । कालयवन जगत के एक ऐसे राजा के साथ युद्ध घोषित करने को अत्यन्त उत्सुक था, जो उसके लिए उपयुक्त प्रतिद्वन्द्री हो, किन्तु उसे

अभी तक कोई उपयुक्त प्रतिद्वन्द्री प्राप्त नहीं हुआ हो । अब नारद द्वारा मथुरा के विषय में जानकारी प्राप्त होने पर उसने इस नगर पर आक्रमण करना बुद्धिमानी समझा । मथुरा पर आक्रमण करते समय वह अपने साथ तीन करोड़ यवन सैनिक लाया था । जब मथुरा इस प्रकार घिर गई तब भगवान् श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि जरासन्ध तथा कालयवन नामक दो भयानक शत्रुओं के आक्रमण के भय के कारण यदुवंश घोर विपत्ति में है । समय कम होता जा रहा था । कालयवन ने पहले से ही मथुरा को चारों ओर से घेर रखा था । उसे आशा थी कि पहले सत्रह प्रयासों में जितनी सैन्य टुकड़ियाँ थीं, उतनी ही टुकड़ियाँ पुन: लेकर जरासन्ध भी अगले दिन आ जाएगा । श्रीकृष्ण को विश्वास था कि अब जबकि कालयवन भी मथुरा पर आक्रमण कर रहा है, उसी समय मथुरा को जीतने के अवसर का लाभ जरासन्ध अवश्य उठाएगा । अतएव उन्होंने मथुरा नगर की सुरक्षा के लिए दो सैनिक बिन्दुओं से पहले से प्रबन्ध करना उचित समझा । यदि श्रीकृष्ण और बलराम जी दोनों एक स्थान पर कालयवन से युद्ध में रत होंगे, तो जरासन्ध दूसरे स्थान से आकर पूरे यदु परिवार पर आक्रमण करके अपना बदला ले सकता है । जरासन्ध अत्यन्त बलशाली था और सत्रह बार पराजित होने के कारण, वह यदु परिवार के सदस्यों की निर्दयतापूर्वक हत्या कर सकता था, अथवा उन्हें बन्दी बना कर अपने राज्य में ले जा सकता था । अतएव श्रीकृष्ण ने एक ऐसे स्थान पर एक अजेय दुर्ग का निर्माण करने का निश्चय किया, जहाँ कोई भी द्विपद जीव, चाहे वह मनुष्य हो अथवा असुर, प्रवेश न कर सके । उन्होंने अपने सम्बन्धियों को उस दुर्ग में रखने का निश्चय किया जिससे स्वयं श्रीकृष्ण शत्रुओं से युद्ध करने के लिए मुक्त रह सकें । ऐसा प्रतीत होता है कि पूर्वकाल में द्वारका भी मथुरा राज्य का एक भाग था, क्योंकि श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण ने सागर के मध्य दुर्ग का निर्माण किया । श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित दुर्ग के अवशेष आज भी द्वारका की खाड़ी में हैं । सर्वप्रथम उन्होंने छियानवे वर्ग मील में फैली हुई एक अत्यन्त सुदृढ़

दीवार का निर्माण किया । यह दीवार भी समुद्र के अन्दर थी । यह परकोटा अद्‌भुत था और विश्वकर्मा ने इसकी योजना बनाई थी और तथा निर्माण किया था । कोई साधारण शिल्पी सागर के मध्य ऐसे दुर्ग का निर्माण नहीं कर सकता था, किन्तु विश्वकर्मा जैसा शिल्पकार, जिसे देवताओं में अभियन्ता माना जाता है, ब्रह्माण्ड के किसी भाग में, कहीं भी ऐसी अद्‌भुत शिल्पकारी कर सकता है । यदि श्रीभगवान् के प्रबन्ध के द्वारा बाह्य आकाश अन्तरिक्ष की भारहीनता में विशालकाय ग्रहों को तैराया जा सकता है, तब सागर में छियानवे वर्ग मील के क्षेत्र में फैले हुए एक दुर्ग का शिल्पपूर्ण निर्माण कोई अति अद्‌भुत कार्य नहीं था । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सागर के मध्य में विकसित सुनिर्मित इस नवीन नगर में सुनियोजित मार्ग तथा गलियाँ थीं । न केवल वहाँ सुनियोजित मार्ग व गलियाँ थीं, अपितु सुनियोजित पथ तथा उद्यान भी थे । उद्यान कल्पवृक्षों से पूर्ण थे । ये कल्पवृक्ष भौतिक जगत के साधारण वृक्षों की भाँति नहीं हैं । कल्पवृक्ष अध्यात्मिक जगत में पाए जाते हैं । श्रीकृष्ण की परम इच्छा से सब कुछ सम्भव है, अत: श्रीकृष्ण द्वारा निर्मित इस द्वारका नगर में कल्पवृक्ष लगाए गए थे । नगर में अनेक प्रासाद और गोपुर अथवा विशाल द्वार भी थे । बड़े मन्दिरों में से कुछ में अभी-भी गोपुर पाए जाते हैं । वे अत्यन्त ऊँचे होते हैं और अत्यधिक कलात्मक ढंग से बनाए जाते हैं । इन प्रासादों और गोपुरों पर स्वर्णिम कलश थे । राजमहलों में अथवा द्वारों पर ये कलश शुभ शकुन माने जाते हैं । लगभग सभी प्रासाद गगनचुम्बी थे । प्रत्येक घर में, भूमिगत कक्षों में बड़े-बड़े स्वर्ण तथा चाँदी से निर्मित पात्रों में अन्न संचित रहता था । कक्षों में अनेक स्वर्णिम जल-कलश थे । शयनकक्षों की सजा रत्नों से की गई थी । भूमितल पर मरकत मणि की पच्चीकारी की गई थी । यदुवंशियों के उपास्य विष्णु की मूर्ति नगर के प्रत्येक घर में स्थापित की गई थी । निवासस्थानों का प्रबन्ध इस प्रकार किया गया था कि विभिन्न जातियों-ब्राह्मणों, क्षत्रियों, वैश्यों तथा शूद्रों-के अपने-अपने स्थान थे । इससे ऐसा

प्रतीत होता है कि उस समय भी जाति प्रथा प्रचलित थी । नगर के मध्य में एक और निवासस्थान था जिसका निर्माण विशेष रूप से राजा उग्रसेन के लिए किया गया था । सभी घरों में वह सर्वाधिक शोभायमान था । जब इन्द्र देवता ने देखा कि श्रीकृष्ण अपनी रुचि के एक विशेष नगर का निर्माण कर रहे है, तब उन्होंने स्वर्ग के प्रसिद्ध परिजात पुष्प को उस नए नगर में लगाने के लिए भेजा । उन्होंने सुधर्मा नामक एक सभाभवन भी भेजा । इस सभागृह का विशेष गुण यह था कि इसके अन्दर किसी बैठक में भाग लेने वाला व्यक्ति की निर्बलता पर विजय प्राप्त कर सकता था । वरुण देवता ने मन की गति से दौड़ने में समर्थ एक श्वेत अश्व जिसके कान काले थे । देवताओं के कोषाध्यक्ष कुबेर ने भौतिक ऐश्वर्य की आठों सिद्धियों को प्राप्त करने की कला प्रदान की । इस प्रकार सभी देवता अपने-अपने सामथ्र्य के अनुसार अपने-अपने उपहार अर्पित करने लगे । सब मिला कर तैतीस करोड़ देवता हैं और प्रत्येक को ब्रह्माण्ड के किसी विशेष विभाग का प्रबन्ध-कार्य सौंपा गया है । श्रीभगवान् अपनी रुचि के एक नगर का निर्माण कर रहे थे, इस अवसर का लाभ उठाते हुए सभी देवताओं ने उन्हें अपने-अपने उपहार अर्पित किए और इस प्रकार द्वारका नगर ब्रह्माण्ड में अद्वितीय बन गया । इससे इस बात की पुष्टि होती है कि निस्सन्देह देवता असंख्य हैं, किन्तु वे श्रीकृष्ण से स्वतंत्र नहीं हैं । जैसाकि चैतन्य-चरितामृत में कहा गया है, श्रीकृष्ण परम ईश्वर (स्वामी) हैं और अन्य सब सेवक हैं । अतएव सभी सेवकों ने ब्रह्माण्ड में श्रीकृष्ण की उपस्थिति का लाभ उठाकर उनकी सेवा करने का सुअवसर प्राप्त किया । इस उदाहरण का अनुसरण सभी को, विशेषरूप से कृष्णभक्तों को, करना चाहिए, क्योंकि सबको अपनी-अपनी योग्यता के द्वारा श्रीकृष्ण की सेवा करनी चाहिए । जब योजनानुसार नवीन नगर का निर्माण पूर्ण हो गया तब श्रीकृष्ण ने मथुरा के सभी नागरिकों को वहीं स्थानान्तरित कर दिया और श्री बलराम को नगर-पिता बना दिया । इसके पश्चात् उन्होंने बलराम जी से मंत्रणा की और कमल की माला धारण

करके शस्त्रास्त्र उठाए बिना कालयवन का सामना करने के लिए नगर से बाहर आए, कालयवन ने ही मथुरा पर पहले ही घेरा डाल दिया था ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण द्वारा द्वारिका दुर्ग का निर्माण करना" नामक पचासवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 51
मुचुकुन्द की मुक्ति

जब श्रीकृष्ण नगर से बाहर आए, तो कालयवन ने प्रथम बार श्रीकृष्ण के दर्शन किए, जो पीतवस्त्रधारी तथा असाधारण रूप से सुन्दर थे । कालवन के सैनिकों के समूहों के मध्य से जाते हुए श्रीकृष्ण ऐसे शोभायमान हो रहे थे जैसे मेघ-समूह के मध्य चलता हुआ चन्द्रमा शोभित होता है । सौभाग्यवश कालयवन को श्रीकृष्ण के वक्ष पर के एक विशिष्ट चिह्न, श्रीवत्स की रेखाओं, के दर्शन हुए । श्रीकृष्ण के कण्ठ में पड़ी हुई कौस्तुभ-मणि के दर्शन भी कालयवन ने किए । कालयवन ने चतुर्भुज सुदृढ़ शरीर तथा नवविकसित कमलदल के समान लोचनों वाले, विष्णुरूप श्रीकृष्ण के दर्शन किए । मनोहर भाल और सुन्दर स्मित मुख से युक्त, चंचल भौंहो तथा चलायमान कुण्डलों वाले श्रीकृष्ण आनन्दमूर्ति प्रतीत हो रहे थे । श्रीकृष्ण के दर्शन के पूर्व कालयवन ने उनके विषय में नारद जी से रखा था और अब नारद जी के वर्णनों की पुष्टि हो गई । उसने श्रीकृष्ण के विशिष्ट लक्षणों तथा उनके वक्ष पर के रत्नों को देखा । उसने श्रीकृष्ण की अति सुन्दर कमलमाला, उनके कमलनयनों तथा उसी के समान अन्य मनोहर शारीरिक लक्षणों के दर्शन किए । उसने निष्कर्ष निकाला कि यह मनोहर व्यक्ति निश्चय ही वासुदेव है, क्योंकि नारद द्वारा पहले से सुने हुए

सभी विवरण श्रीकृष्ण की उपस्थिति से प्रमाणित हो जाते थे । श्रीकृष्ण को बिना शस्त्रों तथा रथ के उसकी सेना में से गुजरते हुए देख कर कालयवन चकित हो गया । वे पैदल चल रहे थे । कालयवन श्रीकृष्ण से युद्ध करने आया था फिर भी वह इतना सिद्धान्तवादी था कि उसने भी कोई शस्त्र नहीं लिया । उसने श्रीकृष्ण से द्वन्द्व युद्ध करने का निश्चय किया । इस प्रकार वह श्रीकृष्ण से युद्ध करके उन्हें बन्दी बनाने के लिए तत्पर हो गया ।

किन्तु श्रीकृष्ण कालयवन की ओर दृष्टिपात किए बिना आगे बढ़ते गए और कालयवन उन्हें बन्दी बनाने की इच्छा से उनका अनुगमन करने लगा । किन्तु तीव्र गति से दौड़ने पर भी वह श्रीकृष्ण को नहीं पकड़ सका । मन की गति से चलने वाले योगियों के द्वारा भी श्रीकृष्ण को नहीं पकड़ा जा सकता है । उन्हें केवल भक्ति पथ का अनुसरण करने वालों के द्वारा प्राप्त किया जा सकता है और कालयवन को भक्ति का अभ्यास नहीं था । वह श्रीकृष्ण को पकड़ना चाहता था, किन्तु ऐसा करने में असमर्थ होकर वह पीछे पीछे जा रहा था । कालयवन ने अत्यन्त तीव्र गति से दौड़ना प्रारम्भ कर दिया और वह सोच रहा था, "अब मैं समीप आ गया हूँ, अब मैं उन्हें पकड़ लेंगा ।" किन्तु वह उन्हें पकड़ न सका । श्रीकृष्ण उसे दूर ले गए और एक पर्वत की गुफा में प्रविष्ट हो गए । कालयवन ने सोचा कि श्रीकृष्ण उससे युद्ध करने से बचने के लिए गुफा में आश्रय ले रहे हैं । वह इन शब्दों में उनकी भत्सना करने लगा, 'अरे कृष्ण! मैंने सुना था कि तुम यदुवंश में जन्में एक महान् शूरवीर हो, किन्तु मैं देखता हूँ कि तुम एक कायर की भाँति युद्ध से मुख मोड़ कर भाग रहे हो । यह तुम्हारे वंश की परम्परा तथा तुम्हारे नाम के योग्य नहीं है ।" तीव्रता से दौड़ते हुए कालयवन श्रीकृष्ण का अनुगमन कर रहा था, किन्तु तब भी वह उन्हें नहीं पकड़ सका, क्योंकि वह पापी जीवन के समस्त दोषों से मुक्त नहीं था । वैदिक संस्कृति के अनुसार ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य आदि उच्च वर्णों के

लोग तथा श्रमिक वर्ग भी जो विधि-विधानों का पालन नहीं करते हैं । वे म्लेच्छ अथवा यवन कहलाते हैं । वैदिक समाज की योजना इस प्रकार की गई है कि संस्कार नामक सांस्कृतिक उत्कर्ष अथवा शुद्धिकरण की विधि से शूद्र भी धीरे-धीरे ब्राह्मणों के पद तक उन्नति कर सकते हैं । वैदिक धर्मग्रन्थों के मतानुसार कोई भी जन्म से ब्राह्मण अथवा म्लेच्छ नहीं होता है, जन्म से सभी शूद्र होते हैं । शुद्धिकरण की विधि द्वारा व्यक्ति ब्राह्मणत्व के स्तर तक अपनी उन्नति करता है । यदि वह ऐसा न करके अपना और भी पतन कर लेता है, तब वह म्लेच्छ अथवा यवन कहलाता है । कालयवन भी यवनों अथवा म्लेच्छों के वर्ग में से एक था । वह पापों से दूषित था और श्रीकृष्ण के समीप नहीं पहुँच सका । अवैध काम-भोग, मांस-भक्षण, जुआ खेलने तथा नशा करने के जिन सिद्धान्तों को उच्च वर्णों के लिए वर्जित किया गया है, वे म्लेच्छों या यवनों के जीवन के अविभाज्य अंग हैं । इस प्रकार के पापों से बद्ध होने पर व्यक्ति ईश्वर-साक्षात्कार की दिशा में कोई प्रगति नहीं कर सकता है । भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि पापों के फलों से पूर्ण रूप से मुक्त होने वाला व्यक्ति ही भक्ति अथवा कृष्णभावनामृत में संलग्न हो सकता है । जब श्रीकृष्ण ने गिरि-कन्दरा में प्रवेश किया तब कालयवन विभिन्न कठोर शब्दों से भत्सना करते हुए उनका अनुगमन करता रहा । श्रीकृष्ण अचानक असुर की दृष्टि से ओझल हो गए, किन्तु कालयवन उनका अनुगमन करता गया और वह भी गुफा में प्रविष्ट हो गया । उसने कन्दरा के भीतर सर्वप्रथम एक व्यक्ति को सोते हुए देखा । कालयवन श्रीकृष्ण से युद्ध करने को अत्यन्त अधीर था । जब उसने वहाँ श्रीकृष्ण को नहीं देखा, अपितु उनके स्थान पर एक व्यक्ति को सोते हुए देखा, तो उसने सोचा कि श्रीकृष्ण ही उस कन्दरा में सो रहे हैं । कालयवन को अपने बल का बहुत घमण्ड था और उसने विचार किया कि श्रीकृष्ण उससे युद्ध करने से बचना चाहते हैं । अतएव सोए हुए व्यक्ति को श्रीकृष्ण समझ कर उसने उसपर एक तीव्र पदाघात किया । वह सोया हुआ व्यक्ति वहाँ दीर्घकाल से सो रहा था

। कालयवन के पदाघात से जब उसकी निद्रा टूटी, तो उसने तत्काल अपने नेत्र खोल कर समस्त दिशाओं में देखा । अन्ततः उसने अपने समीप खड़े कालयवन को देखा । उस व्यक्ति की निद्रा असमय में भंग कर दी गई थी, अतएव वह अत्यन्त क्रोधित था । जब उसने कृद्ध भाव से कालयवन पर दृष्टिपात किया, तो उसके नेत्रों से अग्नि की ज्वाला निकलने लगी और क्षण-मात्र में कालयवन जल कर भस्म हो गया । जब महाराज परीक्षित ने कालयवन के भस्म होने की इस घटना को सुना, तब उन्होंने शुकदेव गोस्वामी से उस शयन करते हुए व्यक्ति के विषय में पूछा-"वह कौन था ? वह वहाँ क्यों शयन कर रहा था ? उसने इतनी शक्ति किस प्रकार प्राप्त की थी कि उसके दृष्टिपात से ही कालयवन तत्क्षण भस्म हो गया? ऐसा किस प्रकार हुआ कि वह गिरि-कन्दरा में शयन कर रहा था?" उन्होंने अनेक प्रश्न श्रीशुकदेव गोस्वानी के समक्ष प्रस्तुत किए और श्रीशुकदेवजी ने निम्न प्रकार से उत्तर दिया : "प्रिय राजन्! उस पुरुष का जन्म राजा इक्ष्वाकु के महान् परिवार में हुआ था । भगवान् रामचन्द्र का जन्म भी इसी परिवार में हुआ था । वह महान् राजा मान्धाता का पुत्र था । वह स्वयं भी एक महापुरुष था और मुचुकुन्द के नाम से प्रसिद्ध था । राजा मुचुकुन्द ब्राह्मण संस्कृति के वैदिक सिद्धान्तों का अत्यन्त दृढ़ता से पालन करता था और वह सत्यप्रतिज्ञ था । वह इतना बलशाली था कि असुरों से युद्ध करते समय इन्द्र आदि देवता भी उसकी सहायता की याचना करते थे और इस प्रकार अनेक बार देवताओं की रक्षा करने के लिए उसने असुरों से युद्ध किया था ।" कार्तिकेय के नाम से विख्यात देवताओं के सेनापति राजा मुचुकुन्द के युद्धकौशल से अत्यन्त प्रसन्न थे । किन्तु एक बार कार्तिकेय ने राजा से कहा कि वे असुरों से युद्ध करने में अत्यन्त कष्ट उठा चुके हैं, अतः अब वे युद्ध से अवकाश लेकर विश्राम करें । सेनापति कार्तिकेय ने राजा मुचुकुन्द को सम्बोधित किया, "प्रिय राजन्! देवताओं के हेतु आपने अपना सर्वस्व बलिदान कर दिया है । आपका राज्य किसी प्रकार के शत्रु के भय से मुक्त एक उत्तम राज्य था

। किन्तु आपने अपना राज्य त्याग दिया, अपने ऐश्वर्य तथा सम्पत्ति की उपेक्षा की और अपनी व्यक्तिगत महात्वकांक्षा की पूर्ति की भी चिन्ता नहीं की । देवताओं के लिए असुरों से युद्ध करते समय आप अपने राज्य से दीर्घकाल तक अनुपस्थित रहे और उस अनुपस्थिति के कारण समयानुसार आपके परिवार, आपकी सन्तान, आपके सम्बन्धियों तथा आपके मंत्रियों का स्वर्गवास हो चुका है । काल किसी भी मानव की प्रतीक्षा नहीं करता है । अब यदि आप अपने घर लौट भी जाँए तो वहाँ आपको कोई भी जीवित नहीं मिलेगा । काल का प्रभाव अत्यन्त बलवान् होता है । काल इतना शक्तिशाली तथा बलवान् है, क्योंकि यह श्रीभगवान् का एक प्रतिनिधि है । अतएव काल बलवान्तम व्यक्ति से भी बलवान् है । काल का प्रभाव बिना किसी कठिनाई के सूक्ष्म वस्तुओं में भी परिवर्तन ला सकता है । काल की गति को कोई नहीं रोक सकता है । जिस प्रकार पशुपालक मदारी अपनी इच्छानुसार पशुओं को वश में कर लेता है, उसी भाँति काल भी वस्तुओं में अपनी इच्छानुसार समजन कर लेता है । महाकाल के द्वारा किए गए प्रबन्ध में कोई भी हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ।" मुचुकुन्द को इस प्रकार सम्बोधित करते हुए देवताओं ने उनसे कहा कि मुक्ति के वरदान के अतिरिक्त वह उनसे अपनी रुचि के अनुसार कोई भी वरदान माँग ले । भगवान् विष्णु के अतिरिक्त और कोई भी प्राणी मुक्ति देने में समर्थ नहीं है । अतएव भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण का दूसरा नाम मुकुन्द है, क्योंकि वे मुक्ति दे सकते हैं । राजा मुचुकुन्द अनेकानेक वर्षों से सोए नहीं थे । वे युद्ध के कर्तव्य में संलग्न थे और इसलिए बहुत थके हुए थे । अतः जब देवताओं ने वरदान माँगने की तो मुचुकुन्द को केवल निद्रा का विचार आया । उन्होंने इस प्रकार उतर . 'देवताओं में श्रेट, प्रिय कर्तिकेय में अब सोना चाहता हूँ । मैं आपसे यह कथा चाहता हूँ कि जो कोई मेरी निद्रा में बाधा डालने का प्रयास करे और मुझे असा उठाए, उसे मैं केवल एक दृष्टिपात से भस्म कर दूँ । कृपया मुझे यह कथा दीजिए ।" देवता कार्तिकेय सहमत हो गए और उन्होंने यह

भी वरदान दिया कि पूर्ण विश्राम ग्रहण करने में समर्थ होंगे । तदनन्तर राजा मुचुकुन्द ने पर्वत की गुफा में प्रवेश किया । कार्तिकेय के वरदान की शक्ति से मुचुकुन्द द्वारा कालयवन पर दृष्टिपात मात्र से वह भस्म हो गया । जब यह घटना पूरी हो गई, कृष्ण मुचुकुन्द के सम्मुख आए । वास्तव में श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को उनकी तपस्या से मुक्ति देने के लिए ही गुफा में प्रवेश किया था, किन्तु वे उनके समक्ष पहले नहीं आए । उन्होंने ऐसा प्रबन्ध किया कि पहले कालयवन मुचुकुन्द के समक्ष आए । श्रीभगवान् का यही स्वभाव है । वे एक कार्य इस प्रकार से करते हैं कि उससे अन्य अनेक प्रयोजन भी सिद्ध होते हैं । श्रीकृष्ण गुफा में सोते हुए मुचुकुन्द का उद्धार करना चाहते थे, साथ ही साथ मथुरा पर आक्रमण करने वाले कालयवन का उद्धार भी करना चाहते थे । इस कार्य से उन्होंने सभी प्रयोजन सिद्ध कर लिए । जब भगवान् श्रीकृष्ण मुचुकुन्द के समक्ष प्रकट हुए तब राजा ने पीतवस्त्रधारी, श्रीवत्स के चिह्न से चिह्नित वक्ष वाले श्रीकृष्ण के दर्शन किए । श्रीकृष्ण के कण्ठ में कौस्तुभ मणि लटक रही थी । कण्ठ से लेकर जानुओं तक लटकती हुई वैजयन्ती माला धारण किए हुए श्रीकृष्ण मुचुकुन्द के समक्ष चतुर्भुजी विष्णुमूर्ति के रूप में प्रकट हुए । वे अत्यन्त ज्योतिर्मय थे, उनके मुख पर अत्यन्त सुन्दर मुस्कान थी, उनके दोनों कानों में रत्नजटित कुण्डल थे । श्रीकृष्ण मानव की कल्पना से कहीं अधिक सुन्दर लग रहे थे । वे न केवल इन लक्षणों से युक्त प्रकट हुए, अपितु उन्होंने मुचुकुन्द पर एक अत्यन्त तेजस्वी दृष्टि डाली और राजा का मन आकर्षित कर लिया । यद्यपि वे सर्वाधिक पुरातन श्रीभगवान् थे तथापि वे एक नव किशोर के समान प्रतीत हो रहे थे और उनकी चाल मुक्त हिरण के समान थी । वे अत्यन्त बलशाली प्रतीत हो रहे थे । बल में उनकी श्रेष्ठता इतनी अधिक है कि प्रत्येक मानव को उनसे भयभीत होना चाहिए । जब मुचुकुन्द ने श्रीकृष्ण के तेजस्वी स्वरूप को देखा तब उनमें भगवान् के में कौतूहल उत्पन्न हुआ और उन्होंने अत्यन्त विनयपूर्वक भगवान् से प्रश्न, 'प्रिय भगवन्! क्या मैं पूछ सकता हूँ कि आप इस पर्वत|-

श में कैसे आए? आप कौन हैं? मैं देख सकता हूँ कि आपके चरण कोमल मामलों के समान हैं । काँटों तथा झाड़ियों से पूर्ण इस वन में आप किस प्रकार चल के मुझे यह देखकर अचरज हो रहा है । अतएव आप बलवानों में परम बलवान् भगवान् तो नहीं हैं? आप समस्त प्रकाश तथा अग्नि के मूल स्रोत तो नहीं हैं? का में सूर्य, चन्द्र, अथवा देवेन्द्र इन्द्र आदि महान् देवताओं में से आपको एक समझें ? अथवा आप किसी और ग्रह के अधिपति देवता लोकपाल हैं?" मुचुकुन्द को भलीभाँत ज्ञात था कि प्रत्येक उच्चतर लोक का अपना लोकपाल ोता हैं । वे आधुनिक मानवों की भाँति अज्ञानी नहीं थे, जो यह मानते हैं कि पृथ्वी लोक जीवों से पूर्ण है और अन्य ग्रह रिक्त हैं । श्रीकृष्ण के किसी अज्ञात लोक के अधिपति देवता होने के विषय में मुचुकुन्द की जिज्ञासा अत्यन्त उपयुक्त थी । भगवान् के शुद्ध भक्त होने के कारण राजा मुचुकुन्द तत्काल समझ गए कि भगवान् कृष्ण जो उनके समक्ष इस प्रकार के ऐश्वर्ययुक्त लक्षण में प्रकट हुए हैं, भौतिक ग्रहों के अधिपति देवताओं में से एक नहीं हो सकते थे । वे अवश्य ही भगवान् श्रीकृष्ण होंगे जिनके अनेक विष्णु रूप हैं । अतएव मुचुकुन्द ने उन्हें पुरुषोत्तम भगवान् विष्णु माना । मुचुकुन्द यह भी देख सकते थे कि भगवान् की उपस्थिति से गुफा का गहन अंधकार नष्ट हो गया था, अतएव वे श्रीभगवान् के अतिरिक्त और कोई नहीं हो सकते थे । उन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि जहाँ कहीं भी अपने दिव्य नाम, गुण अथवा स्वरूप में भगवान् स्वयं प्रकट होते हैं वहाँ अज्ञान का अंधकार नहीं रह सकता है । वे अंधकार में रखे गए एक दीपक की भाँति हैं; अंधकारयुक्त स्थान को वे तत्काल प्रकाश से पूर्ण कर देते हैं । राजा मुचुकुन्द भगवान् कृष्ण का परिचय जानने के लिए अत्यन्त उत्सुक हो गए अतएव उन्होंने कहा, "हे पुरुषोत्तम! यदि आप मुझे अपना परिचय जानने के योग्य समझते हैं, तो कृपया मुझे बताइए कि आप कौन हैं? आपका वंश कौन-सा है? आपका व्यवस्थाय क्या है और आपके परिवार की परम्परा (गोत्र) क्या है?" राजा मुचुकुन्द ने भगवान् को पहले अपना

परिचय देना उचित समझा; अन्यथा उन्हें भगवान् का परिचय पूछने का कोई अधिकार नहीं था । निम्न पद का व्यक्ति उच्च पद वाले व्यक्ति का परिचय नहीं पूछ सकता, यदि पूछते समय वह पहले अपना परिचय नहीं देता है । यह शिष्टाचार है । अतएव राजा मुचुकुन्द ने भगवान् श्रीकृष्ण को सूचित किया, "प्रिय भगवन्! पहले मुझे आपको अपना परिचय देना चाहिए । मैं सर्वाधिक प्रसिद्ध राजा इक्ष्वाकु के वंश से सम्बन्धित हूँ किन्तु व्यक्तिगत रूप से मैं अपने पूर्वज के समान महान् नहीं हूँ । मेरा नाम मुचुकुन्द है, मेरे पिता का नाम मान्धाता था और मेरे बाबा महान् राजा युवनाश्व थे । सहस्रों वर्ष तक विश्राम न करने के कारण मैं अत्यन्त श्रमित था और इस कारण मेरे शरीर के अंग शिथिल और कार्य करने में लगभग असमर्थ थे । अपनी शक्ति को पुन: प्राप्त करने के लिए मैं इस एकान्त कन्दरा में विश्राम कर रहा था । किन्तु किसी अज्ञात व्यक्ति ने मुझे उठने के लिए बाध्य कर दिया । यद्यपि मैं नहीं चाहता था, तथापि किसी ने मुझे उठा दिया है । इस प्रतिकूल कार्य के लिए मैंने एक दृष्टिपात-मात्र से उस व्यक्ति को भस्म कर दिया । सौभाग्यवश अब मैं आपके देदीप्यमान् तथा सुन्दर रूप में आपके दर्शन कर सकता हूँ । अतएव मेरा विचार है कि मेरे शत्रु के वध का कारण आप हैं । प्रिय भगवन्! आपकी अंगकान्ति मेरे नेत्रों को असह्य है; इसी कारण मैं ठीक से आपके दर्शन नहीं कर सकता हूँ । मैं भलीभाँति अनुभव कर सकता हूँ कि आपके तेज के प्रभाव से मेरी शक्ति कम हो गई है । मुझे ज्ञात है कि आप समस्त जीवों की आराधना के योग्य मुचुकुन्द को अपना परिचय जानने के लिए इतना उत्सुक देख कर भगवान् श्रीकृष्ण मुस्काते हुए इस प्रकार से उत्तर देने लगे, "प्रिय राजन्! मेरे जन्म, आविर्भाव, तिरोभाव अथवा कार्यकलापों के विषय में कुछ कहना व्यावहारिक रूप से असम्भव है । सम्भवत: तुमको ज्ञात होगा कि मेरे अवतार अनन्तदेव के अनन्त मुख हैं और वे अनन्त काल से मेरे नाम, यश, गुणों, आविर्भाव, तिरोभाव तथा अवतारों का पूर्ण रूप से वर्णन करने की चेष्टा कर रहे हैं, किन्तु फिर भी वे यह कार्य समाप्त नहीं कर

सके हैं । अतएव मेरे कितने नाम और रूप हैं यह ठीक-ठीक जानना असम्भव है । एक भौतिक विज्ञानी के लिए पृथ्वी के समस्त अणुओं की संख्या की गणना करना सम्भव हो सकता है, किन्तु वह विज्ञानी भी मेरे अनन्त नामों, रूपों तथा कार्यकलापों की गणना नहीं कर सकता है । अनेक महान् साधु व सन्तजन मेरे विभिन्न रूपों व कार्यकलापों की सूची बनाने की चेष्टा करते रहे हैं, वे फिर भी पूर्ण सूची बनाने में असफल रहे हैं । किन्तु चूँकि तुम मेरे विषय में जानने के इतने उत्सुक हो अत: मैं तुम्हें सूचित करता हूँ कि अभी मैं जनसाधारण के आसुरी सिद्धान्तों के विनाश के लिए तथा वेदों में कहे गए धार्मिक सिद्धान्तों को पुन:स्थापित करने के लिए इस धरती पर प्रकट हुआ हूँ । इस कार्य के हेतु ब्रह्मा ने मुझे निमंत्रित किया है, जो इस ब्रह्माण्ड के अधिपति देवता हैं । इस प्रकार मैं यदुवंश में उनके परिवार के एक सदस्य के रूप में, प्रकट हूँ । मैंने विशेष रूप से यदु-वंश में वसुदेव के पुत्र-रूप में जन्म लिया और लोग मुझे वासुदेव के नाम से जानते हैं । तुम्हें यह भी ज्ञात होगा कि पिछले जन्म में मैने कालनेमि नाम से विख्यात कंस तथा प्रलम्बासुर जैसे अन्य अनेक असुरों का वध किया है । उन्होंने मुझसे शत्रुता की, अतएव मेरे हाथों उनका वध हुआ है । तुम्हारे सम्मुख उपस्थित असुर ने भी मुझसे शत्रुता की थी और तुमने कृपा करके उस पर दृष्टिपात करके उसे भस्म कर दिया है । प्रिय राजन् । मुचुकुन्द! तुम मेरे महान् भक्त हो तथा तुम्हें अपनी अहैतुकी दया का दर्शन कराने के लिए मैं इस कन्दरा में प्रकट हुआ हूँ । मैं अपने भक्तों के प्रति अत्यधिक स्नेह रखता हूँ । अपनी वर्तमान दशा से पूर्व पूर्वजन्म में तुम मेरे महान् भक्त थे तथा तुमने मेरी अहैतुकी दया के लिए प्रार्थना की थी । अतएव मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने के लिए तुमसे भेंट करने आया हूँ । अब तुम अपनी अभिलाषा के अनुसार मेरे दर्शन कर सकते हो । प्रिय राजन्! अब तुम मुझसे अपनी इच्छानुसार कोई भी वरदान माँग सकते हो । मैं तुम्हारी मनोकामना पूर्ण करने को तत्पर हूँ । यह मेरा सनातन सिद्धान्त है कि जो कोई भी मेरी शरण में आता है, मेरी अनुकम्पा

से उसकी सभी कामनाएँ पूर्ण होनी चाहिए ।" जब भगवान् श्रीकृष्ण ने मुचुकुन्द को उनसे कोई भी वर माँगने का आदेश दिया तब राजा अत्यन्त हर्षित हो गया । उन्हें तत्काल ही गर्गमुनि की भविष्यवाणी स्मरण हो आई । गर्गमुनि ने दीर्घकाल पूर्व भविष्यवाणी की थी कि वैवस्वत मनु के अट्ठाइसवें मन्वन्तर में भगवान् श्रीकृष्ण इस पृथ्वी पर प्रकट होंगे । जैसे ही उन्हें यह भविष्यवाणी स्मरण हुई उन्हें समझ में आने लगा कि भगवान् कृष्ण के रूप में स्वयं पुरुषोत्तम नारायण उनके समक्ष उपस्थित हैं । वे तत्काल भगवान् के पदकमलों पर गिर पड़े और निम्न प्रकार से स्तुति करने लगे"प्रिय भगवन्! मैं समझ सकता हूँ कि इस जगत में सभी जीव आपकी बहिरंगा शक्ति, माया, के द्वारा भ्रमित हैं और इन्द्रियतृप्ति की भ्रामक तुष्टि पर मोहित हैं । भ्रामक गतिविधियों में पूर्ण रूप से संलग्न होने के कारण वे आपके चरणारविन्दों की पूजा के प्रति अनिच्छुक हैं । आपके चरणकमलों की शरण में आने के लाभों का उन्हें ज्ञान नहीं है, इसी कारण वे भौतिक जगत की विभिन्न दुखदायी दशाओं के वशीभूत होते हैं । मूर्खतावश वे विभिन्न प्रकार की दुखद दशाओं को जन्म देने वाले ॥ तथाकथित समाज, मैत्री तथा प्रेम के प्रति बँधे रहते हैं । आपकी बहिंरगा शक्ति से भ्रमित होकर प्रत्येक व्यक्ति, स्त्री तथा पुरुष दोनों ही, इस भौतिक जगत से बँधे रहते हैं । छलने वालों तथा छले जाने वालों के इस समाज में सभी एक दूसरे को छलने में संलग्न हैं । ये मूर्ख व्यक्ति यह नहीं जानते हैं कि इस मानव-जीवन को प्राप्त करना उनका कितना बड़ा सौभाग्य है; अतः वे आपके चरणकमलों का भजन करने के अनिच्छुक हैं । आपकी बहिरंगा शक्ति के प्रभाववश वे केवल भौतिक गतिविधियों के आकर्षण से बँधे रहते हैं । अन्धकूप में गिरे हुए गूँगे पशु की भाँति वे केवल तथाकथित समाज, मैत्री तथा प्रेम से ही बँधे रहते हैं ।" अन्धकूप का उदाहरण इसलिए दिया गया है, क्योंकि खेतों में अनेक ऐसे कुएँ होते हैं, जो अनेक वर्षों तक उपयोग में न आने के कारण घास से ढक जाते हैं और बेचारे पशु उन कुओं को न जानने के कारण उनमें गिर जाते हैं ।

यदि कोई उनकी रक्षा न करे तो उनकी मृत्यु हो जाती है । घास के कुछ तिनकों पर मोहित हो कर, पशु अन्धकूप में गिर कर मृत्यु को प्राप्त होते हैं । उसी भाँति मूर्ख व्यक्ति मानव-जीवन के महत्व को न जानकर, इसे केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए नष्ट कर देते हैं और व्यर्थ ही, अनावश्यक रूप से मृत्यु को प्राप्त होते हैं । "प्रिय भगवन्! प्रकृति के इस सार्वभौम नियम का मैं अपवाद नहीं हूँ । मैं भी उन्हीं मूर्ख व्यक्तियों में से एक हूँ जिन्होंने अपना समय व्यर्थ गाँवा दिया है और मेरी स्थिति तो विशेष रूप से गम्भीर है । राजवंश का होने के कारण मैं साधारण व्यक्तियों से भी अधिक गर्व-युक्त था । एक साधारण मनुष्य अपने शरीर अथवा परिवार का स्वामी होने की बात सोचता है, किन्तु मैंने बड़े पैमाने पर यह भ्रामक विचार करना आरम्भ किया । मैं समस्त जगत का स्वामी बनना चाहता था । जैसे-जैसे मैं इन्द्रियतृप्ति के विचारों से उन्मत्त होता गया, वैसे-वैसे जीवन के प्रति मेरी देहात्मबुद्धि दृढ़तर होती गई । घर, पत्नी, सन्तान, धन और जगत पर प्रभुत्व के प्रति मेरी आसक्ति न केवल अधिक प्रबल होती गयी, अपितु वास्तव में मेरी आसक्ति असीम थी । इस प्रकार जीवन की भौतिक दशाओं के विचारों से मैं सर्वदा बद्ध रहा ।" "अतएव भगवन्! मैंने अपना इतना बहुमूल्य जीवन व्यर्थ गँवा दिया । जीवन विषयक मेरी मिथ्या धारणा दृढ़ हो जाने के कारण, मैं विचार करने लगा कि अस्थिमांस का पिंजर यह भौतिक शरीर ही सब कुछ है और व्यर्थ ही मैं उस श्वान (कुत्ते) की भाँति यह विश्वास करने लगा कि वह मानव-समाज का राजा बन गया है । देहात्मबुद्धि के कारण सैनिकों, सारथियों, हाथियों तथा अश्वों आदि की अपनी सैन्य शक्ति सहित मैं समस्त जगत की यात्रा करने लगा । अनेक सेनापति मेरी सहायता करते थे तथा मैं अपनी शक्ति पर गर्वित हो उठा था । इस कारण सर्वाधिक अन्तरंग सखा की भाँति, मेरे हृदय में सदा निवास करने वाले भगवान्, आपको मैं नहीं पा सका । मैंने आपकी चिन्ता नहीं की और भौतिक रूप से मेरी तथाकथित उन्मत्त स्थिति का यही दोष था । मेरे विचार में मेरी भाँति सभी प्राणी आध्यात्मिक साक्षात्कार के प्रति

असावधान रहते हैं और यह सोचते हुए कि क्या किया जाए, आगे क्या होगा, सदैव उद्विग्न रहते हैं । किन्तु हमें भौतिक कामनाओं ने दृढ़ता से बाँध रखा है, अतएव हम उन्मत्तावस्था में बने रहते हैं । भौतिक विचारों में इतना मग्न होने पर भी आपका ही एक स्वरूप, अटल काल, अपने कर्तव्य के प्रति सदैव सावधान रहता है । जैसे ही निर्धारित समय समाप्त होता है वैसे ही आप हमारी भौतिक स्वपनों की समस्त गतिविधियों को तत्काल समाप्त कर देते हैं । काल के रूप में आप हमारी समस्त गतिविधियों को उसी प्रकार समाप्त कर देते हैं जैसे एक भूखा कालसर्प निर्दयतापूर्वक शीघ्रता से एक छोटे से चूहे को निगल जाता है । वे राजसी शरीर, जो जीवन में सदैव स्वर्णाभूषणों से सजित रहते थे तथा जो उत्तम अश्वों वाले रथों पर अथवा स्वर्णाभूषणों से सुसज्जित हाथी की पीठ पर सवार हो कर चलते थे; काल की क्रूर गति से निर्जीव हो जाते हैं । मानव समाज के राजा के रूप में प्रसिद्ध वही राजसी शरीर अटल काल के प्रभाव के अन्तर्गत क्षय को प्राप्त होता है और कीड़े-मकोड़ों का भोजन बन जाता है, अथवा भस्म हो जाता है या किसी पशु की विष्ठा बनने के योग्य हो जाता है । यह सुन्दर शरीर जीवितावस्था में राजसी हो सकता है, किन्तु मृत्यु के उपरान्त एक राजा के शरीर को भी पशु खाते हैं, अतएव वह विष्ठा में परिवर्तित हो जाता है, अथवा उसे शमशान में जला दिया जाता है और वह भस्म बन जाता है, अथवा उसे कब्र में दबा देते हैं जहाँ इसमें से भिन्न-भिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़ों की उत्पत्ति होती है । 'प्रिय भगवन्! हम न केवल मृत्यु के पश्चात् इस अटल काल के पूर्ण नियंत्रण में आ जाते हैं, अपितु जीवितावस्था में भी एक दूसरे प्रकार से इसके नियंत्रण में आते हैं । उदाहरण के लिए, भले ही मैं एक शक्तिशाली राजा हो सकता हूँ, फिर भी जगत पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् जब मैं घर वापस आता हूँ तब मैं अनेक भौतिक दशाओं के वशीभूत हो जाता हूँ । हो सकता है कि जब मैं विजयी होकर वापस आता हूँ तब समस्त अधीनस्थ राजा आकर प्रणाम करें, किन्तु जैसे ही मैं महल के अन्त:पुर में प्रवेश करता

हूँ, मैं स्वयं अपनी रानियों के हाथों का खिलौनाबन जाता हूँ और इन्द्रियतृप्ति के लिए मुझे स्त्रियों के चरणों पर गिरना पड़ता है । जीवन का भौतिकतावादी मार्ग इतना जटिल है कि भौतिक जीवन का आनन्द उठाने के पूर्व व्यक्ति को इतना कठोर श्रम करना पड़ता है कि शान्तिपूर्वक आनन्द भोगने का अवसर कठिनाई से मिलता है । भौतिक सुखों को प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को कठोर आत्मसंयम तथा तपस्या करनी पड़ती है । तब कहीं स्वर्गलोक में स्थान प्राप्त होता है । यदि व्यक्ति को एक अत्यन्त धनी अथवा राज परिवार में जन्म लेने का अवसर मिलता है, उस अवस्था में भी वह उस वैभवशाली स्तर को बनाए रखने के लिए सदैव व्याकुल रहता है । अगले जन्म की तैयारी करने के लिए उसे अनेक प्रकार के यज्ञ सम्पन्न करने पड़ते हैं तथा दान देने पड़ते हैं । जीवन की राजसी दशा में भी व्यक्ति न केवल राजनैतिक प्रशासन के कारण उद्विग्नताओं से पूर्ण रहता है अपितु वह स्वर्ग में स्थान प्राप्त करने के बारे में भी चिन्तित रहता है ।

"अतएव भौतिक बन्धनों से मुक्त होना अत्यन्त कठिन है । किन्तु यदि किसी प्रकार किसी व्यक्ति पर आपका अनुग्रह हो जाता है, तब केवल आपकी कृपा से ही उसे किसी शुद्ध भक्त की संगति का अवसर मिल जाता है । भौतिक बद्ध जीवन के बन्धनों से मुक्ति का यही आरम्भ-बिन्दु है । प्रिय भगवन्! आप भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों जगतों के नियन्ता हैं, व्यक्ति केवल शुद्ध भक्त की संगति के द्वारा आप की ओर आकर्षित होता है । आप समस्त शुद्ध भक्तों के परम लक्ष्य हैं

और शुद्ध भक्तों की संगति के द्वारा व्यक्ति आपके प्रति अपने सुप्त प्रेम को विकसित कर सकता है । अतएव शुद्ध भक्तों की संगति में कृष्णभावनामृत का विकास ही भौतिक बन्धनों से मुक्ति का कारण है ।

"प्रिय भगवन्! आप इतने दयालु हैं कि आपके महान् भक्तों के संग के प्रति मेरे अनिच्छुक होने पर भी अपने मुझे गर्गमुनि के समान शुद्ध भक्त

का संत्सग प्राप्त कराकर मुझ पर परम अनुकम्पा दर्शाई है । आपकी अहैतुकी दया से ही मैंने अपने भौतिक ऐश्वर्य, अपने राज्य तथा अपने परिवार को खो दिया है । मेरे विचार में आपकी अहैतुकी दया के बिना मैं इन सब बन्धनों से मुक्ति नहीं पा सकता था । राजा, महाराज राजसी जीवन का विस्मरण करने के लिए कभी कभी साधु का जीवन स्वीकार करते हैं, किन्तु आपकी विशिष्ट अहैतुकी दया से मैं पहले ही राजसी जीवन से वंचित हूँ । दूसरे राजाओं को राज्य और परिवार के बन्धनों से मुक्त होने का प्रयास करना पड़ता है । किन्तु आपकी दया से मुझे वैराग्य का अभ्यास करने अथवा साधु बनने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

'प्रिय भगवन्! इसलिए मेरी आपसे प्रार्थना है कि मैं केवल आपके वरणारविन्दों की दिव्य प्रेममयी सेवा करने में संलग्न रह सकूं । सभी प्रकार के भौतिक दूषणों से मुक्त शुद्ध भक्तों का भी यही ध्येय होता है । आप श्रीभगवान् हैं और आप मुझे मुक्ति सहित कुछ भी दे सकते हैं । किन्तु ऐसा कौन मूर्ख होगा, जो आपको प्रसन्न करने के उपरान्त आपसे कोई ऐसी वस्तु माँगेगा, जो भौतिक जगत में बन्धन का कारण बने? मेरे विचार में कोई भी स्वस्थचित व्यक्ति आपसे ऐसा वरदान नहीं माँगेगा । आप श्रीभगवान् हैं । आप प्रत्येक प्राणी के हृदय में निवास करने वाले परमात्मा हैं । आप निर्विशेष ब्रह्म-ज्योति हैं, अतएव मैं आपकी शरण में आता हूँ । बहिंरगा शक्ति की अभिव्यक्ति मात्र है । अतएव किसी भी दृष्टिकोण से आप प्रत्येक प्राणी के परमाश्रय हैं । भौतिक स्तर पर हो अथवा आध्यात्मिक स्तर पर, सबको आपके चरणकमलों का आश्रय लेना पड़ता है । अतएव भगवन्! मैं आपकी शरण लेता हूँ । अनेकानेक जन्मों से मैं भौतिक जगत के त्रिदाहों से पीड़ित हूँ और अब मैं इससे थक गया हूँ । मैं केवल अपनी इन्द्रियों के वशीभूत रहा और कभी-भी सन्तुष्ट नहीं हुआ । अतएव मैं आपके उन चरणकमलों की शरण लेता हूँ, जो समस्त शान्तिपूर्ण जीवन के स्रोत हैं और जो भौतिक दूषणों से उत्पन्न सभी प्रकार

के शोकों को मिटा सकते हैं । प्रिय भगवन्! आप प्रत्येक जीव के परमात्मा हैं और आप सब कुछ समझ सकते हैं । अब मैं भौतिक इच्छा के सभी दूषणों से मुक्त हूँ । मुझे इस भौतिक जगत का उपभोग करने की कोई कामना नहीं है, न ही मुझे आपकी आध्यात्मिक ज्योति में विलीन होने का लाभ उठाना चाहता हूँ । मुझे आपके परमात्मा पक्ष का ध्यान करने की भी इच्छा नहीं है, क्योंकि मुझे ज्ञात है कि आपका आश्रय लेने मात्र से मैं पूर्ण रूप से शान्त और स्थिर हो जाऊँगा ।"

राजा मुचुकुन्द के इस कथन को सुनकर भगवान् कृष्ण ने उत्तर दिया, "प्रिय राजन्! तुम्हारे कथन से मैं अत्यन्त प्रसन्न हूँ । तुम समस्त पृथ्वी के राजा रह चुके हो, किन्तु मुझे आश्चर्य है कि तुम्हारा मन अब समस्त भौतिक दूषणों से मुक्त हो चुका है । अब तुम भक्ति करने के योग्य हो गए हो । मुझे यह देख कर अत्यधिक हर्ष है कि यद्यपि मैंने तुम्हें कोई भी वर माँगने का अवसर दिया, किन्तु तुमने उसका लाभ उठा कर किसी भौतिक लाभ की कामना नहीं की । मैं समझ सकता हूँ कि तुम्हारा मन अब मुझमें केन्द्रित है और किसी भौतिक गुण से क्षुब्ध नहीं है । "सत, रज तथा तम नामक तीन भौतिक गुण होते हैं । जब व्यक्ति रज तथा तम के सम्मिलित गुणों में अवस्थित होता है, तब वह विभिन्न प्रकार के प्रलोभनों तथा वासनाओं के द्वारा, इस भौतिक जगत में सुख प्राप्त करने का प्रयास करने के लिए प्रेरित कर दिया जाता है । जब वह सतीगुण में अवस्थित होता है, तब वह विभिन्न प्रकार के तपों तथा संयमों का सम्पादन करके स्वयं को शुद्ध करने का प्रयास करता है । जब व्यक्ति वास्तविक ब्राह्मण के स्तर पर पहुँच जाता है, तब वह भगवान् के अस्तित्व में लीन हो जाने की कामना करता है । किन्तु जब वह व्यक्ति केवल भगवान् के चरणकमलों की सेवा करने की कामना करता है, तब वह त्रिगुणातीत होता है । अतएव शुद्ध कृष्णभावनाभावित व्यक्ति सदैव ही तीनों गुणों से मुक्त होता है । प्रिय राजन! भक्ति में तुम कितनी प्रगति कर चुके हो,

इसकी परीक्षा लेने के लिए ही मैंने तुमको वर देना चाहा था । अब मैं देख सकता हूँ कि तुम शुद्ध भक्त के स्तर को प्राप्त कर चुके हो, क्योंकि तुम्हारा मन भौतिक जगत की किसी प्रकार की लोलुपता (लालच) अथवा दुर्वासनाओं से क्षुब्ध नहीं है । इन्द्रियों का दमन तथा प्राणायाम का अभ्यास करके, अपना उत्कर्ष करने का प्रयास करने वाले योगी भी इतने पूर्णरूप से भौतिक कामनाओं से मुक्त नहीं हैं । ऐसे अनेक उदाहरण देखे गए हैं कि जैसे ही प्रलोभन समक्ष आता है, ऐसे योगी फिर भौतिक स्तर पर उतर आते हैं ।" इस कथन की पुष्टि करने वाले ज्वलन्त उदाहरण विश्वामित्र मुनि हैं । विश्वामित्र मुनि एक महान् योगी थे, जो प्राणायाम का अभ्यास कर रहे थे । किन्तु जब उनके निकट स्वर्ग की अप्सरा मेनका गई, तो वे संयम खो बैठे और मेनका से शकुन्तला नामक एक पुत्री उत्पन्न की । किन्तु शुद्ध भक्त हरिदास ठाकुर, एक वेश्या के द्वारा इस प्रकार के प्रलोभन दिए जाने पर भी कभी विचलित नहीं हुए । भगवान् कृष्ण ने आगे कहा, "प्रिय राजन्! इसीलिए मैं तुमको यह विशेष वरदान देता हूँ कि तुम सदैव मेरे विषय में चिन्तन करोगे । इस प्रकार तुम त्रिगुणों से दूषित हुए बिना भौतिक जगत में मुक्त रूप से विचरण करने में समर्थ होगे ।" भगवान् का यह कथन इस बात की पुष्टि करता है कि गुरु के निर्देशन में भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति में संलग्न कृष्णभावनामृत में यथार्थत: स्थित भक्त कभी भी प्रकृति के गुणों के दूषणों से प्रभावित नहीं होता है । भगवान् ने कहा, "प्रिय राजन्! एक क्षत्रिय होने के कारण तुमने आखेट करते हुए तथा राजनैतिक संग्रामों में पशु-वध का अपराध किया है । शुद्धिकरण के लिए स्वयं को भक्तियोग के अभ्यास में संलग्न करो तथा अपना मन सदैव मुझमें लीन रखी । शीघ्र ही तुम्हें इन पापों के फलों से मुक्ति मिल जाएगी ।" इस कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि यद्यपि क्षत्रियों को शिकार के समय पशु वध करने की अनुमति है, तथापि वे पापों से जन्य इन दूषणों से मुक्त नहीं होते हैं । अतएव किसी के क्षत्रिय, वैश्य अथवा ब्राह्मण होने से कोई अन्तर नहीं पड़ता है । जीवन के अन्त में सभी

को संन्यास लेने की संस्तुति की जाती है । सभी को पूर्ण रूप से स्वयं को भगवान् की सेवा में संलग्न कर देना चाहिए और इस प्रकार पूर्वजन्म के पापों से मुक्ति प्राप्त करनी चाहिए ।

तदनन्तर भगवान् ने राजा मुचुकुन्द को आश्वासन दिलाया, "अपने अगले जन्म में तुम एक श्रेष्ठ वैष्णव के रूप में जन्म लोगे जो कि ब्राह्मणों में सर्वोतम होते हैं । उस जन्म में मेरी दिव्य सेवा में संलग्न रहना ही तुम्हारा एकमात्र प्रयोजन होगा ।" वैष्णव प्रथम श्रेणी का ब्राह्मण होता है, क्योंकि जिसने एक प्रामाणिक ब्राह्मण के गुण प्राप्त नहीं किए हैं, वह वैष्णव के स्तर को नहीं प्राप्त कर सकता । जब कोई वैष्णव स्तर को प्राप्त कर लेता है, तो वह पूर्णत: समस्त जीवों के कल्याण में संलग्न हो जाता है । कृष्णभावनामृत का प्रचार ही समस्त जीवों का परम कल्याण करना है । यहाँ पर कहा गया है कि जिन पर भगवान् का विशेष अनुग्रह होता है, वे पूर्ण रूप से श्रीकृष्णभक्त बन सकते हैं और वैष्णव दर्शन का प्रचार करने में संलग्न हो सकते हैं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "मुचुकुन्द की मुक्ति" नामक इक्यावनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 52
रणछोड़ श्रीकृष्ण

भगवान् श्रीकृष्ण ने इक्ष्वाकु वंश के प्रख्यात वंशज मुचुकुन्द पर अनुग्रह गए । कन्दरा से बाहर आने के पश्चात् मुचुकुन्द ने देखा कि मानव-जाति का आकार आश्चर्य रूप से छोटा होकर वामन (बौनों) के आकार का हो गया है । उसी भाँति वृक्षों का आकार भी अति लघु हो गया है । इससे मुचुकुन्द तत्काल समझ गए कि वर्तमान युग कलियुग है । अत: अपना

ध्यान विचलित किए बिना वे उत्तर की ओर यात्रा करने लगे । अन्ततः वे गन्धमादन नामक पर्वत पर पहुँच गए । उस पर्वत पर चन्दन तथा अन्य अनेक पुष्पों के वृक्ष थे, जिनकी सुगन्ध समीप आने वाले व्यक्ति को प्रसन्न कर देती थी । उन्होंने आत्म-संयम तथा तपचर्या के लिए शेष जीवन गन्धमादन पर्वत के क्षेत्र में व्यतीत करने का निश्चय किया । ऐसा प्रतीत होता है कि यह स्थान हिमालय की पर्वत श्रृंखला के उत्तरी भाग में स्थित है, जहाँ नर-नारायण का धाम है । यह स्थान अभी भी है और बदरिकाश्रम के नाम से विख्यात है । बदरिकाश्रम में मुचुकुन्द इस भौतिक जगत के समस्त द्वन्द्र, सुख-दुख आदि को सहन करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण की उपासना में संलग्न हो गए । श्रीकृष्ण मथुरा क्षेत्र में लौट आए और उन्होंने कालयवन के सैनिकों से युद्ध करके उनका वध कर दिया । तत्पश्चात् उन्होंने मृतशरीरों पर से मूल्यवान सामग्री एकत्र करवाई और अपने निर्देशन में उस सामग्री को बैलगाड़ियों पर रख कर द्वारका ले आए । इसी मध्य जरासन्ध ने तेइस अक्षौहिणी सेना लेकर मथुरा पर पुन: आक्रमण कर दिया । भगवान् श्रीकृष्ण राजा जरासन्ध के विशाल सैन्य समूहों के अठारहवें आक्रमण से मथुरा की रक्षा करना चाहते थे । सैनिकों के और अधिक वध को रोकने के लिए तथा अन्य महत्वपूर्ण कार्यों को (०)सम्पादित करने के लिए श्रीकृष्ण ने युद्ध किए बिना ही रणक्षेत्र का त्याग कर दिया । वास्तव में वे तनिक भी भयभीत नहीं थे, किन्तु उन्होंने जरासन्ध की विशाल सेना तथा शक्ति से भयभीत एक साधारण मानव होने का अभिनय किया । बिना कोई शस्त्र लिए उन्होंने रणक्षेत्र त्याग दिया । यद्यपि उनके चरण कमलदल की भाँति कोमल थे, तथापि वे बहुत दूर तक पैदल ही चलते गए । जरासन्ध ने विचार किया कि इस बार श्रीकृष्ण तथा बलराम उसकी सैन्य शक्ति से अत्यन्त भयभीत हैं और रणक्षेत्र से भाग रहे हैं । उसने अपने समस्त रथों, अश्वों तथा सैन्य सहित उनका पीछा करना प्रारम्भ किया । उसके विचार से श्रीकृष्ण तथा बलराम साधारण मानव थे और उसी प्रकार वह भगवान् की गतिविधियों को माप

रहा था । श्रीकृष्ण को रणछोड़ भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है "वह व्यक्ति जिसने रणक्षेत्र छोड़ दिया हो ।" भारत में और मुख्य रूप से गुजरात में, श्रीकृष्ण के अनेक मन्दिर हैं, जो रणछोड़ जी के मन्दिर के रूप में विख्यात हैं । साधारणतया यदि कोई राजा युद्ध किए बिना रणक्षेत्र छोड़ देता है, तो उसे कायर कहते हैं, किन्तु श्रीकृष्ण युद्ध के बिना रणक्षेत्र छोड़ने की यह लीला करते हैं तब भक्त उनकी उपासना करते हैं । असुर सदैव श्रीकृष्ण के ऐश्वर्य तथा शक्ति को मापने का प्रयास करता है, जबकि एक भक्त कभी भी उनके ऐश्वर्य तथा शक्ति को मापने का प्रयास नहीं करता है । भक्त सदैव भगवान् की शरण में जाते हैं और उनका भजन करते हैं । शुद्ध भक्तों के पदचिह्नों का अनुसरण करके हम यह जान सकते हैं कि रणछोड़ जी श्रीकृष्ण ने भयभीत होने के कारण युद्ध क्षेत्र को नहीं छोड़ा था, किन्तु इस कार्य के पीछे उनका कोई अन्य प्रयोजन था । जैसाकि बाद में स्पष्ट होगा, उनका प्रयोजन अपनी भविष्य में होने वाली प्रथम पत्नी रुक्मिणी द्वारा भेजे गए गुप्त पत्र के अनुसार कार्य करना था । श्रीकृष्ण का रणक्षेत्र छोड़ना उनके छ: ऐश्वर्यों में से एक का प्रदर्शन है । श्रीकृष्ण परम शक्तिमान, परम सम्पन्न (धनवान), परम प्रसिद्ध, परम बुद्धिमान, परम सुन्दर हैं, उसी भाँति वे परम वैराग्यवान् भी हैं । श्रीमद्भागवत में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि पर्याप्त सैन्य शक्ति के होते हुए भी उन्होंने रणक्षेत्र का त्याग किया । अपनी सेना के बिना भी वे जरासन्ध की सेना को पराजित करने के लिए अकेले ही पर्याप्त थे । पहले भी सत्रह बार वे ऐसा कर चुके थे । अतएव उनका रणक्षेत्र को त्यागना उनके श्रेष्ठतम वैराग्य-ऐश्वर्य का एक दृष्टान्त है । बहुत दूर तक चलने के पश्चात् श्रीकृष्ण तथा बलराम दोनों भाइयों ने अत्यन्त थक जाने का अभिनय किया । अपनी थकान को दूर करने के लिए वे समुद्र तल से कई मील ऊँचे एक अत्यन्त उच्च पर्वत पर चढ़े । निरन्तर वर्षा के कारण इस पर्वत को प्रवर्षण कहा जाता था । पर्वत का शिखर सदैव इन्द्र द्वारा प्रेषित मेघों से आच्छादित रहता था । जरासन्ध ने मान लिया कि दोनों

भाई उसकी सैन्य शक्ति से भयभीत होकर पर्वत शिखर पर जाकर छिप गए हैं । पहले तो उसने बहुत समय तक श्रीकृष्ण व बलराम को ढूँढ़ने का प्रयास किया, किन्तु जब वह असफल रहा तब उसने पर्वत के शिखर के चारों ओर आग लगा कर उनका वध करने का निश्चय किया । उसने शिखर के चारों ओर तेल डाल कर आग लगा दी । जब अग्नि अधिक फैली तब श्रीकृष्ण और बलराम पर्वत शिखर से अट्ठासी मील नीचे धरती पर कूद गए । इस प्रकार जब पर्वत-शिखर जल रहा था, वे जरासन्ध की दृष्टि से ओझल होकर बच निकले । जरासन्ध ने निष्कर्ष निकाला कि दोनों भाई भस्म हो गए और आगे युद्ध करने की आवश्यकता नहीं रही । स्वयं को अपने प्रयासों में सफल मान कर वह मथुरा से अपनी राजधानी मगध लौट गया । धीरे-धीरे श्रीकृष्ण और बलराम जी चारों ओर सागर से घिरी हुई द्वारकापुरी पहुँच गए । इसके पश्चात् आनर्त प्रदेश के राजा रैवत की पुत्री रेवती से बलराम जी ने विवाह किया । इसका विवरण श्रीमद्भागवत के नवम स्कन्ध में दिया गया है । श्रीबलदेव के विवाह के उपरान्त श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी से विवाह किया । रुक्मिणी विदर्भ प्रदेश के शासक राजा भीष्मक की पुत्री थीं । जिस प्रकार कृष्ण श्रीभगवान् वासुदेव हैं उसी प्रकार रुक्मिणी महालक्ष्मी हैं । चैतन्य-चरितामृत के प्रमाणानुसार श्रीकृष्ण तथा श्रीमती राधारानी का प्रकाश एकसाथ होता है । श्रीकृष्ण स्वयं को विभिन्न विष्णुतत्व-रूपों में विस्तारित करते हैं । श्रीमती राधारानी अपनी अन्तरंगा शक्ति द्वारा स्वयं का विभिन्न शक्तियों के रूप में, अथवा श्रीलक्ष्मी के अनेक रूपों में विस्तार करती हैं । वैदिक लोकाचार के अनुसार आठ प्रकार के विवाह होते हैं । प्रथम श्रेणी के विवाह में वर व वधू के माता-पिता विवाह की तिथि निश्चित करते हैं । तदनन्तर राजसी ठाठ से वर वधू के घर जाता है । ब्राह्मणों, पुरोहितों तथा सम्बन्धियों की उपस्थिति में वर को वधू का दान दिया जाता है । इसके अतिरिक्त और भी विवाह की प्रणालियाँ हैं, जैसे गन्धर्व और राक्षस विवाह । रुक्मिणी जी का श्रीकृष्ण से राक्षस प्रणाली से विवाह हुआ था, क्योंकि श्रीकृष्ण ने

शिशुपाल, जरासन्ध, शाल्व तथा अन्य अनेक प्रतिद्वन्द्वियों की उपस्थिति में रुक्मिणी जी का हरण किया था । जब रुक्मिणी जी का कन्यादान शिशुपाल को किया जा रहा था तब श्रीकृष्ण विवाह मण्डप से उसे उसी प्रकार छीन ले गए जैसे गरुड़ ने असुरों से अमृत का पात्र छीना था । राजा भीष्मक की एकमात्र पुत्री रुक्मिणी अनिन्द्य सुन्दरी थी । वह रुचिरानना के नाम से विख्यात थी जिसका अर्थ है, "कमलपुष्प के समान सुन्दर मुख वाली ।" श्रीकृष्ण के भत भगवान् के दिव्य चरित्र के विषय में सुनने के लिए सदैव उत्सुक रहते हैं । युद्ध, हरण तथा रणक्षेत्र छोड़कर भागना आदि उनकी सभी लीलाएँ दिव्य हैं, क्योंकि वे सर्वोच्च स्तर की लीलाएँ हैं । भक्तगण उनके विषय में सुनने में दिव्य रुचि रखते हैं । शुद्ध भक्त यह भेद नहीं करते कि भगवान् की कुछ लीलाओं को सुनना चाहिए तथा कुछ को नहीं । फिर भी तथाकथित भक्तों की एक श्रेणी है, जो प्राकृत सहजिया के नाम से विख्यात है । वे लोग गोपियों के साथ श्रीकृष्ण की रासलीला के विषय में सुनने में अत्यधिक रुचि रखते हैं, किन्तु शत्रुओं से उनके युद्ध के विषय में सुनने में रुचि नहीं रखते । वे यह नहीं जानते हैं कि उनकी युद्ध सम्बन्धी लीलाएँ तथा गोपियों के साथ उनकी प्रेमपूर्ण लीलाएँ दोनों ही समान रूप से दिव्य हैं, क्योंकि दोनों ही प्रकार की लीलाएँ अद्वय (परम) स्तर की हैं । शुद्ध भक्त श्रीमद्भागवत में वर्णित श्रीकृष्ण की लीलाओं का रसास्वादन विनम्र श्रवण द्वारा करते हैं । वे लीलामृत की एक बूंद को भी अस्वीकार नहीं करते हैं । रुक्मिणी के साथ श्रीकृष्ण के विवाह की कथा का वर्णन इस प्रकार किया गया है । विदर्भ के राजा महाराज भीष्मक एक अत्यन्त योग्य तथा भक्त सम्राट थे । उनके पाँच पुत्र तथा केवल एक पुत्री थी । प्रथम पुत्र रुक्मी, दूसरा रुक्मरथ, तीसरा रुक्मबाहु, चौथा रुक्मकेश और पाँचवाँ रुक्ममाली के नाम से विख्यात था । उन भाइयों की एक छोटी बहन रुक्मिणी थी । वह सुन्दर और सती थी तथा श्रीकृष्ण से उसका विवाह होने वाला था । अनेक सन्त तथा नारद मुनि जैसे साधु राजा भीष्मक के राजमहल में जाया करते थे । स्वाभाविक ही

था कि रुक्मिणी जी को उनसे वार्तालाप करने का अवसर प्राप्त हुआ और इस प्रकार उन्होंने श्रीकृष्ण के विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया । उन्होंने श्रीकृष्ण के षड्-ऐश्वर्यों के विषय में जानकारी प्राप्त की और उनके विषय में सुनकर ही रुक्मिणी श्रीकृष्ण के चरणकमलों की शरण लेकर उनकी पत्नी बनने की कामना करने लगीं । श्रीकृष्ण ने भी रुक्मिणी के विषय में सुना था । वे बुद्धिमत्ता मन की उदारता, अनिन्द्य सौन्दर्य और सदाचार आदि सभी दिव्य गुणों की सागर थीं । अतएव श्रीकृष्ण ने निश्चय किया कि वे उनकी पत्नी बनने के योग्य हैं । राजा भीष्मक के समस्त परिवार तथा सम्बन्धियों ने निश्चय किया कि रुक्मिणी का विवाह श्रीकृष्ण से होना चाहिए । किन्तु रुक्मिणी के बड़े भाई रुक्मी ने अन्य सबकी इच्छा के विपरीत उनका विवाह शिशुपाल के साथ निश्चित कर दिया । शिशुपाल श्रीकृष्ण का कट्टर शत्रु था । जब काली आँखों वाली सुन्दरी रुक्मिणी ने इस सम्बन्ध के विषय में सुना, तो वे तत्काल अत्यन्त उदास हो गई । उनका विचार था कि तत्काल ही कुछ करना चाहिए । कुछ विचार करने के पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्ण को सन्देश भेजने का निश्चय किया और उनके साथ छल न हो इसलिए उन्होंने एक योग्य ब्राह्मण को अपना दूत चुना । इस प्रकार का योग्य ब्राह्मण विष्णु भक्त होता है और सदैव सत्य भाषण करता है । ब्राह्मण को अविलम्ब द्वारका भेज दिया गया ।

द्वारका के मुख्य द्वार पर पहुँच कर ब्राह्मण ने द्वारपाल को अपने आने की जानकारी दी । द्वारपाल उसे उस स्थान पर ले गया जहाँ श्रीकृष्ण एक स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन थे । चूँकि ब्राह्मण को रुक्मिणी जी का दूत होने का अवसर मिला था, अतएव उसे समस्त कारणों के मूल कारण, भगवान् श्रीकृष्ण, के दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ । ब्राह्मण तो समाज के सभी विभागों का गुरु होता है । ब्राह्मणों का किस प्रकार आदर करना चाहिए, यह वैदिक शिष्टाचार सिखाने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण तत्काल उठ खड़े हो गए और उस ब्राह्मण को अपना सिंहासन दिया । जब ब्राह्मण

स्वर्ण-सिंहासन पर आसीन हो गया तब भगवान् श्रीकृष्ण उसकी उसी प्रकार उपासना करने लगे जिस प्रकार देवता श्रीकृष्ण की उपासना करते हैं । इस प्रकार उन्होंने सबको आदेश दिया कि उनके भक्त की उपासना करना उनकी उपासना करने से भी अधिक मूल्यवान है ।

यथासमय ब्राह्मण ने स्नान किया, भोजन किया और रेशम से सजित कोमल शय्या पर वह विश्राम करने लगा । जब वह विश्राम कर रहा था तब श्रीकृष्ण ने नि:शब्द आकर, अत्यन्त आदरपूर्वक ब्राह्मण के पैरों को अपनी गोद में रख लिया और उन्हें सहलाने लगे । इस प्रकार श्रीकृष्ण ब्राह्मण के समक्ष प्रकट हुए और कहा, "प्रिय ब्राह्मण! मुझे आशा है कि आप धर्मविधियों का निर्विघ्न सम्पादन कर रहे हैं और आपका मन सदैव शान्त रहता है ।" सामाजिक व्यवस्था में लोगों के विभिन्न वर्ग अनेक प्रकार के व्यवस्थायों में संलग्न रहते हैं और किसी व्यक्ति विशेष की कुशलता के विषय में जिज्ञासा उसके व्यवस्थाय के आधार पर करनी चाहिए । अतएव | जब कोई ब्राह्मण की कुशलता का समाचार पूछता है, तब उसके जीवन की स्थिति के अनुसार ही प्रश्न करना चाहिए, जिससे कि ब्राह्मण क्षुब्ध न हो । शान्त मन ही सत्यवादी, स्वच्छ, सन्तुलित, आत्मसंयमी तथा सहिष्णु बनने का आधार है । इस | प्रकार ज्ञान प्राप्त करके तथा जीवन में उसके व्यावहारिक प्रयोग को जानकर, व्यक्ति को परम सत्य की प्रतीति हो जाती है । ब्राह्मण को ज्ञात था कि कृष्ण श्रीभगवान् हैं तथापि उसने वैदिक सामाजिक लोकाचार के आधार पर भगवान् की आदरपूर्ण सेवा | स्वीकार की । भगवान् श्रीकृष्ण ठीक एक मानव के समान अभिनय कर रहे थे । । सामाजिक व्यवस्था के क्षत्रिय विभाग का अंग होने के कारण तथा एक किशोर | बालक होने के कारण, ऐसे ब्राह्मण के प्रति आदर दर्शाना उनका कर्तव्य था ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "हे ब्राह्मणश्रेष्ठ! आपको सदैव सन्तुष्ट रहना या चाहिए, क्योंकि यदि ब्राह्मण सदैव आत्मसन्तुष्ट रहता है, तो वह अपने

निर्धारित । कर्तव्यों से विचलित नहीं होता । केवल अपने निर्धारित कर्तव्यों में संलग्न रहने से ही प्रत्येक व्यक्ति, विशेष रूप से ब्राह्मण, समस्त कामनाओं की सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर सकता है । यदि कोई व्यक्ति स्वर्ग के राजा इन्द्र के समान ऐश्वर्यवान् हो, तब भी यदि वह सन्तुष्ट न हो तो उसे एक लोक से दूसरे लोक में भटकना पड़ता है । ऐसा व्यक्ति किसी भी स्थिति में सुखी नहीं रह सकता है । किन्तु यदि किसी व्यक्ति का मन सन्तुष्ट हो, तब अपने उच्चपद से विहीन होने पर भी वह कहीं भी रह कर सुखी हो सकता है ।

ब्राह्मण को दिया गया श्रीकृष्ण का यह उपदेश अत्यन्त महत्वपूर्ण है । तात्पर्य । यह है कि सच्चे ब्राह्मण को किसी भी दशा में अशान्त नहीं होना चाहिए । इस । आधुनिक समय (कलियुग) में तथाकथित ब्राह्मणों ने शूद्रों से भी निम्न कोटि के निन्द्य पद को स्वीकार कर लिया है, तो भी वे चाहते हैं कि उन्हें योग्य ब्राह्मण माना | जाए । वास्तव में एक योग्य ब्राह्मण सदैव अपने ही कर्तव्यों पर दृढ़ रहता है । वह । कभी भी शूद्र अथवा शूद्रों से भी निम्न कोटि के कर्तव्य स्वीकार नहीं करता है । | प्रामाणिक धर्मग्रन्थों में परामर्श दिया गया है कि विशेष परिस्थितियों में ब्राह्मण, | क्षत्रिय अथवा वैश्य का व्यवस्थाय स्वीकार कर सकता है, किन्तु उसे शूद्र का | व्यवस्थाय कभी नहीं स्वीकार करना चाहिए । भगवान् श्रीकृष्ण ने घोषणा की कि यदि | ब्राह्मण विवेकपूर्वक अपने धार्मिक सिद्धान्तों पर दृढ़ रहता है, तब उसे जीवन की किसी भी प्रतिकूल स्थिति द्वारा विचलित नहीं होना चाहिए । निष्कर्ष रूप में भगवान श्रीकृष्ण ने कहा, "मैं ब्राह्मण तथा वैष्णवों को सादर प्रणाम करता हूँ, क्योंकि ब्राह्मण सदैव आत्मसन्तुष्ट रहते हैं और वैष्णव सदैव मानव-समाज के वास्तविक कल्याण के कार्यों में संलग्न रहते हैं । वे जनसाधारण के सर्वोत्तम मित्र हैं, दोनों ही मिथ्या अंहकार से मुक्त हैं और सदैव शान्तचित रहते हैं ।"

तत्पश्चात् भगवान् कृष्ण उस ब्राह्मण से राज्य के राजाओं (क्षत्रियों) के विषय में जानना चाहते थे, अतएव उन्होंने पूछा कि क्या राज्य के सभी नागरिक प्रसन्न हैं । किसी राजा की योग्यता का मूल्यांकन उसकी प्रजा की दशा से किया जाता है । यदि वे सर्व प्रकार से प्रसन्न हों, तो समझा जाता है कि राजा ईमानदार है और अपना कर्तव्य उचित रूप से सम्पादित कर रहा है । श्रीकृष्ण ने कहा कि जिस राजा के राज्य में नागरिक प्रसन्न होते हैं, वह राजा उन्हें अत्यन्त प्रिय है । श्रीकृष्ण समझ सकते थे कि वह एक गोपनीय सन्देश लेकर आया था, अतएव उन्होंने कहा, "यदि आपको कोई आपत्ति न हो, तो मैं आपको अनुमति देता हूँ कि आप अपना यहाँ आने का उद्देश्य बताएँ ।" इस प्रकार भगवान् के साथ इन दिव्य लीलाओं से अत्यन्त सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण ने श्रीकृष्ण से भेंट करने आने के अपने प्रयोजन की पूरी कथा सुनाई । उसने श्रीकृष्ण के नाम रुक्मिणी जी का लिखा हुआ पत्र निकाला और कहा, "ये राजकुमारी रुक्मिणी के शब्द हैं, "प्रिय श्रीकृष्ण! हे अच्युत और त्रिभुवन-सुन्दर । कोई भी मानव जो आपके दिव्य स्वरूप तथा लीलाओं के विषय में श्रवण करता है, वह तत्काल अपने कानों के द्वारा आपके ज्ञान, यश तथा गुणों में मग्न हो जाता है । इस प्रकार उसके सभी भौतिक दुख शान्त हो जाते हैं और वह आपके स्वरूप को अपने हृदय में स्थिर कर लेता है । आपके प्रति इस दिव्य प्रेम के माध्यम से वह अपने अन्तस्तल में सदैव आपके दिव्य गुणों के विषय में श्रवण करता है । इतने प्रत्यक्ष रूप से अपनी भावाभिव्यक्ति करना सम्भवत: मेरी निर्लजता मानी जाए, किन्तु आपने मेरा हृदय ले लिया है और मुझे मोहित कर लिया है । आपको सन्देह हो सकता है कि मैं एक अल्प आयु की कुमारी कन्या हूँ, अत: आप मेरी चरित्र-दृढ़ता पर सन्देह कर सकते हैं, किन्तु प्रिय मुकुन्द! आप नृसिंह हैं, आप मानवों में सर्वश्रेष्ठ हैं । घर से बाहर न गई हुई कोई कन्या अथवा सर्वोच्च पवित्रता वाली कोई भी स्त्री आपसे विवाह करने की कामना करेगी । कोई भी पवित्र नारी अथवा कन्या आपके अभूतपूर्व चरित्र, ज्ञान,

ऐश्वर्य और पद पर मोहित होकर आपसे विवाह करना चाहेगी । मुझे ज्ञात है कि आप लक्ष्मीपति हैं और अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त कृपालु हैं । अतएव मैंने आपकी नित्य दासी बनने का निश्चय किया है । प्रिय भगवन्! मैं अपना जीवन आपके चरणकमलों में समर्पित करती हूँ । मैंने आपको अपने निर्वाचित पति के रूप में स्वीकार किया है, अतएव मैं आपसे विनती करती हूँ कि आप मुझे पत्नी रूप में स्वीकार करें । हे कमलनयन! आप परम शक्तिमान हैं । अब मैं आपकी हो चुकी हूँ । यदि सिंह का आहार सियार ले जाए, तो अत्यन्त ही असंगत होगा । अतएव मेरी आपसे प्रार्थना है कि इसके पूर्व कि शिशुपाल और उसके समान अन्य राजा मुझे ले जाँए, आप तत्काल मेरा भार स्वीकर करें । प्रिय भगवन्! अपने पूर्वजन्म में मैंने कुएँ बनवाने और वृक्ष लगाने जैसे कुछ जनकल्याण के कार्य किए होंगे, अथवा अनुष्ठान, यज्ञ गुरु, ब्राह्मण तथा वैष्णवों की सेवा आदि की होगी । सम्भवत: अपने इन कार्यों द्वारा मैंने भगवान् श्रीनारायण को प्रसन्न किया हो । यदि ऐसा है, तो हे बलराम के भ्राता भगवान् कृष्ण! मेरी कामना है कि आप यहाँ आकर मुझसे पाणिग्रहण करें, जिससे कि शिशुपाल और उसके साथी मेरा स्पर्श न कर सकें ।"

शिशुपाल के साथ रुक्मिणी का विवाह पहले से ही निश्चित हो चुका था, अतएव रुक्मिणी ने सुझाव दिया कि श्रीकृष्ण उनका हरण कर लें जिससे इस व्यवस्था में परिवर्तन हो सके । इस प्रकार का विवाह, जिसमें कन्या का बलपूर्वक हरण किया जाता है, राक्षस विवाह नाम से प्रसिद्ध है । यह विवाह क्षत्रियों, प्रशासकों अथवा सैन्य प्रवृत्ति के लोगों में प्रचलित है । चूँकि रुक्मिणी जी का विवाह अगले दिन होना निश्चय हो चुका था, अतएव उन्होंने सुझाव दिया कि श्रीकृष्ण अज्ञात रूप से वहाँ आकर उनका हरण कर लें और तदनन्दर वे शिशुपाल तथा मगधराज के समान उसके मित्रों से युद्ध करें । यह जानते हुए कि कोई भी श्रीकृष्ण पर विजय नहीं पा सकता है और वे निश्चित रूप से विजयी होंगे, रुक्मिणीजी ने

श्रीकृष्ण को अजित कह कर सम्बोधित किया जिसका अर्थ है "जो अजेय हैं ।" रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण को सूचित किया कि वे इस सम्बन्ध में चिन्तित न हों कि दूसरी स्त्रियों सहित उनके परिवार के अनेक सदस्य हताहत होंगे । यदि महल में युद्ध होता, तो स्त्रियों और अन्य व्यक्तियों के आहत होने अथवा वध होने की सम्भावना थी । जिस प्रकार किसी देश का राजा कूटनीतिक विधि से अपना उद्देश्य प्राप्त करने का विचार करता है, उसी भाँति राजा की पुत्री होने के कारण रुक्मिणी जी ने भी कूटनीति से कार्य लेते हुए इस अनावश्यक और अवांछनीय वध को टालने की रीति का सुझाव दिया ।

उन्होंने स्पष्ट किया कि किसी भी विवाह के पूर्व उनके परिवार में कुलदेवी दुर्गा के मन्दिर में जाने की रीति है । (अधिकतर क्षत्रिय राजा कट्टर वैष्णव थे । वे राधाकृष्ण अथवा लक्ष्मीनारायण के रूप में भगवान् विष्णु की पूजा करते थे । किन्तु अपने लौकिक कल्याण के लिए वे भगवती दुर्गा की उपासना करते थे । वे कुछ अल्पबुद्धि मनुष्यों के समान देवताओं को परम ईश्वर भगवान् समझने की अथवा विष्णु तत्व के बराबरी के स्तर का समझने की भूल कभी नहीं करते थे ।) अपने सम्बन्धियों के अनावश्यक वध को टालने के लिए रुक्मिणीजी ने सुझाव दिया कि महल से मन्दिर जाते हुए अथवा घर वापस लौटते हुए उनका हरण करना श्रीकृष्ण के लिए सर्वाधिक सरल होगा ।

रुक्मिणी ने यह भी स्पष्ट किया कि वे श्रीकृष्ण से विवाह के लिए इतनी अधीर क्यों हैं, जबकि उनका विवाह शिशुपाल के होने वाला था, जो स्वयं भी एक महान् राजा का पुत्र तथा योग्य व्यक्ति था । रुक्मिणी ने कहा कि उसके विचार में श्रीकृष्ण से महान् और कोई नहीं है, शिव भी नहीं, जो देवताओं में श्रेष्ठ हैं और महादेव के नाम से विख्यात हैं । भौतिक जगत में तमोगुण के बन्धन से आत्मशुद्धि के लिए शिव भी भगवान् श्रीकृष्ण के अनुग्रह को प्राप्त करना चाहते हैं । यह तथ्य है कि शिवजी

सभी महात्माओं में महानतम हैं, फिर भी भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों से निकलने वाले शुद्धिकारक गंगा जल को वे अपने सिर पर धारण करते हैं । शिवजी तमोगुण के अधिष्ठाता हैं और अपने को दिव्य स्थिति में अवस्थित रखने के हेतु वे सदैव भगवान् विष्णु का ध्यान करते रहते हैं । अतएव रुक्मिणीजी को भलीभाँति ज्ञात था कि श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करना कोई सरल कार्य नहीं है । यदि इस प्रयोजन के लिए भगवान् शिव को भी शुद्धिकरण की आवश्यकता पड़ती है, तब तो रुक्मिणी जी के लिए यह कार्य कठिन ही होगा, क्योंकि वह तो एक क्षत्रिय राजा की कन्यामात्र थीं । इस प्रकार वे उपवास तथा शरीरसुख का त्याग जैसे कठोर आत्म-संयम तथा तपस्या के पालन के लिए अपना जीवन समर्पित कर देना चाहती थीं । यदि इन कार्यों द्वारा श्रीकृष्ण का अनुग्रह इस जीवन में प्राप्त होना सम्भव नहीं, तो वे जन्मजन्मांतर तक यही कार्य करने के लिए तैयार थीं । भगवद्गीता में कहा गया है कि शुद्ध भक्त दृढ़निश्चय के साथ भगवान् की भक्ति करते हैं । रुक्मिणी देवी द्वारा प्रदर्शित यह दृढ़निश्चय ही श्रीकृष्ण का अनुग्रह क्रय करने का एकमात्र मूल्य है । यह दृढ़निश्चय ही कृष्ण-भक्ति में परम सफलता का एकमात्र मार्ग है ।

रुक्मिणी देवी का कथन श्रीकृष्ण के सम्मुख स्पष्ट करने के उपरान्त ब्राह्मण ने कहा, "हे यदुकुलभूषण श्रीकृष्ण! मैं रुक्मिणी देवी का यह गोपनीय सन्देश आपके लिए लाया हूँ । अब यह आपके सम्मुख विचारार्थ प्रस्तुत है । उचित विचार करने के पश्चात् आप अपनी रुचि के अनुकूल कार्य कर सकते हैं । किन्तु यदि आप कुछ करना चाहते हैं, तो उसे तत्काल ही कीजिए । अब कार्य करने के लिए अधिक समय शेष नहीं है ।"

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "रणछोड़ श्रीकृष्ण" नामक बावनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 53
श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी हरण

जी का पत्र सुनकर श्रीकृष्ण अत्यन्त प्रसन्न हुए । उन्होंने तत्काल ब्राह्मण का हाथ पकड़ कर कहा, "प्रिय ब्राह्मण! रुक्मिणी मुझसे विवाह करने को उत्सुक है, यह सुन करके मैं अत्यन्त प्रसन्न हुआ, क्योंकि मैं भी रुक्मिणी से विवाह करने को उत्सुक हूँ । मेरा मन सदैव भीष्मक की पुत्री के विचारों में मग्न रहता है और कभी-कभी उसके विषय में चिन्तन करने के कारण मैं रात्रि में सो नहीं पाता हूँ । मैं समझ सकता हूँ कि मुझसे शत्रुता की भावना से रुक्मिणी के बड़े भाई ने उसका विवाह शिशुपाल से तै किया है, अतएव इन सभी राजाओं को समुचित शिक्षा देने का मेरा दृढ़ निश्चय भी है । जिस प्रकार साधारण काष्ठ से कुशलतापूर्वक अग्नि निकाली जाती है और उसका उपयोग किया जाता है, उसी प्रकार इन आसुरी राजाओं से निपट कर, उनके मध्य से मैं अग्निरूपी रुक्मिणी को निकाल लाऊँगा ।" रुक्मिणी जी के विवाह की तिथि के विषय में सूचित किए जाने के पश्चात् श्रीकृष्ण तत्काल प्रस्थान करने के लिए आतुर हो गए । उन्होंने अपने सारथी दारुक को अपने रथ में अश्व जोत कर विदर्भ राज्य की ओर प्रस्थान करने की तैयारी करने को कहा । इस आदेश को सुनकर सारथी तत्क्षण श्रीकृष्ण के चार विशेष अश्वों को ले आया । इन अश्वों के नामों और विवरण का उल्लेख पद्म-पुराण में है । शैव्य नामक प्रथम अश्व हरितवर्णी था । सुग्रीव नामक दूसरा अश्व बर्फ के समान धूसर वर्ण का था । मेघपुष्प नामक तीसरा अश्व नवीन मेघ के वर्ण का था और चौथा अश्व बलाहक भस्म के वर्ण का था । जब अश्व जोत दिए गए और रथ जाने के लिए तैयार था तब श्रीकृष्ण ने उस ब्राह्मण को रथ में चढ़ने में सहायता की और उसे अपने समीप आसन दिया । उन्होंने तत्काल द्वारका से प्रस्थान कर दिया और वे एक रात्रि में विदर्भ राज्य में पहुँच गए । द्वारका का राज्य भारत के पश्चिमी भाग में है और विदर्भ उत्तर भारत में है । उनके मध्य का

अन्तर एक हजार मील से कम नहीं है, किन्तु श्रीकृष्ण के अश्व इतने द्रुतगामी थे कि वे अपने गन्तव्य कुण्डिन नामक नगर एक रात्रि में पहुँच गए या अधिक से अधिक उन्हें बारह घण्टे लगे । राजा भीष्मक को अपनी पुत्री शिशुपाल को देने में कुछ अधिक उत्साह नहीं था, किन्तु यह विवाह उनके ज्येष्ठ पुत्र ने निश्चित किया था । अपने ज्येष्ठ पुत्र के प्रति राजा भीष्मक का अत्यधिक स्नेह था, अत: वे शिशुपाल के साथ अपनी पुत्री के विवाह प्रस्ताव को स्वीकार करने के लिए बाध्य हो गए थे । अपना कर्तव्य मानकर वे विवाह के लिए नगर की सजा करा रहे थे और इसे सफल बनाने के लिए अत्यन्त उत्साहपूर्वक कार्य कर रहे थे । गलियों में चारों ओर जल का छिड़काव किया गया था और नगर को भलीभाँति स्वच्छ किया गया था । भारत उष्ण कटिबन्ध क्षेत्र में स्थित है, अत: यहाँ का वातावरण सदैव शुष्क रहता है । इसके कारण गलियों में तथा पथों पर सदैव धूल एकत्र हो जाती है, अतएव उन पर दिन में कम से कम एक बार जल का छिड़काव आवश्यक होता है । कलकत्ता जैसे महानगरों में जल का छिड़काव दिन में दो बार करना पड़ता है । कुण्डिन के मार्गों पर रंगीन पताकाओं और कागज की झण्डियों से सजा की गई थी और विशिष्ट चौराहों पर द्वारों का निर्माण किया गया था । समस्त नगर को अत्यन्त सुरुचिपूर्वक सजाया गया था । नगरनिवासी स्त्री व पुरुष दोनों ही नगर के सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर रहे थे । उन्होंने निर्मल वस्त्र धारण किए थे और चन्दन के आलेप, मुतामालाओं और पुष्पमालाओं से श्रृंगार किया था । सर्वत्र धूप जल रही थी और अगुरु के समान सुगन्धों से वायु सुगन्धित थी । पुरोहितों और ब्राह्मणों को उनके इच्छानुसार पर्याप्त सम्पत्ति और गायें दान में दी गई थीं । इस प्रकार वे वैदिक मंत्रों के उच्चारण में संलग्न थे । राजकुमारी रुक्मिणी परम सुन्दरी थीं । उनको विभिन्न द्रव्यों से स्नान कराया गया था और उनकी दन्तावलि अत्यन्त सुन्दर थी । उनकी कलाई में मंगलसूचक कंकण बाँधा गया था । उन्हें पहनने के लिए विभिन्न प्रकार के आभूषण तथा रेशमी वस्त्र दिए गए थे । विद्वान पुरोहित उनकी रक्षा

के हेतु सामवेद, ऋगवेद तथा यजुर्वेद के मंत्रों का गान कर रहे थे । इसके पश्चात् उन्होंने अर्थववेद के मंत्रों का गान किया और ग्रह शान्ति के लिए अग्नि में आहुति दी । इस प्रकार के संस्कारों के सम्पादन के समय राजा भीष्मक को ब्राह्मणों और पुरोहितों से व्यवहार करने का अत्यधिक अनुभव था । ब्राह्मणों को बड़ी मात्रा में स्वर्ण व चाँदी, गुड़ सहित धान्य तथा स्वर्णाभूषणों से सजित गायें देकर उन्होंने उनका विशेष आदर किया । शिशुपाल का पिता दमघोष था, क्योंकि वह अनियमित नागरिकों का दमन करने में अत्यन्त पटु था । दम का अर्थ है दमन करना (दबाना) और घोष का अर्थ है प्रसिद्ध, अतएव वह प्रजा का दमन करने के लिए प्रसिद्ध था । दमघोष ने विचार किया कि यदि कृष्ण विवाह-संस्कार में विघ्न डालने आया, तो वह अपनी सैन्य शक्ति से कृष्ण का अन्त कर देगा । अतएव विभिन्न शुभ अनुष्ठानों के सम्पादन के पश्चात् दमघोष ने मदस्त्रवी नामक अपनी सेना को एकत्र कर लिया । उसने स्वर्णहारों से सज्जित अनेक गजों और उसी भाँति सजित अनेक रथों व अश्वों को एकत्र किया । ऐसा प्रतीत होता था कि दमघोष, उसके पुत्र तथा साथियों का कुण्डिन जाना पूर्णरूपेण विवाहोत्सव के लिए नहीं, अपितु युद्ध करने के लिए था । जब राजा भीष्मक को ज्ञात हुआ कि दमघोष तथा उसके साथी आ रहे हैं, तो वे उनका स्वागत करने के लिए नगर से बाहर आ गए । नगर के द्वार के बाहर अनेक उद्यान थे जहाँ अतिथियों का स्वागत करके उन्हें ठहराया गया । विवाह की वैदिक विधि में वधू का पिता, वर की विशाल बरात का स्वागत करता है और विवाहसंस्कार के सम्पादित होने तक, दो-तीन दिवस, उन्हें उचित स्थान पर ठहराता है । दमघोष के साथ आने वाली बरात में सहस्रों मनुष्य थे । उनमें से प्रमुख व्यक्ति तथा राजा थे जरासन्ध, दन्तवक्र, विदूरथ और पौण्डूक । यह सर्वविदित तथ्य था कि रुक्मिणी का श्रीकृष्ण से विवाह होने वाला था, किन्तु उसके बड़े भाई रुक्मी ने उसका विवाह शिशुपाल से निश्चित कर दिया था । लोगों में इस किंवदन्ती के विषय में भी चर्चा चल रही थी कि रुक्मिणी ने श्रीकृष्ण के

पास एक दूत भेजा है । अतएव सैनिकों को सन्देह था कि श्रीकृष्ण रुक्मिणी का हरण करने का प्रयास करके अशान्ति उत्पन्न कर सकते हैं । यद्यपि वे निर्भय नहीं थे, तथापि वे कन्या-हरण को रोकने के लिए श्रीकृष्ण से युद्ध करने को तत्पर थे । श्रीबलराम को जानकारी प्राप्त हुई कि श्रीकृष्ण ने केवल एक ब्राह्मण के साथ कुण्डिन को प्रस्थान कर दिया है । उन्होंने यह भी सुना कि वहाँ पर शिशुपाल भी बड़ी संख्या में सैनिकों के साथ उपस्थित था । बलराम जी को सन्देह था कि वह श्रीकृष्ण पर आक्रमण करेगा, अतएव रथों, सैनिकों, अश्वों तथा गजों की शक्तिशाली सेना लेकर वे कुण्डिन की सीमा पर पहुँच गए ।

उस समय, महल में रुक्मिणी श्रीकृष्ण के आगमन की आशा कर रही थीं, किन्तु जब न वे आए, न ही उनका सन्देश ले जाने वाला ब्राह्मण, तो वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठीं और विचार करने लगीं कि वे कितनी अभागिनी हैं । "मेरा विवाह होने में केवल एक रात्रि शेष है और अभी भी न तो वह ब्राह्मण लौटा है, न ही श्यामसुन्दर आए हैं । मुझे इसका कोई कारण नहीं समझ में आता है ।" निराश होकर वे विचार करने लगीं कि सम्भवत: किसी कारणवश श्रीकृष्ण असन्तुष्ट हों गए हो और उन्होंने उसका प्रस्ताव अस्वीकृत कर दिया हो । इसके परिणामस्वरूप ब्राह्मण निराश हो गया होगा, अतः वापस नहीं लौटा । यद्यपि रुक्मिणी जी देरी के विभिन्न या विचार कर रही थीं, किन्तु उन्हें किसी भी क्षण उन दोनों के आने की आशा था ।

रुक्मिणी जी विचार करने लगीं कि सम्भवत: ब्रह्मा, शिवादि देवता और दुर्गा देवी अप्रसन्न हो गई हों । कहा जाता है कि यदि देवताओं की उचित उपासना नहीं की जाती है, तो वे कुद्ध हो जाते हैं । उदाहरण के लिए, जब इन्द्र को ज्ञात हुआ कि वृन्दावनवासी श्रीकृष्ण के द्वारा इन्द्रयज्ञ रोक दिए जाने के कारण उसकी उपासना नहीं कर रहे हैं, तो वे अत्यन्त क्रोधित हो गए और वे वृन्दावनवासियों को दण्ड देना चाहते थे । इस

प्रकार रुक्मिणी जी विचार कर रही थीं कि उन्होंने शिव तथा ब्रह्माजी की अधिक उपासना नहीं की, अत: हो सकता है कि उन्होंने क्रोधित होकर उनकी योजना को निष्फल करने का प्रयास किया हो । उसी प्रकार उन्होंने यह विचार किया कि भगवान् शिव की पत्नी, दुर्गा देवी ने भी सम्भवतः अपने पति का पक्ष लिया हो । भगवान् शिव रुद्र के नाम से भी विख्यात हैं और उनकी पत्नी को रुद्राणी के नाम से जाना जाता है । रुद्राणी तथा रुद्र उनकी ओर संकेत करते हैं, जो दूसरों को कट में डालने के अभ्यस्त होते हैं जिससे कि प्राणी सदैव क्रन्दन करते रहें । रुक्मिणी तो दुर्गा जी का चिन्तन पर्वतराज हिमालय की पुत्री गिरिजा के रूप में कर रही थीं । हिमालय की पर्वत श्रृंखला अत्यधिक शीतल व कठोर है । रुक्मिणी दुर्गा जी को भी अत्यन्त शीतल तथा कठोरहृदय मान रही थीं । श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुकता में रुक्मिणी विभिन्न देवताओं के विषय में विचार कर रही थीं, क्योंकि कुछ भी हो वे अभी भी एक किशोरी ही थीं । श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए गोपियाँ कात्यायनी देवी की उपासना करती हैं, उसी भाँति रुक्मिणीजी भी भौतिक लाभ के लिए नहीं, अपितु श्रीकृष्ण के सन्दर्भ में विभिन्न देवताओं का चिन्तन कर रही थीं । श्रीकृष्ण का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए देवताओं की स्तुति करना अनियमित नहीं है और रुक्मिणी तो पूर्ण रूप से श्रीकृष्ण के विचारों में मग्न थीं । यद्यपि रुक्मिणी जी ने यह विचार करके कि गोविन्द के आने का समय अभी समाप्त नहीं हुआ है स्वयं को सान्त्वना दी, तथापि रुक्मिणी जी को अनुभव हुआ कि यह केवल दुराशा-मात्र है । वे अश्रुपात करने लगीं और जब अश्रु तीव्रता से प्रवाहित होने लगे, तो असहायावस्था में उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए । जब रुक्मिणी जी इस प्रकार गहन ध्यान में मग्न थीं तब उनके शरीर के विभिन्न अंगों में शुभ लक्षण प्रकट होने लगे । उनकी बाई पलक, बाई भुजा और बाईं जंघा में स्फुरण होने लगा । शरीर के इन अंगों का स्फुरण एक शुभ शकुन है और यह संकेत करता है कि कोई लाभ होने वाला है । उद्विग्न रुक्मिणी ने तभी दूत ब्राह्मण

को देखा । समस्त जीवों के परमात्मा होने के कारण श्रीकृष्ण रुक्मिणी की उद्विग्नता को समझ सकते थे । अतएव उन्होंने रुक्मिणी को अपने आने के विषय में जानकारी देने के लिए ब्राह्मण को महल में अन्दर भेजा । जब रुक्मिणी ने ब्राह्मण को देखा, तब उन्हें अपने शरीर के शुभ स्फुरण का अर्थ समझ में आ गया और वे तत्काल प्रफुल्लित हो गई । उन्होंने मुस्करा कर ब्राह्मण से प्रश्न किया, "क्या श्रीकृष्ण पहले ही आ गए हैं अथवा नहीं?" ब्राह्मण ने उत्तर दिया कि यदुवंश के पुत्र श्रीकृष्ण आ गए हैं । आगे ब्राह्मण ने यह कह कर उन्हें और साहस बँधाया कि श्रीकृष्ण ने निश्चित रूप से उन्हें हर ले जाने का वचन दिया है । ब्राह्मण के सन्देश से रुक्मिणी जी इतनी प्रफुल्लित हो गई कि वे अपना सर्वस्व ब्राह्मण को दान में देना चाहती थीं । किन्तु उपहार में देने योग्य कोई भी वस्तु न पाने पर उन्होंने ब्राह्मण को केवल सादर प्रणाम किया । अपने से श्रेष्ठ व्यक्ति को सादर प्रणाम करने की महत्ता है कि नमस्कार करने वाला व्यक्ति कृतज्ञ है । दूसरे शब्दों में, प्रणाम करके रुक्मिणी जी ने इंगित किया कि वे सदैव ब्राह्मण की कृतज्ञ रहेंगी । इस ब्राह्मण के समान श्रीलक्ष्मी जी की कृपा प्राप्त करने वाला कोई भी व्यक्ति निस्सन्देह भौतिक ऐश्वर्य प्राप्त करके प्रसन्न होता है । जब राजा भीष्मक ने सुना कि श्रीकृष्ण और बलराम जी आए हैं, तो उन्होंने उन दोनों को अपनी पुत्री का विवाह-संस्कार देखने के लिए निमंत्रण दिया । तत्काल उन्होंने एक उपयुक्त उद्यानगृह में, श्रीकृष्ण और बलरामजी का उनके सैनिकों सहित स्वागत करने का प्रबन्ध किया । जैसी कि वैदिक रीति है, राजा ने श्रीकृष्ण और बलरामजी को मधुपर्क तथा निर्मल वस्त्र अर्पित किए । उन्होंने न केवल श्रीकृष्ण, बलराम जी का तथा जरासन्ध के समान राजाओं का आतिथ्य किया, अपितु अन्य अनेक राजाओं और राजकुमारों का भी उनके व्यक्तिगत पराक्रम, आयु और भौतिक सम्पति के अनुरूप स्वागत किया । कौतूहल और उत्सुकता के कारण, कुण्डिन की जनता श्रीकृष्ण और बलराम के समक्ष एकत्र होकर उनके सौन्दर्यामृत का पान करने लगी । अश्रुपूर्ण

नयनों से उन लोगों ने श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को अपना मूक अभिवादन किया । वे भगवान् श्रीकृष्ण को रुक्मिणी जी के योग्य वर मान कर अत्यन्त हर्षित हुए । श्रीकृष्ण और रुक्मिणी जी को संयुक्त करने के लिए वे इतने उत्सुक थे कि वे भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगे, "प्रिय भगवन्! यदि हमने कोई पुण्यकर्म किए हैं जिससे कि आप सन्तुष्ट हैं, तो कृपया हम पर दया कीजिए और रुक्मिणी जी का पाणिग्रहण इनसे कीजिए ।" ऐसा प्रतीत होता है कि रुक्मिणी जी एक अत्यन्त लोकप्रिय राजकुमारी थीं । उनके प्रति तीव्र प्रेम के कारण सभी नागरिक उनके सौभाग्य के लिए स्तुति कर रहे थे । तभी सुन्दर वस्त्र धारण करके अंगरक्षकों की सुरक्षा में रुक्मिणी जी बाहर आई । वे दुर्गा जी (अम्बिका) के मन्दिर में जाने के लिए महल से निकलीं । वैदिक सभ्यता के प्रारम्भ से ही मन्दिर में श्रीमूर्ति की उपासना का प्रचलन रहा है । मानवों का एक वर्ग है, जिसे भगवद्गीता में वेदवाद-रत कहा गया है । वे केवल वैदिक अनुष्ठानों में विश्वास रखते हैं और मन्दिर में श्रीमूर्ति का पूजन करने में नहीं । ऐसे मूढ़ व्यक्ति यहाँ ध्यान दे सकते हैं कि यद्यपि रुक्मिणी जी तथा श्रीकृष्ण का विवाह पाँच हजार से भी अधिक वर्ष पूर्व हुआ था, तो भी मन्दिर में पूजन की व्यवस्था थी । भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं याति देव-व्रता देव/नू-देवोपासक देवताओं के लोक को जाते हैं । अनेक लोग ऐसे थे, जो देवताओं की उपासना करते थे और अनेक प्रत्यक्ष रूप से श्रीभगवान् की उपासना करते थे । देवपूजन में मुख्यत: ब्रह्माजी, शिवजी, गणेश जी, सूर्य देव तथा दुर्गा जी की उपासना की जाती थी । शिवजी तथा दुर्गाजी की उपासना राजपरिवार भी करते थे, जबकि निम्नकोटि के मूर्ख लोग अन्य गौण देवताओं की उपासना करते थे । जहाँ तक ब्राह्मणों और वैष्णवों का सम्बन्ध है वे केवल भगवान् श्रीविष्णु की उपासना करते हैं देवताओं के उपासना की भत्सना की गई है, किन्तु उसे वर्जित नहीं किया गया है । वहाँ यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि अल्पबुद्धि मानव-वर्ग भौतिक लाभ के लिए विभिन्न प्रकार के देवताओं की उपासना करते हैं । दूसरी ओर,

यद्यपि रुक्मिणी जी लक्ष्मी जी थीं, तथापि वे भगवती दुर्गा की उपासना के हेतु मन्दिर में गई, क्योंकि वहाँ कुलदेवी की उपासना होती थी । श्रीमद्रा/वत में कहा गया है कि जब रुक्मिणी जी भगवती दुर्गा के मन्दिर की ओर जा रही थीं, तो वे अपने हृदय में सदैव श्रीकृष्ण के चरणकमलों का चिन्तन कर रही थीं । अतएव जब रुक्मिणी जी मन्दिर में गई, तो वे साधारण व्यक्ति की भाँति भौतिक लाभों की याचना के उद्देश्य से नहीं गई थीं, अपितु उनका एकमात्र लक्ष्य श्रीकृष्ण थे । जब लोग किसी देवता के मन्दिर में जाते हैं तब उनका वास्तविक ध्येय श्रीकृष्ण ही होते हैं, क्योंकि श्रीकृष्ण ही देवताओं को भौतिक लाभ देने की शक्ति प्रदान करते हैं । मन्दिर की ओर जाती हुई रुक्मिणी जी अत्यन्त मौन एवं गम्भीर थीं । उनकी माता तथा सखियाँ उनके समीप थीं और एक ब्राह्मण की पत्नी मध्य में थी । उनके चारों ओर राजकीय अंगरक्षक थे । विवाह से पूर्व देवमन्दिर में वधू के जाने की प्रथा भारत में अभी भी प्रचलित है । जब वे जा रही थीं तब विभिन्न वाद्यों के स्वर सुनाई पड़ रहे थे । दुन्दुभी, शंख और विभिन्न आकारों की तुरही जैसे कि पणव, तूर्य और भेरी बज रही थीं । इन सबकी सम्मिलित ध्वनि न केवल मांगलिक थी, अपितु कर्णप्रिय भी थी । सहस्त्रों सम्मानित ब्राह्मणों की पत्नियाँ वहाँ उपस्थित थीं । वे सब स्त्रियाँ सुन्दर वस्त्राभूषण धारण किए थीं । उन्होंने शिवजी तथा भवानी की उपासना के लिए रुक्मिणी को पुष्पहार, चन्दन का लेप तथा विभिन्न प्रकार के रंगीन वस्त्र दिए । इनमें से कुछ स्त्रियाँ अत्यन्त वृद्धा थीं और उन्हें पूर्ण रूप से ज्ञात था कि भवानी तथा शिवजी की स्तुति किस प्रकार करनी चाहिए, अतएव उन्होंने श्रीमूर्ति के समक्ष स्तुति की और रुक्मिणी तथा अन्य स्त्रियों ने उनका अनुसरण किया ।

रुक्मिणी जी ने यह कह कर श्रीमूर्ति की उपासना की: "प्रिय दुर्गा देवी! आपको तथा आपकी सन्तान को मेरा सादर प्रणाम है ।" दुर्गा जी की चार यशस्वी सन्तानें हैं, दो पुत्रियाँ- श्रीदेवी लक्ष्मी तथा विद्या की देवी सरस्वती

और दो कीर्तिमान् पुत्र गणेश जी तथा कार्तिकेय जी । ये सभी देवता तथा देवियाँ माने जाते हैं । दुर्गा देवी की उपासना सदैव उनकी प्रसिद्ध सन्तानों सहित की जाती है, अतएव रुक्मिणी जी ने श्रीमूर्ति को इस प्रकार विशेष रूप से सादर प्रणाम किया । किन्तु उनकी स्तुति भिन्न थी । साधारण मनुष्य भौतिक सम्पत्ति, यश, लाभ और शक्ति आदि के लिए दुर्गा जी की स्तुति करते हैं । किन्तु रुक्मिणी जी श्रीकृष्ण को पति के रूप में प्राप्त करना चाहती थीं, अतएव उन्होंने श्रीमूर्ति से अपने पर प्रसन्न होने तथा आशीर्वाद देने की प्रार्थना की । वे केवल श्रीकृष्ण की कामना करती थीं, अतएव उनकी देवोपासना की निन्दा नहीं की गई है । जब रुक्मिणी जी स्तुति कर रही थीं तब अनेक प्रकार की वस्तुएँ श्रीमूर्ति को अर्पित की गई । उन वस्तुओं में प्रमुख थींजल, विभिन्न प्रकार की अग्नि, धूप, वस्त्र, हार तथा घी से बने हुए विभिन्न प्रकार के व्यजंन यथा पूरी, कचौरी । फल, गन्ना, पान तथा मसाले भी अर्पित किए गए । वृद्धा ब्राह्मणियों के निर्देशन में, विधि-विधानों के अनुसार रुक्मिणी जी ने अत्यधिक भक्तिपूर्वक सारी वस्तुएँ श्रीमूर्ति को अर्पित कीं । इस विधिवत् पूजा के पश्चात् स्त्रियों ने अवशिष्ट व्यंजन प्रसाद के रूप में रुक्मिणी जी को दिए, जिसे उन्होंने अत्यन्त सम्मानपूर्वक ग्रहण किया । तत्पश्चात् रुक्मिणी जी ने स्त्रियो तथा दुर्गा जी को सादर प्रणाम किया । जब श्रीमूर्ति का पूजन समाप्त हो गया तब रुक्मिणी जी अपनी एक सखी का हाथ पकड़ कर मन्दिर से बाहर आई । अन्य सखियाँ भी उनके साथ आई ।

विवाह के लिए कुण्डिन आए हुए सभी अतिथि तथा राजकुमार रुक्मिणी को देखने के लिए मन्दिर के बाहर एकत्र थे । विशेष रूप से राजकुमार रुक्मिणी जी को देखने के लिए अति आतुर थे, क्योंकि वास्तव में वे सभी यही सोचते थे कि वे रुक्मिणी को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त करेंगे । रुक्मिणी जी को देख कर, चकित होकर वे विचार करने लगे: सभी शूरवीर राजकुमारों को मोहित करने के लिए ही ब्रह्माजी ने विशेष रूप

से उनकी रचना की है । क्षीण कटि युक्त उनका शरीर सुनिर्मित था । उनके नयन हरित थे, अधर गुलाबी थे और उनका मुख अत्यन्त सुन्दर था । बिखरे हुए केश तथा विभिन्न प्रकार के कर्णफूल उनके मुख की शोभा में वृद्धि कर रहे थे । पैरों में उन्होंने रत्नजटित नूपुर पहने थे । रुक्मिणी जी के शरीर की आभा तथा सौन्दर्य से ऐसा प्रतीत होता था मानो महान् कवियों द्वारा वर्णित सौन्दर्य को किसी | चित्रकार ने अपने चित्र में साकार कर दिया हो । रुक्मिणी के वक्ष कुछ उन्नत थे जिससे संकेत मिलता है कि वे मात्र एक किशोरी थीं और उनकी आयु तेरह या चौदह वर्ष से अधिक नहीं थी । उनका सौन्दर्य श्रीकृष्ण को आकर्षित करने के लिए था । यद्यपि अन्य राजा उनकी सुन्दर छवि को देख रहे थे, किन्तु उन्हें तनिक भी गर्व नहीं था । उनके नयन चंचल थे और जब वे एक भोली-भाली बलिका की भाँति अत्यन्त सरलता से मुस्कराती थीं तब उनके दाँत कमलों के समान प्रतीत होते थे । वे आशा कर रही थीं कि श्रीकृष्ण किसी भी क्षण उन्हें ले जाएँगे, अतएव वे मन्थर गति से घर की ओर बढ़ने लगीं । उनके पग राजहंस की भाँति पड़ रहे थे और उनके नूपुर मन्द स्वर में बज रहे थे ।

जैसाकि पहले ही स्पष्ट कर दिया गया है, वहाँ पर एकत्र महान् शूरवीर राजा रुक्मिणी के सौन्दर्य से इतने प्रभावित हो गए थे कि वे लगभग चेतनाहीन थे । वासना से पूर्ण होकर, अपने सौन्दर्य की उनके सौन्दर्य से तुलना करते हुए वे रुक्मिणी जी का हाथ पाने की निरर्थक कामना कर रहे थे । किन्तु श्रीमती रुक्मिणी को उनमें से किसी में भी रुचि नहीं थी । अपने हृदय में वे केवल यही आशा कर रही थीं कि श्रीकृष्ण आकर उनको ले जाएँगे । जब वे अपने बाँए हाथ की उँगली का आभूषण ठीक कर रही थीं, तो उनकी दृष्टि राजाओं पर पड़ी और अचानक उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण भी उनमें उपस्थित हैं । यद्यपि रुक्मिणी जी ने पहले कभी श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं किए थे, तथापि वे सदैव उनका चिन्तन

करती रहती थीं । इस प्रकार उन राजाओं के मध्य श्रीकृष्ण को पहचानने में रुक्मिणी जी को कोई कठिनाई नहीं हुई । दूसरे अपने रथ पर बैठा लिया । श्रीकृष्ण का रथ गरुड़ के चित्र वाली ध्वजा से युक्त था । तदनन्तर वे निर्भय रूप से धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे । जिस प्रकार सिंह सियारों के श्रीकृष्ण द्वारा समस्त राजाओं को हरा कर मध्य से हिरण को ले जाता है उसी प्रकार श्रीकृष्ण रुक्मिणी को ले गए । इसी बीच रुक्मिणी जी का हरण यदुवंश के सैनिकों को लेकर बलराम जी भी वहाँ आ उपस्थित हुए । श्रीकृष्ण के द्वारा अनेक बार पराजित होने वाला जरासन्ध गर्जना करने लगा, "यह क्या हो रहा है? कृष्ण निर्विरोध हमसे रुक्मिणी को दूर ले जा रहा है । हमारे शूरवीर धनुर्धर योद्धा होने का क्या लाभ है? प्रिय राजाओ, देखो! इस कार्य से हम पडे थे अपनी कीर्ति खो रहे हैं । यह तो वैसा ही है जैसे सियार सिंह का अंश ले जाए ।"

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण द्वारा रुक्मिणी-हरण" नामक तिरपनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ

अध्याय 55
श्रीकृष्ण और रुक्मिणी से पुत्र प्रद्युम्न का जन्म

शिवजी ने क्रोध से भस्म कर दिया था । उसी कामदेव ने श्रीकृष्ण की सन्तान के रूप में रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया । स्वर्ग लोक का यह देवता कामदेव काम को जाग्रत करने में विशेष रूप से समर्थ है । भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न अंशों के अनेक स्तर हैं । किन्तु श्री वासुदेव, श्री संकर्षण, श्री प्रद्युम्न तथा श्री अनिरुद्ध नामक श्रीकृष्ण के चतुव्यूह विस्तार प्रत्यक्षरूप से विष्णु की श्रेणी में हैं । कामदेव ने बाद में रुक्मिणी के गर्भ से जन्म लिया और उसका भी नाम प्रद्युम्न रखा गया, किन्तु वे विष्णु की

श्रेणी वाले प्रद्युम्न नहीं हो सकते हैं । वे जीव-तत्व की श्रेणी के थे, किन्तु देवताओं की श्रेणी वाली विशिष्ट शक्ति से युक्त होने के कारण, वे प्रद्युम्न के अद्भुत पराक्रम का अंश थे । गोस्वामियों का यही मत है । अतएव जब शिवजी के क्रोध से काम भस्म हो गया, तो वह श्रीवासुदेव के शरीर में लीन हो गया । उसका शरीर उसे पुन: प्राप्त हो, इस हेतु भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं उसे सन्तान के रूप में स्वीकार किया । श्रीकृष्ण ने प्रत्यक्ष रूप से उसे अपने शरीर से रुक्मिणी जी के गर्भ में स्थापित किया और वह श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ । वह प्रद्युम्न के नाम से विख्यात हुआ । श्रीकृष्ण के पुत्र होने के कारण उसके गुण भी श्रीकृष्ण के समान थे । शम्बर नामक एक असुर का इन्हीं प्रद्युम्न के हाथों वध होने वाला था । शम्बरासुर को अपनी इस नियति का ज्ञान था और जैसे ही उसे ज्ञात हुआ कि प्रद्युम्न का जन्म हो चुका है, वैसे ही उसने एक स्त्री का रूप धारण करके शिशु का हरण किया । उसने शिशु के जन्म के दस दिन के अन्दर ही प्रसूति गृह से उसका हरण कर लिया । असुर ने उसे ले जाकर सीधे समुद्र में फेंक दिया । किन्तु जैसा कहा जाता है, "श्रीकृष्ण जिसकी रक्षा करते हैं उसे कोई नहीं मार सकता है और श्रीकृष्ण द्वारा जिसका वध होने वाला है उसकी कोई रक्षा नहीं कर सकता है । (राखे कृष्ण मारे के, मारे कृष्ण राखे के)" जब प्रद्युम्न को समुद्र में फेंका गया तब तत्क्षण एक विशाल मछली उन्हें निगल गई । कुछ काल पश्चात् यह मछली एक मछुआरे के जाल में पकड़ी गई और बाद में वह मछली शम्बरासुर को बेच दी गई । असुर की पाकशाला (रसोई) में मायावती नाम की एक दासी थी । वह स्त्री भूतकाल में काम की पत्नी रति थी । जब मछली शम्बरासुर को दी गई तब उसके रसोइए ने उसे लिया । रसोइए का कार्य इस मछली को सुस्वादु भोजन के रूप में पकाना था । असुर एवं राक्षस मांस, मछली आदि इसी प्रकार के मांसाहारी भोजन करने के अभ्यस्त होते हैं । उसी भाँति दूसरे असुर जैसे रावण, कंस तथा हिरण्यकशिपु आदि ब्राह्मण और क्षत्रिय पिता के पुत्र थे, किन्तु वे बिना

विचार किए मांसाहार करते थे । भारत में यह प्रचलन अभी-भी है और मछली तथा मांसाहार करने वाले को सामान्यतया असुर तथा राक्षस कहा जाता है । जब रसोइया मछली को काट रहा था तब उसे मछली के पेट में एक सुन्दर शिशु मिला । उसने तत्काल उस शिशु को भोजन बनाने में सहायता करने वाली मायावती के संक्षरण में दे दिया । इस स्त्री को यह देखकर आश्चर्य हुआ कि इतना सुन्दर शिशु एक मछली के पेट में किस प्रकार रहा और यह परिस्थिति उसे उलझन में डाल रही थी । तत्पश्चात् देवर्षि नारद जी ने आकर प्रद्युम्न के जन्म, शम्बरासुर द्वारा उसके हरण तथा समुद्र में फेंके जाने की समस्त कथा उसे बताई । इस रीति से पूर्वजन्म में कामदेव की पत्नी रही रति को, जिसका नाम अब मायावती था, समस्त कथा स्पष्ट हो गई । मायावती को ज्ञात था कि पहले वह कामदेव की पत्नी थी । शिवजी के क्रोध से अपने पति के भस्म हो जाने के पश्चात् वह सदैव ही यह आशा कर रही थी कि कामदेव को भौतिक देह प्राप्त होगी । मायावती का कार्य रसोई में दाल चावल पकाना था, किन्तु जब उसे यह शिशु प्राप्त हुआ और उसे ज्ञात हुआ कि वह उसका पति कामदेव है, तो स्वाभाविक रूप से उसने उस शिशु को अपने संरक्षण में ले लिया और अत्यन्त स्नेहपूर्वक उसका पालन करने लगी । चमत्कारिक रूप से वह शिशु अत्यन्त तीव्र गति से विकसित होने लगा और अत्यन्त अल्पकाल में वह एक अत्यन्त सुन्दर युवक बन गया । उसके नयन कमलपुष्प की पंखुड़ियों के समान थे और उसकी भुजाएँ घुटनों तक लम्बी थीं । उसे देखकर सभी युवतियाँ उसके शरीर-सौन्दर्य पर मोहित हो जाती थीं । मायावती समझ सकती थी कि प्रद्युम्न के रूप में उत्पन्न उसका पूर्वपति कामदेव इतना सुन्दर युवक हो गया था और धीरे-धीरे वह भी मोहित तथा कामातुर हो गई । अपनी वासना की अभिव्यक्ति करती हुई वह प्रद्युम्न के समक्ष स्त्रियोचित आकर्षण सहित मुस्करा रही थी । अतएव प्रद्युम्न ने उससे प्रश्न किया, "ऐसा किस प्रकार सम्भव है कि पहले तुम एक माँ की भाँति स्नेहशील थी और अब तुम एक कामातुर रुत्री

के लक्षण व्यक्त कर रही हो ? इस परिवर्तन का कारण क्या है ?" प्रद्युम्न के इस कथन को सुनकर रति ने उत्तर दिया, "प्रियवर! आप भगवान् कृष्ण के पुत्र हैं । आप दस दिन के भी नहीं थे, जब शम्बरासुर ने आपका हरण करके आपको समुद्र में फेंक दिया था और एक मछली आपको निगल गई थी । इस प्रकार आप मेरे संरक्षण में आ गए, किन्तु वास्तव में कामदेव के रूप में आपके पूर्वजीवन में मैं आपकी पत्नी थी । अतएव मेरा आपके प्रति दाम्पत्य प्रेम के लक्षणों को प्रकट करना असंगत नहीं है । शम्बर आपका वध करना चाहता था और उसको विभिन्न सिद्धियाँ प्राप्त हैं । अतएव वह आपके वध का प्रयास करे, इसके पूर्व ही शीघ्रातिशीघ्र आप अपनी दिव्य शक्ति से उसका वध कर दीजिए । जब से शम्बर ने आपको चुराया है, आपकी माता रुक्मिणी देवी अत्यन्त शोचनीय अवस्था में हैं । उनकी दशा वैसी ही है जैसी अपनी सन्तान को खोकर किसी कोयल पक्षी की होती है । उनका आप पर अत्यन्त स्नेह है और जब से आपको उनसे विलग कर दिया गया है, वे उसी प्रकार जीवन व्यतीत कर रही हैं, जैसे बछड़े को खो कर गाय दुखी रहती है ।" मायावती को महामाया का ज्ञान था । अलौकिक शक्तियों को साधारणतया माया के नाम से जाना जाता है । इस प्रकार की समस्त मायाओं में सर्वोत्कृष्ट एक और माया होती है, जिसे महामाया कहते हैं । मायावती को महामाया नामक सिद्धि का शान था और शम्बरासुर की मायावी शक्तियों को परास्त करने के लिए उसने यह विशिष्ट शक्ति प्रद्युम्न को प्रदान की । इस प्रकार अपनी पत्नी से शक्ति प्राप्त करके प्रद्युम्न तत्काल शम्बरासुर के समक्ष गया और उसे युद्ध के लिए चुनौती दी । प्रद्युम्न उसे अत्यन्त कठोर शब्दों से सम्बोधित करने लगा, जिससे कि उसे क्रोध आ जाए और वह उत्तेजित होकर युद्ध के लिए तत्पर हो जाए । प्रद्युम्न के शब्द सुनकर शम्बरासुर अपमान से ऐसा अनुभव करने लगा जैसे किसी के पैर से आघात खाकर सर्प अनुभव करता है । उसकी दशा आहत सर्प जैसी हो गई । किसी भी मनुष्य अथवा पशु द्वारा चोट खाना सर्प को सहन नहीं

होता है और वह तत्क्षण अपने विरोधी को काट लेता है । प्रद्युम्न के शब्द शम्बर को वैसे ही लगे जैसे किसी ने ठोकर मारी हो । वह तत्काल अपनी गदा उठा कर युद्ध करने के लिए प्रद्युम्न के समक्ष आया । अत्यन्त क्रोध में वह अपनी गदा से प्रद्युम्न पर उसी भाँति प्रहार करने लगा, जिस भाँति वज़ किसी पर्वत पर प्रहार करता है । असुर आर्तनाद भी कर रहा था और मेघ के समान गर्जन कर रहा था । प्रद्युम्न ने अपनी गदा से अपनी रक्षा की और अन्ततः उसने असुर पर अत्यन्त कठोर प्रहार किया । इस प्रकार शम्बरासुर तथा प्रद्युम्न के मध्य घोर युद्ध प्रारम्भ हो गया । किन्तु शम्बरासुर को मायावी शक्तियों की कला ज्ञात थी और वह आकाश में जाकर अन्तरिक्ष से युद्ध कर सकता था । मय नामक एक और असुर था जिससे शम्बरासुर ने अनेक मायावी शक्तियाँ सीखी थीं । इस प्रकार शम्बरासुर आकाश में चला गया और प्रद्युम्न के शरीर पर विभिन्न प्रकार के परमाणु अस्त्र फेंकने लगा । शम्बरासुर की मायावी शक्तियों से युद्ध करने के लिए प्रद्युम्न ने अन्य मायावी शक्ति महाविद्या का स्मरण किया । महाविद्या तंत्र विद्या से भिन्न है । तंत्र विद्या का प्रयोग तमोगुण के अन्तर्गत माना जाता है । महाविद्या की गूढ़ शक्ति सतीगुण पर आधारित है । यह जानकर कि उसका शत्रु प्रबल था शम्बरासुर ने गुह्यकों की विभिन्न प्रकार की आसुरी मायावी शक्तियों की सहायता ली । उसने गंधर्वो, पिशाचों, नागों तथा राक्षसों की शक्तियों की भी सहायता ली । यद्यपि उसने अपनी मायावी शक्तियों का प्रदर्शन किया और अमानुषिक शक्ति का आश्रय लिया, तथापि महाविद्या श्रेष्ठ शक्ति के द्वारा प्रद्युम्न उसकी शक्तियों और बल को निष्फल करने में सफल हुआ । जब शम्बरासुर पूर्णरूपेण पराजित हो गया तब प्रद्युम्न ने अपनी तीक्ष्ण धार वाली तलवार लेकर तत्काल उस असुर का सिर काट लिया, जो मूल्यवान रत्नों तथा मुकुट से सुशोभित था । जब प्रद्युम्न ने इस प्रकार उस असुर का वध किया, तो स्वर्गलोक से सभी देवता उस पर पुष्पवर्षा करने लगे । प्रद्युम्न की पत्नी मायावती अन्तरिक्ष में यात्रा कर सकती थी, अतएव वे

दोनों वायुमार्ग से सीधे प्रद्युम्न के पिता की राजधानी द्वारका पहुँच गए । वे भगवान् श्रीकृष्ण के राजमहल के ऊपर से गए और जिस प्रकार बिजली के साथ मेघ नीचे आता है उसी प्रकार वे नीचे उतरने लगे । महल का भीतरी भाग अन्त:पुर कहलाता है । प्रद्युम्न तथा मायावती देख सकते थे कि वहाँ अनेक स्त्रियाँ थीं और वे उन्हीं के मध्य बैठ गए । उन स्त्रियों ने प्रद्युम्न को पीताम्बर तथा अनेक रत्नाभूषण धारण किए हुए देखा । जब उन स्त्रियों ने उनकी आजानु भुजाएँ कुंचित केश, सुन्दर नेत्र तथा मुस्कानयुक्त सुन्दर मुखारविन्द देखा, तो वे भगवान् श्रीकृष्ण से भिन्न, प्रद्युम्न के रूप में उसे न पहचान सकीं । उन सबको यही प्रतीत हुआ कि श्रीकृष्ण ही उनके मध्य आए हैं और उनकी अचानक उपस्थिति से वे स्वयं को कृतार्थ समझने लगीं । वे महल के किसी दूसरे कोने में छिप जाना चाहती थीं । किन्तु जब स्त्रियों ने देखा कि श्रीकृष्ण के सभी लक्षण प्रद्युम्न में नहीं थे, तब कुतूहलवश वे पुन: उन्हें और उनकी पत्नी मायावती को देखने के लिए वापस आ गई । प्रद्युम्न इतने सुन्दर थे कि वे सारी स्त्रियाँ इस विषय में अनुमान लगाने लगीं वे कौन थे । उन स्त्रियों में रुक्मिणी देवी भी थीं, जो स्वयं भी कमलाक्षी थीं और उतनी ही सुन्दरी थीं । स्वभावतः ही प्रद्युम्न को देख कर उन्हें अपने पुत्र का स्मरण हो आया और वात्सल्य के कारण उनके स्तनों से दूध बहने लगा । तदनन्तर वे विचार करने लगीं, "यह सुन्दर किशोर कौन है? यह सर्वाधिक सुन्दर प्रतीत होता है । वह कौन सौभाग्यवती युवती है, जिसे इस किशोर को अपने गर्भ से जन्म देकर उसकी माँ बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है? और वह युवती कौन है, जो इसके साथ है? उनकी भेंट कैसे हुई? मेरे पुत्र को प्रसूतिगृह से चुरा लिया गया था । उसका स्मरण करके मैं केवल यही अनुमान कर सकती हूँ कि यदि वह कहीं जीवित है, तो अब तक वह भी इस किशोर के जितना बड़ा हो गया होगा ।" केवल सहज ज्ञान से रुक्मिणी जी समझ सकती थीं कि प्रद्युम्न उनके ही खोए हुए पुत्र थे । उन्होंने यह भी देखा कि प्रद्युम्न प्रत्येक दृष्टि से श्रीकृष्ण के अनुरूप थे ।

वे अत्यन्त आश्चर्यचकित थीं कि श्रीकृष्ण के सभी लक्षण उन्हें कैसे प्राप्त हुए । अतएव वे और अधिक विश्वासपूर्वक विचार करने लगीं कि अवश्य ही यह किशोर उनका ही पुत्र है, क्योंकि उन्हें उसके प्रति अत्यधिक स्नेह की अनुभूति हो रही थी । शुभ शकुन के रूप में उनकी बायीं भुजा फड़क रही थी । उसी क्षण अपने माता-पिता, देवकी तथा वसुदेव जी के साथ श्रीकृष्ण भी वहाँ आ गए । भगवान् श्रीकृष्ण सब कुछ समझ सकते थे, तथापि उस परिस्थिति में वे मौन रहे । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा से देवर्षि नारद जी भी वहाँ आ गए । उन्होंने सारी घटनाएँ स्पष्ट कीं कि किस प्रकार प्रद्युम्न को प्रसूति गृह से हर लिया गया था, किस प्रकार वे बड़े हुए थे और अपनी पत्नी मायावती के साथ वहाँ आए हैं । उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि मायावती ही पूर्वजन्म में कामदेव की पत्नी रति थी । जब सबको प्रद्युम्न के रहस्यपूर्ण ढंग से तिरोहित होने तथा बड़े होने की जानकारी मिली, तो वे सब आश्चर्यचकित हो गए, क्योंकि जब वे उनको वापस पाने से लगभग निराश हो चुके थे, तब उनका मृत पुत्र उन्हें पुन: प्राप्त हो गया था । जब उन्हें यह समझ में आया कि वहाँ उपस्थित किशोर प्रद्युम्न ही है, तब उन्होंने अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उसका स्वागत किया । देवकी, वसुदेव, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् बलराम तथा रुक्मिणी जी और परिवार की सभी स्त्रियों तथा सदस्यों ने एक-एक कर के प्रद्युम्न तथा उसकी पत्नी मायावती का आलिंगन किया । जब प्रद्युम्न के आने का समाचार द्वारका नगर में चारों ओर फैला तब सभी चकित नागरिक अत्यन्त उत्सुकतापूर्वक खोए हुए प्रद्युम्न के दर्शनार्थ वहाँ आने लगे । वे कहने लगे, "मृत पुत्र वापस लौट आया है । इससे बढ़कर आनन्द का समाचार और क्या हो सकता है?"

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने स्पष्ट किया है कि प्रारम्भ में महल की सभी नारियों ने प्रद्युम्न को श्रीकृष्ण समझा और वे लजा गई । वे सभी वास्तव में प्रद्युम्न की माता तथा विमाताएँ थीं, किन्तु प्रद्युम्न को श्रीकृष्ण समझ

कर वे दाम्पत्य प्रेम की कामना से पीड़ित हो उठीं और लजा गई । इसका स्पष्टीकरण यह है कि प्रद्युम्न की माँ तथा अन्य स्त्रियों ने उन्हें श्रीकृष्ण समझा । इस कथन से स्पष्ट है कि प्रद्युम्न के शारीरिक लक्षण श्रीकृष्ण के इतने अधिक अनुरूप थे कि स्वयं उनकी माँ ने भी उन्हें श्रीकृष्ण ही समझा ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण और रुक्मिणी जी के पुत्र प्रद्युम्न का जन्म" नामक पचपनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 56
स्यमन्तक मणि की कथा

रकाधाम के क्षेत्र में सत्राजित नामक एक राजा था । वह सूर्यदेव का महान् भत था । सूर्यदेव ने उसे स्यमन्तक मणि प्रदान की थी । इस स्यमन्तक मणि के कारण राजा सत्राजित तथा यदुवंश के मध्य एक मिथ्याबोध उत्पन्न हो गया था । बाद में सत्राजित ने जब स्वेच्छा से अपनी पुत्री सत्यभामा तथा स्यमन्तक मणि श्रीकृष्ण को अर्पित की तब यह भ्रम समाप्त हो गया । स्यमन्तक के कारण न केवल सत्यभामा का श्रीकृष्ण से विवाह हुआ था, अपितु जाम्बवान् की पुत्री जाम्बवती का भी श्रीकृष्ण से विवाह हुआ । ये दोनों विवाह प्रद्युम्न के आगमन के पूर्व हो चुके थे, जिसका वर्णन पिछले अध्याय में किया गया है । राजा सत्राजित ने यदुवंश को किस प्रकार अप्रसन्न किया और किस प्रकार बाद में उसे सदुद्धि प्राप्त हुई और उसने अपनी पुत्री तथा स्यमन्तक मणि श्रीकृष्ण को अर्पित की, इसका वर्णन निम्न प्रकार से किया जाता है । सूर्यदेव का महान् भक्त होने के कारण राजा सत्राजित का शनै: शनै: उनसे अत्यन्त मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध हो गया । सूर्यदेव उससे अत्यन्त प्रसन्न थे और उन्होंने उसे स्यमन्तक

नामक एक विलक्षण मणि प्रदान की । जब सत्राजित ने यह मणि अपने कण्ठ में धारण की तब वह सूर्यदेव की एक प्रतिकृति प्रतीत हुआ । यह मणि पहनकर जब वह द्वारका में जाता था, तब लोग सोचते थे कि श्रीकृष्ण से भेंट करने सूर्यदेव नगर में आए हैं । उन्हें ज्ञात था कि कभी-कभी देवता लोग भगवान् श्रीकृष्ण से भेंट करने आते हैं, अत: जब सत्राजित द्वारका आया तब श्रीकृष्ण के अतिरिक सभी ने उसे सूर्यदेव ही समझा । यद्यपि सभी राजा सत्राजित से परिचित थे, किन्तु स्यमन्तक मणि की जाज्वल्यमान् कान्ति के कारण वह पहचाना नहीं जाता था । एक बार उसे सूर्यदेव समझ कर द्वारका के कुछ गण्यमान्य व्यक्ति तत्काल श्रीकृष्ण को सूचना देने गए कि सूर्यदेव उनसे मिलने आए हैं । उस समय श्रीकृष्ण चौपड़ खेल रहे थे । द्वारका के एक गण्यमान्य नागरिक ने इस प्रकार कहा, 'प्रिय भगवन् नारायण! आप श्रीभगवान् हैं । अपने नारायण अथवा विष्णु अंश में शंख, चक्र, गदा तथा पद्म युक्त आपकी चार भुजाएँ हैं । आप वस्तुत: प्रत्येक वस्तु के स्वामी हैं । किन्तु भगवान् नारायण होने पर भी आप यशोदा माता के पुत्र के रूप में अभिनय करने के हेतु वृन्दावन में अवतरित हुए हैं । यशोदा माता कभी-कभी आपको रस्सियों से बाँध देती थीं, अतएव आप दामोदर नाम से भी प्रसिद्ध हैं ।" द्वारका के निवासी भी श्रीकृष्ण को भगवान् श्रीनारायण मानते थे । श्रीकृष्ण के भगवान् श्रीनारायण होने की पुष्टि महान् मायावादी दार्शनिक शंकारचार्य ने भी की थी । शंकराचार्य द्वारा भगवान् को निराकार मानने का यह अर्थ नहीं है कि उन्होंने भगवान् के साकार रूप को अस्वीकार किया है । उनका कहने का तात्पर्य यह था कि इस भौतिक जगत की वह प्रत्येक वस्तु जिसका आकार है, सृष्टि, पालन तथा विनाश की भागी होती है, किन्तु भगवान् श्रीनारायण का स्वरूप इन सीमाओं से सीमित होने वाला भौतिक स्वरूप नहीं है । जो लोग श्रीकृष्ण को एक साधारण मानव मानते हैं, ऐसे अल्पबुद्धि वर्ग को समझाने के हेतु ही शंकराचार्य ने भगवान् को निराकार बताया । इस निराकार भाव का अर्थ है कि वे इस भौतिक स्थिति

के व्यक्ति नहीं हैं । वे भौतिक शरीर से रहित एक दिव्य व्यक्ति हैं । द्वारका के नागरिकों ने भगवान् श्रीकृष्ण को न केवल दामोदर कहकर अपितु गोविन्द कह कर भी सम्बोधित किया, जिससे संकेत मिलता है कि श्रीकृष्ण गायों तथा बछड़ों के प्रति अत्यन्त स्नेहमय हैं । श्रीकृष्ण से अपने घनिष्ठ सम्बन्ध के सन्दर्भ में उन्होंने श्रीकृष्ण को यदुनन्दन कहकर भी सम्बोधित किया । वे यदुवंश में उत्पन्न हुए हैं तथा वसुदेवजी के पुत्र हैं । फलत: द्वारका के नागरिकों ने निष्कर्ष निकाला कि वे समस्त ब्रह्माण्ड के परम स्वामी श्रीकृष्ण को सम्बोधित कर रहे हैं । उन्हें द्वारका के नागरिक होने में गर्व था, क्योंकि वे प्रतिदिन श्रीकृष्ण के दर्शन कर सकते थे, अत: उन्होंने विभिन्न प्रकार से श्रीकृष्ण को सम्बोधित किया । जब सत्राजित द्वारका में आया, तो द्वारका के नागरिकों ने यह सोचकर अत्यन्त गर्व का अनुभव किया कि, यद्यपि श्रीकृष्ण द्वारका में एक साधारण मानव के समान निवास कर रहे हैं, तथापि देवता उनके दर्शन करने के लिए आ रहे हैं । इस प्रकार उन्होंने श्रीकृष्ण को सूचित किया कि अपनी चित्ताकर्षक शारीरिक कान्ति सहित सूर्यदेव उनके दर्शन करने आ रहे हैं । द्वारका के नागरिकों ने पुष्टि की कि सूर्यदेव का द्वारका आना कोई अत्यन्त अद्‌भुत घटना नहीं थी, क्योंकि समस्त ब्रह्माण्ड में श्रीभगवान् की खोज में रत सभी लोगों को ज्ञात था कि वे यदुवंश में अवतीर्ण हुए हैं और उस परिवार के एक सदस्य के रूप में द्वारका में रह रहे हैं । इस प्रकार, इस अवसर पर नागरिकों ने अपने हर्ष का प्रदर्शन किया । अपने नागरिकों के इस कथन को सुनकर सर्वव्यापक भगवान् श्रीकृष्ण ने मन्द हास्य किया । द्वारकावासियों से प्रसन्न होकर श्रीकृष्ण ने उन्हें सूचित किया कि जिस व्यक्ति का वर्णन वे सूर्यदेव के रूप में कर रहे हैं, वह वास्तव में राजा सत्राजित है, जो कि सूर्यदेव से प्राप्त की गई बहुमूल्य मणि के रूप में, अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए द्वारका आया है । सत्राजित श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए नहीं आया था, अपितु स्यमन्तक मणि के कारण वह अत्यन्त मदोन्मत्त हो गया था । उसने मणि को एक मन्दिर में स्थापित

कर दिया और उसकी उपासना के लिए ब्राह्मणों को नियुक्त किया । यह इस बात का उदाहरण है कि किस प्रकार एक अल्पबुद्धि मानव किसी भौतिक वस्तु की उपासना करता है । भगवद्गीता में कहा गया है कि अपने सकाम कर्मों के तत्काल फल प्राप्त करने के लिए अल्पबुद्धि मनुष्य देवताओं की उपासना करते हैं । देवताओं की सृष्टि इस ब्रह्माण्ड के अन्तर्गत की गई है । भौतिकतावादी का अर्थ है, वह व्यक्ति जो भौतिक जगत में इन्द्रियतृप्ति से सम्बन्ध रखता है । यद्यपि श्रीकृष्ण ने बाद में स्यमन्तक मणि माँगी, तथापि सत्राजित ने वह मणि उन्हें नहीं दी । उसने मणि को उपासना के प्रयोजन से मन्दिर में स्थापित किया । ऐसे मणि की अर्चना कौन नहीं करेगा? स्यमन्तक मणि इतनी सामथ्र्यवान् थी कि प्रतिदिन वह विशाल मात्रा में स्वर्ण (सोना) उत्पन्न करती थी । स्वर्ण को भार नामक माप से नापा जाता है । वैदिक नियमानुसार एक भार सोलह पौण्ड स्वर्ण के बराबर होता है । एक मन में बयासी पौण्ड होते हैं । वह मणि प्रतिदिन लगभग एक सौ सत्तर पौण्ड स्वर्ण उत्पन्न कर रही थी । इसके अतिरिक्त वैदिक साहित्य से ज्ञात होता है कि जगत के जिस किसी भी भाग में इस मणि की उपासना होती है, वहाँ कभी अकाल नहीं पड़ता है । यही नहीं, जहाँ भी यह मणि रहती है, वहाँ महामारी अथवा व्याधि जैसी किसी भी अशुभ घटना की सम्भावना नहीं रहती है । श्रीकृष्ण जगत को शिक्षा देना चाहते थे कि प्रत्येक सर्वश्रेष्ठ वस्तु देश के प्रशासन-प्रमुख को अर्पित की जानी चाहिए । राजा उग्रसेन अनेक राजवंशों के राजाधिराज थे तथा वे श्रीकृष्ण के नाना भी थे । श्रीकृष्ण ने सत्राजित से कहा कि वह स्यमन्तक मणि राजा उग्रसेन को भेंट कर दे, क्योंकि सर्वश्रेष्ठ वस्तु राजा को अर्पित करनी चाहिए । किन्तु देवोपासक होने के कारण सत्राजित अत्यधिक भौतिकवादी हो गया था और श्रीकृष्ण का आदेश स्वीकार करने के स्थान पर उसने प्रतिदिन एक सौ सत्तर पौण्ड स्वर्ण प्राप्ति के लिए मणि की उपासना करने को बुद्धिमत्ता समझा । जिन्हें इतनी अधिक मात्रा में स्वर्ण प्रतिदिन प्राप्त हो सकता है, वे भौतिकतावादी

व्यक्ति श्रीकृष्ण की भक्ति में रुचि नहीं लेते हैं । अतएव कभी-कभी विशेष अनुग्रह के प्रदर्शन के लिए श्रीकृष्ण किसी व्यक्ति को उसकी संचित, विशाल भौतिक सम्पति से वंचित कर देते हैं और इस प्रकार उस व्यक्ति को महान् भक्त बना लेते हैं । किन्तु सत्राजित ने श्रीकृष्ण की आज्ञा को अस्वीकार कर दिया और वह मणि उन्हें नहीं दी । इस घटना के पश्चात् परिवार के वैभव का प्रदर्शन करने के लिए सत्राजित के छोटे भाई ने उस मणि को अपने कण्ठ में धारण कर लिया और अपने भौतिक ऐश्वर्य का प्रदर्शन करते हुए, घोड़े पर चढ़कर जंगल में गया । जब प्रसेन नामक सत्राजित का भाई वन में इधर-उधर घूम रहा था, तब एक विशाल सिंह ने उस पर आक्रमण कर दिया और उसे तथा उसके घोड़े का वध कर दिया । तदनन्तर सिंह उस मणि को अपनी गुफा में ले गया । जब यह जानकारी ऋक्षराज जाम्बवान् को प्राप्त हुई, तब उन्होंने सिंह को गुफा में मार कर वह मणि ले ली । जाम्बवान् भगवान् रामचन्द्र के समय से ही भगवान् के एक महान् भक्त थे, अतएव उन्होंने उस मूल्यवान मणि को अत्यन्त आवश्यक वस्तु के रूप में नहीं लिया था । उन्होंने वह मणि अपने पुत्र को एक खिलौने के रूप में दे दी । जब सत्राजित का छोटा भाई प्रसेन मणि सहित वन से नगर में नहीं लौटा, तो सत्राजित अत्यन्त अशान्त हो गया । उसे ज्ञात नहीं था कि उसके भाई का सिंह ने तथा सिंह का जाम्बवान् ने वध कर दिया । इसके स्थान पर वह विचार करने लगा कि चूँकि श्रीकृष्ण को यह मणि चाहिए थी और उन्हें नहीं दी गयी, अतएव हो सकता है कि श्रीकृष्ण ने यह मणि प्रसेन से बलपूर्वक लेकर उसका वध कर दिया हो । इस विचार को एक जनश्रुति का रूप देकर सत्राजित ने उसे द्वारका के प्रत्येक भाग में फैला दिया । यह मिथ्या जनश्रुति कि श्रीकृष्ण ने प्रसेन का वध कर के मणि ले ली है, सर्वत्र दावाग्नि की भाँति फैल गई । श्रीकृष्ण को स्वयं के ऊपर कलंक लगना रुचिकर नहीं लगा, अतएव उन्होंने निश्चय किया कि द्वारका के कुछ निवासियों सहित वे वन में जाएँगे और स्यमन्तक मणि को ढूँढेंगे । अत: द्वारका के प्रमुख व्यक्तियों

सहित श्रीकृष्ण सत्राजित के भाई प्रसेन को ढूँढ़ने गए और उन्होंने उसे मृत पाया, क्योंकि सिंह ने उसका वध कर दिया था । साथ ही साथ श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् द्वारा मारे गए सिंह को भी पाया । जाम्बवान् को सामान्यतया ऋक्ष के नाम से पुकारा जाता है । देखने से ज्ञात हुआ कि ऋक्ष ने बिना किसी शस्त्र की सहायता से सिंह को अपने हाथों से मारा था । तदनन्तर श्रीकृष्ण तथा द्वारका के नागरिकों को वन में एक विशाल गुफा मिली, जिसे ऋक्ष के घर का मार्ग कहा जाता था । श्रीकृष्ण को ज्ञात था कि द्वारकावासी गुफा में प्रवेश करने से भयभीत होंगे, अत: उन्होंने उन्हें बाहर ही रुकने को कहा । उन्होंने स्वयं ऋक्ष जाम्बवान् को ढूँढ़ने के लिए अकेले ही अन्धेरी गुफा में प्रवेश किया । सुरंग में प्रविष्ट होने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने देखा कि बहुमूल्य स्यमन्तक मणि ऋक्षपुत्र को खिलौने के रूप में दे दी गई है । बालक से मणि लेने के लिए श्रीकृष्ण वहाँ जाकर उसके समक्ष खड़े हो गए । जब ऋक्ष के बालक की देखभाल करने वाली दाई ने श्रीकृष्ण को अपने सम्मुख खड़ा देखा, तो वह भयभीत हो गई । उसे भय था कि कहीं श्रीकृष्ण उस बहुमूल्य स्यमन्तक मणि को ले न लें । भय के कारण वह उच्च स्वर से चिल्लाने लगी । दाई की चीत्कार सुनकर अत्यन्त कृद्ध होकर जाम्बवान् वहाँ गए । जाम्बवान् वास्तव में भगवान् श्रीकृष्ण के महान् भक्त थे, किन्तु अत्यन्त क्रोध में होने के कारण वे अपने स्वामी को पहचान न सके । उन्होंने सोचा कि श्रीकृष्ण एक साधारण मानव हैं । इससे भगवद्गीता का वह कथन स्मरण हो आता है, जिसमें भगवान् अर्जुन को आध्यात्मिक स्तर तक उन्नति करने के लिए क्रोध, लोभ तथा काम से मुक्त होने का परामर्श देते हैं । काम, क्रोध तथा लोभ हृदय में साथ-साथ रहते हैं और अध्यात्म के मार्ग पर व्यक्ति की उन्नति में बाधा डालते हैं । अपने स्वामी को न पहचान कर जाम्बवान् ने प्रथम उन्हें युद्ध के लिए चुनौती दी । तदनन्तर जाम्बावान् तथा श्रीकृष्ण के मध्य एक भयंकर युद्ध हुआ जिसमें वे दो विरोधी गिद्धों के समान लड़े । जब कभी-भी, कहीं खाने योग्य शव होता है, तब उस शिकार के लिए गिद्ध युद्ध करते हैं ।

पहले तो श्रीकृष्ण तथा जाम्बवान् ने शस्त्रों से युद्ध करना प्रारम्भ किया । तदनन्तर वे पत्थरों, बड़े-बड़े वृक्षों से लड़ने लगे । अन्ततः वे द्वन्द्व युद्ध करने लगे जिसके अन्त में वे एक दूसरे पर मुष्टि-प्रहार करने लगे । प्रत्येक आघात बिजली गिरने के समान प्रतीत होता था । प्रत्येक को दूसरे पर विजय प्राप्त करने की आशा थी । यह युद्ध रात- दिन कई दिनों तक निरन्तर चलता रहा । इस भाँति अट्ठाइस दिनों तक युद्ध होता रहा । यद्यपि जाम्बवान् उस समय के सर्वाधिक शक्तिशाली जीव थे, तथापि श्रीकृष्ण के घूंसों के निरन्तर प्रहार से उनके शरीर के समस्त जोड़ तथा अंग-प्रत्यंग शिथिल पड़ गए और उनकी शक्ति लगभग शून्य हो गई । जाम्बवान् का समस्त शरीर पसीने से डूब गया और वे अत्यन्त थक गए । जाम्बवान् चकित थे कि यह कौन विरोधी है, जो उन्हें बलहीन किये दे रहा है? जाम्बवान् को अपनी अलौकिक शक्ति का आभास था, किन्तु श्रीकृष्ण के प्रहारों से जब वे श्रम का अनुभव करने लगे, तब समझ गए कि श्रीकृष्ण और कोई नहीं, अपितु उनके आराध्यदेव श्रीभगवान् ही हैं । भक्तों के लिए इस घटना का विशेष महत्व है । प्रारम्भ में जाम्बवान् श्रीकृष्ण को नहीं समझ सके, क्योंकि उनकी दृष्टि पर भौतिक आसक्ति रूपी आवरण था । उनकी आसक्ति अपने पुत्र तथा बहुमूल्य स्यमन्तक मणि के प्रति थी और वे यह मणि श्रीकृष्ण को नहीं देना चाहते थे । वास्तव में जब श्रीकृष्ण वहाँ आए, तब जाम्बवान् यह सोचकर कि वे मणि ले जाने आए हैं, अत्यन्त कृद्ध हो गए । यह भौतिक दशा है । कोई शरीर से अत्यन्त बलवान् हो सकता है, किन्तु इससे श्रीकृष्ण को समझने में उसे कोई सहायता नहीं मिल सकती है । क्रीड़ा करने के उद्देश्य से श्रीकृष्ण अपने भक्त के साथ युद्ध का स्वांग करना चाहते थे । जैसाकि श्रीमद्भागवत के पृष्ठों से हमें अनुभव होता है, श्रीभगवान् में मानवोचित सभी रुचियाँ तथा प्रवृत्तियाँ हैं । कभी-कभी वे क्रीड़ा की भावना से अपनी शारीरिक शक्ति के लिए युद्ध करना चाहते हैं । जब उनकी ऐसी इच्छा होती है, तब स्वयं को यह सुख देने के लिए, वे अपने किसी योग्य भक्त का चुनाव करते हैं । श्रीकृष्ण की

कामना जाम्बवान् के साथ ऐसे ही युद्ध के स्वांग का सुख प्राप्त करने की थी । यद्यपि स्वभाव से जाम्बवान् भक्त थे, किन्तु अपने शारीरिक बल के माध्यम से भगवान् की सेवा करते समय, उन्हें श्रीकृष्ण का ज्ञान नहीं था । किन्तु जैसे ही भगवान् उस युद्ध से प्रसन्न हो गए वैसे ही जाम्बवान् को तत्काल ज्ञान हो गया कि उनके विरोधी स्वयं भगवान् के अतिरिक्त और कोई नहीं है । निष्कर्ष यह निकलता

है कि वे अपनी सेवा के द्वारा श्रीकृष्ण को समझ सके । कभी-कभी श्रीकृष्ण युद्ध के द्वारा भी सन्तुष्ट होते हैं । अतएव जाम्बवान् ने भगवान् से कहा, "प्रिय प्रभो! अब मैं समझ सकता हूँ कि आप कौन हैं । आप प्रत्येक प्राणी के बल, धन, सम्पति, यश, सौन्दर्य, बुद्धि और त्याग के स्रोत भगवान् श्रीविष्णु हैं ।" वेदान्त-सूत्र से भी जाम्बवान् के इस कथन की पुष्टि होती है, जिसमें भगवान् को प्रत्येक वस्तु का स्रोत घोषित किया गया है । जाम्बवान् ने श्रीकृष्ण को भगवान् श्रीविष्णु के रूप में पहचान लिया, "प्रिय भगवन्! ब्रह्माण्ड के प्रपचों के रचयिताओं के भी रचयिता आप हैं ।" यह कथन उस सामान्य मानव के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद है, जो विशेष बुद्धि वाले मानव के कार्यों द्वारा चकित हो जाता है । साधारण मानव किसी महान् वैज्ञानिक के आविष्कारों को देखकर चकित हो जाता है, किन्तु जाम्बवान् का कथन इस तथ्य की पुष्टि करता है कि यद्यपि एक वैज्ञानिक अनेक अद्‌भुत वस्तुओं का रचयिता हो सकता है, तथापि श्रीकृष्ण उस वैज्ञानिक के भी रचयिता हैं । वे केवल एक वैज्ञानिक के ही नहीं, अपितु समस्त ब्रह्माण्ड में लाखों तथा करोड़ों वैज्ञानिकों के रचयिता हैं । जाम्बवान् ने आगे कहा, "आप न केवल सृष्टिकर्ता की सृष्टि करने वाले हैं, अपितु आप उन भौतिक तत्वों के भी सृष्टिकर्ता हैं, जिनका उपयोग तथाकथित रचयिता करते हैं ।" वैज्ञानिक भौतिक तत्वों तथा प्रकृति के नियमों का उपयोग करके कुछ अद्‌भुत कार्य करते हैं, किन्तु वास्तव में ये नियम तथा तत्व भी श्रीकृष्ण की सृष्टियाँ हैं । यही वास्तविक वैज्ञानिक

ज्ञान है । अल्पबुद्धि मनुष्य यह समझने का प्रयास नहीं करते हैं कि वैज्ञानिक के मस्तिष्क की रचना किसने की । वे तो वैज्ञानिक की अद्‌भुत रचना अथवा आविष्कार को देखने मात्र से सन्तुष्ट हो जाते हैं । जाम्बवान् ने आगे कहा "प्रिय भगवन्! समस्त भौतिक तत्वों को संयुक्त करने वाला काल भी आपका प्रतिनिधि है । आप ही वह परम काल हैं जिसमें समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि, पालन तथा अन्त में संहार होता है । न केवल काल तथा भौतिक तत्व अपितु सृष्टि के अंगों तथा लाभों का उपयोग करने वाले व्यक्ति भी आप के ही अंश हैं । अतएव जीव एक स्वतंत्र रचयिता नहीं है । सभी तथ्यों का उचित दृष्टिकोण से अध्ययन करने पर हम देख सकते हैं कि आप परम ईश्वर हैं तथा सबके स्वामी हैं । अतएव प्रिय भगवन्! मैं समझ सकता हूँ कि आप वही श्रीभगवान् हैं, जिनकी मैं श्रीरामचन्द्र के रूप में उपासना करता हूँ । मेरे भगवान् श्रीरामचन्द्र समुद्र पर पुल बाँधना चाहते थे और मैंने स्वयं देखा कि किस प्रकार भगवान् के दृष्टिपात-मात्र से समुद्र विचलित हो उठा । जब समस्त समुद्र में हलचल होने लगी तब समुद्र में निवास करने वाले सभी प्राणी जैसे हेल, घड़ियाल तथा तिमिंगिल मछली व्याकुल हो उठे । (समुद्र में तिमिंगिल मछली हेल जैसे विशालकाय जलजीवों को एक बार में निगल सकती है ।) इस प्रकार समुद्र मार्ग देने को बाध्य हो गया, जिससे कि रामचन्द्र जी लंका नामक द्वीप तक जा सकें (आजकल लंका को सीलोन माना जाता है) । कन्याकुमारी से श्रीलंका तक समुद्र पर इस पुल का निर्माण आज भी सर्वविदित है । पुल के निर्माण के पश्चात् रावण की राजधानी में चारों ओर आग लगा दी गई । रावण से युद्ध करते समय आपके तीक्ष्ण बाणों के द्वारा रावण के अंगों को छिन्नभिन्न कर दिया गया और उसका सिर धरती पर गिर पड़ा । अब मैं समझ सकता हूँ कि आप और कोई नहीं, अपितु मेरे स्वामी भगवान् श्रीरामचन्द्र ही हैं । ऐसी असीम शक्ति और किसी के पास नहीं है । अन्य कोई मुझे इस प्रकार नहीं पराजित कर सकता था ।"

जाम्बवान् की स्तुति तथा कथनों से श्रीकृष्ण सन्तुष्ट हो गए । उनके शरीर की पीड़ा शान्त करने के लिए श्रीकृष्ण जाम्बवान् के समस्त शरीर पर अपने हस्तकमल फेरने लगे । तत्काल ही जाम्बवान् उस भयंकर युद्ध की थकान से मुक्त हो गए । तदनन्दर भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें राजा जाम्बवान् कह कर सम्बोधित किया, क्योंकि सिंह नहीं अपितु वे ही वास्तव में वन के राजा थे । बिना शस्त्र के केवल अपने हाथ से जाम्बवान् ने सिंह का वध किया था । श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् को सूचित किया कि वे उनके पास स्यमन्तक मणि माँगने आए हैं, क्योंकि जब से स्यमन्तक मणि चोरी हुई है श्रीकृष्ण के नाम को अल्पबुद्धि लोग कलंक लगा रहे हैं । श्रीकृष्ण ने उन्हें स्पष्ट रूप से सूचित किया कि वे इस कलंक से मुक्ति प्राप्त करने के लिए ही यह मणि माँगने आए हैं । जाम्बवान् को सारी परिस्थिति समझ में आ गई और भगवान् को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने तत्काल न केवल स्यमन्तक मणि दी, अपितु अपनी विवाह ने योग्य कन्या जाम्बवती को भी श्रीकृष्ण को समर्पित कर दी ।

स्यमन्तक मणि श्रीकृष्ण को गुफा में प्रदान की गई तथा वहीं पर उनका जाम्बवती से विवाह हुआ । यद्यपि श्रीकृष्ण तथा जाम्बवान् के बीच अट्ठाइस दिनों तक युद्ध चला था, किन्तु द्वारकावासियों ने बारह दिनों तक गुफा के बाहर प्रतीक्षा की । तदनन्तर उन्होंने निश्चय किया कि कुछ अप्रिय घटना घट गई है । वास्तव में क्या हुआ था, इसे वे निश्चित रूप से नहीं समझ सके और अत्यन्त दुखित तथा भ्रमित होकर वे द्वारका नगरी वापस लौट गए । यह देख कर कि नागरिक श्रीकृष्ण के बिना वापस लौट आए हैं, श्रीकृष्ण की माँ देवकी, उनके पिता वसुदेव जी तथा उनकी पटरानी रुक्मिणी जी आदि परिवार के सभी सदस्य समस्त मित्रों, सम्बन्धियों तथा महल के वासियों सहित अत्यन्त दुखी हो गए । उन्हें श्रीकृष्ण से स्वाभाविक स्नेह था, अत: उनके अप्रकट होने के कारण वे सत्राजित को अपशब्द कहने लगे । वे देवी चन्द्रभागा की उपासना करने

गए और श्रीकृष्ण के वापस लौटने की प्रार्थना करने लगे । देवी द्वारका के नागरिकों की स्तुति से संतुष्ट हो गई और उन्होंने तत्काल उन्हें अपना आशीर्वाद दिया । उसी समय अपनी नवीन पत्नी जाम्बवती के साथ श्रीकृष्ण वहाँ प्रकट हुए और समस्त द्वारकावासी तथा श्रीकृष्ण के सम्बन्धी हर्षित हो उठे । द्वारकावासी इतने हर्षित थे जितना कोई किसी मृत सम्बन्धी के पुन: जीवित होने पर हर्षित होता है । द्वारकावासियों ने निष्कर्ष निकाल लिया था कि युद्ध के कारण श्रीकृष्ण किसी महान् कठिनाई में पड़ गए हैं और वे उनके वापस लौटने के प्रति लगभग निराश हो चुके थे । किन्तु जब उन्होंने देखा कि वास्तव में न केवल श्रीकृष्ण लौटे हैं, अपितु एक नई पत्नी के साथ आए हैं, तब उन्होंने तत्काल एक और उत्सव का आयोजन किया । तदनन्तर उग्रसेन जी ने समस्त महत्वपूर्ण एवं प्रमुख राजाओं की सभा बुलाई । उन्होंने सत्राजित को भी निमंत्रित किया और श्रीकृष्ण ने समस्त सभा के समक्ष जाम्बवान् से स्यमन्तक मणि को प्राप्त करने की घटना का वर्णन किया । श्रीकृष्ण वह बहुमूल्य मणि राजा सत्राजित को लौटा देना चाहते थे । किन्तु सत्राजित लजित था, क्योंकि उसने अनावश्यक रूप से श्रीकृष्ण पर कलंक लगाया था । उसने वह मणि अपने हाथ में ले ली । राजाओं तथा प्रमुखों की सभा के मध्य वह अपना सिर झुकाकर मौन रहा और मणि लेकर बिना कुछ कहे घर लौट गया । तदनन्तर वह विचार करने लगा कि श्रीकृष्ण की निन्दा करके उसने जो निन्दनीय कर्म किया था, उससे वह किस प्रकार मुक्त हो सकता है । उसे इस बात का ज्ञान था कि उसने श्रीकृष्ण के प्रति घोर अपराध किया है और उसे उस त्रुटि को सुधारने का एक ऐसा मार्ग ढूँढ़ना है, जिससे कि श्रीकृष्ण पुन: उससे प्रसन्न हो जाँए । राजा सत्राजित ने अपनी मूढ़ता से जो चिन्ता उत्पन्न कर ली थी, वह उससे मुक्ति पाने को उत्सुक था । भौतिक वस्तुओं और विशेष रूप से स्यमन्तक मणि के प्रति आकर्षण इस उत्सुकता का कारण था । श्रीकृष्ण के प्रति उसने जो अपराध किया था उससे सत्राजित वास्तव में अत्यन्त दुखी था और वह

वास्तव में भूल सुधार करन । चाहता था । श्रीकृष्ण ने उसे अन्दर से सदुद्धि दी और सत्राजित ने श्रीकृष्ण को स्यमन्तक मणि तथा अपनी पुत्री सत्यभामा दोनों ही देने का निश्चय किया । इस स्थिति का अन्त करने का और कोई विकल्प नहीं था, अतएव उसने अपनी सुन्दर पुत्री तथा श्रीकृष्ण के विवाह-संस्कार का प्रबन्ध किया । उसने श्रीभगवान् को मणि तथा अपनी पुत्री सत्यभामा दोनों ही दान में दी । सत्यभामा इतनी रूपवती तथा गुणवती थी कि अनेक राजाओं ने उसका हाथ माँगा था, किन्तु सत्राजित एक योग्य जामाता की प्रतीक्षा कर रहा था । श्रीकृष्ण की अनुकम्पा से उसने अपनी पुत्री उन्हें देने का निश्चय किया । भगवान् श्रीकृष्ण ने सत्राजित से प्रसन्न होकर उसे सूचित किया कि उन्हें स्यमन्तक मणि की कोई आवश्यकता नहीं है । उन्होंने कहा, "जैसे तुमने इसे रखा था, उसी भाँति इसे मन्दिर में रहने देना ही उत्तम है । तब हममें से प्रत्येक को इस मणि का लाभ प्राप्त होगा । द्वारका नगर में मणि की उपस्थिति के कारण यहाँ दुर्भिक्ष अथवा महामारी, अत्यधिक ताप एवं शीत से होने वाले उत्पात नहीं होंगे ।"

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "स्यमन्तक मणि की कथा" नामक छप्पनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 57
सत्राजित एवं शतधन्वा का उद्धार

अक्रूर जी ने हस्तिनापुर की यात्रा की और वापस आ कर श्रीकृष्ण को पाण्डवों की दशा के विषय में जानकारी दी, उसके उपरान्त और भी घटनाएँ घटित हुई । पाण्डवों को लाख के बने हुए घर में स्थानान्तरित कर दिया गया और बाद में उसमें आग लगा दी गई । सबने सोचा कि

अपनी माता सहित पाण्डवों की मृत्यु हो गई । भगवान् कृष्ण तथा बलराम जी के पास भी यह जानकारी भेज दी गई । परस्पर मंत्रणा करके अपने सम्बन्धियों के प्रति सहानुभूति प्रदर्शित करने के लिए उन्होंने हस्तिनापुर जाने का निश्चय किया । श्रीकृष्ण तथा बलराम जी को निश्चित रूप से ज्ञात था कि उस भयंकर अग्नि में पाण्डवों की मृत्यु नहीं हुई होगी । किन्तु फिर भी वे प्रियजनों की मृत्यु के शोक में सम्मिलित होने के लिए हस्तिनापुर जाना चाहते थे । हस्तिनापुर पहुँचने पर श्रीकृष्ण और बलराम भीष्मदेव से भेंट करने गए, क्योंकि वे कुरुवंश के प्रमुख थे । तदनन्तर उन्होंने विदुर, गान्धारी तथा द्रोण से भेंट की । कुरुवंश के अन्य सदस्य दुखी नहीं थे, क्योंकि वे स्वयं चाहते थे कि पाण्डवों तथा उनकी माता की मृत्यु हो जाए । किन्तु भीष्म सहित परिवार के कुछ अन्य सदस्य इस घटना से वास्तव में अत्यधिक दुखी थे । वास्तविक स्थिति को प्रकट न करते हुए, श्रीकृष्ण तथा बलराम जी ने उन्हीं के समान शोक व्यक्त किया ।

जब श्रीकृष्ण तथा बलराम जी द्वारका नगर से दूर थे, तब सत्राजित से स्यमन्तक मणि हरण करने का एक षडयंत्र रचा गया । शतधन्वा मुख्य षडयंत्रकारी था । अन्य राजाओं सहित शतधन्वा सत्राजित की सुन्दरी कन्या सत्यभामा से विवाह करना चाहता था । सत्राजित ने विभिन्न राजाओं को यह वचन दिया था कि वह अपनी सुन्दरी पुत्री का कन्यादान उन्हें करेगा । किन्तु बाद में निर्णय परिवर्तित हो गया और स्यमन्तक मणि सहित सत्यभामा श्रीकृष्ण को समर्पित कर दी गई । अपनी पुत्री के साथ मणि भी दान करने की सत्राजित की कोई इच्छा नहीं थी । श्रीकृष्ण को उसकी मानसिक स्थिति का ज्ञान था, अतएव उन्होंने उसकी पुत्री को स्वीकार कर लिया, किन्तु मणि लौटा दी । श्रीकृष्ण से मणि वापस प्राप्त करने के उपरान्त वह सन्तुष्ट था और सदैव उसे अपने साथ रखता था । किन्तु श्रीकृष्ण तथा बलराम जी की अनुपस्थिति में अनेक लोगों ने सत्राजित से मणि छीनने का षडयंत्र रचा । उन षडयंत्र करने वालों में

भगवान् कृष्ण के भक्त अक्रूर जी तथा कृतवर्मा भी सम्मिलित थे । अक्रूर जी तथा कृतवर्मा मणि को श्रीकृष्ण के लिए प्राप्त करना चाहते थे और इसी कारण वे षडयंत्र में सम्मिलित हुए । उन्हें ज्ञात था कि श्रीकृष्ण वह मणि प्राप्त करना चाहते हैं, किन्तु सत्राजित ने उसे उचित रीति से नहीं दिया था । अन्य लोग षडयंत्र में इसलिए सम्मिलित हुए, क्योंकि वे सत्यभामा का हाथ न मिलने के कारण निराश थे । उनमें से कुछ लोगों ने सत्राजित का वध करके मणि हर लेने के लिए शतधन्वा को उकसाया ।

साधारणतया यह प्रश्न उठाया जाता है कि अक्रूर जी जैसे महान् भक्त इस षडयंत्र में क्यों सम्मिलित हुए? यद्यपि कृतवर्मा भगवान् के भक्त थे, तो भी वे क्यों षडयंत्र में सम्मिलित हुए? जीव गोस्वामी तथा उन जैसे अन्य महाजनों ने उत्तर दिया है कि यद्यपि अक्रूर जी महान् भक्त थे, तथापि वृन्दावन के निवासियों ने उन्हें शाप दिया था । अक्रूर जी ने उनकी भावनाओं को चोट पहुँचाई थी, अतएव पापियों द्वारा घोषित षडयंत्र में सम्मिलित होने के लिए उन्हें बाध्य होना पड़ा । उसी तरह कृतवर्मा एक भक्त थे, किन्तु कंस से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण वे भी पाप से दूषित थे और इसी कारण वे भी षडयंत्र में सम्मिलित हुए ।

सभी षडयंत्रकारियों के उकसाने पर एक रात्रि शतधन्वा ने सत्राजित के घर में प्रवेश किया और सोते हुए सत्राजित का वध कर दिया । शतधन्वा निन्दनीय पापी था । यद्यपि अपने पापों के कारण उसका जीवन अधिक दिनों का नहीं था, तथापि उसने घर पर सोते हुए सत्राजित का वध करने का निश्चय किया । जब सत्राजित का वध करने के लिए उसने घर में प्रवेश किया तब समस्त स्त्रियाँ उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगीं । किन्तु उनके प्रबल विरोध करने पर भी शतधन्वा ने बिना असमंजस के । सत्राजित की उसी भाँति निर्दयता से हत्या कर दी, जिस प्रकार बधिक (कसाई)

बधशाला में पुश की हत्या करता है । श्रीकृष्ण घर से अनुपस्थित थे, अत: सत्राजित के वध की रात्रि उनकी पत्नी सत्यभामा पितृगृह में उपस्थित थीं । सत्राजित के मृत शरीर को तत्काल श्मशान नहीं ले जाया गया, क्योंकि सत्यभामा श्रीकृष्ण से मिलने हस्तिनापुर जाना चाहती थीं । अतएव सत्राजित के शरीर को तेल के पात्र में सुरक्षित रखा गया, जिससे श्रीकृष्ण आकर सत्राजित के मृत शरीर को देख सकें और शतधन्वा के विरुद्ध उचित कार्यवाही करें । सत्यभामा ने अपने पिता की भयंकर मृत्यु के विषय में श्रीकृष्ण को जानकारी देने के लिए तत्काल हस्तिनापुर के लिए प्रस्थान 御ग1 जब सत्यभामा ने श्रीकृष्ण को उनके श्वसुर की मृत्यु की विषय में सूचित किया तब वे सामान्य मानव के समान विलाप करने लगे । फिर उनका गहन दुख एक अद्‌भुत वस्तु है । कर्म और कर्म के फल से भगवान् श्रीकृष्ण का कोई प्रयोजन नहीं है, किन्तु वे एक मानव का अभिनय कर रहे थे, अतएव उन्होंने सत्यभामा के पिता की मृत्यु पर अपनी पूर्ण सहानुभूति अभिव्यक्त की । अपने श्वसुर की मृत्यु के विषय में सुन कर उनके नयन अश्रुओं से पूर्ण हो गए । वे इस प्रकार विलाप करने लगे, "ओह! कितनी दुखद घटना हो गई" इस प्रकार अपनी पत्नी सत्यभामा सहित श्रीकृष्ण तथा बलराम जी तत्काल द्वारका लौट आए और शतधन्वा का वध करने तथा मणि को हर लेने की योजना बनाने लगे । यद्यपि शतधन्वा नगर का एक शक्तिशाली व्यक्ति था, तथापि वह श्रीकृष्ण से अत्यधिक भयभीत था । इस प्रकार श्रीकृष्ण के आगमन से उसके भय में और वृद्धि हो गई । अपने वध की श्रीकृष्ण की योजना को समझ कर वह तत्काल कृतवर्मा का आश्रय लेने गया । किन्तु जब उसने कृतवर्मा से आश्रय देने की प्रार्थना की तब उन्होंने कहा, "मैं श्रीकृष्ण तथा बलराम जी को कभी-भी अप्रसन्न नहीं कर सकूंगा, क्योंकि वे सामान्य व्यक्ति नहीं हैं । वे श्रीभगवान् हैं । जिसने श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के प्रति अपराध किया हो, मृत्यु से उसकी रक्षा कौन कर सकता है? उनके क्रोध से किसी की रक्षा नहीं की जा सकती है ।" कृतवर्मा ने आगे कहा कि यद्यपि कंस

शक्तिशाली था तथा अनेक असुर उसके सहायक थे, तथापि श्रीकृष्ण के कोप से उसकी रक्षा नहीं हो सकी । जरासन्ध के विषय में क्या कहें, जिसे श्रीकृष्ण ने अट्ठारह बार पराजित किया था और प्रत्येक बार उसे युद्ध से निराश लौटना पड़ा था । जब कृतवर्मा ने सहायता करना अस्वीकार कर दिया तब शतधन्वा अक्रूर जी के पास गया और उनसे सहायता की याचना की । अक्रूर जी ने भी उत्तर दिया "श्रीकृष्ण तथा बलराम जी दोनों ही स्वयं भगवान् हैं और जिसे भी उनकी असीम शक्ति का ज्ञान है, वह कभी उन्हें अप्रसन्न करने अथवा उनसे युद्ध करने का साहस नहीं करेगा ।" उन्होंने शतधन्वा को आगे सूचित किया, "श्रीकृष्ण और बलराम जी इतने शक्तिशाली हैं कि इच्छा-मात्र से वे समस्त सृष्टि की रचना कर रहे हैं, उसका पालन और संहार कर रहे हैं । यद्यपि समस्त सृष्टि पूर्णरूपेण श्रीकृष्ण के नियंत्रण में है, तथापि दुर्भाग्यवश जो व्यक्ति भ्रम से भ्रमित हो गए हैं, वे उनकी शक्ति को नहीं समझ सकते हैं ।" उन्होंने उदाहरण दिया कि सात वर्ष की आयु में भी श्रीकृष्ण ने गोवर्धन पर्वत को उठा लिया था और जिस प्रकार कोई बालक छोटी सी छतरी लिए रहता है, वैसे ही उन्होंने इस पर्वत को सात दिन तक उठाए रखा । अक्रूर जी ने शतधन्वा को स्पष्ट रूप से सूचित किया कि वे सदैव श्रीकृष्ण को सादर प्रणाम करेंगे । श्रीकृष्ण समस्त निर्मित वस्तुओं के परमात्मा हैं और समस्त कारणों के आदि कारण हैं । जब अक्रूर जी ने भी शतधन्वा को आश्रय देना अस्वीकार कर दिया तब उसने स्यमन्तक मणि अक्रूर जी के हाथों में देने का निश्चय किया । तदनन्तर तीव्र गति से निरन्तर चार सौ मील तक दौड़ सकने वाले एक घोड़े पर सवार हो कर वह नगर से भाग गया । जब श्रीकृष्ण और बलराम जी को शतधन्वा के पलायन की जानकारी दी गई, तब वे गरुड़ के चित्र से अंकित ध्वज वाले अपने रथ पर सवार हो गए और तत्काल उसका पीछा किया । श्रीकृष्ण शतधन्वा से विशेषरूप से कुद्ध थे और उसका वध करना चाहते थे, क्योंकि उसने एक श्रेष्ठ पुरुष सत्राजित का वध किया था । सत्राजित श्रीकृष्ण के श्वसुर थे और शास्त्रों

का आदेश है कि जो कोई भी गुरुजनों के प्रति द्रोह करता है, अर्थात् गुरुद्रोही व्यक्ति को उसके अपराध के अनुरूप अवश्य ही दण्ड दिया जाना चाहिए । शतधन्वा ने श्रीकृष्ण के श्वसुर का वध किया था, अतएव श्रीकृष्ण ने किसी भी भाँति उसका वध करने का दृढ़ निश्चय किया था । शतधन्वा का अश्व हाँफ उठा और मिथिला में एक उपवन के समीप मर गया । ओड़े की सहायता न मिलने से शतधन्वा तीव्रगति से दौड़ने लगा । शतधन्वा के प्रति यायोचित व्यवहार करने के लिए श्रीकृष्ण तथा बलराम जी भी रथ से उतर गए और दिल ही शतधन्वा का पीछा करने लगे । जब शतधन्वा तथा श्रीकृष्ण दोनों ही पैदल भाग रहे थे, तभी श्रीकृष्ण ने अपने चक्र से शतधन्वा का शीश काट दिया । शतधन्वा का वध होने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उसके वस्त्रों में स्यमन्तक मणि ढूँढ़ी, किन्तु मणि उन्हें नहीं मिली । तब वे बलरामजी के समीप लौट गए और कहा, "हमने इस व्यक्ति का व्यर्थ में ही वध किया, क्योंकि मणि उसके पास नहीं मिली ।" श्रीबलराम ने सुझाव दिया, "हो सकता है कि मणि द्वारका में किसी और व्यक्ति के संरक्षण में रखी गई हो । अतएव यही श्रेष्ठ होगा कि तुम द्वारका लौट जाओ और मणि को ढूँढ़ निकालो ।" श्रीबलराम ने कुछ दिन तक मिथिला नगर में रहने की इच्छा व्यक्त की, क्योंकि मिथिला के राजा उनके घनिष्ठ मित्र थे । अतएव श्रीकृष्ण द्वारका लौट गए और बलराम जी ने मिथिला नगर के लिए प्रस्थान किया । जब मिथिला के राजा ने अपने नगर में श्रीबलराम का आगमन सुना, तो वह अत्यन्त प्रसन्न हो गए और अत्यधिक आदर-सत्कारपूर्वक उन्होंने भगवान् का स्वागत किया । बलराम जी को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने उन्हें अनेक मूल्यवान उपहार अर्पित किए । इस समय मिथिला के राजा महाराज जनक के सम्मानित अतिथि के रूप में बलराम जी ने अनेक वर्षों तक नगर में निवास किया । इसी अवधि में धृतराष्ट्र के ज्येष्ठ पुत्र दुर्योधन को अवसर प्राप्त हुआ और उसने बलराम जी के पास आकर उनसे गदायुद्ध की कला की शिक्षा प्राप्त की । शतधन्वा का वध करने के पश्चात् श्रीकृष्ण द्वारका लौट गए

और अपनी पत्नी सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए उन्होंने उनके पिता के हत्यारे शतधन्वा की मृत्यु की जानकारी दी, किन्तु उन्होंने सत्यभामा को यह भी बताया कि मणि उसके पास नहीं मिली । तदनन्तर धार्मिक विधि-विधानों के अनुसार सत्यभामा सहित श्रीकृष्ण ने अपने श्वसुर की मृत्यु के सम्मान में अनेक प्रकार के संस्कार सम्पन्न किए । उस संस्कार में परिवार के सभी मित्र और सम्बन्धी सम्मिलित हुए । सत्राजित के वध के षडयंत्र के प्रमुख सदस्य अक्रूर जी तथा कृतवर्मा थे और उन्होंने ही शतधन्वा को उसके वध के लिए प्रेरणा दी थी । किन्तु जब उन्हें श्रीकृष्ण के हाथों शतधन्वा के वध की जानकारी प्राप्त हुई और जब उन्होंने सुना कि श्रीकृष्ण द्वारका लौट आए हैं, तब दोनों ने तत्काल द्वारका त्याग दिया । नगर से अक्रूर जी के अनुपस्थित होने के कारण द्वारका के नागरिकों को आशंका होने लगी कि अब महामारी फैलेगी और प्राकृतिक प्रकोप होगे । यह एक प्रकार का अन्धविश्वास था, क्योंकि जब भगवान् श्रीकृष्ण उपस्थित हों तो महामारी, दुर्भिक्ष अथवा प्राकृतिक उपद्रव नहीं हो सकते थे । किन्तु अक्रूर जी की अनुपस्थिति में द्वारका में कुछ उपद्रव हुए । एक बार वाराणसी की सीमा में काशी के प्रदेश में भयानक सूखा पड़ा और एकदम वर्षा नहीं हुई । उस समय काशी के राजा ने गादिनी नामक अपनी पुत्री का विवाह अक्रूर जी के पिता श्वफल्क के साथ निश्चित किया । काशी के राजा ने एक ज्योतिषी की सलाह पर ऐसा किया था । वास्तव में ऐसा हुआ कि श्वफल्क के साथ राजकन्या का विवाह होने के पश्चात् उस प्रदेश में पर्याप्त वर्षा हुई । श्वफल्क की इस शक्ति के कारण उनके पुत्र अक्रूर जी भी उन्हीं के समान शक्तिशाली समझे जाते थे । लोगों का ऐसा विश्वास था कि जहाँ कहीं भी अक्रूर जी अथवा उनके पिता रहेंगे, वहाँ पर अकाल अथवा सूखा आदि कोई भी प्राकृतिक उपद्रव नहीं होंगे । जहाँ पर अकाल, महामारी अथवा अत्यधिक शीत अथवा गर्मी नहीं होती है और जहाँ प्रजा मानसिक, आध्यात्मिक तथा शारीरिक रूप से सुखी समझी जाती है, वहाँ जैसे ही कोई उपद्रव होता है, लोग उसका

कारण नगर से किसी मांगलिक व्यक्ति की अनुपस्थिति को समझते हैं । अतएव एक जनश्रुति फैली हुई थी कि अक्रूर जी की अनुपस्थिति के कारण अशुभ घटनाएँ हो रही हैं । अक्रूर जी के प्रस्थान के पश्चात् नगर के कुछ वयोवृद्ध सदस्यों ने यह भी देखा कि स्यमन्तक मणि की अनुपस्थिति के कारण भी अशुभ लक्षण दीख रहे हैं । जब भगवान् श्रीकृष्ण ने लोगों की फैलाई हुई यह जुनश्रुति सुनी, तब उन्होंने काशी राज्य से अक्रूर जी को बुलवाने का निश्चय किया । अक्रूर जी श्रीकृष्ण के चाचा थे, अतएव जब वे द्वारका लौटे तब भगवान् श्रीकृष्ण ने सर्वप्रथम गुरुजन के योग्य रीति से उनका स्वागत किया । श्रीकृष्ण सबके हृदय में निवास करने वाले परमात्मा हैं, उन्हें सबके मन की बात ज्ञात रहती है । उन्हें शतधन्वा के साथ अक्रूर जी के द्वारा किए गए षडयंत्र से सम्बन्धित प्रत्येक घटना का ज्ञान था, अतएव मुस्कराते हुए उन्होंने अक्रूर जी को सम्बोधित किया ।

अक्रूर जी को तेजस्वी नरों में प्रमुख कह कर सम्बोधित करते हुए श्रीकृष्ण ने कहा, "प्रिय चाचा! मुझे पहले से ही ज्ञात है कि शतधन्वा ने स्यमन्तक मणि आपके पास छोड़ी थी । सम्प्रति स्यमन्तक मणि का कोई उत्तराधिकारी नहीं है, क्योंकि राजा सत्राजित का कोई पुत्र नहीं है । उसकी पुत्री सत्यभामा इस मणि के लिए उत्सुक नहीं है, किन्तु उसका होने वाला पुत्र, सत्राजित का दौहित्र (नाती) होगा । उत्तराधिकार के विधि-विधानों के सम्पादन के पश्चात् वही इस मणि का नियमानुकूल उत्तराधिकारी होगा ।" भगवान् कृष्ण ने इस कथन से संकेत किया कि सत्यभामा उस समय गर्भवती थीं और उनका पुत्र ही मणि का वास्तविक अधिकारी होगा और वह निश्चय ही मणि को अक्रूर जी से ले लेगा ।

श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "यह मणि इतनी शक्तिशाली है कि कोई सामान्य मानव इसे रखने में सफल नहीं होता है । मुझे ज्ञात है कि आप अत्यन्त पुण्यात्मा हैं, अतएव मणि को आपके पास रखे जाने में मुझे कोई आपत्ति

नहीं है । केवल एक कठिनाई है और वह यह है कि मेरे ज्येष्ठ भ्राता श्रीबलराम को मेरी इस बात पर विश्वास नहीं है कि मणि आपके पास है । अतएव हे विशाल हृदय! मेरी आपसे विनती है कि आप मेरे अन्य सम्बन्धियों के समक्ष वह मणि मुझे दिखा दें जिससे कि उन्हें शान्ति मिल जाए । आप यह अस्वीकार नहीं कर सकते हैं कि मणि आपके पास नहीं है, क्योंकि विभिन्न प्रकार की जनश्रुतियों से हमें ज्ञात हुआ है कि आपके ऐश्वर्य में वृद्धि हुई है और आप ठोस स्वर्ण से निर्मित वेदी पर यज्ञ करते हैं ।" उस मणि के गुण सर्वविदित थे-जहाँ कहीं भी वह मणि रहती थी, वह अपने रखने वाले के लिए प्रतिदिन लगभग नौ मन सोना उत्पन्न करती थी । अक्रूर जी को उसी अनुपात में स्वर्ण प्राप्त हो रहा था और वह यज्ञों के सम्पादन के समय अत्यन्त उदारता से स्वर्ण वितरित कर रहे थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने अक्रूर जी के पास स्यमन्तक मणि होने के पक्ष में प्रमाण के रूप में उनके मुक्तहस्त से स्वर्ण खर्च करने का उदाहरण दिया ।

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने मैत्रीपूर्ण शब्दों तथा मधुर भाषा में अक्रूर जी को वास्तविक तथ्य समझा दिया तथा अक्रूर जी समझ गए कि श्रीकृष्ण से कुछ भी गुप्त नहीं रखा जा सकता है, तब वे बहुमूल्य मणि ले आए । एक वस्त्र से आच्छादित तथा सूर्य के समान चमकती हुई मणि लाकर अक्रूर जी ने उसे श्रीकृष्ण के समक्ष प्रस्तुत किया । भगवान् कृष्ण ने स्यमन्तक मणि को अपने हाथ में ले लिया और वहाँ उपस्थित अपने सभी सम्बन्धियों तथा मित्रों को वह मणि दिखाई । तत्पश्चात् उन्होंने वह मणि उनकी उपस्थिति में ही पुन: अक्रूर जी को लौटा दी जिससे कि उन्हें ज्ञात रहे कि वास्तव में अकूर जी द्वारा वह मणि द्वारका नगर में ही रखी जा रही है स्यमन्तक मणि की यह कथा अत्यन्त महत्वपूर्ण है । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि स्यमन्तक मणि की इस कथा का जो श्रवण करता है, इसका वर्णन करता है, अथवा केवल स्मरण करता

है, वह सभी प्रकार के कलंक तथा पापों से मुक्त हो जाएगा और इस प्रकार शान्ति की सर्वोच्च पूर्णता की स्थिति को प्राप्त करेगा ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "सत्राजित और शतधन्वा का उद्धार" नामक सत्तावनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 58
श्रीकृष्ण का पाँच रानियों से विवाह

चारों ओर जनश्रुति फैली हुई थी कि धृतराष्ट्र की योजना के अन्तर्गत पाँचों पाण्डव भाइयों की अपनी माता सहित अग्नि-दुर्घटना में मृत्यु हो गई है । वे एक लाक्षागृह में रहते थे, जिसमें आग लग जाने के फलस्वरूप यह दुर्घटना हुई थी । किन्तु उसके पश्चात् पाँचों भाई द्रौपदी के स्वयंवर के समय पहचाने गए थे, अतएव पुन: एक अन्य जनश्रुति फैल गई कि पाण्डव तथा उनकी माता मृत नहीं हैं । यह पहले तो जनश्रुति ही रही, किन्तु यथार्थ में यही वास्तविकता थी और वे अपनी राजधानी हस्तिनापुर लौटे, तो लोगों ने उन्हें प्रत्यक्ष देखा । जब यह समाचार श्रीकृष्ण और बलराम जी ने सुना, तो श्रीकृष्ण ने उनसे व्यक्तिगत रूप से भेंट करने की इच्छा प्रकट की, अतएव श्रीकृष्ण ने हस्तिनापुर जाने का निश्चय किया ।

इस बार श्रीकृष्ण ने एक राजा की भाँति अपने सेनापति युयुधान और अन्य अनेक सैनिकों सहित, राजसी ठाट-बाट से हस्तिनापुर की यात्रा की । उन्हें वास्तव में नगर में आने का निमंत्रण नहीं दिया गया था, किन्तु फिर भी अपने महान् भक्तों के प्रति अपने स्नेह के कारण वे पाण्डवों से भेंट करने गए । श्रीकृष्ण बिना पूर्वसूचना के पाण्डवों के यहाँ गए । भगवान् के दर्शन करते ही पाण्डव बन्धु अपने-अपने आसनों से उठ खड़े हुए ।

श्रीकृष्ण को मुकुन्द कहा जाता है, क्योंकि जैसे ही कोई श्रीकृष्ण के निरन्तर सम्पर्क में आता है अथवा पूर्ण मुक्त भावनामृत में उनके दर्शन करता है, वैसे ही वह तत्काल समस्त भौतिक चिन्ताओं से मुक्त हो जाता है । केवल यही नहीं, उसे तत्काल ही आध्यात्मिक आनन्द की प्राप्ति हो जाती है ।

श्रीकृष्ण का स्वागत करके पाण्डव अत्यन्त उत्साहित हो उठे, जैसे कोई अचेतनावस्था से अथवा प्राणहानि के पश्चात् पुनः चेतन हो जाए । जब कोई अचेतन रहता है, तब उसकी इन्द्रियाँ तथा शरीर के विभिन्न अंग क्रियाशील नहीं होते हैं, किन्तु जैसे ही उसे पुन: चेतना प्राप्त होती है, तत्काल ही उसकी इन्द्रियाँ क्रियाशील हो उठती हैं । उसी भाँति पाण्डवों ने श्रीकृष्ण का इस प्रकार स्वागत किया, मानो उन्हें पुनः चेतना प्राप्त हुई हो और इस प्रकार वे अत्यन्त उत्साहित हो गए । भगवान् श्रीकृष्ण ने उनमें से प्रत्येक का आलिंगन किया और श्रीभगवान् के आलिंगन से वे सभी भौतिक दूषणों के फल से तत्काल मुक्त हो गए, अतएव वे आध्यात्मिक आनन्द में मुस्करा रहे थे । भगवान् श्रीकृष्ण के मुख का दर्शन करके प्रत्येक जन दिव्य रूप से सन्तुष्ट हो गया ।

यद्यपि श्रीकृष्ण श्रीभगवान् हैं, तथापि वे सामान्य मानव का अभिनय कर रहे थे, अतएव उन्होंने तत्काल ही युधिष्ठिर तथा भीम का चरण स्पर्श किया, क्योंकि वे दोनों उनकी बुआ के बड़े पुत्र थे । अर्जुन ने सम आयु के मित्र की भाँति श्रीकृष्ण का आलिंगन किया तथा नकुल और सहदेव नामक दोनों छोटे भाइयों ने उनका आदर करने के लिए श्रीकृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श किया । पाण्डवों तथा भगवान् श्रीकृष्ण के पद के योग्य, सामाजिक शिष्टाचार के अनुसार सौहार्द-पूर्ण आदानप्रदान के पश्चात् श्रीकृष्ण को उच्च आसन दिया गया । जब वे सुखपूर्वक बैठ गए तब अपनी स्वाभाविक नारीसुलभ शोभा से अत्यन्त लावण्यमयी किशोरी और नवविवाहिता द्रौपदी भगवान् कृष्ण के समक्ष सादर प्रणाम करने

आई । श्रीकृष्ण के साथ हस्तिनापुर आए हुए यादवों का भी अत्यन्त सम्मानपूर्वक स्वागत किया गया, विशेषरूप से सात्यकि अथवा युयुधान को उत्तम आसन दिया गया । इस भाँति जब सब लोग उचित आसन पर बैठ गए तब पाँचों भाइयों ने भगवान् श्रीकृष्ण के समीप अपना आसन ग्रहण किया । पाँचों भाइयों से भेंट करने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण पाण्डवों की माता तथा अपनी बुआ श्रीमती कुन्ती देवी से स्वयं भेंट करने गए । अपनी बुआ के प्रति आदर प्रदर्शित करते हुए श्रीकृष्ण ने उनका चरणस्पर्श भी किया । कुन्तीदेवी के नेत्र भीग गए और अत्यन्त प्रेम से उन्होंने भावनापूर्वक भगवान् श्रीकृष्ण का आलिंगन किया ।

तत्पश्चात् उन्होंने श्रीकृष्ण से अपने पितृकुल के सदस्यों-जैसे अपने भाई वसुदेव तथा उनकी पत्नी और परिवार के अन्य सदस्यों का कुशल-समाचार पूछा । उसी भाँति श्रीकृष्ण ने भी अपनी बुआ से पाण्डव परिवार की कुशलता के विषय में प्रश्न किए । यद्यपि कुन्ती देवी का श्रीकृष्ण से पारिवारिक सम्बन्ध था, तथापि उनसे मिलने के पश्चात् उन्हें तत्काल ज्ञात हो गया कि वे श्रीभगवान् थे । उन्हें अपने जीवन के विगत संकटों का स्मरण हो आया और यह भी स्मरण हुआ कि किस प्रकार श्रीकृष्ण की कृपा से पाण्डवों तथा उनकी माता की रक्षा हुई थी । उन्हें भली-भाँति ज्ञात था कि धृतराष्ट्र एवं उनके पुत्रों के द्वारा नियोजित अग्निकाण्ड से उनकी रक्षा श्रीकृष्ण की कृपा के अतिरिक्त और कोई भी नहीं कर सकता था । उन्होंने अवरुद्ध कण्ठ से श्रीकृष्ण के समक्ष अपने जीवन का विगत इतिहास कहना प्रारम्भ किया । श्रीमती कुन्ती ने कहा, "प्रिय श्रीकृष्ण! मुझे वह दिवस स्मरण है, जब तुमने मेरे भाई अक्रूर जी को हमारे विषय में सूचना एकत्र करने के लिए भेजा था । इसका अर्थ यह है कि तुम सदैव ही सहज भाव से हमारा स्मरण करते हो । जब तुमने अक्रूर जी को भेजा तब मैं समझ गई कि हमारे संकट में पड़ने की कोई सम्भावना नहीं है । जब तुमने अक्रूर जी को हमारे पास भेजा तभी से हमारे जीवन में सौभाग्य

का प्रारम्भ हुआ । तबसे मुझे विश्वास हो गया है कि हम बिना रक्षक के नहीं हैं । हमारे परिवार के सदस्य कुरुजन भले ही हमें अनेक संकटपूर्ण परिस्थितियों में डालें, किन्तु मुझे विश्वास है कि तुम हमें स्मरण रखते हो और तुम सदैव सुरक्षित तथा सकुशल रखते हो । तुम्हारा केवल चिन्तन करने वाले भक्त सदैव समस्त प्रकार के भौतिक संकटों से मुक्त रहते हैं, फिर हमारा तो कहना ही क्या, जिनका तुम स्वयं व्यक्तिगत रूप से स्मरण करते हो! अतएव प्रिय श्रीकृष्ण! दुर्भाग्य का तो कोई प्रश्न ही नहीं, तुम्हारी अनुकम्पा से हम सदैव शुभ-स्थिति में रहते हैं । किन्तु तुमने हम पर विशेष अनुग्रह किया है, इससे लोगों को यह नहीं सोचना चाहिए कि तुम कुछ लोगों के प्रति पक्षपात करते हो और दूसरों की ओर ध्यान नहीं देते । तुम ऐसा कोई भेदभाव नहीं करते हो । न तो कोई तुम्हारा प्रिय है और न तो कोई तुम्हारा शत्रु है । श्रीभगवान् के रूप में तुम सबके प्रति समभाव रखते हो और प्रत्येक व्यक्ति तुम्हारी विशिष्ट दया का लाभ उठा सकता है । तथ्य यह है कि, यद्यपि तुम सबके प्रति समभाव रखते हो, तथापि तुम्हारी विशेष रुचि सदैव तुम्हारा चिन्तन करने वाले भक्तों की ओर होती है । भक्तों का तुमसे प्रेम-बन्धन का सम्बन्ध है । वे तुमको क्षणमात्र के लिए भी विस्मृत नहीं कर सकते हैं । तुम प्रत्येक जीव के हृदय में उपस्थित हो, किन्तु भक्त सदैव तुम्हारा स्मरण करते हैं । इस कारण तुम भी उसी के अनुरूप व्यवहार करते हो । यद्यपि माता का सभी सन्तानों के प्रति स्नेह होता है फिर भी पूर्णरूप से उसी पर निर्भर रहने वाली सन्तान की वह विशेष देखभाल करती है । प्रिय श्रीकृष्ण! मुझे निश्चित रूप से ज्ञात है कि प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में निवास करते हुए तुम अपने अनन्य भक्तों के लिए सदैव शुभ परिस्थितियों का निर्माण करते रहते हो ।" तदुपरान्त राजा युधिष्ठिर ने भी श्रीभगवान् तथा प्राणिमात्र के सार्वभौम सखा रूप श्रीकृष्ण की स्तुति की । किन्तु श्रीकृष्ण पाण्डवों की विशेष देख-भाल कर रहे थे, अतएव राजा युधिष्ठिर ने कहा, "प्रिय श्रीकृष्ण! हमें ज्ञात नहीं कि पूर्वजन्मों में हमने कौन से पुण्यकर्म किए थे, जिसके फलस्वरूप आप

हम पर इतने दयालु तथा अनुग्रहपूर्ण हैं । हमें भली-भाँति ज्ञात है कि आपको प्राप्त करने की कामना से सदैव ध्यान में रत रहने वाले महान् योगी भी सरलता से ऐसी कृपा नहीं प्राप्त करते हैं । वे आपकी व्यक्तिगत देखरेख भी नहीं प्राप्त कर सकते हैं । मुझे समझ में नहीं आता है कि आप हम पर इतने कृपालु क्यों हैं? हम योगी नहीं वरन् हम भौतिक दूषणों के प्रति आसक्त हैं । हम राजनीति अर्थात् सांसारिक प्रपंचों में रचने-पचने वाले गृहस्थ हैं । मुझे ज्ञात नहीं है कि आप हम पर इतने दयालु क्यों हैं?" राजा युधिष्ठिर के अनुरोध पर श्रीकृष्ण ने वर्षाऋतु के चार माह हस्तिनापुर में व्यतीत करना स्वीकर कर लिया । वर्षाऋतु के चार मास चातुर्मास्य कहे जाते हैं । इस अवधि में सामान्यतया भ्रमणशील उपदेशक और ब्राह्मण जन किसी विशेष स्थान पर रुक कर कठोर विधि-विधानों के अनुसार जीवन-यापन करते हैं । यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण समस्त विधि-विधानों से परे हैं, तथापि पाण्डवों के प्रति स्नेह के कारण उन्होंने हस्तिनापुर में रहना स्वीकार किया । श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर में निवास का लाभ उठाते हुए नगर के सभी नागरिकों ने प्राय: श्रीकृष्ण के दर्शन का विशेषाधिकार प्राप्त किया । इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन-मात्र से वे दिव्य आनन्द में मग्न हो गए । जब श्रीकृष्ण पाण्डवों के साथ निवास कर रहे थे, तभी एक दिन वे और अर्जुन शिकार के लिए वन में जाने को तत्पर हुए । हनुमान के चित्र से अंकित पताका वाले रथ पर वे दोनों बैठ गए । अर्जुन का विशेष रथ सदैव हनुमान जी के चित्र से अंकित रहता है, अतएव उनका नाम कपिध्वज भी है । (कपि का अर्थ है हनुमान और ध्वज का अर्थ है पताका) । इस प्रकार अपने धनुष तथा अक्षय बाणों सहित अर्जुन वन में गए । उन्होंने कवच आदि धारण किए थे, क्योंकि उन्हें अनेक शत्रुओं के वध का अभ्यास करना था । अर्जुन ने विशेष रूप से वन के उस भाग में प्रवेश किया जहाँ अनेक शेर, हिरण तथा अन्य विभिन्न पशु थे । अर्जुन के साथ श्रीकृष्ण पशुवध का अभ्यास करने के लिए नहीं गए थे, क्योंकि उन्हें किसी भी वस्तु का अभ्यास करने

की आवश्यकता नहीं है, वे स्वयं पूर्ण हैं । वे अर्जुन को अभ्यास करता हुआ देखने के लिए गए थे, क्योंकि भविष्य में उन्हें अनेक शत्रुओं का वध करना होगा । वन में प्रवेश करने के उपरान्त अर्जुन ने अनेक शेरों, वराहों, जंगली भैसों तथा गवयों का वध किया । (गवय एक वन्य पशु होता है ।) अर्जुन ने अपने बाणों से भेद कर अनेक गैंडों, हिरणों, खरगोशों, साहियों तथा उन्हीं के समान अन्य पशुओं का भी वध किया । कुछ मृत पशु जो यज्ञ में बलि दिए जाने के लिए उपयुक्त थे, अनुचरों के द्वारा राजा युधिष्ठिर के समीप भेज दिए गए । दूसरे भयंकर पशु जैसे सिंह एवं गैंडे का वध वन के उपद्रवों को शान्त करने के लिए किया गया । वनों में अनेक साधु तथा सन्तजन निवास करते हैं, अतएव क्षत्रिय राजाओं का यह कर्तव्य है कि वन को भी निवास के योग्य शान्तिपूर्ण स्थिति में रखा जाए । शिकार के कारण अर्जुन को थकान तथा प्यास का अनुभव हुआ, अतएव वे श्रीकृष्ण के साथ यमुना के तट पर गए । जब दोनों कृष्ण अर्थात् अर्जुन और श्रीकृष्ण (द्रौपदी की भाँति अर्जुन भी कभी-कभी कृष्ण कहे जाते हैं) यमुना के तट पर पहुँचे तो उन्होंने अपने हाथ, पैर, मुख धोए और यमुना के निर्मल जल का पान किया । जब वे जल पी कर विश्राम कर रहे थे, तब उन्होंने विवाह योग्य आयु की एक सुन्दर कन्या को अकेले यमुना के तट पर भ्रमण करते हुए देखा । श्रीकृष्ण ने अपने सखा अर्जुन को उस कन्या से उसका परिचय पूछने के लिए भेजा । श्रीकृष्ण के आदेश से अर्जुन तत्काल उस अत्यन्त रूपवती कन्या के समीप गए । उसकी देह सुडौल थी, दाँत धवल थे और मुख मुस्कान से युक्त था । अर्जुन ने प्रश्न किया, "प्रिय बाला! उन्नत उरोजों से युक्त तुम अत्यन्त रूपवती हो । क्या मैं पूछ सकता हूँ कि तुम कौन हो? तुम्हें यहाँ एकाकी भ्रमण करते देखकर हम चकित हैं । यहाँ आने का तुम्हारा क्या प्रयोजन है? हम केवल अनुमान कर सकते हैं कि तुम एक योग्य पति खोज रही हो । यदि तुम्हें आपत्ति न हो, तो तुम अपना प्रयोजन बता सकती हो । मैं तुम्हें सन्तुष्ट करने का प्रयास करूंगा ।" वह सुन्दर बाला यमुना नदी ही थी, जिन्होंने

स्त्री का रूप धारण कर रखा था । उन्होंने उतर दिया, "हे अर्जुन! मैं सूर्यदेव की पुत्री हूँ और अब मैं तपस्या कर रही हूँ, क्योंकि मुझे भगवान् विष्णु को पति रूप में प्राप्त करने की कामना है । मेरे विचार

श्रीकृष्ण का पाँच रानियों से विवाह में वे पुरुषश्रेष्ठ हैं और मेरे पति बनने के योग्य हैं । इस प्रकार मैं अपनी इच्छा व्यक्त कर रही हूँ, क्योंकि आप इसे जानना चाहते थे ।" उस बाला ने आगे कहा, "मुझे ज्ञात है कि आप वीर अर्जुन हैं, अतएव मैं आगे यह कहना चाहूँगी कि मैं भगवान् श्रीविष्णु के अतिरिक्त किसी और को अपने पति के रूप में स्वीकार नहीं करूंगी । भगवान् श्रीविष्णु ही समस्त जीवों के एकमात्र रक्षक हैं और समस्त बद्धात्माओं को मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । यदि आप भगवान् श्रीविष्णु से प्रार्थना करें कि वे मुझ पर प्रसन्न हो जाँए, तो मैं आपकी अत्यन्त आभारी रहूँगी ।" यमुना को भली-भाँति ज्ञात था कि अर्जुन भगवान् श्रीकृष्ण के महान् भक्त हैं और यदि वे प्रार्थना करेंगे, तब श्रीकृष्ण उनकी प्रार्थना कभी नहीं ठुकाराएँगे । श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष रूप से प्राप्त करना कभी-कभी निरर्थक हो सकता है, किन्तु किसी भत के माध्यम से उनके शरणागत होना अवश्य ही सफल होता है । उन्होंने अर्जुन से आगे कहा, "मेरा नाम कालिन्दी है और मैं यमुना के जल में निवास करती हूँ । मेरे पिता ने कृपा करके मेरे लिए यमुना के जल में एक विशेष घर का निर्माण किया है और मैंने शपथ ली है कि जब तक मैं श्रीकृष्ण को प्राप्त नहीं कर लेती तब तक मैं जल में ही निवास करूंगी ।" यद्यपि सबके हृदय में निवास करने वाले परमात्मा के रूप में श्रीकृष्ण को प्रत्येक वस्तु का ज्ञान था, तथापि अर्जुन ने कालिन्दी का सन्देश श्रीकृष्ण तक पहुँचाया । श्रीकृष्ण ने बिना कोई तर्क-वितर्क किए तत्काल कालिन्दीजी को स्वीकार कर लिया और उन्हें रथ पर बैठने को कहा । तदुपरान्त वे सब राजा युधिष्ठिर के समीप गए । इसके पश्चात् राजा युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से एक योग्य गृह के निर्माण में सहायता करने की प्रार्थना की । उस गृह की रचना की

योजना स्वर्गलोक के अभियन्ता (इन्जीनियर) महान् वास्तुकार (आर्किटेक्ट) विश्वकर्मा ने बनाई थी । श्रीकृष्ण ने तत्काल विश्वकर्मा को बुलाया और राजा युधिष्ठिर के इच्छानुसार एक अद्‌भुत नगर का निर्माण उनसे करवाया । जब यह नगर निर्मित हो गया तब महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण से कुछ दिन और अपने साथ रहने की प्रार्थना की । वे कुछ दिन और श्रीकृष्ण की संगति का आनन्द प्राप्त करना चाहते थे । भगवान् श्रीकृष्ण ने युधिष्ठिर की प्रार्थना स्वीकार कर ली एवं वहाँ और कई दिनों तक ठहरे । इसी अवधि में श्रीकृष्ण राजा इन्द्र के खाण्डव वन को अग्निदेव को बलि रूप में प्रदान करने की लीला में लगे रहे । श्रीकृष्ण इसे अग्नि देव को देना चाहते थे । खाण्डव वन में अनेक प्रकार की ओषधियाँ थीं और अग्नि पुन: यौवन प्राप्त करने के लिए उन्हें खाना चाहते थे । किन्तु अग्नि ने प्रत्यक्षरूप से खाण्डव वन पर हाथ नहीं लगाया, अपितु श्रीकृष्ण से सहायता की प्रार्थना की । अग्नि को ज्ञात था कि श्रीकृष्ण उनसे अत्यन्त प्रसन्न हैं, क्योंकि उन्होंने पहले श्रीकृष्ण को सुदर्शन चक्र दिया था । अतएव अग्नि को सन्तुष्ट करने के हेतु श्रीकृष्ण अर्जुन के सारथी बने और दोनों खाण्डव वन गए । खाण्डव वन का भक्षण करने के उपरान्त अग्नि देव अत्यन्त प्रसन्न हो गए । इस बार उन्होंने गाण्डीव नामक विशिष्ट धनुष, चार श्वेतवर्ण के अध एक रथ और एक अजेय तरकस उन्हें अर्पित किया । उस तरकस में करिश्मा दिखाने वाले दो बाण भी थे, जिनमें इतनी शक्ति थी कि कोई भी योद्धा उन्हें काट नहीं सकता था । जब अग्निदेव द्वारा खाण्डव वन का भक्षण किया जा रहा था तब अर्जुन ने मय नामक एक असुर की उस विनाशकारी अग्नि से रक्षा की । इस कारण वह असुर अर्जुन का महान् मित्र बन गया । अर्जुन को प्रसन्न करने के लिए उसने विश्वकर्मा द्वारा निर्मित नगर के अन्दर एक उत्तम सभागृह का निर्माण किया । इस सभागृह में कुछ सिरे ऐसे भ्रामक थे कि जब दुर्योधन इस गृह में आया, तो वह चकर में पड़ गया । उसने भ्रमवश जल को स्थल तथा स्थल को जल समझा । इस प्रकार पाण्डवों के वैभव से दुर्योधन

अपमानित हुआ और उनका परम शत्रु बन गया । कुछ दिन उपरान्त श्रीकृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से द्वारका लौटने की अनुमति ली । जब उन्हें अनुमति मिल गई तब अपने साथ हस्तिनापुर में निवास करने वाले यदुओं के प्रमुख सात्यकि के साथ वे स्वदेश लौट गए । श्रीकृष्ण के साथ कालिन्दी भी द्वारका आई । वापस लौटने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने कई विद्वान ज्योतिषियों से विचारविमर्श किया । वे कालिन्दी से विवाह करने का मुहूर्त जानना चाहते थे । तदनन्तर उन्होंने बड़े ठाट-बाट से कालिन्दी से विवाह किया । इस विवाह-संस्कार से दोनों पक्षों के सम्बन्धी अत्यन्त सुखी हुए और उन सबों ने इस महान् अवसर का आनन्द उठाया । अवन्तिपुर (वर्तमान उज्जैन) में विन्द तथा अनुविन्द नाम के राजा थे । दोनों ही राजा दुर्योधन के अधीन थे । उनकी एक बहिन थी जिसका नाम मित्रविन्दा था । वह अत्यन्त गुणी, विदुषी तथा सुन्दरी कन्या थी । वह श्रीकृष्ण की एक बुआ की पुत्री थी । उसका स्वयंवर होने वाला था, किन्तु उसकी मनोकामना श्रीकृष्ण को पति के रूप में वरण करने की थी । उसके स्वयंवर में श्रीकृष्ण भी उपस्थित थे और अन्य सभी राजाओं की उपस्थिति में ही श्रीकृष्ण मित्रविन्दा को बलपूर्वक हर ले गए । श्रीकृष्ण को रोकने में असमर्थ सभी राजा केवल एक दूसरे का मुँह देखते रह गए ।

श्रीकृष्ण का पाँच रानियों से विवाह. इस घटना के उपरान्त श्रीकृष्ण ने कोशल के राजा की कन्या से विवाह किया । कोशल के राजा का नाम नग्नजित था । वे वैदिक अनुष्ठानों तथा संस्कारों का पालन करते थे । वे अत्यन्त पुण्यवान् थे । उनकी सर्वसुन्दरी कन्या का नाम सत्या था । कभी-कभी सत्या को नग्नजिती भी कहा जाता था, क्योंकि वह राजा नग्नजित की पुत्री थी । राजा नग्नजित के पास सात अत्यन्त शक्तिशाली तथा साहसी बैल थे । वे अपनी कन्या का विवाह उसी राजा से करना चाहते थे, जो उन सातों बैलों को परास्त कर सके । राजाओं में कोई भी उन सातों बैलों को परास्त नहीं कर सका था और न ही सत्या से विवाह कर सका । सातों

बैल अयन्त शक्तिशाली थे और वे राजाओं की गन्ध तक सहन नहीं कर पाते थे । अनेक राजा इस राज्य में आए और बैलों पर विजय पाने का प्रयास किया, किन्तु उन बैलों पर नियंत्रण प्राप्त करने के स्थान पर वे स्वयं परास्त हो गए । यह समाचार देश में चारों ओर फैल गया । जब श्रीकृष्ण ने सुना कि सातों बैलों को परास्त करके ही सत्या को प्राप्त किया जा सकता है, तब वे स्वयं कोशल राज्य जाने को तत्पर हो गए । अनेक सैनिकों सहित, राजसी ठाट से यात्रा करते हुए, वे देश के उस भाग में गए, जिसे अयोध्या कहा जाता है । जब कोशल के राजा को ज्ञात हुआ कि श्रीकृष्ण उसकी कन्या से विवाह करने आए हैं, तो वह अत्यन्त प्रसन्न हो गया । अत्यन्त आदर के साथ उसने अपने राज्य में श्रीकृष्ण का भव्य स्वागत किया । जब श्रीकृष्ण उसके समीप आए तब उसने उन्हें बैठने के लिए उचित आसन तथा अन्य सत्कार की वस्तुएँ दीं । सब कुछ अत्यन्त सुन्दर था । उसे अपना भावी श्वसुर मान कर श्रीकृष्ण ने भी उन्हें सादर प्रणाम किया । जब राजा नग्नजित की पुत्री सत्या को ज्ञात हुआ कि स्वयं श्रीकृष्ण उससे विवाह करने आए हैं, तब वह अत्यन्त प्रसन्न हो गई कि स्वयं लक्ष्मीदेवी के पति कृपा करके उसे स्वीकार करने वहाँ आए हैं । दीर्घकाल से श्रीकृष्ण के साथ विवाह करने की उसकी अभिलाषा थी और श्रीकृष्ण को पति रूप में प्राप्त करने के लिए वह तपस्या कर रही थी । तत्पश्चात् वह विचार करने लगी, "यदि मैंने अपनी योग्यता के अनुरूप कोई पुण्यकर्म किया है और यदि मैंने सदैव श्रीकृष्ण को पतिरूप में प्राप्त करने का विचार किया है, तो श्रीकृष्ण मुझ पर प्रसन्न हो कर मेरी दीर्घकालीन कामना को पूर्ण करें ।" वह यह विचार करते हुए श्रीकृष्ण की मन से स्तुति करने लगी कि, "मुझे ज्ञात नहीं कि श्रीभगवान् किस प्रकार मुझ पर प्रसन्न हो सकते हैं । वे सबके भगवान् तथा स्वामी हैं । श्रीभगवान् के समीप स्थान प्राप्त करने वाली लक्ष्मी जी, शिवजी, ब्रह्माजी और विभिन्न लोकों के अन्य देवता भी सदैव भगवान्व की सादर वन्दना करते हैं । भगवान् कभी-कभी अपने भक्तों की इच्छापूर्ति के लिए भिन्न-

भिन्न अवतारों के रूप में इस धरती पर भी अवतरित होते हैं । वे इतने श्रेष्ठ एवं महान् हैं कि मुझे समझ में नहीं आता कि उन्हें किस प्रकार सन्तुष्ट करूं ।" उसने विचार किया कि श्रीभगवान् भक्त पर अपनी अहैतुकी दया के कारण ही प्रसन किए जा सकते हैं, अन्यथा उन्हें प्रसन्न करने का अन्य कोई साधन नहीं है । भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्ष/टक श्लोकों में इसी भाँति स्तुति की है, "प्रिय भगवन् । मैं आपका नित्य दास हूँ । किसी भाँति मैं इस भव्यवस्थागर में पतित हो गया हूँ । यदि आप कृपा करके मुझे उठा कर अपने चरणकमल की धूलि के कण के रूप में रख लें, तो अपने नित्य दास पर आपका यह एक महान् अनुग्रह होगा ।" भगवान् को सेवा करके विनीत भाव के द्वारा ही प्रसन्न किया जा सकता है । गुरु के निर्देश में हम भगवान् की जितनी ही अधिक सेवा करते हैं, उतना ही हम भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं । चूँकि हमने उनकी सेवा की है, इस कारण हम उनसे अनुग्रह अथवा दया की माँग करने के अधिकारी नहीं बन सकते हैं । वे हमारी सेवा स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकते हैं । किन्तु भगवान् को सन्तुष्ट करने का एकमात्र साधन सेवा भाव ही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं । राजा नग्नजित पहले से ही पुण्यात्मा थे और अब श्रीकृष्ण को अपने महल में उपस्थित पाकर वे अपने ज्ञान तथा सामथ्र्य के अनुसार श्रेष्ठतम विधि से उनका पूजन करने लगे । वे स्वयं भगवान् के सम्मुख यह कहते हुए प्रस्तुत हुए, "प्रिय भगवन्! आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं, आप समस्त जीवों के आश्रय नारायण हैं । आप स्वयंपूर्ण हैं तथा अपने व्यक्तिगत ऐश्वर्यों से प्रसन्न हैं, अतएव मैं किस प्रकार आपको कुछ अर्पित करूं ? इस प्रकार कुछ अर्पण करके मैं आपको कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ? ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि मैं एक तुच्छ जीव हूँ । वास्तव में आपकी सेवा करने की मुझमें कोई क्षमता नहीं है ।" श्रीकृष्ण समस्त जीवों के परमात्मा हैं, अतएव वे राजा नग्नजित की कन्या सत्या के मन की बात समझ सकते थे । राजा द्वारा प्रदत्त उचित आसन, भोजन तथा निवास-स्थान से भी वे अत्यन्त

प्रसन्न थे । अतएव वे समझ सकते थे कि पिता और पुत्री दोनों ही उन्हें घनिष्ठ सम्बन्धी के रूप में प्राप्त करने के लिए अधीर हैं । वे मुस्कराने लगे और गम्भीर स्वर में बोले, "प्रिय राजन् नग्नजित! आपको भलीभाँति ज्ञात है कि अपने धर्म में स्थित कोई भी क्षत्रिय कभी-भी किसी से कुछ नहीं माँगेगा चाहे दूसरा व्यक्ति कितने ही उच्च पद पर क्यों न हो । एक क्षत्रिय राजा का दूसरे व्यक्ति से इस प्रकार की याचना करना विद्वान वैदिक अनुयायियों ने जानबूझ कर निषिद्ध किया है । यदि कोई क्षत्रिय इस नियम को भंग करता है, तो विद्वान उसके कार्य की निन्दा करते हैं । किन्तु इस दृढ़ विधि-विधान के होने पर भी मैं आपसे आपकी रूपवती कन्या का हाथ माँग रहा हूँ । ऐसा करने के पीछे मेरा उद्देश्य यह है कि आपने मेरा जो हार्दिक स्वागत किया है उसके बदले हमारे मध्य सम्बन्ध स्थापित हो जाए । आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी पारिवारिक प्रथा नहीं है, अत: अपनी पुत्री को हमें देने के लिए आप कोई शुल्क लगाएँगे, तो हम उसे नहीं दे सकते ।" दूसरे शब्दों में सातों बैलों को परास्त करने की शर्त पूरी किए बिना ही श्रीकृष्ण राजा से सत्या का हाथ प्राप्त करना चाहते थे । भगवान् कृष्ण का वचन सुन कर राजा नग्नजित ने कहा, "प्रिय भगवन्! आप समस्त सुखों, ऐश्वर्यों और गुणों के सागर हैं । श्रीदेवी लक्ष्मी सदैव आपके वक्ष पर निवास करती हैं । इस परिस्थिति में मेरी पुत्री के लिए आपसे श्रेष्ठ पति कौन हो सकता है? मेरी पुत्री तथा मैं दोनों ने ही सदैव इस अवसर के लिए प्रार्थना की है । आप यदुवंश के शिरोमणि हैं । मैं आपको सूचित करता हूँ कि प्रारम्भ से ही मैंने योग्य प्रत्याशी से ही अपनी कन्या का विवाह करने का प्रण किया है और ऐसा प्रत्याशी वही होगा, जो मेरी बनाई गई परीक्षा में विजयी हो । मैंने यह परीक्षा केवल इसलिए बनाई है, जिससे कि मैं अपने भावी दामाद के बल-कौशल और स्थिति को समझ सकूं । आप भगवान् श्रीकृष्ण हैं और आप समस्त शूरवीरों में प्रमुख हैं । मुझे निश्चय है कि आप बिना किसी कठिनाई के इन सातों बैलों को वश में कर सकेंगे । अभी तक कोई राजा उन्हें वश में

नहीं कर सका है और जिस किसी ने भी उन्हें नियंत्रण में लाने का प्रयास किया उसके हाथ-पाँव ही टूटे हैं ।" राजा नग्नजित ने आगे प्रार्थना की, "हे श्रीकृष्ण! यदि आप कृपा कर सातों बैलों को नाथ लें और उन्हें नियंत्रण में कर लें, तब निस्सन्देह आप ही मेरी पुत्री सत्या के वांछित वर चुने जाएँगे ।" यह कथन सुनकर श्रीकृष्ण समझ गए कि राजा अपना प्रण-भंग नहीं करना चाहते, अतएव उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए वे कमर कस कर बैलों से युद्ध करने के लिए तत्पर हो गए । उन्होंने स्वयं को तत्काल सात कृष्णों में विभाजित कर लिया और उनमें से प्रत्येक ने एक बैल को पकड़ कर उसे नाथ लिया । इस प्रकार रस्सी से बाँध कर बैलों को ऐसे नियंत्रण में कर लिया जैसे वे खेलने की वस्तु हों । श्रीकृष्ण का स्वयं को सात स्वरूपों में बाँटना अत्यन्त अर्थपूर्ण है । राजा की सादर वन्दना करते हैं । भगवान् कभी-कभी अपने भक्तों की इच्छापूर्ति के लिए भिन्न-भिन्न अवतारों के रूप में इस धरती पर भी अवतरित होते हैं । वे इतने श्रेष्ठ एवं महान् हैं कि मुझे समझ में नहीं आता कि उन्हें किस प्रकार सन्तुष्ट करूं ।" उसने विचार किया कि श्रीभगवान् भक्त पर अपनी अहैतुकी दया के कारण ही प्रसन किए जा सकते हैं, अन्यथा उन्हें प्रसन्न करने का अन्य कोई साधन नहीं है । भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने अपने शिक्ष/टक श्लोकों में इसी भाँति स्तुति की है, "प्रिय भगवन् । मैं आपका नित्य दास हूँ । किसी भाँति मैं इस भव्यवस्थागर में पतित हो गया हूँ । यदि आप कृपा करके मुझे उठा कर अपने चरणकमल की धूलि के कण के रूप में रख लें, तो अपने नित्य दास पर आपका यह एक महान् अनुग्रह होगा ।" भगवान् को सेवा करके विनीत भाव के द्वारा ही प्रसन्न किया जा सकता है । गुरु के निर्देश में हम भगवान् की जितनी ही अधिक सेवा करते हैं, उतना ही हम भगवत्प्राप्ति के मार्ग पर अग्रसर होते हैं । चूँकि हमने उनकी सेवा की है, इस कारण हम उनसे अनुग्रह अथवा दया की माँग करने के अधिकारी नहीं बन सकते हैं । वे हमारी सेवा स्वीकार अथवा अस्वीकार कर सकते हैं । किन्तु भगवान् को सन्तुष्ट करने का एकमात्र

साधन सेवा भाव ही है, इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं । राजा नग्नजित पहले से ही पुण्यात्मा थे और अब श्रीकृष्ण को अपने महल में उपस्थित पाकर वे अपने ज्ञान तथा सामथ्र्य के अनुसार श्रेष्ठतम विधि से उनका पूजन करने लगे । वे स्वयं भगवान् के सम्मुख यह कहते हुए प्रस्तुत हुए, "प्रिय भगवन्! आप सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं, आप समस्त जीवों के आश्रय नारायण हैं । आप स्वयंपूर्ण हैं तथा अपने व्यक्तिगत ऐश्वर्यों से प्रसन्न हैं, अतएव मैं किस प्रकार आपको कुछ अर्पित करूं ? इस प्रकार कुछ अर्पण करके मैं आपको कैसे प्रसन्न कर सकता हूँ? ऐसा सम्भव नहीं है, क्योंकि मैं एक तुच्छ जीव हूँ । वास्तव में आपकी सेवा करने की मुझमें कोई क्षमता नहीं है ।"

श्रीकृष्ण समस्त जीवों के परमात्मा हैं, अतएव वे राजा नग्नजित की कन्या सत्या के मन की बात समझ सकते थे । राजा द्वारा प्रदत्त उचित आसन, भोजन तथा निवास-स्थान से भी वे अत्यन्त प्रसन्न थे । अतएव वे समझ सकते थे कि पिता और पुत्री दोनों ही उन्हें घनिष्ठ सम्बन्धी के रूप में प्राप्त करने के लिए अधीर हैं । वे मुस्कराने लगे और गम्भीर स्वर में बोले, "प्रिय राजन् नग्नजित! आपको भलीभाँति ज्ञात है कि अपने धर्म में स्थित कोई भी क्षत्रिय कभी-भी किसी से कुछ नहीं माँगेगा चाहे दूसरा व्यक्ति कितने ही उच्च पद पर क्यों न हो । एक क्षत्रिय राजा का दूसरे व्यक्ति से इस प्रकार की याचना करना विद्वान वैदिक अनुयायियों ने जानबूझ कर निषिद्ध किया है । यदि कोई क्षत्रिय इस नियम को भंग करता है, तो विद्वान उसके कार्य की निन्दा करते हैं । किन्तु इस दृढ़ विधि-विधान के होने पर भी मैं आपसे आपकी रूपवती कन्या का हाथ माँग रहा हूँ । ऐसा करने के पीछे मेरा उद्देश्य यह है कि आपने मेरा जो हार्दिक स्वागत किया है उसके बदले हमारे मध्य सम्बन्ध स्थापित हो जाए । आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमारी पारिवारिक प्रथा नहीं है, अत: अपनी पुत्री को हमें देने के लिए आप कोई शुल्क लगाएँगे, तो हम उसे नहीं दे

सकते ।" दूसरे शब्दों में सातों बैलों को परास्त करने की शर्त पूरी किए बिना ही श्रीकृष्ण राजा से सत्या का हाथ प्राप्त करना चाहते थे । भगवान् कृष्ण का वचन सुन कर राजा नग्नजित ने कहा, "प्रिय भगवन्! आप समस्त सुखों, ऐश्वर्यों और गुणों के सागर हैं । श्रीदेवी लक्ष्मी सदैव आपके वक्ष पर निवास करती हैं । इस परिस्थिति में मेरी पुत्री के लिए आपसे श्रेष्ठ पति कौन हो सकता है? मेरी पुत्री तथा मैं दोनों ने ही सदैव इस अवसर के लिए प्रार्थना की है । आप यदुवंश के शिरोमणि हैं । मैं आपको सूचित करता हूँ कि प्रारम्भ से ही मैंने योग्य प्रत्याशी से ही अपनी कन्या का विवाह करने का प्रण किया है और ऐसा प्रत्याशी वही होगा, जो मेरी बनाई गई परीक्षा में विजयी हो । मैंने यह परीक्षा केवल इसलिए बनाई है, जिससे कि मैं अपने भावी दामाद के बल-कौशल और स्थिति को समझ सकूं । आप भगवान् श्रीकृष्ण हैं और आप समस्त शूरवीरों में प्रमुख हैं । मुझे निश्चय है कि आप बिना किसी कठिनाई के इन सातों बैलों को वश में कर सकेंगे । अभी तक कोई राजा उन्हें वश में नहीं कर सका है और जिस किसी ने भी उन्हें नियंत्रण में लाने का प्रयास किया उसके हाथ-पाँव ही टूटे हैं ।" राजा नग्नजित ने आगे प्रार्थना की, "हे श्रीकृष्ण! यदि आप कृपा कर सातों बैलों को नाथ लें और उन्हें नियंत्रण में कर लें, तब निस्सन्देह आप ही मेरी पुत्री सत्या के वांछित वर चुने जाएँगे ।" यह कथन सुनकर श्रीकृष्ण समझ गए कि राजा अपना प्रण-भंग नहीं करना चाहते, अतएव उनकी इच्छा पूर्ण करने के लिए वे कमर कस कर बैलों से युद्ध करने के लिए तत्पर हो गए । उन्होंने स्वयं को तत्काल सात कृष्णों में विभाजित कर लिया और उनमें से प्रत्येक ने एक बैल को पकड़ कर उसे नाथ लिया । इस प्रकार रस्सी से बाँध कर बैलों को ऐसे नियंत्रण में कर लिया जैसे वे खेलने की वस्तु हों । श्रीकृष्ण का स्वयं को सात स्वरूपों में बाँटना अत्यन्त अर्थपूर्ण है । राजा नग्नजित की पुत्री सत्या को ज्ञात था कि श्रीकृष्ण ने पहले ही अनेक राजकुमारियों से विवाह किया है, फिर भी वह श्रीकृष्ण के प्रति आसक्त थी । उसे उत्साहित करने के लिए श्रीकृष्ण ने तत्काल अपना

सात स्वरूपों में विस्तार कर लिया । इसका तात्पर्य यह है कि यद्यपि श्रीकृष्ण एक हैं, किन्तु उनके विस्तार के अनन्त रूप हैं । उन्होंने सैकड़ों, हजारों पत्नियों से विवाह किया था, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि जब वे एक पत्नी के समीप रहते थे, तो दूसरी पत्नियाँ उनके संग से वंचित रहती थीं । श्रीकृष्ण अपने विस्तार के द्वारा प्रत्येक पत्नी का संग कर सकते थे । जब श्रीकृष्ण ने बैलों को नाथ कर उनको अपने वश में कर लिया तब बैलों का घमण्ड और शक्ति तत्काल चूर-चूर हो गई । इस प्रकार बैलों ने जो नाम तथा यश प्राप्त किया था वह नष्ट हो गया । जब श्रीकृष्ण ने बैलों को नाथ लिया तब उन्होंने उनको उसी भाँति जोर से खींचा जैसे कोई बालक काठ के बैल को घसीटता है । श्रीकृष्ण के इस पौरुष को देखकर राजा नग्नजित अत्यन्त चकित हो गए और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक वे तत्काल अपनी पुत्री श्रीकृष्ण से समक्ष ले आये और उसे श्रीकृष्ण को सौंप दिया । श्रीकृष्ण ने भी तत्काल सत्या को पत्नी रूप में स्वीकार किया । इसके पश्चात् अत्यन्त भव्यता के साथ उनका विवाह-संस्कार सम्पन्न हुआ । राजा नग्नजित की रानियाँ भी अत्यन्त प्रसन्न थीं, क्योंकि उनकी पुत्री सत्या को श्रीकृष्ण पति रूप में प्राप्त हुए हैं । इस शुभ अवसर पर राजा तथा रानियाँ अत्यन्त प्रसन्न थे, अत: विवाह के उपलक्ष्य में पूरे नगर में उत्सव मनाया गया । चारों ओर शंख, नगाड़ों तथा अन्य विभिन्न प्रकार के गीत-संगीत की ध्वनि सुनाई पड़ती थी । नवविवाहित दम्पति पर विद्वान ब्राह्मण आशीषों की वर्षा करने लगे । हर्ष के कारण नगर के समस्त निवासियों ने रंगीन वस्त्र तथा आभूषण धारण किए थे । राजा नग्नजित इतने प्रसन्न थे कि उन्होंने पुत्री और जामाता को प्रचुर दहेज दिया । सर्वप्रथम उन्होंने दस हजार गाएँ दीं एवं सुन्दर वस्त्रों तथा स्वर्ण हार से युक्त तीन हजार नवयुवती दासियाँ दीं । दहेज की यह प्रथा भारतवर्ष में अभी भी प्रचलित है । विशेष रूप से यह प्रथा क्षत्रिय राजाओं में प्रचलित है । जब एक क्षत्रिय राजा का विवाह होता है, तब वधू के साथ उसकी समवयस्का कम से कम बारह दासियाँ दी जाती हैं । गाएँ और दासियाँ

देने के पश्चात् राजा ने नौ हजार हाथी तथा हाथी से सौगुने रथ देकर दहेज को और भी समृद्ध बना दिया । इसका अर्थ है कि उन्होंने नौ लाख रथ दिए । उन्होंने रथों से सौगुने अश्व दिए अर्थात् नौ करोड़ अश्व दिए और अश्वों से सौगुने सेवक दिए अर्थात् नौ अरब सेवक दिए । राजा इन दास व दासियों की सब सुविधाएँ देकर सन्तानवत् अथवा परिवार के सदस्यों के समान पालन करते थे । ऊपर वर्णित रीति से यह दहेज देने के पश्चात् कोशल प्रदेश के राजा ने अपनी पुत्री तथा महान् जामाता को एक रथ पर बैठाया । उन्होंने श्रीकृष्ण व अपनी पुत्री के साथ उनकी सुरक्षा के लिए शस्त्रों से सजित एक सेना भेजी और उन्हें उनके घर जाने दिया । जब वे तीव्र गति से अपने नये घर की ओर यात्रा कर रहे थे, तब उनके प्रति वात्सल्य से राजा का हृदय द्रवित हो उठा । श्रीकृष्ण से सत्या के इस विवाह से पूर्व अनेक लोगों ने राजा नग्नजित के बैलों के साथ प्रतियोगिता की थी । यदुवंश के तथा अन्य वंशों के भी अनेक राजाओं ने सत्या का हाथ पाने का प्रयास किया था । जब अन्य वंशों के निराश राजाओं ने यह समाचार सुना कि श्रीकृष्ण बैलों को वश में करके सत्या का पाणिग्रहण करने में सफल हो गए हैं, तब वे स्वाभाविक द्वेष से भर गए । जब श्रीकृष्ण द्वारका की ओर यात्रा कर रहे थे, तब समस्त निराश तथा परास्त राजाओं ने उन्हें घेर लिया और बरात पर अपने बाणों की वर्षा करने लगे । जब उन्होंने श्रीकृष्ण के दल पर आक्रमण किया और अनवरत घोर वर्षा के समान बाणों की वर्षा की तब श्रीकृष्ण के सर्वश्रेष्ठ सखा अर्जुन ने उनकी चुनौती स्वीकार की । अपने प्रिय सखा श्रीकृष्ण को उनके विवाह के अवसर पर प्रसन्न करने के लिए अर्जुन ने अकेले ही उन राजाओं को मार भगाया । उन्होंने गाण्डीव नामक अपना धनुष उठाया और तत्काल ही समस्त राजाओं को वैसे ही भगा दिया जैसे कोई सिंह समस्त छोटे पशुओं को केवल पीछा कर के भगा देता है । अर्जुन ने बिना किसी राजा का वध किए ही उन सबको भगा दिया । इसके पश्चात् यदुवंश शिरोमणि भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी नवविवाहिता पत्नी तथा विशाल दहेज सहित भव्य रूप

से द्वारका नगर में प्रवेश किया । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने वहाँ अपनी पत्नी के साथ अत्यन्त शान्तिपूर्वक निवास किया । श्रीकृष्ण की एक और बुआ थीं, जिनका नाम श्रुतकीर्ति था और वे उनके पिता की बहिन थीं । उनका विवाह केकय प्रदेश में हुआ था और वे वहीं निवास करती थीं । उनकी एक पुत्री थी जिसका नाम भद्रा था । भद्रा भी श्रीकृष्ण से विवाह करना चाहती थीं और उनके भाई ने बिना किसी शर्त के उन्हें श्रीकृष्ण को समर्पित कर दिया । श्रीकृष्ण ने भी उसे अपनी प्रामाणिक पत्नी के रूप में स्वीकार किया । इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने मद्रास प्रदेश के राजा की पुत्री से विवाह किया । उसका नाम लक्ष्मणा था । लक्ष्मणा सर्वगुण-सम्पन्न थी । श्रीकृष्ण ने उससे भी बलपूर्वक विवाह किया था । उन्होंने उसका उसी प्रकार हरण किया जिस प्रकार गरुड़ ने अमृत के पात्र को असुरों से हर लिया था । उसके स्वयंवर की सभा में अनेक राजाओं की उपस्थिति में श्रीकृष्ण ने इस कन्या का हरण किया था । स्वयंवर वह संस्कार है, जिसमें वधू अनेक राजाओं की सभा में से अपने पति का चुनाव स्वयं कर सकती है ।

इस अध्याय में चर्चित पाँच कन्याओं के साथ श्रीकृष्ण के विवाह का वर्णन पर्याप्त नहीं है । इनके अतिरिक्त भी उनकी हजारों पत्नियाँ थीं । भौमासुर नामक असुर का वध करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने अन्य हजारों कन्याओं को स्वीकार किया । ये समस्त सुन्दरियाँ भौमासुर के महल में बन्दी थीं, जिन्हें श्रीकृष्ण ने मुक्त किया और उनसे विवाह किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " श्रीकृष्ण का पञ्च रानियों से विवाह" नामक अठ्ठावनवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 59
भौमासुर का उद्धार

विभिन्न राजाओं के महलों से उनका हरण कर के किस प्रकार भौमासुर ने सोलह हजार राजकुमारियों को बन्दी बनाया था और किस प्रकार अद्भुत चरित्र वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका वध किया, यह सम्पूर्ण कथा श्रीमद्भागवत में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित को बताई है । साधारणतया असुर सदैव ही देवद्रोही होते हैं । अत्यधिक शक्तिशाली हो जाने पर इस असुर भौमासुर ने बलात् वरुण देव के सिंहासन का छत्र छीन लिया था । देवताओं की माता अदिति के कर्णफूल भी उसने ले लिए थे । स्वर्गलोक के मेरु पर्वत के एक भाग पर उसने विजय प्राप्त कर ली थी और मणिपर्वत नामक भूभाग पर अधिकार कर लिया था । अतएव भौमासुर के उत्पातों के विषय में श्रीकृष्ण को सूचित करने के लिए स्वर्गलोक से राजा इन्द्र द्वारका आये । स्वगाधिपति इन्द्र से भौमासुर के विषय में सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नी सत्यभामा के साथ तत्काल भौमासुर के निवासस्थान की ओर प्रस्थान किया । वे दोनों गरुड़ पर सवार होकर चले । गरुड़ आकाश मार्ग से उन्हें भौमासुर की राजधानी प्राग्ज्योतिषपुर ले गया । प्राग्ज्योतिषपुर नगर में प्रवेश करना कोई सरल कार्य नहीं था, क्योंकि इसकी भली-भाँति किलेबन्दी की गई थी । चारों दिशाओं से नगर की सुरक्षा के हेतु चार सुदृढ़ दुर्ग थे । सुदृढ़ सैन्य शक्ति के द्वारा नगर चारों ओर से सुरक्षित था । दूसरी सीमा के रूप में नगर के चारों ओर जल से भरी खाई थी । इसके साथ ही नगर चारों ओर से विद्युत् के तारों से घिरा हुआ था । अगली किलेबन्दी अनिल नामक गैसीय पदार्थ की थी । इसके उपरान्त मुर नामक असुर द्वारा निर्मित काँटेदार तारों का एक जाल था । ऐसा प्रतीत होता था कि आधुनिक वैज्ञानिक प्रगति के दृष्टिकोण से भी नगर भली-भाँति रक्षित था । जब श्रीकृष्ण वहाँ पहुँचे, उन्होंने अपनी गदा के प्रहार से समस्त दुर्ग भंग

कर दिया । श्रीकृष्ण के बाणों के सतत आक्रमण से सैन्य शक्ति इधर-उधर बिखर गई । अपने प्रसिद्ध सुदर्शन चक्र से उन्होंने विद्युतीकृत सीमा को विफल कर दिया, जल की खाई तथा गैसीय सीमा को नष्ट कर दिया और मुर द्वारा निर्मित विद्युतीकृत तारों के जाल को भी छिन्न-भिन्न कर दिया । अपने शंख की ध्वनि से उन्होंने न केवल महान् योद्धाओं के हृदय भंग किये, अपितु वहाँ के सभी युद्ध सम्बन्धी यंत्रों को भी भंग कर दिया । उसी भाँति उन्होंने अपनी अजेय गदा से नगर के चारों ओर की दीवार खण्डित कर दी । उनके शंख की ध्वनि सृष्टि के प्रलय के समय होने वाले वज़पात की ध्वनि के समान प्रतीत होती थी । असुर मुर ने जब शंख की ध्वनि सुनी तो वह जाग गया और यह देखने के लिए स्वयं बाहर आया कि क्या हुआ है । उसके पाँच सिर थे और दीर्घ काल से वह जल में रह रहा था । मुर राक्षस इतना प्रकाशवान् था जैसे प्रलय के समय का सूर्य और उसका क्रोध प्रज्वलित अग्नि के समान था । उसके शरीर की कान्ति इतनी चमकदार थी कि खुली दृष्टि से उसे देखना कठिन था । बाहर आते ही वह अपना त्रिशूल उठा कर भगवान् श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा । उसका क्रोध अत्यन्त भयंकर था और वह तीनों लोकों के भक्षण के लिए तत्पर दिखाई देता था । सर्वप्रथम उसने अपना त्रिशूल घुमा कर श्रीकृष्ण के वाहन गरुड़ पर आक्रमण किया और अपने पाँचों मुखों से वह घोर सिंहनाद करने लगा । उसके मुखों से निकलने वाली गर्जन-ध्वनि पूरे ब्रह्माण्ड में फैल गई, यहाँ तक कि वह गूंज न केवल पूर्ण विश्व, अपितु ऊपर नीचे दसों दिशाओं में और अन्तरिक्ष में भी फैल गई । इस प्रकार वह ध्वनि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में गूँज रही थी । भगवान् कृष्ण ने देखा कि मुर का त्रिशूल धीरे-धीरे उनके वाहन गरुड़ की ओर बढ़ रहा है । उन्होंने तत्काल अपने हस्तकौशल से दो बाण त्रिशूल की ओर फेंके जिससे कि त्रिशूल के टुकड़े-टुकड़े हो गए । उसी के साथ-साथ उन्होंने अनेक बाणों से असुर मुर के मुखों को भेद दिया । जब मुर ने देखा कि श्रीभगवान् ने उसके कौशल को विफल कर दिया है, तब उसने अत्यन्त क्रोध में आकर

अपनी गदा से भगवान् पर प्रहार करना प्रारम्भ किया । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने इसके पहले कि असुर की गदा उनके समीप पहुँचे अपनी गदा से मुर की गदा को छिन्न-भिन्न कर दिया । अपने अस्त्र से वंचित होकर असुर ने अपनी बलशाली बाहुओं से श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने का निश्चय किया, किन्तु श्रीकृष्ण ने सुदर्शन चक्र से तत्काल ही असुर के पाँचों सिर उसके शरीर से अलग कर दिए । वह असुर उसी भाँति जल में गिर पड़ा जिस भाँति इन्द्र के वज़ के आघात के पश्चात् कोई पर्वत का शिखर सागर में गिरता है । मुर असुर के सात पुत्र थे जिनके नाम थे ताम्र, अन्तरिक्ष, श्रवण, विभावसु, वसु, नभस्वान और अरुण । अपने पिता की मुत्यु के कारण वे क्रोध से उन्मत्त हो उठे और प्रतिशोध की ज्वाला में जलने लगे । बदला लेने की भावना से वे अत्यन्त क्रोध में श्रीकृष्ण से युद्ध करने के लिए तत्पर हो गए । उन्होंने स्वयं को आवश्यक आयुधों से सजित किया और पीठ नामक एक अन्य असुर को युद्ध में सेनानायक की भाँति कार्य करने के लिए नियुक्त किया । भौमासुर के आदेश पर उन सबने सम्मिलित रूप से श्रीकृष्ण पर आक्रमण किया । जब वे भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष आए तब वे उन पर खड्ग, गदा, भाला, बाण और त्रिशूल आदि अनेक आयुधों की वर्षा करने लगे । किन्तु उन्हें ज्ञात नहीं था कि श्रीभगवान् की शक्ति असीम एवं अजेय है । अपने बाणों से श्रीकृष्ण ने भौमासुर के दैत्यों के समस्त आयुधों को छिन्न-भिन्न कर दिया । तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण के शस्त्र-प्रहार से भौमासुर का सेनापति पीठ एवं उसके सभी सहायक गिर पड़े । उनके सैनिकों के वस्त्र फट गए थे और उनके सिर, पैर, भुजाएँ और जाँघे कट कर अलग हो गई थीं । वे सभी यमराज के पास भेज दिए गए । भौमासुर का एक नाम नरकासुर भी था, क्योकि वह मूर्तिमती पृथ्वी का पुत्र था । जब उसने देखा कि युद्ध भूमि में उसके सभी सैनिकों, सेनापतियों तथा योद्धाओं का श्रीभगवान् के शस्त्रों के आघात से संहार कर दिया गया है, तब वह भगवान् पर अत्यन्त कुद्ध हुआ । तत्पश्चात् वह सागर तट पर उत्पन्न और पले हुए हाथियों की

विशाल संख्या के साथ नगर के बाहर आया । वे सभी हाथी अत्यधिक मतवाले थे । जब वे बाहर आए तब उन्होंने देखा कि विद्युत् के प्रकाश से चमकते हुए सूर्य को घेरने वाले श्याम मेघ के समान श्रीकृष्ण और उनकी पत्नी ऊपर अन्तरिक्ष में स्थित हैं । तत्काल भौमासुर ने शतघ्नी नाम की शक्ति चलाई, जिससे वह एक ही प्रहार से सैकड़ों योद्धाओं का वध कर सकता था । उसी समय उसके सभी सहायकों ने भी अपने-अपने अस्त्र श्रीभगवान् पर चलाए । श्रीकृष्ण अपने बाणों से इन सभी आयुधों को काटने लगे । इस युद्ध का परिणाम यह हुआ कि भौमासुर के सभी सेनानायक और सैनिक भूमि पर गिर पड़े । उनके हाथ, पैर और सिर उनके शरीर से अलग हो गए थे और उनके हाथी तथा घोड़े भी उनके साथ ही गिर पड़े । इस प्रकार भौमासुर द्वारा चलाए गए सभी अस्त्र भगवान् के बाणों के द्वारा खण्ड-खण्ड कर दिए गए । भगवान् गरुड़ की पीठ पर बैठकर युद्ध कर रहे थे । घोड़ों-हाथियों पर अपने पंखों से प्रहार करके तथा अपने तीक्ष्ण नखों व चोंच से उनके सिर पर खरोंच कर गरुड़ भगवान् श्रीकृष्ण की सहायता भी कर रहे थे । गरुड़ के आक्रमण से हाथियों को अत्यधिक पीड़ा हो रही थी और वे सब युद्धभूमि से पलायन कर रहे थे । एकाकी भौमासुर ही युद्धभूमि में रह गया और वह श्रीकृष्ण से युद्ध करता रहा । उसने देखा कि श्रीकृष्ण का वाहन गरुड़ हाथियों को अत्यन्त विचलित कर रहा है, अतएव अत्यन्त क्रोध में उसने गरुड़ पर पूर्ण शक्ति से प्रहार किया । उसका यह प्रहार वज़ाघात को भी लजाने वाला था । सौभाग्यवश गरुड़ साधारण पक्षी नहीं था और भौमासुर का प्रहार उसे ऐसा ही प्रतीत हुआ जैसे किसी विशाल हाथी को पुष्पमाला का आघात अनुभव होता है । इस प्रकार भौमासुर को समझ में आने लगा कि उसका कोई भी छल श्रीकृष्ण पर काम नहीं करेगा और उसे ज्ञात हो गया कि श्रीकृष्ण का वध करने की समस्त चातुरी में उसे निराशा ही प्राप्त होगी । फिर भी उसने एक त्रिशूल लेकर अन्तिम बार श्रीकृष्ण पर प्रहार करने का प्रयास किया । श्रीकृष्ण इतने दक्ष थे कि उसका त्रिशूल उनका

स्पर्श कर सके, उसके पूर्व ही उन्होंने सुदर्शन चक्र से उसका सिर काट दिया । कर्णफूलों तथा मुकुट से सुशोभित उसका सिर युद्ध-भूमि पर गिर पड़ा । श्रीकृष्ण द्वारा भौमासुर के उद्धार के अवसर पर असुर के सभी सम्बन्धी निराश होकर चीत्कार करने लगे और सन्त-जन भगवान् के वीरतापूर्ण कार्यों का यशोगान करने लगे । इस अवसर का लाभ उठा कर स्वर्गलोक से देवगण भगवान् पर पुष्पवर्षा करने लगे । इस समय मूर्तिमती पृथ्वी भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष आई और उन्होंने वैजयन्ती रत्नों की एक माला से श्रीकृष्ण का स्वागत किया । उन्होंने रत्न और स्वर्ण से सजित अदिति के प्रकाशवान् कर्णफूल भी वापस लौटा दिये । उन्होंने वरुण का छत्र भी लौटा दिया । एक और बहुमूल्य रत्न उन्होंने श्रीकृष्ण को अर्पित किया । इसके पश्चात् मुर्तिमती पृथ्वी श्रेष्ठ देवताओं के उपास्य और सम्पूर्ण जगत के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने लगी । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणों में दण्डवत्-प्रणाम किया और अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक कहा: 'शंख, चक्र, गदा और पद्म के चारों चिह्नों से विभूषित, समस्त देवताओं के ईथर आप भगवान् को मेरा सादर प्रणाम है । कृपया मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए । प्रिय भगवन्! आप परमात्मा हैं और अपने भक्तों की कामना सन्तुष्ट करने के हेतु आप अपने विभिन्न दिव्य अवतारों में पृथ्वी पर अवतीर्ण होते हैं । आपके समस्त अवतार भक्तों की भक्तिपूर्ण इच्छाओं के अनुकूल होते हैं । कृपया मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए । "प्रिय भगवन्! कमलपुष्प आपकी नाभि से निकलता है और आप सदैव कमलपुष्पों की माला से सुशोभित रहते हैं । आपके नेत्र सदैव कमल की पंखुड़ियों के समान फैले रहते हैं, अतएव वे दूसरों के नेत्रों को सर्व सुख प्रदान करने वाले होते हैं । आपके चरणकमल इतने मृदु और कोमल हैं कि आपके अनन्य भक्त सदैव उनकी उपासना करते रहते हैं । आपके चरणकमल आपके भक्तों के हृदयकमलों को शान्ति प्रदान करते हैं । अतएव आपको मेरा बारम्बार सादर प्रणाम है । 'आप सभी प्रकार के धर्म, यश, सम्पति, ज्ञान और

वैराग्य के सागर हैं, आप षड्-ऐश्वर्यों के आश्रय हैं । यद्यपि आप सर्वव्यापी हैं, फिर भी आप श्री वसुदेव के पुत्र के रूप में प्रकट हुए हैं अतएव कृपया आप मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए । आप आदि श्रीभगवान् हैं और समस्त कारणों के परम कारण हैं । केवल आप ही समस्त ज्ञान के सागर हैं । मेरा आपको सादर प्रणाम है । आप स्वयं अजन्मा हैं, किन्तु फिर भी आप समस्त सृष्टि के पिता हैं । आप समस्त शक्तियों के सागर तथा आश्रय हैं । आप ही इस सृष्टि को प्रकट करते हैं और आप इस सृष्टि के कारण एवं कार्य दोनों ही हैं । अतएव कृपया मेरा सादर प्रणाम स्वीकार कीजिए । "प्रिय भगवन्! जहाँ तक तीनों देवताओं-ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश-का प्रश्न है वे भी आपसे स्वतंत्र नहीं हैं । जब इस सृष्टि के निर्माण की आवश्यकता होती है, तब आप अपने रजोगुणी आविर्भाव ब्रह्मा की रचना करते हैं । जब आप इस सृष्टि का पालन करना चाहते हैं, तब आप श्रीविष्णु के रूप में अपना विस्तार करते हैं, जो कि समस्त सतीगुण के सागर हैं । इसी भाँति आप तमोगुण के स्वामी शिव के रूप में प्रकट होते हैं और इस प्रकार समस्त सृष्टि का संहार करते हैं । इस भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों का निर्माण करने पर भी आपकी त्रिगुणातीत स्थिति बनी रहती है ।

सामान्य जीवों की भाँति आप प्रकृति के इन तीनों गुणों से कभी भी बद्ध नहीं होते हैं । "प्रिय भगवन्! आप ही प्रकृति हैं, आप ही जगत्पिता हैं और प्रकृति और भौतिक निर्माता का संयोग करने वाले शाश्वत काल भी आप ही हैं । आप सदैव ही इन सब भौतिक कार्यकलापों से परे हैं । प्रिय प्रभो, हे भगवन्! मुझे ज्ञात है कि पृथ्वी जल, पावक, गगन व समीर, पाँचों इन्द्रियाँ पंचों तन्मात्राएँ मन, इन्द्रियाँ और उनके अधिष्ठातृ देवता, अहंकार तथा महत् तत्त्व-सम्पूर्ण चराचर जगत-आप पर ही निर्भर हैं । प्रत्येक वस्तु आप ही से उत्पन्न होती है, अतएव किसी भी वस्तु को आपसे पृथक् नहीं किया जा सकता है । फिर भी आपकी दिव्य स्थिति के कारण किसी भी भौतिक वस्तु का आपसे तादात्म्य नहीं स्थापित किया जा सकता है ।

अतएव प्रत्येक वस्तु का एक ही समय में आपसे ऐक्य भी है और वैभिन्य भी है । जो दार्शनिक प्रत्येक वस्तु को आपसे पृथक् करने का प्रयास करते हैं उनका दृष्टिकोण निश्चय ही दोषपूर्ण है । "प्रिय भगवन्! यदि आपकी अनुमति हो, तो मैं आपको सूचित करूं कि यह बालक, जिसका नाम भगदत है, मेरे पुत्र भौमासुर का पुत्र है । यह अपने पिता की मृत्यु के कारण निर्मित भयंकर परिस्थिति से अत्यन्त प्रभावित हो गया है और वर्तमान स्थिति से भयभीत होने के कारण यह अत्यन्त भ्रमित हो गया है । अतएव मैं इसे आपके चरणारविन्द की शरण में लाई हूँ । मेरी प्रार्थना है कि भगवन्! आप इस बालक को शरण दीजिए एवं इसे अपने चरणकमलों से आशीर्वाद दीजिए । मैं उसे आपके पास लाई हूँ जिससे कि वह अपने पिता के पापों के फल से मुक्त हो सके ।" जब भगवान् श्रीकृष्ण ने पृथ्वीमाता की स्तुति सुनी, तो तत्काल उन्होंने उसे समस्त भयप्रद स्थितियों से मुक्ति का आश्वासन दिया । उन्होंने भगदत्त से कहा, "भयभीत न हो ।" तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने समस्त ऐश्वर्यों से युक्त भौमासुर के महल में प्रवेश किया । भौमासुर के महल में भगवान् श्रीकृष्ण ने सोलह हजार एक सौ युवती राजकुमारियों को देखा, जिनका हरण करके उसने उन्हें बन्दी बना कर रखा गया था । जब राजकुमारियों ने महल में प्रवेश करते हुए भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन किए, वे तत्काल भगवान् के सौन्दर्य पर मुग्ध हो गई और उनकी अहैतुकी दया की प्रार्थना करने लगीं । बिना किसी असमंजस के उन्होंने अपने हृदय में भगवान् श्रीकृष्ण को पतिरूप में स्वीकार करने का निश्चय किया । वे सब की सब विधाता से प्रार्थना करने लगीं कि श्रीकृष्ण उनके पति हों । निष्ठापूर्वक तथा गम्भीरता से उन्होंने विशुद्ध भक्तिभाव से अपने-अपने हृदय श्रीकृष्ण के चरणकमलों में अर्पित किए । सबके हृदयवासी अन्तर्यामी परमात्मा के रूप में श्रीकृष्ण उनकी निर्दोष इच्छा को समझ सकते थे और वे उन राजकुमारियों को पत्नी रूप में स्वीकार करने के लिए सहमत हो गए । इस प्रकार उन्होंने उन सबके लिए उपयुक्त वस्त्राभूषणों का प्रबन्ध किया और प्रत्येक को

पालकी पर बैठा कर द्वारका भेज दिया । श्रीकृष्ण ने महल से रथों, घोड़ों, रत्नों तथा मूल्यवान वस्तुओं के साथ-साथ असीम सम्पदा भी एकत्र की । श्रीकृष्ण ने महल से चौंसठ सफेद हाथी भी लिये, उनमें से प्रत्येक के चार दाँत थे । उन सबको उन्होंने द्वारका भेज दिया । इस घटना के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण एवं सत्यभामा ने स्वर्ग की राजधानी अमरावती में प्रवेश किया । तत्काल ही उन्होंने राजा इन्द्र तथा उसकी पत्नी शची देवी के महल में प्रवेश किया, जहाँ शची देवी तथा इन्द्र ने उनका स्वागत किया । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने अदिति के कुण्डल इन्द्र को दिए । जब श्रीकृष्ण तथा सत्यभामा इन्द्र की राजधानी से वापस आ रहे थे, तब सत्यभामा को स्मरण हो आया कि श्रीकृष्ण ने उन्हें पारिजात पुष्प का एक पौधा देने का वचन दिया था । स्वर्ग की राजधानी में आने के इस अवसर का लाभ उठा कर, सत्यभामा ने पारिजात का एक पौधा उखाड़ कर उसे गरुड़ की पीठ पर रख लिया । एक बार नारद जी ने एक पारिजात पुष्प ले जाकर श्रीकृष्ण की एक पटरानी रुक्मिणीदेवी को दिया था । इस कारण सत्यभामा में हीनता की भावना विकसित हो गई और वे भी श्रीकृष्ण से एक पारिजात पुष्प प्राप्त करना चाहती थीं । श्रीकृष्ण अपनी सह-पत्नियों के प्रतियोगितापूर्ण स्त्रियोचित स्वभाव को समझ सकते थे, अत: वे मुस्कराए । उन्होंने तत्काल सत्यभामा से प्रश्न किया, "तुम केवल एक पुष्प क्यों माँग रही हो? मैं तुम्हें पारिजात पुष्पों का एक पूर्ण वृक्ष देना चाहूँगा ।" वस्तुत: श्रीकृष्ण अपनी पत्नी सत्यभामा को अपने साथ इसी प्रयोजन से ले गए थे कि वे स्वयं अपने हाथों से पारिजात ले सकेंगी । किन्तु इन्द्र सहित स्वर्ग के सभी नागरिक अत्यन्त क्रोधित हो गए । उनकी अनुमति के बिना ही सत्यभामा ने पृथ्वी लोक पर अप्राप्य पारिजात का पौधा उखाड़ लिया था । अन्य देवताओं सहित इन्द्र ने श्रीकृष्ण तथा सत्यभामा के द्वारा उस पौधे को ले जाने का विरोध किया । किन्तु अपनी प्रिय पत्नी सत्यभामा को प्रसन्न करने के लिए श्रीकृष्ण भी दृढ़ व कठोर बन गए, अतएव देवताओं तथा श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध हुआ । सदा की भाँति श्रीकृष्ण विजयी हुए और

अपनी पत्नी के द्वारा चुने गए पारिजात के पौधे को वे गौरव सहित पृथ्वी लोक में द्वारका ले आए । इसके पश्चात् पौधे को सत्यभामा के महल के उद्यान में लगा दिया गया । इस असामान्य वृक्ष के कारण सत्यभामा का उद्यान-भवन असामान्य रूप से सुन्दर बन गया । जब पारिजात का पौधा पृथ्वी लोक पर आया तब उसकी सुगन्ध भी आई और उसकी सुगन्ध और मधु की खोज में स्वर्ग के राजहंस भी पृथ्वी पर उतर आए । श्रीशुकदेव गोस्वामी जैसे महान् सन्तों ने श्रीकृष्ण के प्रति इन्द्र के व्यवहार की निन्दा की । इन्द्र की माता के कुण्डल भौमासुर ने हर लिए थे । अपनी अहैतुकी कृपा के कारण श्रीकृष्ण वे कर्णफूल इन्द्र को देने के लिए स्वर्गलोक अमरावती गए और इन्द्र उन कर्णफूलों को प्राप्त करके अत्यन्त प्रसन्न हुआ । किन्तु जब पुष्प का एक पौधा श्रीकृष्ण ने स्वर्ग लोक से ले लिया, तो इन्द्र युद्ध करने को तत्पर हो गया । यह इन्द्र का स्वार्थ था । श्रीकृष्ण के चरणकमलों में शीश झुका कर उसने स्तुति की किन्तु जैसे ही उसका प्रजोजन सिद्ध हो गया, वह बदल गया । भौतिकतावादी मानवों का व्यवहार इसी प्रकार का होता है । भौतिकतावादी मानव सदैव अपने ही लाभ में रुचि रखते हैं । इस प्रयोजन से वे किसी का भी किसी भी प्रकार से सम्मान कर सकते हैं, किन्तु जब उनका व्यक्तिगत लाभ पूर्ण हो जाता है, तब उनकी मैत्री भी समाप्त हो जाती है । ऐसा स्वार्थी स्वभाव न केवल इस लोक के सम्पन्न वर्ग के लोगों में पाया जाता है, अपितु यह इन्द्र तथा अन्य देवताओं में भी उपस्थित है । अत्यधिक सम्पत्ति मानव को स्वार्थी बना देती है । स्वार्थी मनुष्य श्रीकृष्ण भक्ति को अपनाने को तत्पर नहीं होता है और श्रीशुकदेव गोस्वामी आदि महान् भक्त उसकी निन्दा करते हैं । दूसरे शब्दों में, अत्यधिक भौतिक धन का होना कृष्णभावनामृत के मार्ग में प्रगति के लिए एक अयोग्यता है । इन्द्र को परास्त करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने भौमासुर के महल से मुक्त करा कर लाई गई सोलह हजार एक सौ कन्याओं के साथ विवाह का आयोजन किया । सोलह हजार रूपों में अपना विस्तार करके श्रीकृष्ण ने विभिन्न महलों में एक ही शुभ घड़ी में

उन सबसे विवाह किया । इस प्रकार उन्होंने इस सत्य को स्थापित कर दिया कि अन्य कोई नहीं, अपितु केवल श्रीकृष्ण ही स्वयं भगवान् हैं । उनके लिए कुछ भी असम्भव नहीं है, क्योंकि श्रीकृष्ण ही परम ईश्वर हैं, वे सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापक तथा अविनाशी हैं, अतएव इस लीला में कुछ भी आश्चर्यजनक नहीं है । श्रीकृष्ण की सोलह हजार से भी अधिक रानियों के सभी महल योग्य उपवनों, साज-सामानों और अन्य ऐसी सामग्रियों से पूर्ण थे जिनकी इस जगत में कोई उपमा नहीं है ।

क्रीमद्भागवत की इस कथा में कोई अतिशयोक्ति नहीं है । श्रीकृष्ण की समस्त रानियाँ श्रीदेवी लक्ष्मी जी की अंश हैं । श्रीकृष्ण उनके साथ विभिन्न महलों में रहते थे और उनके साथ एकदम उसी भाँति व्यवहार करते थे जैसे एक सामान्य पुरुष अपनी पत्नी के साथ करता है । हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि भगवान् श्रीकृष्ण एक मानव की भाँति अभिनय कर रहे थे । यद्यपि उन्होंने सोलह हजार से भी अधिक पत्नियों से सोलह हजार से अधिक महलों में एकसाथ विवाह कर के अपने असाधारण ऐश्वर्यों का प्रदर्शन किया था, तथापि सामान्य गृह में पति-पत्नी से जिस प्रकार के सम्बन्ध की आशा की जाती है, उन्होंने उनके साथ वैसा ही सम्बन्ध दृढ़तापूर्वक निभाया, अतएव परमब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण के लक्षणों को समझना अत्यन्त कठिन है । ब्रह्मा जैसे देवता तथा अन्य देवता भी भगवान् की दिव्य लीलाओं को समझने में असमर्थ रहते हैं । श्रीकृष्ण की पत्नियाँ इतनी सौभाग्यशालिनी थीं कि उन्हें पति रूप में श्रीभगवान् प्राप्त हुए । उनके पति का चरित्र ब्रह्मा जैसे देवताओं को भी अज्ञात था । पति-पत्नी के रूप में व्यवहार करते हुए श्रीकृष्ण और उनकी रानियाँ परस्पर मुस्कराते थे, वार्तालाप करते थे, विनोद और आलिंगन करते थे । उनका दाम्पत्य सम्बन्ध दिनोदिन विकसित होता रहा । इस प्रकार श्रीकृष्ण तथा उनकी रानियों ने अपने गृहस्थ जीवन में दिव्य आनन्द का आस्वादन किया । यद्यपि प्रत्येक रानी की सेवा के लिए हजारों दासियाँ नियुक्त थीं,

तथापि वे सभी श्रीकृष्ण की सेवा स्वयं करती थीं । श्रीकृष्ण के महल में प्रवेश करते समय प्रत्येक रानी स्वयं उनका स्वागत करती थी । वे श्रीकृष्ण को उत्तम आसन पर आसीन करने, उन्हें सर्वप्रकार की उपासना की सामग्री अर्पित करने, गंगाजल से उनके चरणकमल धोने, उन्हें पान देने तथा उनके चरण दबाने में संलग्न हो जाती थीं । इस प्रकार वे घर से दूर रहने की उनकी थकान दूर करती थीं । वे भलीभाँति उन्हें पंखा झलती थीं, सुगन्धित पुष्पों का तेल अर्पित करती थीं और पुष्पमालाओं से उनकी सजा करती थीं । वे श्रीकृष्ण के स्वादिष्ट भोजन कराती थीं । ये सारे कार्य रानियाँ स्वयं करती थी । वे दासियों की प्रतीक्षा नहीं करती थीं । दूसरे शब्दों में, श्रीकृष्ण और उनकी विभिन्न रानियों ने पृथ्वी पर आदर्श गृहस्थ-जीवन का प्रदर्शन किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भौमासुर का उद्धार" नामक उनसठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 60
श्री कृष्ण एवं रुक्मणी जी के मध्य वार्तालाप

बहुत समय पूर्व एक बार ब्रह्मा से लेकर तुच्छ चींटी तक समस्त जीवों को ज्ञान प्रदान करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी के शयन-कक्ष में विराजमान थे । अपनी सहायिका दासियों सहित वे भगवान् की सेवा में संलग्न थीं । श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी के पलंग पर बैठे हुए थे और दासियाँ उनको चामर डुला रही थीं । भगवान् श्रीकृष्ण का रुक्मिणीजी के साथ एक आदर्शपति की भाँति व्यवहार श्रीभगवान् की परम पूर्णता की आदर्श अभिव्यक्ति है । ऐसे अनेक दार्शनिक हैं, जो पूर्ण सत्य के ऐसे विचार को प्रतिपादित करते हैं जिसमें ईश्वर यह अथवा वह नहीं कर सकता । वे ईश्वर अथवा पूर्ण सत्य के मानव-रूप में अवतार को अस्वीकार करते हैं । किन्तु वास्तव में तथ्य भिन्न है । भगवान् हमारे अपूर्ण ऐन्द्रिय

कार्यकलापों के भागी नहीं हो सकते हैं । वे सर्वशक्तिमान सर्वव्यापक श्रीभगवान् हैं । वे अपनी इच्छा से न केवल समस्त सृष्टि की रचना, पालन एवं संहार कर सकते हैं, अपितु सर्वोच्च ध्येय की पूर्ति के हेतु वे साधारण मानव की भाँति अवतरित भी हो सकते हैं ।

जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है कि जब भी मानवों के वृतिपरक कार्यों की (धर्म की) पूर्ति में असामंजस्य (हास) होता है, वे अवतरित होते हैं । कोई बाह्य सता उन्हें अवतरित होने के लिए बाध्य नहीं करती है । मानवों के कार्यकलापों के आदर्श को स्थापित करने के लिए तथा साथ ही साथ मानव-सभ्यता की प्रगति में बाधा डालने वाले तत्वों के विनाश के लिए वे स्वयं अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा अवतरित होते हैं । श्रीभगवान् की दिव्य लीलाओं के इस सिद्धान्त के अनुसार वे अपने शाश्वत श्रीकृष्ण रूप में यदुवंश में अवतरित हुए । रुक्मिणी जी के महल की साज-सजा अद्भुत थी । छत पर अनेक चन्दोवे लटके हुए थे, जिनमें मोतियों की मालाओं से सजित झालरें लगी हुई थीं । सम्पूर्ण महल मूल्यवान रत्नों की कान्ति से प्रकाशित था । भारत में सर्वाधिक सुगन्धित माने जाने वाले पुष्प बेला और चमेली की अनेक वाटिकाएँ महल में थीं । इन पौधों के कई समूह थे जिसमें खिलते हुए पुष्प महल के सौन्दर्य में वृद्धि कर रहे थे । पुष्पों की मधुर गन्ध के कारण वृक्षों के चारों ओर गुंजन करती हुई मधुमक्खियों के छोटेछोटे समूह मैंडरा रहे थे । रात्रि में झरोखों की जाली से मुदित करने वाली चन्द्रिका छन-छन कर आती थी । वहाँ पुष्पों से लदे हुए अनेक पारिजात के वृक्ष थे और मन्द समीर पुष्पों की सुगन्ध को चारों ओर फैला रहा था । महल की चारदिवारी के अन्दर धूप जल रहा था और उसका सुगन्धित धुंआ झरोखों की जालियों में से बाहर निकल रहा था । कक्ष में दुग्ध फेन के समान धवल चादरों से ढँके गद्दे थे । शैय्या इतनी मृदु एवं धवल थी, जैसे दुग्ध फेन हो । इस स्थिति में भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त सुखपूर्वक बैठे हुए थे और दासियों की सहायता से रुक्मिणी जी

उनकी सेवा का आस्वादन कर रही थीं । भगवान् रुक्मिणी जी की सेवा का आनन्द उठा रहे थे । रुक्मिणी जी भी पति के रूप में श्रीभगवान् की सेवा का अवसर प्राप्त करने के लिए अतिशय उत्सुक थीं । अतएव वे स्वयं भगवान् की सेवा करना चाहती थीं अत: दासी के हाथ से चामर की मूठ ले कर वे स्वयं पंखा डुलाने लगीं । चामर की मूठ स्वर्णनिर्मित थी और उसमें अनेक मूल्यवान रत्न जड़े हुए थे । रुक्मिणी जी की सभी उँगलियाँ रत्नजटित अंगूठियों से सुशोभित थीं, अत: उनके करकमलों में आकर चामर की मूठ और भी अधिक शोभायमान् हो उठी । उनके पैरों में पायल थी और उसमें रत्न लगे हुए थे, उनकी साड़ी की चुन्नटों के मध्य पायल के धुंघरू मधुर स्वर में बज उठते थे । रुक्मिणीजी के उन्नत स्तन कुंकुम तथा केसर से मण्डित थे । इस प्रकार के वस्त्र से ढँके हुए स्तनों से निकलने वाले रतिम प्रतिबिम्ब के द्वारा उनके सौन्दर्य में वृद्धि हो रही थी । उनके नितम्बों का अतिशय उन्नत कटि-प्रदेश रत्नजटित मेखला से सजित था और उनके कंठ में अतिशय कान्ति वाला हार शोभायमान् था । सबसे महत्वपूर्ण बात यह थी कि, यद्यपि उनकी आयु इतनी हो चुकी थी कि उनके बड़े-बड़े पुत्र होते, तथापि भगवान् श्रीकृष्ण की सेवा में संलग्न होने के कारण उनका सुन्दर शरीर तीनों लोकों में अतुलनीय था । जब हम उनके सुन्दर मुख का ध्यान करते हैं, तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनके सिर पर के कुंचित केश, उनके कानों के सुन्दर कर्णफूल, उनका सस्मित मुख और उनकी स्वर्णमाला, सब मिल कर अमृत वर्षा कर रहे हों । यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि रुक्मिणी जी भगवान् श्रीनारायण के चरणकमलों की सेवा में सदैव संलग्न रहने वाली मूल लक्ष्मीजी के अतिरिक्त और कोई नहीं थीं । महाजनों ने श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणीजी की द्वारका की लीलाओं को श्रीनारायण एवं लक्ष्मीजी की अभिव्यक्ति माना है, जो ऐश्वर्य से परिपूर्ण हैं । वृन्दावन में श्रीराधाकृष्ण लीलाएँ सरल तथा ग्राम्य हैं और द्वारका की लीलाओं की सुसंस्कृत विशेषताओं से भिन्न हैं । रुक्मिणीजी के विशिष्ट गुण असामान्य रूप से

उज्वल थे और श्रीकृष्ण उनके व्यवहार से अत्यधिक सन्तुष्ट थे । श्रीकृष्ण ने अनुभव किया था कि जब नारद मुनि ने रुक्मिणी जी को एक पारिजात पुष्प अर्पित किया था, तब सत्यभामा अपनी सौत के प्रति विद्वेष से भर गई थीं और तत्काल उन्होंने श्रीकृष्ण से एक वैसे ही पुष्प की माँग की थी । वस्तुतः वे तब तक सन्तुष्ट नहीं हुई जब तक श्रीकृष्ण ने उन्हें पारिजात का एक पूर्ण वृक्ष देने का वचन नहीं दे दिया था । अन्ततः श्रीकृष्ण ने अपना वचन पूरा किया और स्वर्गलोक से वे एक वृक्ष पृथ्वी लोक पर ले आए । इस घटना के उपरान्त श्रीकृष्ण को आशा थी कि सत्यभामा को पारिजात का एक पूर्ण वृक्ष दिए जाने पर रुक्मिणी जी किसी न किसी वस्तु की माँग करेंगी । किन्तु रुक्मिणी जी ने उस घटना की कोई चर्चा ही नहीं की, क्योंकि वे स्वभावतः गम्भीर प्रकृति की थीं और अपनी सेवा में ही सन्तुष्ट थीं । श्रीकृष्ण उन्हें किंचित् रुष्ट देखना चाहते थे, अतएव उन्होंने रुक्मिणी जी के सुन्दर मुख को रुष्टावस्था में देखने के लिए चाल चली । यद्यपि श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ से भी अधिक रानियाँ थीं, वे प्रत्येक से कौटुम्बिक स्नेहपूर्वक व्यवहार करते थे । वे अपने तथा अपनी पत्नी के मध्य ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर देते थे जिसमें पत्नी मान-वश उनकी आलोचना करे और श्रीकृष्ण उसका आनन्द उठाते थे । इस मामले में श्रीकृष्ण रुक्मिणीजी में कोई दोष न ढूँढ सके, क्योंकि वे महान् थीं और सदैव उनकी सेवा में संलग्न रहती थीं, अतएव अतिशय प्रेमपूर्वक मुस्कराते हुए वे उनसे कहने लगे । रुक्मिणी जी राजा भीष्मक की पुत्री थीं, जो कि एक बलवान राजा थे । अतः श्रीकृष्ण ने उन्हें रुक्मिणी न कह कर इस बार उन्हें राजकन्या कह कर सम्बोधित किया-"प्रिय राजकन्या! यह कितने आश्चर्य की बात है कि राजवंशों के अनेक महान् सदस्य तुमसे विवाह करना चाहते थे । यद्यपि उनमें से सभी राजा नहीं थे तथापि सबके पास राजोचित ऐश्वर्य था । वे शिष्ट व्यवहार वाले, विद्वान राजाओं में विख्यात, शारीरिक रूप से सुन्दर और व्यक्तिगत रूप से योग्य थे । वे सभी उदार, बलवान् तथा प्रत्येक दृष्टि से प्रगतिशील थे । वे किसी भी

प्रकार से अयोग्य नहीं थे और सबसे बड़ी बात यह कि तुम्हारे पिता तथा भाई को इन विवाहों पर कोई आपत्ति नहीं थी । इसके विपरीत उन्होंने शिशुपाल से तुम्हारा विवाह करने का वचन दिया था और इस विवाह को तुम्हारे माता-पिता की सहमति प्राप्त थी । शिशुपाल एक महान् राजा था और तुम्हारे सौन्दर्य के पीछे इतना कामुक तथा उन्मत था कि यदि तुमसे उसका विवाह हो जाता, तो मेरा विचार है कि वह सदैव तुम्हारा आज्ञाकारी दास बन कर रहता । 'अनेक व्यक्तिगत गुणों से युक्त शिशुपाल की तुलना में मैं कुछ भी नहीं हूँ । तुम भी स्वयं यह तथ्य समझती होगी । मुझे आश्चर्य है कि तुमने शिशुपाल से विवाह न करके मुझे स्वीकार किया, जो तुलना में शिशुपाल से हीन है । मेरे विचार से मैं पूर्णरूप से तुम्हारा पति होने के अयोग्य हूँ, क्योंकि तुम इतनी सुन्दर, शान्त, गम्भीर तथा श्रेष्ठ हो । क्या मैं तुमसे वह कारण पूछ सकता हूँ जिसने तुमको मुझे स्वीकार करने को प्रेरित किया? वस्तुत: अब मैं तुम्हें अपनी सुन्दरी पत्नी कह कर सम्बोधित कर सकता हूँ किन्तु फिर भी मैं तुम्हें अपने वास्तविक पद से अवगत करा दूँकि मैं तुमसे विवाह करने के लिए इच्छुक उन सभी राजाओं से हीन हूँ । "सर्वप्रथम तुम्हें ज्ञात है कि मैं जरासन्ध से इतना भयभीत था कि मुझे धरती पर निवास करने का साहस नहीं था और इस प्रकार मैंने सागर के भीतर में इस भवन का निर्माण किया है । यह गुप्त तथ्य लोगों पर प्रकट करने का कार्य मेरा नहीं है, किन्तु तुम्हें अवश्य ज्ञात होना चाहिए कि मैं बहुत शूरवीर नहीं हूँ, मैं कायर हूँ और उन लोगों से डरता हूँ । फिर भी मैं सुरक्षित नहीं हूँ, क्योंकि धरती पर के सभी राजा मुझसे वैर रखते हैं । अनेक प्रकार से उनसे युद्ध करके मैंने स्वयं इस वैर को मोल लिया है । दूसरा दोष यह है कि यद्यपि मैं द्वारका के सिंहासन पर आसीन हूँ किन्तु मेरा इस पर कोई अधिकार नहीं है । अपने मामा कंस को मार कर यद्यपि मुझे एक राज्य की प्राप्ति हुई थी, तथापि वह राज्य मेरे नाना का था, अतएव वास्तव में मेरा कोई राज्य नहीं है । इसके अतिरिक्त जीवन में मेरा कोई निश्चित लक्ष्य नहीं है । लोग

मुझे भली-भाँति समझ नहीं पाते हैं । मेरे जीवन का चरम लक्ष्य क्या है? उन्हें भलीभाँति ज्ञात है कि मैं वृन्दावन में एक गोप बालक था । लोगों को अपेक्षा थी कि मैं अपने पिता नन्द महाराज के चरणचिह्नों पर चलूँगा और श्रीमती राधारानी और वृन्दावन ग्राम की उनकी अन्य सखियों के प्रति सत्यनिष्ठ रहूँगा । किन्तु अचानक ही मैंने उन्हें छोड़ दिया । मैं एक प्रसिद्ध राजा बनना चाहता था । फिर भी मुझे न तो राज्य प्राप्त हुआ और न मैं राजा की भाँति शासन कर सका । लोगों को मेरे जीवन के चरम लक्ष्य के विषय में भ्रम उत्पन्न हो गया है । वे समझ नहीं पाते हैं कि मैं गोप बालक हूँ ।अथवा एक राजकुमार, मैं नन्द महाराज का पुत्र हूँ, अथवा वसुदेव जी का । जीवन में मेरा कोई निश्चित लक्ष्य न होने के कारण लोग मुझे घुमकड़ कह सकते हैं । अतएव मैं चकित हूँ कि तुमने एक ऐसा घुमकड़ पति किस प्रकार चुना?

"इसके अतिरिक्त, सामाजिक शिष्टाचार में भी मैं पटु नहीं हूँ । एक व्यक्ति को एक पत्नी से सन्तुष्ट रहना चाहिए, किन्तु तुम देख ही रही हो कि मैंने अनेक विवाह किए हैं और मेरी सोलह हजार से भी अधिक पत्नियाँ हैं । एक निपुण पति की भाँति मैं उन सबको प्रसन्न नहीं रख सकता हूँ । उनके साथ मेरा व्यवहार बहुत अच्छा नहीं है और तुम्हें इस बात का भली-भाँति ज्ञान है । कभी-कभी मैं अपनी पत्नियों के साथ ऐसी स्थिति ला देता हूँ, जो सुखदायक नहीं होती है । बचपन में मेरी शिक्षा एक गाँव में होने के कारण मैं नगरीय जीवन के शिष्टाचारों से भली-भाँति परिचित नहीं हूँ । सुन्दर शब्दों तथा व्यवहार से पत्नी को प्रसन्न करने की कला मुझे ज्ञात नहीं है । व्यावहारिक अनुभव से ज्ञात होता है कि मेरे मार्ग का अनुसरण करने वाली अथवा मुझ पर अनुरक्त होने वाली किसी भी स्त्री को अन्ततः जीवन भर रोना पड़ता है । वृन्दावन में अनेक गोपियाँ मेरे वियोग में केवल रोती रहती हैं । मैंने अक्रूर जी तथा उद्धव जी से सुना है कि मेरे वृन्दावन छोड़ने के बाद से मेरे सभी ग्वालबाल सखा, गोपियाँ और राधारानी और मेरे पिता

नन्द महाराज निरन्तर मेरे लिए रो रहे हैं । मैंने वृन्दावन को सदैव के लिए त्याग दिया है और अब द्वारका में रानियों के साथ व्यस्त हूँ किन्तु तुममें से किसी के साथ भी मेरा व्यवहार अच्छा नहीं है । अतएव तुम अच्छी तरह समझ सकती हो कि मेरे चरित्र में कोई दृढ़ता नहीं है, मैं एक अति विश्वासयोग्य पति नहीं हूँ । मेरी ओर आकर्षित होने वाले को अन्ततः मात्र विछोह का जीवन प्राप्त होता है ।

'प्रिय सुन्दरी! हे राजकुमारी! तुम्हें यह भी ज्ञात होना चाहिए कि मैं सदैव से धन-हीन हूँ । मेरे जन्म के तत्काल बाद मुझ निर्धन को नन्द महाराज के घर ले जाया गया और वहाँ एक गोप बालक के समान मेरा पालन-पोषण हुआ । यद्यपि मेरे पोषक पिता के पास हजारों गाएँ थीं, किन्तु उनमें से एक भी मेरी सम्पति नहीं थी । मुझे केवल उनकी देखभाल और सेवा करने का कार्य दिया गया था, किन्तु मैं उनका स्वामी नहीं था । यहाँ भी मैं किसी वस्तु का स्वामी नहीं हूँ, अपितु सदैव निर्धन हूँ । इस प्रकार की निर्धन स्थिति पर शोक करने का कोई कारण नहीं है । भूतकाल में मेरे पास कुछ नहीं था, अतएव वर्तमान में भी यदि मेरे पास कुछ नहीं है, तो मैं शोक क्यों करूँ? तुम यह भी ध्यान दो कि मेरे भक्त भी अतिशय ऐश्वर्यवान् व्यक्ति नहीं हैं, भौतिक धन-सम्पत्ति में वे भी निर्धन ही हैं । भौतिक सम्पति से युक्त जो धनी व्यक्ति हैं, मेरी भक्ति अथवा कृष्णभावनामृत में उनकी रुचि नहीं है । इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति बलात् अथवा परिस्थितिवश निर्धन हो जाता है, तब यदि उसे उचित अवसर प्राप्त हो, तो उसकी रुचि मुझमें हो सकती है । सम्पत्ति का जिन्हें गर्व है, ऐसे व्यक्तियों को मेरे भक्तों का संग दिया भी जाए, तो वे संग का लाभ नहीं उठाते हैं । दूसरे शब्दों में, निर्धन वर्ग के लोगों की मुझमें रुचि हो सकती है, किन्तु सम्पन्न वर्ग के लोगों को कोई रुचि नहीं है । अतएव मेरा विचार है कि तुमने जो मुझे चुना था, वह बुद्धिमतापूर्ण निर्णय नहीं था । अपने पिता व भाई से शिक्षा प्राप्त करके तुम अत्यन्त बुद्धिमती प्रतीत

होती हो, किन्तु अन्ततः जीवन-साथी के चुनाव में तुमने एक महान् भूल कर दी है । किन्तु अभी भी कुछ बिगड़ा नहीं है । ऐश्वर्य, पारिवारिक परम्परा, सम्पति, सौन्दर्य, शिक्षा आदि सभी दृष्टियों से जो वास्तव में तुम्हारे समान हो, ऐसे एक योग्य पति का चुनाव करने को तुम स्वतंत्र हो । तुमने जो भी भूलें की होंगी वे विस्मृत कर दी जाएँगी । अब तुम अपना फलदायक जीवन-मार्ग स्वयं निर्धारित कर सकती हो । सामान्यतया अपने पद से उच्च अथवा निम्न पद वालों के साथ विवाह-सम्बन्ध स्थापित नहीं किया जाता है । प्रिय विदर्भराज-कन्ये! मेरा विचार है कि तुमने विवाह से पूर्व गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया था । अतएव तुमने पति के रूप में मेरा गलत चुनाव कर लिया । तुमने गलत रूप से यह सुन लिया कि मैं अत्यन्त श्रेष्ठ चरित्र वाला हूँ, जबकि वास्तव में मैं एक भिक्षुक से अधिक कुछ नहीं था । मुझे अथवा मेरी वास्तविक स्थिति को देखे बिना, केवल मेरे विषय में सुन कर ही तुमने मुझे पति रूप में चुन लिया । ऐसा करना उचित नहीं था । अतएव मेरा तुमको परामर्श है कि अब तुम किसी महान् क्षत्रिय राजा को चुन कर उसे अपने जीवनसाथी के रूप में स्वीकार कर सकती हो और मुझे त्याग सकती हो ।" श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी जी के समक्ष विवाह-विच्छेद का प्रस्ताव तब रखा, जब पहले से ही रुक्मिणी जी अनेक युवा पुत्रों की माता बन चुकी थीं । अतएव रुक्मिणीजी के सम्मुख रखा गया श्रीकृष्ण का प्रस्ताव अनपेक्षित था, क्योंकि वैदिक सभ्यता में पति-पत्नी को विलग करने के लिए विवाह-विच्छेद जैसी कोई चीज नहीं है । न ही रुक्मिणीजी के लिए प्रौढ़ावस्था में ऐसा करना सम्भव था, जबकि उनके कई विवाहित पुत्र भी थे । श्रीकृष्ण का प्रत्येक प्रस्ताव रुक्मिणी जी को पागलपन के समान प्रतीत हुआ और श्रीकृष्ण ऐसी बातें कह सकते हैं, इस पर उन्हें अत्यन्त आश्चर्य हुआ । यद्यपि वे अत्यन्त सरल स्वभाव की थीं, किन्तु श्रीकृष्ण से वियोग के विचार से उनकी व्याकुलता पल-पल बढ़ रही थी । श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "तुम्हें अपना परलोक भी बनाना है । अतएव तुमको परामर्श है कि तुम किसी

ऐसे व्यक्ति को चुनी जो तुम्हारे इस जीवन तथा अगले जीवन दोनों में सहायक हो सके, क्योंकि मैं तुम्हारी सहायता करने में पूर्णरूप से असमर्थ हूँ । हे सुन्दर राजकुमारी! तुम जानती हो कि शिशुपाल, शाल्व, जरासन्ध, दन्तवक्र और तुम्हारे भाई रुक्मी सहित समस्त राजा मेरे शत्रु हैं । वे मुझे पसन्द नहीं करते हैं । अपने अन्तर्मन से वे मुझसे घृणा करते हैं । वे सभी राजा अपनी भौतिक सम्पत्ति पर अत्यन्त गर्व करते थे और वे अपने समक्ष आने वाले किसी भी व्यक्ति की चिन्ता नहीं करते थे । उनको पाठ पढ़ाने के उद्देश्य से तुम्हारे इच्छानुसार मैं तुम्हारा हरण करने के लिए सहमत हो गया था । यद्यपि तुम विवाह से पूर्व भी मुझसे प्रेम करती थीं, किन्तु वास्तव में मुझे तुमसे कोई प्रेम नहीं है । "जैसा मैंने पहले ही स्पष्ट कर दिया है, पारिवारिक जीवन अथवा पति-पत्नी के मध्य प्रेम में मेरी कोई विशेष रुचि नहीं है । पारिवारिक जीवन, पत्नी, सन्तान, घर अथवा ऐश्वर्य के प्रति स्वभाव से ही मेरी विशेष रुचि नहीं है । जिस प्रकार मेरे भक्त सदैव इन भौतिक सम्पत्तियों के प्रति उदासीन रहते हैं, मैं भी वैसा ही हूँ । वास्तव में मुझे आत्म-साक्षात्कार में रुचि है, क्योंकि वही मुझे सुख देता है, पारिवारिक जीवन नहीं ।" इस प्रकार कहने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण अचानक मौन हो गए । महान् अधिकारी शुकदेव गोस्वामी कहते हैं कि लगभग सदैव ही श्रीकृष्ण अपना समय रुक्मिणी जी के साथ व्यतीत करते थे । रुक्मिणी जी को इस बात का किंचित् गर्व था कि वे इतनी भाग्यशालिनी हैं कि श्रीकृष्ण क्षण-भर भी उनसे दूर नहीं रहते हैं । किन्तु श्रीकृष्ण को अपने किसी भी भक्त का गर्वित होना अच्छा नहीं लगता है । जैसे ही कोई भत गर्वित हो जाता है वैसे ही भगवान् किसी-न-किसी विधि से उसका गर्व खण्डित कर देते हैं । इस उदाहरण में भी श्रीकृष्ण ने बहुत-सी ऐसी बातें कहीं जिनका सुनना रुक्मिणी जी को अप्रिय लगा । वे केवल यही निष्कर्ष निकाल सकीं कि यद्यपि उन्हें अपने पद पर गर्व है, तथापि श्रीकृष्ण किसी भी क्षण उनसे वियुक्त हो सकते हैं । रुक्मिणी जी को ज्ञात था कि उनके पति सामान्य मानव नहीं थे । वे तीनों लोकों के

स्वामी श्रीभगवान् थे । वे जिस भाँत बोल रहे थे, उससे रुक्मिणी जी को भगवान् के वियोग का भय होने लगा था, क्योंकि इससे पूर्व उन्होंने श्रीकृष्ण से ऐसे कठोर वचन कभी नहीं सुने थे । इस प्रकार वे वियोग के भय से चिन्तित हो उठीं और उनकी हृदयगति तीव्र हो उठी । श्रीकृष्ण के एक भी शब्द का उत्तर दिए बिना, वे अत्यन्त दुख से केवल रोने लगीं, जैसे कि वे दुख के सागर में डूब रही हों । वे नि:शब्द अपने पैर के नाखूनों से धरती कुरेदने लगीं । उनके पैर के नाखूनों का रतिम प्रतिबिम्ब धरती पर पड़ रहा था । उनके नयनों से बहने वाले अश्रु गुलाबी थे और उनसे उनकी पलकों का अंजन धुल गया था । अश्रु उनके स्तनों पर के कुमकुम व केसर को बहाते हुए नीचे गिर रहे थे । अत्यन्त दुख से उनका कण्ठ अवरुद्ध हो गया था और एक भी शब्द कहने में असमर्थ वे सिर झुका कर छड़ी की भाँति खड़ी की खड़ी रह गई । अत्यन्त दुखद भय तथा शोक के कारण उनकी समस्त तर्कशक्ति लुप्त हो गई । वे इतनी शक्तिहीन हो गई, तत्काल इतना भार कम हो गया कि उनकी कलाई की चूड़ियाँ ढीली हो गई । जिस चामर से वे श्रीकृष्ण को हवा कर रही थीं, वह तत्काल उनके हाथ से गिर पड़ा । उनका मस्तिष्क एवं स्मृति भ्रमित हो गई और वे चेतनाहीन हो गई । उनके सिर की सुन्दर केशसज्जा खुल गई और उनके केश इधर-उधर बिखर गए । आँधी से कटे हुए केले के वृक्ष की भाँति वे सीधे गिर पड़ीं । भगवान् श्रीकृष्ण तत्काल समझ गए कि रुक्मिणी जी ने उनके शब्दों को विनोद के रूप में नहीं ग्रहण किया है । रुक्मिणी जी ने श्रीकृष्ण के शब्दों को अत्यन्त गम्भीरता से लिया था और उनके आसन्न वियोग के अतीव दुख में वे इस तरह गिर पड़ी थीं । भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्तों के प्रति स्वाभाविक रूप से अत्यधिक स्नेह रखते हैं । रुक्मिणी जी की इस दशा को देख कर उनका हृदय तत्क्षण द्रवित हो गया । वे तत्क्षण रुक्मिणी जी पर दयालु हो गए । श्रीकृष्ण तथा रुक्मिणी जी का सम्बन्ध लक्ष्मी-नारायण के सम्बन्ध जैसा था, अतएव श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी के सम्मुख अपने चतुर्भुज नारायण के रूप में प्रकट हुए । वे

पलंग से उतर आए और रुक्मिणी जी का हाथ पकड़ कर उन्हें उठाया । अपने शीतल हाथों को उनके भीगे मुख पर रख कर उनके बिखरे हुए केश सँवार दिये । रुक्मिणी जी के भीगे स्तन को भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने हाथ से सुखाया । अपने प्रति रुक्मिणी जी के प्रेम की गम्भीरता को समझते हुए श्रीकृष्ण ने उन्हें अपनी छाती से लगा लिया । किसी को समझाने के लिए किसी बात को भक्तिपूर्वक प्रस्तुत करने में श्रीभगवान् अत्यन्त कुशल हैं । इस प्रकार उन्होंने पहले जो कुछ भी कहा था, उससे मुकरने का प्रयास किया । भक्तों के वे एकमात्र आश्रय हैं, अतएव अपने शुद्ध भक्तों को सन्तुष्ट करने की कला उन्हें भली-भाँति ज्ञात है । श्रीकृष्ण समझ गए कि विनोदपूर्ण ढंग से उन्होंने जो कहा था, उसे रुक्मिणी जी समझ नहीं सकी थीं । उनके भ्रम का निवारण करने के लिए श्रीकृष्ण ने पुन: निम्न प्रकार से कहना प्रारम्भ किया । "हे विदर्भराज पुत्री! प्रिय रुक्मिणी! तुम मेरे कहने का गलत अर्थ न लगाओ । मेरे प्रति इस प्रकार अकृपालु न बनो । मुझे ज्ञात है कि तुम सच्चे रूप में और गम्भीरता से मुझ पर आसक्त हो । तुम्हीं मेरी शाश्वत संगिनी हो । जिन बातों से तुम इतनी प्रभावित हो गई हो, वे वास्तव में तथ्य नहीं हैं । मैं तुम्हें किंचित् रुष्ट करना चाहता था और मुझे अपेक्षा थी कि तुम इन विनोदपूर्ण शब्दों का प्रत्युतर दोगी । दुर्भाग्यवश तुमने उन्हें गम्भीरता से ले लिया है । मुझे इस बात का अत्यन्त खेद है । मुझे आशा थी कि मेरा कथन सुन कर क्रोध से तुम्हारे लाल अधर फड़क उठेंगे और तुम अनेक शब्दों से मेरी भत्सना करोगी । हे प्रेम की पूर्णता! मुझे यह आशा नहीं थी कि तुम्हारी ऐसी दशा हो जाएगी । मुझे आशा थी कि तुम प्रतिक्रिया-स्वरूप अपने मुलमुलाते नेत्र मुझ पर डालोगी और इस प्रकार मैं तुम्हारे सुन्दर मुख की क्रोधपूर्ण मुद्रा के दर्शन कर सकूंगा । "प्रिय सुन्दरी भार्या! तुम्हें ज्ञात है कि हम गृहस्थ हैं । हम सदैव गृहस्थी के नानाविध कार्यों में व्यस्त रहते हैं, अतएव हमें ऐसे समय की प्रतीक्षा रहती है, जब हम परस्पर विनोदपूर्ण शब्दों का आनन्द उठा सकें । गृहस्थ जीवन में वही हमारा परम आमोद-प्रमोद है

। वास्तव में गृहस्थ समस्त दिन-रात कठोर श्रम करते हैं, किन्तु जैसे ही पति-पत्नी एकसाथ मिलते हैं उनके पूरे दिन के श्रम की थकान दूर हो जाती है और वे अनेक प्रकार से जीवन का आनन्द उठाते हैं ।" भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं को एक सामान्य गृहस्थ की भाँति प्रदर्शित करना चाहते थे, जो पत्नी से विनोदपूर्ण वार्तालाप करके प्रसन्न होता है । अतएव उन्होंने बारम्बार रुक्मिणी से विनती की कि वे उन शब्दों को गम्भीरता से न लें । इस रीति से भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मधुर वचनों से रुक्मिणी जी को शान्त कर दिया । इसके पश्चात् वे समझ गई कि श्रीकृष्ण ने पहले जो कुछ कहा था, उसका तात्पर्य वह नहीं था । वे शब्द श्रीकृष्ण और रुक्मिणी जी के मध्य कुछ विनोदपूर्ण आनन्द लाने के लिए कहे गए थे, अतएव वे श्रीकृष्ण के शब्दों को सुन कर शान्त हो गई । धीरे-धीरे भगवान् से वियोग के समस्त भय से वे मुक्त हो गई और उनके मुख पर स्वाभाविक मुस्कान आ गई । वे भगवान् के मुख को और अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक देखने लगीं । उन्होंने कहा, "प्रिय कमललोचन भगवन्! आपका यह कथन कि हमारी जोड़ी उपयुक्त नहीं है पूर्ण रूप से सत्य है । आपके बराबर के स्तर तक पहुँचना सम्भव नहीं है, क्योंकि आप समस्त गुणों के सागर, अनन्त श्रीभगवान् हैं । मैं आपके योग्य जीवनसंगिनी किस प्रकार से हो सकती हूँ? आप समस्त महानता के स्वामी हैं; तीनों गुणों के नियन्ता तथा ब्रह्मा एवं शिवजी जैसे महान् देवताओं के उपास्य हैं, आपके साथ मेरी तुलना की तो कोई सम्भावना ही नहीं है । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों की उपज हूँ । भौतिक प्रकृति के तीनों गुण भक्ति की प्रगति के मार्ग में बाधक हैं । मैं कब और कहाँ आपके योग्य पत्नी हो सकती हूँ? प्रिय पतिदेव! आपने यह भी सत्य ही कहा है कि अन्य राजाओं से भयभीत होकर आपने सागर के जल में आश्रय लिया है । किन्तु इस भौतिक जगत का राजा कौन है? मेरे विचार में तथाकथित राजपरिवार भौतिक जगत के राजा नहीं हैं । प्रकृति के तीनों गुण ही भौतिक जगत के राजा हैं । इस भौतिक जगत के वास्तविक शासक वही हैं । आप प्रत्येक

प्राणी के हृदय के अन्त:स्थल में निवास करते हैं, जहाँ प्रकृति के तीनों गुणों के स्पर्श से आप पूर्णतया उदासीन रहते हैं और इस विषय में लेशमात्र भी संदेह नहीं है ।

"आपका कहना है कि आप जगत के राजाओं से सदैव ही शत्रुता रखते हैं । किन्तु वे राजा कौन हैं? मेरे विचार से ये राजा इन्द्रियाँ हैं । वे अत्यन्त भयानक हैं और सब पर शासन करती हैं । निश्चय ही आप इन भौतिक इन्द्रियों से शत्रुता रखते हैं । आप कभी-भी इन्द्रियों के वश में नहीं रहते हैं, अपितु आप इन्द्रियों का नियमन करने वाले हृषीकेश हैं । प्रिय भगवन्! आपने कहा है कि आप समस्त राजसी शक्तियों से हीन हैं, तो वह भी सत्य है । न केवल आप भौतिक जगत की प्रभुता से हीन हैं, अपितु आपके चरणकमलों पर प्रेम रखने वाले आपके दास भी भौतिक जगत की प्रभुता को त्याग देते हैं । इसका कारण यह है कि वे भौतिक पद को घोर अंधकार का क्षेत्र समझते हैं, जो आध्यात्मिक ज्ञान की प्रगति में बाधा डालता है । आपके दास तक भौतिक प्रभुता में रुचि नहीं रखते हैं, तो फिर आपका कहना ही क्या? प्रिय भगवन्! आप जीवन में एक विशेष ध्येय लेकर चलने वाले सामान्य मानव की भाँति कार्य नहीं करते हैं, आपका यह कथन भी पूर्णतया सत्य है । आपके महान् भक्त तथा सेवक भी, जो महान् साधु व सन्तों के रूप में प्रसिद्ध हैं, ऐसी दशा में रहते हैं कि कोई उनके जीवन के ध्येय को नहीं जान पाता है । मानव समाज उन्हें पागल तथा सनकी समझता है । साधारण मानवों के लिए उनके जीवन का उद्देश्य एक रहस्य रहता है । निम्नतम मानववर्ग न तो आपको समझ सकता है, न ही आपके दास को । दूषित मनुष्य आपकी तथा आपके भक्तों की लीलाओं की कल्पना भी नहीं कर सकता है । हे अनन्त! जब आपके भक्तों के कार्य एवं प्रयास सामान्य मानव के लिए एक रहस्य बने रहते हैं, तब वे आपके उद्देश्य और प्रयास को किस प्रकार समझ सकते हैं? सभी प्रकार की शक्तियाँ और ऐश्वर्य आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं,

किन्तु फिर भी वे आपकी ही शरण में आश्रय पाते हैं । "आपने स्वयं को धनहीन कहा है, किन्तु यह दशा दरिद्रता नहीं है । चूँकि वास्तव में आपके अतिरिक्त और किसी वस्तु का अस्तित्व नहीं है, अतएव आपको किसी वस्तु पर अधिकार करने की आवश्यकता नहीं होती है । आप स्वयं ही प्रत्येक वस्तु हैं । दूसरों को बाह्य रूप से वस्तुओं के क्रय करने की आवश्यकता पड़ती है, किन्तु आपकी ऐसा नहीं करना पड़ता है । आपके पास कोई सम्पति नहीं है, किन्तु आपसे बढ़कर कोई सम्पन्न नहीं है । इस भौतिक जगत में सम्पति के बिना कोई सम्पन्न नहीं हो सकता है । हे भगवन्! आप पूर्ण हैं, अतएव आप किसी भी वस्तु पर कुछ न होने तथा सम्पन्न होने के विपरीत तथ्यों का सामंजस्य कर सकते हैं । वेदों में कहा गया है कि यद्यपि आपके भौतिक हाथ, पैर नहीं हैं तथापि भक्तिपूर्वक भक्तों द्वारा अर्पित की गई प्रत्येक वस्तु आप स्वीकार करते हैं । आपके भौतिक चक्षु तथा कान नहीं हैं, किन्तु फिर भी आप सर्वत्र सब कुछ देख सकते हैं और सर्वत्र सब कुछ सुन सकते हैं । यद्यपि आपकी कोई सम्पति नहीं है, फिर भी अन्य लोगों की उपासना को स्वीकार करने वाले महान् देवता आपकी दया प्राप्त करने की इच्छा से आपकी उपासना करते हैं । तो फिर आपका वर्गीकरण निर्धनों के मध्य किस प्रकार किया जा सकता है? "प्रिय भगवन्! आपने यह भी कहा है कि मानव-समाज का सम्पन्न वर्ग आपकी उपासना नहीं करता है । यह भी सत्य है, क्योंकि भौतिक धन-सम्पति के गर्व में फूले हुए लोग अपने धन का उपयोग इन्द्रिय-तृप्ति के लिए करने का विचार रखते हैं । जब कोई दरिद्र व्यक्ति सम्पन्न बन जाता है, तो वह इन्द्रियतृप्ति के लिए एक कार्यक्रम बनाता है । ऐसा करने का कारण यह है कि उसे अपने कठोर श्रम से अर्जित किए गए धन का उचित उपयोग ज्ञात नहीं है । बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से वह सोचता है कि उसके धन का इन्द्रियतृप्ति के हेतु उपयोग ही उचित है । इस प्रकार वह दिव्य सेवा की उपेक्षा करता है । प्रिय भगवन्! आपने कहा है जिनके पास कुछ नहीं होता है ऐसे व्यक्ति आपको अतिशय प्रिय हैं । आपके

भक्त सब कुछ त्याग कर केवल आपको ही प्राप्त करना चाहते हैं । अतएव मैं देखती हूँ कि देवर्षि नारद मुनि, जिनके पास कोई भी भौतिक सम्पति नहीं है, आपको इसीलिए अत्यन्त प्रिय हैं । ऐसे व्यक्ति आपके अतिरिक्त और किसी की परवाह नहीं करते । "प्रिय भगवन्! आपने कहा है कि सामाजिक पद व प्रतिष्ठा में, सौन्दर्य, धन, बल, प्रभाव तथा त्याग में समान व्यक्तियों के मध्य विवाह-सम्बन्ध ही उपयुक्त सम्बन्ध हो सकता है । किन्तु जीवन की यह सामाजिक स्थिति केवल आपके अनुग्रह के द्वारा ही सम्भव हो सकती है । आप समस्त ऐश्वर्यों के परम पूर्ण स्रोत हैं । जीवन में किसी की कोई भी ऐश्वर्यशाली सामाजिक स्थिति क्यों न हो, वह आप से प्राप्त होती है । जैसाकि वेदान्त सूत्र में वर्णन किया गया है जन्माद्यस्य यत:/आप वह परम स्रोत हैं, जिसमें प्रत्येक वस्तु का उद्गम होता है । आप समस्त सुखों के सागर हैं । अतएव ज्ञानीजन केवल आपको ही प्राप्त करने की इच्छा रखते हैं और किसी वस्तु की नहीं । आपका अनुग्रह प्राप्त करने के लिए वे प्रत्येक वस्तु को, यहाँ तक कि ब्रह्मा के दिव्य साक्षात्कार को भी, त्याग देते हैं । आप जीवन के परम लक्ष्य हैं । आप जीवों के सभी सुखों के सागर हैं । वास्तव में सत्प्रेरित व्यक्ति केवल आपकी ही कामना करते हैं और इस कारण वे सफलता प्राप्त करने के लिए सब कुछ त्याग देते हैं । अत: वे आपकी संगति प्राप्त करने के योग्य हैं । कृष्ण-भक्ति में सेवक-सेव्य के समाज में व्यक्ति को भौतिक समाज के दुख-सुख का भागी नहीं होना पड़ता है । भौतिक समाज यौन-आकर्षण के आधार पर कार्य करता है । अतएव प्रत्येक स्त्री अथवा पुरुष को आपके सेवक-सेव्य समाज का एक सदस्य होने की कामना करनी चाहिए । आप श्रीभगवान् हैं-न कोई आपसे श्रेष्ठ हो सकता है न ही कोई आपके बराबर हो सकता है । पूर्ण सामाजिक प्रणाली वह है, जिसमें आप केन्द्र में रहते हैं और भगवान् के रूप में सबकी सेवा स्वीकार करते हैं और अन्य सभी आपके सेवक के रूप में संलग्न रहते हैं

। इस प्रकार की पूर्णता से निर्मित समाज में प्रत्येक व्यक्ति नित्यरूप से प्रसन्न तथा आनन्दित रह सकता है ।

"प्रिय भगवन्! आपने कहा है कि केवल भिक्षुक ही आपका यशगान करते हैं । यह भी पूर्ण रूप से सत्य है । किन्तु वे भिक्षुक कौन हैं? वे सभी भिक्षुक श्रेष्ठ भक्त मुक्त व्यक्ति तथा संन्यासी हैं । वे सभी महात्मा एवं भक्त हैं जिनके आपके यशगान के अतिरिक्त और कोई कार्य नहीं है । ऐसे महात्मा बड़े से बड़े अपराधी को क्षमा कर देते हैं । ये तथाकथित भिक्षुक भौतिक जगत के सर्व प्रकार के कष्टों को सहन करते हुए अपने जीवन की आध्यात्मिक प्रगति करते हैं । मेरे प्रिय पति! आप यह मत सोचिए कि मैंने अपनी अनुभवहीनता के कारण आपको अपना पति स्वीकार किया, वस्तुत: मैंने इन महान् भिक्षुकों के मार्ग का अनुसरण किया और अपना जीवन आपके चरणकमलों में समर्पित करने का निश्चय किया । "आपने कहा है कि आप धनहीन हैं, तो यह सत्य है । आप स्वयं को पूर्ण रूप से इन महात्माओं तथा भक्तों में बाँट देते हैं । इस तथ्य का मुझे पूर्ण ज्ञान था और इसी कारण मैंने ब्रह्माजी तथा देवराज इन्द्र जैसे व्यक्तियों को भी अस्वीकार कर दिया । प्रिय भगवन्! महाकाल केवल आपके निर्देश में कार्य करता है । काल इतना महान् एवं शक्तिशाली है कि क्षण-भर में ही वह सृष्टि के किसी भी भाग में विनाश कर सकता है । इन सब तथ्यों पर विचार करते हुए जरासन्ध, शिशुपाल और उन्हीं के समान मुझसे विवाह करने के इच्छुक अन्य सभी राजाओं को मैंने साधारण कीड़ेमकोड़ों से अधिक महत्वपूर्ण नहीं समझा । हे वसुदेव जी के सर्व शक्तिमान पुत्र! आपका यह कथन कि समस्त महान् राजाओं से भयभीत हो कर आपने सागर के मध्य आश्रय लिया है, उपयुक्त है । किन्तु आपके साथ मेरा अनुभव इस कथन का खंडन करता है । वास्तव में मैंने देखा कि इन सब राजाओं की उपस्थिति में आप मुझे बलात् हर लाए थे । मेरे विवाह-समारोह के अवसर पर, केवल अपने धनुष की प्रत्यंचा

(डोरी) की एक टंकार मात्र से आपने अन्य सबों को अत्यन्त सरलता से भगा दिया और कृपा करके मुझे अपने चरणकमलों में शरण दी । मुझे अभी भी भली-भाँति स्मरण है कि आपने उसी प्रकार मेरा हरण किया था, जिस प्रकार सिंह अन्य छोटे पशुओं को निमिष मात्र में भगा कर, किसी शिकार में से अपना भाग बलपूर्वक ले आता है । "हे कमलनयन प्रभु! मैं आपके इस कथन को नहीं समझ सकती हूँ कि जिन स्त्रियों तथा व्यक्तियों ने आपके चरणकमलों में शरण ली है, उनके दिवस केवल शोक में व्यतीत होते हैं । जगत के इतिहास से हमें ज्ञात होता है कि अंग, पृथु, भरत, ययाति और गय जैसे समस्त राजा जगत के महान् सम्राट् थे । उनके श्रेष्ठ पदों की स्पर्धा करने वाला कोई नहीं था । किन्तु आपके चरणकमलों का अनुग्रह प्राप्त करने के लिए उन्होंने अपने श्रेष्ठ पदों को त्याग दिया और तपस्या के लिए वन में प्रवेश किया । आपके चरणकमलों को सब कुछ मान कर जब उन्होंने स्वेच्छापूर्वक यह स्थिति स्वीकार की, तो क्या इसका अर्थ यह हुआ कि वे शोकाकुल अथवा "प्रिय भगवन्! आपने मुझे परामर्श दिया है कि मैं अभी भी अन्य राजाओं में से अन्य किसी को चुन सकती हूँ और स्वयं को आपके सान्निध्य से वियुक्त कर सकती हूँ । किन्तु प्रिय भगवन्! मुझे यह भलीभाँति ज्ञात है कि आप समस्त सद्गुणों के सागर हैं । नारद मुनि जैसे महान् संत सदैव केवल आपके दिव्य प्राकृत गुणों का यशगान करने में ही संलग्न रहते हैं । यदि कोई व्यक्ति ऐसे महान् संत का आश्रय लेता है, तो वह भी तत्काल समस्त भौतिक दूषणों से मुक्त हो जाता है । आपकी सेवा के प्रत्यक्ष सम्पर्क में आने वाले पर श्रीदेवी अपनी पूर्ण कृपा करती हैं । इस परिस्थिति में ऐसी कौन सी स्त्री होगी जो महाजनों से आपका यशगान एक बार सुनने तथा किसी न किसी प्रकार से आपके चरणारविन्दों के सुधारस का रसास्वादन करने के पश्चात् इस भौतिक जगत के किसी प्राणी से विवाह करने की मूर्खता करने को सहमत होगी ? भौतिक जगत के प्राणी सदैव जरा, मृत्यु, व्याधि तथा पुनर्जन्म से भयभीत रहते हैं । अतएव मैंने आपके

चरणकमलों को बिना विचारे स्वीकार नहीं किया है, अपितु परिपक्व, विचारपूर्ण निर्णय के पश्चात् स्वीकार किया है । प्रिय प्रभु! आप तीनों लोकों के स्वामी हैं । आप अपने समस्त भक्तों की इहलौकिक तथा पारलौकिक समस्त इच्छाएँ पूर्ण कर सकते हैं, क्योंकि आप सबके परमात्मा हैं । अतएव आपको एकमात्र योग्य पुरुष मान कर ही मैंने आपका वरण किया है । मेरे सकाम कर्म के फल के अनुसार आप मुझे किसी भी योनि में डाल सकते हैं और मैं इस विषय में तनिक भी चिन्तित नहीं हूँ । मेरी एकमात्र आकांक्षा यह है कि मैं सदैव आपके चरणों की शरण में रहूँ, क्योंकि आप अपने भक्तों को माया के भौतिक जगत से मुक्त कर सकते हैं और आप सदैव स्वयं को अपने भक्तों को प्रदान करने हेतु तत्पर रहते हैं ।

"प्रिय भगवन्! आपने मुझे शिशुपाल, जरासन्ध अथवा दन्तवक्र जैसे राजाओं में से किसी एक को चुनने का परामर्श दिया है, किन्तु इस जगत में उनकी स्थिति कैसी है? अपने गृहस्थ जीवन को चलाने के लिए वे सदा उसी प्रकार कठोर श्रम में संलग्न रहते हैं जैसे कोल्हू का बैल दिन रात कार्य करता रहता है । उनकी तुलना भार ढोने वाले गधों से की जा सकती है । कुत्तों की भाँति सदा उनका निरादर होता है और वे बिल्लियों की भाँति कृपण हैं । उन्होंने अपनी पत्नियों के हाथों स्वयं को दासों की भाँति बेच दिया है । ऐसी कोई अभागिन स्त्री ही, जिसने कभी आपका यश नहीं सुना है, ऐसे पुरुष को पति स्वीकार कर सकती है । किन्तु जिस स्त्री ने आपके विषय में ज्ञान प्राप्त कर लिया है कि आपकी स्तुति न केवल इस जगत में होती है, अपितु महान् देवताओं जैसे, ब्रह्माजी तथा शिवजी, के घरों में भी होती है, वह आपके अतिरिक्त और किसी को पति स्वीकार नहीं करेगी । इस भौतिक जगत में कोई भी पुरुष वास्तव में एक मृत देह मात्र है । वास्तव में बाह्य रूप से देखें, तो जीव इस शरीर से ढँका रहता है और यह शरीर दाढ़ी, मूंछ, शरीर के रोमों, उँगली पर के नाखूनों और

सिर के बालों से सजित चमड़े के थैले के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । इस सजित चमड़े के थैले के अन्दर मांसपेशियों के समूह हैं, अस्थियों के ढेर हैं तथा रक्त के तालाब हैं । चमड़े के थैले के अन्दर ये सदैव मल, मूत्र, श्लेष्मा, पित और दूषित वायु से मिश्रित रहते हैं और विभिन्न प्रकार के कीड़े-मकोड़े और कीटाणु इसका भोग करते हैं । एक मूढ़ स्त्री ऐसे शव को पति स्वीकार करती है और अपने भ्रमवश उससे अपने प्रिय जीवनसाथी की भाँति प्रेम करती है । ऐसा केवल इसलिए सम्भव होता है, क्योंकि ऐसी स्त्री ने आपके चरणकमलों के सर्वदा आनन्दमय रस का कभी रसास्वादन नहीं किया है । "प्रिय पति! हे कमलाक्ष! आप आत्म-संतुष्ट हैं । मैं सुन्दरी एवं गुणी हूँ अथवा नहीं इसकी आपको कोई चिन्ता नहीं है । आप इसके सम्बन्ध में लेशमात्र भी चिन्तित नहीं हैं । अतएव मेरे प्रति आपकी अनासति कोई आश्चर्य की बात नहीं है-यह बिल्कुल स्वाभाविक है । कोई युवती कितने भी श्रेष्ठ पद तथा सौन्दर्य वाली क्यों न हो, आप किसी स्त्री पर आसक्त नहीं हो सकते हैं । चाहे आप मुझ पर आसक्त हों अथवा न हों, किन्तु मेरी कामना है कि मेरी भक्ति और मेरा ध्यान सदैव आपके चरणों में लगा रहे । भौतिक रजोगुण भी आप ही की सृष्टि है, अतएव जब आप मुझ पर कामुक दृष्टि डालते हैं, तो मैं उसे अपने जीवन का महानतम वरदान समझती हूँ । मुझे केवल ऐसे ही शुभ क्षणों की आकांक्षा है ।" श्रीकृष्ण ने अपने प्रति रुक्मिणी जी के मान को जाग्रत करने के उद्देश्य से जिन शब्दों का प्रयोग किया था, उन सबका स्पष्टीकरण तथा रुक्मिणी जी का कथन सुन कर श्रीकृष्ण ने रुक्मिणी जी को इस प्रकार से सम्बोधित किया-'हे सती पत्नी ! प्रिय रानी! मैं तुमसे ऐसे ही स्पष्टीकरण की अपेक्षा कर रहा था । केवल इसी प्रयोजन से मैंने इन विनोदपूर्ण शब्दों का प्रयोग किया था, जिससे कि हो सकता है तुम वास्तविक अर्थ न समझ सको । तुम्हारा कथन तथ्यपूर्ण है और मैं उसका अनुमोदन करता हूँ । हे सर्वसुन्दरी रुक्मिणी! तुम मेरी प्रियतमा पत्नी हो । तुम यह समझ लो कि चाहे कोई भी इच्छा अथवा आकांक्षा हो और तुम

मुझसे चाहे किसी भी वस्तु की अपेक्षा करो, मैं सदैव तुम्हारी इच्छा पूरी करने को तत्पर हूँ । यह भी एक तथ्य है कि मेरे भक्त, मेरे प्रिय सखा और सेवक इस प्रकार की मुक्ति की याचना नहीं करते हैं, इसलिए वे सदैव भौतिक दूषणों से मुक्त रहते हैं । मेरे भक्त मेरी सेवा में संलग्न रहने के अतिरिक्त मुझसे और कुछ नहीं चाहते हैं । वे मुझ पर पूर्णरूपेण निर्भर रहते हैं, अतएव यदि वे कुछ माँगने को बाध्य होते हैं, तो वह भी भौतिक नहीं होता है । ऐसी महत्वाकांक्षाएँ और इच्छाएँ भौतिक बंधन का कारण बनने के स्थान पर इस भौतिक जगत से मुक्ति का स्रोत बन जाती हैं । "प्रिय सती तथा शुद्धात्मा पत्नी! कठोर सतीत्व के आधार पर तुम्हारे पतिप्रेम की मैंने परीक्षा ली है और तुम इस परीक्षा में अत्यन्त सफलतापूर्वक उतीर्ण हुई हो । मैंने सोद्देश्य ऐसे शब्द, जो तुम्हारे चरित्र पर लागू नहीं होते हैं, कहकर तुम्हें उद्विग्न किया है, किन्तु मुझे यह देख कर आश्चर्य है कि मेरे प्रति तुम्हारी भक्ति अपनी दृढ़तापूर्ण स्थिति से रंचमात्र भी च्युत नहीं हुई है । प्रिये! मैं ही सभी वरदानों का दाता हूँ । इस भौतिक जगत से मुक्ति प्रदान करने वाला भी मैं ही हूँ । केवल मैं ही भौतिक अस्तित्व की श्रृंखला को रोक सकता हूँ और प्राणी को अपने घर, भगवान् के धाम, वापस बुला सकता हूँ । जिसकी मेरे प्रति भक्ति दूषित है, वह किसी भौतिक लाभ के लिए मेरी उपासना करता है । जिसकी परिणति यौन जीवन के सुख में होती हो ऐसे भौतिक सुख के जगत में स्वयम् को बनाए रखने के लिए वह मेरी उपासना करता है । जो व्यक्ति केवल इस भौतिक सुख को प्राप्त करने के लिए कठोर तप व संयम का पालन करता है, वह निश्चय ही मेरी बहिरंगा शक्ति (माया) के प्रभाव के अन्तर्गत है । जो व्यक्ति केवल भौतिक लाभ तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए मेरी भक्तिसेवा में संलग्न हैं, वे निश्चय ही अत्यन्त मूर्ख हैं । यौन जीवन पर आधारित भौतिक सुख तो सर्वाधिक निन्दनीय योनियों, जैसे सुअर तथा कुत्ते की योनियों, में भी प्राप्य है । अतएव जो लोग केवल भौतिक सुख के पीछे रहते हैं और मुझे प्राप्त करना जिनका उद्देश्य नहीं है, उनके लिए

नरक में रहना ही उत्तम है ।" भौतिक दूषण इतना प्रबल होता है कि प्रत्येक व्यक्ति भौतिक सुख के लिए दिन-रात श्रम करता है । धार्मिकता, संयम, तप, मानवतावाद, विश्वप्रेम, राजनीति, विज्ञान आदि प्रत्येक वस्तु के प्रदर्शन का उद्देश्य किसी न किसी भौतिक लाभ की सिद्धि ही होता है । भौतिक लाभ की तत्काल सफलता के लिए

व्यक्ति साधारणतया विभिन्न देवताओं की उपासना करते हैं । कभी-कभी भौतिक प्रवृत्तियों के वश में वे भगवान् की भक्ति में भी प्रवृत होते हैं । कभी-कभी ऐसा होता है कि यदि कोई व्यक्ति निष्ठापूर्वक भगवान् की सेवा करता है और साथ ही साथ भौतिक आकांक्षा भी बनाए रखता है, तब भगवान् कृपा करके भौतिक सुख के स्रोतों को हटा देते हैं । भौतिक सुखों में आश्रय न पा कर भक्त तब स्वयं को पूर्ण रूप से भक्ति में संलग्न कर देता है । भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "हे रानियों में श्रेष्ठतम! मैं स्पष्टरूप से समझ गया हूँ कि तुम्हें कोई भौतिक आकांक्षा नहीं है, तुम्हारा एकमात्र प्रयोजन मेरी सेवा करना है और तुम दीर्घकाल से मेरी विशुद्ध सेवा में संलग्न हो । आदर्श व शुद्ध भक्ति-सेवा न केवल भक्त को इस भौतिक जगत से मुक्ति प्रदान कर सकती है, अपितु मेरी सेवा में नित्य संलग्न रहने वाले भक्त की आध्यात्मिक जगत में उन्नति भी करती है । जिन व्यक्तियों को भौतिक सुख का अत्यधिक नशा है, वे ऐसी सेवा नहीं कर सकते हैं । जिनके हृदय दूषित तथा भौतिक इच्छाओं से पूर्ण हैं, वे स्त्रियाँ बाह्य रूप से महान् भक्त होने का प्रदर्शन करते हुए भी अपनी इन्द्रिय-तृप्ति के साधनों का निर्माण कर लेती हैं । "हे साध्वी भार्या! यद्यपि मेरी हजारों पत्नियाँ हैं, किन्तु मेरे विचार में उनमें से कोई भी तुमसे अधिक प्रेम नहीं करती है । तुम्हारे असामान्य पद का व्यावहारिक उदाहरण यह है कि तुमने विवाह से पूर्व मुझे कभी नहीं देखा था, तुमने केवल एक तीसरे व्यक्ति से मेरे विषय में केवल सुना था, फिर भी तुम्हारा विश्वास मुझमें केन्द्रित हो गया था । मुझमें तुम्हारा विश्वास इतना दृढ़ था कि अनेक गुणी,

सम्पन्न और सुन्दर राजपुरुषों की उपस्थिति में भी तुमने उनमें से किसी का वरण नहीं किया, अपितु मुझे ही वरण किया । तुमने सभी उपस्थित राजाओं की उपेक्षा की और अत्यन्त विनयपूर्वक मुझे एक गुप्त पत्र भेज कर मुझे अपना हरण करने को निमंत्रित किया । जब मैं तुम्हारा हरण कर रहा था, तब तुम्हारे ज्येष्ठ भ्राता रुक्मी ने घोर आपत्ति की और मुझसे युद्ध किया । उस युद्ध के परिणामस्वरूप मैंने निर्दयता से उसे परास्त करके उसके शरीर को विरूप कर दिया । अनिरुद्ध के विवाह के अवसर पर जब हम सब चौपड़ खेलने में व्यस्त थे, तब एक विवादग्रस्त विषय पर पुन: तुम्हारे भाई रुक्मी से युद्ध हो गया और अन्तत: मेरे ज्येष्ठ भ्राता बलराम जी ने उसका वध कर दिया । मुझे यह देख कर आश्चर्य हुआ कि तुमने इस घटना पर आपत्ति का एक शब्द भी नहीं कहा । कहीं तुम्हारा मुझसे वियोग न हो जाए, इस सम्बन्ध में तुम अत्यन्त उद्विग्न थीं, इस कारण तुमने एक भी शब्द कहे बिना सभी परिणाम सहन किए । हे प्रिये! इस महान् मौन के परिणामस्वरूप तुमने मुझे सदा के लिए खरीद लिया है । मैं सदा के लिए तुम्हारे वश में हो गया हूँ । तुमने मुझे अपना हरण करने के लिए निमंत्रित करते हुए एक दूत को मेरे समीप भेजा था और जब तुमने देखा कि मेरे वहाँ आने में कुछ विलम्ब हो गया, तो तुम्हें समस्त विश्व सूना लगने लगा । उस समय तुमने निष्कर्ष निकाला कि तुम्हारी सुन्दर देह और किसी के स्पर्श के योग्य नहीं है, अतएव यह सोच कर कि मैं नहीं आ रहा हूँ तुमने आत्महत्या करके तत्काल अपनी देह को समाप्त करने का निर्णय किया । प्रिय रुक्मिणी! मेरे प्रति तुम्हारा ऐसा महान् और श्रेष्ठ प्रेम सदैव मेरी आत्मा में रहेगा । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मेरे प्रति तुम्हारी विशुद्ध भक्ति का बदला चुकाना मेरी सामथ्र्य के बाहर की बात है ।" भगवान् श्रीकृष्ण को किसी का पति, पुत्र अथवा पिता होने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि प्रत्येक वस्तु उनकी ही है और प्रत्येक व्यक्ति उनके वश में है । अपनी सन्तुष्टि के लिए उन्हें किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं होती है । वे आत्माराम हैं, आत्म-सन्तुष्ट हैं, वे बिना

किसी की सहायता के स्वयं समस्त सुख प्राप्त कर सकते हैं । जब भगवान् एक मानव का अभिनय करने के लिए अवतीर्ण होते हैं, तब वे पति अथवा पुत्र, शत्रु अथवा मित्र का अभिनय आदर्श रूप से करते हैं । इसी भाँति जब वे रानियों के, विशेष रूप से रुक्मिणी जी के, आदर्श पति की भाँति अभिनय कर रहे थे, तब वे पूर्णता से दाम्पत्य प्रेम का आनन्द उठा रहे थे । वैदिक सभ्यता के अनुसार यद्यपि बहुपत्नीत्व की अनुमति प्राप्त है, तथापि किसी भी पत्नी के साथ दुर्व्यवहार नहीं होना चाहिए । दूसरे शब्दों में, यदि कोई सभी पत्नियों को समान रूप से एक आदर्श गृहस्थ रूप में सन्तुष्ट कर सके । तभी वह अनेक पत्नियों से विवाह कर सकता है, अन्यथा इसकी अनुमति नहीं है । भगवान श्रीकृष्ण जगद्गुरु हैं, अतएव यद्यपि उन्हें पत्नी की आवश्यकता नहीं थी, तथापि उन्होंने अपना उतने ही रूपों में विस्तार किया जितनी उनकी पत्नियाँ थीं । विधिविधानों, नियमों और कर्तव्यों का पालन वैदिक निर्देशों, सामाजिक नियमों तथा समाज की रीतियों के अनुरूप करते हुए श्रीकृष्ण ने आदर्श पति के रूप में उनके साथ जीवन-यापन किया । अपनी सोलह हजार एक सौ आठ रानियों में से प्रत्येक

के लिए उन्होंने एकसाथ भिन्न-भिन्न महल, नौकर-चाकर और वातावरण रखे । इस प्रकार, यद्यपि भगवान् एक हैं, उन्होंने स्वयं को सोलह हजार एक सौ आठ आदर्श गृहस्थों के रूप में प्रदर्शित किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्री कृष्ण एवं रुक्मणी जी के मध्य वार्तालाप " नामक साठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 61
श्रीकृष्ण के परिवार की वंशावली

की सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं, प्रत्येक पत्नी से उन्होंने दस-दस पुत्र प्राप्त किए थे । वे समस्त पुत्र शक्ति, सौन्दर्य, बुद्धि, यश, सम्पति और त्याग के ऐश्वयों में अपने पिता के समान ही थे । 'यथा पिता तथा पुत्र ।" श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठों पत्नियाँ राजकुमारियाँ थीं । उनमें से प्रत्येक ने देखा कि श्रीकृष्ण सदैव उनके महल में उपस्थित रहते हैं और घर से बाहर कहीं नहीं जाते हैं, तब वे सोचने लगीं कि श्रीकृष्ण उन पर अत्यन्त अनुरत तथा भार्या-शासित पति हैं । उनमें से प्रत्येक पत्नी सोचती थी कि श्रीकृष्ण उसके अत्यन्त आज्ञाकारी पति हैं, किन्तु वास्तव में श्रीकृष्ण को उनमें से किसी के प्रति कोई आकर्षण नहीं था । यद्यपि प्रत्येक पत्नी सोचती थी कि वह श्रीकृष्ण की एकमात्र पत्नी है और वह उनको अतिशय प्रिय है, किन्तु भगवान् कृष्ण आत्माराम हैं, आत्म-पूर्ण हैं और वे उनमें से किसी से भी प्रेम-भाव नहीं रखते थे । वे समस्त पत्नियों के प्रति समभाव रखते थे और उनको प्रसन्न करने के लिए उनसे आदर्श पति की भाँति व्यवहार करते थे । उनको एक भी पत्नी की कोई आवश्यकता नहीं थी । वस्तुत: स्त्री होने के कारण उनकी पत्नियाँ न तो श्रीकृष्ण के श्रेष्ठ पद को समझ सकती थीं, न ही उनके विषय में सत्य को ही जानती थीं ।

श्रीकृष्ण की सभी पत्नियाँ, जो राजकुमारियाँ थीं, अत्यन्त रूपवती थीं । उनमें से प्रत्येक श्रीकृष्ण के कमलदल के समान नयनों के प्रति आकर्षित थी । वे उनके सुन्दर मधुर वचनों के प्रति भी आकर्षित थीं । श्रीकृष्ण की इन विशेषताओं से प्रभावित होकर वे आकर्षक वस्त्र धारण करती थीं एवं अपने स्त्रीसुलभ शारीरिक आकर्षण से श्रीकृष्ण को अपने प्रति आकर्षित करने की चेष्टा करती थीं । वे अपने स्त्रियोचित लक्षणों को मुस्कुराकर

और भौंहें चला कर प्रदर्शित करती थीं । इस प्रकार श्रीकृष्ण के काम को जाग्रत करने के लिए वे माधुर्य प्रेम के तीक्ष्ण बाण चलाती थीं । फिर भी वे श्रीकृष्ण के मन को अथवा काम-क्षुधा को उत्तेजित न कर सकती थीं । इसका अर्थ यह है कि अपनी अनेक पत्नियों में से किसी के भी साथ श्रीकृष्ण ने सन्तान प्राप्ति के अतिरिक्त कभी भी यौन सम्बन्ध नहीं रखा ।

यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ देवताओं, जैसे ब्रह्मा आदि, के लिए भी अगम्य हैं, किन्तु द्वारका की रानियाँ इतनी भाग्यशालिनी थीं कि उन्हें पति एवं जीवन-साथी के रूप में भगवान् प्राप्त हुए थे । वे पति-पत्नी की भाँति एकसाथ रहते थे एवं आदर्श पति के रूप में श्रीकृष्ण उनसे ऐसा व्यवहार करते थे कि प्रत्येक क्षण उनके स्मित व्यापार, वार्तालाप एवं परस्पर मिलन के दिव्य आनन्द में वृद्धि होती रहती थी । प्रत्येक रानी के पास सैकड़ों, हजारों दासियाँ थीं फिर भी जब श्रीकृष्ण अपनी हजारों रानियों के महल में प्रवेश करते थे, तब प्रत्येक रानी स्वयं श्रीकृष्ण का स्वागत करती थी । वे स्वयं श्रीकृष्ण को उत्तम आसन पर बैठाती थीं, समस्त आवश्यक सामग्री से उनकी उपासना करती थीं एवं स्वयं उनके चरणकमलों का प्रक्षालन करती थीं । वे स्वयं पान-सुपारी देती थीं, उनके पैरों की थकान दूर करने के लिए उनके पैर दबाती थीं, उन्हें विश्राम देने के लिए पंखा डुलाती थीं और उन्हें समस्त प्रकार के चन्दनों का लेप अर्पित करती थीं । वे स्वयं उन्हें तेल व गन्ध भी अर्पित करती थीं, उनके कण्ठ में पुष्पमाला पहनाती थीं, उनका केशविन्यास करती थीं, उन्हें शैया पर सुलाती थीं तथा स्नान करने में उनकी सहायता करती थीं । इस प्रकार वे सभी प्रकार से श्रीकृष्ण की सेवा करती थीं और विशेष रूप से जब श्रीभगवान् भोजन करते थे, तब वे स्वयं भगवान् की सेवा करती थीं । वे सदैव भगवान् की सेवा में संलग्न रहती थीं ।

श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियों में से प्रत्येक के दस-दस पुत्र थे । प्रथम आठ रानियों के पुत्रों की नामावली निम्नलिखित है ।

रुक्मिणी जी से श्रीकृष्ण को दस पुत्र प्राप्त हुए थे, जिनके नाम थे—प्रद्युम्न, चारुदेष्ण, सुदेष्ण, वारुदेह, सुचारु, चारुगुप्त, भद्रचारु, चारुचन्द्र, विचारु और चारु । उनमें से कोई भी अपने गुणों में अपने दिव्य पिता भगवान् श्रीकृष्ण से हीन नहीं था । इसी प्रकार सत्यभामा के भी दस पुत्र थे, जिनके नाम थे-भानु, सुभानु, स्वरभानु, प्रभानु, भानुमान, चन्द्रभानु, बृहद्भानु, अतिभानु, श्रीभानु, एवं प्रतिभानु । अगली रानी जाम्बवती के भी दस पुत्र थे जिनमें साम्ब बड़ा था । पुत्रों के नाम थे-साम्ब, सुमित्र, , शतजित, सहस्रजित, विजय, चित्रकेतु, वसुमान, द्रविड और क्रतु । भगवान् श्रीकृष्ण को जाम्बवती के पुत्रों से विशेष स्नेह था । राजा नग्नजित की पुत्री सत्या से भी जो श्रीकृष्ण की पत्नी थीं, भगवान् श्रीकृष्ण को दस पुत्र थे । उनके नाम थे-वीर, चन्द्र, अश्वसेन, चित्रगु, वेगवान्, वृष, आम, शंकु, वसु तथा कुन्ति । उन सबमें से कुन्ति अत्यधिक बलवान् था । कालिन्दी से श्रीकृष्ण को दस पुत्र थे जिनके नाम हैंश्रुत, कवि, वृष, वीर, सुबाहु, भद्र, शान्ति, दर्श, पूर्णमास और सबसे छोटा सोमक । अपनी अगली पत्नी, मद्रास प्रदेश के राजा की पुत्री लक्ष्मणा से श्रीकृष्ण ने दस पुत्र प्राप्त किए । उनके नाम थे-प्रघोष, गात्रवान्, सिंह, बल, प्रबल, ऊध्र्वग, महाशक्ति, सह, ओज तथा अपराजित । इसी भाँति उनकी अगली पत्नी मित्रविन्दा के भी दस पुत्र थे, जिनके नाम थे-वृक, हर्ष, अनिल, गृध्र, वर्धन, अन्नाद, महांस, पावन, वह्नि और क्षुधि । उनकी अन्य पत्नी भद्रा के दस पुत्र थे, जिनके नाम थे-संग्रामजित, बृहत्सेन, शूर, प्रहरण, अरिजित, जय, सुभद्र, वाम, आयु और सत्यक । इन आठ प्रमुख रानियों के अतिरिक्त श्रीकृष्ण के सोलह हजार एक सौ पत्नियाँ और भी थीं और उनमें से प्रत्येक को दस पुत्र थे । रुक्मिणी जी के ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न का विवाह उनके जन्म के समय ही मायावती से हो गया था, बाद में पुन: उनका विवाह उनके मामा की पुत्री रुक्मावती से भी हुआ । रुक्मावती से प्रद्युम्न को अनिरुद्ध नामक एक पुत्र प्राप्त हुआ । इस प्रकार श्रीकृष्ण के परिवार में उनको, उनकी पत्नियों, पुत्रों, पौत्रों तथा प्रपौत्रों को लेकर लगभग दस अरब सदस्य थे । श्रीकृष्ण की प्रथम

पत्नी रुक्मिणी जी का बड़ा भाई रुक्मी श्रीकृष्ण के साथ युद्ध में अत्यन्त पीड़ित और अपमानित हुआ था, किन्तु रुक्मिणी जी की विनती पर उसकी प्राणरक्षा हो गई थी । तब से रुक्मी के हृदय में श्रीकृष्ण के प्रति विशेष ईष्र्या थी और वह उनके प्रति सदैव वैर-भाव रखता था । किन्तु फिर भी उसकी पुत्री का विवाह श्रीकृष्ण के पुत्र से हुआ था एवं उसकी पौत्री का विवाह श्रीकृष्ण के पौत्र अनिरुद्ध से हुआ था । जब महाराज परीक्षित ने इस विषय में श्री शुकदेव गोस्वामी से सुना, तब उन्हें यह तथ्य किंचित् आश्चर्यजनक लगा । "मुझे आश्चर्य है कि रुक्म तथा श्रीकृष्ण जिनमें परस्पर इतना घोर वैर था, अपने वंशजों के मध्य विवाहसम्बन्ध के द्वारा पुनः संयुक्त हो सके ।" महाराज परीक्षित इस घटना का रहस्य जानने के लिए उत्सुक थे, अतएव उन्होंने श्रीशुकदेव गोस्वामी से आगे प्रश्न किया । श्रीशुकदेव गोस्वामी एक व्यावहारिक योगी थे, अतएव उनकी अन्तर्दृष्टि की शक्ति से कुछ भी छुपा हुआ नहीं था । ऐसे योगियों से कुछ भी गुप्त नहीं रखा जा सकता है । जब महाराज परीक्षित ने श्रीशुकदेव गोस्वामी से प्रश्न किया तब उन्होंने निम्न प्रकार से उत्तर दिया:- रुक्मिणी जी के गर्भ से उत्पन्न, श्रीकृष्ण के ज्येष्ठ पुत्र प्रद्युम्न स्वयं कामदेव थे । वह इतने सुन्दर एवं आकर्षक थे कि रुक्मी की पुत्री रुक्मावती अपने स्वयंवर में प्रद्युम्न के अतिरिक्त और किसी का वरण न कर सकी । अतएव उस स्वयंवर में अन्य सब राजाओं की उपस्थिति में उसने प्रद्युम्न को वर-माला पहनाई । जब राजाओं में युद्ध हुआ, तब प्रद्युम्न विजयी हुए, अतएव रुक्मी को अपनी सुन्दर पुत्री उन्हें समर्पित करने को बाध्य होना पड़ा । श्रीकृष्ण ने रुक्मी की बहन रुक्मिणी का हरण किया था, अतएव उसके हृदय में सदैव उनके प्रति शत्रुता की ज्वाला धधकती रहती थी । किन्तु जब उसकी पुत्री ने प्रद्युम्न को अपने पति के रूप में चुना तब अपनी बहन रुक्मिणी को प्रसन्न करने की कामना से वह विवाह का विरोध न कर सका और सहमत हो गया । इस प्रकार प्रद्युम्न रुक्मावती का पति बन गया । ऊपर वर्णित दस पुत्रों के अतिरिक्त रुक्मिणी जी की एक सुन्दर विशालाक्षी पुत्री

भी थी और उसका विवाह कृतवर्मा के पुत्र बली से हुआ था । यद्यपि रुक्मी यथार्थतः श्रीकृष्ण का शत्रु था, किन्तु उसे अपनी बहन रुक्मिणी से अत्यधिक स्नेह था और वह उसे हर प्रकार से प्रसन्न करना चाहता था । इसी कारण जब रुक्मिणी जी के पौत्र अनिरुद्ध का विवाह होने वाला था, तब रुक्मी ने अपनी पौत्री रोचना अनिरुद्ध को समर्पित की । निकटतम सम्बन्धियों के मध्य इस प्रकार के विवाह का वैदिक सभ्यता में अनुमोदन नहीं किया जाता है । किन्तु रुक्मिणी जी को प्रसन्न करने के लिए रुक्मी ने अपनी पुत्री व पौत्री श्रीकृष्ण के पुत्र व पौत्र को अर्पित की । इस प्रकार जब अनिरुद्ध एवं रोचना के विवाह की बात पूर्ण हो गई, तब अनिरुद्ध के साथ एक बड़ी बरात ने द्वारका से प्रस्थान किया । वे तब तक यात्रा करते रहे जब तक वे भोजकट नहीं पहुँच गए । रुक्मी ने श्रीकृष्ण द्वारा अपनी बहन के हरण के पश्चात् भोजकट नगर बसाया था । इस बरात का नेतृत्व वर के पितामह भगवान् श्रीकृष्ण कर रहे थे । उनके साथ भगवान् श्री बलराम तथा श्रीकृष्ण की पटरानी रुक्मिणी जी, श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न, जाम्बवती के पुत्र साम्ब और अनेक अन्य सम्बन्धी तथा परिवार के सदस्य थे । वे सभी भोजकट नगर पहुँचे और विवाह संस्कार शान्तिपूर्वक सम्पन्न हो गया ।

कलिंग का राजा रुक्मी का मित्र था और उसने रुक्मी को बलराम जी के साथ द्युत खेलने तथा द्युत में उन्हें पराजित करने की कुमंत्रणा दी । क्षत्रिय राजाओं के मध्य चौपड़ में शर्त लगाना अथवा जुआ खेलना कोई असामान्य बात नहीं थी । यदि कोई अपने मित्र को चौपड़ खेलने की चुनौती देता था, तो मित्र उस चुनौती को अस्वीकार नहीं कर सकता था । श्री बलराम जी चौपड़ के कुशल खिलाड़ी नहीं थे और कलिंग के राजा को यह तथ्य ज्ञात था । अतएव रुक्मी को मंत्रणा दी गई कि वह बलराम जी की चौपड़ खेलने की चुनौती दे और इस प्रकार श्रीकृष्ण के परिवार के सदस्यों से बदला ले । यद्यपि बलराम जी चौपड़ के कुशल खिलाड़ी

नहीं थे, तथापि खेलकूद की गतिविधियों के प्रति उनमें अत्यधिक उत्साह था । उन्होंने रुक्मी की चुनौती स्वीकार कर ली और वे खेलने बैठ गए । स्वर्णमुद्राओं की शर्त लग रही थी और सर्वप्रथम बलराम जी ने सौ स्वर्ण मुद्राएँ दाँव पर लगाई, तत्पश्चात् एक हजार मुद्राएँ और तदनन्तर दस हजार मुद्राएँ दाँव पर लगाई । प्रत्येक बार बलराम जी हारे और रुक्मी जीता ।

श्रीबलराम जी के हारने से कलिंगराज को श्रीकृष्ण तथा बलराम जी की आलोचना करने का अवसर प्राप्त हो गया । इस प्रकार कलिंग का राजा विनोदपूर्वक वार्तालाप कर रहा था और जानबूझ कर बलराम जी को दाँत दिखा रहा था । खेल में हारने के कारण बलराम जी को उसके व्यंग्यपूर्ण विनोदी वचन किंचित् असह्य हो गए । वे किंचित उत्तेजित हो गए और जब रुक्मी ने उन्हें पुन: चुनौती दी, तब उन्होंने एक हजार स्वर्ण मुद्राएँ दाँव पर लगाई । सौभाग्यवश इस बार बलराम जी जीत गए । यद्यपि बलरामजी जीते थे, तथापि अपनी चालाकी के कारण रुक्मी दावा करने लगा कि वह जीता है और बलराम जी हारे हैं । इस असत्य के कारण बलराम जी रुक्मी पर अत्यन्त कुद्ध हो गए । उनकी उत्तेजना इतनी तीव्र तथा अचानक थी कि वह पूर्णिमा के दिन समुद्र में उठने वाले ज्वार के समान प्रतीत हुई । बलराम जी के नेत्र प्राकृतिक रूप से रतिम थे और जब वे उत्तेजित एवं कुद्ध हो उठे तब उनके नेत्र और अधिक रतिम हो उठे । इस बार उन्होंने रुक्मी को चुनौती दी और दस करोड़ स्वर्ण मुद्राएँ दाँव पर लगाई ।

चौपड़ के नियमानुसार पुन: बलराम जी जीते, किन्तु रुक्मी पुनः चालाकी से अपने जीतने का दावा करने लगा । रुक्मी ने समस्त उपस्थित राजाओं से तथा विशेष रूप से कलिंग राजा का नाम लेकर पुनर्विचार करने की प्रार्थना की । उस समय इस वादविवाद के मध्य आकाशवाणी हुई, जिसने घोषणा की कि खेल के वास्तविक विजेता बलराम जी के साथ दुव्र्यवहार

किया जा रहा है और रुक्मी का यह कथन कि वह विजयी हुआ है, पूर्णरूप से मिथ्या है । इस दिव्य वाणी से होने पर भी रुक्मी ने यही जोर दिया कि बलराम जी हार गए हैं और उसके इस हठ से ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सिर पर काल मँडरा रहा है । अपने मित्र की कुमंत्रणा से मिथ्या ही फूले हुए रुक्मी ने भविष्यवाणी को अधिक महत्व नहीं दिया और वह बलराम जी की आलोचना करने लगा । वह कहने लगा, "प्रिय बलराम जी ! तुम दोनों भाई केवल गोप बालक हो, तुम गौएँ चराने में अत्यन्त कुशल हो सकते हो, किन्तु तुम चौपड़ खेलने में अथवा युद्धक्षेत्र में बाण चलाने में किस प्रकार कुशल हो सकते हो ? इन कलाओं का समुचित ज्ञान केवल राजवंश के लोगों को होता है ।" रुक्मी के मुख से इस प्रकार की चुभती हुई बात सुन कर और वहाँ उपस्थित अन्य राजाओं का उच्च हास्य सुन कर भगवान् बलराम जी जलते हुए अंगारे के समान उत्तेजित हो गए । उन्होंने तत्काल अपने हाथ में गदा उठा ली और बिना कुछ कहे उन्होंने रुक्मी के सिर पर प्रहार किया । उस एक प्रहार से ही रुक्मी तत्काल निष्प्राण हो कर भूमि पर गिर पड़ा । इस प्रकार अनिरुद्ध के विवाह के शुभ अवसर पर बलरामजी के द्वारा रुक्मी का वध हुआ । क्षत्रिय समाज में इस प्रकार की घटना असामान्य नहीं है । अगला आक्रमण उसी पर होगा, यह सोचकर कलिंग का राजा भयभीत हो गया और वहाँ से भाग गया । किन्तु वह बच कर कुछ दूर भी नहीं गया था कि बलराम जी ने तत्काल उसे पकड़ लिया । श्रीकृष्ण व बलराम जी की आलोचना करते समय कलिंगराज सदैव अपने दाँत दिखाता रहता था, अतएव बलराम जी ने अपनी गदा से उसके समस्त दाँत तोड़ दिए । कलिगराज और रुक्मी का समर्थन करने वाले शेष राजाओं को भी पकड़ लिया गया और बलराम जी ने अपनी गदा से उन्हें मार-मार कर उनके हाथ पैर तोड़ दिए । उन्होंने प्रतिकार करने का प्रयास नहीं किया, अपितु उस रक्तपात से दूर भागने में ही बुद्धिमानी समझी ।

बलराम जी तथा रुक्मी के मध्य इस युद्ध के समय श्रीकृष्ण ने एक भी शब्द नहीं कहा, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि यदि वे बलराम जी का समर्थन करेंगे, तो रुक्मीविमणी जी अप्रसन्न होंगी और यदि वे कहेंगे कि रुक्मी का वध अन्यायपूर्ण हुआ, तो बलराम जी अप्रसन्न होंगे । अतएव अपने पौत्र के विवाह के अवसर पर अपने साले की मृत्यु पर भगवान् श्रीकृष्ण मौन थे । उन्होंने रुक्मिणी जी अथवा बलराम जी किसी के भी साथ अपने स्नेहमय सम्बन्ध को ठेस नहीं लगने दी । इसके उपरान्त समारोहपूर्वक वर-वधू को रथ पर बैठाया गया और उन्होंने बरात के साथ द्वारका के लिए प्रस्थान किया । मधुसूदन भगवान् श्रीकृष्ण सर्वदा उस बरात के रक्षक थे । इस प्रकार प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने रुक्मी के राज्य भोजकट से द्वारका की ओर प्रस्थान किया

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण के परिवार की वंशावली" नामक इकसठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 62
उषा एवं अनिरुद्ध का मिलाप

नैरुद्ध और उषा का मिलाप अत्यन्त रहस्यमय व रोचक है, क्योंकि इसके कारण भगवान् श्रीकृष्ण और शिवजी के मध्य भयंकर युद्ध हुआ । महाराज परीक्षित श्रीशकुदेव गोस्वामी से यह समस्त कथा सुनने को उत्सुक थे अत: शुकदेव जी ने इस प्रकार कथा कही-"प्रिय राजन्! तुमने राजा बलि का नाम सुना होगा । वे एक महान् भक्त थे जिन्होंने श्री विष्णु के ब्राह्मण रूप में अवतरित भगवान् वामन को अपना सर्वस्व अर्थात्

समस्त जगत दान में दे दिया । राजा बलि के एक सौ पुत्र थे और उनमें सबसे बड़ा बाणासुर था ।" यह महान् शूरवीर बाणासुर महाराज बलि का पुत्र था और शिवजी का एक महान् भक्त था । वह शिवजी की सेवा करने के लिए सदैव तत्पर रहता था । अपनी भक्ति के कारण उसे समाज में उच्च पद प्राप्त हुआ और प्रत्येक दृष्टि से उसको सम्मान प्राप्त था । वास्तव में वह अत्यन्त बुद्धिमान तथा उदार भी था । उसके समस्त कार्यकलाप प्रशंसनीय थे, क्योंकि वह भी अपने वचन तथा प्रण से विचलित नहीं होता था । वह अत्यन्त सत्यवादी तथा अपने प्रण का पका था । उन दिनों वह शोणितपुर नगर पर राज्य कर रहा था । भगवान् शिव की कृपा से बाणासुर के एक हजार हाथ थे और वह इतना बलशाली हो गया कि राजा इन्द्र के समान देवता भी उसके आज्ञाकारी दास की भाँति उसकी सेवा करते थे ।

बहुत काल पूर्व जब शिवजी अपना प्रसिद्ध ताण्डव-नृत्य कर रहे थे, जिसके लिए वे नटराज के नाम से विख्यात हैं, तब बाणासुर ने अपने एक हजार हाथों से लयपूर्वक नगाड़े बजा कर शिवजी की उनके नृत्य में सहायता की थी । भगवान् शिव अति शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं, अतएव वे आशुतोष नाम से प्रसिद्ध हैं । वे अपने भक्तों पर अत्यन्त स्नेह भी रखते हैं । वे अपनी शरण में आने वाले की रक्षा करते हैं और इस भौतिक जगत में वे समस्त जीवों के स्वामी हैं । बाणासुर से प्रसन्न होकर उन्होंने कहा, "मैं तुमसे अत्यन्त प्रसन्न हूँ, अतएव तुम्हें जिस वस्तु की इच्छा हो, तुम मुझसे माँग सकते हो ।" बाणासुर ने उत्तर दिया, "प्रिय भगवन्! यदि आप प्रसन्न हैं, तो आप शत्रुओं से मेरी रक्षा करने के हेतु मेरे नगर में निवास कीजिए ।"

एक बार बाणासुर शिवजी को प्रणाम करने आया । सूर्यमण्डल के समान चमकते हुए अपने शिरस्त्राण से शिवजी के चरणकमलों का स्पर्श करके उसने उन्हें प्रणाम किया । उनकी सादर वन्दना करते हुए बाणासुर ने

कहा, "प्रिय भगवान् ! जिस व्यक्ति की आकांक्षा अपूर्ण हो वह आपके चरणकमलों का आश्रय ले कर अपनी इच्छा पूर्ण कर सकता है, क्योंकि आपके चरण कल्पतरु की भाँति हैं । उनसे व्यक्ति अपनी वांछित वस्तु प्राप्त कर सकता है । प्रिय भगवान्! आपने मुझे एक हजार भुजाएँ दी हैं, किन्तु मुझे समझ में नहीं आता है कि मैं उनसे क्या करूं । कृपया मुझे क्षमा कीजिए, किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि मैं युद्ध में उनका उचित उपयोग नहीं कर सकता हूँ । आप भौतिक जगत के आदि पिता हैं, आपके अतिरिक्त मुझे अपने से युद्ध करने में सक्षम कोई और दिखाई नहीं देता है । कभी-कभी मुझे अपनी भुजाओं से युद्ध करने की अति इच्छा होती है और जब मैं कोई योग्य योद्धा ढूँढने जाता हूँ तो, दुर्भाग्यवश, मेरी असामान्य शक्ति से परिचित होने के कारण सब लोग पलायन कर जाते हैं । कोई योग्य प्रतिद्वन्द्री न मिलने से व्यग्र हो कर अपने हाथों की खुजली दूर करने के लिए मैं उन्हें पर्वतों पर पटकता हूँ । इस रीति से मैं अनेक विशाल पर्वतों को छिन्न-भिन्न कर देता हूँ ।"

भगवान् शिव समझ गए कि उनका वरदान बाणासुर के लिए दुखदायी हो गया है, अतएव उन्होंने कहा, "अरे दुष्ट! तुम युद्ध करने को अत्यन्त उत्सुक हो और तुम्हें कोई युद्ध करने वाला नहीं मिलता है, अतएव तुम दुखी हो । यद्यपि तुम सोचते हो कि मेरे अतिरिक्त इस जगत में और कोई तुमसे युद्ध नहीं कर सकता है, किन्तु मेरा कथन है कि अन्ततः तुम्हें अपने साथ युद्ध करने के लिए समर्थ व्यक्ति प्राप्त होगा । उस समय तुम्हारे दिन समाप्त हो जाएँगे और तुम्हारी विजय-पताका फिर नहीं फहराएगी । तब तुम देखोगे कि तुम्हारी मिथ्या प्रतिष्ठा धूलि में मिल जाएगी ।" भगवान् शिव के इन वचनों को सुनकर बाणासुर अपनी शक्ति के मद से फूल गया । वह अत्यन्त प्रसन्न था कि उसे कोई ऐसा व्यक्ति मिलेगा, जो उसको छिन्न-भिन्न करने में समर्थ होगा । तदुपरान्त बाणासुर अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक घर लौट गया और सदैव उस दिन की प्रतीक्षा करता रहा,

जब एक योग्य योद्धा आ कर उसके बल को चूर-चूर कर डालेगा । वह बहुत ही मूर्ख असुर था । ऐसा प्रतीत होता है कि जब ऐसे मूर्ख आसुरी मानवों के पास भौतिक ऐश्वर्यों का बाहुल्य हो जाता है, तब वे इन ऐश्वर्यों का प्रदर्शन करना चाहते हैं और ऐसे मूर्ख व्यक्तियों को इन ऐश्वर्यों की समाप्ति पर सन्तोष का अनुभव होता है । कहने का तात्पर्य यह है कि कृष्णभावनामृत के लाभों से अनजान होने के कारण वे यह नहीं जानते हैं कि अपनी शक्ति को उचित उद्देश्य के लिए किस प्रकार व्यय किया जाए । यथार्थ में मनुष्यों के दो वर्ग होते हैं-एक वह जो कृष्णभावनाभावित है और दूसरा वह जो कृष्णभावनाभावित नहीं है । जो कृष्णभावनाभावित नहीं हैं, वे व्यक्ति सामान्यतया देव-भक्त होते हैं, जबकि कृष्णभावनाभावित व्यक्ति श्रीभगवान् के भक्त होते हैं । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति प्रत्येक वस्तु का उपयोग भगवान् की सेवा के लिए करते हैं । जो व्यक्ति कृष्णभावनाभावित नहीं हैं, वे प्रत्येक वस्तु का उपयोग इन्द्रियतृप्ति के हेतु करते हैं और बाणासुर ऐसे व्यक्ति का एक आदर्श उदाहरण था । अपनी सन्तुष्टि के लिए वह युद्ध करने की अपनी असाधारण शक्ति का उपयोग करने के लिए अत्यधिक उत्सुक था । कोई प्रतिद्वन्द्री न मिलने पर वह अपने बलशाली हाथों से पत्थरों पर प्रहार करता था और उनके टुकड़े-टुकड़े कर डालता था । इसके विपरीत अर्जुन के पास भी युद्ध की असाधारण शक्तियाँ थीं । किन्तु वे उनका उपयोग केवल श्रीकृष्ण के लिए करते थे । बाणासुर की एक अतीव सुन्दरी कन्या थी जिसका नाम उषा था । अब उसकी अवस्था विवाह योग्य हो गई थी और एक रात्रि जब वह अपनी सखियों के मध्य शयन कर रही थी, तब उसने स्वप्न में देखा कि श्री अनिरुद्ध उसके समीप थे और वह उनके साथ दाम्पत्य सम्बन्ध का उपभोग कर रही थी । इसके पूर्व उषा ने न तो कभी श्री अनिरुद्ध को देखा था, न ही उनके विषय में सुना था । वह उच्च स्वर में पुकारती हुई स्वप्न से जाग गई, "हे प्रिय! तुम कहाँ हो?" अपनी सखियों के समक्ष इस प्रकार बात खुल जाने से वह किंचित लजा

गई । उषा की सखियों में से एक का नाम चित्रलेखा था, वह बाणासुर के प्रधान मंत्री की पुत्री थी । चित्रलेखा व उषा धनिष्ठ सखियाँ थीं । चित्रलेखा ने अत्यधिक जिज्ञासावश प्रश्न किया, "हे सुन्दरी राजकन्या! अभी तक तुम्हारा किसी किशोर से विवाह नहीं हुआ है, न ही तुमने अभी तक किसी किशोर के दर्शन किए हैं, अतएव तुम्हें इस प्रकार पुकारते देख कर मुझे आश्चर्य हो रहा है । तुम किसे ढूँढ रही हो? तुम्हारा विवाह-योग्य साथी कौन 镜?" चित्रलेखा के प्रश्नों को सुन कर उषा ने उत्तर दिया, "प्रिय सखी! मैंने स्वप्न में एक श्रेष्ठ युवक को देखा जो अतिशय सुन्दर है । उसका वर्ण श्यामल है, उसके नेत्र कमलदल के समान हैं और उसने पीत वस्त्र धारण किए हैं । उसकी भुजाएँ प्रलम्ब हैं और उसके सामान्य शारीरिक लक्षण इतने मुदित करने वाले हैं कि कोई भी किशोरी उसकी ओर आकर्षित हो जाएगी । यह कहते हुए मुझे अत्यन्त अभिमान हो रहा है कि यह सुन्दर युवक मेरा चुम्बन ले रहा था और उसके चुम्बन का मधुपान करने में मुझे अत्यन्त आनन्द का अनुभव हो रहा था । तुम्हें यह सूचित करते हुए मुझे अत्यन्त दुख हो रहा है कि इसके तत्काल बाद वह तिरोहित हो गया और मुझे निराशा के भेंवर में डुबो गया है । प्रिय सखी! अपने हृदय के वांछित स्वामी, इस अद्‌भुत युवक को प्राप्त करने के लिए मैं अत्यन्त अधीर हूँ ।" उषा के वचनों को सुन कर चित्रलेखा ने तत्काल उत्तर दिया, "मैं तुम्हारे वियोग के दुख को समझ सकती हूँ । मैं तुम्हें विश्वास दिलाती हूँ कि यदि यह युवक उच्च, मध्य व निम्न तीनों लोकों में कहीं भी है, तब मैं तुम्हारी सन्तुष्टि के लिए उसे अवश्य ही ढूँढ लाऊँगी । यदि तुम अपने स्वप्न के उस युवक को पहचान लोगी, तो मैं अवश्य ही तुम्हारी मानसिक शान्ति ले आऊँगी । अब मैं तुम्हारे सम्मुख कुछ चित्र बनाती हूँ । तुम उन्हें देखो और जैसे ही तुम्हें तुम्हारे वांछित पति का चित्र दिखे, तुम मुझे बता देना । वह कहाँ है इससे कोई भेद नहीं पड़ता है । मुझे उसको यहाँ लाने की कला ज्ञात है । अतएव जैसे ही तुम उसे पहचान लोगी, मैं तत्काल उसे

यहाँ लाने का प्रबन्ध कर दूँगी ।" इस प्रकार वार्तालाप करते हुए चित्रलेखा ने स्वर्गलोक में निवास करने वाले देवताओं के चित्र बनाने प्रारम्भ कर दिए । तदनन्तर उसने गन्धवों, सिद्धों, चारणों, पन्नगों, दैत्यों, विद्याधरों, यक्षों और मानवों के भी चित्र बनाए । (श्रीमद्रा/वत तथा अन्य वैदिक साहित्य के कथनों से यह निश्चित रूप से सिद्ध हो जाता है कि प्रत्येक ग्रह पर विभिन्न प्रकार के जीव निवास करते हैं । अतएव यह कहना मूर्खता है कि पृथ्वी पर रहने वाले जीवों के अतिरिक्त और कोई जीव नहीं हैं ।) चित्रलेखा ने कई चित्र बनाए । मानवों के चित्रों में वृष्णि वंश के चित्र भी थे । उसमें श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव जी, पितामह शूरसेन जी, श्रीबलराम जी, भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य अनेक व्यक्तियों के चित्र थे । जब उषा ने प्रद्युम्न का चित्र देखा, तो वह किंचित् लजा गई किन्तु जब उसने अनिरुद्ध का चित्र देखा, तो वह इतनी लजा गई कि उसने तत्काल अपना सिर झुका लिया और मुस्कुराने लगी । जिसे वह ढूँढ रही थी वह पुरुष उसे प्राप्त हो गया था । उसने अनिरुद्ध का चित्र पहचान कर चित्रलेखा को बताया कि उसका हृदय चुराने वाला पुरुष वही है । चित्रलेखा एक महान् योगिनी थी । यद्यपि उसने तथा उषा ने न तो कभी अनिरुद्ध को देखा था, न उनका नाम ही सुना था तथापि जैसे ही उषा ने चित्र को पहचाना, चित्रलेखा तत्काल ही समझ गई कि वह चित्र श्रीकृष्ण के एक पौत्र अनिरुद्ध का है । उसी रात्रि में अन्तरिक्ष मार्ग से यात्रा करके वह अल्पकाल में ही श्रीकृष्ण के द्वारा सुरक्षित द्वारका नगरी में पहुँच गई । उसने महल में प्रवेश किया और अनिरुद्ध को अपने शयन-कक्ष में एक भव्य शैया पर सोते हुए देखा । अपनी योगमाया से चित्रलेखा सोते हुए अनिरुद्ध को तत्काल शोणितपुर नगर में ले आई, जिससे कि उषा अपने वांछित पति का दर्शन कर सके । उषा तत्काल प्रसन्नता से खिल गई और अत्यन्त सन्तोषपूर्वक अनिरुद्ध के संग का आनन्द उठाने लगी । जिस महल में उषा तथा चित्रलेखा निवास करती थीं वह इतनी भलीभाँति सुरक्षित था कि किसी भी पुरुष के लिए उसमें प्रवेश करना अथवा उसके अन्दर देख पाना असम्भव था ।

उषा तथा अनिरुद्ध महल में साथ-साथ निवास करते थे । दिनप्रति-दिन अनिरुद्ध के प्रति उषा का प्रेम बढ़ने लगा । उषा ने अपने मूल्यवान वस्त्रों, पुष्पों, मालाओं, सुगन्धों तथा धूप आदि से अनिरुद्ध को प्रसन्न कर दिया । उनकी शैया के समीप के आसन के निकट खान-पान के प्रयोजन की अन्य सामग्रियाँ भी थीं जैसे दूध और शरबत आदि उत्तम पेय तथा चबाने अथवा निगलने योग्य उत्तम खाद्य पदार्थ । सबसे बढ़कर उषा ने अनिरुद्ध को अपने मधुर वचनों और सेवा से प्रसन्न कर दिया । उषा अनिरुद्ध की इस तरह उपासना करती थी जैसे वे श्रीभगवान् हों । उषा की अत्युतम सेवा से प्रसन्न होकर अनिरुद्ध सब कुछ भूल गए । इस प्रकार उषा अपने अनन्य प्रेम व ध्यान से अनिरुद्ध को अपनी ओर आकर्षित करने में सफल हुई । इस प्रेम और सेवामय वातावरण में अनिरुद्ध स्वयं को भी लगभग भूल गए और उन्हें यह भी स्मृति न रही कि वे कितने दिनों से अपने वास्तविक गृह से दूर हैं ।

कुछ समय पश्चात् उषा में कुछ ऐसे शारीरिक लक्षण दिखाई दिए जिनसे संकेत मिलता था कि वह किसी पुरुष मित्र के साथ समागम कर रही थी । वे लक्षण इतने स्पष्ट थे कि उसकी गतिविधियाँ किसी से भी गुप्त नहीं रखी जा सकती थीं । अनिरुद्ध के संग उषा सदैव ही प्रसन्न रहती थी उसके सन्तोष की सीमा न थी । नौकर और महल के द्वारपाल सरलता से अनुमान लगा सकते थे कि उसका किसी पुरुष से सम्बन्ध है तथा अधिक की प्रतीक्षा न करके, तत्काल उन सबने अपने स्वामी बाणासुर को जानकारी दी । वैदिक सभ्यता में किसी अविवाहिता कन्या का किसी पुरुष से सम्बन्ध रखना कन्या के परिवार के लिए महान् कलंक होता है । अतएव महल की देखभाल करने वाले व्यक्ति ने सावधानीवश अपने स्वामी को सूचित किया कि उषा में एक कलंकपूर्ण सम्बन्ध का संकेत देने वाले लक्षण विकसित हो रहे हैं । सेवकों ने अपने स्वामी को सूचित किया कि वे महल की रक्षा में तनिक भी असावधानी नहीं कर रहे हैं, वे

रात दिन चौकस रहते हैं कि कोई युवक महल में प्रवेश न कर सके । वे इतने सावधान थे कि कोई पुरुष यह देख भी नहीं सकता था कि महल में क्या हो रहा है, अत: वे चकित थे कि उषा किस प्रकार दूषित हो गई । वे इस स्थिति का कारण नहीं ढूँढ सके, अतएव उन्होंने सम्पूर्ण स्थिति अपने स्वामी के समक्ष प्रस्तुत कर दी ।

यह जानकर बाणासुर को आघात लगा कि उसकी कन्या उषा अब कुमारी नहीं रही । यह बात उसके हृदय पर भार बन गई और वह अविलम्बन उस महल की ओर दौड़ा जिसमें उषा निवास करती थी । वहाँ उसने देखा कि उषा तथा अनिरुद्ध साथ बैठ कर वार्तालाप कर रहे थे । साक्षात् कामदेव प्रद्युम्न के पुत्र होने के कारण अनिरुद्ध तथा उषा साथ-साथ बैठे अत्यन्त सुन्दर प्रतीत होते थे । बाणासुर ने भी देखा कि अनिरुद्ध तथा उसकी पुत्री उषा की जोड़ी अत्यन्त उपयुक्त है, फिर भी अपने परिवार की प्रतिष्ठा के लिए यह संयोग तनिक भी रुचिकर नहीं लगा । बाणासुर यह नहीं समझ सका कि वास्तव में वह युवक कौन था? वह यह तथ्य समझ सकता था कि उषा तीनों लोकों में उस युवक से अधिक सुन्दर अन्य किसी व्यक्ति का चुनाव नहीं कर सकती थी । अनिरुद्ध का वर्ण श्यामल व प्रभापूर्ण था । उन्होंने पीत वस्त्र धारण किए थे और उनके नयन कमलदल के समान थे । उनकी भुजाएँ अतिशय लम्बी थीं और उनके केश काले और कुंचित थे । उनके प्रकाशवान् कुण्डलों की प्रकाशित किरणें और उनके अधरों की सुन्दर मुस्कान निश्चय ही अत्यन्त मोहक थीं । फिर भी बाणासुर अत्यन्त क्रोधित था ।

जब बाणासुर ने उनको देखा, तब अनिरुद्ध उषा के साथ क्रीड़ा करने में संलग्न था । अनिरुद्ध ने उत्तम वस्त्र धारण किए थे और उषा ने उसे विभिन्न सुन्दर पुष्पमालाएँ पहनाई थीं । स्त्रियों के स्तनों पर लगाया जाने वाला कुमकुम स्थान-स्थान पर माला पर लगा हुआ था । इससे संकेत मिलता था कि उषा ने उसका आलिंगन किया था । बाणासुर को आश्चर्य हुआ कि

उसकी उपस्थिति में भी अनिरुद्ध शांतिपूर्वक उषा के सम्मुख बैठा था । अनिरुद्ध को ज्ञात था कि उसके भावी श्वसुर प्रसन्न नहीं हैं और वे उस पर आक्रमण के हेतु महल में अनेक सैनिकों को एकत्र कर रहे हैं ।

इस प्रकार अन्य कोई अस्त्र न प्राप्त होने पर अनिरुद्ध ने एक बड़ी सी लौह शलाका ले ली और बाणासुर तथा उसके सैनिकों के सम्मुख खड़े हो गए । वे दृढ़तापूर्वक ऐसी मुद्रा में खड़े हो गए जिससे संकेत मिलता था कि यदि उन पर आक्रमण होगा, तो वे लौह शलाका से समस्त सैनिकों को धाराशायी कर देंगे । बाणासुर तथा उसके सैनिकों ने देखा कि अपने अजेय दण्ड के साथ साक्षात् यमराज की भाँति वह युवक उनके सम्मुख खड़ा है । अब बाणासुर के आदेश पर सभी दिशाओं से सैनिकों ने उन्हें पकड़ने व बन्दी बनाने का प्रयास किया । जब वे सैनिक साहस करके अनिरुद्ध के सामने आए, तो अनिरुद्ध ने उनपर शलाका से प्रहार किया और उनके सिर, पैर, हाथ व जंघाएँ तोड़ डालीं । एक के पश्चात् एक सैनिक भूमि पर गिरने लगा । अनिरुद्ध ने उनका उसी प्रकार वध कर दिया जैसे बाजों के दल का नेता भौंकने वाले कुत्तों को एक-एक कर के मार डालता है । इस रीति से अनिरुद्ध महल से बच निकलने में सफल हो गए । बाणासुर को विभिन्न युद्ध कलाएँ ज्ञात थीं और शिवजी की कृपा से उसे नाग-पाश के द्वारा शत्रु को बन्दी बनाने की क्रिया भी ज्ञात थी । अतएव महल से बाहर आते समय अनिरुद्ध को बन्दी बना लिया गया । जब उषा को यह समाचार प्राप्त हुआ कि उसके पिता ने अनिरुद्ध को बन्दी बना लिया है, तब वह शोक और किंकर्तव्यविमूढ़ता से व्याकुल हो गई । उसके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे और स्वयं को रोकने में असफल हो कर वह अत्यन्त उच्च स्वर से क्रन्दन करने लगी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "उषा एवं अनिरुद्ध का मिलाप" नामक बासठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 63
भगवान् श्रीकृष्ण का बाणासुर से संग्राम

जब वर्षाऋतु के चातुर्मास व्यतीत हो गए और फिर भी अनिरुद्ध घर नहीं लौटे, तो यदु परिवार के समस्त सदस्य अत्यन्त व्यग्र हो उठे । उनकी समझ में नहीं आ रहा था कि अनिरुद्ध किस प्रकार अब तक अनुपस्थित थे । सौभाग्यवश एक दिन देवर्षि नारद ने आकर यदु परिवार को अनिरुद्ध के महल से अन्तर्धान होने के विषय में जानकारी दी । उन्होंने यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार अनिरुद्ध का हरण करके बाणासुर की राजधानी शोणितपुर ले जाया गया था तथा किस प्रकार अनिरुद्ध के द्वारा बाणासुर के सैनिकों के परास्त हो जाने पर बाणासुर ने उन्हें नागपाश के द्वारा बन्दी बना लिया था । देवर्षि नारद ने यह समाचार पूर्ण विवरण सहित सुनाया और समस्त कथा उनके सम्मुख स्पष्ट रूप से कही । तदुपरान्त श्रीकृष्ण से अत्यन्त स्नेह रखने वाले यदुवंश के समस्त सदस्य शोणितपुर नगर पर आक्रमण करने को तत्पर हो गए । श्रीप्रद्युम्न, श्रीसात्यकि, श्रीगद, श्रीसाम्ब, श्रीसारण, श्रीनन्द, श्रीउपनन्द और श्रीभद्र सहित परिवार के लगभग सभी नेता संयुक्त हो गए और उन्होंने व्यूह रचना करके अठारह अक्षौहिणी सेना एकत्र की । तदनन्तर वे सब शोणितपुर गए और नगर को चारों ओर से सैनिकों, हाथियों, घोड़ों और रथों से घेर लिया ।

जब बाणासुर ने सुना कि विभिन्न परकोटों, द्वारों तथा समीपस्थ उद्यानों को छिन्न-भिन्न करते हुए यदुवंश के सैनिक समस्त नगर पर आक्रमण कर रहे हैं तब अत्यन्त कृद्ध हो कर उसने यदु सैनिकों के समान ही

बलशाली अपने सैनिकों को उनका सामना करने का आदेश दिया । शिवजी बाणासुर पर इतने कृपालु थे कि अपने शूरवीर पुत्रों कार्तिकेय तथा गणपति सहित स्वयं उसकी सेना के सेनापति के रूप में आए । अपने प्रिय बैल नन्दीश्वर पर आसीन हो कर शिवजी ने भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलराम जी के विरुद्ध युद्ध का नेतृत्व किया । हम कल्पना कर सकते है कि वह युद्ध कितना भयंकर रहा होगा जिसमें एक ओर अपने वीर पुत्रों सहित शिवजी थे तथा दूसरी ओर भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके ज्येष्ठ भ्राता श्रीबलराम थे । वह युद्ध इतना भयंकर था कि उसे देखने वाले आश्चर्यचकित रह गए और उन्हें रोमांच हो आया । शिवजी श्रीकृष्ण से प्रत्यक्ष युद्ध कर रहे थे तथा प्रद्युम्न कार्तिकेय के साथ युद्ध में संलग्न थे । भगवान् श्रीबलराम बाणासुर के सेनापति कुम्भाण्ड के साथ युद्ध में संलग्न थे और कूपकर्ण कुम्भाण्ड की सहायता कर रहा था । श्रीकृष्ण के पुत्र साम्ब बाणासुर के पुत्र के साथ युद्ध में संलग्न थे एवं स्वयं बाणासुर यदुवंश के सेनापति सात्यकि के साथ युद्ध में संलग्न था । इस प्रकार यह युद्ध हो रहा था ।

इस युद्ध का समाचार समस्त ब्रह्माण्ड में प्रसारित हो गया । ब्रह्माजी जैसे स्वर्गलोक के देवता, महान्, ऋषि-मुनि, सिद्ध, चारण व गन्धर्व-सभी भगवान् श्रीकृष्ण तथा शिवजी एवं उनके सहायकों के मध्य युद्ध देखने को उत्सुक थे । कौतूहल से परिपूर्ण वे सब अपने-अपने वायुयानों में युद्धभूमि के ऊपर मैंडरा रहे थे । अनेक प्रकार के प्रबल भूत-पिशाच तथा नरक के निवासी, जैसे भूत, प्रेत, प्रमथ, सेवा करते हैं, इस कारण शिवजी को भूतनाथ कहा जाता है । (सभी प्रकार के भूतों में, ब्रह्मराक्षस अत्यन्त शक्तिशाली होते हैं । वे ब्राह्मण, जो भूत बन जाते हैं, ब्रह्मराक्षस कहलाते हैं ।)

भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रसिद्ध धनुष, शाङ्र्गधनुष, के प्रहार से इन सब भूतों को युद्धभूमि से भगा दिया । तब शिवजी अपने समस्त चुने हुए

अस्त्र-शस्त्रों से श्रीभगवान् पर प्रहार करने लगे । भगवान् श्रीकृष्ण ने बिना किसी कठिनाई के इन सभी अस्त्रों को अपने अस्त्रों से काट दिया । परमाणु बम के समान ब्रह्मास्त्र को श्रीकृष्ण ने अन्य ब्रह्मास्त्र से काट दिया और वायु अस्त्र को पर्वतास्त्र से काट दिया । जब शिवजी ने अंधड़ लाने वाला अस्त्र चलाया, तो भगवान् श्रीकृष्ण ने उसके विपरीत पर्वतास्त्र चलाया जिसने आँधी को तत्काल रोक दिया । उसी तरह जब शिवजी ने प्रलयंकारी अग्नि अस्त्र चलाया, तो श्रीकृष्ण ने उसे घनघोर वर्षा से काट 彷可1 अन्त में जब शिवजी ने पाशुपत-अस्त्र नामक अपना व्यक्तिगत अस्त्र चलाया तब श्रीकृष्ण ने तत्काल उसे नारायण-अस्त्र से काट दिया । तब भगवान् श्रीकृष्ण से युद्ध करने में शिवजी अत्यन्त उत्तेजित हो उठे । श्रीकृष्ण ने इस अवसर का लाभ उठाते हुए जम्भाई का अस्त्र चलाया । इस अस्त्र के चलाने पर शत्रु पक्ष भ्रमित हो जाता है, युद्ध बन्द कर देता है और जम्भाई लेने लगता है । इस अस्त्र के परिणामस्वरूप शिवजी इतने थकित हो गए कि उन्होंने युद्ध करना अस्वीकार कर दिया और वे जम्भाई लेने लगे । अब श्रीकृष्ण को शिवजी के आक्रमण से हटाकर अपना ध्यान बाणासुर के प्रयास पर केन्द्रित करने का अवसर प्राप्त हुआ । वे बाणासुर के सैनिकों का कटार और गदा से वध करने लगे । इसी मध्य भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न देवताओं के सेनापित कार्तिकेय से घोर युद्ध कर रहे थे । कार्तिकेय घायल थे और उनके शरीर से रक्तधारा प्रवाहित हो रही थी । इस दशा में और अधिक युद्ध न करके कार्तिकेय अपने वाहन मयूर पर सवार होकर युद्धभूमि से चले गए । इसी तरह भगवान् श्रीबलराम बाणासुर के सेनापति कुम्भाण्ड पर अपनी गदा का प्रहार करके उसे त्रस्त कर रहे थे । कूपकर्ण भी घायल था और कुम्भाण्ड तथा वह दोनों रणभूमि में गिर पड़े । सेनापति कुम्भाण्ड बुरी तरह से घायल था । मार्गदर्शन न मिलने के कारण बाणासुर के सैनिक इधर-उधर तितर-बितर हो गए । जब बाणासुर ने देखा कि उसके सैनिक तथा सेनापति

परास्त हो गए हैं, तो उसका क्रोध और बढ़ गया, उसने श्रीकृष्ण के सेनापति सात्यकि से युद्ध रोक देना बुद्धिमत्ता समझी और इसके स्थान पर उसने प्रत्यक्ष रूप से भगवान् श्रीकृष्ण पर आक्रमण कर दिया । अब बाणासुर को अपने एक हजार हाथों का उपयोग करने का अवसर प्राप्त हुआ था । एकसाथ पाँच सौ धनुषों तथा दो हजार बाणों का प्रयोग करते हुए वह श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा । श्रीकृष्ण ने तत्काल बिना किसी कठिनाई के बाणासुर के प्रत्येक धनुष के दो-दो टुकड़े कर दिए और उसे आगे बढ़ने से रोकने के लिए उसके रथ के घोड़ों को धराशायी कर दिया । तत्पश्चात् रथ खण्ड-खण्ड हो गया । ऐसा करने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने अपना पांचजन्य शंख बजाया । बाणासुर कोटरा नामक एक देवी की उपासना करता था और उससे उसका माता तथा पुत्र की भाँति सम्बन्ध था । माता कोटरा बाणासुर के प्राणों पर संकट देख कर विचलित हो गई, अतएव वह वहाँ प्रकट हुई । वह बिखरे हुए बालों तथा निर्वस्त्र देह में श्रीकृष्ण के सम्मुख खड़ी हुई । इस निर्वस्त्र स्त्री को देखना श्रीकृष्ण को रुचिकर नहीं लगा, अतएव उसे देखने से बचने के लिए श्रीकृष्ण ने मुख घुमा लिया । श्रीकृष्ण के आक्रमण से बचने का यह अवसर प्राप्त होने पर बाणासुर रणभूमि से पलायन कर गया । उसके धनुषों की डोरियाँ टूट चुकी थीं और कोई सारथी भी नहीं था, अतएव अपने नगर लौट जाने के अतिरिक्त उसके पास और कोई विकल्प नहीं था । उसने युद्ध में अपना सर्वस्व खो दिया । श्रीकृष्ण के बाणों से बुरी तरह से त्रस्त होकर शिवजी के सभी गण, पिशाच भूत, प्रेत व क्षत्रिय रणक्षेत्र छोड़ कर चले गए । तब शिवजी ने अन्तिम विकल्प का उपयोग किया । उन्होंने अपना महान् मारक अस्त्र शिवज्वर चलाया । शिवज्वर अतिशय ताप के द्वारा विनाश करता है । कहा जाता है कि सृष्टि के अन्त अर्थात् प्रलय के समय सूर्य सामान्य से बारह गुना अधिक तप्त हो जाता है । यह बारह गुना अधिक ताप शिवज्वर कहलाता है । जब मूर्तिमान् शिवज्वर को चलाया गया तब उसके तीन सिर तथा तीन पैर थे और जैसे-जैसे वह श्रीकृष्ण की ओर आ

रहा था, तो ऐसा प्रतीत होता था कि वह प्रत्येक वस्तु को भस्म कर रहा है । वह इतना शक्तिशाली था कि उसने समस्त दिशाओं में प्रज्वलित अग्नि का निर्माण कर दिया है और श्रीकृष्ण ने देखा कि वह विशेषरूप से उनकी ओर आ रहा था । जिस प्रकार शिवज्वर एक अस्त्र है, उसी भाँति नारायणज्वर नामक अस्त्र भी है । नारायणज्वर से अतिशीत का निर्माण होता है । जब अतिशय ताप होता है, तब लोग किसी न किसी प्रकार उसे सहन कर सकते हैं, किन्तु जब अतिशय शीत होता है, तब प्रत्येक वस्तु शक्तिहीन हो जाती है । व्यक्ति को वास्तव में यह अनुभव मृत्यु के समय होता है । मृत्यु के समय प्रथम तो शरीर का ताप एक सौ सात डिग्री तक बढ़ जाता है, तत्पश्चात् समस्त शरीर शक्तिहीन हो जाता है और तत्काल बर्फ के समान ठण्डा हो जाता है । शिवज्वर के झुलसाने वाले ताप को काटने के लिए नारायणज्वर के अतिरिक्त और कोई अस्त्र नहीं था । जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि शिवजी ने शिवज्वर चलाया है, तब नारायणज्वर चलाने के अतिरिक्त उनके पास और कोई चारा न रहा । भगवान् श्रीकृष्ण आदिनारायण एवं नारायणज्वर अस्त्र के नियन्ता हैं । नारायणज्वर चलाए जाने पर दोनों ज्वरों के मध्य घमासान युद्ध हुआ । जब अतिशय उष्णता पर तीव्र शीत की प्रतिक्रिया होती है, तब स्वाभाविक है कि उष्ण ताप शनैःशनैः कम होने लगता है । शिवज्वर तथा नारायणज्वर के मध्य युद्ध में भी यही हुआ । शनैःशनैः शिवज्वर का ताप कम हो गया और वह शिवजी से सहायता करने के लिए कहने लगा । किन्तु नारायणज्वर की उपस्थिति में शिवजी उसकी सहायता करने में असमर्थ थे । शिवजी से सहायता प्राप्त करने में असमर्थ होकर शिवज्वर समझ गया कि स्वयं श्रीनारायण अर्थात् भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष आत्मसमर्पण करने के अतिरिक्त उसके बचने का और कोई साधन नहीं है । देवताओं में सर्वश्रेष्ठ शिवजी ही जब उसकी सहायता नहीं कर सके, तब अन्य देवताओं का तो कहना ही क्या? अतएव श्रीकृष्ण के सम्मुख नमन करके और उनकी स्तुति करते हुए शिवज्वर ने भगवान् के सम्मुख

आत्मसमर्पण कर दिया जिससे कि भगवान् प्रसन्न हो जाँए और उसे अभयदान दें । भगवान् श्रीकृष्ण तथा शिवजी के अन्तिम अस्त्रों के मध्य युद्ध की इस घटना से सिद्ध हो जाता है कि जिसकी रक्षा श्रीकृष्ण करते हैं उसका वध कोई नहीं कर सकता है । किन्तु यदि श्रीकृष्ण किसी को कोई सुरक्षा नहीं देते हैं, तब तो कोई भी उसकी रक्षा नहीं कर सकता है । शिवजी को महादेव कहा जाता है, जिसका अर्थ है देवताओं में सर्वश्रेष्ठ । यद्यपि कभी-कभी ब्रह्माजी को देवताओं में सर्वश्रेष्ठ माना जाता है, क्योंकि वे सृष्टि कर सकते हैं, जबकि शिवजी ब्रह्मा की सृष्टि का संहार कर सकते हैं । किन्तु ब्रह्माजी तथा शिवजी दोनों ही एक-एक कार्य कर सकते हैं । ब्रह्माजी सृष्टि कर सकते हैं और शिवजी संहार कर सकते हैं, किन्तु दोनों में से कोई भी पालन नहीं कर सकते । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण न केवल पालन करते हैं, अपितु वे सृष्टि एवं संहार भी करते हैं । तथ्य तो यह है कि सृष्टि ब्रह्मा नहीं करते हैं, क्योंकि स्वयं ब्रह्मा की सृष्टि भी भगवान् विष्णु करते हैं । शिवजी का जन्म ब्रह्मा से होता है । इस प्रकार शिवज्वर समझ गया कि श्रीकृष्ण अथवा नारायण के अतिरिक्त और कोई उसकी सहायता नहीं कर सकता । अतएव उसने भगवान् श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण की और हाथ जोड़ करके वह निम्न प्रकार से स्तुति करने लगा । "प्रिय भगवन्! मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ, क्योंकि आपके पास असीम शक्तियाँ हैं । आपकी शक्तियों का कोई अतिक्रमण नहीं कर सकता है और इस प्रकार आप सबके भगवान् हैं । सामान्यतया लोग शिवजी को भौतिक जगत का सर्वाधिक हैं । यही तथ्य है । आप आदि चेतना अथवा ज्ञान हैं । ज्ञान अथवा चेतना के बिना कुछ भी शक्तिमान नहीं हो सकता है । कोई भौतिक वस्तु अत्यन्त शक्तिशाली हो सकती है, किन्तु ज्ञान अथवा चेतना के स्पर्श के बिना वह कार्य नहीं कर सकती है । कोई भौतिक यंत्र अत्यन्त विशाल तथा अद्‌भुत हो सकता है, किन्तु किसी चेतना ज्ञानयुक्त व्यक्ति के स्पर्श के बिना भौतिक यंत्र बेकार होता है । प्रिय भगवन्! आप पूर्ण ज्ञान हैं और आपके व्यक्तित्व में भौतिक दूषण

का लेशमात्र भी नहीं है । समस्त सृष्टि का संहार करने वाली अपनी विशिष्ट शक्ति के कारण शिवजी एक अत्यन्त शक्तिमान देवता हो सकते हैं । उसी भाँति ब्रह्मा अत्यन्त शक्तिमान हो सकते हैं, क्योंकि वे समस्त ब्रह्माण्ड की सृष्टि कर सकते हैं, किन्तु वास्तव में ब्रह्माजी अथवा शिवजी किसी भी सृष्टि के मूल कारण नहीं हैं । आप परम सत्य परब्रह्म हैं तथा आप ही मूल कारण हैं । निराकार ब्रह्म ज्योति सृष्टि का मूल कारण नहीं है । वह आपके व्यक्तित्व पर आश्रित है । जैसाकि श्रीमदगवद्गीता में प्रमाणित किया गया है, निराकार ब्रह्म का कारण भगवान् श्रीकृष्ण हैं । ब्रह्म ज्योति की तुलना सूर्यगोलक से निकलने वाले सूर्यप्रकाश से की गई है । अतएव निराकार ब्रह्म अन्तिम कारण नहीं हैं । प्रत्येक वस्तु का अन्तिम कारण श्रीकृष्ण का परम शाश्वत रूप है । किन्तु कृष्ण के नित्यरूप साकार ब्रह्म में कोई क्रिया-प्रतिक्रिया नहीं है । अतएव हे भगवन्! आपका शरीर पूर्ण रूप से शान्तिपूर्ण एवं आनन्दमय है, वह भौतिक दूषणों से रहित है । "भौतिक शरीर में भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया होती है । काल सर्वाधिक महत्वपूर्ण तत्व है और अन्य सब तत्वों से ऊपर है, क्योंकि काल के क्षोभ से भौतिक सृष्टि पर प्रभाव पड़ता है । इस प्रकार प्राकृतिक पदार्थों का जन्म होता है और जैसे ही पदार्थों की उत्पत्ति होती है, सकाम कर्म भी दृष्टिगोचर होते हैं । इन सकाम कर्मों के फलस्वरूप जीव को अपना आकार प्राप्त होता है । वह एक विशेष प्रकार की प्रकृति प्राप्त करता है, जो एक सूक्ष्म शरीर तथा प्राणवायु, अहं, दसों इन्द्रियों, मन तथा पंचभूतों से निर्मित स्थूल शरीर में निहित रहती हैं । तत्पश्चात् ये सब इस प्रकार के शरीर की सृष्टि करते हैं, जो कि बाद में आत्मा के देहान्तर के द्वारा एक के बाद एक प्राप्त विभिन्न शरीरों का मूल कारण बन जाता है । ये सारी अभिव्यक्तियाँ आपकी भौतिक शक्ति की संयुक्त क्रियाएँ हैं । विभिन्न तत्वों की क्रिया-प्रतिक्रिया से अप्रभावित रहने वाले आप इस बहिरंगा शक्ति के कारण हैं । आप भौतिक शक्ति के इन दबावों से ऊपर हैं और परम शान्ति हैं ।

भौतिक दूषण से मुक्ति के आप ही अन्तिम आश्रय हैं । अतएव, मैं अन्य समस्त आश्रयों को त्याग कर आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण कर रहा हूँ । "प्रिय भगवन्! एक मानव के रूप में अभिनय करने के लिए श्रीवसुदेव के पुत्र के रूप में आपका प्रकट होना आपकी पूर्ण स्वतंत्र लीलाओं में से एक है । भक्तों के लाभ तथा नास्तिकों के संहार के हेतु आप अनेक अवतारों में प्रकट होते हैं । भगवद्गीता में आपने वचन दिया है कि जैसे ही प्रगतिशील जीवन-प्रणाली में असामंजस्य होता है, वैसे ही आप प्रकट होते हैं । इस वचन को पूर्ण करने के लिए ही ऐसे समस्त अवतार होते हैं । जब अनियमित विधानों के कारण अव्यवस्था फैलती है, तब हे भगवन्! आप अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा प्रकट होते हैं । आपका मुख्य कार्य देवताओं तथा आध्यात्मिक रुचि वाले मानवों की रक्षा एवं पालन तथा भौतिक व्यवस्था के स्तर को बनाए रखना है । इस प्रकार की व्यवस्था को बनाए रखने के साथ-साथ दुष्टों एवं असुरों के प्रति आपकी हिंसा पूर्णरूप से उपयुक्त है । आपने अभी पहली बार अवतार नहीं लिया है । हमें यह समझना चाहिए कि आपने ऐसा अनेकानेक बार पहले भी किया है । "प्रिय भगवन्! मैं यह निवेदन करना चाहता हूँ कि आपके द्वारा छोड़े गये नारायणज्वर से मुझे समुचित दण्ड मिल गया है । यह वास्तव में अत्यन्त शीतल करने वाला है, किन्तु साथ-साथ यह हम सबके लिए अत्यन्त संकटप्रद एवं असह्य भी है । प्रिय भगवन्! जब तब व्यक्ति भौतिक इच्छाओं के वशीभूत हो कर तथा आपके चरणकमलों के अन्तिम आश्रय से अनजान रहते हुए कृष्णभवानामृत को भुलाये रहता है, तब तक भौतिक शरीर वाला प्राणी प्रकृति के त्रिताप से पीड़ित रहता है । चूँकि व्यक्ति आपकी शरण ग्रहण नहीं करता है, अतएव वह निरन्तर कष्ट सहन करता है ।" शिवज्वर की स्तुति सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने उत्तर दिया, "हे त्रिशीशधारी! मैं तुम्हारे कथन से प्रसन्न हुआ । निर्भय रहो । अब तुम्हें नारायणज्वर से और कष्ट नहीं होगा । अब न केवल तुम नारायणज्वर के भय से मुक्त हो, अपितु भविष्य में जो व्यक्ति शिवज्वर

तथा नारायणज्वर के मध्य के इस युद्ध का स्मरण करेगा । वह भी समस्त भय से मुक्त हो जाएगा ।" श्रीभगवान् के वचनों को सुन कर शिवज्वर ने उनके चरणकमलों में सादर प्रणाम किया और वहाँ से चला गया । इसी मध्य बाणासुर ने किसी प्रकार अपनी दुर्बलताओं पर विजय करके अपनी शक्ति का पुन: संचार किया और युद्ध करने के लिए लौट आया । इस बार बाणासुर अपने सहस्रों हाथों में विभिन्न प्रकार के शस्त्रास्त्र ले कर रथारूढ़ भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रकट हुआ । बाणासुर अत्यन्त अशान्त था । वह भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर पर अपने विभिन्न अस्त्रों की वर्षा करने लगा । जब भगवान् श्रीकृष्ण ने बाणासुर के अस्त्रों को अपनी ओर आते हुए इस तरह देखा जैसे छलनी में से पानी बाहर आता है, तब उन्होंने अपना तीक्ष्ण धार वाला सुदर्शन चक्र लेकर एक के बाद एक की एक सहस्र भुजाएँ काटनी प्रारम्भ कर दीं । उन्होंने उसकी भुजाएँ उसी प्रकार काट दीं जिस प्रकार तेज कैंची से कोई माली पेड़ की डालियों को काटता है । शिवजी ने देखा कि उनकी उपस्थिति में भी उनके भक्त बाणासुर की रक्षा नहीं हो सकती है, तब उनको सदुद्धि आ गई और वे स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख आए और निम्न प्रकार से स्तुति करके उन्हें शान्त करने लगे । शिवजी ने कहा, "प्रिय भगवन्! वैदिक स्तोत्रों के आप उपास्य हैं । आपको न जानने वाला निराकार ब्रह्मज्योति को ही सर्वोच्च परम सत्य मानता है । उसे यह ज्ञात नहीं होता है कि आप अपने आध्यात्मिक तेज के पीछे अपने नित्य धाम में निवास कर रहे हैं । अतएव हे भगवन्! आपको परम ब्रह्म कहा जाता है । भगवद्गीता में आपकी पहचान के लिए परम ब्रह्म शब्द का प्रयोग किया गया है । यद्यपि आप किसी भी भौतिक वस्तु से अप्रभावित हैं और आकाश की भाँति सर्वव्यापक हैं, तथापि ऐसे सजन पुरुष, जिन्होंने अपने हृदय से समस्त भौतिक दूषणों को धो दिया है, आपके दिव्य स्वरूप को पहचान सकते हैं । केवल भत ही आपका साक्षात्कार कर सकते हैं और कोई नहीं । आपके परम अस्तित्व से संबधित निर्विशेषवादियों की धारणा के अनुसार

आकाश आपकी नाभि के समान है, अग्नि आपका मुख है और जल आपका वीर्य है । स्वर्ग लोक आपका शीश, समस्त दिशाएँ आपके कान हैं, उर्वी लोक आपके चरणकमल हैं, चन्द्रमा आपका मन है और सूर्य आपका नेत्र है । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं आपके अहं के रूप में कार्य करता हूँ । सागर आपका उदर है और स्वर्ग लोक का राजा इन्द्र आपकी भुजा है । वृक्ष व पौधे आपके शरीर के रोम हैं, मेघ आपके शीश के केश हैं और ब्रह्माजी आपकी बुद्धि हैं । समस्त महान् पूर्वपुरुष जिन्हें प्रजापति के नाम से जाना जाता है, आपके लाक्षणिक प्रतिनिधि हैं । धर्म आपका हृदय है । आपके परम शरीर के निराकार लक्षणों को इस रीति से समझा जा सकता है, किन्तु अन्तत: आप परम पुरुष हैं । आपके परम शरीर का निराकार लक्षण आपकी शक्ति का लघु अंश है । आपकी तुलना आदि अग्नि से की जाती है और ये प्रकाश आपके ताप तथा प्रभा हैं ।" शिवजी ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! यद्यपि आपकी अभिव्यक्ति सार्वभौम रूप से होती है, ब्रह्माण्ड के विभिन्न अंग आपके शरीर के विभिन्न अंग हैं, तथापि अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा आप एकसाथ स्थानीय व सार्वभौम दोनों हो सकते हैं । ब्रह्मसहिता में कहा गया है कि यद्यपि आप सदैव अपने निवासस्थान गोलोक वृन्दावन में ही रहते हैं, तथापि आप सर्वत्र उपस्थित हैं । जैसाकि श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है कि आप भक्तों की रक्षा करने के लिए प्रकट होते हैं और यह समस्त ब्रह्माण्ड के लिए सौभाग्य का सूचक है । आपकी की कृपा से समस्त देवता ब्रह्माण्ड के विभिन्न व्यापारों का निर्देशन कर रहे हैं । इस प्रकार सप्त उच्च लोकों का पालन आपके द्वारा होता है और सृष्टि के अन्त में आपकी सारी शक्तियों की अभिव्यक्तियाँ आप ही में प्रवेश कर जाती हैं, चाहे वे देवताओं, मानवों अथवा निम्नकोटि के पशुओं के किसी भी रूप में हों । अस्तित्व के विशिष्ट लक्षणों से रहित सृष्टि के समस्त निकटती अथवा दूरवर्ती कारण आप ही में विश्राम लेते हैं । अन्तत: आप में एवं आपके स्तर के अलावा आपके अन्तर्गत किसी अन्य वस्तु में भेद करने की कोई सम्भावना नहीं है । आप

एक ही साथ इस सृष्टि के कारण तथा अवयव दोनों हैं । आप परम पूर्ण तथा अद्वय हैं । पदार्थों की अभिव्यक्ति में तीन स्थितियाँ होती हैं चेतना की स्थिति, स्वप्न में अर्धचेतना की स्थिति तथा अचेतन स्थिति । किन्तु, आप अस्तित्व की इन तीनों भौतिक स्थितियों से ऊपर हैं । अतएव आप एक चतुर्थ आयाम में अवस्थित हैं एवं आपका प्राकटय तथा तिरोभाव आपसे परे किसी वस्तु पर निर्भर नहीं है । आप सबके परम कारण हैं, किन्तु आपका कोई कारण नहीं है । हे भगवन्! आपकी स्थिति दिव्य है, तथापि आप स्वयं अपना प्राकटय व तिरोभाव करते हैं । आप अपने षडैश्वर्यों के प्रदर्शन तथा अपने दिव्य गुणों के विज्ञापनार्थ ऐसा करते हैं । अपने व्यक्तिगत प्रकाश के द्वारा आप मत्स्य, कच्छप, वराह, नृसिंह, केशव आदि अपने विभिन्न अवतारों में प्रकट हुए हैं । अपने वियुक्त प्रकाश के द्वारा आप विभिन्न जीवों के रूप में प्रकट हैं । अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा आप विष्णु के विभिन्न अवतारों के रूप में प्रकट होते हैं तथा अपनी बहिरंगा शक्ति के द्वारा आप पदार्थ जगत के रूप में प्रकट होते हैं । "सामान्य मानव की दृष्टि में जब दिन मेघाच्छादित होता है, तब सूर्य (मेघों से) आच्छादित प्रतीत होता है । किन्तु तथ्य यह है कि सूर्य का प्रकाश बादलों का निर्माण करता है, अतएव यदि सम्पूर्ण आकाश घटाओं से पूर्ण हो तब भी सूर्य वास्तव में कभी भी आच्छादित नहीं हो सकता है । इसी भाँति मानवों का अल्पबुद्धि वर्ग दावा करता है कि ईश्वर नहीं है, किन्तु जब विभिन्न जीवों का प्राकटय एवं उनके कार्यकलाप दिखाई पड़ते हैं, तब ज्ञानी जन प्रत्येक अणु में आपकी उपस्थिति देखते हैं । आपकी बहिरंगा एवं तटस्था शक्ति के माध्यम से भी वे अणु-अणु में आपके दर्शन करते हैं । अत्यन्त ज्ञानी भक्तों को आपके असीम कार्यकलापों का अनुभव होता है, किन्तु आपकी बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से भ्रमित व्यक्ति इस भौतिक जगत से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेते हैं । उनको समाज, मैत्री व प्रेम से मोह हो जाता है, इस प्रकार वे भौतिक जगत के त्रितापों को स्वीकार कर लेते हैं और सुख-दुख के द्वैत के भागी होते हैं ।

कभी-कभी वे मोह के सागर में डूब जाते हैं और कभीकभी इससे उबार लिए जाते हैं ।" "प्रिय भगवन्! केवल आपकी दया व कृपा से ही जीव को मानव-शरीर प्राप्त हो सकता है और तभी उसे भौतिक जगत की दुखपूर्ण स्थिति हो मुक्ति प्राप्त करने का अवसर मिलता है । किन्तु यदि मानव-शरीर प्राप्त करके कोई व्यक्ति अपनी इन्द्रियों को वश में नहीं कर पाता है, तब वह विषयभोग की लहरों में बह जाता है । इस प्रकार वह आपके चरणकमलों की शरण लेकर आपकी भक्ति-सेवा में संलग्न होने से वंचित रह जाता है । इस प्रकार के व्यक्ति का जीवन दुर्भाग्यपूर्ण है । इस प्रकार का तामसिक जीवन व्यतीत करने वाला व्यक्ति स्वयं को ठग रहा है और दूसरों को भी ठग रहा है । अतएव कृष्णभावनामृत से रहित मानव-समाज ठगों तथा ठगे जाने वालों का समाज है । "प्रिय भगवन्! आप वास्तव में समस्त जीवों के प्रियतम परमात्मा हैं एवं समस्त वस्तुओं के परम नियन्ता हैं । सदैव भ्रम में पड़ा हुआ मानव अन्तिम मृत्यु से भयभीत रहता है । केवल विषय-भोगों के मोह में पड़ा हुआ व्यक्ति स्वेच्छा से दुखपूर्ण भौतिक जीवन स्वीकार करता है और इस प्रकार इन्द्रियसुख की मृगमरीचिका के पीछे भटकता रहता है । वह वास्तव में सर्वाधिक मूढ़ व्यक्ति है, क्योंकि वह अमृत को त्याग कर के विषपान करता है । प्रिय भगवन्! ब्रह्माजी तथा मेरे सहित सभी देवताओं, महान् सन्तों तथा ऋषि-मुनियों ने अपने हृदयों को भौतिक मोह से विरत कर लिया है और आपकी कृपा से हम सबने सम्पूर्ण हृदय से आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण कर ली है । हम सबने आपको परमेश्वर तथा अपना प्राणपति स्वीकार कर लिया है, अतएव हम सबने आपकी शरण ग्रहण की है । आप इस सृष्टि के मूल कारण हैं, आप इसके परम पालक हैं एवं आप ही इसके प्रलय के भी कारण हैं । आप सबके प्रति समभाव रखते हैं, आप प्रत्येक जीव के सर्वाधिक शान्तिप्रिय परम मित्र हैं । आप सबों के आराध्य हैं । प्रिय भगवन्! हम सदैव आपकी दिव्य प्रेम सेवा में संलग्न रहें जिससे कि हम इस भौतिक बन्धन से मुक्ति प्राप्त कर सकें । "प्रिय भगवन्!

अन्तत: मैं आपसे निवेदन करना चाहता हूँ कि बाणासुर मुझे अत्यन्त प्रिय है । उसने मेरी बहुमूल्य सेवा की है, अतएव मैं सदैव उसे सुखी देखना चाहता हूँ । उससे प्रसन्न होकर मैंने उसे सुरक्षा का आश्वसान दिया है । प्रिय भगवन्! मेरी आपसे प्रार्थना है कि जिस प्रकार आप उसके पूर्वज राजा प्रह्लाद एवं बलि महाराज पर प्रसन्न हुए थे उसी भाँति आप उस पर भी प्रसन्न हों ।" शिवजी की स्तुति सुन कर भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उन्हें भगवान् कह कर सम्बोधित किया और कहा, "प्रिय भगवन् शिव! मैं आपके कथनों को स्वीकार करता हूँ तथा बाणासुर के प्रति आपकी इच्छा भी मुझे स्वीकार है । मुझे ज्ञात है कि यह बाणासुर बलि महाराज का पुत्र है और मैं उसे नहीं मार सकता हूँ, क्योंकि मैंने ऐसा वचन दिया है । मैंने राजा प्रह्लाद को वरदान दिया था कि उनके परिवार में जन्म लेने वाले असुरों का मैं कभी-भी वध नहीं करूंगा । अतएव इस बाणासुर का वध न करके मैंने उसके मिथ्या अभिमान से वंचित करने के लिए केवल उसकी भुजाएँ काट दी हैं । उसके सैनिकों की विशाल संख्या इस धरती का बोझ बन गई थी और उस बोझ को कम करने के लिए मैंने उन सबका वध कर दिया है । अब बाणासुर के पास चार भुजाएँ शेष हैं और वह भौतिक दुख-सुख से अप्रभावित रह कर अमर रहेगा । मुझे ज्ञात है कि वह आपके प्रमुख भक्तों में से एक है, अतएव अब आप विश्वास रखें कि अब से उसे किसी भी वस्तु से भयभीत होने की कोई आवश्यकता नहीं है ।" जब बाणासुर को इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण का आशीर्वाद प्राप्त हो गया, तब उसने भगवान् के सम्मुख आ कर अपना सिर भूमि पर रख कर उन्हें प्रणाम किया, उसने तत्काल अपनी पुत्री उषा सहित अनिरुद्ध को रथ पर वहाँ लाने का प्रबन्ध किया और उन्हें भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष प्रस्तुत किया । शिवजी के आशीर्वाद से उषा भौतिक रूप से अत्यन्त ऐश्वर्यमयी हो गई थी । इसके उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने उषा तथा अनिरुद्ध को अपने संरक्षण में ले लिया । इस प्रकार एक अक्षौहिणी सेना को आगे कर के श्रीकृष्ण द्वारका की ओर अग्रसर होने लगे । इसी

मध्य द्वारकावासियों को यह समाचार प्राप्त हुआ कि अत्यन्त ऐश्वर्य सहित श्रीकृष्ण अनिरुद्ध तथा उषा के साथ लौट रहे हैं । अतएव उन्होंने नगर के कोने-कोने को पताकाओं, कागज की रंगीन पटिटयों तथा पुष्प-मालाओं से अलंकृत किया । समस्त प्रशस्त मार्गों एवं चौराहों को भलीभाँति स्वच्छ करके उन पर चन्दन मिश्रित जल छिड़क दिया गया । अत: चारों ओर चन्दन की सुगन्ध व्याप्त थी । अपने बन्धु-बान्धवों सहित द्वारका के समस्त नागरिकों ने अत्यन्त हर्षोंल्लास के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का स्वागत किया ।

उस समय भगवान् का स्वागत करने के लिए शंखों, नगाड़ों, एवं तुरही की कोलाहलपूर्ण ध्वनि गूँज उठी । इस रीति से भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी राजधानी द्वारका में प्रवेश किया । श्री शुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित को आश्वासन दिया कि शिवजी तथा श्रीकृष्ण के मध्य युद्ध की यह कथा सामान्य युद्धों की भाँति अशुभ नहीं है । इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति प्रात:काल भगवान् श्रीकृष्ण एवं शिवजी के मध्य इस युद्ध की कथा का स्मरण करता है और भगवान् श्रीकृष्ण की विजय में सुख अनुभव करता है, तो उसे जीवन-संग्राम में कही भी पराजय नहीं होगी । बाणासुर का श्रीकृष्ण से संग्राम तथा बाद में शिवजी की कृपा से उसकी रक्षा की घटना श्रीमद्भगवद्गीता के कथन की पुष्टि करती है । भगवद्गीता में कहा गया है कि देवोपासक परमेश्वर श्रीकृष्ण की अनुमति के बिना कोई वरदान नहीं प्राप्त कर सकते हैं । इस कथा में हम पाते हैं कि यद्यपि बाणासुर शिवजी का महान् भक्त था, किन्तु जब श्रीकृष्ण के हाथों उसकी मृत्यु होने वाली थी तब शिवजी उसकी रक्षा करने में समर्थ नहीं हुए । किन्तु शिवजी ने श्रीकृष्ण से अपने भक्त की रक्षा करने की प्रार्थना की और इस प्रकार भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार की । भगवान् श्रीकृष्ण का यही पद है । इस सम्बन्ध में भगवद्गीता में प्रयुक्त शब्द हैं-सर्व्यव विहितान् हि त/नू/

इसका अर्थ है कि परम भगवान् की अनुमति के बिना कोई भी देवता अपने उपासकों को कोई वरदान नहीं दे सकता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण का बाणासुर से संग्राम" नामक तिरसठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 64
राजा नृग की कथा

एक बार श्रीसाम्ब, श्री प्रद्युम्न, श्रीचारुभानु भगवान् श्रीकृष्ण के परिवार के सदस्य और यदुवंश के राजकुमार, श्रीगद आदि द्वारका के समीप वन में के लिए गए । विहार करते हुए वे सब अत्यन्त प्यासे हो गए, अतएव वे वन में जल-प्राप्ति का स्थान ढूँढने लगे । जब वे एक कुएँ के समीप गए, तो उन्होंने देखा कि उसमें जल नहीं था, अपितु कुएँ में एक अद्भुत जीव था । यह एक विशालकाय छिपकली थी । इतने अद्भुत पशु को देख कर वे सब चकित रह गए । वे समझ गए कि वह छिपकली फैंस गई थी और अपने प्रयास से वह बाहर नहीं निकल सकती थी, अत: सहानुभूतिवश उन्होंने उस विशाल छिपकली को कुएँ से निकालने का प्रयास किया । दुर्भाग्यवश छिपकली की तरह-तरह से निकालने का प्रयास करके भी वे उसे बाहर न निकाल सके । जब राजकुमार घर लौटे तब उन्होंने अपनी कथा भगवान् श्रीकृष्ण के समक्ष सुनाई । भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जीवों के सखा हैं, अतएव अपने पुत्रों का निवेदन सुन कर वे स्वयं उस कुएँ के समीप गए और केवल अपना वामहस्त फैलाने-मात्र से उस विशाल छिपकली को सरलता से बाहर निकाल दिया । भगवान् श्रीकृष्ण के हाथ का स्पर्श होते ही उस विशाल छिपकली ने अपनी पूर्व

आकृति को त्याग दिया और वह स्वर्गलोकवासी एक देवता के रूप में प्रकट हुई । उसके शरीर का वर्ण पिघले हुए सोने के समान चमक रहा था । उसने उत्तम वस्त्र तथा कण्ठ में बहुमूल्य आभूषण धारण कर रखा था । उस देवता को छिपकली का शरीर क्यों धारण करना पड़ा, यह बात श्रीकृष्ण से छिपी नहीं थी, तथापि अन्य सबकी जानकारी के लिए भगवान् ने प्रश्न किया, "हे सौभाग्यवान् देवता! अब मैं देखता हूँ कि तुम्हारा शरीर इतना सुन्दर तथा प्रभावान् है । तुम कौन हो? हम अनुमान कर सकते हैं कि तुम स्वर्ग के श्रेष्ठ देवताओं में से एक हो । सौभाग्यवान् होओ । मेरे विचार में तुम ऐसी दशा में रहने के योग्य नहीं हो । अवश्य ही अपने पूर्वकर्मों के कारण तुम्हें छिपकली की योनि में जन्म मिला है । तो भी मैं तुमसे सुनना चाहता हूँ कि किस प्रकार तुम्हारी यह दशा हुई । यदि तुम यह भेद खोलना उचित समझो, तो हम सबको अपना परिचय दो ।" वास्तव में यह विशाल छिपकली राजा नृग थे । जब श्रीभगवान् ने उनसे प्रश्न किया तब तत्काल ही सूर्य के प्रकाश के समान चमकदार अपने मुकुट से धरती का स्पर्श करते हुए उन्होंने भगवान् को प्रणाम किया । इस प्रकार उन्होंने पहले परम भगवान् को अपना सादर प्रणाम अर्पित किया । तत्पश्चात् उन्होंने कहा, "प्रिय भगवन्! मैं राजा इक्ष्वाकु का पुत्र राजा नृग हूँ । यदि आपने दानी पुरुषों का परिचय जानना चाहा हो, तब निश्चय ही आपने मेरा नाम सुना होगा । प्रिय भगवन् आप साक्षी हैं । आप को जीवों के भूत, भविष्य तथा वर्तमान के समस्त कर्मों का ज्ञान है । आपके शाश्वत ज्ञान से कुछ भी गुप्त नहीं रह सकता है । फिर भी आपने मुझे अपना इतिहास बताने का आदेश दिया है, अतएव मैं पूरी कथा कहूँगा ।" राजा नृग ने अपने कर्म-काण्ड के कर्मों के कारण हुए अपने पतन का इतिहास बताना प्रारम्भ किया । वे अत्यन्त दानी थे और उन्होंने इतनी गाएँ दान की थीं कि उनकी संख्या पृथ्वी पर की धूलि, आकाश के नक्षत्रों एवं वर्षा की बूंदों के बराबर थी । वैदिक अनुष्ठानों के अनुसार दान में रुचि रखने वाले मानव को ब्राह्मणों को गोदान करने का आदेश है ।

राजा नृग के कथन से ऐसा प्रतीत होता है कि वह इस सिद्धान्त का गम्भीरता से पालन करता था, किन्तु फिर भी उसके कर्म में तनिक त्रुटि के कारण उसे छिपकली के रूप में जन्म लेना पड़ा । अतएव भगवद्गीता में भगवान् ने कहा है कि जो दानी व्यक्ति अपने दान से लाभान्वित होना चाहता है उसे अपने उपहार श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए देने चाहिए । दान देने का अर्थ है पुण्यकर्म करना । पुण्यकर्मों के फलस्वरूप व्यक्ति की उन्नति ऊध्व लोकों तक हो सकती है, किन्तु स्वर्गलोक तक उन्नति होने से ही यह निश्चित नहीं होता है कि व्यक्ति का कभी पतन नहीं होगा । अपितु राजा नृग के उदाहरण से निश्चित रूप से यह सिद्ध हो जाता है कि सकाम कर्म, चाहे पुण्यकर्म ही क्यों न हों, हमें शाश्वत आनन्दमय जीवन प्रदान नहीं कर सकते हैं । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, पुण्यकर्म अथवा पापकर्म किसी भी कर्म का फल मानव को बन्धन में बाँधता है । कर्मफल के बन्धन से व्यक्ति तभी मुक्त हो सकता है जब कर्म को श्रीभगवान् के यज्ञ की भाँति सम्पादित किया ভাব্রে । राजा नृग ने आगे कहा कि दान में दी गई गाएँ सामान्य गाएँ नहीं थीं । प्रत्येक गाय कम आयु की थी और केवल एक बछड़े की माँ थी । वे सभी अत्यन्त शान्त, स्वस्थ तथा दुधारू गाएँ थीं । प्रत्येक गाय वैध रूप से उपार्जित धन से खरीदी गई थी । इसके अतिरिक्त उनके सींग स्वर्णमण्डित थे, उनके खुरों पर चाँदी मढ़ी हुई थी और उनके ऊपर मोती तथा स्वर्णहारों से कढ़ाई किए हुए रेशमी दुशाले डाले गए थे । राजा ने कहा कि बहूमूल्य वस्तुओं से अलंकृत ये गाएँ किसी ऐरे-गैरे को नहीं दी गई थीं, अपितु इन्हें प्रथम कोटि के ब्राह्मणों में वितरित किया गया था । इन ब्राह्मणों को राजा पहले से ही उत्तम वस्त्रों तथा स्वर्णालंकारों से विभूषित करते थे । वे ब्राह्मण अत्यन्त योग्य थे । वे सम्पन्न नहीं थे और उनके परिवार के सदस्य सदैव जीवन की आवश्यकताओं से वंचित रहते थे । एक सच्चा ब्राह्मण क्षत्रियों अथवा वैश्यों के समान विलासी जीवन के लिए धन संग्रह नहीं करता है । उसे ज्ञात रहता है कि धन मन को जीवन के भौतिकतावादी

पथ की ओर मोड़ देता है, अतएव वह सदैव स्वयं को दरिद्रावस्था में रखता है । इस प्रकार से जीवन व्यतीत करना प्रत्येक योग्य ब्राह्मण का प्रण होता है और ये सभी ब्राह्मण भलीभाँति इस प्रण का पालन कर रहे थे । वे वैदिक ज्ञान के विद्वान थे । वे जीवन के आवश्यक तप व व्रतों का सम्पादन करते थे और उदार थे । वे योग्य ब्राह्मणों के मानदण्ड को पूरा करते थे । गायों के अतिरिक्त उन्हें भूमि, स्वर्ण, गृह, घोड़े तथा हाथी भी प्रदान किए गए । अविवाहित ब्राह्मणों को पत्नियाँ दासियाँ अन्न, चाँदी—पात्र, वस्त्र, रत्न, गृहोपयोगी सजा तथा रथ आदि प्रदान किए गए । यह दान वैदिक विधि के अनुसार एक यज्ञ के रूप में दिया गया । राजा ने यह भी कहा कि उन्होंने न केवल ब्राह्मणों को उपहार दिए थे, अपितु उन्होंने कुएँ खुदवाने, मार्गों के किनारे वृक्षारोपण करवाने तथा राजमार्गों पर जलाशय बनवाने जैसे पुण्यकर्म भी किए थे । राजा ने आगे कहा, "इतना सब करने पर भी दुर्भाग्यवश एक ब्राह्मण की गाय मेरी अन्य गायों में सम्मिलित हो गई । इस बात का ज्ञान न होने के कारण मैंने उसे पुनः एक अन्य ब्राह्मण को दान में दे दिया । जब वह ब्राह्मण गाय को ले जा रहा था, तब उसका पूर्व स्वामी उसे अपनी बताने लगा । उसने कहा, "यह गाय पहले मुझे दी गई थी, तो तुम इसे कैसे ले जा रहे हो?" इस प्रकार दोनों ब्राह्मणों के मध्य वादमैंने पहले दान में दी गई एक गाय वापस ले ली है । किसी भी व्यक्ति को और विशेष रूप से किसी ब्राह्मण को कुछ दे कर उसे वापस लेना महापाप माना जाता है । जब दोनों ब्राह्मणों ने राजा पर एक ही आरोप लगाया, तो राजा की समझ में न आया कि ऐसा किस प्रकार हुआ । तत्पश्चात् राजा ने अतिशय विनयपूर्वक उस एक झगड़ा कराने वाली गाय के बदले में प्रत्येक को एक-एक लाख गाएँ देने का प्रस्ताव किया । उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे उन ब्राह्मणों के सेवक थे और उनसे कोई भूल हो गई है । इस प्रकार उस भूल को सुधारने के हेतु उन्होंने उनसे प्रार्थना की कि वे राजा पर दया करें और एक गाय के बदले में एक लाख गाएँ दिए जाने का प्रस्ताव स्वीकार कर लें । राजा ने

बारम्बार ब्राह्मणों से प्रार्थना की कि वे इस दोष के कारण उसको नरक में गिरने से रोक लें । ब्राह्मण का धन ब्रह्मस्व कहलाता है और मनु के नियम के अनुसार इसे सरकार भी नहीं ले सकती है । दोनों ब्राह्मण यही कहते थे कि गाय उनकी है और किसी भी दशा में वापस नहीं ली जा सकती है । दोनों में से कोई भी एक लाख गायों से अपनी गाय बदलने को सहमत नहीं था । इस प्रकार राजा के प्रस्ताव से असहमत होकर दोनों ही ब्राह्मण क्रोध में भर कर महल से चले गए । दोनों ही सोचते थे कि उनके वैधानिक पद का बलपूर्वक हनन हुआ है । इस घटना के पश्चात् जब राजा के शरीर त्यागने का समय आया तब उन्हें यमराज के समक्ष ले जाया गया । यमराज ने उनसे पूछा, "तुम पहले अपने पुण्यकर्मों के फल का उपभोग करना चाहते हो अथवा पापकर्मों का फल भोगना चाहते हो ।" यमराज ने यह भी संकेत दिया कि राजा इतने पुण्यकर्म एवं दान किए हैं कि नृग के सुखोपभोग की सीमा उन्हें ज्ञात नहीं थी । राजा के भौतिक सुख की कोई सीमा नहीं थी । किन्तु इस संकेत के प्राप्त होने पर भी वे चकित थे । उन्होंने प्रथम अपने पापों का फल भोगने और तदुपरान्त अपने पुण्यकर्मों का फल स्वीकार करने का निश्चय किया, अतएव यमराज ने तत्काल उन्हें एक छिपकली बना दिया । राजा नृग एक विशाल छिपकली के रूप में दीर्घकाल तक एक कुएँ में पड़े रहे । उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा, "जीवन की उस निकृष्ट अवस्था में रहने पर भी मेरी स्मरण शक्ति का कभी नाश नहीं हुआ और हे भगवन्! मैं केवल आपका स्मरण करता रहा ।" राजा नृग के इन कथनों से प्रतीत होता है कि जो लोग सकाम कर्म के नियम का अनुसरण करते हैं और भौतिक लाभ प्राप्त करते हैं, वे बुद्धिमान नहीं होते हैं । यमराज के द्वारा एक चीज चुनने का अवसर दिए जाने पर राजा नृग प्रथम अपने पुण्यकर्मों का फल स्वीकार कर सकते थे । किन्तु इसके स्थान पर उन्होंने सोचा कि पापों का फल पहले भोग कर बाद में अपने पुण्यकर्मों के फल का निर्बाध आनन्द प्राप्त करना अधिक उत्तम होगा । कुल मिला कर उनमें श्रीकृष्ण-

भक्ति का विकास नहीं हुआ था । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति में भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम विकसित हो जाता है । उसे पुण्य अथवा पापकर्मों से कोई प्रेम नहीं होता है । अतएव वह ऐसे कर्मों के फल का भागी नहीं होता है । जैसाकि ब्रह्म-संहिता में कहा गया है कि भगवान् की कृपा से भक्त सकाम कर्मों के फल का भागी नहीं होता है । अपने पुण्यकर्मों के फलस्वरूप किसी-न-किसी प्रकार राजा नृग ने भगवान् के दर्शन की अभिलाषा की थी । उन्होंने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! मेरी तीव्र अभिलाषा थी कि किसी दिन मैं स्वयं आपके दर्शन कर सकूं । मेरे विचार में शास्त्रोत एवं दान कर्मों के सम्पादन में मेरी अभिरुचि तथा आपके दर्शन करने की मेरी तीव्र अभिलाषा, इन दोनों के संयोग के कारण ही मैं अपने पूर्वजन्म का स्मरण रख सका हूँ । यद्यपि मैं एक छिलकली बन गया हूँ तथापि मुझे स्मरण है कि पूर्वजन्म में मैं कौन था ।" (पूर्वजन्म का स्मरण रखने वाला व्यक्ति जाति-स्मर कहलाता है) प्रिय भगवन्! आप प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में असीन परमात्मा हैं । अनेक महान् योगी ऐसे हैं जिसके पास वेदों तथा उपनिषदों के माध्यम से आपके दर्शन करने वाली दृष्टि है । गुणों में आपके समान होने की उनत अवस्था को प्राप्त करने के लिए वे सदैव अपने हृदय में आपका ध्यान करते रहते हैं । यद्यपि ऐसे श्रेष्ठ सन्त अपने हृदय में निरन्तर आपके दर्शन कर सकते हैं, तथापि वे आपको अपने नेत्रों से नहीं देख सकते हैं । अतएव मैं व्यक्तिगत रूप से आपके दर्शन करने में समर्थ हूँ, इस बात का मुझे अतिशय आश्चर्य है । मुझे ज्ञात है कि मैं एक राजा के रूप में अनेक कार्यों में संलग्न था । यद्यपि मैं विलास एवं ऐश्वर्य के बीच था तथा भौतिक शरीर के इतने दुख तथा सुख का भागी हुआ था, तथापि मैं इतना भाग्यवान् हूँ कि मुझे व्यक्तिगत रूप से आपके दर्शन का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । जहाँ तक मुझे ज्ञात है, जब व्यक्ति भौतिक शरीर से मुक्त हो जाता है, तब वह इस प्रकार आपके दर्शन कर सकता है ।" जब राजा नृग ने अपने पापों का फल स्वीकार करने का निश्चय किया, तब

उसके पुण्यकर्म में हुए दोष के कारण उसे छिपकली का शरीर दिया गया । इस प्रकार उसे प्रत्यक्ष रूप से किसी देवता के समान जीवन के उच्च स्तर की प्राप्ति न हो सकी । किन्तु अपने पुण्यकर्मों के साथ-साथ वह श्रीकृष्ण का चिन्तन करता रहा, अतएव उसे शीघ्र ही छिपकली के शरीर से मुक्ति मिल गई और उसे देवता का शरीर दिया गया । परम भगवान् की उपासना के द्वारा जो लोग भौतिक ऐश्वर्य की इच्छा करते हैं, उन्हें शक्तिशाली देवताओं का शरीर दिया जाता है । कभी-कभी ये देवता श्रीभगवान् का प्रत्यक्ष दर्शन कर सकते हैं, किन्तु फिर भी वे आध्यात्मिक राज्य वैकुण्ठ लोक में प्रवेश करने के अधिकारी नहीं होते हैं । किन्तु यदि देवता आगे भी भगवान् के भक्त बने रहें तो, जब उन्हें अगला अवसर प्राप्त होगा, तो वे वैकुण्ठ लोक में प्रवेश करेंगे । देवता का शरीर प्राप्त करके राजा नृग ने आगे स्मरण करते हुए कहा, "प्रिय भगवन्! आप परम भगवान् हैं और समस्त देवता आपकी उपासना करते हैं । आप जीव नहीं हैं, किन्तु आप सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति अर्थात् पुरुषोत्तम हैं । आप समस्त जीवों के समस्त सुखों के स्रोत हैं, अतएव आप गोविन्द के नाम से विख्यात हैं । जिन्होंने भौतिक शरीर स्वीकार कर लिया है एवं जिन्होंने अभी तक भौतिक शरीर स्वीकार नहीं किया है, उन सब जीवों के आप भगवान् हैं ।" (भौतिक शरीर स्वीकार नहीं करने वाले ही जीवों में वे हैं, जो भौतिक जगत में दृष्ट आत्माओं के रूप में हवा में भ्रमण कर रहे हैं अथवा प्रेत जगत में रह रहे हैं । किन्तु जो आध्यात्मिक राज्य अर्थात् वैकुण्ठ लोक में निवास करते हैं, उनके शरीर भौतिक तत्वों से निर्मित नहीं होते हैं ।) "हे भगवन्! आप अच्युत है । आप सर्वश्रेष्ठ हैं तथा समस्त जीवों में शुद्धतम हैं । आप सबके हृदयों में निवास करते हैं । आप समस्त जीवों के आश्रय श्रीनारायण हैं । समस्त जीवों के हृदय में निवास करने के कारण आप प्रत्येक व्यक्ति के ऐन्द्रियकार्यों के परम निर्देशक हैं, अतएव आपको हृषीकेश कहा जाता है । "हे परम भगवान् श्रीकृष्ण! आपने मुझे देवता का यह शरीर प्रदान किया है, अतएव मुझे स्वर्गलोक जाना पड़ेगा । मैं

इस सुअवसर का लाभ उठा कर आपकी दया की भिक्षा माँगता हूँ जिससे मुझे ऐसा वरदान प्राप्त हो कि मैं आपके चरणकमलों को कभी भी विस्मृत न करूं । चाहे मुझे कोई भी योनि क्यों न मिले, अथवा चाहे किसी भी लोक में मुझे भेज दिया जाए, किन्तु मुझे आप ऐसा वर दीजिए कि मैं कभी भी आपके चरणकमलों को विस्मरण न करूं । कार्य-कारण के रूप में आप सर्वत्र उपस्थित हैं, आप सर्वव्यापी हैं । आप समस्त कारणों के कारण हैं एवं आपकी शक्तियाँ असीम हैं । आप परम सत्य हैं, आप श्रीभगवान् हैं तथा आप ही परम ब्रह्म हैं । अतएव मैं आपको बारम्बार प्रणाम करता हूँ । प्रिय भगवन्! आपका शरीर दिव्य आनन्द एवं ज्ञान से पूर्ण है और आप शाश्वत हैं । आप समस्त सिद्धियों के स्वामी हैं, अतएव आप योगेश्वर नाम से विख्यात हैं । कृपया मुझे अपने चरणकमलों की नगण्य धूलि के रूप में स्वीकार कीजिए ।" स्वर्गलोक में प्रवेश करने के पूर्व राजा नृग ने भगवान् की प्रदक्षिणा की । उसने अपने मुकुटधारी सिर को भगवान् के चरणकमलों में रख कर उनको प्रणाम किया । स्वर्गलोक से आए हुए विमान को सम्मुख आया देख कर भगवान् ने राजा को उस पर सवार होने की अनुमति दी । राजा नृग के प्रस्थान के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा की ब्राह्मण भक्ति, दानशीलता एवं उसके द्वारा वैदिक अनुष्ठानों के सम्पादन की प्रशंसा की । अतएव कहा जाता है कि यदि कोई प्रत्यक्ष रूप से भगवान् का भत नहीं बन सकता है, तब उसे जीवन के वैदिक सिद्धान्तों का पालन करना चाहिए । इससे वह या तो सीधे आध्यात्मिक लोक में उन्नति करके भ7/वदलन का लाभ प्राप्त करने में समर्थ होगा अथवा पहले स्वर्गलोक में स्थान प्राप्त करके, जहाँ से उसे आध्यात्मलोक में स्थानान्तरण की आशा रहेगी, वह भगवान् के दर्शन करने में समर्थ होगा ।" इस समय भगवान् श्रीकृष्ण अपने क्षत्रिय वर्ग के सदस्य अपने सम्बन्धियों के मध्य विराजमान थे । राजा नृग के आदर्श व्यवहार के माध्यम से उनको उपदेश देने के लिए भगवान् ने कहा, "यद्यपि कोई क्षत्रिय राजा अग्नि के समान बलशाली हो सकता है, तथापि

किसी ब्राह्मण की सम्पत्ति पर बलपूर्वक अधिकार कर लेना और उसे अपने प्रयोजन के लिए उपयोग करना उसके लिए सम्भव नहीं है । यदि ऐसा है, तब मिथ्या ही स्वयं को इस भौतिक जगत में सर्वाधिक शक्तिमान समझने वाले साधारण राजा किस प्रकार ब्राह्मण की सम्पत्ति पर बलपूर्वक अधिकार कर सकते हैं? मेरे विचार में विषपान भी उतना संकटपूर्ण नहीं है जितना ब्राह्मण की सम्पत्ति लेना । साधारण विष का उपचार हो सकता है, व्यक्ति को इसके प्रभाव से मुक्ति मिल सकती है, किन्तु यदि कोई ब्राह्मण की सम्पत्ति हरने का विषपान करता है, तो उस दोष के लिए कोई उपचार नहीं है । इस तथ्य के आदर्श उदाहरण राजा नृग थे । वे अत्यन्त शक्तिशाली एवं पुण्यात्मा थे, किन्तु अनजाने में एक ब्राह्मण की गाय पर अधिकार कर लेने की छोटी-सी भूल के परिणामस्वरूप उन्हें छिपकली के निन्दनीय जीवन का दण्ड मिला । साधारण विष केवल उसे प्रभावित करता है, जो उसका पान करता है और साधारण अग्नि को जल डालकर बुझाया जा सकता है, किन्तु किस ब्राह्मण की आध्यात्मिक शक्ति से जलाई गई अरणि-अग्नि ऐसे ब्राह्मण को कुद्ध करने वाले व्यक्ति के समस्त परिवार को जलाकर भस्म कर सकती है ।" (प्राचीन काल में ब्राह्मण यज्ञ की अग्नि को दियासलाई से अथवा किसी अन्य बाह्य अग्नि से नहीं, अपितु अपने अरणि नामक शक्तिशाली मंत्रों से जलाते थे ।) "यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण की सम्पति का स्पर्श भी करता है, तो उसकी तीन पीढ़ियाँ नष्ट हो जाती हैं । किन्तु यदि कोई ब्राह्मण की सम्पत्ति को बलपूर्वक छीन ले जाता है, तो छीनने वाले की अगली व पिछली दस पीढ़ियाँ सर्वनाश की भागी होती हैं । दूसरी ओर यदि कोई वैष्णव अथवा भगवान् का भक्त बन जाता है, तो उसके परिवार की, उसके जन्म से पूर्व तथा पश्चात् की दस पीढ़ियाँ मुक्त हो जाती हैं ।" भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "यदि अपने धन, बल तथा प्रतिष्ठा पर अभिमान करने वाला कोई राजा ब्राह्मण की सम्पति पर अधिकार करना चाहता है, तो समझना चाहिए कि वह अपने लिए नरक का मार्ग प्रशस्त कर रहा है । उसे ज्ञात नहीं रहता कि इस मूर्खतापूर्ण

कार्य के लिए उसे कितना कष्ट सहन करना पड़ेगा । यदि कोई किसी ऐसे उदार ब्राह्मण की सम्पत्ति छीन लेता है, जिस पर एक विशाल परिवार आश्रित हो तब ऐसा छीनने वाला व्यक्ति कुम्भीपाक नामक नरक में डाल दिया जाता है । न केवल वह इस नरक में डाला जाता है, अपितु उसके परिवार के सदस्यों को भी वही जीवन की दशा स्वीकार करनी पड़ती है, अर्थात् उन्हें भी कुम्भीपाक नरक में जाना पड़ता है । यदि कोई व्यक्ति ब्राह्मण को पुरस्कार स्वरूप दी गई सम्पति अथवा उसके द्वारा दान की गई सम्पति को छीनता है, तब उसे कम से कम साठ हजार वर्ष तक मल में रहने वाले कृमि की भाँति घृणित जीवन व्यतीत करने का दण्ड प्राप्त होता है । अतएव, हे मेरे पुत्रो तथा उपस्थित बन्धु-बान्धवो! मैं तुमको उपदेश देता हूँ कि भूल से भी किसी ब्राह्मण की सम्पति न लो और इस प्रकार अपने सम्पूर्ण परिवार को दूषित न करो । यदि कोई ब्राह्मण की सम्पत्ति को बलपूर्वक लेने का प्रयास न करे, अपितु केवल ऐसा विचार भी करे तो उसकी आयु कम हो जाएगी, वह अपने शत्रुओं के हाथों परास्त हो जाएगा और अपने राजसी पद से वंचित होकर, देहत्याग करने पर वह एक सर्प बन जाएगा । एक सर्प अन्य सब जीवों को कष्ट देता है । हे पुत्रो एवं बन्धु-बान्धवो! मैं तुमको परामर्श देता हूँ कि यदि कोई ब्राह्मण तुमसे कुद्ध हो जाता है और गाली देता है अथवा कोई मर्मभेदी बात कहता है, तब भी तुमको उसका प्रतिकार नहीं करना चाहिए । इसके विपरीत तुम्हें मुस्कराना चाहिए, उसकी बात सहन करनी चाहिए तथा ब्राह्मण को प्रणाम करना चाहिए । तुमको भलीभाँति ज्ञात है कि मैं भी दिन में तीन बार अत्यन्त आदरपूर्वक ब्राह्मणों को प्रणाम करता हूँ । अतएव तुमको मेरे उपदेश तथा उदाहरण का अनुसरण करना चाहिए । जो इनका अनुसरण नहीं करता उसे मैं कभी क्षमा नहीं करूंगा, अपितु उसे दण्ड दूँगा । तुमको राजा नृग के उदाहरण से सीखना चाहिए कि यदि कोई अनजाने में भी ब्राह्मण की सम्पति पर अधिकार कर लेता है, तो उसे जीवन की कष्टप्रद स्थिति में डाल दिया जाता है ।" इस प्रकार बद्धजीवों

के शुद्धिकरण में निरन्तर संलग्न रहने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने न केवल अपने परिवार के सदस्यों तथा द्वारकावासियों को उपदेश दिया, अपितु मानव-समाज के समस्त सदस्यों को उपदेश दिया । इसके उपरान्त भगवान् ने अपने महल में प्रवेश किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "राजा नृग की कथा" नामक चौंसठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 65
भगवान् श्रीबलराम की वृन्दावन यात्रा

भगवान् श्रीबलराम अपने माता-पिता यशोदा जी एवं नन्द महाराज के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक थे । अतएव उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । वृन्दावनवासी दीर्घ काल से श्रीकृष्ण एवं बलराम जी के दर्शन के लिए उत्सुक थे । जब भगवान् श्रीबलराम ने वृन्दावन में प्रवेश किया तब गोप तथा गोपियाँ सभी वयस्क हो चुके थे । तो भी इनके आगमन पर उन सबने उनका आलिंगन किया तथा बलराम जी ने भी गोप गोपियों का आलिंगन किया । इसके पश्चात् वे नन्द महाराज और यशोदा जी के समक्ष गए और उन्हें सादर प्रणाम किया । इसके प्रत्युतर में माता यशोदा तथा नन्द महाराज ने उन्हें आशीर्वाद दिया । उन्होंने बलराम जी को जगदीश्वर अर्थात् ब्रह्माण्ड का स्वामी कह कर सम्बोधित किया । जगदीश्वर वे हैं, जो सबका पालन करते हैं । इसका कारण यह था कि श्रीकृष्ण एवं बलराम जी दोनों समस्त जीवों का पालन करते हैं, फिर भी उनकी अनुपस्थिति के कारण नन्द जी व यशोदा जी ने इतने कष्ट सहन किए थे । इस प्रकार अनुभव करते हुए उन्होंने बलराम

जी का आलिंगन किया और उन्हें अपनी गोद में बिठा कर वे लगातार रोते रहै । उन्होंने अश्रुओं से बलराम जी को भिगो दिया । तत्पश्चात् बलरामजी ने वयोवृद्ध गोपों को सादर प्रणाम किया तथा छोटे गोपों का प्रणाम स्वीकार किया । इस प्रकार गोपों के वय तथा सम्बन्ध के अनुसार बलराम जी ने उनसे मैत्री-भाव का आदान-प्रदान किया । अपने समान आयु वाले मित्रों का हाथ पकड़ कर उन्होंने उच्च स्वर में हँसते हुए प्रत्येक मित्र का आलिंगन किया । जब गोपों तथा गोपबालों, गोपियों, राजा नन्द तथा माता यशोदा ने उनका स्वागत किया तब सन्तोष का अनुभव करते हुए भगवान् श्रीबलराम जी ने आसन ग्रहण किया और उन सब लोगों ने उनको घेर लिया । सर्वप्रथम भगवान् श्री बलराम जी ने उनसे उनका कुशल समाचार पूछा । तत्पश्चात् वृन्दावनवासी उनसे विभिन्न प्रश्न करने लगे, क्योंकि उन्होंने दीर्घकाल से बलराम जी के दर्शन नहीं किए थे । भगवान् श्रीकृष्ण के कमलनयनों पर मुग्ध होकर वृन्दावनवासियों ने भगवान् के लिए अपना सर्वस्व त्याग दिया था । श्रीकृष्ण से प्रेम करने की अपनी महान् इच्छा के कारण, उन्होंने स्वर्गलोक-प्राप्ति अथवा परम सत्य से एकाकार होने के लिए ब्रह्मज्योति में लीन होने जैसी किसी वस्तु की भी कामना कभी नहीं की थी । ऐश्वर्यशाली जीवन का उपभोग करने में भी उनकी अभिरुचि नहीं थी । वे गोपों के रूप में वृन्दावन ग्राम में सरल जीवन व्यतीत करने में ही सन्तुष्ट थे । वे सदैव श्रीकृष्ण के चिन्तन में मग्न रहते थे और किसी व्यक्तिगत लाभ की कामना नहीं करते थे । उन्हें श्रीकृष्ण से इतना अधिक प्रेम था कि उनकी अनुपस्थिति में जब वे बलराम जी से प्रश्न करने लगे तब उनकी वाणी लड़खड़ा गई । सर्वप्रथम नन्दमहाराज एवं यशोदामाई ने प्रश्न किया, "प्रिय बलराम! क्या वसुदेव जी तथा परिवार के अन्य हमारे मित्र सुखपूर्वक हैं? अब तुम तथा कृष्ण बाल-बच्चों वाले विवाहित पुरुष हो । अपने पारिवारिक जीवन के सुख में क्या तुम कभी अपने दीन माता पिता यशोदा देवी तथा नन्द महाराज का स्मरण करते हो ? यह अत्यन्त सुख का समाचार है कि अत्यन्त पापी राजा

कंस का तुम्हारे द्वारा वध कर दिया गया है तथा वसुदेव जी और उनके समान अन्य लोग, जिन्हें कंस ने पीड़ित कर दिया था, अब मुक्त हो गए हैं । यह भी अतिशय सुसमाचार है कि तुमने तथा श्रीकृष्ण ने जरासन्ध और कालयवन को पराजित कर दिया है और अब वे मृत हैं । यह समाचार भी शुभ है कि तुम अब द्वारका नगरी के सुदृढ़ दुर्ग में निवास कर रहे हो ।" जब गोपियाँ वहाँ आई, भगवान् श्रीबलराम ने प्रेमपूर्ण नयनों से उन पर दृष्टिपात किया । श्रीकृष्ण तथा बलराम जी की अनुपस्थिति के कारण दीर्घकाल से दुखी गोपियाँ अब अत्यन्त हर्षित हो गई और दोनों भाइयों की कुशलता के विषय में प्रश्न करने लगीं । उन्होंने बलराम जी से विशेष रूप से प्रश्न किया कि क्या श्रीकृष्ण द्वारकापुरी की विदुषी स्त्रियों से घिरे हुए जीवन का आनन्द ले रहे हैं? क्या वे कभीकभी अपने पिता नन्द जी तथा माता यशोदा जी एवं अपने अन्य मित्रों का स्मरण करते हैं, जिनके साथ यहाँ वृन्दावन में वे अत्यन्त आत्मीयतापूर्वक व्यवहार करते थे? क्या श्रीकृष्ण की अपनी माता यशोदा जी के दर्शन हेतु यहाँ आने की कोई योजना है? और क्या वे उनके सानिध्य से वंचित हम दीन गोपियों का कभी स्मरण करते हैं? हो सकता है कि द्वारका की सुसंस्कृत नारियों के मध्य श्रीकृष्ण हमें भूल गए हों, किन्तु जहाँ तक हमारा सम्बन्ध है, हम फूल एकत्र करके माला गूंथ कर अभी भी श्रीकृष्ण का स्मरण कर रही हैं । किन्तु जब वे नहीं आते हैं तब हम रोरोकर अपना समय व्यतीत कर देती हैं । काश! वे यहाँ आ कर हमारी बनाई हुई ये मालाएँ स्वीकार कर लेते! दशाह के वंशज हे भगवान् श्रीबलराम! आपको ज्ञात है कि श्रीकृष्ण की मैत्री के लिए हम कुछ भी त्याग देंगी । अत्यन्त दुख में भी व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों से सम्बन्ध नहीं छोड़ पाता है । यद्यपि यह अन्य लोगों के लिए असम्भव हो सकता है, किन्तु हमने अपने त्याग की चिन्ता किए बिना अपने माता, पिता, बहन व सम्बन्धियों को छोड़ दिया था । फिर अचानक श्रीकृष्ण ने हमें त्याग दिया और दूर चले गए । उन्होंने हमारे घनिष्ठ सम्बन्ध को बिना गम्भीरता से सोचे-विचारे ही, तोड़ दिया

और परदेश चले गए । किन्तु वे इतने चतुर व चालाक थे कि उन्होंने सुन्दर शब्दों की रचना कर ली । उन्होंने कहा, "प्रिय गोपियो! चिन्ता मत करो । तुमने मेरी जो सेवा की है उसका मूल्य चुकाना मेरे लिए असम्भव है ।" कुछ भी हो हम स्त्रियाँ हैं, तो हम उनपर अविश्वास कैसे कर सकती थीं? अब हम समझ सकती हैं कि उनके मीठे शब्द केवल हमें छलने के लिए ही थे ।" श्रीकृष्ण की वृन्दावन से अनुपस्थिति पर उलाहना देती हुई एक अन्य गोपी कहने लगी, "प्रिय बलराम जी! वास्तव में हम तो ग्रामबालाएँ हैं, अतएव श्रीकृष्ण इस प्रकार हमको छल सके, किन्तु द्वारका की नारियों का क्या होगा? मेरे विचार में वे हमारी जैसी मूर्ख नहीं हैं । हम ग्रामीण युवतियों को श्रीकृष्ण छल सकते हैं, किन्तु द्वारका नगर की युवतियाँ अत्यन्त चतुर व बुद्धिमती हैं । अतएव यदि ऐसी नागरी युवतियों को भी श्रीकृष्ण छल सकें और वे उनके शब्दों पर विश्वास कर सकें, तो मुझे अत्यन्त आश्चर्य होगा ।" तत्पश्चात् एक अन्य गोपी ने कहना प्रारम्भ किया, "प्रिय सखा! शब्दों के उपयोग में श्रीकृष्ण अत्यन्त चतुर हैं । इस कला में कोई उनसे प्रतियोगिता नहीं कर सकता है । वे इतने मधुर शब्दों की रचना कर सकते हैं और इतना मधुर वार्तालाप कर सकते हैं कि किसी भी स्त्री का हृदय धोखा खा जाएगा । इसके अतिरिक्त उन्होंने अत्यन्त आकर्षक ढंग से मुस्कराने की कला में पूर्णता प्राप्त कर ली है । उनकी मुस्कान के दर्शन करके स्त्रियाँ उनके पीछे पागल हो जाती हैं और बिना किसी असमंजस के उनको आत्मसमर्पण कर देती हैं ।" यह सुन कर एक अन्य गोपी ने कहा, "प्रिय सखियो! श्रीकृष्ण के विषय में वार्तालाप करने से क्या लाभ? यदि वार्तालाप करके ही समय व्यतीत करने में तुम्हारी रुचि है, तो आओ श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी अन्य विषय पर वार्तालाप करें । यदि क्रूर श्रीकृष्ण हमारे बिना अपना समय व्यतीत कर सकते हैं, तब हम श्रीकृष्ण के बिना अपना समय क्यों नहीं व्यतीत कर सकतीं? वास्तव में श्रीकृष्ण हमारे बिना भी अपने दिवस अत्यन्त सुखपूर्वक व्यतीत कर रहे हैं, किन्तु भेद यह है कि हम उनके बिना अपने

दिवस सुखपूर्वक नहीं व्यतीत कर सकती हैं ।" जब गोपियाँ इस प्रकार वार्तालाप कर रही थीं, तब श्रीकृष्ण के प्रति उनकी भावनाएँ तीव्रतर होती गई । वे श्रीकृष्ण की मुस्कान, श्रीकृष्ण के प्रेमपूर्ण शब्द, श्रीकृष्ण की आकर्षक आकृति, श्रीकृष्ण के लक्षणों एवं श्रीकृष्ण के आलिंगनों का अनुभव कर रही थीं । उनकी आनन्दमयी अनुभूतियाँ इतनी तीव्र थीं कि उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि श्रीकृष्ण स्वयं वहाँ उपस्थित हैं और उनके समक्ष नृत्य कर रहे हैं । श्रीकृष्ण की मधुर स्मृतियों के कारण वे अपने अश्रुओं को न रोक सकीं और बिना विचार किए रोने लगीं । भगवान् श्रीबलराम गोपियों की आनन्दमयी अनुभूतियों को समझ सकते थे, अतएव वे उन्हें सान्त्वना देना चाहते थे । वे निवेदन प्रस्तुत करने में निपुण थे और इस प्रकार गोपियों से अत्यन्त सम्मानपूर्वक व्यवहार करते हुए उन्होंने इतनी चतुराई से श्रीकृष्ण की कथाएँ प्रारम्भ कीं कि गोपियाँ सन्तुष्ट हो गई । वृन्दावन में गोपियों को सन्तुष्ट रखने के हेतु भगवान् श्रीबलराम ने निरन्तर दो मास तक वहाँ निवास किया । वे दो मास थे-चैत्र (मार्च-अप्रैल) तथा वैशाख (अप्रैल-मई) । उन दो महीनों तक उन्होंने गोपियों के साथ निवास किया और दाम्पत्य प्रेम की उनकी कामना को सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने प्रत्येक रात्रि गोपियों के साथ वन में व्यतीत की । इस प्रकार उन दो महीनों में बलराम जी ने गोपियों के साथ रासलीला का भी आनन्द उठाया । वह वसन्त ऋतु का समय था । अतएव यमुना के तट पर विभिन्न पुष्पों की सुगन्ध लिए मन्द समीर बह रहा था, वायु में विशेष रूप से कौमुदी पुष्पों की सुगन्ध मिश्रित थी । आकाश में चन्द्रिका का साम्राज्य था और सर्वत्र चाँदनी फैली हुई थी जिससे कि यमुना के तट अत्यन्त प्रकाशित एवं मनमोहक प्रतीत हो रहे थे । भगवान् श्रीबलराम ने वहाँ गोपियों के सान्निध्य का आनन्द उठाया । वरुण नामक देवता ने अपनी पुत्री वारुणी को वृक्षों से स्रवित होते हुए मधुपर्क के रूप में वहाँ भेजा । इस मधुपर्क के कारण समस्त वन सुगन्धित हो गया । मधुपर्क वारुणी की मधुर गन्ध ने बलराम जी को मुग्ध कर लिया । वारुणी के

स्वाद पर बलराम जी एवं समस्त गोपियाँ अत्यधिक आकर्षित हो गई और उन सबने एकसाथ उसका पान किया । इस प्राकृतिक मदिरा का पान करते हुए गोपियों ने भगवान् बलराम जी का यशोगान किया और भगवान् श्रीबलराम ने अत्यन्त सुख का अनुभव किया, जैसे कि वे वारुणी नामक मदिरा पीकर मदोन्मत्त हो गए हों । उनके नेत्र मनोहर मुद्रा में घूम रहे थे । उन्होंने लम्बी-लम्बी वनमालाएँ धारण की थीं और इस दिव्य आनन्द के कारण समस्त स्थिति प्रसन्नता का एक महान् उत्सव प्रतीत होती थी । भगवान् श्रीबलराम अत्यन्त मोहकता से मुस्करा रहे थे और उनके मुख को विभूषित करते हुए श्रमबिन्दु शीतल ओस-कणों के समान प्रतीत होते थे । जब बलराम जी इस प्रकार की प्रसन्न मन:स्थिति में थे, तब उन्होंने यमुना के जल में गोपियों के सान्निध्य का आनन्द उठाने की कामना की । अतएव, उन्होंने यमुना को समीप आने का आदेश दिया । किन्तु उन्हें मदोन्मत्त मान कर यमुना ने उनके आदेश की उपेक्षा की । यमुना द्वारा अपने आदेश की उपेक्षा होने पर भगवान् श्रीबलराम अत्यन्त अप्रसन्न हो गए । वे तत्काल ही नदी के समीप की भूमि को अपने हल से खोद देना चाहते थे । भगवान् श्रीबलराम जी के पास हल तथा गदा नामक दो अस्त्र हैं और वे आवश्यकता पड़ने पर उनसे कार्य लेते हैं । इस समय वे यमुना को बलपूर्वक लाना चाह रहे थे और उन्होंने अपने हल की सहायता ली । वे यमुना को दण्ड देना चाहते थे, क्योंकि उसने उनके आदेश का पालन नहीं किया था । उन्होंने यमुना को सम्बोधित किया, "अरे नीच नदी! तुमने मेरे आदेश की चिन्ता नहीं की । अब मैं तुम्हें पाठ पढ़ाऊँगा । तुम स्वेच्छा से मेरे समीप नहीं आई । अब अपने हल की सहायता से मैं तुम्हें आने के लिए बाध्य कर दूँगा । मैं तुम्हें सैकड़ों बिखरी हुई जलधाराओं में विभक्त कर दूँगा ।" जब यमुना को इस संकट का आभास हुआ, तो वह बलराम जी की शक्ति से अत्यन्त भयभीत हो गई । वह तत्काल स्वयं वहाँ आई और इस प्रकार से स्तुति करते हुए उनके चरणकमलों पर गिर पड़ी- "प्रिय बलराम जी ! आप सर्वाधिक बलशाली व्यक्ति हैं तथा आप सबको

सुख देने वाले हैं । दुर्भाग्यवश मैं आपके यशस्वी व श्रेष्ठ पद को भूल गई थी, किन्तु अब मुझे बुद्धि आ गई है । मुझे स्मरण है कि आप अपने अंश-मात्र शेषनाग के रूप में समस्त लोकों का भार अपने शीश पर उठाए हुए हैं । आप समस्त ब्रह्माण्ड के पालक हैं । प्रिय श्रीभगवान्! आप षड्ऐश्वर्यों से पूर्ण हैं । आपकी सर्वशक्तिमता को भूल जाने के कारण मैंने भ्रमवश आपके आदेश की अवहेलना की है और इस प्रकार मैं भयंकर दोषिनी बन गई हूँ । किन्तु प्रिय भगवन्! कृपया यह जान लीजिए कि मैं आपकी शरणागत हूँ । आप अपने भक्तों के प्रति अतिशय स्नेह रखते हैं! अतएव कृपया आप मेरी धृष्टता एवं भूल को क्षमा करें और अपनी अहैतुकी दया से अब आप मुझे बन्धन से मुक्त कर दें ।" इस विनम्र प्रवृत्ति के प्रदर्शन के पश्चात् यमुना को क्षमा कर दिया गया और वह समीप आ गई । भगवान् श्रीबलराम उसी प्रकार गोपियों के साथ उसके जल में जलविहार का आनन्द-लाभ करना चाहते थे जैसे एक हाथी अपनी अनेक हथिनियों के साथ जलक्रीड़ा का आनन्द लेता है । दीर्घकाल के पश्चात् जब भगवान् श्रीबलराम ने जी-भरकर आनन्द-उपभोग कर लिया तब वे जल से बाहर आए । तत्काल ही एक श्रीदेवी ने उन्हें एक उत्तम नीलाम्बर और स्वर्णनिर्मित एक मूल्यवान कण्ठहार अर्पित किया । यमुना में स्नान करने के उपरान्त नीलाम्बरधारी तथा स्वर्णाभूषणों से सजित भगवान् श्रीबलराम सबको अत्यन्त आकर्षक लगे । भगवान् श्रीबलराम गौरवर्ण के हैं और जब वे उचित रूप से वस्त्रादि धारण कर चुके, तो वे स्वर्ग में राजा इन्द्र के श्वेत हाथी के समान दिखाई दिए । भगवान् श्रीबलराम के हल से खोदी जाने के कारण यमुना नदी की अभी-भी बहुत सी छोटी-छोटी शाखाएँ हैं और यमुना नदी की ये समस्त शाखाएँ अभी-भी भगवान् श्रीबलराम की सर्वशक्तिमता का यशवर्धन कर रही हैं । दो मास तक भगवान् श्रीबलराम तथा गोपियो ने नित्य रात्रि को साथ–साथ लीलाओं का आनन्दोपभोग किया । किन्तु समय इतनी शीघ्रता से व्यतीत हो गया कि वे सब रात्रियाँ केवल एक रात्रि के समान प्रतीत हुई । भगवान् श्रीबलराम की उपस्थिति

में समस्त गोपियाँ तथा वृन्दावनवासी उतने ही प्रसन्न थे जितने कि पहले दोनों भाइयों, भगवान् श्रीकृष्ण व भगवान् श्रीबलराम, की उपस्थिति में रहते थे

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीबलराम की वृन्दावन यात्रा" नामक पैंसठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 66
पौण्ड्रक तथा काशिराज का उद्धार

राजा पौण्ड्रक की कथा अत्यन्त रुचिकर है, क्योंकि पृथ्वी पर सदैव ही ऐसे अनेक दुष्ट तथा मूढ़ रहे हैं जिन्होंने स्वयं को भगवान् समझा है । भगवान् श्रीकृष्ण की उपस्थिति में भी ऐसा एक मूर्ख व्यक्ति था । उसका नाम पौण्ड्रक था और वह स्वयं को भगवान् घोषित करना चाहता था । जब भगवान् श्रीबलराम वृन्दावन गए हुए थे, तब करुष प्रदेश के राजा इस पौण्डूक ने भगवान् श्रीकृष्ण के पास एक दूत भेजा । यह राजा अत्यन्त घमण्डी तथा मूर्ख था । भगवान् श्रीकृष्ण को श्रीभगवान् माना जाता है, किन्तु राजा पौण्डूक ने दूत के माध्यम से श्रीकृष्ण को प्रत्यक्ष चुनौती दी । दूत ने कहा कि कृष्ण नहीं अपितु पौण्ड्रक ही वासुदेव है । वर्तमान समय में भी ऐसे दुष्टों के अनेक मूर्ख अनुयायी हैं । उसी भाँति उस समय भी अनेक मूर्ख व्यक्तियों ने पौण्ड्रक को श्रीभगवान् के रूप में स्वीकार कर लिया था । पौण्ड्रक अपनी वस्तुस्थिति का अनुमान न लगा सका, अतएव उसने मिथ्या ही स्वयं को भगवान् वासुदेव समझ लिया । इस प्रकार दूत ने श्रीकृष्ण के समक्ष घोषणा की कि अपनी अहैतुकी दया के कारण भगवान् पौण्ड्रक समस्त दुखी मानवों के उद्धार के लिए ही धरती पर

अवतीर्ण हुए हैं । अनेक मूखों से घिरे हुए इस दुष्ट पौण्डूक ने वास्तव में निर्णय कर लिया था कि वह भगवान् श्रीवासुदेव है । इस प्रकार का निर्णय निश्चित रूप से बचपना है । जब बालक खेल करते हैं, तब कभी-कभी वे अपने मध्य किसी बालक को राजा बना देते हैं और इस प्रकार राजा बनने के लिए चुना गया बालक सोचता है कि वह राजा ही है । उसी भाँति अपने अज्ञान के कारण अनेक मूर्ख व्यक्ति किसी अन्य मूर्ख को राजा के रूप में चुन लेते हैं और तब वह दुष्ट स्वयं को राजा मान लेता है, जैसे कि बचकाने खेल तथा लोगों के मतदान के द्वारा ही भगवान् की सृष्टि की जा सकती है । इस कुप्रभाव के अन्तर्गत स्वयं को परम भगवान् मानते हुए पौण्डूक ने श्रीकृष्ण के पद को चुनौती देने के लिए अपना दूत द्वारका भेजा । द्वारका में श्रीकृष्ण की राजसभा में पहुँच कर दूत ने अपने स्वामी पौण्ड्रक का सन्देश दिया । सन्देश में निम्नांकित लक्ष थल था:– "मैं एकमात्र भगवान् श्री वासुदेव हूँ । मेरी स्पर्धा कोई नहीं कर सकता है । अपनी अहैतुकी दया के कारण दुखी बद्धात्माओं के ऊपर करुणा करके मैं राजा पौण्ड्रक के रूप में अवतीर्ण हुआ हूँ । तुमने वासुदेव का पद अनधिकार ही ग्रहण कर लिया है, तुम्हें इस मिथ्या धारणा का प्रसार नहीं करना चाहिए, तुम्हें अपने पद को त्याग देना चाहिए । ओ यदुवंश की सन्तान! जिन्हें तुमने झूठमूठ ही धारण कर लिया है, कृपया तुम वासुदेव के उन चिह्नों को त्याग दो । इस पद का त्याग करने के पश्चात् तुम मेरी शरण में आ जाओ । यदि अपनी धृष्टतावश तुम मेरे वचनों की चिन्ता नहीं करते हो तब मैं तुम्हें युद्ध की चुनौती देता हूँ । मैं तुम्हें एक निर्णायक युद्ध के लिए निमंत्रण देता हूँ ।" जब राजा उग्रसेन सहित राजसभा के समस्त सदस्यों ने पौण्ड्रक के द्वारा प्रेषित इस सन्देश को सुना, तब वे काफी समय तक उच्च स्वर से हँसते रहे । सभा के समस्त सदस्यों के उच्चस्वर में हँसने का आनन्द लेने के पश्चात् श्रीकृष्ण ने दूत को इस प्रकार से उत्तर दिया-"हे पौण्ड्रक के दूत ! तुम अपने स्वामी के समीप मेरा सन्देश ले जाओ । वह एक मूर्ख तथा दुष्ट व्यक्ति है । मैं प्रत्यक्ष रूप से उसे दुष्ट

कहता हूँ और उसके उपदेशों का अनुसरण करना अस्वीकार करता हूँ । मैं वासुदेव के चिह्नों, और विशेष रूप से अपने चक्र का कभी त्याग नहीं करूंगा । मैं न केवल राजा पौण्डूक, अपितु उसके समस्त अनुयायियों, का भी वध करने के लिए इस चक्र का उपयोग करूंगा । मैं इस पौण्ड्रक तथा उसके सहयोगियों का सर्वनाश कर दूँगा, क्योंकि वे मात्र ठगों तथा ठगे जाने वाले के समाज के अंग हैं । मूर्ख राजा! जब यह कार्यवाही की जाएगी तब तुम्हें अपमान से अपना मुख छुपाना पड़ेगा । जब मेरा चक्र तुम्हारे शीश को तुम्हारे धड़ से अलग कर देगा तब इसे गिद्ध, बाज, चील आदि मांस-भक्षी पक्षी घेर लेंगे । उस समय अपनी माँग के अनुसार मेरा शरणस्थल बनने के स्थान पर तुम स्वयं नीच जाति के पक्षियों की दया के भागी होगे । उस समय तुम्हारे शरीर को कुत्तों के समक्ष डाल दिया जाएगा, जो इसे अत्यन्त आनन्दपूर्वक खाएँगे ।" दूत ने भगवान् श्रीकृष्ण का सन्देश अपने स्वामी पौण्डूक को दिया, जिसने धैर्यपूर्वक इन अपशब्दों का श्रवण किया । अधिक प्रतीक्षा न करके इस दुष्ट पौण्ड्रक को दण्ड देने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण अपने रथ पर आरूढ़ होकर तत्काल रवाना हो गये । उस समय करुष का राजा अपने मित्र काशीराज के साथ निवास कर रहा था, अतएव श्रीकृष्ण ने समस्त काशी नगरी को घेर लिया । राजा पौण्ड्रक एक महान् योद्धा था और जैसे ही उसने श्रीकृष्ण के आक्रमण के विषय में सुना, वह दो अक्षौहिणी सैन्य के साथ नगर से बाहर आया । काशीराज, जो राजा पौण्ड्रक का मित्र था, तीन अक्षौहिणी सेना के साथ बाहर आया । जब भगवान् श्रीकृष्ण का सामना करने के लिए वे दोनों राजा भगवान् के सामने आए, तब श्रीकृष्ण ने प्रथम बार पौण्डूक को प्रत्यक्ष देखा । श्रीकृष्ण ने देखा कि पौण्डूक ने स्वयं को शंख, चक्र, गदा तथा पद्म के चिह्नों से विभूषित कर रखा था । वह शाङ्ग धनुष लिये था और उसके वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न था । उसके कण्ठ में एक नकली कौस्तुभमणि शोभायमान थी और भगवान् श्रीवासुदेव का पूर्ण रूप से अनुकरण करते हुए उसने एक पुष्पमाला धारण की हुई थी ।

उसने रेशमी पीताम्बर पहना था और श्रीकृष्ण का पूर्णत: अनुकरण करने से उसके रथ के ध्वज पर भी गरुड़ का चिह्न था । वह अपने सिर पर एक अत्यन्त मूल्यवान मुकुट धारण किये था और तेगामछली के समान उसके कुण्डल जगमगा रहे थे । किन्तु समस्त वस्तुओं पर ध्यान देने पर उसके वस्त्र तथा अलंकार स्पष्ट रूप से अनुकरण-मात्र दिखाई देते थे । कोई भी समझ सकता था कि वह झूठा वेश धारण करके मंच पर वासुदेव का अभिनय करने वाले किसी अभिनेता की भाँति ही था । जब भगवान् श्रीकृष्ण ने पौण्ड्रक को अपनी मुद्रा एवं वेशभूषा का अनुकरण करते देखा, तो वे अपनी हँसी न रोक सके और इस प्रकार वे अत्यन्त सन्तोषपूर्वक हँसने लगे । राजा पौण्ड्रक के पक्ष के सैनिक श्रीकृष्ण पर अपने शस्त्रास्त्रों की वर्षा करने लगे । विभिन्न प्रकार के त्रिशूल, गदा, लाठियाँ, भाले, कटार, तलवार एवं बाण सहित समस्त अस्त्र लहर की भाँति भागते हुए आते थे और श्रीकृष्ण उन सबको काट देते थे । उन्होंने न केवल शस्त्रास्त्रों को अपितु पौण्ड्रक के सहायकों तथा सैनिकों को भी उसी भाँति छिन्न-भिन्न कर दिया, जिस प्रकार प्रलय के समय विनाश की अग्नि प्रत्येक वस्तु को जला कर भस्म कर देती है । श्रीकृष्ण ने शस्त्रों के प्रहार से विपक्ष के हाथियों, रथों, घोड़ों एवं पैदल सैनिकों को इधर-उधर बिखरा दिया । रणभूमि में चारों ओर पशुओं के शरीर और रथ बिखर गए । युद्ध भूमि में घोड़े, हाथी, मनुष्य, गधे तथा ऊँट गिरे पड़े थे । यद्यपि विनष्ट रणक्षेत्र प्रलय के समय शिवजी के ताण्डव नृत्य के स्थान की भाँति दिखाई दे रहा था, तथापि श्रीकृष्ण के पक्ष के योद्धा यह देख कर अत्यन्त प्रोत्साहित हुए और वे और भी शक्तिपूर्वक युद्ध करने लगे । इस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने पौण्डूक से कहा, "पौण्डूक! तुमने मुझसे भगवान् श्रीविष्णु के चिह्नों और विशेष रूप से चक्र को त्यागने की विनती की थी । अब मैं इसे तुमको दूँगा । सावधान! मेरा अनुकरण करते हुए तुम मिथ्या ही स्वयं को वासुदेव घोषित करते हो, अतएव तुमसे बढ़कर मूर्ख और कोई नहीं है ।" श्रीकृष्ण के इस कथन से यह स्पष्ट हो जाता है कि कोई

भी दुष्ट, जो स्वयं को भगवान् कह कर विज्ञापित करता है, मानव समाज का सबसे बड़ा मूर्ख है । श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "पौण्ड्रक! अब मैं तुमको इस मिथ्या प्रतिनिधित्व का त्याग करने को बाध्य कर दूँगा । तुम चाहते थे कि मैं तुम्हारी शरण में आ जाऊँ, अब तुम्हारे लिए यही अवसर है । अब हम युद्ध करेंगे और यदि मैं परास्त हो गया और तुम विजयी हो गए तब निश्चय ही मैं तुम्हारी शरण में आ जाऊँगा ।" इस प्रकार कठोरतापूर्वक पौण्ड्रक की निन्दा करने के पश्चात् उन्होंने एक बाण मार कर उसके रथ को छिन्न-भिन्न कर दिया । जिस प्रकार इन्द्र अपने वज़ के आघात से पर्वतों के शिखर काट देता है, उसी भाँति श्रीकृष्ण ने अपने चक्र की सहायता से पौण्ड्रक का शीश उसके शरीर से अलग कर दिया । उन्होंने अपने बाणों से काशीराज का भी वध कर दिया । भगवान् श्रीकृष्ण ने काशीराज के सिर को विशेष रूप से काशी नगरी में ही फेंकने का प्रबन्ध किया जिससे उसके सम्बन्धी तथा मित्र उस सिर को देख सकें । श्रीकृष्ण ने उस सिर को उसी भाँति काशी नगरी में फेंक दिया, जैसे झंझावात एक कमलपत्र को इधर-उधर उड़ा ले जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण ने रणक्षेत्र में पौण्ड्रक तथा उसके मित्र काशीराज का उद्धार किया और उसके पश्चात् वे अपनी राजधनी द्वारका लौट गए । जब भगवान् श्रीकृष्ण नगरी वापस लौटे तब स्वर्गलोक के समस्त सिद्ध उनका यश-गान कर रहे थे । जहाँ तक पौण्ड्रक का सम्बन्ध था, वह मिथ्या ही भगवान् वासुदेव की भाँति वेश धारण करके किसी-न-किसी भाँति सदैव उनका चिन्तन करता रहता था । अतएव पौण्ड्रक को पाँच प्रकार की मुक्तियों में से सारूप्य मुक्ति का लाभ हुआ । उसे वैकुण्ठ लोक में स्थान मिला जहाँ चारों हाथों में चारों चिह्नों को धारण किए हुए श्रीविष्णु के समान शारीरिक आकृति वाले भक्त निवास करते हैं । वास्तव में पौण्ड्रक का ध्यान विष्णु रूप पर केन्द्रित था, किन्तु वह स्वयं को ही भगवान् विष्णु समझता था, जो वस्तुत: अपराध था । किन्तु तो भी श्रीकृष्ण ने उसका वध किया । अतएव उसका वह अपराध भी शान्त हो गया था । इस प्रकार

उसे सारूप्य मुक्ति प्राप्त हुई और उसे भगवान् के समान रूप प्राप्त हुआ । जब काशीराज का शीश नगर द्वार के अन्दर गिरा, तो लोग वहाँ एकत्र हो गए और वह अद्‌भुत वस्तु देखकर चकित हो गए । जब उन्होंने देखा कि उस पर कुण्डल भी थे तब वे समझ गए कि वह वस्तु किसी का सिर था । वे अनुमान लगाने लगे कि वह किसका सिर हो सकता था । कुछ लोगों ने सोचा कि वह श्रीकृष्ण का सिर था, क्योंकि श्रीकृष्ण काशीराज के शत्रु थे और उन्होंने सोचा कि श्रीकृष्ण का सिर नगर में इसलिए फेंका गया होगा जिससे कि लोग शत्रु के वध पर प्रसन्न हो सकें । किन्तु अन्त में यह ज्ञात हुआ कि वह सिर श्रीकृष्ण का नहीं, अपितु स्वयं काशीराज का ही था । जब इस तथ्य की पुष्टि हो गई तब काशीराज की रानियाँ तत्काल वहाँ आ गई और अपने पति की मृत्यु पर शोक करने लगीं । वे क्रन्दन करने लगीं, 'हे स्वामी! आपकी मृत्यु से हम शव की भाँति हो गई हैं ।" काशीराज का एक पुत्र था जिसका नाम सुदक्षिण था । शास्त्रोत मृतक संस्कारों का पालन करने के उपरान्त उसने प्रण किया कि चूँकि कृष्ण उसके पिता का शत्रु है, अतएव वह कृष्ण का वध करेगा और इस प्रकार पितृ-ऋण से उऋण होगा । अतएव अपनी सहायता करने के लिए उपयुक्त एक विद्वान पुरोहित के साथ वह महादेव शिवजी की उपासना करने लगा । काशी राज्य के स्वामी विश्वनाथ भगवान् शिव हैं । भगवान् विश्वनाथ का मन्दिर अभी-भी काशी में है और प्रतिदिन हजारों तीर्थयात्री अभी-भी मन्दिर में एकत्र होते हैं । सुदक्षिण की उपासना से शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो गए तथा वे अपने भक्त को वरदान देना चाहते थे । सुदक्षिण का उद्देश्य श्रीकृष्ण का वध करना था, अतएव उसने एक विशेष शक्ति के हेतु प्रार्थना की जिससे कि वह उनका वध कर सके । शिवजी ने उसे ब्राह्मणों की सहायता से अपने शत्रु को मारने के लिए किए जाने वाले एक विशेष शास्त्रोत-संस्कार करने का परामर्श दिया । कुछ तंत्रों में भी इस संस्कार का उल्लेख है । शिवजी ने सुदक्षिण को सूचना दी कि यदि उचित रूप से इस संस्कार का सम्पादन किया जाए तब दक्षिणाग्नि

नामक दुष्टात्मा प्रकट होगी और उसे जो भी आदेश दिया जाएगा वह पूरा करेगी । किन्तु योग्य ब्राह्मण के अतिरिक्त अन्य किसी के वध के लिए ही उसका प्रयोग किया जा सकता है । ऐसी दशा में उसके साथ शिवजी के प्रेतगण भी रहेंगे और शत्रु पक्ष का वध करने की सुदक्षिण की इच्छा पूर्ण होगी । जब शिवजी ने इस प्रकार सुदक्षिण को प्रोत्साहित किया तब उसे विश्वास हो गया कि वह श्रीकृष्ण का वध करने में समर्थ होगा । तपस्या का दृढ़ व्रत लेकर वह पुरोहितों की सहायता से मंत्रों का जप करने लगा । इसके पश्चात् अग्नि में से एक विशाल दैत्याकृति बाहर आई । उसके बाल, दाढ़ी और मूंछे तप्त ताँबे के रंग की थीं । यह आकृति अत्यन्त विशाल व भयंकर थी । जब वह दैत्य अग्नि से निकला तब उसके नयन-कोटरों में से अग्नि की चिनगारियाँ निकल रही थीं । अपने भ्रू-चालन के कारण वह आग्नेय दैत्य और भी अधिक भयंकर प्रतीत होता था । उसने अपने तीक्षण दाँतों का प्रदर्शन किया और अपनी लम्बी जिह्वा बाहर निकाल कर उसने अपने ओष्ठों के दोनों किनारों को चाटा । वह नग्न था तथा उसके पास अग्नि की भाँति प्रज्वलित एक त्रिशूल था । यज्ञ की अग्नि में से प्रकट होने के पश्चात् वह अपने हाथ में त्रिशूल को घुमाते हुए खड़ा हो गया । सुदक्षिण द्वारा उत्तेजित किए जाने पर अपने सैकड़ों प्रेत साथियों सहित वह दैत्य राजधानी द्वारका की ओर बढ़ने लगा । ऐसा प्रतीत होता था कि वह समस्त अन्तरिक्ष को जला कर भस्म कर देगा । उसके पद-प्रहार से समस्त धरातल प्रकम्पित हो उठा । जब उसने द्वारका नगरी में प्रवेश किया, तो समस्त निवासी उसी भाँति भयभीत हो गए जैसे दावाग्नि के समय पशु भयभीत हो जाते हैं । उस समय श्रीकृष्ण राजसभा भवन में चौपड़ खेलने में व्यस्त थे । समस्त द्वारकावासियों ने उनके समीप आकर उन्हें सम्बोधित किया, "हे त्रिभुवन के स्वामी! एक विशाल आग्नेय दैत्य समस्त द्वारका नगरी को जलाने को तत्पर है । कृपया हमारी रक्षा कीजिए ।" इस प्रकार समस्त द्वारकावासी भगवान् श्रीकृष्ण के समीप आकर उनसे प्रार्थना करने लगे कि समस्त नगर का विनाश करने के लिए द्वारका

में प्रकट हुए उस आग्नेय दैत्य से वे उनकी रक्षा करें । अपने भक्तों की विशेष रूप से रक्षा करने वाले भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि उस विशाल आग्नेय दैत्य की उपस्थिति से द्वारका की समस्त जनता अत्यधिक व्यग्र थी । वे तत्काल मुस्कराने लगे और उन्हें समझाया, "चिन्ता मत करो । मैं तुम्हारी समस्त प्रकार से रक्षा करूंगा ।" भगवान् श्रीकृष्ण सर्वव्यापी हैं । वे सबके हृदय में और सृष्टि के रूप में वे बाहर भी हैं । वे समझ सकते थे कि वह आग्नेय दैत्य शिवजी की करतूत था और उसका नाश करने के लिए उन्होंने सुदर्शन चक्र को उचित कार्यवाही करने का आदेश दिया । करोड़ों सूर्यों की प्रभा के साथ सुदर्शन चक्र प्रकट हुआ । उसका तापमान इतना प्रखर था जैसे कि प्रलय के समय निर्मित अग्नि का होता है । सुदर्शन चक्र अपनी कान्ति से शिवजी द्वारा निर्मित उस आग्नेय दैत्य को शीतल करने लगा । इस भाँति भगवान् श्रीकृष्ण के सुदर्शन चक्र ने उस आग्नेय दैत्य को रोक दिया और द्वारका नगरी के विनाश के अपने प्रयास में विफल होकर वह वापस लौट गया । द्वारका में आग लगाने में असमर्थ होकर वह काशीराज की राजधानी वाराणसी लौट गया । उसकी वापसी के परिणामस्वरूप मंत्रों के आदेश में सहायक सभी पुरोहित अपने स्वामी सुदक्षिण सहित उस आग्नेय दैत्य की जाज्वल्यमान् कान्ति से जल कर भस्म हो गए । तंत्र में निर्देशित मंत्रों की विधि के अनुसार यदि मंत्र शत्रु का वध नहीं कर पाता है, तब वह अपने मूल निर्माता का ही वध कर देता है, क्योंकि किसी-न-किसी का वध करना उसके लिए आवश्यक होता है । सुदक्षिण ने मंत्र का आवाहन किया था और पुरोहितों ने उसकी सहायता की थी, अतएव वे सभी जला कर भस्म कर दिए गए । असुरों की यही रीति है । ईश्वर का वध करने के लिए असुर किसी वस्तु का निर्माण करते हैं और उसी अस्त्र से स्वयं असुरों का ही वध कर दिया जाता है । इस आग्नेय दैत्य के ठीक पीछे उसका अनुसरण करते हुए सुदर्शन चक्र ने भी वाराणसी में प्रवेश किया । दीर्घ काल से वाराणसी नगरी अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण तथा महान् बनी हुई थी । आज भी वाराणसी नगरी अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्ण व

प्रसिद्ध है और यह भारत के प्रमुख नगरों में से एक है । उस समय वाराणसी में अनेक विशाल महल, सभागृह, बाजार और गोपुर थे । महलों तथा गोपुरों के समीप अनेक भव्य स्मारक थे । प्रत्येक चौराहे पर उपदेश-मंच थे । एक कोषगृह था । अनेक हाथी, घोड़े तथा रथ थे । वहाँ पर अन्नागार तथा अन्न-वितरण के हेतु स्थान भी थे । दीर्घ काल से वाराणसी नगरी इन समस्त भौतिक ऐश्वर्य से परिपूर्ण रही थी, किन्तु काशीराज तथा उसके पुत्र के श्रीकृष्ण-विरोधी होने के कारण विष्णुचक्र सुदर्शन ने इन समस्त प्रमुख स्थानों को जलाकर समस्त नगर का विनाश कर दिया । यह साहसिक कार्य आधुनिक बमविस्फोट से भी अधिक विनाशकारी था । इस प्रकार अपना कर्तव्य समाप्त करके सुदर्शन चक्र अपने स्वामी श्रीकृष्ण के समीप द्वारका लौट आया ।

श्रीकृष्ण के चक्रास्त्र, सुदर्शन चक्र, के द्वारा वाराणसी नगरी के विनाश की यह कथा दिव्य व शुभ है । जो कोई इस कथा को कहता है अथवा जो कोई श्रद्धा व ध्यानपूर्वक इस कथा का श्रवण करता है उसे समस्त पापों के फल से मुक्ति मिल जाती है । यह श्रीशुकेदव गोस्वामी का विश्वास है, जिन्होंने यह कथा परीक्षित महाराज को सुनाई थी ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "पौण्ड्रक तथा काशिराज का उद्धार" नामक छाछठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 67
वानर द्विविद का उद्धार

भगवान् श्रीकृष्ण की विशिष्टताओं तथा उनकी दिव्य लीलाओं के विषय में जब श्री शुकदेव गोस्वामी इस प्रकार कथन कर रहे थे, तब उनका

श्रवण करके राजा परीक्षित और अधिक उत्साहित हो उठे । राजा परीक्षित भगवान् श्रीकृष्ण के लीलामृत का और अधिक पान करना चाहते थे । तदुपरान्त श्री शुकदेव गोस्वामी ने उस द्विविद नामक वानर की कथा कही, जिसका वध भगवान् श्रीबलराम ने किया था । यह वानर भौमासुर अथवा नरकासुर का घनिष्ठ मित्र था । भौमासुर ने समस्त विश्व से सोलह हजार राजकुमारियों का अपहरण किया था और इसी कारण श्रीकृष्ण ने उसका वध किया था । द्विविद राजा सुग्रीव का मंत्री था । उसका भाई मैन्द भी एक शक्तिशाली वानर-राजा था । जब वानर द्विविद ने भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा अपने मित्र भौमासुर के वध का बदला लेने की योजना बनाई तो ग्रामों, नगरों तथा औद्योगिक स्थानों एवं खदानों के साथ ही साथ दुग्ध-उद्योग एवं गोरक्षा में व्यस्त व्यवस्थायियों के निवासस्थानों को आग लगा देना द्विविद का प्रथम कार्य था । कभीकभी वह एक बड़े पर्वत को उखाड़ कर उसे छिन्न-भिन्न कर देता था । इस प्रकार उसने सम्पूर्ण देश में और विशेष रूप से कठवर के प्रदेश में भयंकर अव्यवस्था उत्पन्न कर दी । द्वारका नगरी कठवर प्रदेश में स्थित है, एवं भगवान् श्रीकृष्ण इस नगरी में निवास करते थे । अतएव द्विविद ने इसे विशेष रूप से अपने उपद्रव का लक्ष्य बनाया । द्विविद दस हजार हाथियों जितना बलवान् था । कभी-कभी वह सागर-तट पर जाता था और अपने सशक्त हाथों से वह सागर में इतनी हलचल उत्पन्न कर देता था कि समीपस्थ नगरों एवं ग्रामों में बाढ़ आ जाती थी । बहुधा वह साधु-सन्तों के आश्रमों में जाकर उनकी सुन्दर बाटिकाओं तथा उद्यानों को तहसनहस करके अत्यन्त उपद्रव करता था । वह न केवल इस प्रकार उपद्रव करता था, अपितु कभी-कभी वह उनकी पवित्र यज्ञभूमि में मल-मूत्र त्याग देता था । इस प्रकार वह समस्त वातावरण को दूषित कर देता था । वह स्त्रियों तथा पुरुषों का अपहरण भी करता था और उन्हें उनके निवासस्थान से ले जाकर पर्वतों की गुफाओं में रख देता था । जिस प्रकार भूगी कीट मक्खियों एवं अन्य कीटों को बन्दी बना कर ले जाता है और उन्हें पेड़ों के उन छिद्रों में रख

देता है जहाँ वह स्वयं निवास करता है, उसी प्रकार द्विविद अपहृत व्यक्तियों को गुफाओं में रख कर विशाल पाषाण-खण्डों से गुफा का द्वार बन्द कर देता था । इस प्रकार वह नियमित रूप से देश की शान्तिव्यवस्था की अवहेलना कर रहा था । न केवल इतना ही, अपितु कभी-कभी वह कुलीन परिवारों की स्त्रियों पर बलात्कार करके उन्हें भी दूषित कर देता था । जब वह इस प्रकार समस्त देश में अव्यवस्था फैला रहा था, तब कभी-कभी वह रैवतक पर्वत से आती हुई मधुर संगीत की ध्वनि सुनता था । अतएव उसने उस पर्वत प्रदेश में प्रवेश किया । वहाँ उसने अनेक रूपवती किशोरियों के मध्य नृत्य एवं गान में संलग्न एवं उनके सानिध्य का आनन्द उठाते हुए भगवान् श्रीबलराम को देखा । भगवान् श्रीबलराम के शरीर का अंग-प्रत्यंग सुन्दर था और उन्होंने कमल-पुष्पों की माला धारण की हुई थी । द्विविद भगवान् श्रीबलराम के शरीर की सुन्दर आकृति पर मुग्ध हो गया । बलराम जी की भाँति वहाँ उपस्थित सभी किशोरियाँ भी अत्यन्त रूपवती थीं और उन्होंने भी पुष्पों की मालाएँ धारण की थीं । भगवान् श्रीबलराम वारुणी का पान कर के पूर्णत: मत प्रतीत होते थे एवं उनके नेत्र नशे में घूम से रहे थे । भगवान् श्रीबलराम अनेक हथिनियों के मध्य गजराज की भाँति प्रतीत होते थे । द्विविद नामक यह वानर वृक्षों पर चढ़कर एक शाखा से दूसरी शाखा पर कूद सकता था । कभी-कभी वह शाखाएँ हिला कर एक विशेष प्रकार की किलकिल ध्वनि करता जिससे कि भगवान् श्रीबलराम का ध्यान मन प्रसन्न करने वाले वातावरण की ओर से विचलित हो गया । कभी-कभी द्विविद स्त्रियों के सम्मुख आकर विभिन्न प्रकार की हास्योत्पादक मुख-मुद्राओं का प्रदर्शन करता था । स्वभावत: स्त्रियाँ किसी भी वस्तु का हास्य तथा विनोदपूर्वक आनन्द उठाती हैं और जब वानर उनके सम्मुख आया तब उन्होंने उसे गम्भीरता से नहीं लिया, अपितु उसके ऊपर हँस पड़ीं । किन्तु वह वानर इतना उद्दण्ड था कि बलराम जी की उपस्थिति में भी वह अपने शरीर के निम्न अंगों को स्त्रियों के समक्ष प्रदर्शित करने लगा ।

कभी - कभी वह अपनी भौंहें चलाते हुए अपने दाँत दिखाने के लिए आगे आता था । बलराम जी की उपस्थिति में भी उसने स्त्रियों का अनादर किया । भगवान् श्रीबलराम का नाम ही संकेत करता है कि वे न केवल अत्यन्त बलशाली हैं, अपितु वे असाधारण बल का प्रदर्शन करने में आनन्दित होते हैं । अतएव उन्होंने एक पत्थर उठाकर उससे द्विविद को मारा । किन्तु वानर ने कुशलतापूर्वक पत्थर का वार बचा लिया । बलराम जी का अपमान करने के लिए वानर वारुणी का घड़ा उठा कर ले गया । इस प्रकार द्विविद वारुणी पी कर मत हो गया और अपनी सीमित शक्ति से बलराम जी तथा उनके साथ की किशोरियों के मूल्यवान वस्त्रों को फाड़ने लगा । वह गर्व से इतना फूल गया था कि सोचने लगा कि बलराम जी उसे कोई दण्ड नहीं दे सकते और वह बलराम जी तथा उनके साथियों को कष्ट देता रहा । जब भगवान् श्रीबलराम ने स्वयं उस वानर द्वारा किए गए उपद्रव को देखा तथा यह सुना कि उसने पहले ही सम्पूर्ण देश में अनेक उपद्रव किये हैं, तब वे अत्यन्त कृद्ध हो गए और उन्होंने उसका वध करने का निश्चय किया । तत्काल ही बलराम जी ने अपनी गदा उठा ली । वानर समझ गया कि अब बलराम जी उस पर आक्रमण करने जा रहे हैं । बलराम जी का सामना करने के लिए उसने तत्काल एक विशाल वृक्ष उखाड़ लिया और अत्यन्त तीव्रता से आकर उसने भगवान् बलराम के सिर पर आघात किया । भगवान् श्रीबलराम ने तत्काल उस विशाल वृक्ष को पकड़ लिया और स्वयं एक महान् पर्वत की भाँति अविचलित खड़े रहे । प्रतिकार के हेतु उन्होंने अपनी सुनन्द नामक गदा लेकर उससे वानर पर प्रहार करना प्रारम्भ किया । वानर के सिर पर गम्भीर चोट पहुँची । उसके सिर से रक्त-धारा अत्यन्त तीव्रता से प्रवाहित होने लगी, किन्तु रक्त की धार से उसके सौन्दर्य में उसी प्रकार वृद्धि हो रही थी जिस प्रकार किसी विशाल पर्वत से प्रवाहित होती हुई तरल लौह-धारा से पर्वत का सौन्दर्य बढ़ जाता है । बलराम जी की गदा के आघात ने उसे तनिक भी विचलित नहीं किया । इसके विपरीत उसने तत्काल एक और विशाल

वृक्ष उखाड़ लिया और उसके सभी पत्रों को तोड़ने के उपरान्त उससे बलराम जी के सिर पर प्रहार करना प्रारम्भ किया । किन्तु अपनी गदा की सहायता से बलराम जी ने वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिए । वानर अत्यन्त क्रोधित था, अत: उसने अपने हाथों में एक अन्य वृक्ष लेकर उससे भगवान् श्रीबलराम जी के शरीर पर आघात करना प्रारम्भ किया । भगवान् श्रीबलराम ने पुन: उस वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर दिए और इस प्रकार युद्ध चलता रहा । प्रत्येक बार जब वानर बलराम जी पर आघात करने के लिए एक विशाल वृक्ष लाता तो भगवान् श्रीबलराम अपनी गदा से प्रहार से वृक्ष के टुकड़े-टुकड़े कर देते । वानर द्विविद दूसरी दिशा से एक और पेड़ लाकर पुन: बलराम जी पर उसी भाँति आक्रमण करता रहा । इस सतत युद्ध के परिणामस्वरूप समस्त वन वृक्षविहीन हो गया । जब और वृक्ष नहीं बचे तब द्विविद ने पर्वतों की सहायता ली और बलराम जी के शरीर पर विशाल पाषाण-खण्डों की वर्षा करने लगा । क्रीड़ापूर्ण मन:स्थिति में भगवान् श्रीबलराम भी उन विशाल पाषाणों को तोड़ कर छोटे-छोटे कंकड़ों में परिवर्तित करने लगे । अन्तत: समस्त वृक्षों तथा शिलाओं से वंचित हो कर वह वानर बलराम जी के सम्मुख खड़ा हो गया एवं अपने शक्तिशाली घूंसे दिखाने लगा । तदुपरान्त वह अपनी मुट्ठी से बलराम जी के वक्ष पर प्रबल प्रहार करने लगा । इस बार भगवान् श्रीबलराम अत्यन्त क्रोधित हो उठे । वानर उन पर अपने हाथों से प्रहार कर रहा था, अतएव बलराम जी ने भी उस पर अपने अस्त्र गदा अथवा हल से प्रहार नहीं किया । बलराम जी केवल अपनी मुट्ठी से वानर के कण्ठ की हड़ी पर प्रहार करने लगे । यह आघात द्विविद के लिए प्राणान्तक सिद्ध हुआ, उसने तत्काल रक्त वमन कर दिया और अचेत हो कर धरती पर गिर पड़ा । जब वह वानर गिरा तब ऐसा प्रतीत हुआ कि सभी पर्वत एवं वन हिल उठे हों । इस भयंकर घटना के उपरान्त समस्त सिद्ध, साधु एवं सन्त जन स्वर्गलोक से भगवान् श्रीबलराम पर पुष्पवर्षा करने लगे । भगवान् श्रीबलराम की श्रेष्ठता के यशगान की ध्वनि गूँज उठी

। वे सब उच्चारण करने लगे, "भगवान् श्रीबलराम यशस्वी हों, हम आपके चरणकमलों में सादर प्रणाम करते हैं । इस असुर द्विविद का वध करके आपने विश्व में एक शुभ युग का शुभारम्भ किया है ।" विजय की ऐसी हर्षध्वनियाँ अन्तरिक्ष में से सुनाई पड़ीं । असुर द्विविद का वध करने तथा विजय की यशस्वी ध्वनियों तथा पुष्पों के द्वारा पूजित होने के पश्चात् बलराम जी अपनी राजधनी द्वारका लौट आए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "वानर द्विविद का उद्धार" नामक अध्याय सरसठवें का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 68
साम्ब का विवाह

धृतराष्ट्र के पुत्र दुर्योधन की एक विवाहयोग्य पुत्री थी, जिसका नाम लक्ष्मणा था । वह कुरुवंश की एक अत्यधिक योग्य कन्या थी और अनेक राजकुमार Cउससे विवाह करना चाहते थे । ऐसी दशा में स्वयंवर-संस्कार का समायोजन किया जाता है, जिससे कि कन्या अपनी रुचि के अनुसार वर का चुनाव कर सके । लक्ष्मणा स्वयंवर-सभा में जब वर चुनने वाली थी, तब साम्ब वहाँ उपस्थित हुए । भगवान् श्रीकृष्ण की प्रमुख रानियों में से एक श्रीमती जाम्बवती तथा श्रीकृष्ण के वे पुत्र थे । साम्ब को यह नाम इसलिए दिया गया था, क्योंकि वह एक अति दुष्ट बालक थे तथा सदैव अपनी माता के समीप रहते थे । साम्ब नाम ऐसे पुत्र की ओर संकेत करता है, जो अपनी माता का अत्यधिक दुलारा होता है । अम्बा का अर्थ है माता और स का अर्थ है साथ । अतएव साम्ब को यह विशेष नाम इसलिए दिया गया था, क्योंकि वह सदैव अपनी माता के साथ रहता था । इसी कारण वे जाम्बवतीसुत नाम से भी विख्यात थे । जैसाकि पहले ही

स्पष्ट किया जा चुका है, श्रीकृष्ण के सभी पुत्र अपने महान् पिता भगवान् श्रीकृष्ण के समान ही योग्य थे । यद्यपि लक्ष्मणा साम्ब से विवाह करने को इच्छुक नहीं थी, तथापि साम्ब दुर्योधन–सुता लक्ष्मणा को प्राप्त करना चाहता था । अतएव साम्ब ने स्वयंवर-सभा से बलपूर्वक लक्ष्मणा का अपहरण कर लिया । चूँकि साम्ब सभा से लक्ष्मणा को बलपूर्वक ले गया, अतएव धृतराष्ट्र, भीष्म, विदुर, उजहन तथा अर्जुन आदि कुरुवंश के सभी सदस्यों ने इसे अपनी पारिवारिक परम्परा का अपमान समझा कि किशोर साम्ब ने उनकी पुत्री का अपहरण कर लिया । उन सबको ज्ञात था कि साम्ब को वरण करने में लक्ष्मणा की तनिक भी अभिरुचि नहीं है । उसे अपने पति का स्वयं चुनाव करने का अवसर नहीं दिया गया, अपितु इसके स्थान पर यह किशोर उसे बलपूर्वक उठा ले गया । अतएव उन्होंने निश्चय किया कि उसे दण्ड देना चाहिए । उन्होंने एकमत होकर घोषणा की कि साम्ब अत्यन्त धृष्ट है और उसने कुरुओं की कुल परम्परा का अपमान किया है । अतएव कुरु परिवार के वयोवृद्धों के परामर्श के अधीन उन सबने उस किशोर का वध न करते हुए उसे बन्दी बनाने का निश्चय किया । उन्होंने निष्कर्ष निकाला कि लक्ष्मणा का विवाह अब साम्ब के अतिरिक्त अन्य किसी युवक से नहीं किया जा सकता है, क्योंकि साम्ब ने पहले से उसका स्पर्श कर लिया है । (वैदिक प्रणाली के अनुसार किसी एक युवक के द्वारा उपभोग कर लिए जाने के पश्चात् कन्या का विवाह किसी अन्य युवक से नहीं किया जा सकता है । न ही कोई ऐसी कन्या से विवाह करने को सहमत होगा जिसका किसी अन्य युवक से इस प्रकार सम्बन्ध रहा हो ।) भीष्म जैसे वयोवृद्ध परिवार के सदस्य उसे बन्दी बनाना चाहते थे । साम्ब को पाठ पढ़ाने के लिए कुरुवंश के समस्त सदस्य, विशेष रूप से महान् योद्धागण, एक हो गए और इस छोटे से युद्ध के लिए कर्ण को सेनापति बनाया गया । जब साम्ब को बन्दी बनाने की योजना बनाई जा रही थी, तब कौरवों ने आपस में विचार किया कि उसके बन्दी होने पर यदुवंशी उनसे अत्यन्त कुद्ध हो जाएँगे । ऐसी सम्भावना भी

थी कि यदुवंशी इस चुनौती को स्वीकार करके उनसे युद्ध छेड़ दें । किन्तु वे भी सोचने लगे, "यदि वे यहाँ युद्ध करने के लिए आएँ तो भी वे क्या कर सकेंगे? यदुवंशी कुरुवंशियों की समता नहीं कर सकते हैं, क्योंकि कुरुवंश के राजा सम्राट् हैं जबकि यदुवंश के राजा केवल अपनी भू-सम्पत्ति का उपभोग कर सकते हैं ।"कौरवों ने सोचा, "यदि अपने पुत्र के बन्दी होने के कारण वे हमें चुनौती देने यहाँ आएँ तो हम भी युद्ध की चुनौती स्वीकार कर लेंगे । हम सब उन्हें ऐसा पाठ पढ़ाएँगे कि दबाव में आकर अपने आप उनका दमन हो जाएगा, जैसे कि प्राणायाम की योगिक प्रक्रिया के द्वारा इन्द्रियों का दमन को जाता है ।" योग की यांत्रिक प्रणाली में शरीर के अन्दर की वायु का नियमन किया जाता है तथा इन्द्रियों का दमन करके उन्हें भगवान् विष्णु पर ध्यान करने के अतिरिक्त अन्य किसी कार्य में संलग्न होने से रोक दिया जाता है । भीष्म तथा धृतराष्ट्र जैसे कुरुवंश के वयोवृद्ध सदस्यों से परामर्श करने तथा उनकी अनुमति प्राप्त करने के उपरान्त कर्ण, शल, भूरिश्रवा, यज्ञकेतु तथा कन्या के पिता दुर्योधन आदि महान् योद्धाओं ने, जो महारथी कहलाते थे, उन सबसे महान् योद्धा भीष्मदेव के मार्गदर्शन में किशोर साम्ब को बन्दी बनाने का प्रयास किया । उनकी युद्ध कुशलता के अनुसार योद्धाओं का विभिन्न स्तरों में वर्गीकरण किया जाता है । उनमें महारथी, एकरथी तथा रथी नामक वर्ग भी हैं । ये महारथी अकेले ही सहस्रों पुरुषों से युद्ध कर सकते थे । साम्ब को बन्दी बनाने के लिए वे सब एक हो गए । साम्ब भी एक महारथी था, किन्तु अकेला था और उसे छः अन्य महारथियों से युद्ध करना था । फिर भी जब उसने कुरुवंश के समस्त महान् योद्धाओं को उसे बन्दी बनाने के लिए अपने पीछे आते हुए देखा, तो वह भयभीत नहीं हुआ । वह एकाकी ही उनकी ओर मुड़ा और अपना उत्तम धनुष लेकर उसी मुद्रा में खड़ा हो गया जैसे वन्य पशुओं के सम्मुख सिंह दृढ़तापूर्वक खड़ा रहता है । कर्ण उस टुकड़ी का नेतृत्व कर रहे थे और उन्होंने साम्ब को चुनौती दी, "भाग क्यों रहे हो, खड़े रहो, तो हम तुम्हें पाठ पढ़ाएँ ।"

जब एक क्षत्रिय दूसरे को खड़े रह कर युद्ध करने की चुनौती देता है, तब वह क्षत्रिय जा नहीं सकता है, उसे अवश्य ही युद्ध करना होता है । अतएव, जैसे ही साम्ब ने चुनौती स्वीकार की और अकेला ही उनके सम्मुख खड़ा हुआ, उन समस्त महान् योद्धाओं ने उस पर एकसाथ बाण-वर्षा आरम्भ कर दी । जिस प्रकार सिंह अनेक भेड़ियों तथा सियारों के द्वारा पीछा किए जाने पर भयभीत नहीं होता है, उसी भाँति यदुवंशी यशस्वी पुत्र साम्ब भी भयभीत नहीं हुआ । भगवान् श्रीकृष्ण के पुत्र के रूप में साम्ब अचिन्त्य शक्तियों से युक्त था । कुरुवंश के योद्धाओं ने अनुचित रूप से उसके विरुद्ध बाणों का प्रयोग किया था, अतएव साम्ब अत्यन्त क्रोधित हो गया । उसने अत्यन्त कौशलपूर्वक उनसे युद्ध किया । सर्वप्रथम उसने छहों सारथियों को छ: अलग-अलग बाण मारे । प्रत्येक रथ पर चार-चार बाण मार कर, चार अन्य बाणों का उपयोग उसने सारथियों के घोड़ों का वध करने के लिए किया । एक बाण का उपयोग रथवान के लिए तथा एक-एक बाण कर्ण तथा अन्य प्रसिद्ध योद्धाओं के लिए उसने चलाए । जब साम्ब इस प्रकार परिश्रमपूर्वक अकेले ही छहों महान् योद्धाओं से युद्ध कर रहा था तब उन योद्धाओं ने साम्ब की अचिन्त्य शक्ति की सराहना की । युद्ध के मध्य भी उन्होंने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया कि वह किशोर साम्ब अद्‌भुत था । किन्तु क्षत्रियोचित रीति से युद्ध चलता रहा और यद्यपि यह अनुचित था, तथापि उन सबने मिलकर साम्ब के रथ को खण्ड-खण्ड करके उसे रथ से उतरने के लिए बाध्य कर दिया । छ: योद्धाओं में से चार ने साम्ब के चारों घोड़ों को मार दिया और एक ने साम्ब के धनुष की डोरी काट दी जिससे कि वह अब उनसे युद्ध करने में असमर्थ हो गया । इस प्रकार घोर युद्ध के पश्चात् तथा अत्यन्त कठिनाई से वे साम्ब को रथविहीन करके उसे बन्दी बनाने में सफल हुए । इस तरह कुरु वंश के योद्धा विजयी होकर अपनी पुत्री लक्ष्मणा को उससे छीन ले गए । इसके उपरान्त अपनी विजय पर उल्लसित होते हुए उन्होंने हस्तिनापुर में प्रवेश किया । महर्षि नारद ने तत्काल ही यदुवंश को यह

सूचना पहुँचाई कि साम्ब बन्दी बना लिया गया है । उन्होंने यदुवंशियों को समस्त कथा सुनाई । साम्ब के बन्दी बनाए जाने पर तथा विशेष रूप से छ: योद्धाओं द्वारा अनुचित रीति से उसके बन्दी बनाए जाने पर यदुवंशी अत्यधिक कृद्ध हो गए । अत: यदुवंश के राजा उग्रसेन की अनुमति प्राप्त करके वे कुरुवंश की राजधानी पर आक्रमण करने को तत्पर हुए । यद्यपि भगवान् श्रीबलराम को भलीभाँति ज्ञात था कि कलियुग में लोग छोटीसी बात पर युद्ध करने को तत्पर रहते हैं, फिर भी उन्हें यह विचार रुचिकर नहीं लगा कि कलियुग से प्रभावित होने पर भी दो महान् वंश, कुरुवंश तथा यदुवंश, परस्पर युद्ध करें । उन्होंने बुद्धिमतापूर्वक विचार किया, "उनसे युद्ध करने के स्थान पर मुझे वहाँ जाकर स्थिति का निरीक्षण करने की अनुमति दीजिए । मुझे प्रयास करने दीजिए कि यह विवाद परस्पर समझौते के द्वारा समाप्त कर दिया जाए ।" बलराम जी का विचार था कि यदि कुरुवंश साम्ब को उसकी पत्नी लक्ष्मणा सहित मुक्त करने पर सहमत हो जाए, तो युद्ध से बचा जा सकता है । अतएव उन्होंने विद्वान पुरोहित तथा ब्राह्मणों और साथ ही साथ यदुवंश के कुछ वयोवृद्ध सदस्यों सहित हस्तिनापुर जाने के लिए तत्काल ही एक उत्तम रथ का प्रबन्ध किया । उन्हें विश्वास था कि कुरुवंशी इस विवाह के लिए सहमत हो जाएँगे और आपस में युद्ध की सम्भावना टल जाएगी । विद्वान ब्राह्मणों तथा यदुवंश के वयोवृद्धों सहित रथ पर हस्तिनापुर जाते हुए भगवान् श्रीबलराम ऐसे प्रतीत होते थे जैसे शुभ्र आकाश में जगमगाते हुए नक्षत्रों के मध्य चन्द्रमा चमकता है । जब भगवान् श्रीबलराम हस्तिनापुर की सीमा पर पहुँचे तब उन्होंने नगर में प्रवेश नहीं किया, अपितु वे एक छोटे से उद्यानगृह में ठहरे । तत्पश्चात् उन्होंने उद्धवजी से कहा कि वे कुरुवंश के प्रमुखों से भेंट करके उनसे पूछे कि वे यदुवंश से युद्ध करना चाहते हैं अथवा समझौता करना चाहते हैं । उद्धव जी कुरुवंश के प्रमुखों से भेंट करने गए और उन्होंने श्री भीष्मदेव, श्रीधृतराष्ट्र, द्रोणाचार्य, श्रीबलि, श्रीदुर्योधन तथा श्रीबाहीक सहित समस्त प्रमुख सदस्यों से भेंट की । उन्हें

यथोचित प्रणाम करने के उपरान्त उद्धव जी ने उन्हें बताया कि भगवान् श्रीबलराम नगरद्वार के बाहर उद्यान में आ चुके हैं । कुरुवंश के प्रमुख, विशेष रूप से धृतराष्ट्र व दुर्योधन अत्यन्त हर्षित हो गए क्योंकि उन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि भगवान् श्रीबलराम उनके परिवार के एक महान् शुभचिन्तक हैं । यह समाचार सुनकर उनके हर्ष की सीमा न रही, अतएव उन्होंने तत्काल ही उद्धव जी का स्वागत किया । भगवान् श्रीबलराम का उचित रूप से स्वागत करने के लिए उन्होंने अपने हाथों में उनके स्वागतार्थ शुभ सामग्री ली और उनसे भेंट करने नगर-द्वार के बाहर गए । अपने-अपने पद के अनुसार उन्होंने भगवान् श्रीबलराम को उतम गाएँ तथा अर्घ देकर उनका स्वागत किया । (आरात्रिक जल, मधु, मक्खन आदि की बनी मीठी वस्तुएँ पुष्प तथा चन्दन के आलेप से सुगंधित माला आदि पदार्थों को अर्घ कहा जाता है ।) उन सबको ज्ञात था कि भगवान् श्रीबलराम ही श्रीभगवान् हैं, अतएव उन्होंने भगवान् के सम्मुख अत्यन्त आदरपूर्वक सिर झुका कर प्रणाम किया । परस्पर एक दूसरे का सुख-समाचार पूछकर उन्होंने एक दूसरे का स्वागत किया और जब यह औपचारिकता पूर्ण हो गई, तब भगवान् श्रीबलराम ने गम्भीर स्वर में तथा अत्यन्त धैर्यपूर्वक उनके सम्मुख निम्नांकित शब्द विचारार्थ प्रस्तुत किए- "प्रिय मित्रों! इस समय मैं सर्वशक्तिमान राजा उग्रसेन का आदेश लेकर एक दूत के रूप में आपके समीप आया हूँ । अतएव, कृपया आप ध्यानपूर्वक सावधानी से यह आदेश सुनिए । कृपया एक क्षण भी नष्ट न करके तत्काल आदेश को पूर्ण करने का प्रयास कीजिए । राजा उग्रसेन को भलीभाँति ज्ञात है कि कुरुवंश के आप योद्धाओं ने अकेले साम्ब से अनुचित रूप से युद्ध करके उसे बन्दी बना लिया है । उसे बन्दी बनाने में आपको अत्यन्त कठिनाई उठानी पड़ी तथा व्यूह रचना करनी पड़ी । हम सबने यह समाचार सुना है, किन्तु हम अधिक उद्विग्न नहीं हुए, क्योंकि हम परस्पर अत्यन्त घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हैं । मेरे विचार में हमें अपने अच्छे सम्बन्धों को बिगाड़ना नहीं चाहिए, हमें अनावश्यक युद्ध न करके

अपनी मैत्री स्थिर रखनी चाहिए । अतएव कृपया साम्ब को तत्काल मुक्त कर दीजिए तथा उसकी पत्नी लक्ष्मणा सहित उसे मेरे समक्ष ले आइए ।" जब भगवान् श्रीबलराम ने शौर्यपूर्ण अधिकार, श्रेष्ठता तथा वीरतायुक्त आदेशपूर्ण स्वर में ये शब्द कहे, तब उनके कथन कुरुवंश के प्रमुखों को रुचिकर नहीं प्रतीत हुए । इसके विपरीत वे सब उद्वेलित हो उठे और अत्यन्त क्रोध से उन्होंने कहा, "अहो! ये शब्द चकित करने वाले हैं, किन्तु कलियुग के अनुकूल ही हैं, अन्यथा बलराम इस प्रकार निन्दनीय रीति से कैसे बोल सकते थे? बलराम जी के द्वारा प्रयुक्त भाषा तथा शैली अपमानजनक है और ऐसा प्रतीत होता है कि इस युग के प्रभाव के कारण पैरों के लिए उपयुक्त पादुका सिर पर चढ़ना चाहती है, जहाँ मुकुट धारण किया जाता है । यदुवंश से हमारा सम्बन्ध विवाह के कारण है और इसी कारण उन्हें हमारे साथ निवास करने, भोजन करने तथा शयन करने का अवसर दिया गया है । अब वे इन विशेषाधिकारों का लाभ उठा रहे हैं । जब हमनें उन्हें राज्य करने के लिए अपने राज्य का एक भाग दिया, उससे पूर्व उनका कोई स्थान नहीं था और अब वे हमें ही आदेश देने का प्रयास कर रहे हैं । हमने यदुवंश को चवर, पंखा, शंख, श्वेत छत्र, राजमुकुट, राजसिंहासन, आसन, पलंग तथा राजवंशों के लिए उपयुक्त प्रत्येक राजचिह्नों का उपयोग करने दिया । उन्हें ऐसी राजसी सामग्री का प्रयोग हमारी उपस्थिति में नहीं करना चाहिए था, किन्तु हमने अपने पारिवारिक सम्बन्ध का ध्यान करके उन्हें नहीं रोका । अब वे हमें ही आदेश देने की धृष्टता कर रहे हैं । उनकी धृष्टता की सीमा समाप्त हो गई । अब हम उन्हें आगे इस प्रकार कार्य करने की अनुमति नहीं दे सकते हैं, न ही अब हम उन्हें इन राजचिह्नों का उपयोग करने देंगे । इन सब वस्तुओं को उनसे छीन लेना ही सर्वोत्तम होगा । सर्प को दूध पिलाना अनुचित है, क्योंकि ऐसा दयापूर्ण कार्य उसके विष में वृद्धि ही करता है । यदुवंशियों ने जिस थाली में खाया अब वे उसी में छेद करने का प्रयास कर रहे हैं । उनकी सम्पन्न स्थिति हमारे उपहारों तथा सदय व्यवहार के कारण ही है, फिर

भी वे इतने निलज हैं कि वे हमें ही आदेश देने का प्रयास कर रहे हैं । ये सब कार्यकलाप ...था कितने खेदपूर्ण हैं । यदि भीष्म, द्रोणाचार्य और अर्जुन जैसे कुरुवंश के सदस्य अनुमति न दें, तो इस विश्व में कोई भी किसी वस्तु का उपभोग नहीं कर सकता है । जैसे कि सिंह की उपस्थिति में मेमना जीवन का उपभोग नहीं कर सकता है, उसी भाँति हमारी इच्छा के बिना स्वर्ग के राजा इन्द्र आदि देवताओं के लिए भी जीवन में आनन्द उठाना सम्भव नहीं है, फिर साधारण मानवों का तो कहना ही क्या!" वस्तुतः कुरुवंश के सदस्य अपने ऐश्वर्य, राज्य, कुलीनता, पारिवारिक परम्परा, महान् योद्धाओं, परिवार के सदस्यों तथा विशाल साम्राज्य के कारण अत्यन्त गर्वोन्मत्त हो गए थे । उन्होंने सभ्य समाज की सामान्य औपचारिकता का भी पालन नहीं किया और भगवान् श्रीबलराम की उपस्थिति में यदुवंश के लिए अपमानजनक शब्द कहे । इस प्रकार शिष्टाचार-विहीन रीति से वार्तालाप करते हुए वे अपने नगर हस्तिनापुर लौट गए । यद्यपि भगवान् श्रीबलराम ने उनके अपमानजनक शब्दों को धैर्यपूर्वक सुना तथा उनके असभ्य व्यवहार को चुपचाप देखा, तथापि उनकी आकृति से यह स्पष्ट हो गया कि वे क्रोध से जल रहे हैं तथा अत्यन्त प्रतिहिंसापूर्वक प्रतिशोध लेने का विचार कर रहे हैं । उनके शरीर की आकृति इतनी उद्विग्न हो गई कि किसी के लिए भी उनकी ओर देख सकना कठिन था । वे उच्च स्वर से हँसे और बोले, "यह सत्य है कि यदि कोई व्यक्ति अपने परिवार, ऐश्वर्य, सौन्दर्य और भौतिक प्रगति के कारण अत्यन्त गर्वोन्मत्त हो जाता है, तब उसे शान्तिपूर्ण जीवन की इच्छा नहीं रहती है । वह अन्य सबके प्रति वैर-भाव रखता है । ऐसे व्यक्ति को मृदु व्यवहार तथा शान्तिपूर्ण जीवन के लिए सदुपदेश देना व्यर्थ है । इसके विपरीत उसे दण्ड देने के लिए मार्ग तथा साधनों की खोज करनी चाहिए । सामान्यतया भौतिक ऐश्वर्य के कारण मनुष्य पशु के समान बन जाता है । पशु को शान्तिपूर्ण रहने का उपदेश देना व्यर्थ है । दूसरे शब्दों में, पशुओं को ठीक राह पर चलाने का एकमात्र साधन डंडा है । "देखो तो

कि कुरुवंश के सदस्य कितने धृष्ट हैं । स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सहित यदुवंश के समस्त सदस्यों के अत्यन्त कृद्ध होने पर भी मैं शान्तिपूर्ण समझौता करना चाहता था । वे कुरुवंश के समस्त राज्य पर आक्रमण करने को तत्पर थे, किन्तु मैंने उन्हें शान्त किया और यहाँ आकर बिना युद्ध के मामले का समझौता कराने का कष्ट किया । इस पर भी वे दुष्ट ऐसा व्यवहार करते हैं । यह स्पष्ट है कि वे शान्तिपूर्ण समझौते के इच्छुक नहीं हैं, अपितु तथ्य यह है कि वे युद्ध के इच्छुक हैं । उन्होंने यदुवंश को गाली देते हुए अत्यन्त घमण्ड से मेरा अपमान किया है । "स्वर्ग का राजा इन्द्र भी यदुवंश के आदेश का पालन करता है और तुम भोज, वृष्णि, अन्धक तथा यदुवंश के प्रमुख राजा उग्रसेन को एक छोटी सी टुकड़ी का नायक कहते हो! तुम्हारा निष्कर्ष अद्‌भुत है! तुम्हें राजा उग्रसेन की परवाह नहीं है, जिनके आदेश का पालन राजा इन्द्र भी करता है । यदुवंश के श्रेष्ठ पद पर विचार करो । उन्होंने बलपूर्वक स्वर्गलोक के सभागृह तथा पारिजात वृक्ष दोनों का उपयोग किया है और फिर भी तुम सोचते हो कि वे तुम्हें आदेश नहीं दे सकते हैं । क्या तुम यह भी विचार नहीं करते कि भगवान् श्रीकृष्ण श्रेष्ठ राजसिंहासन पर बैठ सकते हैं और प्रत्येक व्यक्ति को आदेश दे सकते हैं । ठीक है! यदि तुम्हारा ऐसा ही विचार है, तब तुम इसी बात के अधिकारी हो कि तुम्हें एक अच्छा पाठ पढ़ाया जाए । चवर, पंखा, श्वेत छत्र, राज सिंहासन आदि अन्य राजसी सामग्री जैसे राजसी चिहों का उपयोग यदुवंश न करे यह सोचने में तुमने अपनी बुद्धिमानी समझी है । क्या इसका यह अर्थ है कि समस्त सृष्टि के भगवान्, श्रीदेवी लक्ष्मी के पति भगवान् श्रीकृष्ण भी इस राजसी सामग्री का उपयोग नहीं कर सकते हैं? श्रीकृष्ण के चरणकमलों की धूलि की उपासना समस्त महान् देवता भी करते हैं । गंगाजल समस्त जगत को जल प्रदान कर रहा है और यह जल श्रीकृष्ण के चरणकमलों से निकल रहा है । अतएव गंगा के तट महान् तीर्थस्थान बन गए हैं । समस्त ग्रहों के प्रमुख देवता उनकी सेवा में संलग्न हैं और श्रीकृष्ण के कमल-चरणों

की धूलि को अपने सिर पर धारण करने में वे अपना सौभाग्य मानते हैं । ब्रह्माजी, शिवजी जैसे महान् देवता, श्रीदेवी लक्ष्मी तथा मैं भी श्रीकृष्ण के आध्यात्मिक स्वरूप का एक आंशिक अंग हैं । फिर भी क्या तुम सोचते हो कि वे राजसी चिह्नों को धारण करने तथा राजसिंहासन पर बैठने के योग्य नहीं हैं? अरे! यह कितने दुख की बात है कि ये मूर्ख यदुवंश के लोग हम सदस्यों को पादुका के समान समझते हैं और स्वयं को मुकुट के समान । अब यह स्पष्ट हो गया है कि कुरुवंश के ये नेता अपनी लौकिक सम्पति एवं ऐश्वर्य के गर्व में उन्मत्त हो गए हैं । उनका प्रत्येक कथन उन्मत्त प्रस्तावों से पूर्ण था । मैं तत्काल उन्हें प्रताड़ित करूंगा और उनकी बुद्धि ठिकाने लगा दूँगा । यदि मैं उनके विरुद्ध कदम न उठाऊँ, तो यह मेरे लिए अनुचित होगा । अतएव मैं आज ही समस्त जगत से कुरुवंश का चिह्न ही मिटा डालूँगा । मैं तत्काल ही उनका विनाश कर दूँगा ।" इस प्रकार कहते हुए भगवान् श्रीबलराम अत्यन्त कुद्ध थे । उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हुआ कि वे समस्त सृष्टि को जला कर भस्म कर सकते हैं । वे दृढ़तापूर्वक खड़े हो गए और अपना हल अपने हाथ में पकड़ कर उससे भूमि पर प्रहार करने लगे । इस प्रकार हस्तिनापुर का पूर्ण नगर पृथ्वी से विलग हो गया । तत्पश्चात् भगवान् श्रीबलराम इस नगर को गंगा नदी की जलधारा की ओर घसीटने लगे । इस कारण पूरे हस्तिनापुर में ऐसा कम्पन हुआ जैसे कि भूकम्प आ गया हो और ऐसा प्रतीत हुआ कि समस्त नगर छिन्न-भिन्न हो जाएगा । जब कुरुवंश के समस्त सदस्यों ने देखा कि उनका नगर गंगा के जल में गिरने को हर ले जाने का प्रयास किया था । वे साम्ब को आगे करके उसके पीछे लक्ष्मण को रख कर साम्ब को भी ले आए । श्रीभगवान् से क्षमा माँगने के लिए कुरुवंश के समस्त सदस्य भगवान् श्रीबलराम के समक्ष हाथ जोड़ कर उपस्थित हुए । अब सदुद्धि का उपयोग करते हुए उन्होंने कहा, "हे भगवान् श्रीबलराम! आप समस्त सुखों के सागर हैं । आप समस्त सृष्टि के पालक व अवलम्ब हैं । दुर्भाग्यवश हमें आपकी अचिन्त्य शक्तियों का ज्ञान नहीं था । प्रिय भगवन्!

कृपया हमें महामूढ़ समझ कर क्षमा कर दीजिए । हमारी बुद्धि भ्रमित व भ्रष्ट हो गई थी । अतएव हम अब आपके सम्मुख आपसे क्षमा माँगने के लिए आए हैं । कृपया हमें क्षमा कीजिए । आप समस्त सृष्टि के आदि स्रष्टा, पालक तथा संहारकर्ता हैं, तत्पश्चात् भी आपकी स्थिति सदैव ही दिव्य है । हे सर्व-शक्तिमान भगवान्! महान् सन्त आपके विषय में चर्चा करते हैं । आप आदि हैं और जगत की प्रत्येक वस्तु आपके खिलौने जैसी है । हे अनन्त! प्रत्येक वस्तु पर आपका अधिकार है और बाल-क्रीड़ा की भाँति आपने समस्त लोकों को अपने सिर पर धारण कर रखा है । प्रलय के समय आप समस्त सृष्टि को अपने में बन्द कर लेते हैं । उस समय कारण-समुद्र में महाविष्णु के रूप में शयन करते हुए आपके अतिरिक्त और कुछ भी शेष नहीं रहता है । प्रिय भगवन्! आप अपने अप्राकृत शरीर में, इस पृथ्वी पर केवल सृष्टि को बनाए रखने के लिए ही प्रकट हुए हैं । आप समस्त क्रोध, द्वेष तथा वैर से ऊपर हैं । दण्ड के रूप में भी आप जो कुछ भी करते हैं वह समस्त भौतिक जगत के लिए मांगलिक है । आप अविनाशी श्रीभगवान् हैं, अतएव हम आपको सादर प्रणाम करते हैं । आप समस्त ऐश्वर्यों तथा शक्तियों के सागर हैं । हे असंख्य ब्रह्माण्डों के रचयिता! हम बारम्बार आपके चरणों में गिर कर आपको प्रणाम करते हैं । हम अब पूर्णरूपेण आपके शरणागत हैं । अतएव कृपया आप हम पर दयालु होकर हमें अभयदान दीजिए ।" जब पितामह भीष्मदेव से लेकर अर्जुन तथा दुर्योधन तक कुरुवंश के समस्त प्रमुख सदस्यों ने इस प्रकार आदरपूर्वक स्तुति कर ली, तब भगवान् श्रीबलराम मृदुल हो गए और उन्होंने उन सबको विश्वास दिलाया कि भय का कोई कारण नहीं है तथा उन्हें चिन्ता करने की कोई आवश्यकता नहीं रही । क्षत्रिय राजाओं में अधिकतर यह परम्परा थी कि विवाह के पूर्व वर तथा वधू प्रक्ष के लोगों के मध्य किसी प्रकार का युद्ध हो जाए । जब साम्ब ने बलात् लक्ष्मण का हरण किया था, तब कुरुवंश के सदस्य यह देख कर प्रसन्न हुए थे कि वह वास्तव में उसके लिए एक योग्य वर था । फिर भी उसकी व्यक्तिगत

शक्ति को परखने के लिए उन्होंने उससे युद्ध किया और युद्ध के नियमों का आदर न करते हुए उन्होंने उसे बन्दी बनाया था । जब यदुवंश ने साम्ब को कौरवों के बन्धन से मुत करने का निश्चय किया, तब भगवान् श्रीबलराम स्वयं ही समझौता करने के लिए आए । वे एक बलशाली क्षत्रिय थे, अतएव उन्होंने कौरवों को तत्काल ही साम्ब को मुक्त करने का आदेश दिया । इस आदेश से कौरव अपनी अल्पज्ञता के कारण स्वयं को अपमानित समझने लगे, अतएव उन्होंने भगवान् श्रीबलराम की शक्ति को चुनौती दी । वे केवल यह चाहते थे कि श्रीबलराम अपनी अचिन्त्य शक्ति का प्रदर्शन करें । इस प्रकार अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक उन्होंने अपनी कन्या साम्ब को दी तथा सारा मामला सुलझ गया । दुर्योधन को अपनी पुत्री लक्ष्मणा से अत्यधिक स्नेह था । अतएव उसने साम्ब से उसका विवाह अत्यन्त धूमधाम से किया । उसके दहेज में उसने सर्वप्रथम एक हजार दो सौ हाथी दिए जिनमें से प्रत्येक कम से कम साठ वर्ष का था । इसके अतिरिक्त उसने दस हजार उत्तम घोड़े, सूर्यरश्मियों के समान जगमगाते हुए छ: हजार रथ तथा स्वर्णाभूषणों से अलंकृत एक हजार दासियाँ भी दीं । यदुवंश के सर्वाधिक महत्वपूर्ण सदस्य भगवान् श्रीबलराम ने वर साम्ब के अभिभावक के रूप में कार्य किया तथा अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक इस दहेज को स्वीकार किया । कौरव पक्ष की ओर से अपने भव्य स्वागत के उपरान्त बलराम जी अत्यन्त सन्तुष्ट हो गए और नवविवाहित दम्पति के साथ उन्होंने अपनी राजधानी द्वारका की ओर प्रस्थान किया । विजयी भाव से भगवान् श्रीबलराम द्वारका पहुँचे जहाँ उन्होंने अनेक नागरिकों से, जो कि सभी उनके भक्त व मित्र थे, भेंट की । जब वे सब एकत्र हो गए तब भगवान् श्रीबलराम जी ने विवाह की समस्त कथा सुनाई । बलराम जी ने जिस प्रकार हस्तिनापुर नगर को कैंपा दिया था, उसे सुनकर वे चकित हो गए । श्रीशुकदेव गोस्वामी ने इस तथ्य की पुष्टि की है कि हस्तिनापुर का स्थान अब नई दिल्ली के नाम से प्रसिद्ध है और नगर में से प्रवाहित होने वाली नदी अब यमुना कहलाती है, यद्यपि उस समय इसे

गंगा कहते थे । जीव गोस्वामी के समान महाजनों ने इस तथ्य की भी पुष्टि की है कि विभिन्न धाराओं में प्रवाहित होने वाली गंगा तथा यमुना वस्तुत: एक ही नदी है । गंगा के इस भाग को जो हस्तिनापुर से वृन्दावन *के* क्षेत्र तक लीलाओं के द्वारा पवित्रीकृत है । हस्तिनापुर का वह भाग जिसका ढाल यमुना की ओर है, वर्षा ऋतु में जलप्लावित हो जाता है और वह सबको भगवान् श्रीबलराम द्वारा नगर को गंगा में फेंक दिए जाने की धमकी का स्मरण कराता है

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "साम्ब का विवाह" नामक अड़सठवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 69
महर्षि नारद का भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न गृहों पर भेंट करने जाना

महर्षि नारद ने सुना कि भगवान् श्रीकृष्ण ने नरकासुर को, जिसे कभी-कभी भौमासुर भी कहा जाता है, मारने के पश्चात् सोलह हजार पत्नियों से विवाह किया है । यह सुन कर कि सोलह हजार रूपों में विस्तार करके भगवान् श्रीकृष्ण ने विभिन्न महलों में एकसाथ इन रानियों के साथ विवाह किया है, नारद मुनि चकित थे । इतनी सारी पत्नियों के साथ श्रीकृष्ण अपनी गृहस्थी किस प्रकार चला रहे हैं, इस विषय में जिज्ञासु होने के कारण नारद जी को इन लीलाओं का दर्शन करने की इच्छा थी; अतएव उन्होंने श्रीकृष्ण के विभिन्न गृहों पर उनसे भेंट करने के लिए प्रस्थान किया । जब नारद जी द्वारका पहुँचे, तो उन्होंने देखा कि वाटिकाएँ तथा उद्यान भिन्न-भिन्न रंगों के विभिन्न पुष्पों से पूर्ण हैं तथा फलों की वाटिकाएँ अनेक प्रकार के फलों से लदी हुई हैं । सुन्दर पक्षी चहचहा रहे थे तथा मयूर

आनन्दपूर्वक शब्द कर रहे थे । ताल तथा जलाशय रक्तकमलों तथा नीलकमलों से परिपूर्ण थे तथा किसी-किसी जलाशय में विभिन्न प्रकार के कुमुदिनी-पुष्प खिल रहे थे । जलाशयों में श्रेष्ठ हंस तथा बगुले विहार कर रहे थे और उनकी ध्वनि चारों ओर गूँज रही थी । नगर में चाँदी से निर्मित द्वारों वाले उच्चकोटि के संगमरमर से बने हुए नौ लाख विशाल मुहल थे । गृहों तथा महलों के स्तम्भ पारस, नीलम तथा पत्रा जैसे रत्नों से सजित थे और फर्श से सुन्दर प्रभा निकलती थी । मुख्य पथ गलियाँ मार्ग, चौराहे तथा बाजार सभी सुन्दरता से सजाये हुए थे । सम्पूर्ण को विभिन्न प्रकार के शिल्प-सौन्दर्य वाले गृहों, सभागृहों तथा देवालयों से परिपूर्ण था । ये सब मिलकर द्वारका को एक देदीप्यमान् नगर बना रहे थे । प्रशस्त पथ, चौराहे गलियों व मार्ग तथा प्रत्येक गृह के चौखट अत्यन्त स्वच्छ थे । प्रत्येक मार्ग के दोनों ओर झाड़ियाँ तथा समान अन्तर पर बड़े-बड़े वृक्ष थे, जो कि पथिकों की धूप से रक्षा करते थे । इस अत्यन्त सुन्दर द्वारका नगर में भगवान् श्रीकृष्ण के अनेक गृह ठी । अन्यान ऍ महान् राजा तथा राजकुमार उनकी उपासना के निमित इन महलों में आया करते थे । इन महलों के शिल्प की योजना देवताओं के अभियंता स्वयं विश्वकर्मा ने बनाई थी तथा इनके निर्माण में उसने अपने सम्पूर्ण कौशल तथा प्रतिभा का प्रदर्शन किया था । इन निवासस्थानों की संख्या सोलह हजार से भी अधिक थी और उनमें से प्रत्येक में भगवान् श्रीकृष्ण की भिन्न-भिन्न रानियाँ निवास करती थीं । महर्षि नारद ने इन गृहों में से एक में प्रवेश किया और देखा कि घर के स्तम्भ मूंगों के बने थे तथा छतों पर रत्नों से सजा की गई थी । दीवारों तथा स्तम्भों के मध्य के वृत्तखण्ड (मेहराब) विभिन्न प्रकार के नीलमों के अलंकरण से जगमगा रहे थे । समस्त महल में विश्वकर्मा द्वारा निर्मित अनेक चैंदोवे थे, जिन्हें मोतियों की लड़ियों से सजाया गया था । आसन तथा अन्य साज-सजा हाथी-दाँत से बनी थी, जिस पर सोने से अलंकरण किया गया था । महल के अन्दर रत्नदीप अंधकार को दूर कर रहे थे । इतना अधिक धूपदीप जलाया जा रहा था कि सुगंधित धुआँ

खिड़कियों से बाहर आ रहा था । सीढ़ियों पर बैठे मयूरों को उस धुएँ से भ्रम हो गया और उन्हें मेघ समझ कर वे हर्ष से नृत्य करने लगे । अनेक दास भी थे जिन्होंने उत्तम कुत्तें, पगड़ियाँ तथा रत्नजटित कुण्डल धारण किए हुए थे । वे समस्त दास अत्यन्त सुन्दर थे तथा वे सब गृह के भिन्न-भिन्न कार्यों में संलग्न थे । नारद जी ने देखा कि भगवान् श्रीकृष्ण उस विशिष्ट महल की स्वामिनी रुक्मिणी जी के साथ बैठे हुए हैं और रुक्मिणी जी के हाथ में चामर की मूंठ थी । यद्यपि उनके समान ही आयु वाली, सुन्दर तथा गुणसम्पन्न हजारों दासियाँ वहाँ थीं, तथापि रुक्मिणी देवी स्वयं ही भगवान् श्रीकृष्ण को पंखा झलने में संलग्न थीं । भगवान् की उपासना नारद मुनि भी करते हैं, किन्तु तो भी जब उन्होंने नारद जी को महल में प्रवेश करते हुए देखा, तो श्रीकृष्ण रुक्मिणी जी के पलंग से उतर गए और इनका सम्मान करने के लिए खड़े हो गए । भगवान् श्रीकृष्ण समस्त जगत के गुरु हैं और सबको यह उपदेश देने के लिए कि नारद मुनि के समान सन्त-जनों का आदर किस प्रकार करना चाहिए, श्रीकृष्ण ने अपने मुकुट से धरती का स्पर्श करके उन्हें प्रणाम किया । न केवल श्रीकृष्ण ने नमन किया, अपितु उन्होंने नारद जी का वरणस्पर्श भी किया तथा हाथ जोड़ कर उनसे आसन ग्रहण करने की प्रार्थना की । भगवान् श्रीकृष्ण सर्वश्रेष्ठ हैं तथा सभी भक्त उनकी उपासना करते हैं । वे प्रत्येक प्राणी के सर्वाधिक उपास्य गुरुदेव हैं । उनके चरणों से निकलने वाला गंगाजल तीनों लोकों को पावन करता है । समस्त योग्य ब्राह्मण उनकी उपासना करते हैं, अतएव उन्हें ब्रह्मण्य-देव कहा जाता है । ब्रह्मण्य का अर्थ वह व्यक्ति है, जिसमें समस्त ब्राह्मणोचित गुण होते हैं । ये गुण निम्नांकित हैं-सत्यवादिता, आत्मसंयम, शुचिता, इन्द्रियों पर प्रभुत्व, सरलता, व्यावहारिक उपभोग के द्वारा पूर्ण ज्ञान तथा भक्ति-सेवा में संलग्न होना । भगवान् श्रीकृष्ण में स्वयं ये समस्त गुण हैं तथा जिन लोगों में ये गुण होते हैं, वे उनकी उपासना करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के लाखों करोड़ों नाम हैं-विष्णु-सहस्त्र-नाम और ये सभी नाम उन्हें दिव्य गुणों के कारण दिए गए हैं । द्वारका में

भगवान् श्रीकृष्ण एक आदर्श मानव की लीलाओं का आनन्दोपभोग कर रहे थे । अतएव जब श्रीकृष्ण ने नारद जी के चरण पखारे और उस जल को माथे पर चढ़ाया तब नारद मुनि ने कोई आपत्ति नहीं की, क्योंकि उन्हें भलीभाँति ज्ञात था कि भगवान् सबको सन्तजनों का आदर करने की विधिवत् शिक्षा दे रहे थे । आदि नारायण तथा प्राणिमात्र के शाश्वत सखा भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार वैदिक विधिविधानों के अनुसार नारद मुनि की पूजा की । मधुर शब्दों में उनका स्वागत करते हुए श्रीकृष्ण ने नारद जी को भगवान् कह कर सम्बोधित किया । भगवान् का अर्थ है, वह व्यक्ति जो स्वयंपूर्ण है, सर्वज्ञान, तप, बल, यश, सौन्दर्य और ऐसे ही अन्य ऐधयों से युक्त है । श्रीकृष्ण ने नारदमुनि से विशेष रूप से प्रश्न किया, "मैं आपकी किस प्रकार सेवा कर सकता हूँ?" | नारद जी ने उत्तर दिया, "प्रिय भगवन्! आपका ऐसा व्यवहार तनिक भी चकित करने वाला नहीं है, क्योंकि आप श्रीभगवान् हैं तथा समस्त जीव-योनियों के स्वामी हैं । आप समस्त प्राणियों के परम मित्र हैं, किन्तु उसके साथ ही आप दुष्कर्मियों तथा विद्वेषी व्यक्तियों के परम दण्ड-दाता भी हैं । मुझे ज्ञात है कि आप समस्त ब्रह्माण्ड के उचित पोषण के लिए इस पृथ्वी पर अवतीर्ण हुए हैं । आप किसी अन्य सत्ता द्वारा प्रकट होने के लिए बाध्य नहीं किए गए हैं । अपनी इच्छा से ही आप प्रकट अथवा तिरोहित होते हैं । यह मेरा महान् सौभाग्य है कि आज मैं आपके पदारविन्दों के दर्शन करने में समर्थ हुआ । आपके चरणकमलों से जिसका प्रेम हो जाता है, उसकी उन्नति तटस्थता की श्रेष्ठ स्थिति तक हो जाती है और वह प्रकृति के त्रिगुणों से दूषित नहीं होता है । प्रिय भगवन्! आप असीम हैं; आपके ऐश्वर्यों की कोई सीमा नहीं है । ब्रह्मा तथा शिवादि महान् देवता सदैव आपको अपने हृदय में स्थापित करने तथा आपका ध्यान करने में व्यस्त रहते हैं । भौतिक जगत के इस अन्धकूप में पड़ी हुई बद्धात्माएँ इस शाश्वत कारावास से केवल आपके चरणकमलों को स्वीकार करके ही मुक्ति प्राप्त कर सकती हैं । इस प्रकार आप बद्धात्माओं के एकमात्र आश्रय हैं । प्रिय भगवन्!

आपने अत्यन्त कृपापूर्वक मुझसे प्रश्न किया है कि आप मेरे लिए क्या कर सकते हैं । इसके उत्तर में मेरी आपसे केवल यही प्रार्थना है कि मैं आपके चरणकमलों को कभी-भी विस्मृत न करूं । किसी भी स्थान पर रहने से मुझे कोई अन्तर नहीं पड़ता है, किन्तु मेरी मात्र यही विनती है कि मैं सदैव आपके चरणकमलों का स्मरण कर सकूं ।" नारद मुनि ने भगवान् से जो वरदान माँगा, वही समस्त शुद्ध भक्तों की आदर्श प्रार्थना है । एक शुद्ध भक्त कभी भी भगवान् से किसी भी प्रकार का भौतिक अथवा आध्यात्मिक वरदान नहीं माँगता है, अपितु उसकी एकमात्र प्रार्थना यही होती है कि जीवन की किसी-भी स्थिति में वह भगवान् के पाद-पद्मों को विस्मृत न कर पावे । शुद्ध भक्त को चाहे नरक में स्थान मिले अथवा स्वर्ग में, उसे इसकी चिन्ता नहीं रहती । यदि वह सतत रूप से भगवान् के चरणकमलों का स्मरण कर सकता है, तो वह कहीं भी सन्तुष्ट रहता है । भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने भी अपने शिक्षाठक में स्तुति की इसी विधि की शिक्षा दी है । इसमें उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा है कि वे जन्म-जन्मांतर तक केवल भक्ति की ही कामना करते हैं । एक शुद्ध भक्त जन्म-मरण के चक्र को भी रोकना नहीं चाहता है । यदि उसे पुन: विभिन्न योनियों में जन्म लेना पड़े तो भी शुद्ध भक्त को कोई अन्तर नहीं पड़ता है । उसकी एकमात्र आकांक्षा यही होती है कि जीवन की किसी भी दशा में वह भगवान् के चरणकमलों का विस्मरण न करे । रुक्मिणी जी के महल से प्रस्थान करने के पश्चात् नारद जी भगवान् श्रीकृष्ण की अन्तरंगा शक्ति, योगमाया, की गतिविधि देखना चाहते थे; अतएव उन्होंने एक अन्य रानी के महल में प्रवेश किया । वहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को अपनी प्रिय पत्नी तथा उद्धव जी सहित चौपड़ खेलते हुए देखा । भगवान् तत्काल अपने आसन से उठ खड़े हुए और उन्होंने नारद मुनि को अपने व्यक्तिगत आसन पर बैठने का निमंत्रण दिया । भगवान् ने पुन: सत्कार की उतनी ही सामग्री से उनकी पूजा की, जितनी से उन्होंने रुक्मिणी जी के महल में पूजा की थी । उनकी उचित पूजा के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण

ने ऐसा अभिनय किया मानो उन्हें ज्ञात ही नहीं कि रुक्मिणी के महल में क्या हुआ था । अतएव उन्होंने नारद जी से कहा, "प्रिय मुनिवर! जब आप यहाँ आते हैं, आप स्वयं में पूर्ण होते हैं । यद्यपि हम गृहस्थ हैं और सदैव ही हमें किसी-न- किसी वस्तु की आवश्यकता रहती है, किन्तु आपको किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि आप आत्म-सन्तुष्ट हैं । इस दशा में हम आपका क्या स्वागत कर सकते हैं तथा हम आपको क्या दे सकते हैं? किन्तु फिर भी आप एक ब्राह्मण हैं, अतएव यह हमारा कर्तव्य है कि जहाँ तक हो सके हम आपको कुछ दें । अतएव मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप हमें आज्ञा दें कि मैं आपके लिए क्या कर सकता हूँ?" भगवान् की लीलाओं के विषय में नारद जी को सभी कुछ ज्ञात था, अतएव भगवान् के कार्यों से अत्यन्त चकित होते हुए, बिना किसी विचार-विमर्श के उन्होंने चुपचाप महल से प्रस्थान कर दिया । तत्पश्चात् उन्होंने एक अन्य महल में प्रवेश किया । इस बार नारद जी ने भगवान् श्रीकृष्ण को एक स्नेहमय पिता की भाँति अपने अल्पायु बालकों को प्यार करते हुए देखा । वहाँ से उन्होंने एक अन्य महल में प्रवेश किया, जहाँ उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण को स्नान करने की तैयारी करते हुए देखा । इस प्रकार नारद मुनि ने भगवान् श्रीकृष्ण की रानियों के सोलह हजार महलों में से प्रत्येक में प्रवेश किया और प्रत्येक में उन्होंने श्रीकृष्ण को विभिन्न प्रकार से व्यस्त पाया । एक स्थान पर, उन्होंने श्रीकृष्ण को यज्ञ की अग्नि में आहुति देते हुए पाया । श्रीकृष्ण वहाँ गृहस्थों के लिए निश्चित किए गए शास्त्रोत वैदिक संस्कारों को सम्पादित कर रहे थे । अन्य महल में श्रीकृष्ण गृहस्थों के लिए आवश्यक पंच-यज्ञ नामक यज्ञ को करते हुए पाए गए । इस यज्ञ को पंचशून के नाम से जाना जाता है । ज्ञात अथवा अज्ञात रूप से प्रत्येक व्यक्ति, विशेषरूप से गृहस्थ पाँच प्रकार के पाप कर रहा है । जब हम घड़े से जल लेते हैं, तब हम उसमें रहने वाले अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं । झाड़ू लगाते समय अथवा आग जलाते समय भी हम अनेक कीटाणुओं का वध करते हैं । जब हम पथ पर चलते हैं

तब हम अनेक चींटियों तथा अन्य कीड़े-मकोड़ों का वध करते हैं । चेतन अथवा अचेतन रूप से अपनी समस्त गतिविधियों में हम हत्या करते हैं । अतएव इन पापकर्मों के फल से मुक्ति पाने के लिए पंचशून यज्ञ करना प्रत्येक गृहस्थ के लिए आवश्यक है । एक महल में भगवान् श्रीकृष्ण शास्त्रोत यज्ञों को करने के उपरान्त ब्राह्मणों को भोजन कराने में संलग्न पाए गए । एक अन्य महल में नारद मुनि ने श्रीकृष्ण को मौन गायत्री मंत्र का जप करते हुए पाया और तीसरे महल में उन्होंने देखा कि श्रीकृष्ण घोड़ों, हाथियों अथवा रथों पर सवारी कर रहे थे और इधर-उधर विचरण कर रहे थे । दूसरे स्थान पर उन्हें अपने पलंग पर विश्राम करते हुए पाया गया और अन्य स्थान पर उन्हें अपने आसन पर आसीन पाया गया जहाँ उनके विभिन्न भक्त उनकी प्रार्थना एवं स्तुति कर रहे थे । कुछ महलों में देखा गया कि वे व्यापार के महत्वपूर्ण मामलों पर उद्धव जी जैसे मंत्रियों तथा अन्य व्यक्तियों से परामर्श ले रहे थे । एक महल में वे किशोरी गणिकाओं से घिरे हुए एक जलाशय में विहार करते हुए पाए गए । एक अन्य महल में नारद जी ने उन्हें ब्राह्मणों को सुसजित गाएँ दान में देते हुए देखा । एक अन्य महल में वे पुराण अथवा मह7भारत जैसे इतिहासों की कथाओं का श्रवण करते हुए पाए गए । पुराण तथा महाभारत ब्रह्माण्ड के इतिहास के महत्वपूर्ण दृष्टान्तों के कथन के द्वारा सामान्य मानवों में वैदिक ज्ञान का प्रसार करने वाले सहायक ग्रन्थ हैं । कहीं पर पाया गया कि भगवान् श्रीकृष्ण विनोदपूर्ण वचनों के आदान-प्रदान के द्वारा किसी विशेष पत्नी के सान्निध्य का आनन्द उठा रहे थे । किसी अन्य स्थान पर वे अपनी पत्नी सहित शास्त्रोत धार्मिक उत्सव में संलग्न दिखाई दिए । विभिन्न प्रकार के खर्चों के लिए गृहस्थ व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है कि वह अपनी आर्थिक सम्पत्ति में वृद्धि करे, अतएव कहीं पर श्रीकृष्ण को आर्थिक विकास के मामलों में संलग्न पाया गया । किसी अन्य स्थान पर उन्हें शास्त्रों के विधि-विधानों के अनुरूप पारिवारिक जीवन का आनन्द उपभोग करते हुए पाया गया । एक महल में उन्हें ध्यानावस्थित पाया

गया; मानों वे अपना मन इन भौतिक ब्रह्माण्डों से परे श्रीभगवान् पर एकाग्र कर रहे हों । जैसे प्रामाणिक ग्रन्थों में कहा गया है, भगवान् श्रीविष्णु पर चित्त एकाग्र करने के लिए ही ध्यान है । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं ही आदि विष्णु हैं, किन्तु वे एक मानव का अभिनय कर रहे थे, अतएव उन्होंने अपने व्यक्तिगत व्यवहार द्वारा हमें निश्चित रूप से यह शिक्षा दी कि ध्यान का अर्थ क्या है । कहीं पर भगवान् श्रीकृष्ण वयोवृद्ध व्यक्तियों को उनकी आवश्यकता की वस्तुएँ दे कर सन्तुष्ट कर रहे थे, कहीं पर नारद जी ने उन्हें युद्ध के विषयों पर वार्तालाप करते देखा, तो कहीं और श्रीकृष्ण दो विरोधियों में समझौता करा रहे थे । कहीं पर नारद जी को श्रीकृष्ण ज्येष्ठ भ्राता श्रीबलराम के साथ सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए परम मांगलिक कार्य पर विचार-विनिमय करते हुए उनके दर्शन हुए । नारद जी ने श्रीकृष्ण को उचित समय पर अपने पुत्रों व पुत्रियों का योग्य वधुओं व वरों के साथ विवाह कराने में संलग्न देखा । विवाह संस्कार अत्यन्त धूम-धाम से सम्पादित किए जा रहे थे । एक महल में वे अपनी पुत्रियों को विदा कर रहे थे, तो दूसरे में वे अपनी पुत्रवधू का स्वागत कर रहे थे । समस्त नगर में लोग इतनी धूमधाम और उत्सव देख कर चकित थे । यद्यपि देवता उनके गुणात्मक विस्तार मात्र हैं, तथापि कहीं पर भगवान् देवताओं को सन्तुष्ट करने के लिए विभिन्न प्रकार के यज्ञ करने में संलग्न दृष्टिगोचर हुए । कहीं पर वे जलपूर्ति के लिए कुएँ बनवाने, अज्ञात अतिथियों के लिए विश्रामालय तथा उद्यान बनवाने तथा सन्त-जनों के लिए विशाल आश्रम तथा मन्दिर बनवाने जैसे जनकल्याण कार्यों में संलग्न थे । उनकी भौतिक इच्छाओं की पूर्ति के हेतु वेदों ने जिन कर्तव्यों का गृहस्थों को आदेश दिया है, उनमें से कुछ कर्तव्य ये हैं । कहीं पर श्रीकृष्ण क्षत्रिय राजा के रूप में वन में पशुओं का आखेट करते तथा अति सुन्दर सिन्धी घोड़ों पर सवारी करते हुए पाए गए । वैदिक नियम के अनुसार क्षत्रियों को वन में शान्ति बनाए रखने के लिए अथवा यज्ञ में भेंट देने के लिए निश्चित अवसरों पर निश्चित पशुओं का शिकार करने की अनुमति है

। क्षत्रियों को वध करने की इस कला का अभ्यास करने की अनुमति है, क्योंकि उन्हें समाज में शान्ति बनाए रखने के लिए अपने पशुओं का निर्दयता से वध करना होता है । एक स्थिति में महर्षि नारद ने समस्त सिद्धियों के स्वामी भगवान् श्रीकृष्ण को नगर तथा महलों में विभिन्न नागरिकों के मन्तव्य को समझने के लिए अपनी नित्य वेषभूषा को परिवर्तित करके एक गुप्तचर की भाँति कार्य करते हुए देखा । नारदमुनि ने जीवों के परमात्मा भगवान् श्रीकृष्ण के इन सारे कार्यकलापों को देखा । अपनी अन्तरंगा शक्ति के कार्यों को प्रकट करने के लिए उन्होंने एक साधारण मानव का अभिनय किया था । नारद जी मन ही मन मुस्करा रहे थे और उन्होंने भगवान् को इस प्रकार सम्बोधित किया, "समस्त सिद्धियों के स्वामी, हे महान् योगियों के ध्यान के केन्द्र! ब्रह्मा, शिवादि योगियों के लिए भी आपकी सिद्धियों कीसीमा अचिन्त्य है । किन्तु अपनी दया से, अपने चरणकमलों की दिव्य प्रेमा-सेवा में सदैव संलग्न रहने वाले मुझको आपने कृपा करके अपनी अन्तरंगा शक्ति के कार्यों के दर्शन कराए हैं । प्रिय भगवन्! आप सबके आराध्य हैं तथा चौदहों लोकों के देवताओं तथा प्रमुख देवों को आपके दिव्य यश का पूर्ण रूप से ज्ञान है । कृपया अब आप मुझे अपना आशीर्वाद दीजिए जिससे कि मैं समस्त ब्रह्माण्ड में आपके दिव्य कार्यकलापों का यशगान करते हुए यात्रा करने में समर्थ होऊँ ।" भगवान् श्रीकृष्ण ने नारदमुनि को इस प्रकार उत्तर दिया, "प्रिय नारद, हे देवर्षि! तुमको ज्ञात है कि मैं समस्त धार्मिक सिद्धान्तों का परम शिक्षक, उनका आदर्श पालन करने वाला तथा साथ ही ऐसे सिद्धान्तों का परम कार्यान्वयन-कर्ता हूँ । अतएव मैं स्वयं इन धार्मिक सिद्धान्तों का सम्पादन कर रहा हूँ जिससे कि समस्त जगत को यह शिक्षा मिल सके कि किस प्रकार कार्य करना चाहिए । प्रिय पुत्र! मेरी इच्छा है कि तुम अन्तरंगा शक्ति के ऐसे प्रदर्शनों से भ्रमित न हो ।" लोगों को यह शिक्षा देने के लिए किस प्रकार भौतिक जगत के बन्धनों में बद्ध हो कर भी मानव अपने गृहस्थ जीवन को पावन कर सकता है, श्रीभगवान्

तथाकथित गृहस्थी के मामलों में संलग्न थे । वास्तव में गृहस्थ जीवन के कारण मानव भौतिक जीवन की कालावधि को चलाते रहने को बाध्य होता है । किन्तु गृहस्थो पर अत्यन्त कृपालु होने के कारण भगवान् ने साधारण गृहस्थ जीवन को पावन करने का मार्ग दिखाया । श्रीकृष्ण समस्त गतिविधियों के केन्द्र हैं, अतएव एक कृष्णभावनाभावित गृहस्थ का जीवन वैदिक आदेशों से ऊपर होता है और वह स्वयमेव पावन हो जाता है । इस प्रकार स्वांशों के द्वारा एक श्रीकृष्ण को नारद जी ने सोलह हजार महलों में निवास करते हुए देखा । अपनी अचिन्त्य शक्ति के कारण वे प्रत्येक रानी के महल में दिखाई पड़े । भगवान् श्रीकृष्ण की शक्ति असीम है और भगवान् श्रीकृष्ण की अन्तरंगा शक्ति के प्रदर्शन का बारम्बार दर्शन करके नारद मुनि के आश्चर्य की सीमा न रही । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने व्यक्तिगत उदाहरण के द्वारा ऐसा व्यवहार किया मानो उन्हें सभ्य जीवन के चारों सिद्धान्तों से अत्यधिक लगाव हो । वे सिद्धान्त हैं धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष । मानव-समाज की आध्यात्मिक प्रगति के लिए भौतिक जीवन के ये चारों सिद्धान्त आवश्यक हैं । यद्यपि भगवान् श्रीकृष्ण को ऐसा करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, तथापि उन्होंने अपने गृहस्थ कार्यों का प्रदर्शन किया जिससे कि लोग अपने हित के लिए उनके चरणचिह्नों का अनुसरण कर सकें । भगवान् श्रीकृष्ण ने नारद मुनि को हर प्रकार से सन्तुष्ट कर दिया । द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण की गतिविधियों का दर्शन करके नारद जी अत्यन्त प्रसन्न हुए और इस प्रकार उन्होंने वहाँ से प्रस्थान किया । द्वारका में भगवान् श्रीकृष्ण के कार्यकलापों का वर्णन करके श्रीशुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित के समक्ष यह स्पष्ट किया कि किस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अन्तरंगा शक्ति के माध्यम से इस भौतिक ब्रह्माण्ड में अवतीर्ण होते हैं । उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार वे स्वयं उन सिद्धान्तों का प्रदर्शन करते हैं, जिनका पालन करने से व्यक्ति जीवन का चरम लक्ष्य प्राप्त कर सकता है । द्वारका में सोलह हजार से भी अधिक रानियाँ मुस्कान तथा सेवा द्वारा अपने

आकर्षक स्त्रियोचित लक्षणों का उपयोग भगवान् की दिव्य सेवा करने के लिए करती थीं । भगवान् भी प्रसन्न होकर उनके साथ गृहस्थ जीवन का आनन्द उठाने वाले एक आदर्श पति की भाँति व्यवहार करते थे । सबको यह निश्चित रूप से ज्ञात होना चाहिए कि ऐसी लीलाएँ भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त और कोई नहीं कर सकता है । भगवान् श्रीकृष्ण समस्त सृष्टि की रचना, पालन तथा प्रलय के आदि कारण हैं । जो कोई द्वारका में भगवान् की लीलाओं की कथा का श्रवण करता है अथवा कृष्णभावनामृत आन्दोलन के किसी उपदेशक का अनुसरण करता है, उसके लिए मुक्ति के मार्ग पर चलना तथा श्रीकृष्ण के चरणकमलों के अमृत का रसास्वादन करना निश्चय ही अत्यन्त सरल होगा । इस प्रकार वह उनकी भक्ति में संलग्न होगा ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "महर्षि नारद का भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न गृहों पर भेंट करने जाना" नामक उनहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 70

भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या

मंत्रों से ज्ञात होता है कि श्रीभगवान् के पास करने के लिए कुछ भी नहीं है : न तस्य काय करण च विद्यते/यदि भगवान् के पास करने के लिए कुछ भी नहीं है, तब हम उनके कार्यकलापों के विषय में चर्चा ही कैसे कर सकते हैं? पूर्व अध्याय से स्पष्ट होता है कि श्रीकृष्ण के सदृश कोई व्यक्ति कार्य नहीं कर सकता । हमें इस तथ्य को स्पष्टतया समझना चाहिए-भगवान् के कार्यकलापों का अनुसरण करना आवश्यक है, किन्तु

उनका अनुकरण नहीं किया जा सकता । उदाहरणार्थ, गृहस्थ के रूप में श्रीकृष्ण के आदर्श जीवन का अनुकरण किया जा सकता है, किन्तु कोई यदि अनेक रूपों में विस्तारित होकर उनका अनुकरण करना चाहे, तो यह सम्भव नहीं है । अतएव हमें यह सदैव स्मरण रहे कि यद्यपि श्रीकृष्ण मनुष्य का अभिनय अर्थात् नरवत् लीलाएँ करते हैं, तथापि अपनी श्रीभगवान् की स्थिति बनाये रखते हैं । एक साधारण मनुष्य के समान श्रीकृष्ण के उनकी पत्नियों के साथ व्यवहार का हम अनुसरण कर सकते हैं, किन्तु एक समय में सोलह हजार से भी अधिक पत्नियों के साथ उनके व्यवहार का हम अनुकरण नहीं कर सकते । निष्कर्षत: जिस प्रकार उन्होंने अपनी दिनचर्या का प्रदर्शन किया, आदर्श गृहस्थ बनने के हेतु हमें भगवान् श्रीकृष्ण के पद-चिहों का अनुसरण करना चाहिए, परन्तु जीवन की किसी भी अवस्था में हम उनका अनुकरण नहीं कर सकते । भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार पत्नियों के साथ विश्राम करते थे, किन्तु प्रात:काल सूर्योदय से तीन घण्टे पूर्व वे उठ जाते थे । प्रकृति की व्यवस्था के अनुसार मुरगे का बोलना ब्राह्म-मुहूर्त के समय की सूचना देता है । घड़ियों की कोई आवश्यकता नहीं है । जैसे ही मुरगा प्रात:काल बोलता है, हमें समझ लेना चाहिए कि अब उठने का समय हो चुका है । उस ध्वनि को सुनकर श्रीकृष्ण शैया से उठ जाते थे, परन्तु उनका प्रात: उठना उनकी पत्नियों को रुचिकर नहीं था । श्रीकृष्ण की पत्नियाँ उनमें इतनी आसक्त थीं कि शैया में वे श्रीकृष्ण का आलिंगन किये रहतीं, परन्तु जैसे ही मुरगे बोलते, तो श्रीकृष्ण की पत्नियाँ उदास हो जातीं एवं मुरगे की ध्वनि की निन्दा करने लगतीं ।

प्रत्येक राजमहल के उद्यान में पारिजात पुष्प लगे हुए थे । पारिजात कोई कृत्रिम पुष्प नहीं । स्मरण रहे कि श्रीकृष्ण ने पारिजात वृक्षों को स्वर्ग से लाकर सभी महलों के उद्यानों में लगाया था । प्रात:कालीन मन्द वायु पारिजात पुष्प की सुगन्ध को प्रसारित करती तथा श्रीकृष्ण निद्रा से उठने

के पश्चात् उसकी सुगंध का रसास्वादन करते । इस सुगंध के कारण मधुमक्खियाँ भिनभिनाना आरम्भ कर देतीं और पक्षी भी मधुर कलरव आरम्भ कर देते । सम्पूर्ण रूप से उस ध्वनि को सुनकर ऐसा प्रतीत होता कि वंदीजन एकत्र होकर भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने में संलग्न हैं । यद्यपि श्रीकृष्ण की प्रथम पत्नी श्रीमती रुक्मिणी देवी को ज्ञात था कि ब्राह्म–मुहूर्त सम्पूर्ण दिवस का सर्वाधिक शुभ समय है, तथापि ब्राह्म–मुहूर्त के आगमन पर वे खिन्न हो उठतीं, क्योंकि वे श्रीकृष्ण के इस संग का त्याग नहीं करना चाहती थीं । श्रीमती रुक्मिणी देवी की खिन्नता के पश्चात् भी ब्राह्म-मुहूर्त का आगमन होते ही भगवान् श्रीकृष्ण उठ जाते । आदर्श गृहस्थ को भगवान् श्रीकृष्ण के इस आचरण से शिक्षा लेनी चाहिए कि किस प्रकार उसे प्रात:काल उठना चाहिए, चाहे वह कितनी ही सुविधाजनक स्थिति में क्यों न लेटा हो ।

विश्राम करके उठने के पश्चात् श्रीकृष्ण अपने मुख, भुजाओं तथा चरणों को धोते एवं तत्काल बैठकर स्वयं का ध्यान करने लगते । इसका अर्थ यह नहीं है कि हमें भी बैठकर स्वयं पर ही ध्यान करना चाहिए । हमें श्रीकृष्ण, श्री राधा-कृष्ण का ध्यान करना चाहिए । वही वास्तविक ध्यान है । श्रीकृष्ण स्वयं श्रीकृष्ण हैं, अतएव वे हमें शिक्षा दे रहे थे कि ब्राह्म-मुहूर्त का उपयोग श्रीराधा-कृष्ण का ध्यान करने के लिए करना चाहिए । ऐसा करने से भगवान् श्रीकृष्ण अत्यन्त संतोष का अनुभव करते । उसी प्रकार यदि हम ब्राह्म-मुहूर्त का उपयोग श्रीराधा तथा कृष्ण पर ध्यान करने के लिए करेंगे, तो हमें भी दिव्य आनन्द का अनुभव होगा और हम सन्तुष्ट हो जाएँगे । प्रात:काल हम यह भी चिन्तन करें कि किस प्रकार श्रीमती रुक्मिणी तथा श्रीकृष्ण ने आदर्श गृहस्थ के रूप में सम्पूर्ण मानव-समाज को यह शिक्षा दी है कि हमें ब्राह्म-मुहूर्त में उठकर तत्काल कृष्णभावनामृत में संलग्न हो जाना चाहिए । श्रीराधा-कृष्ण के शाश्वत रूपों पर ध्यान करने तथा हरे कृष्ण महामंत्र का कीर्तन करने में कोई अन्तर

नहीं है । जहाँ तक श्रीकृष्ण के द्वारा ध्यान करने का प्रश्न है, तो उनके पास स्वयं पर ध्यान करने के अतिरिक्त कोई विकल्प नहीं था । ध्यान का विषय ब्रह्म, परमात्मा अथवा श्रीभगवान् होते हैं, परन्तु श्रीकृष्ण स्वयं तीनों हैं : वे श्रीभगवान् हैं, अन्तर्यामी परमात्मा श्रीकृष्ण का एक स्वांश है तथा सर्वव्यापक ब्रह्मज्योति उनके दिव्य शरीर की अंग-कान्ति है । अत: श्रीकृष्ण सदैव एक हैं एवं उनके लिए कोई अन्तर नहीं है । सामान्य जीव तथा भगवान् श्रीकृष्ण में यही भेद है । जीव के लिए विभिन्नताएँ हैं । सामान्य जीव अपने शरीर से भिन्न है तथा वह जीवों की अन्य योनियों से भिन्न है । मानव अन्य मानवों से तथा पशुओं से भिन्न है । .....उसके स्वयं के शरीर में ही विभिन्न अंग-प्रत्यंग हैं । हमारे हाथ तथा पैर हैं, परन्तु हमारे हाथ पैरों से भिन्न हैं । पैर की भाँति हाथ कार्य नहीं कर सकते और न ही हाथ की भाँति पैर कर सकते हैं । नेत्र के समान कान नहीं देख सकते और न ही कान की भाँति नेत्र सुन सकते हैं । इन सभी भिन्नताओं को तकनीकी दृष्टि से स्वजातीय-विजातीय कहा जाता है ।

यह शारीरिक सीमा, जिससे शरीर का एक भाग दूसरे भाग की भाँति कार्य नहीं कर सकता, श्रीभगवान् में पूर्णतया अनुपस्थित है । उनके शरीर में तथा उनमें कोई अन्तर नहीं है । वे पूर्णरूपेण आध्यात्मिक हैं, अतएव उनके शरीर में तथा उनकी आत्मा में कोई भी भौतिक भेद नहीं है । उसी प्रकार, अपने लाखों अवतारों और अंशों से वे भिन्न नहीं हैं । श्रीबलदेव श्रीकृष्ण के प्रथम अंश हैं और श्रीबलदेव के द्वारा श्रीसंकर्षण, श्रीवासुदेव, श्रीप्रद्युम्न एवं श्रीअनिरुद्ध के रूपों का विस्तार होता है । श्रीसंकर्षण से पुन: श्री नारायण का विस्तार होता है एवं श्रीनारायण से श्रीसंकर्षण, श्रीवासुदेव, श्रीप्रद्युम्न तथा श्रीअनिरुद्ध के द्वितीय चतुव्यूह का विस्तार होता है । इसी प्रकार श्रीकृष्ण के अगणित विस्तार हैं, परन्तु वे सभी एक हैं । श्रीकृष्ण के अनेक अवतार हैं जैसे कि श्रीनृसिंहदेव, वराह, मत्स्य एवं कच्छप-अवतार (कछुआ) । परन्तु श्रीकृष्ण के नराकार द्विभुजी आदि

स्वरूप में तथा इन विशाल पशुओं के रूप के अवतारों में कोई भेद नहीं है और न ही उनके शरीर के विभिन्न अंगों के कार्यों में कोई भेद है । उनके करकमल चरणों के समान कार्य कर सकते हैं, उनके नेत्र कर्ण के समान कार्य कर सकते हैं, अथवा उनकी नासिका शरीर के किसी अन्य अंग की भाँति कार्य कर सकती है । भगवान् श्रीकृष्ण के द्वारा सुगन्धों को ग्रहण करना, भोजन एवं श्रवण करना एक ही है । हम जीव सीमित हैं, अतएव शरीर के विशेष अंग का उपयोग विशेष उद्देश्य के लिए ही किया जा सकता है, परन्तु श्रीकृष्ण के लिए इस प्रकार का कोई भेद नहीं है । ब्रह्म-सहित7 में कहा गया है, अ7/नि यस्य सकलद्रियवृति-वे अपने शरीर के एक अंग के कार्य को किसी भी अंग के द्वारा सम्पादित कर सकते हैं । अतएव श्रीकृष्ण एवं उनके व्यक्तित्व के विश्लेषणात्मक अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि वे समग्र रूप से परिपूर्ण हैं । अतएव जब वे ध्यान करते हैं, तो वे स्वयं का ही ध्यान करते हैं । साधारण मनुष्यों के द्वारा सोऽहसू ब्रह्म के रूप में किया जाने वाला आत्म-ध्यान केवल अनुकरण है । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं का ध्यान कर सकते हैं, क्योंकि वे परिपूर्ण हैं, किन्तु हम उनका अनुकरण करते हुए स्वयं का ही ध्यान नहीं कर सकते । हमारा शरीर एक उपाधि है, श्रीकृष्ण का शरीर उपाधि नहीं है । श्रीकृष्ण का शरीर भी श्रीकृष्ण है । श्रीकृष्ण में किसी भी विजातीय वस्तु का अस्तित्व नहीं है । श्रीकृष्ण में जो कुछ है, वह श्रीकृष्ण ही है । अत: वे परम अविनाशी, पूर्ण अस्तित्व, अर्थात् परम सत्य हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण का अस्तित्व सापेक्ष नहीं है । भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त प्रत्येक वस्तु सापेक्ष सत्य है, परन्तु श्रीकृष्ण परम सत्य हैं । अपने अस्तित्व के लिए श्रीकृष्ण केवल स्वयं पर निर्भर करते हैं । किन्तु हमारा अस्तित्व सापेक्ष है । उदाहरणार्थ, सूर्य, चन्द्रमा अथवा विद्युत् के प्रकाश होने पर ही हम देखने में समर्थ होते हैं । अत: हमारी दृष्टि सापेक्ष है एवं सूर्य, चन्द्रमा और विद्युत् के प्रकाश भी सापेक्ष हैं । उन्हें प्रकाशित

केवल इसलिए कहा जाता है, क्योंकि हम उन्हे ऐसा ही | देखते हैं । निर्भरता तथा सापेक्षता का अस्तित्व श्रीकृष्ण में नहीं है । उनके कार्य । कलाप किसी की प्रशंसा पर निर्भर नहीं करते और न ही वे किसी अन्य की सहायता पर निर्भर करते हैं । वे सीमित काल एवं देश के अस्तित्व से परे हैं । वे काल तथा देश से अतीत हैं । अतएव उनको सीमित कार्य-कलापों वाली माया के भ्रम से ढँका नहीं जा सकता । वैदिक साहित्य से हमें ज्ञात होता है कि श्रीभगवान् में विविध शक्तियाँ विद्यमान हैं । सभी शक्तियों का उद्गम उन्हीं से हुआ है, अतएव उनमें तथा उनकी शक्तियों में कोई अन्तर नहीं है । यद्यपि कुछ दार्शनिक कहते हैं कि जब श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं, तो वे भौतिक शरीर ग्रहण करते हैं । परन्तु यदि हम यह स्वीकार भी कर लें कि इस भौतिक जगत में प्रकट होने पर वे भौतिक शरीर को ग्रहण करते हैं, तो भी यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि भौतिक शक्ति उनसे भिन्न नहीं है, इसलिए भगवान् का शरीर भौतिक दृष्टिकोण से कार्य नहीं करता । अतएव भगवद्गीता में कहा गया है कि श्रीभगवान् अपनी अंतरंगा शक्ति, आत्मम/य/ के द्वारा प्रकट होते हैं ।

श्रीकृष्ण को परम-ब्रह्म कहा गया है, क्योंकि वे सृष्टि के कारण हैं, पालन के कारण हैं तथा संहार के कारण हैं । श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी और श्री शिवजी इन भौतिक गुणों के विभिन्न विस्तार हैं । यह सभी भौतिक गुण बद्ध जीवात्माओं पर कार्य कर सकते हैं, परन्तु इससे श्रीकृष्ण पर कोई क्रिया अथवा प्रतिक्रिया नहीं होती, क्योंकि ये गुण एक ही समय में उनसे एकरूप तथा भिन्न हैं । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्द विग्रह हैं, आनन्द और ज्ञान के शाश्वत रूप हैं तथा उनकी कल्पनातीत विशालता के कारण उन्हें परब्रह्म कहा जाता है । उनका ब्रह्म, परमात्मा अथवा श्रीभगवान् पर ध्यान वास्तव में केवल स्वयं पर है । उनसे अतिरिक्त अन्य किसी पर नहीं । इस ध्यान का अनुकरण साधारण जीव के द्वारा नहीं किया जा सकता ।

ध्यान के पश्चात् श्रीभगवान् प्रात:काल नियमित रूप से स्वच्छ, शुद्ध जल में स्नान करते । तत्पश्चात् वे स्वच्छ वस्त्र धारण करते, स्वयं को चादर से ढँकते और फिर वैदिक धार्मिक कार्यों में स्वयं को संलग्न करते । उनके अनेक धार्मिक कार्यों में प्रथम कार्य यज्ञ-अग्नि में नैवेद्य अर्पित करना तथा चुपचाप गायत्री मंत्र का जाप करना होता । आदर्श गृहस्थ के रूप में श्रीकृष्ण ने गृहस्थ के सभी धार्मिक कार्यों का यथारूप में पालन किया । जब सूर्योदय दृष्टिगोचर होता, तब श्रीभगवान् सूर्यदेव को विशेष प्रार्थनाएँ अर्पित करते । वैदिक साहित्य में कथित सूर्यदेव तथा अन्य देवताओं को भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर के विभिन्न अंगों के रूप में वर्णित किया गया है और गृहस्थ का यह कर्तव्य है, वह देवताओं एवं महर्षियों तथा पूर्वजों के प्रति सम्मान रखे ।

जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, इस विश्व में पालन करने के हेतु श्रीभगवान् के पास कोई विशेष कर्तव्य नहीं है फिर भी वे इस प्राकृत जगत में आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले साधारण व्यक्ति की भाँति कार्य करते हैं । वैदिक कर्मकाण्डी नियमों के अनुरूप श्रीभगवान् देवताओं को सम्मान अर्पित करते । वह नियम जिसके द्वारा देवताओं एवं पूर्वजों को पूजा जाता है, उसे तर्पण कहते हैं । तपण का अर्थ है प्रसन्न करना । किसी व्यक्ति के पूर्वज को भले ही किसी अन्य ग्रह पर शरीर ग्रहण करना पड़े, परन्तु इस तर्पण-प्रणाली का पालन करने से वे अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं । गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि वह अपने परिवार के सदस्यों को सुखी रखे एवं इस तर्पण-प्रणाली का पालन करने से वह अपने पूर्वजों को भी सुखी रख सकता है । पूर्ण अनुकरणीय गृहस्थ होने के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण इस तर्पण प्रणाली का पालन करते तथा अपने परिवार के ज्येष्ठ सदस्यों की सादर वन्दना करते ।

दान में उनका अगला कर्तव्य ब्राह्मणों को गौओं का दान करना था । भगवान् श्रीकृष्ण कम से कम १३,०८४ गायें देते थे । सारी गाएँ रेशमी

चादर और मोतियों की मालाओं से सुसजित होती, उनके सींग स्वर्ण-पत्र से ढँके हुए होते तथा उनके खुर चाँदी के बने होते । उनसे प्रथम-जन्मे बछड़ों के उनके समीप होने के कारण वे दूध से परिपूर्ण थीं तथा वे बहुत ही शान्त एवं सौम्य थीं । जब गाएँ ब्राह्मणों को दान में दी जाती, तब ब्राह्मणों को सुन्दर रेशमी वस्त्र दिए जाते । इसके अतिरिक्त, प्रत्येक ब्राह्मण को एक मृग-चर्म एवं तिल के पर्याप्त दाने दिए जाते । श्रीभगवान् को सामान्यत: 7/ब्र/ह77 हिताय च कहते हैं, जिसका अर्थ है कि उनका पहला कर्तव्य ब्राह्मणों एवं गउओं के कल्याण का ध्यान रखना । अत: श्रीकृष्ण गायों को भरपूर अलंकारों एवं उपकरणों सहित ब्राह्मणों को दान में दिया करते थे । तत्पश्चात् सभी जीवों के कल्याण की आकांक्षा करते हुए वे दूध, अग्नि, मधु, घी, स्वर्ण एवं रत्नों जैसे सौभाग्यशाली वस्तुओं का स्पर्श करते । यद्यपि अपने दिव्य शरीर की पूर्ण आकृति के कारण श्रीकृष्ण प्रकृति से अति-सुन्दर हैं, तथापि वे स्वयं पीले रंग के वस्त्रों को धारण कर लेते तथा कौस्तुभ-मणियों की कण्ठी पहन लेते । वे फूलों की माला पहनते, अपने शरीर पर चन्दन का लेप करते और स्वयं को सौन्दर्य-वर्धक सामग्री एवं आभूषणों से सुसजित करते । ऐसा कहा जाता है कि श्रीभगवान् के दिव्य शरीर का स्पर्श पाते ही सभी आभूषण स्वयं सुन्दर बन जाते । इस प्रकार स्वयं को सुसज्जित करने के पश्चात्, श्रीभगवान् गाय-बछड़ों की संगमरमर की मूर्तियों को देखते और श्रीशिवजी तथा अन्य देवताओं के मंदिरों के दर्शन करते । ऐसे अनेक ब्राह्मण थे, जो उपाहार करने से पूर्व श्रीभगवान् के दर्शन करने के लिए नित्य आते । ब्राह्मण उनको देखने के लिए उत्सुक थे एवं श्रीभगवान् उनका स्वागत करते ।

उनका अगला कर्तव्य नगर और राजमहल में स्थित विभिन्न जाति के लोगों को सुखी करना था । श्रीभगवान् उनकी विभिन्न इच्छाओं की

पूर्तिकरके उन्हें प्रसन्न करते एवं जब वे उन्हें प्रसन्न देखते, तो वे स्वयं प्रसन्न हो जाते । फूलों की मालाएँ.....P- 588 to 589 missing

श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं, तो वे भौतिक शरीर ग्रहण करते हैं । परन्तु यदि हम यह स्वीकार भी कर लें कि इस भौतिक जगत में प्रकट होने पर वे भौतिक शरीर को ग्रहण करते हैं, तो भी यह निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए कि भौतिक शक्ति उनसे भिन्न नहीं है, इसलिए भगवान् का शरीर भौतिक दृष्टिकोण से कार्य नहीं करता । अतएव भगवद्गीता में कहा गया है कि श्रीभगवान् अपनी अंतरंगा शक्ति, आत्मम/य/ के द्वारा प्रकट होते हैं । श्रीकृष्ण को परम-ब्रह्म कहा गया है, क्योंकि वे सृष्टि के कारण हैं, पालन के कारण हैं तथा संहार के कारण हैं । श्री ब्रह्माजी, श्री विष्णुजी और श्री शिवजी इन भौतिक गुणों के विभिन्न विस्तार हैं । यह सभी भौतिक गुण बद्ध जीवात्माओं पर कार्य कर सकते हैं, परन्तु इससे श्रीकृष्ण पर कोई क्रिया अथवा प्रतिक्रिया नहीं होती, क्योंकि ये गुण एक ही समय में उनसे एकरूप तथा भिन्न हैं । भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सच्चिदानन्द विग्रह हैं, आनन्द और ज्ञान के शाश्वत रूप हैं तथा उनकी कल्पनातीत विशालता के कारण उन्हें परब्रह्म कहा जाता है । उनका ब्रह्म, परमात्मा अथवा श्रीभगवान् पर ध्यान वास्तव में केवल स्वयं पर है । उनसे अतिरिक्त अन्य किसी पर नहीं । इस ध्यान का अनुकरण साधारण जीव के द्वारा नहीं किया जा सकता ।

ध्यान के पश्चात् श्रीभगवान् प्रात:काल नियमित रूप से स्वच्छ, शुद्ध जल में स्नान करते । तत्पश्चात् वे स्वच्छ वस्त्र धारण करते, स्वयं को चादर से ढँकते और फिर वैदिक धार्मिक कार्यों में स्वयं को संलग्न करते । उनके अनेक धार्मिक कार्यों में प्रथम कार्य यज्ञ-अग्नि में नैवेद्य अर्पित करना तथा चुपचाप गायत्री मंत्र का जाप करना होता । आदर्श गृहस्थ के रूप में श्रीकृष्ण ने गृहस्थ के सभी धार्मिक कार्यों का यथारूप में पालन किया ।

जब सूर्योदय दृष्टिगोचर होता, तब श्रीभगवान् सूर्यदेव को विशेष प्रार्थनाएँ अर्पित करते । वैदिक साहित्य में कथित सूर्यदेव तथा अन्य देवताओं को भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर के विभिन्न अंगों के रूप में वर्णित किया गया है और गृहस्थ का यह कर्तव्य है, वह देवताओं एवं महर्षियों तथा पूर्वजों के प्रति सम्मान रखे । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, इस विश्व में पालन करने के हेतु श्रीभगवान् के पास कोई विशेष कर्तव्य नहीं है फिर भी वे इस प्राकृत जगत में आदर्श जीवन व्यतीत करने वाले साधारण व्यक्ति की भाँति कार्य करते हैं । वैदिक कर्मकाण्डी नियमों के अनुरूप श्रीभगवान् देवताओं को सम्मान अर्पित करते । वह नियम जिसके द्वारा देवताओं एवं पूर्वजों को पूजा जाता है, उसे तर्पण कहते हैं । तपण का अर्थ है प्रसन्न करना । किसी व्यक्ति के पूर्वज को भले ही किसी अन्य ग्रह पर शरीर ग्रहण करना पड़े, परन्तु इस तर्पण-प्रणाली का पालन करने से वे अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं । गृहस्थ का यह कर्तव्य है कि वह अपने परिवार के सदस्यों को सुखी रखे एवं इस तर्पण-प्रणाली का पालन करने से वह अपने पूर्वजों को भी सुखी रख सकता है । पूर्ण अनुकरणीय गृहस्थ होने के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण इस तर्पण प्रणाली का पालन करते तथा अपने परिवार के ज्येष्ठ सदस्यों की सादर वन्दना करते । दान में उनका अगला कर्तव्य ब्राह्मणों को गौओं का दान करना था । भगवान् श्रीकृष्ण कम से कम १३,०८४ गायें देते थे । सारी गाएँ रेशमी चादर और मोतियों की मालाओं से सुसजित होती, उनके सींग स्वर्ण-पत्र से ढँके हुए होते तथा उनके खुर चाँदी के बने होते । उनसे प्रथम-जन्मे बछड़ों के उनके समीप होने के कारण वे दूध से परिपूर्ण थीं तथा वे बहुत ही शान्त एवं सौम्य थीं । जब गाएँ ब्राह्मणों को दान में दी जाती, तब ब्राह्मणों को सुन्दर रेशमी वस्त्र दिए जाते । इसके अतिरिक्त, प्रत्येक ब्राह्मण को एक मृग-चर्म एवं तिल के पर्याप्त दाने दिए जाते । श्रीभगवान् को सामान्यत: 7/ब्र/ह77 हिताय च कहते हैं, जिसका अर्थ है कि उनका पहला कर्तव्य ब्राह्मणों एवं गउओं के कल्याण का ध्यान रखना । अत: श्रीकृष्ण गायों को भरपूर

अलंकारों एवं उपकरणों सहित ब्राह्मणों को दान में दिया करते थे । तत्पश्चात् सभी जीवों के कल्याण की आकांक्षा करते हुए वे दूध, अग्नि, मधु, घी, स्वर्ण एवं रत्नों जैसे सौभाग्यशाली वस्तुओं का स्पर्श करते । यद्यपि अपने दिव्य शरीर की पूर्ण आकृति के कारण श्रीकृष्ण प्रकृति से अति-सुन्दर हैं, तथापि वे स्वयं पीले रंग के वस्त्रों को धारण कर लेते तथा कौस्तुभ-मणियों की कण्ठी पहन लेते । वे फूलों की माला पहनते, अपने शरीर पर चन्दन का लेप करते और स्वयं को सौन्दर्य-वर्धक सामग्री एवं आभूषणों से सुसजित करते । ऐसा कहा जाता है कि श्रीभगवान् के दिव्य शरीर का स्पर्श पाते ही सभी आभूषण स्वयं सुन्दर बन जाते । इस प्रकार स्वयं को सुसज्जित करने के पश्चात्, श्रीभगवान् गाय-बछड़ों की संगमरमर की मूर्तियों को देखते और श्रीशिवजी तथा अन्य देवताओं के मंदिरों के दर्शन करते । ऐसे अनेक ब्राह्मण थे, जो उपाहार करने से पूर्व श्रीभगवान् के दर्शन करने के लिए नित्य आते । ब्राह्मण उनको देखने के लिए उत्सुक थे एवं श्रीभगवान् उनका स्वागत करते । उनका अगला कर्तव्य नगर और राजमहल में स्थित विभिन्न जाति के लोगों को सुखी करना था । श्रीभगवान् उनकी विभिन्न इच्छाओं की पूर्ति करके उन्हें प्रसन्न करते एवं जब वे उन्हें प्रसन्न देखते, तो वे स्वयं प्रसन्न हो जाते । फूलों की मालाएँ

---

५९० लीला पुरुषोत्तम भणवान् श्रीकृष्ण

वे कृष्णभावनाभावित जीवन के मार्ग के विरुद्ध हैं तथा तीनों लोकों में भौतिक जगत की भ्रामक शक्ति के अधीन भटक रहे हैं । "प्रिय भगवान्! आपकी कृपा एवं आपके शक्तिशाली कार्यों का मूल्यांकन कौन कर सकता है? शाश्वत काल की अलंध्य शक्ति के रूप में आप सदैव विद्यमान हैं एवं उन भौतिकवादियों की अश्रान्त कामनाओं को निष्फल करने में संलग्न हैं, जो इस प्रकार पुनः पुन: दिग्भ्रमित एवं निराश हो रहे हैं । अतएव शाश्वत काल स्वरूप आपकी मैं वन्दना करता हूँ । मेरे प्रिय भगवान्! आप

सभी विश्वों के स्वामी हैं और आपने स्वयं को अपने स्वांश श्रीबलराम जी के साथ अवतरित किया है । ऐसा कहा जाता है कि इस अवतरण में आपके आविर्भाव का लक्ष्य भक्तों की रक्षा करना और दुष्टों का विनाश करना है । इन परिस्थितियों के पश्चात् भी, यह कैसे सम्भव है कि जरासंध जैसे बदमाश दुष्ट आपके अधिकार के विरुद्ध हमें ऐसी दुखद स्थिति में डाल सकते हैं? हम इस परिस्थिति से किंकर्तव्यविमूढ़ हो गए हैं तथा समझ नहीं पा रहे कि यह कैसे सम्भव है । हो सकता है कि हमारे पूर्व दुष्कर्मों के कारण हमें कष्ट देने के लिए जरासन्ध को नियुक्त किया गया हो । किन्तु प्रामाणिक धर्मग्रन्थों से हमने सुना है कि जो व्यक्ति आपके चरणकमलों के प्रति समर्पित हो जाता है, वह व्यक्ति तुरन्त ही पापपूर्ण जीवन के फलों से उन्मुक्त हो जाता है । आपकी शरण में हम सबको पूरे मन से समर्पित करने के लिए सभी कैदी राजाओं द्वारा मुझे नियुक्त किया गया है और हम आशा करते हैं कि श्रीमान् अब हमें पूर्ण संरक्षण देंगे । हम अपने जीवन के वास्तविक निष्कर्ष पर पहुँच गए हैं । हमारी राजसी स्थितियाँ और कुछ नहीं बल्कि हमारे पूर्व पुण्यकर्मों का पुरस्कार-मात्र हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे जरासन्ध द्वारा हमारा कैद किया जाना हमारे पूर्व पापपूर्ण कर्मों का परिणाम है । हमने अब अनुभव कर लिया है कि हमारे पुण्य और पापकर्मों के परिणामस्वरूप प्रतिक्रियाएँ अस्थायी हैं और हम इस बद्ध जीवन में कभी-भी प्रसन्न नहीं हो सकते । ये भौतिक शरीर हमें भौतिक गुणों के अनुसार प्रदान किए जाते हैं । इसके कारण हम अत्यन्त उद्विग्न रहते हैं । जीवन की भौतिक स्थिति में हमें केवल इस मृत शरीर के बोझ को ढोना पड़ता है । अतः सकाम कर्मों के परिणामस्वरूप हम इन शरीरों में भार ढोने वाले पशु बनने के लिए बाध्य किए गए है तथा बद्ध जीवन के द्वारा बाध्य किए जाने पर हमने कृष्णभावनामृत के सुखी जीवन को त्याग दिया है । अब हमें अनुभव हुआ है कि हम सबसे अधिक मूर्ख हैं । अपनी अज्ञानता के कारण हम भौतिक

प्रतिक्रियाओं के जाल में फैंस गए हैं । अतएव हम आपके चरणकमलों की शरण में

आए हैं, जो फलदायक कार्यकलापों के परिणामों को तुरन्त ही उन्मूलित कर सकती है और हमें भौतिक सुख एवं दुख के दोष से मुक्त कर सकती है । "प्रिय भगवान्! क्योंकि अब हम आपके चरणकमलों में समर्पित आत्माएँ हैं, अतएव जरासन्ध के रूप में उद्धृत हमारे सकाम कर्मों के बन्धनों से अब आप हमें मुक्त कर सकते हैं । प्रिय प्रभु! यह आपको ज्ञात है कि जरासन्ध दस हजार हाथियों की शक्ति धारण करता है तथा इसी शक्ति के द्वारा उसने हमें अपना बन्दी बना लिया है, ठीक उसी प्रकार जैसे एक सिंह मेमनों के पूर्ण झुण्ड को सम्मोहित कर लेता है । प्रिय भगवान्! आप अब तक क्रमश: अठारह बार लड़ चुके हैं, जिसमें से उसकी असाधारण शक्तिशाली स्थिति पर विजयी होकर आपने सत्रह बार उसे हराया है । परन्तु अपने अठारहवें युद्ध में आपने मानवता प्रदर्शित की, इसलिए ऐसा प्रतीत हुआ कि आप पराजित हो गए हैं । प्रिय प्रभु! हम पूर्णरूपेण जानते हैं कि जरासन्ध आपको कभी-भी नहीं हरा सकता, क्योंकि आपकी शक्ति, क्षमता, सम्पति और अधिकार सभी अनन्त हैं । कोई भी व्यक्ति तुलना में न तो आपके समान है, न आपसे बढ़कर हो सकता है । अठारहवें युद्ध में जरासन्ध के द्वारा आपकी पराजय की प्रतीति मानवता का एक प्रदर्शन-मात्र है । दुर्भाग्यवश, मूर्ख जरासन्ध आपके चातुर्य को नहीं समझ पाया और तब से वह अपनी भौतिक शक्ति एवं प्रतिष्ठा पर गर्व करता है । विशेष रूप से, यह जानते हुए कि आपके भत होने से हम आपके प्रभुत्व के अधीन हैं, उसने हमें पकड़ कर बन्दी बना लिया है । "अब मैंने अपनी दुखद स्थिति का वर्णन कर दिया है और अब श्रीमान् निर्णय लेकर अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकते हैं । सभी बन्दी राजाओं का प्रतिनिधि होने की वजह से मैंने अपने

शब्दों को श्रीमान् के प्रति समर्पित कर दिया है और अपनी प्रार्थनाओं को आपके समक्ष प्रस्तुत कर दिया है । सभी राजा आपके दर्शन करने के हेतु बहुत आतुर हैं जिससे व्यक्तिगत रूप से वे स्वयं को आपके चरणकमलों में

| समर्पित कर सकें । प्रिय भगवान् ! उनपर कृपा कीजिए एवं उनके भले के लिए कार्य

कीजिए ।" जिस समय बन्दी राजाओं का प्रतिनिधि श्रीभगवान् के सम्मुख निवेदन कर रहा था, उसी समय देवर्षि नारदजी भी वहाँ पहुँच गए । चूँकि वे एक महान् ऋषि थे, अतएव उनके केश स्वर्ण के समान चमक रहे थे तथा जब उन्होंने सभा-भवन में प्रवेश किया तब ऐसा प्रतीत हुआ कि सूर्यदेव व्यक्तिगत रूप से सभा के बीच उपस्थित हैं । भगवान् श्रीकृष्ण श्रीब्रह्माजी और शिवजी के लिए भी पूजनीय गुरु हैं,

तो भी जैसे ही श्रीकृष्ण ने देखा कि देवर्षि नारद मुनि पधारे हैं, तो वे देवर्षि का स्वागत करने के लिए और झुककर सादर वन्दना करने के लिए अपने मंत्रियों एवं सचिवों के साथ तुरन्त उठ खड़े हुए । देवर्षि नारद मुनि एक सुखद स्थान पर विराजमान हुए तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने संत-पुरुष की आवभगत के नियमानुसार सभी प्रकार से उनकी उपासना की । नारदजी को सन्तुष्ट करने का प्रयत्न करते हुए उन्होंने अपनी मधुर तथा स्वभाविक ध्वनि में निम्नलिखित वचन कहे । "हे प्रिय देवर्षि! अब मैं सोचता हूँ कि तीनों लोकों में सब कुछ ठीक है । आप इस ब्रह्माण्ड के उच्च, मध्य एवं निम्न लोकों में भ्रमण करने के लिए पूर्णरूपेण सुयोग्य हैं । सौभाग्य से, जब हमारा आपसे मिलन होता है, तब आपके द्वारा हम तीनों लोकों के विषय में जानकारी प्राप्त कर सकते हैं । परम ईश्वर के इस विराट जगत में ऐसा कुछ नहीं है, जो आपके ज्ञान से परे हो । आप सब कुछ जानते हैं, अतएव मैं आपसे प्रश्न पूछना चाहता हूँ । क्या पाण्डवों में सभी कुछ यथावत् चल रहा है, एवं महाराज युधिष्ठिर की वर्तमान में क्या योजना है?

क्या आप कृपा करके मुझे बताएँगे कि वर्तमान में वे क्या करना चाहते हैं?" देवर्षि नारद मुनि ने इस प्रकार कहा, "मेरे प्रभु! आपने परम-ईश्वर द्वारा निर्मित इस विराट जगत के विषय में कहा है, परन्तु मुझे ज्ञात है कि आप ही सर्वव्यापक स्रष्टा हैं । आपकी शक्तियाँ इतनी विस्तृत और अचिन्त्य हैं कि इस विशेष ब्रह्माण्ड के स्वामी श्रीब्रह्मा जैसे महान् पुरुष भी आपकी अचिन्त्य शक्ति को नहीं माप सकते । प्रिय भगवन्! अपनी अचिन्त्य शक्ति के द्वारा आप परम-आत्मा के रूप में प्रत्येक जीव के हृदय में विद्यामान हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे प्रत्येक जीव में अग्नि विद्यमान है, परन्तु प्रत्यक्ष रूप से कोई उसे देख नहीं सकता । जीवन की बद्धावस्था में प्रत्येक जीवात्मा भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों के अधिकार-क्षेत्र में है । तथापि अपने भौतिक नेत्रों से वे हर जगह आपकी उपस्थिति को देखने में असमर्थ हैं, फिर भी आपकी कृपा से मैंने अनेक बार आपकी अचिन्त्य शक्ति की क्रियाओं को देखा है अज्ञात नहीं हैं, तो मुझे आपकी जिज्ञासा पर तनिक भी आश्चर्य नहीं हुआ । प्रिय प्रभु! आप अचिन्त्य शक्तियों के द्वारा विराट जगत की सृष्टि करते हैं, उसकी रक्षा करते हैं और फिर उसका विनाश कर देते हैं । ऐसा आपकी अचिन्त्य शक्ति के बल से ही होता है कि यद्यपि यह भौतिक जगत वैकुण्ठ जगत का छाया-निरूपण है, तथापि वह वास्तविक प्रतीत होता है । कोई समझ नहीं पाता कि आप भविष्य में क्या करने वाले हैं । आपकी दिव्य इन्द्रियातीत स्थिति सबके लिए सदैव अचिन्त्य है । जहाँ तक मेरी बात है, मैं आपकी सादर वन्दना अनेकानेक बार कर सकता हूँ । ज्ञान की शारीरिक धारणा में, प्रत्येक व्यक्ति भौतिक इच्छाओं से प्रेरित होता है, अतएव प्रत्येक व्यक्ति जन्म और मृत्यु के चक्र में एक के बाद एक नवीन भौतिक शरीर धारण करता रहता है । अस्तित्व की ऐसी धारणा में लीन होकर व्यक्ति यह नहीं जानता कि भौतिक शरीर के इस बन्धन से किस प्रकार छुटकारा पाया जाए । अपनी अहैतुकी कृपा से, हे भगवान्! आप अपनी विभिन्न दिव्य लीलाओं का प्रदर्शन करने के लिए अवतरित होते हैं, जो प्रदीप्त एवं महिमामण्डित

हैं । अतएव आपकी सादर वन्दना करने के अतिरिक्त मेरे पास अन्य कोई विकल्प नहीं है । प्रभु! आप परम परब्रह्म हैं और साधारण जीव के रूप में आपके कार्य एक और कुशल साधन हैं, ठीक उसी प्रकार जैसे मंच पर नाटक खेला जाता है, जिसमें नट ऐसे अभिनय करता है, जो उसके वास्तविक स्वरूप से भिन्न होते हैं । आपने पाण्डवों का शुभचिन्तक बनकर उनके विषय में जिज्ञासा की है, अतएव मैं आपको उनके उद्देश्य के विषय में बताता हूँ । अब कृपया ध्यान से सुनिए । सर्वप्रथम आपको मालूम होना चाहिए कि महाराज युधिष्ठिर के पास वे सभी ऐश्वर्य हैं, जो सर्वोच्च लोक, ब्रह्मालोक, में पाए जा सकते हैं । उनके पास किसी भी भौतिक ऐश्वर्य की कमी नहीं है, तो भी वे राजसूय यज्ञ का सम्पादन केवल इसलिए कर रहे हैं कि वे आपका संग प्राप्त करके आपको प्रसन्न कर सकें ।" श्रीनारद ने श्रीकृष्ण को सूचित किया, "महाराज युधिष्ठिर इतने ऐश्वर्यवान् हैं कि उन्होंने इस भूलोक पर भी ब्रह्मलोक के सभी ऐश्वर्य प्राप्त कर लिए हैं । वे पूर्णतया सन्तुष्ट हैं एवं उन्हें किसी भी वस्तु की आवश्यकता नहीं है । वे प्रत्येक वस्तु से परिपूर्ण हैं, परन्तु अब वे आपकी स्तुति कर आपकी अहैतुकी कृपा प्राप्त करना चाहते हैं । मैं आपसे प्रार्थना करता हूँ कि आप उनकी इच्छाओं को पूर्ण करें । प्रिय भगवान्! महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित इस भव्य यज्ञ में देवता गण एवं विश्व के सभी सुप्रसिद्ध राजा-महाराज उपस्थित होगे । "प्रिय प्रभु! आप परब्रह्म श्रीभगवान् हैं । जो व्यक्ति श्रवण, कीर्तन तथा स्मरण करने की निर्धारित विधि से आपकी भक्ति में संलग्न होता है, वह व्यक्ति भौतिक प्रकृति के गुणों के संदूषण से मुक्त हो जाता है । उन व्यक्तियों का क्या कहना जो आपको प्रत्यक्ष रूप से देखने का और स्पर्श करने का सुअवसर प्राप्त करते हैं? प्रिय भगवान्! आप सभी शुभ विषयों के प्रतीक हैं । आपका दिव्य नाम तथा प्रसिद्धि उच्च, मध्य और निम्नलोक सहित सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में फैली हुई है । वह दिव्य जल जो आपके चरणकमलों को धोता है, उच्चलोकों में मन्दाकिनी, निम्नलोकों में

भोगवती, एवं इस पृथ्वी पर गंगा के नाम से जाना जाता है । यह पवित्र, आध्यात्मिक जल सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में बहता है तथा जहाँ भी बहता है उस स्थान को पवित्र बना देता 卷1"

देवर्षि नारद मुनि के द्वारा द्वारका के सुधर्मा सभा-भवन में प्रवेश करने से पूर्व श्रीकृष्ण भगवान् एवं उनके मंत्री तथा सचिव गण इस विषय पर चर्चा कर रहे थे कि किस प्रकार जरासन्ध के राज्य पर आक्रमण किया जाए । क्योंकि वे इस विषय पर गम्भीरतापूर्वक चिन्तन कर रहे थे, इसलिए नारद जी का यह प्रस्ताव कि वे हस्तिनापुर जाकर महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ में उपस्थित हों, उन्हें अधिक आकर्षक नहीं लगा । भगवान् श्रीकृष्ण अपने साथियों के अभिप्राय को समझ गए थे, क्योंकि वे श्रीब्रह्मा के भी शासक हैं । अतएव उन्हें सन्तुष्ट करने के लिए उन्होंने मुस्कराकर उद्धव से कहा, "प्रिय उद्धव! तुम मेरे सदैव ही शुभ-चिन्तक विश्वसनीय मित्र हो । अत: मैं सब कुछ तुम्हारे माध्यम से देखना चाहता हूँ, क्योंकि मुझे विश्वास है कि तुम्हारा परामर्श सदैव उपयुक्त होता है । मुझे विश्वास है कि तुम स्थिति को यथार्थ रूप में समझते हो, अतएव मैं तुम्हारी राय पूछ रहा हूँ । मुझे क्या करना चाहिए? मुझे तुममें विश्वास है, अतएव जो तुम कहोगे मैं वही करूंगा ।" उद्धव को यह ज्ञात था कि यद्यपि श्रीकृष्ण साधारण मनुष्य की भाँति कार्य कर रहे हैं, तथापि उन्हें सब कुछ-भूत, वर्तमान एवं भविष्य-ज्ञात है । तत्पश्चात् भी, क्योंकि भगवान् उनसे परामर्श करने का प्रयास कर रहे थे, इसलिए श्रीभगवान् को सेवा अर्पित करने के लिए उद्धव ने बोलना आरम्भ किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण की दिनचर्या" नामक सत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ

अध्याय 71
इन्द्रप्रस्थ नगर में श्रीकृष्ण

देवर्षि नारद मुनि तथा श्रीकृष्ण के अन्य सभी साथियों की उपस्थिति में श्री उद्धवजी ने परिस्थिति को समझा तथा तत्पश्चात् वे इस प्रकार कहने लगे— "प्रिय भगवान्! सर्वप्रथम मैं कहना चाहूँगा कि देवर्षि नारद मुनि ने आपसे निवेदन किया है कि आप भाई युधिष्ठिर के पास हस्तिनापुर जाकर उन्हें सन्तुष्ट करें, जो राजसूय यज्ञ को संपन्न करने के लिए प्रबन्ध करने में लगे हैं । अतएव, मेरा विचार है कि आप श्रीमान् को इस भव्य कार्य में महाराज की सहायता हेतु वहाँ तत्काल जाना चाहिए । इसी के साथ, यद्यपि देवर्षि नारद मुनि के द्वारा प्रस्तुत किए गए निमंत्रण को मुख्य मानना उचित है, तथापि श्रीभगवान्! यह आपका कर्तव्य है कि आप उन समर्पित आत्माओं की रक्षा करें । यदि हम स्थिति को समझने का प्रयत्न करें, तो दोनों लक्ष्यों को पूरा किया जा सकता है । जब तक हम सभी राजाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर लेते, कोई भी इस राजसूय यज्ञ को संपन्न नहीं कर सकता । दूसरे शब्दों में, यह समझना चाहिए कि युद्धरत जरासन्ध पर विजयी हुए बिना महाराज युधिष्ठिर इस महान् यज्ञ को संपन्न नहीं कर सकते । राजसूय यज्ञ केवल उसी व्यक्ति के द्वारा किया जा सकता है, जिसने प्रत्येक दिशा में विजय प्राप्त की हो । अतएव दोनों लक्ष्यों का पालन करने के हेतु हमें सर्वप्रथम जरासन्ध का वध करना होगा । मैं सोचता हूँ कि यदि हम किसी तरह जरासन्ध पर विजय प्राप्त कर लें, तो हमारे सभी लक्ष्यों का हल मिल जाएगा, बन्दी राजा मुक्त कर दिए जाएँगे और तब आपके द्वारा जरासन्ध के बन्दी राजाओं की मुक्ति के दिव्य समाचार के प्रसारित होने पर हम भव्य सुख का आनन्द उठायेंगे ।

"किन्तु राजा जरासन्ध कोई सामान्य व्यक्ति नहीं है । वह बड़े से बड़े वीरों के लिए भी बाधा सिद्ध हुआ है, क्योंकि उसकी शारीरिक शक्ति दस

हजार हाथियों की शक्ति के समान है । यदि ऐसा कोई व्यक्ति है, जो इस राजा को पराजित कर सके, तो वह भीमसेन के अतिरिक्त अन्य कोई नहीं, क्योंकि वे भी १०,००० हाथियों की शक्ति धारण करते हैं । सर्वोतम यही होगा कि भीमसेन अकेले लड़ें । तब फिर सैकड़ों सैनिकों का अनावश्यक वध नहीं होगा । वास्तव में जरासन्ध के द्वारा सैनिकों की अक्षौहिणी सेना बनाकर खड़े होने पर उसे हराना अत्यन्त कठिन हो जाएगा । अतएव हमें ऐसी नीति ग्रहण करनी होगी, जो इस परिस्थिति के अनुकूल हो । हमें ज्ञात है कि राजा जरासन्ध ब्राह्मणों के प्रति समर्पित है । वह उनके प्रति बहुत परोपकारी है, वह ब्राह्मण के किसी भी निवेदन को इनकार नहीं करता । अतएव मेरा मत है कि भीमसेन को ब्राह्मण के वेश में जरासन्ध के पास जाकर भिक्षा माँगनी चाहिए और फिर व्यक्तिगत रूप से जरासन्ध के साथ युद्ध करने में लग जाना चाहिए । भीमसेन की विजय को निश्चित करने के लिए मेरे विचार से, आपको उनके साथ जाना चाहिए । यदि आपकी उपस्थिति में ही युद्ध घटित होगा, तो मुझे दृढ़ विश्वास है कि भीमसेन अवश्य ही विजयी होंगे, क्योंकि आपकी उपस्थितिमात्र से असम्भव सम्भव हो जाता है, ठीक उस प्रकार जैसे ब्रह्माजी इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि करते हैं एवं आपके प्रभाव के द्वारा शिवजी उसका संहार कर देते हैं ।

"वास्तव में आप सम्पूर्ण विराट जगत का निर्माण तथा विनाश करते हैं । ब्रह्माजी एवं शिवजी सामान्य दृष्टिगोचर कारण हैं । निर्माण तथा विनाश वास्तव में अदृश्य कालचक्र के द्वारा सम्पन्न होता है, जो आपका निराकार प्रतिरूप है । सभी कुछ इस कालचक्र के नियंत्रण में है । यदि ब्रह्माजी एवं शिवजी के द्वारा आपका कालचक्र इतने अद्‌भुत कार्य कर सकता है, तो क्या आपकी व्यक्तिगत उपस्थिति जरासन्ध को हराने के लिए भीमसेन की रक्षा नहीं करेगी ? मेरे प्रिय भगवान्‌! जब जरासन्ध का वध हो जाएगा, तब आपकी कृपा से सभी बन्दी राजाओं की पत्नियाँ अपनी

मुक्ति से इतनी प्रसन्न होंगी कि वे आपकी महिमा को गाना आरम्भ कर देंगी । वे उसी प्रकार प्रसन्न होंगी जिस प्रकार शंखासुर के बन्धन से मुक्त होकर गोपियाँ प्रसन्न हुई थीं । सभी महर्षि, गजराज गजेन्द्र, भाग्य की देवी सीता तथा आपकी माता एवं पिता भी आपकी अहैतुकी कृपा से मुक्त हो गए । हमारा भी उसी प्रकार उद्धार .....

'अतएव, मेरा विचार है कि सर्वप्रथम यदि जरासन्ध के वध का कार्य कर लिया जाए, तो उससे अन्य सभी समस्यायें अपने-आप सुलझ जायेंगी । जहाँ तक हस्तिनापुर में आयोजित राजसूय यज्ञ का प्रश्न है, वह या तो बन्दी राजाओं के पुण्यकर्मों के द्वारा अथवा जरासन्ध के नास्तिक कर्मों के कारण सम्पन्न किया जाएगा ।

"प्रभु! ऐसा प्रतीत होता है कि इस यज्ञ को पूरा करने के लिए आप व्यक्तिगत रूप से जाएँगे जिससे जरासन्ध एवं शिशुपाल जैसे दानवों को हराया जा सके, धार्मिक बन्दी राजाओं को मुक्त किया जा सके और साथ ही साथ महान् राजसूय यज्ञ को सम्पन्न किया जा सके । इन सभी तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, मेरा विचार है कि आप श्रीमान्को तत्काल हस्तिनापुर जाना चाहिए ।"

श्री उद्धव के इस परामर्श की सभा में उपस्थित सभी लोगों ने प्रशंसा की एवं सभी ने मान लिया कि सभी दृष्टिकोणों से श्रीकृष्ण का हस्तिनापुर जाना लाभदायक रहेगा । देवर्षि नारद मुनि, यदुवंश के वयोवृद्ध व्यक्ति स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण सबों ने श्रीउद्धव के इस मत का समर्थन किया । तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने पिता वसुदेव एवं पितामह उग्रसेन से अनुमति ली और तत्काल ही हस्तिनापुर की यात्रा के लिए व्यवस्था करने के लिए अपने सेवकों, दारुक एवं जैत्र को आज्ञा दी । जब सब व्यवस्थित हो गया, तब श्रीकृष्ण ने विशेष रूप से श्रीबलराम और यदुराज उग्रसेन से विदाई ली । तदनन्तर रानियों और उनके बच्चों को तथा उनके सामान

को आगे भेजकर वे रथ पर सवार हुए, जिसमें गरुड़ के चिह्न से अंकित एक झंडा था ।

शोभायात्रा को आरम्भ करने से पहले, पूजा योग्य वस्तुओं को देवर्षि नारदजी के प्रति अर्पित करके उन्हें सन्तुष्ट किया गया । नारदजी श्रीकृष्ण के चरणकमलों पर गिर जाना चाहते थे, किन्तु क्योंकि श्रीभगवान् एक साधारण मनुष्य का अभिनय कर रहे थे, इसलिए नारदजी ने मन ही मन में अपनी वन्दना अर्पित की तथा श्रीभगवान् के दिव्य स्वरूप को अपने हृदय में स्थित करके उन्होंने वायुमार्ग के द्वारा सभा-भवन से प्रस्थान किया । सामान्य रूप से नारदजी पृथ्वी के धरातल पर कभी नहीं चलते, वरन् बाह्य अन्तरिक्ष में भ्रमण करते हैं । नारदजी के प्रस्थान के पश्चात् श्रीकृष्ण ने उस प्रतिनिधि को सम्बोधित किया, जो बन्दी राजाओं के पास से आया था । उन्होंने उससे कहा कि उसे चिन्ता नहीं करनी चाहिए । श्रीकृष्ण से यह आश्वासन प्राप्त करने के पश्चात् वह प्रतिनिधि बन्दी राजाओं के पास लौट गया और भगवान् के आगामी मिलन के शुभ समाचार की सूचना दी । सभी राजागण उस समाचार को सुनकर प्रसन्न हो गए और भगवान् के आगमन की उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा करने लगे ।

भगवान् श्रीकृष्ण का रथ अनेक रथों, हाथियों, अश्वारोही सेनाओं, पैदल सेनाओं तथा इस प्रकार के अन्य उपकरणों के साथ आगे बढ़ने लगा । बिगुल, ढोल, तुरही, शंख तथा घोड़ों के शिरोबन्धों के द्वारा भव्य शुभ ध्वनि उत्पन्न होने लगी, जो चारों दिशाओं में कम्पन उत्पन्न करने लगी । भगवान् श्रीकृष्ण की आदर्श पत्नी भाग्यलक्ष्मी रुक्मिणी के नेतृत्व में १६,००० रानियाँ तथा उनके निजी पुत्र सभी श्रीभगवान् का अनुगमन कर रहे थे । वे सभी आभूषणों से सजे हुए बहुमूल्य वस्त्र धारण किए हुए थे तथा उनका शरीर चन्दन से लिप्त था एवं गले में सुगन्धित वस्त्रों की माला थी । रेशम, झण्डों तथा स्वर्ण डोरियों से सुसजित पालकियों में बैठकर उन्होंने

श्रीकृष्ण का अनुगमन किया । पैदल सैनिक कवच, तलवार तथा बल्लम धारण किए हुए थे तथा रानियों के शाही रक्षक का कार्य कर रहे थे । शोभायात्रा के पृष्ठभाग में उनके अनुयायियों की पत्नियाँ एवं बच्चे थे । उनके पीछे अनेक युवतियाँ थीं । अनेक भारवाही जानवर जैसे-बैल, भैंसा, खच्चर तथा गधे शिविर का सामान यथा दरी-बिस्तर तथा कालीन लादे थे । जो स्त्रियाँ उनके पीछे थीं, वे ऊँट की पीठ पर विभिन्न पालकियों पर बैठी हुई थी । इस विशालदर्शी शोभायात्रा के साथ लोगों की आवाजें उठ रही थीं तथा इसमें विभिन्न प्रकार के रंगीन झण्डे, छाते, चंवर तथा शस्त्र, वस्त्र, आभूषण, शिरस्त्राण तथा विभिन्न प्रकार की युद्ध सामग्री सम्मिलित थी । सूर्य किरणों में प्रतिबिम्बित होने पर वह शोभायात्रा शार्क मछली के साथ ऊँची लहरों से युक्त सागर के समान लग रही थी ।

इस प्रकार भगवान् श्राकृष्ण के दल की शोभायात्रा हस्तिनापुर (नई दिल्ली) की तरफ बढ़ी । वह क्रमश: आनर्त (गुजरात प्रदेश), सौवीर (सूरत), राजस्थान का विशाल रेगिस्तान एवं तत्पश्चात् कुरुक्षेत्र से गुजरती हुई बढ़ रही थी । उन राज्यों के बीच में अनेक पर्वत, नदियाँ, शहर, गाँव, गोचर-भूमियाँ और खनन-क्षेत्र थे । शोभायात्रा आगे बढ़ते हुए इन सभी स्थानों से होकर गुजरी । हस्तिनापुर जाते हुए मार्ग में श्रीभगवान् दो विशाल नदियों दृष्वती तथा सरस्वती से गुजरे । तत्पश्चात् उन्होंने पांचाल-प्रदेश तथा मत्स्य-प्रदेश को पार किया । इस प्रकार, अंत में वे इन्द्रप्रस्थ पहुँचे ।

इन्द्रप्रस्थ नगर में श्रीकृष्ण ५९९ श्रीकृष्ण का दर्शन हम हर स्थान पर नहीं प्राप्त कर सकते । अतएव

बमहाराज युरिने सुना कि भगवान श्रीकणउनकी राजधानी हस्तनापुरमें आ

चुके हैं, तब वे इतना आनन्दित हो उठे कि उल्लास में उनके रोंगटे खड़े हो गए तथा उनका स्वागत करने के लिए महाराज युधिष्ठिर राजधानी से

बाहर आ गए । उन्होंने गायकों को विभिन्न वाद्य उपकरणों से संगीत प्रारम्भ करने का आदेश दिया । राजधानी के विद्वान ब्राह्मण वेदों के मंत्रों का जोर-जोर से उच्चारण करने लगे । श्रीकृष्ण को हृषीकेश या इन्द्रियों का स्वामी कहा जाता है तथा महाराज युधिष्ठिर उनका स्वागत करने ठीक उसी प्रकार गए जैसे इन्द्रियों का मिलन जीवन की चेतना से होता है । महाराज युधिष्ठिर श्रीकृष्ण के वयोवृद्ध भाई थे । स्वभावत: उन्हें श्रीभगवान् के प्रति गहरी अनुरक्ति थी तथा जैसे ही उन्होंने श्रीकृष्ण को देखा, तो उनका हृदय महान् प्रेम तथा स्नेह से भर गया । उन्होंने भगवान् को बहुत दिनों से नहीं देखा था, अतएव उन्होंने श्रीकृष्ण को अपने सम्मुख देखकर स्वयं को अत्यन्त सौभाग्यशाली माना । अतएव महाराज युधिष्ठिर स्नेह से उनका बार-बार आलिंगन

लगे ।

"वाकणक शतरूपा भायदेव लक्ष्मा जीक समान वास है जैसेह महाराज युधिष्ठिर ने उनका आलिंगन किया, वे भौतिक जगत के प्रत्येक संदूषण से मुक्त हो गए । उन्होंने तत्काल ही दिव्य आनन्द का अनुभव किया तथा उल्लास और रोमांच के कारण उनका शरीर काँपने लगा । वे पूर्णतया भूल गए कि वे इस भौतिक जगत में रह रहे हैं । तत्पश्चात् पाण्डवों के दूसरे भाई, भीमसेन ने मुस्कराते हुए यह सोचकर श्रीकृष्ण का आलिंगन किया कि वे अपने स्वयं के भाई हैं तथा वे भी अत्यन्त हर्षोन्माद में लिप्त हो गए । भीमसेन भी इतने उल्लसित हो उठे कि कुछ क्षण के लिए वे भौतिक अस्तित्व को भूल गए । तदुपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं अन्य तीन पाण्डवों अर्जुन, नकुल एवं सहदेव का आलिंगन किया । तीनों भाइयों के नेत्र अश्रुओं से आप्लावित थे तथा अर्जुन भी कृष्ण का बारम्बार आलिंगन करने लगे, क्योंकि वे घनिष्ठ मित्र थे । श्रीकृष्ण द्वारा आलिंगन-बद्ध होने के पश्चात् वे दोनों कनिष्ठ पाण्डव उनकी सादर वन्दना करने के हेतु उनके चरणकमलों पर गिर गए । तत्पश्चात् उपस्थित ब्राह्मणों और

साथ ही साथ भीष्म, द्रोण एवं धृतराष्ट्र जैसे कुरुवंश के सदस्यों की श्रीकृष्ण ने सादर वन्दना की । वहाँ कुरु, सुंजय एवं केकय जैसे अनेक प्रदेशों के अनेक राजा थे तथा श्रीकृष्ण ने उनके साथ वन्दना एवं अभिवादन का यथोचित आदान-प्रदान किया । सूत, मागध एवं वन्दीगण के समान सुनिपुण

गायक तथा ब्राह्मणों ने श्रीभगवान् को अपनी सादर वन्दना अर्पित करनी आरम्भ कर दी । गन्धर्व के समान संगीतकारों एवं कलाकारों के साथ ही शाही विदूषकों ने अपने-अपने बिगुल, ढोल, मृदंग, वीणा, शंख बजाने आरम्भ कर दिए तथा श्रीकृष्ण को आनन्दित करने के लिए अपनी नृत्य-कला का प्रदर्शन करने लगे । अत: सर्वप्रख्यात भगवान् श्रीकृष्ण ने महानगर हस्तिनापुर में प्रवेश किया, जो हर प्रकार से ऐश्वर्यवान् था । जब श्राकृष्ण शहर में प्रवेश कर रहे थे, तब सारे व्यक्ति आपस में श्रीकृष्ण की महिमा के विषय में वार्तालाप कर रहे थे तथा उनके दिव्य नाम, गुण, रूप आदि की प्रशंसा कर रहे थे । हस्तिनापुर की सड़कों, रास्तों एवं गलियों में मदमस्त हाथियों की सूंड़ों से सुगन्धित जल छिड़का गया था । नगर के विभिन्न स्थानों पर घरों एवं रास्तों को सुसजित करने वाले झंडे एवं तोरण लगाये गये थे । मुख्य चौराहों पर स्वर्ण-अलंकृत द्वार थे तथा द्वारों के दोनों कोनों में स्वर्ण के कलश थे । इन अद्‌भुत विभूषणों ने नगर के ऐश्वर्य को और भी महिमान्वित कर दिया था । इस भव्य समारोह में हिस्सा लेने वाले नगर के सभी नागरिक यहाँ-वहाँ एकत्रित हो गए । वे आभूषणों, फूलमालाओं एवं सुगन्धित इत्र से सुवासित रंगीन वस्त्र धारण किए हुए थे । प्रत्येक घर सहस्त्रों दीपकों से प्रदीप्त था, जो दीवारों, खम्भों, तलों तथा प्रस्तरपादों के विभिन्न कोनों में रखे हुए थे तथा दूर से इन दीपकों की किरणों को देखकर ऐसा प्रतीत होता मानो दीपावली महोत्सव मनाया जा

रहा है । घरों के अन्दर सुगन्धित अगरबत्तियाँ जल रही थीं तथा उनका धुआँ खिड़कियों से बाहर निकलकर सम्पूर्ण वातावरण को अत्यन्त सुखद बना रहा था । घर के ऊपर झण्डे लहरा रहे थे तथा छतों पर रखे हुए स्वर्ण कलश चमक रहे थे । अत: श्रीकृष्ण ने वातावरण का आनन्द उठाते हुए पाण्डवों के शहर में प्रवेश किया तथा धीरे-धीरे आगे बढ़ने लगे । प्रत्येक घर में जब नव-युवतियों ने सुना कि देखने योग्य एकमात्र वस्तु श्रीकृष्ण रास्ते से गुजर रहे हैं, तो वे इस सर्व-प्रख्यात व्यक्ति को देखने के लिए अत्यन्त व्याकुल हो उठीं । उनके केश ढीले पड़ गए तथा उनकी चुस्त साड़ियाँ श्रीकृष्ण को देखने की जल्दबाजी में अस्तव्यस्त हो गई । उन्होंने अपने गृह-कार्यों को त्याग दिया और जो अपने पतियों के साथ शैय्या पर विश्राम कर रही थीं, उन्होंने तत्काल ही अपने पतियों को छोड़ दिया तथा श्रीकृष्ण को देखने के लिए पथ पर आ गयीं । हाथियों, घोड़ों, रथों तथा पैदल सेना की उस शोभायात्रा में बहुत भीड़ थी,

N

कुछ लोग भीड़-भाड़ में ठीक से देख नहीं पा रहे थे, अतएव वे घर की छतों पर चढ़कर बैठ गए । भगवान् श्रीकृष्ण को सोलह हजार पत्नियों के साथ जाते हुए देखकर वे अत्यन्त प्रसन्न हुए । वे शोभायात्रा पर फूल बरसाने लगे तथा उन्होंने श्रीकृष्ण का मन ही मन में आलिंगन कर लिया तथा उनका हार्दिक स्वागत किया । जब नव-युवतियों नें उन्हें अपनी पत्नियों के बीच देखा, तो उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि अनेक नक्षत्रों के बीच पूर्ण चन्द्रमा विद्यमान है तथा वे आपस में बात-चीत करने लगीं । एक युवती ने दूसरी से कहा, "प्रिय सखी! यह अनुमान लगाना अत्यन्त कठिन है कि इन रानियों ने किस प्रकार के पुण्यकर्म किए होंगे, क्योंकि वे सदैव ही श्रीकृष्ण के हँसमुख चेहरे तथा श्रीकृष्ण की प्रेममयी झलकों का आनन्द उठाती हैं ।" जब उस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण मार्ग से गुजर रहे

थे, तो शहर के कुछ धनी, प्रतिष्ठित और पापपूर्ण कर्मों से मुक्त नागरिकों ने अवकाश के समय में शुभ वस्तुएँ श्रीकृष्ण को भेंट में दीं । ऐसा उन्होंने उनके स्वागत के लिए किया । इस प्रकार नम्र सेवक के रूप में उन्होंने श्रीकृष्ण की उपासना की । जब श्रीकृष्ण ने महल में प्रवेश किया, तो श्रीकृष्ण को देखने-मात्र से वहाँ पर उपस्थित सभी युवतियाँ स्नेह से अभिभूत हो गई । उन्होंने तत्काल ही चमकती आँखों से श्रीकृष्ण के प्रति अपने प्रेम और स्नेह को व्यक्त करते हुए उनका स्वागत किया तथा उनके सत्कार के कार्य एवं मनोभावों को मुस्कराते हुए स्वीकृत किया । जब पाण्डवों की जननी कुन्ती ने अपने भतीजे भगवान् श्रीकृष्ण को देखा, तो वे प्रेम और स्नेह से अभिभूत हो गयीं । वे तत्काल ही अपनी शैय्या से उठीं एवं अपनी पुत्रवधू द्रौपदी के साथ श्रीकृष्ण के सम्मुख प्रकट हुई और मातृ प्रेम तथा स्नेह में श्रीकृष्ण को उन्होंने आलिंगन-बद्ध कर लिया । जैसे ही कृष्ण को महल के भीतर ले आये, राजा युधिष्ठिर प्रसन्नता के मारे इतने उद्विग्न हो उठे कि व्यावहारिक रूप से भूल ही गए । उस समय उचित रीति से श्रीकृष्ण ने आनन्दपूर्वक कुन्ती बुआ एवं महल की अन्य वयोवृद्ध स्त्रियों को सादर वन्दना अर्पित की । उनकी छोटी बहन सुभद्रा भी द्रौपदी के साथ खड़ी थीं तथा दोनों ने श्रीभगवान् के चरणकमलों में सादर वन्दना अर्पित की । अपनी सास के इशारे पर द्रौपदी वस्त्र, आभूषण तथा मालाएँ ले मित्रविन्दा, लक्ष्मणा तथा सेवानिष्ठ सत्या का स्वागत किया । भगवान् श्रीकृष्ण की इन प्रमुख रानियों का सर्वप्रथम स्वागत किया गया । तत्पश्चात् शेष रानियों की भी उचित रीति से आवभगत की गई । महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण के विश्राम का प्रबन्ध किया तथा इस बात का ध्यान रखा कि जो लोग उनके साथ आए थे उनकी रानियाँ उनके सैनिक, उनके मंत्री तथा उनके सचिव सबको सुनिधाजनक स्थान मिले । उन्होंने व्यवस्था की थी कि पाण्डवों के आतिथ्य में निवास करते हुए उन्हें प्रत्येक दिन नए प्रकार के आदर-सत्कार का अनुभव हो ।

इस समय भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन की सहायता से, अग्निदेव की सन्तुष्टि के लिए, अग्निदेव को खाण्डव वन को निगलने की अनुमति दी । वन में प्रज्वलित अग्नि के मध्य श्रीकृष्ण ने राक्षस मयासुर की रक्षा की, जो वन में छिपा हुआ था । अपने बचाए जाने पर, मयासुर ने स्वयं को पाण्डवों एवं भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति आभारी माना तथा उसने हस्तिनापुर में एक अद्‌भुत सभा-भवन का निर्माण किया । इस प्रकार युधिष्ठिर को प्रसन्न करने के लिए वे अनेक महीनों तक हस्तिनापुर में रहे । अपने निवास के बीच श्रीकृष्ण को यहाँ भ्रमण में बड़ा आनन्द आया । वे रथ में अर्जुन के साथ चला करते थे तथा अनेकानेक वीर और सैनिक उनका अनुगमन करते थे ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "इन्द्रप्रस्थ नगर में श्रीकृष्ण" नामक इकत्तरहवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 72
राजा जरासन्ध की मुक्ति

उस भव्य सभा में माननीय व्यक्ति, नागरिक, मित्रगण, सम्बन्धी, ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्यगण उपस्थित थे । वहाँ अपने भ्राताओं एवं सभी की उपस्थिति में महाराज युधिष्ठिर ने भगवान् श्रीकृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित किया, "对 प्रिय श्रीकृष्ण! राजसूय नामक यज्ञ सम्राट द्वारा सम्पन किया जाता है तथा इसे सभी यज्ञों का राजा माना जाता है । इस यज्ञ को सम्पन्न करके मैं सभी देवताओं को सन्तुष्ट करना चाहता हूँ, जो इस भौतिक विश्व के अन्दर आपके समर्थ प्रतिनिधि हैं । मैं यह भी चाहता

हूँ कि आप कृपापूर्वक इस महान् कार्य में मेरी सहायता करें जिससे उसे सफलतापूर्वक सम्पन किया जा सके । जहाँ तक हम पाण्डवों का प्रश्न है, हमें देवताओं से माँगने के लिए कुछ नहीं है । हम व्यक्तिगत रूप से आपके भक्त बनकर पूर्णरूप से सन्तुष्ट हैं । जैसाकि आप भगवद्गीता में कहते हैं, जो व्यक्ति भौतिक है । मैं इस राजसूय यज्ञ को सम्पादित करना चाहता हूँ और देवताओं को आमंत्रित करके यह दिखाना चाहता हूँ कि उनके पास ऐसी कोई शक्ति नहीं है, जो आपसे स्वतंत्र हो । वे सभी आपके दास हैं तथा आप श्रीभगवान् हैं । ज्ञान के अभाव वाले मूर्ख व्यक्ति आपको सामान्य मानव-मात्र मानते हैं । कभी-कभी वे आप में दोष निकालने का प्रयत्न करते हैं तथा कभी-कभी वे आपको बदनाम करना चाहते हैं । अतएव मैं यह राजसूय यज्ञ सम्पन करना चाहता हूँ । मैं श्री ब्रह्माजी, शिवजी, स्वर्ग लोकों के अन्य प्रमुख सभी देवताओं को आमंत्रित करना चाहता हूँ । उस सभा में पितकवाह कआ । श्रीभगवान् हैं और प्रत्येक व्यक्ति आपका दास हं ।

"मेरे प्रिय भगवान्, जो व्यक्ति सदैव कृष्णभावनामृत में हैं और जो आपके चरणकमलों अथवा आपकी पादुकाओं का स्मरण करते हैं, वे भौतिक जीवन के प्रदूषण से मुक हो जाते हैं । जो व्यक्ति पूर्णरूपेण कृष्णभावनामृत में आपकी सेवा में संलग्न हैं, जो व्यक्ति केवल आपका चिन्तन करते हैं अथवा जो आपके सम्मुख प्रार्थनाएँ अर्पित करते हैं, वे विशुद्ध आत्माएँ हैं । सदैव कृष्णभावनामृत सेवा में संलग्न होने के कारण ऐसे व्यक्ति जन्म और मृत्यु के चक्र से मुक्त हो जाते हैं । वे भौतिक ऐश्वयों का भोग करने अथवा भौतिक जीवन के इस बन्धन से मुक्त होने की भी कामना नहीं रखते, उनकी कामनाएँ कृष्णभावनाभावित कार्यों से पूर्ण हो जाती हैं । जहाँ तक हमारा प्रश्न है, तो हम आपके चरणकमलों में पूर्णतया समर्पित हैं तथा आपकी कृपा से आपको व्यक्तिगत रूप से देख पाने के भाग्यशाली हैं । अत: स्वाभाविक रूप से भौतिक ऐश्वयों की इच्छा हममें

नहीं है । वैदिक ज्ञान का निर्णय है कि आप श्रीभगवान् हैं । मैं इस तथ्य को स्थापित करना चाहता हूँ तथा मैं विश्व को यह दिखाना चाहता हूँ कि आपको श्रीभगवान् के रूप में स्वीकार करने और साधारण व्यक्ति के रूप में स्वीकार करने में कितना अन्तर है । मैं विश्व को दिखाना चाहता हूँ कि कोई व्यक्ति आपके चरणकमलों की शरण लेने मात्र से जीवन की सर्वोच्च पूर्णता प्राप्त कर सकता है, ठीक उसी प्रकार जैसे जड़ों में पानी देने से वह एक वृक्ष की शाखाओं, टहनियों, पत्तियों और फूलों को सन्तुष्ट कर सकता है । अतएव, यदि कोई व्यकित् कृष्णभावनामृत को ग्रहण कर ले, तो उसका जीवन भौतिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से पूर्ण हो जाता है । "इसका यह अर्थ नहीं है कि आप कृष्ण-भक्त के पक्षपाती हैं तथा अभत के प्रति उदासीन हैं । आप सभी के लिए एक समान हैं, यह आपकी घोषणा है । आप एक व्यक्ति का पक्षपात करके दूसरों से उदासीन नहीं हो सकते, क्योंकि परमात्मा के रूप में आप सभी में विद्यमान हैं तथा प्रत्येक व्यक्ति को उसके सकाम कमों का फल देते हैं । आप प्रत्येक जीवात्मा को उसके इच्छानुसार इस भौतिक जगत का रसास्वादन करने का अवसर देते हैं । परमात्मा होने की वजह से आप जीवात्मा के साथ शरीर में विद्यमान हैं तथा जीवात्मा को उसके अपने कार्यों का फल देते हैं और साथ ही कृष्णभावनामृत को विकसित करके अपनी भक्ति करने का सुअवसर भी देते हैं । आप स्पष्ट रूप से घोषित करते हैं कि सभी अन्य धर्मों को त्यागकर हमें आपके प्रति समर्पित होना चाहिए । आप आगे घोषणा करते हैं कि जो कोई सभी अन्य कर्मों का त्याग करके आपके प्रति समर्पित होता है आप उसका उत्तरदायित्व लेंगे तथा सभी पाप-कर्मों के परिणामों से उसे मुक्त कर देंगे । आप कल्पवृक्ष की भाँति हैं, जो मनवांछित वर देता है । हर व्यक्ति सर्वोच्च सिद्धि प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र है, परन्तु यदि कोई इसकी इच्छा न करे, तो आपके द्वारा उसे कोई छोटा वर प्रदान करना पक्षपात नहीं है ।" महाराज युधिष्ठिर का यह कथन सुनकर भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार उत्तर दिया, "मेरे प्रिय

महाराज युधिष्ठिर, हे शत्रुओं के हन्ता, हे आदर्श न्याय के प्रतिरूप । राजसूय यज्ञ को सम्पन करने के आपके निर्णय का मैं पूर्ण रूप से समर्थन करता हूँ । इस महायज्ञ का सम्पादन करके मानव-सभ्यता के इतिहास में आपका शुभ नाम सदैव स्थापित रहेगा । मेरे प्रिय राजा! मैं आपको सूचित करता हूँ कि मुझ सहित, आपके रिश्तेदारों एवं मित्रों, सभी महर्षियों, आपके पूर्वजों एवं देवताओं की यह इच्छा है कि आप इस यज्ञ को सम्पन करें तथा मेरा विचार है कि उससे प्रत्येक जीवात्मा को सन्तोष प्राप्त होगा । चूँकि यह आवश्यक है, अत: मैं आपसे निवेदन करता हूँ कि सर्वप्रथम आप विश्व के सभी राजाओं पर विजय प्राप्त करें और इस महायज्ञ को सम्पन्न करने के लिए सभी आवश्यक सामग्री एकत्रित कर लें । मेरे प्रिय के प्रत्यक्ष प्रतिनिधि हैं । (ऐसा कहा जाता है कि भीम वरुण के द्वारा उत्पन्न हुए थे, अर्जुन इन्द्रदेव के द्वारा उत्पन्न हुए थे, जबकि महाराज युधिष्ठिर यमराज के द्वारा उत्पन्न हुए थे ।) आपके भ्राता महान् वीर हैं तथा आप अत्यन्त पुण्यवान् एवं आत्म-संयमित राजा हैं, इसीलिए धर्मराज के नाम से जाने जाते हैं । मेरे प्रति भक्ति में आप सब इतने योग्य हैं कि अपने-आप ही आप मेरे प्रतिद्वन्द्री बन गए हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर को बताया कि वह उस व्यक्ति के प्रेम से पराजित हो जाते हैं जिसने अपनी इन्द्रियों को जीत लिया है । जिसने इन्द्रियों को नहीं जीता है, वह श्रीभगवान् पर कैसे विजयी हो सकता है? भक्ति का यही रहस्य है । इन्द्रियों को जीतने का अर्थ है कि उनको भगवान् की सेवा में निरन्तर लगा देना । सभी पाण्डव भाइयों का विशेष गुण था कि वे सदैव अपनी इन्द्रियों को भगवान् की सेवा में लगाये रखते थे । जो व्यक्ति इस प्रकार अपनी इन्द्रियों को लगाये रखता है वह विशुद्ध हो जाता है तथा विशुद्ध इन्द्रियों से भगवान् की वास्तविक सेवा करता है । अत: प्रेममयी दिव्य सेवा के द्वारा भत भगवान् पर विजय प्राप्त कर सकता है । भगवान् श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "ब्रह्माण्ड के तीनों लोकों में शक्तिशाली देवताओं सहित ऐसा कोई नहीं है, जो मेरे भक्तों को इन छ: ऐश्वर्यों में पराजित कर

दे । ये ऐश्वर्य इस प्रकार हैं-धन, शक्ति, प्रतिष्ठा, सौन्दर्य, ज्ञान तथा वैराग्य । अतएव, यदि तुम्हें सांसारिक महाराजाओं को जीतना है, तो उनके द्वारा विजयी होने की तनिक भी सम्भावना नहीं है ।" जब इस प्रकार श्रीकृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर को प्रोत्साहित किया, तो महाराज का चेहरा दिव्य आनन्द से खिलते हुए फूल की भाँति चमक उठा और उन्होंने अपने छोटे भाइयों को प्रत्येक दिशा में सभी राजाओं को पराजित करने का आदेश दिया । भगवान् श्रीकृष्ण ने विश्व के नास्तिक दुष्टों को दण्ड देने एवं अपने निष्ठावान् भक्तों की रक्षा करने के उनके महान् कार्य का पालन करने की शक्ति प्रदान की । अपने विष्णु-रूप में, भगवान् अपने चार हाथों में चार प्रकार के शस्त्र धारण करते हैं । दो हाथों में वे कमल पुष्प और शंख धारण करते हैं तथा अन्य दो हाथों में वे गदा और चक्र धारण करते हैं । गदा एवं चक्र अभक्तों के हेतु हैं, परन्तु श्रीभगवान् परम सत्य हैं, अतएव उनके सभी शस्त्रों का फल एक ही होता है । गदा एवं चक्र से वे नास्तिकों को दण्ड देते हैं, जिससे वे होश में आकर यह समझ जाँए कि वे ही सब कुछ नहीं हैं-उनके ऊपर श्रीभगवान् हैं । शंख को बजाकर एवं कमल पुष्प से आशीर्वाद देकर वे सदैव भक्तों को विश्वास दिलाते हैं कि उन्हें कोई भी पराजित नहीं कर सकता, चाहे कितना भी बड़ा संकट क्यों न हो । अतएव भगवान् श्रीकृष्ण के संकेत से आश्वस्त होकर युधिष्ठिर महाराज ने अपने सबसे छोटे भ्राता सहदेव सहित सुंजय वंश के सैनिकों को आदेश दिया कि वे दक्षिणी देशों को पराजित करें । उसी प्रकार उन्होंने नकुल सहित मत्स्य देश के सैनिकों को पश्चिमी दिशा के राजाओं को पराजित करने का आदेश दिया । उन्होंने केकय देश के सैनिकों को अर्जुन के साथ उत्तरी दिशा के राजाओं को हराने का आदेश दिया तथा भीमसेन सहित मद्रदेश (मद्रास) के सैनिकों को आदेश दिया गया कि वे पूर्वी दिशा के राजाओं पर विजय प्राप्त करें । यह ध्यान रखने योग्य बात है कि अपने भ्राताओं को विभिन्न दिशाओं में विजय प्राप्त करने के लिए भेजने के पीछे महाराज युधिष्ठिर का वस्तुत: यह उद्देश्य नहीं था कि वे

राजाओं पर हमला बोल दें । वास्तव में, उनके भ्राता विभिन्न दिशाओं में राजाओं को महाराज युधिष्ठिर के द्वारा राजसूय यज्ञ को सम्पन्न करने के इरादे का समाचार देने गये । इस प्रकार राजाओं को यह सूचित किया गया कि यज्ञ को पूरा करने के लिए उन्हें कर देना पड़ेगा । राजा युधिष्ठिर को कर देने का यह अर्थ होता था कि उस राजा ने उनकी अधीनता स्वीकार कर ली है । इस प्रकार का कार्य करने के लिए किसी राजा द्वारा अस्वीकृति की स्थिति में युद्ध अवश्यम्भावी होता था । अत: उनकी शक्ति एवं प्रभाव के द्वारा उनके भ्राताओं ने विभिन्न दिशाओं के राजाओं को पराजित कर दिया तथा उन्होंने पर्याप्त धन एवं उपहार एकत्रित कर लिए जिन्हें लाकर महाराज युधिष्ठिर के सम्मुख प्रस्तुत किया गया ।

तथापि, जब महाराज युधिष्ठिर ने सुना कि मगध के राजा जरासन्ध ने उनके प्रभुत्व को स्वीकार नहीं किया है, तो वे अत्यन्त उद्विग्न हो उठे । महाराज युधिष्ठिर की उद्विग्नता देखकर भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा जरासन्ध को पराजित करने के लिए उद्धव द्वारा निर्मित योजना की जानकारी दी । भीमसेन, अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण जरासन्ध की राजधानी गिरिव्रज के लिए ब्राह्मणों की वेशभूषा में एकसाथ निकल पड़े । श्रीकृष्ण के हस्तिनापुर जाने के पूर्व उद्धव ने यह योजना बनाई थी और अब उसे व्यावहारिक रूप दिया गया ।

राजा जरासन्ध एक कर्तव्यपरायण गृहस्थ था तथा वह ब्राह्मणों का अत्यन्त आदर करता था । वह एक महान् योद्धा, क्षत्रिय राजा था, किन्तु वैदिक आदेशों की कभी-भी उपेक्षा नहीं करता था । वैदिक आदेशों के अनुसार, ब्राह्मणों को अन्य सभी जातियों का गुरु माना जाता है । श्रीकृष्ण, श्रीअर्जुन एवं श्रीभीमसेन वास्तव में क्षत्रिय थे, परन्तु उन्होंने स्वयं ब्राह्मण का रूप धारण किया और वे उस राजा जरासन्ध के पास गये, जो ब्राह्मणों का आदर-सत्कार करने वाला एवं दान देने वाला था । ब्राह्मणों की वेशभूषा में भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा से कहा, "हम आप श्रीमान् की महिमा की

जयजयकार करते हैं । हम आपके शाही महल के तीन अतिथि हैं तथा हम बहुत दूर से आ रहे हैं । हम आपसे दान माँगने आये हैं तथा हमें आशा है कि आप हमें वह सब कुछ देंगे, जो हम आपसे माँगेंगे । हमें आपके अच्छे गुणों के विषय में ज्ञान है । वह व्यक्ति जो सहनशील होता है, वह कुछ भी सहने के लिए तत्पर रहता है, चाहे वह कितनी भी दुखद स्थिति में क्यों न हो । जिस प्रकार अपराधी कितने भी निकृष्ट कार्य कर सकता है, उसी प्रकार आपके समान दानी पुरुष किसी के द्वारा माँगने पर कुछ भी दे सकता है । आपके जैसे महान् व्यक्ति के लिए रिश्तेदारों एवं गैरों में कोई अन्तर नहीं । एक सुप्रसिद्ध व्यक्ति अपनी मृत्यु के पश्चात् भी सदैव जीवित रहता है । अतएव, कोई व्यक्ति जो ऐसे कार्यों को करने के लिए पूर्णरूपेण उपयुक्त और सुयोग्य है, जो उसके अच्छे नाम को अमर कर सकते हैं, किन्तु तिस पर भी वह ऐसा नहीं करता, तो महान् व्यक्तियों की दृष्टि में वह निकृष्ट बन जाता है । ऐसे व्यक्ति की उपयुक्त निन्दा नहीं की जा सकती तथा दान देने में उसकी अस्वीकृति जीवन-भर के लिए शोचनीय है । आप श्रीमान् ने हरिश्चन्द्र, रन्तिदेव तथा मुद्गल के जो धान के खेतों से चुने गए अन्न खाकर जीवित रहते थे तथा महाराज शिबि, जिन्होंने अपने शरीर से मांस देकर एक कबूतर के प्राणों की रक्षा की थी जैसे दानियों के, विषय में सुना होगा । इन महान् व्यक्तियों ने इस अस्थायी और नाशवान शरीर को मात्र त्यागकर अमर प्रसिद्धि प्राप्त कर ली है ।"
इस प्रकार ब्राह्मण के वेश में श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को सूचित किया कि कीर्ति अविनाशी है, परन्तु यह शरीर नाशवान् है । यदि कोई व्यक्ति अपने नाशवान् शरीर को त्याग कर अविनाशी नाम और कीर्ति प्राप्त कर लेता है, तो मानव सभ्यता के इतिहास में वह सम्मानित व्यक्ति बन जाता है ।
जब ब्राह्मण के वेश में श्री अर्जुन एवं श्री भीम के साथ श्रीकृष्ण बोल रहे थे, तब जरासन्ध ने ध्यान दिया कि वे दोनों ब्राह्मण नहीं लग रहे हैं । धनुष उठाने की वजह से उनके कन्धों पर दबाव के निशान थे, उनके शरीर सुडौल थे तथा उनकी वाणी गम्भीर एवं प्रभावशाली थी । अत: उसने

दृढ़तापूर्वक निष्कर्ष निकाला कि वे ब्राह्मण नहीं अपितु क्षत्रिय थे, किन्तु वे ब्राह्मणों की भाँति भिक्षा माँगने उसके द्वार पर आये थे । अत: उसने निश्चय किया कि उनके क्षत्रिय होते हुए भी वह उनकी इच्छाओं की पूर्ति करेगा । उसने ऐसा इसलिए सोचा, क्योंकि इस प्रकार उसके सम्मुख प्रकट होकर भिक्षा माँगने से ही उनकी स्थिति नष्ट हो चुकी थी । इन परिस्थितियों में, उसने सोचा, "मैं उन्हें कुछ भी देने के लिए तैयार हूँ । यदि वे मेरे शरीर को भी मुझसे माँगे, तो उन्हें उसे दे देने में मैं जरा भी नहीं हिचकूंगा ।" इस सन्दर्भ में, वह बलि महाराज के विषय में सोचने लगा । ब्राह्मण के वेश में विष्णुजी बलि के सम्मुख प्रकट हुए और उसका सारा ऐश्वर्य तथा राज्य छीन लिया । उन्होंने इन्द्र के लाभ के लिए ऐसा किया, क्योंकि बलि महाराज द्वारा परास्त होने पर वह राज्यविहीन हो गया था । यद्यपि बलि महाराज को धोखा दिया गया था, तथापि जो सर्वस्व दान में दे सकता था, ऐसे महान् भक्त के रूप में आज उनकी ख्याति का यशगान तीनों लोकों में किया जाता है । बलि महाराज ने अंदाज लगा लिया था कि वह ब्राह्मण स्वयं श्रीविष्णु हैं और इन्द्रदेव की ओर से उसके ऐश्वर्य को ले लेने मात्र के लिए आये हैं । बलि के

गुरु महाराज और परिवारिक पुजारी शुक्राचार्य ने अनेकानेक बार इस विषय में चेतावनी दी, तो भी ब्राह्मण ने जो कुछ माँगा, बलि ने वह सब दान में दे दिया और अन्त में उसने उस ब्राह्मण को अपना सर्वस्व दे दिया । जरासन्ध ने सोचा, "यह मेरा दृढ़ संकल्प है, कि यदि इस नाशवान् शरीर को त्यागकर मैं अमर प्रसिद्धि प्राप्त कर सकता हूँ, तो मुझे उस उद्देश्य के लिए कार्य करना चाहिए । उस क्षत्रिय के जीवन की अवश्य निन्दा की जाती है, जो ब्राह्मण के कल्याण के लिए नहीं जीता ।" वास्तव में, ब्राह्मणों को दान देने में जरासन्ध अत्यन्त उदार था । अतएव उसने श्रीकृष्ण, श्रीभीम एवं श्रीअर्जुन को सूचित किया: "मेरे प्रिय ब्राह्मणो! तुम मेरे पास

से जो चाहो, वह माँग सकते हो । यदि तुम चाहो, तो तुम मेरा सिर भी ले सकते हो । मैं उसे देने के लिए तैयार हूँ ।" इसके पश्चात् श्रीकृष्ण ने जरासन्ध को इस प्रकार सम्बोधन किया: '' प्रिय राजन्! कृपया ध्यान दीजिए कि हम वास्तव में ब्राह्मण नहीं हैं, न ही हम धन-धान्य माँगने आये हैं । हम क्षत्रिय हैं तथा हम आपसे एक द्वन्द्ध युद्ध की माँग करने आये हैं । हमें आशा है कि आप हमारे प्रस्ताव को स्वीकार करेंगे । आप ध्यान कर सकते हैं कि यहाँ पर पाण्डु के द्वितीय पुत्र भीमसेन एवं तृतीय पुत्र अर्जुन भी उपस्थित हैं । जहाँ तक मेरा प्रश्न है, तो तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि मैं तुम्हारा पुराना शत्रु एवं

जब भगवान् श्रीकृष्ण ने अपनी वास्तविकता बतलाई, तो राजा जरासन्ध जोरजोर से हँसने लगा और फिर अत्यन्त क्रोध एवं गम्भीर ध्वनि में उसने चिल्लाकर कहा, "मूखों! यदि तुम मुझसे लड़ना चाहते हो, तो मैं तुम्हारा निवेदन स्वीकार करता हूँ । परन्तु कृष्ण! मैं जानता हूँ कि तुम कायर हो । मैं तुमसे युद्ध करने से इनकार करता हूँ, क्योंकि तुम मुझसे लड़ते समय घबड़ा जाते हो । मेरे डर से तुमने अपने शहर मथुरा को भी छोड़ दिया तथा अब तुमने सागर के भीतर शरण ली है । अतएव मैं तुमसे युद्ध करने से इनकार करता हूँ । जहाँ तक भीमसेन का प्रश्न उठता है, मैं सोचता हूँ कि मुझसे लड़ने के लिए वह उपयुक्त प्रतिस्पर्धा है ।" इस प्रकार बोलने के बाद राजा जरासन्ध ने तत्काल ही एक बहुत भारी गदा भीमसेन को दी तथा स्वयं एक दूसरी गदा ले ली तथा वे सभी लोग युद्ध करने के हेतु शहर की सीमा से बाहर गये ।

भीमसेन और राजा जरासन्ध युद्ध करने में संलग्न हो गये तथा शक्तिशाली गदाओं से बिजली के समान वे जोर-जोर से एक दूसरे पर वार करने लगे । वे दोनों ही युद्ध के लिए उत्सुक थे । वे दोनों ही गदाओं से युद्ध करने की कला में सुनिपुण थे । एक दूसरे पर वार करने की उनकी तकनीक इतनी सुन्दर थी कि उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत होता कि दो नट मंच पर

नृत्य कर रहे हैं । जब जरासन्ध और भीमसेन की गदाएँ जोर से टकरातीं, तो उसके द्वारा उत्पन्न ध्वनि दो योद्धा हाथियों के विशाल दाँतों की टकर के समान अथवा तूफान में चमकती हुई बिजली के समान प्रतीत होती । जब गन्ने के खेत में दो हाथी युद्ध करते हैं, तो प्रत्येक हाथी गन्ने के तने को ले लेता है और अपनी सूंड़ में उसे पकड़कर एक दूसरे पर आक्रमण करता है । प्रत्येक हाथी अपने शत्रु के कंधों, भुजाओं, हँसलियों, छाती, जंघाओं, कमर तथा पैरों पर प्रहार करता है तथा इस प्रकार गन्ने के तने चकनाचूर हो जाते हैं । उसी प्रकार जरासन्ध तथा भीमसेन के द्वारा प्रयुक्त गदाएँ टूट चुकी थीं, अत: दोनों शत्रु अपनी शक्तिशाली भुजाओं से युद्ध करने के लिए तैयार हो गये । जरासन्ध एवं भीमसेन दोनों क्रोधित थे और अपनी मुट्ठियों से एक दूसरे पर प्रहार करने लगे । उनकी मुट्ठियों का टकराव लोहे की सलाखों के भिड़ने अथवा बिजली की कड़कड़ाहट के समान प्रतीत होता था । उनको देखकर ऐसा प्रतीत होता था कि दो हाथी युद्ध कर रहे हैं । दुर्भाग्य से वे आपस में किसी को भी पराजित नहीं कर पाये, क्योंकि दोनों युद्धकला में निपुण थे, दोनों की शक्तियाँ एकसमान थीं तथा युद्ध की उनकी तकनीक भी एकसमान थी । न तो जरासन्ध न ही भीमसेन युद्ध में पराजित हुए और न ही उन्होंने किसी थकावट का अनुभव किया, यद्यपि वे निरन्तर एक दूसरे पर प्रहार करते रहे । दिवस की समाप्ति होने पर दोनों जरासन्ध के महल में मित्र बनकर रहते तथा अगले दिन वे फिर युद्ध करने लगते । इस प्रकार लड़ते-लड़ते उन्होंने सत्ताइस दिन व्यतीत किये ।

अट्ठाइसवें दिन भीमसेन ने श्रीकृष्ण से कहा, "मेरे प्रिय कृष्ण! मुझे निस्संकोच स्वीकार करना चाहिए कि मैं जरासन्ध को पराजित नहीं कर सकता ।" किन्तु श्रीकृष्ण जरासन्ध के जन्म के रहस्य के विषय में जानते थे । जरासन्ध दो भागों में एवं दो माताओं से उत्पन्न हुआ था । जब उसके पिता ने देखा कि वह शिशु बेकार है, तो उसने दोनों भागों को जंगल में

फेंक दिया, जिन्हें बाद में जरा नामक डाइन ने खोज निकाला । ऊपर से नीचे तक उस शिशु के दोनों भागों को जोड़ने में वह सफल हो गयी । श्रीकृष्ण को यह भी ज्ञात था कि उसे किस प्रकार मारा जा सकता है । उन्होंने भीमसेन को संकेत किया, क्योंकि जरासन्ध को उसके शरीर के दो भागों को जोड़कर जीवित किया गया था, इसलिए उसे इन दो भागों को अलग करके मारा जा सकता है । अतएव श्रीकृष्ण ने अपनी शक्ति को भीम के शरीर में स्थानान्तरित कर दिया तथा उन्हें उस विधि के विषय में सूचित किया जिसके द्वारा जरासन्ध को मारा जा सकता है । तुरन्त ही श्रीकृष्ण ने वृक्ष से एक टहनी तोड़ी और उसे हाथ में पकड़कर दो हिस्से कर दिये । इस प्रकार श्रीकृष्ण ने भीमसेन को संकेत किया कि किस प्रकार जरासन्ध को मारा जा सकता है ।

भगवान् श्रीकृष्ण सर्वशक्तिमान हैं तथा यदि वे किसी व्यक्ति को मारना चाहते हैं, तो कोई भी उस व्यक्ति को नहीं बचा सकता । उसी प्रकार, यदि वे किसी की रक्षा करना चाहते हैं, तो कोई भी उस व्यक्ति को नहीं मार सकता । भगवान् श्रीकृष्ण के संकेतों के अनुसार भीमसेन ने तत्काल ही जरासन्ध के पैरों को पकड़ा तथा उसे धरती पर जोर से पटक दिया । जब जरासन्ध धरती पर गिर गया, तो भीमसेन ने तत्काल ही जरासन्ध के एक पैर को धरती पर दबाया तथा दूसरे पैर को अपने दोनों हाथों से उठाया । जरासन्ध को इस प्रकार पकड़ कर उसने गुदा से लेकर सिर तक उसके शरीर के दो टुकड़े कर दिए । जिस प्रकार हाथी एक वृक्ष की टहनियों के दो टुकड़े करता है, उसी प्रकार भीमसेन ने जरासन्ध के शरीर को दो खण्डों में अलग कर दिया । समीप खड़े हुए प्रेक्षकों ने देखा कि जरासन्ध का शरीर अब दो भागों में विभाजित हो गया है, जिसकी वजह से प्रत्येक भाग में एक पैर, एक जाँघ, एक अण्ड, एक वक्ष, आधी रीढ़ की हड़ी, आधी छाती, एक हॅसली, एक भुजा, एक आँख, एक कान तथा आधा चेहरा था । जैसे ही जरासन्ध की मृत्यु के समाचार की घोषणा हुई, वैसे

ही मगध के सभी नागरिक हाय-हाय करके चिल्लाने लगे जबकि भगवान् श्रीकृष्ण एवं अर्जुन भीम को बधाई देने के लिए उनका आलिंगन करने लगे । यद्यपि जरासन्ध की मृत्यु हो चुकी थी, किन्तु न तो श्रीकृष्ण ने और न दोनों पाण्डव भ्राताओं ने सिंहासन की माँग की । जरासन्ध को मारने का उनका उद्देश्य सांसारिक शान्ति में उत्पन्न बाधा को.....

रक्षा करना तथा उन दानवों का वध करना है, जो शान्तिमय स्थिति को भंग करते हैं । अतएव भगवान् श्रकृष्ण ने तुरन्त जरासन्ध के पुत्र सहदेव को बुलाया और उचित धर्मक्रियाओं को सम्पन्न करके उससे अपने पिता की गद्दी पर बैठकर अपने राज्य पर शान्तिपूर्वक शासन करने के लिए कहा । भगवान् श्रीकृष्ण सम्पूर्ण सृष्टि के स्वामी हैं तथा वे चाहते हैं कि सभी सूखपूर्वक रहें और कृष्णभावनामृत का पालन करें । सहदेव को सिंहासन पर बिठाने के पश्चात्, उन्होंने उन सभी राजाओं एवं राजकुमारों को मुक्त कर दिया, जिन्हें जरासन्ध ने अकारण ही बन्दी बनाकर रखा था ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "राजा जरासन्ध की मुक्ति" नामक बहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 73
भगवान् श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर में वापसी

जरासन्ध की मुत्यु के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा मुक्त किये गये राजा विश्व के विभिन्न भागों के शासक थे । सैन्य बल में जरासन्ध इतना शक्तिशाली था कि उसने इन सभी राजकुमारों एवं राजाओं को पराजित कर दिया था, जिनकी संख्या २०,८०० थी । वे सभी पहाड़ की एक गुफा

में बन्दी थे, जिसे किले के रूप में विशेष रूप से निर्मित किया गया था । उन्हें काफी समय तक इस प्रकार रखा गया था । जब भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से उन सबको मुक्त किया गया, तो वे अत्यन्त दुखी दिख रहे थे, वे फटेहाल थे तथा उनके चेहरे उचित शारीरिक देखभाल की कमी के कारण सूख गये थे । भूख के कारण वे अत्यंत कमजोर हो गये थे तथा उनके चेहरे पर सुन्दरता एवं चमक का अभाव था । राजाओं के द्वारा इतने लम्बे काल तक बन्दी रहने की वजह से उनके शरीर का प्रत्येक भाग सुस्त एवं दुर्बल हो गया था । परन्तु जीवन की उस दुखमय स्थिति में पीड़ा उठाने के पश्चात् भी उनके पास भगवान् श्रीविष्णु को स्मरण करने का अवसर था । अब अपने सम्मुख उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण का दिव्य शरीर देखा, जो आकाश में आये हुए नवीन बादल के वर्ण के समान था । वे उनके सम्मुख सुन्दर, पीले रेशमी वस्त्रों में विष्णु के समान चार भुजाओं सहित तथा हाथों में गदा, शंख, चक्र तथा कमल पुष्प धारण किये प्रकट हुए । उनकी छाती पर स्वर्ण रेखाओं के निशान थे तथा उनके वक्ष के स्तनाग्र कमल पुष्प के चक्र के समान प्रतीत हो रहे थे । उनके नेत्र कमलपुष्प की पंखुड़ियों के समान लग रहे थे तथा उनका मुस्कराता चेहरा सनातन शान्ति एवं सम्पन्नता के लक्षण प्रकट कर रहा था । उनके चमकते हुए कर्णफूल सुन्दर लग रहे थे तथा उनका मुकुट बहुमूल्य रत्नों से अलंकृत था । श्रीभगवान् की मोतियों की माला तथा कंगन उनके शरीर पर बहुत ही उपयुक्त जगह पर स्थित थे । वे दिव्य सुन्दरता के कारण चमक रहे थे । उनकी छाती पर लटकता हुआ कौस्तुभ मणि अत्यधिक कान्ति के साथ चमक रहा था । श्रीभगवान्ने पुष्प की एक सुन्दर माला पहन रखी थी । इतनी दुखद स्थिति के पश्चात् जब राजाओं एवं राजकुमारों ने सुन्दर दिव्य रूप वाले भगवान् श्रीकृष्ण को देखा, तो वे जी-भर उनकी ओर देखते रहे, मानो अपने नेत्रों से अमृत का रसास्वादन कर रहे हों, उनके शरीर को अपनी जिह्वा से चाट रहे हों, अपने नाक से उनके शरीर की सुगन्ध ले रहे हों तथा अपनी भुजाओं से उनका आलिंगन कर रहे हों

। श्रीभगवान् के सम्मुख होने से उनके पापपूर्ण कार्यों के सारे फल धुल गये । अतएव बिना संकोच किये उन्होंने श्रीभगवान् के चरणकमलों की शरण ली । भगवद्गीता में यह कहा गया कि जब तक व्यक्ति अपने पापपूर्ण कार्यों से मुक्त नहीं हो जाता, तब तक वह पूर्णतया श्रीभगवान् के चरणकमलों में समर्पित नहीं हो सकता । वे सभी राजकुमार, जिन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन किये, अपने पिछले सभी कष्ट भूल गये । वे हाथ जोड़कर तथा अत्यन्त भक्ति के साथ इस प्रकार श्रीकृष्ण की सादर वन्दना करने लगे"प्रिय भगवान्! देवाताओं के स्वामी ! आप भक्तों की सभी पीड़ा को दूर कर सकते हैं, क्योंकि भक्तगण आपके प्रति पूर्णतया समर्पित होते हैं । हे श्रीकृष्ण! दिव्य आनन्द एवं ज्ञान के सनातन श्रीमूर्ति! आप अविनाशी हैं और हम आपके चरणकमलों में सादर वन्दना अर्पित करते हैं । यह आपकी अहैतुकी कृपा है कि हम जरासन्ध के बन्धन से मुक्त हो गये हैं, परन्तु अब हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप हमें भौतिक जगत की इस भ्रामक शक्ति के बन्धन से मुक्त करें । अत: कृपापूर्वक जन्म और मृत्यु के हमारे निरन्तर चक्र को रोकिये । जीवन की इस दुखमय भौतिक स्थिति का हमें उपयुक्त अनुभव हो गया है, जिसमें हम पूर्णतया लीन हैं तथा उसकी कटुता का आस्वादन करने के पश्चात् हम आपके चरणकमलों की शरण लेने के लिए आये हैं । हे भगवान् ! हे मधु राक्षस को मारनेवाले! हम अब स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि इसमें जरासन्ध की जरा भी गलती नहीं थी । यह वास्तव में आपकी अहैतुकी कृपा के कारण हुआ है कि हम अपने राज्य से वियुक्त हो गये, क्योंकि हम स्वयं को राजा-महाराज कहने में अत्यन्त अभिमान का अनुभव करते थे । जो भी शासक अथवा राजा मिथ्या अहंकार एवं शक्ति के कारण फूल जाता है, वह अपनी वास्तविक मूलभूत स्थिति एवं सनातन जीवन को समझने का अवसर नहीं प्राप्त करता । भ्रामक माया के प्रभाव में ऐसे तथाकथित शासक एवं राजा अपनी उपाधि पर छल से गर्व रखते हैं, वे उस मूर्ख व्यक्ति के समान हैं, जो समझता है कि रेगिस्तान में मृगमरीचिका पानी

का एक भण्डार हैं । मूर्ख व्यक्ति सोचते हैं कि उनकी भौतिक उपलब्धियाँ उनकी रक्षा करेंगी तथा जो इन्द्रिय-तृप्ति में संलग्न हैं, वे इस भौतिक जगत को सनातन आनन्दोपभोग का स्थान मानते हैं । हे भगवान! हम स्वीकार करते हैं कि इससे पूर्व हम अपने भौतिक ऐश्वर्यों से फूल गये थे, क्योंकि हम एक दूसरे से ईष्या करते थे और एक दूसरे को जीतने की चाह में सत्ता के लिए युद्ध में संलग्न हो गये और हमने अपने नागरिकों के जीवन तक की चिन्ता नहीं की ।"

राजनैतिक शक्ति का यही रोग है । जैसे ही कोई राजा अथवा राष्ट्र भौतिक ऐश्वर्यों में सम्पन्न होता है, वैसे ही सैन्य आक्रमण के द्वारा वह अन्य राष्ट्रों पर शासन करना चाहता है । इसी प्रकार, व्यापारिक पुरुष किसी विशेष प्रकार के व्यवस्थाय पर एकाधिकार प्राप्त करना चाहते हैं तथा अन्य व्याव्यवस्थायिक प्रतिष्ठानों पर नियंत्रण रखना चाहते हैं । मिथ्या अहंकार के द्वारा पदच्युत करने तथा भौतिक ऐश्वर्यों के द्वारा मोहित होने के पश्चात्, कृष्णभावनामृत की प्राप्ति का प्रयास करने के बजाय मानवसमाज अस्त-व्यस्तता उत्पन्न करता है तथा शान्तिमय जीवन को भंग करता है । अतएव लोग जीवन का वास्तविक उद्देश्य भूल जाते हैं, जो कि भगवान् श्रीविष्णु की कृपादृष्टि प्राप्त करना है ।

राजाओं ने आगे कहा, "हे भगवान् ! हम नागरिकों को मारने एवं उन्हें बिना कारण मारे जाने के लिए मोहित करने के घृणित कार्य में संलग्न थे तथा अपनी राजनैतिक सनक को सन्तुष्ट कर रहे थे । हमने यह बात नहीं समझी कि दुष्ट मृत्यु के रूप में आप हमारे सम्मुख सदैव उपस्थित हैं । हम इतने मूर्ख बन गये थे कि अपनी स्वयं की आसन्न मृत्यु को भूलकर हम दूसरों के लिए मौत का कारण बनते रहे । परन्तु प्रिय भगवन्! आपके प्रतिनिधि काल (समय) के प्रतिशोध पर अवश्य ही विजय प्राप्त नहीं की जा सकती । काल तत्व इतना बलवान् है कि कोई भी व्यक्ति उसके प्रभाव से बच नहीं सकता । अतएव अपने पाशविक कार्यों के फल को

हमने प्राप्त कर लिया है तथा अब हम सभी समृद्धि से मुक्त हैं और आपके सम्मुख भिखारियों के समान खड़े हैं । हम अपनी स्थिति को अपने ऊपर आपकी अहैतुकी विशुद्ध कृपा मानते हैं, क्योंकि अब हम समझ सकते हैं कि हम धोखे से घमण्डी थे तथा आपकी इच्छा से हमारे भौतिक ऐश्वर्यों को हमसे हटाया जा सकता था । यह आपकी अहैतुकी कृपा है, जिसके कारण हम आपके चरणकमलों का स्मरण कर पाये हैं । यही हमारा सर्वोत्तम लाभ है । प्रिय भगवन्! यह प्रत्येक व्यक्ति को ज्ञात है कि यह शरीर व्याधि-मन्दिर है । अब हम पर्याप्त वृद्ध हो चुके हैं एवं अपने शरीर की शक्ति पर अभिमान करने के बजाय हम प्रत्येक दिन दुर्बल होते जा रहे हैं । हम अब इन्द्रिय-तृप्ति में अथवा भौतिक शरीर से प्राप्त मिथ्या आनन्द में जरा भी रुचि नहीं रखते । आपकी कृपा से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि भौतिक आनन्द के लिए उत्कण्ठा करना रेगिस्तान की मृगमरीचिका में जल की खोज करने के समान है । हम अपने पुण्यकर्मों के परिणाम में रुचि नहीं रखते । उदाहरणार्थ स्वर्गीय लोकों को प्राप्त करने के लिए महायज्ञों का सम्पादन करने में, हमारी रुचि नहीं है । अब हम समझते हैं कि जीवन के उच्च भौतिक स्तर में उन्नति आकर्षक लग सकती है, परन्तु वास्तव में इस भौतिक जगत में आनन्द नहीं हो सकता । हम आप श्रीमान् से प्रार्थना करते हैं कि आप हमें यह बताने की कृपा करें कि किस प्रकार हमें आपके चरणकमलों की दिव्य सेवा में संलग्न होना चाहिए जिससे हम आप श्रीमान् से अपने शाश्वत सम्बन्ध को कभी न भूल सकें । हम इस भौतिक बन्धन से मुक्ति नहीं चाहते । आपकी इच्छा से हम जीवन की किसी भी योनि में जन्म ले सकते हैं । हम केवल यही प्रार्थना करते हैं कि किसी भी परिस्थिति में आपके चरणकमलों को न भूलें । प्रिय भगवन्! अब हम आपकी सादर वन्दना करके आपके चरणकमलों में समर्पित होते हैं, क्योंकि आप परम भगवान् वसुदेवनन्दन श्रीकृष्ण हैं । आप प्रत्येक के हृदय में स्थित परम-आत्मा हैं तथा आप भगवान् श्रीहरि हैं, जो भौतिक अस्तित्व की दुखद

स्थितियों को छीन सकते हैं । प्रिय भगवान्! आपका नाम आनन्द का भण्डार, श्रीगोविन्द, है । जो व्यक्ति आपकी इन्द्रियों को तृप्त करने में लीन रहता है, वह अपने-आप ही अपनी इन्द्रियों को तृप्त कर लेता है । अतएव आपको गोविन्द के नाम से जाना जाता है । प्रिय प्रभु! आप नित्य प्रसिद्ध हैं क्योंकि आप अपने भक्तों के सभी दुखों को दूर कर सकते हैं । अतएव कृपा करके आप हमें अपना समर्पित सेवक स्वीकार करें ।"

जरासन्ध के बन्दीगृह से छुटे हुए सभी राजाओं की प्रार्थनाएँ सुनने के पश्चात्, बद्ध जीवात्माओं के रक्षक एवं भक्तों के लिए कृपा-सागर श्रीकृष्ण ने अपनी मधुर दिव्य ध्वनि में उत्तर दिया, जो गंभीर एवं अर्थपूर्ण थी "मेरे प्रिय राजाओ! मैं तुम्हें आशीर्वाद देता हूँ । इस दिन से तुम सदैव मेरी भक्ति में अवश्य ही संलग्न रहोगे । मैं तुम्हें यह वरदान देता हूँ, जैसी कि तुम्हारी इच्छा थी । तुम्हें मैं सूचित करता हूँ कि मैं सदैव तुम्हारे हृदय में परमात्मा बनकर निवास करता हूँ और चूँकि तुम लोगों ने अब मेरा आश्रय लिया है, अत: सबका स्वामी, मैं तुम्हें अच्छा परामर्श ढूँगा जिससे तुम मुझे कभी नहीं भूलोगे और जिससे तुम धीर-धीरे अपने धाम, भगवत्-धाम, को पुनः वापस आ जाओगे । मेरे प्रिय राजाओ । भौतिक आनन्द को त्यागकर मेरी भक्ति करने की तुम लोगों की धारणा वास्तव में तुम्हारे सौभाग्य का लक्षण है । अब से तुम सदैव आनन्दमय जीवन का भोग करोगे । मैं इस बात की पुष्टि करता हूँ कि तुम लोगों ने अपनी प्रार्थना में मेरे विषय में जो कुछ कहा है, वह सत्य है । यह तथ्य है कि जो व्यक्ति कृष्ण-भत नहीं है, उसकी भौतिक ऐश्वर्यपूर्ण स्थिति ही उसके पतन एवं भ्रामक शक्ति का शिकार बनने का कारण बनती है । भूतकाल में अनेक विद्रोही राजा हुए हैं, जैसे हैहय, नहुष, वेन, रावण तथा नरकासुर । इनमें से कुछ देवता थे, परन्तु अपनी उपाधि के गलत बोध के कारण वे अपने श्रेष्ठ पदों से गिर गए तथा इस प्रकार वे अपने राज्यों के राजा बने नहीं रह पाए ।"

"बद्ध जीवन के बन्धन में खोकर तुम सबको यह समझना चाहिए कि प्रत्येक भौतिक वस्तु का प्रारम्भिक बिन्दु, उत्पत्ति, विकास, विनाश तथा अन्ततः तिरोभाव होता है । सभी भौतिक शरीर इन छह स्थितियों के अधीन होते हैं । इस शरीर के द्वारा जो भी सम्बद्ध उपलब्धियाँ एकत्रित की जाती हैं, उनका नाश अवश्य ही होता है । अतएव किसी भी व्यक्ति को नाशवान् वस्तुओं से सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए । जब तक व्यक्ति इस प्राकृत शरीर में बद्ध रहता है, तब तक उसे सांसारिक कार्यकलापों से सावधान रहना चाहिए । इस भौतिक जीवन का सर्वश्रेष्ठ मार्ग मेरी दिव्य भक्ति में समर्पित हो जाना और ईमानदारी के साथ जीवन की अपनी विशेष स्थिति के निर्धारित कर्तव्यों का पालन करना है । जहाँ तक तुम लोगों का प्रश्न है, तुम लोग तो क्षत्रिय वंश के हो । अतएव तुम्हें राजोचित पद्धति के योग्य निर्धारित कर्तव्यों के अनुसार ईमानदारी के साथ जीवन व्यतीत करना चाहिए । तुम्हें अपने नागरिकों को प्रत्येक दृष्टि से प्रसन्न रखना चाहिए । क्षत्रिय जीवन के स्तर को बनाए रखो । इन्द्रियतृप्ति के कारण बच्चों की उत्पत्ति मत करो, अपितु सामान्यतः लोगों के कल्याण का कार्यभार सँभालो । अपने पिछले जीवन की दूषित इच्छाओं के कारण प्रत्येक व्यक्ति इस भौतिक जगत में जन्म लेता है । इस प्रकार वह प्रकृति के कठोर नियमों, जैसे जन्म तथा मृत्यु, सुख और दुख, लाभ एवं हानि के अधीन हो जाता है । व्यक्ति को द्विविध विचारों से विचलित नहीं होना चाहिए, वरन् मेरी सेवा में स्थिर रहना चाहिए । जो इस प्रकार यह जान कर कि सभी वस्तुएँ मेरे द्वारा उपलब्ध करायी जाती हैं, मन में स्थिर रहते हैं तथा सभी परिस्थितियों में सन्तुष्ट रहते हैं । और मेरी भक्ति में संलग्न रहकर उसमें अविचलित रहते हैं, वे इस प्रकार इस भौतिक परिस्थिति में रहकर भी सुखी एवं शान्तिमय जीवन व्यतीत कर सकते हैं । दूसरे शब्दों में, प्रत्येक व्यक्ति को इस शरीर तथा उसकी उत्पति के प्रति निर्मम रहना चाहिए तथा उससे अप्रभावित रहना चाहिए । उसे जीवात्मा के लाभ के लिए पूर्णतया सन्तुष्ट रहना चाहिए तथा स्वयं को परमात्मा की सेवा में

व्यस्त रखना चाहिए । व्यक्ति को अपना मन मुझ पर केन्द्रित करना चाहिए, उसे मेरा भक्त बनना चाहिए, उसे मेरी उपासना करनी चाहिए तथा उसे केवल मेरी ही सादर वन्दना करनी चाहिए । इस प्रकार व्यक्ति बहुत सरलतापूर्वक अज्ञान के महासागर को पार करके अन्त में मुझे शतक सकता है । निकल तुम्हाराजन संव मे सेवा में लगा रहाना।kkkk"

राजाओं एवं राजकुमारों को उपदेश देने के पश्चात्, भगवान् श्रीकृष्ण ने तत्काल उनके विश्राम की व्यवस्था की तथा अनेक सेवकों एवं सेविकाओं को उनकी देखरेख करने के लिए कहा । श्रीकृष्ण ने जरासन्ध के पुत्र सहदेव से निवेदन किया कि वे राजाओं की सभी आवश्यकताओं की पूर्ति करें तथा उनके प्रति पूर्ण आदर एवं सम्मान का प्रदर्शन करें । श्रीकृष्ण के आदेश का निष्पादन करते हुए श्रीसहदेव ने उन्हें पूर्ण सम्मान दिया तथा उनको आभूषण, वस्त्र, मालाएँ तथा अन्य सामग्रियाँ भेंट में दीं । स्नान करके एवं नवीन वस्त्र धारण करने के पश्चात् सभी राजा प्रसन्न एवं सौम्य प्रतीत हुए । तत्पश्चात् उन्हें अच्छी भोजन-सामग्री उपलब्ध करायी गई । भगवान् श्रीकृष्ण ने उनकी सुविधा के लिए सब कुछ उपलब्ध कराया, जो कि उनकी राजकीय स्थिति के अनुकूल था । राजाओं के साथ श्रीकृष्ण ने अत्यन्त दयालुता से व्यवहार किया, अतएव उन्होंने परम आनन्द का अनुभव किया । उनके चमकते चेहरे बरसात के मौसम के बाद आकाश में प्रकट होने वाले तारों के समान प्रतीत हो रहे थे । वे बहुत ही उत्तम रीति से सुसजित तथा अलंकृत थे एवं उनके कर्णफूल चमक रहे थे । उसके पश्चात् प्रत्येक राजा को स्वर्ण एवं रत्नों से अलंकृत रथ पर बिठाया गया जिन्हें सुसजित घोड़े खींच रहे थे । यह देखने के पश्चात् कि सभी की देखभाल की गई है, श्रीकृष्ण ने अपनी मधुर ध्वनि में राजाओं को अपने-अपने निजी राज्यों में लौट जाने के लिए कहा । विश्व के इतिहास में अपने अद्वितीय व्यवहार के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण ने उन सभी राजाओं को मुक्त कर दिया, जो जरासन्ध के चंगुल में फैंसे हुए थे । पूर्णतया सन्तुष्ट होकर

सभी राजा उनके पवित्र नाम का गान करने, उनके पवित्र रूप का स्मरण करने तथा श्रीभगवान् के रूप में उनकी दिव्य लीलाओं को महिमामण्डित करने के कार्य में संलग्न हो गए ।

इस प्रकार श्रीभगवान् की सेवा में संलग्न होकर वे अपने निजी राज्यों में लौट गए । उनके राज्यों के नागरिक उन्हें वापस आया देखकर अत्यन्त प्रसन्न हुए और जब उन्होंने श्रीकृष्ण के उदार व्यवहार के विषय में सुना, तो वे अत्यधिक प्रसन्न हुए । भगवान् श्रीकृष्ण के उपदेशों के अनुसार सभी राजाओं ने अपने राज्यों के कार्यों को संचालित किया तथा उन सभी राजाओं एवं उनकी प्रजा ने अपना जीवन आनन्दपूर्वक व्यतीत किया । कृष्णभावनामृत संघ इसका सजीव उदाहरण है । यदि इस विश्व के सभी लोग समाज को अपने भौतिक गुणों के अनुसार भौतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति के लिए चार वर्णों में विभाजित कर दें, जो श्रीकृष्ण पर केन्द्रित हों और भगवद्गीता के अनुसार श्रीकृष्ण के उपदेशों का पालन करते हों, तो सम्पूर्ण मानव-समाज अवश्य ही प्रसन्नचित रहेगा ।

अत: भीमसेन के द्वारा जरासन्ध का विनाश करने तथा जरासन्ध के पुत्र सहदेव के द्वारा उचित रूप से सम्मानित होने के पश्चात् भीमसेन एवं अर्जुन सहित श्रीकृष्ण हस्तिनापुर लौटे । जब वे हस्तिनापुर के सीमा-क्षेत्र में आ गए, तब उन्होंने अपना निजी शंख बजाया तथा उसकी ध्वनि सुनकर एवं जानकर कि कौन आ रहा है, सभी लोग अत्यन्त प्रफुल्लित हो उठे । परन्तु उस शंख की ध्वनि सुनकर श्रीकृष्ण के शत्रु अत्यन्त उदास हो गए । इन्द्रप्रस्थ के नागरिकों ने श्रीकृष्ण के शंख की ध्वनि सुननेमात्र से अपने हृदय में आनन्द का अनुभव किया, क्योंकि वे समझ सकते थे कि जरासन्ध का वध हो चुका है । अब महाराज युधिष्ठिर द्वारा राजसूय यज्ञ का सम्पन्न होना लगभग निश्चित हो गया था । भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीअर्जुन एवं श्रीभीमसेन महाराज युधिष्ठिर के सम्मुख आए तथा उन्होंने महाराज को अपना सम्मान प्रदर्शित किया । महाराज युधिष्ठिर ने

ध्यानपूर्वक जरासन्ध के वध और राजाओं की मुक्ति के विषय में सुना । उन्होंने श्रीकृष्ण द्वारा अपनायी गई युक्ति के विषय में भी सुना । महाराज युधिष्ठिर स्वाभाविक रूप से श्रीकृष्ण के प्रति स्नेही थे, परन्तु सम्पूर्ण कथन सुनने के पश्चात् श्रीकृष्ण के प्रति उनका प्रेम और अधिक बढ़ गया । उनके नेत्रों से आनन्द के आँसू बह चले तथा वे इतने चकित हो उठे कि वे बोलने में लगभग असमर्थ थे ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण की हस्तिनापुर में वापसी" नामक तिहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 74
शिशुपाल का उद्धार

जरासन्ध की घटना का विवरण सुनने के पश्चात महाराज युधिष्ठिर अत्यन्त प्रसन्न हुए तथा उन्होंने इस प्रकार कहना आरम्भ किया, "मेरे प्रिय श्रीकृष्ण! आनन्द एवं ज्ञान के हे शाश्वत स्वरूप, श्रीब्रह्मा, श्रीशिव एवं राजा इन्द्र सहित इस भौतिक जगत के कार्यकलापों के उच्च निर्देशक भी आपसे आदेश पाकर उसे सम्पन्न करने के लिए उत्सुक रहते हैं और जब भी वे सौभाग्यवश ऐसे आदेश पाते हैं, वे तत्काल ही उन्हें ग्रहण करके अपने हृदय में अवस्थित करते हैं । हे कृष्ण! आप अनन्त हैं और यद्यपि हम स्वयं को शाही राजा एवं जगत के शासक के रूप देखते हैं तथा अपनी निकृष्ट स्थितियों से फूल जाते हैं, तथापि हम हृदय से अत्यन्त दरिद्र हैं । वास्तव में हम आपके द्वारा दण्डित होने के योग्य हैं परन्तु अद्भुत बात यह है कि हमें दण्डित करने के स्थान पर आप हमारे आदेशों को

उदारता एवं दयालुतापूर्वक ग्रहण करते हैं और उनका उचित ढंग से पालन करते हैं । आप किसी नाटकीय कलाकार की ही भाँति इन क्रियाओं को निभा रहे हैं । आपकी वास्तविक स्थिति सदैव उच्च है, ठीक सूर्य के समान, जो अपने उदय और अस्त होते समय भी एक ही तापमान पर बना रहता है । यद्यपि उदीयमान सूर्य एवं अस्तंगत सूर्य के बीच तापमान में हम अन्तर का अनुभव करते हैं, तथापि सूर्य का तापमान कभी नहीं बदलता । आप हमेशा ही आध्यात्मिक दृष्टि से साम्यावस्था में रहते हैं, अत: भौतिक क्रियाकलापों की किसी भी परिस्थिति से आप चिन्तित अथवा प्रसन्न नहीं होते । आप परम ब्रह्म, श्रीभगवान् हैं तथा आपके लिए कोई सम्बन्धी नहीं है । मेरे प्रिय माधव! आप किसी से भी पराजित नहीं हो सकते ।' यह मैं हूँ', 'यह तुम हो', 'यह तुम्हारा है', 'यह मेरा है ।' जैसी भौतिक उपाधियाँ आपमें स्पष्ट रूप से अविद्यामान हैं । ऐसे भेद प्रत्येक के जीवन में दृष्टिगोचर होते हैं, यहाँ तक कि पशुओं के भी, परन्तु जो विशुद्ध भक्त हैं, वे इन मिथ्या भेदों से मुक्त हो जाते हैं । चूँकि ये भेद आपके भक्तों में अविद्यामान हैं, इसलिए वे आपमें विद्यमान नहीं हो सकते ।" इस प्रकार श्रीकृष्ण को सन्तुष्ट करने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ सम्पन्न करने का प्रबन्ध किया । उन्होंने सभी योग्य ब्राह्मणों एवं ऋषियों को हिस्सा लेने के लिए आमंत्रित किया तथा यज्ञ-शाला में विभिन्न पदों पर पुरोहितों के रूप में नियुक्त किया । उन्होंने अत्यन्त निपुण ब्राह्मणों एवं ऋषियों को आमंत्रित किया, जिनके नाम इस प्रकार हैं : कृष्णद्वैपायन, व्यासदेव, भरद्वाज, सुमन्तु, गौतम, असित, वीतिहोत्र, मधुच्छन्दा, वीरसेन तथा अकृतव्रण । इन सभी ब्राह्मणों एवं ऋषियों के अतिरिक्त उन्होंने द्रोणाचार्य, कुरुओं के पितामह भीष्म, कृपाचार्य तथा धृतराष्ट्र जैसे आदरणीय वयोवृद्ध व्यक्तियों को भी आमंत्रित किया । उन्होंने दुर्योधन के नेतृत्व में धृतराष्ट्र के सभी पुत्रों को भी आमंत्रित किया तथा महान् भक्त विदुर को भी आमंत्रित किया गया । महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित महायज्ञ को देखने के लिए विश्व के विभिन्न भागों

से राजाओं एवं उनके मंत्रियों तथा सचिवों को भी आमंत्रित किया गया । बुद्धिमान ब्राह्मणों, वीर क्षत्रियों, सम्पन्न वैश्यों तथा निष्ठावान् शूद्रों के साथसाथ नागरिकों ने भी इस समारोह में भाग लिया । इस यज्ञ-सम्बन्धी समारोह के अधिकारी ब्राह्मण-पुजारियों एवं ऋषियों ने प्रथा के अनुसार स्वर्ण के हल से यज्ञ-शाला का निर्माण किया । उन्होंने वैदिक कृत्यों के अनुसार महाराज युधिष्ठिर को इस महायज्ञ का सम्पादनकर्ता के रूप में दीक्षित किया । अनेक वर्षों पूर्व जब वरुण ने इसी प्रकार का महायज्ञ सम्पन्न किया था तब यज्ञ में उपयोग किए गए सभी पात्र स्वर्ण से निर्मित थे । उसी प्रकार, महाराज युधिष्ठिर के राजसूय यज्ञ के लिए आवश्यक सभी पात्र स्वर्णिम थे । महाराज युधिष्ठिर के द्वारा आयोजित इस महायज्ञ में हिस्सा लेने के लिए ब्रह्माजी, शिवजी तथा स्वर्ग के राजा इन्द्र जैसे उच्च देवतागण उपस्थित थे । उनके साथ सहयोगी भी थे । इसके अतिरक्त गन्धर्वलोक, सिद्धलोक, जनलोक, तपोलोक, नागलीक, यक्षलोक, राक्षसलोक, पक्षीलोक तथा चारणलोक जैसे उच्चलोकों के श्रेष्ठ देवतागण तथा सुप्रसिद्ध राजा एवं उनकी रानियाँ सभी महाराज युधिष्ठिर के निमंत्रण पर उपस्थित थे । वहाँ पर उपस्थित सभी सम्माननीय ऋषियों, राजाओं तथा देवताओं ने सर्वसम्मति से स्वीकार किया कि राजसूय महायज्ञ को करने की जिम्मेदारी सँभालने के लिए वे पूर्णरूपेण सक्षम थे । इस तथ्य के विषय में असहमति रखने वाला एक भी व्यक्ति न था । वे सभी महाराज युधिष्ठिर की स्थिति को पूर्ण रूप से जानते थे, क्योंकि वे श्रीकृष्ण के एक महान् भक्त थे तथा उनके लिए कोई भी उपलब्धि असाधारण नहीं थी । गुणी ब्राह्मणों एवं पुजारियों ने इस बात का ध्यान रखा कि महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित महायज्ञ का सम्पादन ठीक उसी प्रकार हो जिस प्रकार पूर्व युगों में वरुण देवता के द्वारा हुआ था । वैदिक पद्धति के अनुसार जब भी यज्ञ के लिए व्यवस्था की जाती है, तो यज्ञ में भाग लेने वाले सदस्यों को "सोम" नामक पौधे का रस पिलाया जाता है । "सोम" पौधे का रस एक प्रकार का प्राणदायक पेय है । सोमरस को निकालने

के दिन महाराज युधिष्ठिर ने उस विशेष पुरोहित का आदरपूर्वक स्वागत किया, जिसे यज्ञ-सम्बन्धी विधियों की औपचारिक गलतियों को खोज निकालने में संलग्न किया गया था । कहने का भाव यह है वैदिक मंत्रों का सही रीति से उच्चारण करना चाहिए एवं सही स्वराघात के साथ उसका कीर्तन करना चाहिए । यदि इस कार्य में रत पुरोहित कोई गलती करता है, तो जाँचकर्ता एवं निर्णायक पुरोहित उसकी विधि में सुधार करता है । इस प्रकार कर्मकाण्डी कृत्यों को सही रीति से सम्पन्न किया जाता है । जब तक उन्हें ठीक से सम्पन्न नहीं किया जाता, तब तक कोई यज्ञ आवश्यक परिणाम उत्पन्न नहीं कर सकता । इस कलियुग में ऐसा जानकार ब्राह्मण अथवा पुरोहित उपलब्ध नहीं है, अतएव ऐसे सभी यज्ञों पर प्रतिबन्ध लगाया गया है । शास्त्रों में संस्तुत एकमात्र यज्ञ हरे कृष्ण महामंत्र का जप है । अन्य महत्वपूर्ण विधि यह है कि ऐसे यज्ञ समारोह में उपस्थित सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति को अग्रपूजा अर्पित की जाती है । जब युधिष्ठिर महाराज के यज्ञ के लिए सभी | व्यवस्था पूरी हो गई, तब दूसरा विचारणीय विषय था कि समारोह में किसकी उपासना करनी चाहिए । यह अग्रपूजा राष्ट्रपति के चुनाव के समान ही है । यज्ञ-सभा में सभी सदस्य श्रेष्ठ थे । कुछ व्यक्तियों ने अग्रपूजा स्वीकार करने के लिए एक व्यक्ति को योग्य प्रत्याशी बताया, तो अन्य लोगों ने किसी दूसरे व्यक्ति को बताया । जब यह विषय अनिर्णीत रहा, तो श्रीसहदेव ने भगवान् श्रीकृष्ण के पक्ष में कहा, "इस सभा में यदु वंश के सदस्यों में सर्वश्रेष्ठ तथा अपने भक्तों के संरक्षक श्रीकृष्ण ही सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति हैं । अतएव मेरा विचार है कि बिना किसी आपत्ति के श्रीकृष्ण की सर्वप्रथम पूजा करके उन्हें सम्मान देना चाहिए । यद्यपि ब्रह्माजी, शिवजी, स्वर्गलोकों के राजा इन्द्र के समान देवतागण एवं अनेक श्रेष्ठ व्यक्ति इस सभा में उपस्थित हैं, तथापि कोई भी व्यक्ति देश, काल, धन, शक्ति, प्रसिद्धि, बुद्धि, ज्ञान, वैराग्य अथवा अन्य किसी भी सन्दर्भ में श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ अथवा उनके समान नहीं हो सकता । जिस वस्तु को भी ऐश्वर्यवान् माना जाता है, वह वस्तु मूल रूप से श्रीकृष्ण में

विद्यमान है । जिस प्रकार एक व्यष्टि आत्मा ही उसके भौतिक शरीर के विकास का मौलिक सिद्धान्त है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण इस विराट जगत के परमआत्मा हैं । सभी प्रकार के वैदिक कर्मकाण्डी समारोह, जैसे-यज्ञों का सम्पादन, अग्नि में बलि का अर्पण, वैदिक मंत्रों का संकीर्तन तथा रहस्यमय योग का अभ्यास-ये सभी श्रीकृष्ण का साक्षात्कार करने के लिए प्रयोग में लाए जाते हैं । चाहे कोई व्यक्ति सकाम कर्मो का मार्ग अपनाता है या दार्शनिक चिन्तन का मार्ग, परम लक्ष्य श्रीकृष्ण ही हैं । आत्म-साक्षात्कार के सभी प्रामाणिक ढंग श्रीकृष्ण को समझने के उपयोग में लाए जाते हैं । भाइयो और बहनो! श्रीकृष्ण के विषय में चर्चा करना अनावश्यक है, क्योंकि आप सभी श्रेष्ठ व्यक्ति परब्रह्म भगवान् श्रीकृष्ण को जानते हैं । श्रीकृष्ण के लिए शरीर एवं आत्मा, शक्ति तथा शक्तिमान, अथवा शरीर के दो विभिन्न अंगों के बीच कोई भौतिक अन्तर नहीं है । प्रत्येक व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण का विभिन्न अंश है, अतएव श्रीकृष्ण एवं सभी जीवात्माओं में कोई अन्तर नहीं है । श्रीकृष्ण की शक्तियाँ अग्नि के ताप और प्रकाश के समान हैं । ताप एवं प्रकाश तथा अग्नि में कोई अन्तर नहीं है । "इसके अतिरिक्त, अपने शरीर के किसी भी अंग से वे कोई भी कार्य कर सकते हैं । हम अपने शरीर के विशेष अंग से एक विशेष कार्य ही कर सकते हैं, परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण अपने शरीर के किसी भी अंग से कोई भी कार्य कर सकते हैं । उनका दिव्य शरीर सनातन आनन्द एवं ज्ञान से परिपूर्ण है, अतएव उनको छह प्रकार के भौतिक परिवर्तनों-जन्म, अस्तित्व, विकास, सकाम कर्म, क्षरण और अंत में विनाश-को नहीं झेलना पड़ता । किसी भी बाह्य शक्ति की सहायता के बिना श्रीकृष्ण सृष्टि की प्रत्येक वस्तु के निर्माण एवं विनाश के परम कारण हैं । मात्र श्रीकृष्ण की कृपा से प्रत्येक व्यक्ति धार्मिकता, आर्थिक इन्द्रियतृप्ति तथा अन्ततः भौतिक बन्धन से मुक्ति के कार्यों में संलग्न रहता है । विकासशील जीवन के इन चार सिद्धान्तों को श्रीकृष्ण की कृपा के द्वारा ही क्रियाशील बनाया जा सकता है । अतएव महायज्ञ की अग्रपूजा श्रीकृष्ण को प्रदान की जानी

चाहिए एवं किसी भी व्यक्ति को इससे असहमत नहीं होना चाहिए । जिस प्रकार वृक्ष की जड़ में जल डालने से टहनियों, डालों, पत्तियों एवं फूलों में जल डालने का कार्य अपने-आप ही सम्पन्न हो जाता है, अथवा उदर को भोजन देने से शरीर के सभी अंगों को आहार की पूर्ति स्वयं ही हो जाती है, उसी प्रकार श्रीकृष्ण की अग्रपूजा करने से महान् देवताओं सहित इस सभा में उपस्थित प्रत्येक व्यक्ति सन्तुष्ट हो जाएगा । यदि कोई पुरुष अत्यन्त दानी है, तो केवल श्रीकृष्ण को ही दान देना उसके लिए हितकर होगा, जो प्रत्येक व्यक्ति के परम-आत्मा हैं, चाहे उस व्यक्ति का जैसा भी शरीर अथवा व्यक्तित्व हो । परम-आत्मा के रूप में श्रीकृष्ण प्रत्येक जीवात्मा में विद्यमान हैं और यदि हम उन्हें सन्तुष्ट कर सकते हैं, तो स्वयं ही प्रत्येक जीवात्मा सन्तुष्ट हो जाएगा ।"

श्री सहदेव को श्रीकृष्ण की लीलाओं का ज्ञान होने का सौभाग्य प्राप्त था तथा उनकी लीलाओं का संक्षेप में वर्णन करने के पश्चात् उन्होंने बोलना समाप्त किया । इस भाषण के पश्चात् सभा में उपस्थित सभी सदस्यों ने सहदेव का अनुमोदन किया तथा उनके शब्दों की पुष्टि करते हुए इस प्रकार कहा, "तुम्हारे कहे गए प्रत्येक वाक्य सत्य हैं । तुम्हारे कहे गए प्रत्येक वाक्य सत्य हैं ।" सभी उपस्थित जनों, विशेषकर ब्राह्मणों एवं गुणी ऋषियों द्वारा पुष्टि होने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने वैदिक आदेशों के सिद्धान्तों के अनुसार श्रीकृष्ण की पूजा की । सर्वप्रथम महाराज युधिष्ठिर, उनके भ्राताओं, पत्नियों, बच्चों, अन्य सम्बन्धियों एवं मंत्रियों ने भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों को धोकर उस जल को अपने सिर पर छिड़का । इसके पश्चात्, श्रीकृष्ण को विभिन्न प्रकार के पीले रंग के रेशमी वस्त्र अर्पित किए गए तथा आभूषणों का, एक विशाल अम्बार उनके उपयोग के लिए प्रस्तुत किया गया ।

अपने परम प्रिय भगवान् श्रीकृष्ण को सम्मानित करके महाराज युधिष्ठिर ने इतने अधिक आनन्द का अनुभव किया कि उनके नेत्रों से अश्रु टपक

पड़े और चाहने पर भी वे श्रीकृष्ण को ठीक प्रकार से देख नहीं सके । इस प्रकार महाराज युधिष्ठिर के द्वारा श्रीकृष्ण की पूजा की गई । उस समय सभा में उपस्थित सभी सज्जन हाथ जोड़कर खड़े हो गए और "जय ! जय ! नमः! नमः!" का उच्चार करने लगे । जब श्रीकृष्ण की सादर वन्दना करने के लिए सभी उपस्थित जन एकत्रित हो गए, तब आकाश में से फूलों की वर्षा होने लगी । उस सभा में राजा शिशुपाल भी उपस्थित था । अनेक कारणों से वह श्रीकृष्ण का प्रत्यक्ष शत्रु था, विशेषकर इसलिए कि श्रीकृष्ण ने विवाह समारोह से रुक्मिणी देवी का अपहरण किया था । अतएव, वह श्रीकृष्ण का इतना सम्मान एवं उनके गुणों की कीर्ति को सहन नहीं कर पाया । श्रीकृष्ण की लीलाओं का वर्णन सुनकर प्रसन्न होने के स्थान पर वह अत्यन्त क्रोधित हो उठा । जब सभी ने उठकर श्रीकृष्ण का सम्मान किया, तो वह अपनी गद्दी पर बैठा रहा । परन्तु जब श्रीकृष्ण के सम्मानित किए जाने पर वह क्रोधित हो उठा, तब वह अचानक ही उठा और हाथ उठाउठाकर दृढ़तापूर्वक एवं बिना किसी भय के भगवान् श्रीकृष्ण के विरुद्ध बोलने लगा । वह कुछ इस प्रकार कहने लगा, जिससे श्रीकृष्ण को उसके कथन स्पष्ट रूप से सुनाई दे सकें ।

'भाइयो एवं बहनो! अब मैं वेदों का यह कथन कि काल एक प्रबल तत्व है स्वीकार करता हूँ । उसके विरुद्ध अनेक प्रयास करने के पश्चात् भी काल तत्व किसी विरोध के बिना अपनी योजना कार्यान्वित करता है । उदारहण के लिए, कोई व्यक्ति जीवित रहने के लिए अत्यन्त प्रयास कर सकता है, परन्तु जब मुत्यु का समय आता है, तो उसे कोई नहीं बचा सकता । यहाँ मैं देख रहा हूँ कि यद्यपि इस सभा में अनेक निष्ठावान् व्यक्ति उपस्थित हैं, किन्तु काल का प्रभाव इतना बलवान् है कि वे एक लड़के के कथन से पथभ्रमित हो गए हैं, जिसने श्रीकृष्ण के विषय में इतनी मूर्खतापूर्वक बात कही है । यहाँ पर अनेक गुणी ऋषि एवं वयोवृद्ध व्यक्ति उपस्थित हैं, फिर भी उन्होंने एक मूर्ख लड़के के कथन को स्वीकार कर

लिया है । इसका अर्थ यह हुआ कि काल के प्रभाव से इस सभा में उपस्थित इतने सम्मानित व्यक्तियों की बुद्धि भी दिग्भ्रमित हो सकती है । यहाँ उपस्थित आदरणीय व्यक्तियों से मैं पूर्णतया सहमत हूँ कि अग्रपूजा करने के योग्य व्यक्ति का चयन करने में वे सक्षम हैं । परन्तु मैं सहदेव के समान लड़के के वक्तव्य से सहमत नहीं हो सकता, जिसने यज्ञ में श्रीकृष्ण की अग्रपूजा को उचित बताया है । मैं देख सकता हूँ कि इस सभा में ऐसे अनेक व्यक्ति हैं, जो कठोर तपस्या कर चुके हैं, जो अत्यन्त सुशिक्षित हैं और जिन्होंने अनेक त्याग किए हैं । अपने ज्ञान एवं मार्गदर्शन के द्वारा वे उन अनेक व्यक्तियों का उद्धार कर सकते हैं, जो भौतिक बन्धन में दुख भोग रहे हैं । यहाँ पर ऐसे अनेक ऋषि हैं जिनके ज्ञान की कोई सीमा नहीं है । अतएव मैं सोचता हूँ कि उनमें से किसी को भी अग्रपूजा के योग्य चुना जा सकता था, क्योंकि वे महान् देवता गण, राजाओं एवं महाराजाओं के लिए भी पूजनीय हैं । मैं समझ नहीं पा रहा कि आपने इस ग्वाले, श्रीकृष्ण, को क्यों चुना है और अन्य सभी महान् व्यक्तियों को अनदेखा कर दिया है । मैं श्रीकृष्ण को एक कौवे से अधिक कुछ नहीं मानता । वह इस महान् यज्ञ में अग्रपूजा को स्वीकार करने के लिए किस प्रकार योग्य हो सकता 意?

"हम दृढ़तापूर्वक यह भी नहीं कह सकते कि श्रीकृष्ण किस जाति का है और उसका वास्तविक व्याव्यवस्थायिक कर्तव्य क्या है?" वास्तव में, श्रीकृष्ण की कोई जाति नहीं है और न ही उन्हें किसी व्याव्यवस्थायिक कर्तव्य का पालन करना पड़ता है । वेदों में यह कहा गया है कि परम भगवान् को निर्धारित कर्तव्य के रूप में कुछ भी नहीं करना पड़ता है । उन्हें जो कुछ भी करना होता है, वह उनकी विभिन्न शक्तियों के द्वारा सम्पन्न हो जाता है ।

शिशुपाल ने आगे कहा: "श्रीकृष्ण किसी उच्च परिवार से सम्बन्धित नहीं है । वह इतना स्वतंत्र है कि कोई भी व्यक्ति उसके धार्मिक जीवन के

सिद्धान्तों को नहीं जानता । ऐसा प्रतीत होता है कि वह सभी धार्मिक सिद्धान्तों के अधिकार-क्षेत्र से परे है । वैदिक आदेशों एवं नियामक सिद्धान्तों की परवाह न करते हुए वह सदैव स्वतंत्र रूप से कार्य करता है । यह सत्य है, क्योंकि वह श्रीभगवान् है । वह निर्गुण है का अर्थ है कि श्रीकृष्ण के एक भी भौतिक गुण नहीं हैं । चूँकि वह भगवान् है, इसलिए वह रूढ़ियों सामाजिक या धार्मिक सिद्धान्तों की चिन्ता किए बिना वह स्वतंत्र रूप से कार्य करता हैं । इन परिस्थितियों में, वह इस यज्ञ में अग्रपूजा को स्वीकार करने के योग्य किस प्रकार हो सकता हैं? श्रीकृष्ण इतना मूर्ख है कि उसने उस मथुरा को त्याग दिया है, जो वैदिक संस्कृति का पालन करने वाले उन्नत व्यक्तियों से बसा हुआ है । उसने सागर में शरण ली है, जहाँ वेदों की चर्चा मात्र भी नहीं होती । खुलकर रहने के बजाय उसने जल के भीतर एक किला बना लिया है तथा वह ऐसे वातावरण में रह रहा है, जहाँ वेदों के विषय में कोई चर्चा नहीं होती । और वह जब किले से बाहर आता है, तब वह बिना कारण डाकू, चोर-लुटेरों के समान नागरिकों को परेशान करता हैं ।"

सभा में सर्वप्रथम पूजनीय व्यक्ति के रूप में श्रीकृष्ण का चयन होने के कारण शिशुपाल पागल हो गया । वह इतनी गैर-जिम्मेदारी से बोलने लगा कि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि वह अपना सारा सौभाग्य खो बैठा है । दुर्भाग्य से आच्छन्न होकर, शिशुपाल श्रीकृष्ण को पुन: अपमानित करने लगा । श्रीकृष्ण बिना विरोध किए शान्तिपूर्वक उसे सुनते रहे । जिस प्रकार सियार के झुंड के हुआने पर सिंह कोई चिन्ता नहीं करता, उसी प्रकार श्रीकृष्ण शान्त एवं अनुत्तेजित रहे । शिशुपाल द्वारा लगाए गए एक भी आरोप का श्रीकृष्ण ने उत्तर नहीं दिया, परन्तु सभा में उपस्थित जन क्रोधित हो उठे-कुछ को छोड़कर, जो शिशुपाल का समर्थन करते थे क्यों कि एक आदरणीय व्यक्ति का यह कर्तव्य है कि वह भगवान् अथवा उनके भक्त की निन्दा नहीं सहे । उनमें से कुछ व्यक्ति, जिनका विचार

था कि वे शिशुपाल का ठीक प्रकार से सामना नहीं कर सकते, विरोध में सभा छोड़कर चले गए । उन्होंने अपने हाथों से कान ढँक रख थे, जिससे वे आगे के आरोप न सुन सकें । यह वैदिक आदेश है कि जब भी श्रीभगवान् की निन्दा होती है, तब व्यक्ति को तत्काल ही उस स्थान से प्रस्थान करना चाहिए । यदि वह ऐसा नहीं करता है, तो वह अपने पुण्यकर्मों से वंचित हो जाता है और निम्न जीवन को प्राप्त होता है ।

वहाँ उपस्थित कुरु वंश, मत्स्य वंश, केकय वंश एवं सुंजय वंश के राजा-गण अत्यन्त क्रोधित हो उठे और शिशुपाल का वध करने के लिए तत्काल ही हाथ में तलवार और ढाल ले ली । यद्यपि सभी उपस्थित राजा-गण उसे मारने के लिए तत्पर थे, तथापि शिशुपाल इतना मूर्ख था कि वह जरा भी नहीं घबराया । उसने अपनी मूर्खतापूर्ण बातों के परिणाम के विषय में विचार नहीं किया और जब उसने देखा कि सभी राजा-गण उसे मारने के लिए तैयार हैं, तो चुप होने के स्थान पर वह हाथ में तलवार और ढाल लेकर लड़ने के लिए तत्पर हो गया । जब भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि शुभ राजसूय महायज्ञ के स्थान पर वे युद्ध आरम्भ करने जा रहे हैं, तो उन्होंने व्यक्तिगत रूप से उन्हें शान्त किया । अपनी अहैतुकी कृपा के द्वारा उन्होंने स्वयं ही शिशुपाल का वध करने का निश्चय किया । जब अपने ऊपर आक्रमण करने जा रहे राजाओं की शिशुपाल निन्दा कर रहा था, तब उन्होंने उस्तरे की धार वाला अपना चक्र उठाया और तुरन्त शिशुपाल के सिर को उसके शरीर से अलग कर दिया ।

इस प्रकार जब शिशुपाल का वध हुआ, तब सभा की भीड़ से एक चिल्लाहट की ध्वनि निकली । परिस्थिति का लाभ उठाते हुए शिशुपाल के समर्थक अपने प्राणों के जाने के भय से जल्दी ही सभा छोड़ बैठे । परन्तु इस घटना के पश्चात् भी सभी सदस्यों की उपस्थिति में शिशुपाल की आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में विलीन हो गयी, जिस प्रकार एक जलता हुआ उल्का पृथ्वी की सतह पर गिरता है । शिशुपाल की आत्मा

का श्रीकृष्ण के दिव्य शरीर में विलीन हो जाना हमें जय और विजय की गाथा का स्मरण कराता है, जो चार कुमारों के द्वारा शाप दिए जाने पर वैकुण्ठ लोक से भौतिक जगत में गिर गए थे । वैकुण्ठ जगत में उनकी वापसी के लिए यह निश्चित था कि तीन क्रमिक जन्मों तक जय और विजय दोनों श्रीभगवान् के कट्टर शत्रु के रूप में कार्य करेंगे और इन जन्मों के अन्त में वे पुन: वैकुण्ठ जगत में लौटे जाएँगे और श्रीभगवान् और उनके साथियों की सेवा करेंगे ।

यद्यपि शिशुपाल श्रीकृष्ण का शत्रु बनकर कार्य कर रहा था, तथापि वह एक क्षण के लिए भी कृष्णभावनामृत से पृथक् नहीं था । वह सदैव श्रीकृष्ण के ध्यान में लीन रहता था । अतएव सर्वप्रथम उसे सायुज्य-मुक्ति की प्राप्ति हुई । वह परमात्मा के अस्तित्व में लीन हुआ और अन्तत: व्यक्तिगत सेवा की अपनी स्थिति में उसकी पुनस्र्थापना हुई । श्रीमद्भगवद्गीता इस तथ्य की पुष्टि करती है कि यदि मृत्यु के समय व्यक्ति परम भगवान् के ध्यान में मग्न रहता है, तो वह इस भौतिक शरीर को त्यागने के पश्चात् तत्काल ही श्रीभगवान् के धाम में प्रवेश करता है । शिशुपाल के उद्धार के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ-सभा में उपस्थित सभी सदस्यों को भेंटें दीं । उन्होंने पुजारियों एवं विद्वान ऋषियों को यज्ञ में सहायता के लिए उपयुक्त मात्रा में उपयुक्त पारिश्रमिक दिया और इन नित्य कर्मों को संपन्न करके उन्होंने स्नान किया । यज्ञ के अन्त में यह स्नान भी शास्त्रीय होता है । इस विधि को अवभूथ स्नान कहते हैं ।

इस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने राजसूय यज्ञ को सफलतापूर्वक संपन्न होने के योग्य बनाया । उनके सगे-सम्बन्धियों के आग्रह पर वे कुछ और महीनों के लिए हस्तिनापुर में ही रहे । यद्यपि महाराज युधिष्ठिर एवं उनके भ्राता हस्तिनापुर से श्रीकृष्ण का प्रस्थान करना नहीं चाहते थे, किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण ने द्वारका लौटने के लिए महाराज से अनुमति लेने का

प्रबन्ध किया और इस प्रकार अपनी रानियों एवं मंत्रियों के साथ वे अपने धाम लौटे ।

जय और विजय के वैकुण्ठ लोक से भौतिक जगत में गिर जाने की कहानी का वर्णन श्रीमद्भागवत के सप्तम अध्याय में किया गया है । शिशुपाल के वध का प्रत्यक्ष सम्बन्ध जय और विजय के वृतान्त से है, परन्तु इस घटना से हमें सबसे अधिक महत्वपूर्ण उपदेश यह मिलता है कि श्रीभगवान् पूर्ण होने से प्रत्येक व्यक्ति को मुक्ति प्रदान कर सकते हैं, चाहे व्यक्ति उनके मित्र के रूप में कार्य करे या शत्रु के रूप में । अतएव यह एक गलत धारणा है कि श्रीभगवान् एक व्यक्ति से मित्र की तरह कार्य करते हैं तथा अन्य व्यक्ति से शत्रु का व्यवहार करते हैं । उनका मित्र अथवा शत्रु होना सदैव परम स्तर पर होता है । इसमें कोई भौतिक भेद नहीं है ।

यज्ञ के पश्चात् स्नान करके जब महाराज युधिष्ठिर सभी विद्वान ऋषियों एवं ब्राह्मणों के मध्य खड़े हुए, तब वे स्वर्ग के देवता के समान प्रतीत हो रहे थे और इसीलिए वे अत्यन्त सुन्दर लग रहे थे । महाराज युधिष्ठिर ने यज्ञ में उपस्थित सभी देवताओं को उचित रूप से पुरस्कृत किया तथा उन सभी देवताओं ने पूर्णरूपेण सन्तुष्ट होकर महाराज के कार्यों की प्रशंसा करते हुए एवं भगवान् श्रीकृष्ण की जयजयकार करते हुए प्रस्थान किया ।

जब शुकदेव गोस्वामी श्रीकृष्ण के द्वारा शिशुपाल के वध एवं महाराज युधिष्ठिर द्वारा सफलतापूर्वक महायज्ञ सम्पन्न होने की घटनाओं का वर्णन कर रहे थे, तब उन्होंने इस बात की ओर संकेत किया कि सफल समाप्ति के पश्चात् वहाँ केवल एक ही व्यक्ति था, जो अप्रसन्न था । वह था दुर्योधन । अपने पापपूर्ण जीवन के कारण दुर्योधन स्वभाव से ही ईष्यालु था । अपने सम्पूर्ण परिवार का विनाश करने वाले साकार भयंकर रोग के रूप में दुर्योधन प्रकट हुआ था ।

शुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को आश्वासन दिया कि भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाएँ-शिशुपाल एवं जरासन्ध का वध और बन्दी राजाओं की मुक्ति-सभी दिव्य ध्वनियाँ है तथा जो व्यक्ति इन कथाओं को प्रामाणिक व्यक्तियों के द्वारा श्रवण करेगा, वह तत्काल ही अपने जीवन के सभी पापपूर्ण कर्म के फलों से मुक्त हो जाता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "शिशुपाल का उद्धार" नामक चौहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 75
दुर्योधन ने स्वयं को अपमानित क्यों अनुभव किया

युधिष्ठिर अजातशत्रु के नाम से विख्यात थे अर्थात् वे ऐसे व्यक्ति थे जिसका कोई शत्रु न था । अत: जब सभी पुरुषों, देवताओं, राजाओं, ऋषियों एवं सन्तों ने महाराज युधिष्ठिर द्वारा आयोजित राजसूय महायज्ञ की सफल समाप्ति देखी, तो वे बहुत प्रसन्न हुए । परन्तु अकेले दुर्योधन का अप्रसन्न होना महाराज परीक्षित को आश्चर्यजनक लगा और इसलिए उन्होंने इस तथ्य को स्पष्ट करने के लिए शुकदेव गोस्वामी से अनुरोध किया ।

शुकदेव गोस्वामी ने कहा, "मेरे प्रिय महाराज परीक्षित! तुम्हारे पितामह महाराज युधिष्ठिर एक श्रेष्ठ आत्मा थे । उनका अनुकूल स्वभाव सभी को मित्र के रूप में आकर्षित करता था, अतएव वे अजातशत्रु के नाम से प्रख्यात थे-अर्थात् उन्होंने कोई शत्रु नहीं बनाया था । उन्होंने कुरु वंश के सभी सदस्यों को राजसूय यज्ञ की व्यवस्था के लिए विभिन्न विभागों पर नियंत्रण करने के कार्य में संलग्न किया । उदाहरणार्थ, भीमसेन को रसोई घर का, दुर्योधन को कोश-विभाग का, सहदेव को स्वागत-सत्कार विभाग का एवं नकुल को भण्डार-विभाग का नेतृत्व दिया गया । अर्जुन का कार्य

वयोवृद्ध व्यक्तियों की सुविधा की देखभाल करना था । सबसे आश्चर्यजनक विशेषता यह थी कि भगवान् श्रीकृष्ण ने आने वाले अतिथियों के चरण धोने का कार्य अपनाया । भाग्य की लक्ष्मी रूपी महारानी द्रौपदी भोजन-वितरण के प्रबन्ध की प्रभारी थीं और दान देने में प्रसिद्ध कर्ण को दान-विभाग का अध्यक्ष बनाया गया । उसी प्रकार सात्यकि, विकर्ण, हार्दिक्य, विदुर, भूरिश्रवा तथा बाहीक के पुत्र सन्तर्दन-इन सभी को राजसूय यज्ञ के कार्यों का संचालन करने के लिए विभिन्न विभागों में संलग्न किया गया । वे सब महाराज युधिष्ठिर से स्नेह में इतने पगे थे कि वे उन्हें प्रसन्न करना चाहते थे ।

श्रीकृष्ण की कृपा से जब शिशुपाल की मृत्यु हो गई तथा वह आध्यात्मिक शरीर में लीन हो चुका तथा राजसूय यज्ञ के बाद जब सभी मित्रों, अतिथियों एवं शुभ-चिन्तकों को उचित रूप से सम्मानित एवं पुरस्कृत किया जा चुका, तब महाराज युधिष्ठिर गंगा-स्नान करने के लिए चले गए । हस्तिनापुर नगर आज यमुना के तट पर स्थित है । श्रीमद्र/वत का कथन कि महाराज युधिष्ठिर गंगा में स्नान करने गये, यह इस बात का संकेत करता है कि पाण्डवों के काल में यमुना नदी को भी गंगा कहा जाता था । जब महाराज अवभूथ-स्नान कर रहे थे, तब मृदंग, शंख, ढोल, नगारे एवं बिगुल आदि वाद्य-यंत्र बजने लगे । इसके अतिरिक्त, नृत्य करने वाली युवतियों की पायल छनक रही थी । सुनिपुण गायकों के अनेक दल वीणा, बाँसुरी, घड़ियाल तथा करताल बजा रहे थे । इस प्रकार आकाश में एक तुमुल ध्वनि गूंज उठी । अनेक राज्यों, जैसे सुंजय काम्बोज, कुरु, केकय तथा कोशल, से राजकुमार अतिथि अपने विभिन्न झण्डों एवं शानदार रूप में अलंकृत हाथी, रथ, घोड़ों एवं सैनिकों के साथ उपस्थित हुए । सभी एक शोभायात्रा बनाकर जा रहे थे तथा महाराज युधिष्ठिर सबसे आगे थे । प्रशासक सदस्य, जैसे पुरोहित, धार्मिक मंत्रीगण एवं ब्राह्मण एक यज्ञ का सम्पादन करते हुए वैदिक मंत्रों का जोर-जोर से उच्चारण कर रहे थे

। पितृलोक एवं गन्धर्वलोक के निवासियों ने तथा अनेकानेक ऋषियों ने आकाश से फूलों की वर्षा की । हस्तिनापुर अर्थात् इन्द्रप्रस्थ के पुरुष एवं स्त्रियों के शरीर विभिन्न प्रकार के इत्र एवं पुष्प-तेलों से लिप्त थे । वे सभी रंगीन वस्त्र धारण किए हुए थे एवं मालाओं, रत्नों एवं आभूषणों से अलंकृत थे । वे सभी उस समारोह का आनन्द उठा रहे थे और वे एक-दूसरे पर जल, तेल, दूध, मक्खन एवं दही के समान द्रव पदार्थ फेंक रहे थे । कुछ लोगों ने तो इन पदार्थों को एक दूसरे के शरीर पर पोत दिया । इस प्रकार, वे उत्सव का आनन्द उठा रहे थे । वारांगनाएँ भी आनन्दविभोर होकर इन द्रव पदार्थों को पुरुषों के शरीर पर लगाने के कार्य में मग्न थीं तथा पुरुष भी उसी प्रकार आदान-प्रदान कर रहे थे । सभी द्रव पदार्थ हल्दी एवं केसर में मिलाये गए थे, अत: उत्पन्न हुए पदार्थ का रंग चमकदार पीला था ।

उस महान् समारोह के लिए अनेक देवताओं की पत्नियाँ विमानों से आयी थीं तथा वे आकाश में दृष्टिगोचर हो रही थीं । उसी प्रकार, संपन्न परिवार की रानियाँ सुसजित होकर एवं अंगरक्षकों से घिरी हुई विभिन्न पालकियों पर आयीं । इस बीच, पाण्डवों के भ्राता श्रीकृष्ण तथा उनके विशेष मित्र श्रीअर्जुन दोनों ही रानियों के शरीरों पर द्रव पदार्थ फेंक रहे थे । रानियाँ एकदम लजा गई, परन्तु साथ-साथ उनकी सुन्दर मुस्कुराहटों ने उनके चेहरों को प्रकाशमय बना दिया । उनके शरीर पर द्रव पदार्थ पड़ने के कारण उनके शरीर की साड़ियाँ पूर्णतया भीग गयीं । गीले कपड़ों के कारण उनके सुन्दर शरीर के विभिन्न अंग, विशेष रूप से उनकी कमर और वक्षस्थल, आंशिक रूप से दृष्टिगोचर होने लगे । रानियाँ भी द्रव पदार्थों से भरी बाल्टियाँ लाई और उन्हें अपने देवरों पर छिड़कने लगीं । जब वे इस प्रकार की उल्लसित कर देने वाली गतिविधियों में संलग्न थीं, तो उनके केशों के बन्धन टूट गये और शरीर को सजित करने वाले फूल गिरने लगे । जब भगवान् श्रीकृष्ण, श्रीअर्जुन और रानियाँ इस

आनन्ददायक कार्यों में लीन थीं, तब अशुद्ध हृदयों वाले व्यक्तियों के मन कामुक इच्छाओं से उत्तेजित हो गए । दूसरे शब्दों में, शुद्ध पुरुषों एवं स्त्रियों में ऐसा व्यवहार आनन्ददायक है, परन्तु भौतिक दृष्टि से दूषित व्यक्ति कामुक हो उठते हैं ।

महाराज युधिष्ठिर द्रौपदी एवं अन्य रानियों के साथ उत्कृष्ट घोड़ों से खींचे जा रहे शानदार रथ में उपस्थित थे । यज्ञ का आनन्दोत्सव इतना सुन्दर था कि ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मानो यज्ञ के कार्यों के साथ स्वयं राजसूय मूर्तिमान् होकर वहाँ खड़े हैं ।

राजसूय यज्ञ के पश्चात् पत्नीसयाज नामक वैदिक कर्मकाण्ड हुआ करता था । यह यज्ञ अपनी पत्नी के साथ सम्पन्न किया जाता है तथा उसी प्रकार महाराज युधिष्ठिर के पुरोहितों द्वारा सम्पन्न हुआ । जब महारानी द्रौपदी एवं महाराज युधिष्ठिर अवgथ-स्नान कर रहे थे, तब हस्तिनापुर के नागरिक एवं देवता गण आनन्दविभोर होकर ढोल और तुरही बजाने लगे तथा आसमान से फूलों की वर्षा होने लगी । जब महाराज एवं महारानी गंगा में स्नान कर चुके, तब अन्य सभी नागरिकों ने, जिसमें सभी जाति अथवा वर्ण-ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एव शूद्र-सम्मिलित थे, गंगा में स्नान किया । वेदों ने गंगा में स्नान करने की संस्तुति की है, क्योंकि इस प्रकार स्नान करने से व्यक्ति सभी पापपूर्ण कर्मों से मुक्त हो जाता है । यह भारत में आज भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण शुभ अवसरों पर प्रचलित है । ऐसे समय में लाखों लोग गंगा में स्नान करते हैं । स्नान करने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने रेशमी चादर एवं नवीन रेशमी वस्त्र धारण किए तथा स्वयं को बहुमूल्य आभूषणों से अलंकृत किया । महाराज ने मात्र स्वयं को सजित एवं अलंकृत नहीं किया, अपितु उन्होंने पुरोहितों एवं यज्ञ में भाग लेने वाले सभी लोगों को नूतन वस्त्र एवं आभूषण दिए । इस प्रकार, वे सभी महाराज युधिष्ठिर के द्वारा पूजे गए । वे निरन्तर अपने मित्रों, पारिवारिक सदस्यों, सम्बन्धियों, शुभचिन्तकों एवं सभी उपस्थित जनों की उपासना

करते थे और श्रीनारायण के महान् भक्त एवं वैष्णव होने से उन्हें ज्ञात था कि किस प्रकार लोगों के साथ सद्व्यवहार करना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति को भगवान् के रूप में देखने का मायावादी दार्शनिकों का प्रयास एकता की ओर एक कृत्रिम मार्ग है, परन्तु वैष्णव अर्थात् श्रीनारायण का भक्त प्रत्येक जीवात्मा को श्रीभगवान् का एक अंश मानता है । अतएव, अन्य जीवात्माओं के साथ वैष्णव का व्यवहार परम स्तर पर स्थित होता है । जिस प्रकार व्यक्ति अपने शरीर के एक अंग से दूसरे अंग की अपेक्षा भिन्न व्यवहार नहीं कर सकता, क्योंकि वे दोनों अंग एक ही शरीर के हैं उसी प्रकार वैष्णव किसी मनुष्य को पशु से भिन्न नहीं देखता । दोनों में वह आत्मा एवं परमात्मा को साथ-साथ विद्यमान पाता है ।

जब स्नान करने के पश्चात् सभी लोग ताजा हो गए तथा उन्होंने कौशेय (रेशमी) वस्त्रों के साथ रत्नजटित कर्णफूल, फूल-मालाएँ पगड़ी, दुशाले तथा मोती की मालाएँ धारण कर लीं, तो वे स्वर्ग के देवताओं के समान प्रतीत हो रहे थे । ऐसा उन स्त्रियों के लिए सत्य था, जो बहुत सुन्दर ढंग से सजित थीं । प्रत्येक स्त्री ने कमर में करधनी बाँध रखी थी । वे सभी मुस्करा रही थीं, उनके शरीर पर तिलक के चिह्न एवं धुंघराले केश इधर-उधर लहरा रहे थे । यह बहुत ही आकर्षक दृश्य था ।

जिन व्यक्तियों ने, जिनमें अत्यन्त सुसंस्कृत पुरोहित, यज्ञ में सहायता करने वाले ब्राह्मण, सभी वर्णों के नागरिक, राजा, देवता, ऋषि, सन्त एवं पितृ-लोक के नागरिक सम्मिलित थे, राजसूय यज्ञ में भाग लिया महाराज युधिष्ठिर के व्यवहार से अत्यन्त सन्तुष्ट थे और अन्ततः वे प्रसन्नचित अपने-अपने घर गए । अपने घरों को लौटते हुए, वे महाराज युधिष्ठिर के व्यवहार के विषय में चर्चा करने लगे और उनकी महानता के विषय में निरन्तर चर्चा करते रहने पर भी वे तृप्त नहीं हुए, ठीक उसी प्रकार जैसे अमृत को निरन्तर पीते रहने पर भी व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं होता । सबके प्रस्थान के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर ने श्रीकृष्ण सहित निकटतम मित्रों को रोके

रखा तथा उन्हें जाने नहीं दिया । भगवान् श्रीकृष्ण तो महाराज के निवेदन को इनकार नहीं सके, अतएव उन्होंने साम्ब तथा अन्य यदुवंश के सभी वीरों को वापस भेज दिया । वे सभी द्वारका लौट गए तथा महाराज को सुख पहुँचाने के लिए श्रीकृष्ण स्वयं वहीं रुके रहे ।

इस भौतिक जगत में प्रत्येक व्यक्ति की कुछ इच्छाएँ होती हैं, परन्तु वह उन्हें पूर्ण सन्तुष्टि के साथ पूरी नहीं कर पाता । परन्तु श्रीकृष्ण के प्रति अपनी अटल भक्ति के कारण महाराज युधिष्ठिर ने राजसूय यज्ञ का सम्पादन करके अपनी सारी इच्छाएँ पूर्ण कीं । राजसूय यज्ञ के सम्पादन के वर्णन के अनुसार ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा समारोह ऐश्वर्य की इच्छाओं का महासागर होता है । साधारण व्यक्ति के लिए ऐसे भव्य महासागर को पार करना सम्भव नहीं है । तो भी, भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से महाराज युधिष्ठिर ने अत्यन्त सहजतापूर्वक उस सागर को पार कर लिया और इस प्रकार वे सभी चिन्ताओं से मुक्त हो गए ।

जब दुर्योधन ने देखा कि राजसूय यज्ञ करने के पश्चात् महाराज युधिष्ठिर को अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त हुई है और वे हर दृष्टि से तृप्त हैं, तो वह ईष्र्या की आग में जलने लगा, क्योंकि उसका मन सदैव विषाक्त रहता था । वह उस शानदार महल से ईष्या रखता था, जिसे पाण्डवों के लिए "मय" नामक असुर ने निर्मित किया था । वह महल मय की चौंका देने वाली कलात्मक कारीगरी का उत्तम नमूना था तथा महान् राजकुमारों, राजाओं अथवा असुरों के राजा के लिए अनुकूल था । उस भव्य महल में, पाण्डव अपने परिवार के साथ रह रहे थे तथा महारानी द्रौपदी शान्तिपूर्वक अपने पतियों की सेवा कर रही थीं । चूँकि उन दिनों भगवान् श्रीकृष्ण वहीं थे, अतएव उनकी सहस्रों रानियों के कारण महल सजित था । जब रानियाँ अपनी पतली कमर एवं भारी स्तनों के साथ महल में भ्रमण करती थीं और पायल उनकी चाल के साथ सुरीली आवाज उत्पन्न करते थे, तब सम्पूर्ण महल स्वर्ग से भी अधिक ऐश्वर्यवान् प्रतीत होने लगता

था । उनके वक्षस्थलों का एक भाग केशर-चूर्ण से युक्त था, अतएव उनके वक्षस्थलों पर स्थित मोतियों की मालाएँ लाल प्रतीत हो रही थीं । अपने बड़े बड़े कर्णफूलों एवं लहराते हुए केश में रानियाँ अत्यन्त सुन्दर लग रही थीं । महाराज युधिष्ठिर के महल में ऐसी सुन्दरियों को देख का दुर्योधन को ईष्यां होने लगी । वह द्रौपदी देवी की सुन्दरता को देखकर विशेष रूप से कामुक एवं ईष्यालु हो उठा, क्योंकि पाण्डवों के साथ द्रौपदी के विवाह के काल से दुर्योधन उसके प्रति एक विशेष आकर्षण रखता था । द्रौपदी के स्वयंवर समारोह में दुर्योधन भी उपस्थित था और अन्य राजकुमारों की भाँति वह भी द्रौपदी की सुन्दरता पर मोहित हो उठा था, परन्तु उसे प्राप्त करने के प्रयास में वह असफल रहा था ।

एक बार मयासुर द्वारा निर्मित महल में महाराज युधिष्ठिर अपने स्वर्ण सिंहासन पर बैठे थे । उनके चारों भ्राता एवं अन्य सम्बन्धी तथा उनके शुभ-चिन्तक श्रीकृष्ण वहाँ उपस्थित थे । महाराज युधिष्ठिर का भौतिक ऐश्वर्य ब्रह्माजी के ऐश्वर्य से तनिक भी कम नहीं लग रहा था । जब वे अपने मित्रों से घिरे हुए सिंहासन पर विराजमान थे एवं सुन्दर गीतों के रूप में गायक उनकी स्तुति कर रहे थे, तब दुर्योधन अपने छोटे भ्राता के साथ महल में प्रविष्ट हुआ । दुर्योधन एक शिरस्त्राण से सजित था एवं वह हाथ में एक तलवार धारण किए हुए था । वह सदैव क्रोधित एवं ईष्यालु मनोदशा में रहता था, अतएव थोड़े से टोकने पर वह द्वारपालों से तीखे स्वर में बोलने लगा और क्रोधित हो उठा । वह इसलिए उतेजित था, क्योंकि वह जल एवं धरती के बीच अन्तर करने में असफल रहा था । मयासुर की शिल्पकारिता से महल विभिन्न भागों में कुछ इस प्रकार से बनाया गया था कि जो उन युक्तियों से अपरिचित होता, वह जल को स्थल एवं स्थल को जल समझ बैठता था । दुर्योधन इस शिल्पकारिता से भ्रमित हो गया था और जब वह जल को स्थल समझकर उसपर चलने लगा, तो वह गिर पड़ा । जब अपनी मूर्खता के कारण दुर्योधन गिर पड़ा, तो रानियाँ

उस घटना का हँस-हँसकर आनन्द उठाने लगीं । महाराज युधिष्ठिर दुर्योधन के मनोभाव को समझ गए एवं वे रानियों को हँसने से रोकने लगे, परन्तु श्रीकृष्ण ने संकेत किया कि महाराज को स्थिति का आनन्द उठा रही रानियों को हँसने से नहीं रोकना चाहिए । श्रीकृष्ण की इच्छा थी कि दुर्योधन इस प्रकार मूर्ख बन जाएगा तथा सभी उसके मूर्खतापूर्ण व्यवहार का आनन्द उठायेंगे । जब सभी हँसने लगे, तो दुर्योधन ने स्वयं को अपमानित अनुभव किया तथा क्रोध में उसके केश खड़े हो गए । इस तरह अपमानित होने पर उसने अपना सिर झुकाते हुए तुरन्त महल से प्रस्थान किया । वह शान्त था एवं उसने कोई विरोध नहीं किया । जब दुर्योधन इतना क्रोधित होकर वहाँ से गया, तो सभी ने उस घटना पर खेद प्रकट किया तथा महाराज युधिष्ठिर भी उदास हो गए । परन्तु इन सब घटनाओं के तत्पश्चात् भी श्रीकृष्ण शान्त थे । वे घटना के पक्ष अथवा विरोध में कुछ नहीं बोले । ऐसा प्रतीत हो रहा था कि भगवान् श्रीकृष्ण की परम इच्छा के कारण वह इस भ्रम में डाला गया था तथा इस प्रकार कुरु-वंश के दो पक्षों में शत्रुता का आरम्भ हुआ । ऐसा प्रतीत होता था कि यह संसार के भार को कम करने के सन्देश की योजना का एक अंश था ।

महाराज परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा था कि राजसूय महायज्ञ के सम्पादन पर दुर्योधन असन्तुष्ट क्यों था और इस प्रकार शुकदेव गोस्वामी ने उसका वर्णन किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "दुर्योधन ने स्वयं को अपमानित क्यों अनुभव किया" नामक पचहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 76
यदुवंश के सदस्यों एवं शाल्व के बीच युद्ध

गोस्वमी ने सामान्य मनुष्य का अभिनय कर रहे श्रीकृष्ण के विभिन्न कार्यों का वर्णन करते हुए यदुवंश एवं शाल्व नामक असुर के बीच हुए युद्ध के इतिहास का भी वर्णन किया, जो सौभ नामक अद्भुत विमान प्राप्त करने में समर्थ हो गया था । राजा शाल्व शिशुपाल का घनिष्ठ मित्र था । जब शिशुपाल रुक्मिणी से विवाह करने गया, तब शाल्व वरमण्डली के सदस्यों में से एक था । जब यदुवंश के सैनिकों एवं विरोधी दल के राजाओं के बीच युद्ध हुआ, तब यदुवंश के सैनिकों द्वारा शाल्व पराजित हो गया । परन्तु अपनी पराजय के पश्चात् उसने सभी राजाओं के समक्ष यह प्रतिज्ञा की कि भविष्य में वह सम्पूर्ण विश्व से यदुवंश का अस्तित्व मिटा देगा । रुक्मिणी के विवाह के मध्य हुए युद्ध के समय से वह भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति एक अविस्मरणीय ईष्यां बनाए था । वास्तव में, वह मूर्ख था क्योंकि उसने श्रीकृष्ण का वध करने की प्रतिज्ञा की थी ।

सामान्य रूप से ऐसे मूर्ख राक्षस अपनी परोक्ष योजनाओं को सम्पन्न करने के लिए शिवजी के समान देवताओं की शरण लेते हैं । अतएव, शक्ति एवं बल की प्राप्ति के लिए शाल्व ने शिवजी के चरणकमलों की शरण ली । उसने कठोर तपस्या की, जिसके मध्य वह मुट्ठी भर भस्म के अतिरिक्त और किसी भी पदार्थ का सेवन नहीं करता था । पार्वती के पतिदेव शिवजी साधारणतया अत्यन्त दयालु हैं तथा यदि उन्हें प्रसन्न करने के लिए कोई कठोर परस्या करता है, तो तुरन्त ही सन्तुष्ट हो जाते हैं । अत: शाल्व द्वारा एक वर्ष तक कठोर तपस्या किए जाने पर शिवजी प्रसन्न हो गए और उन्होंने शाल्व से अपनी इच्छा की पूर्ति के लिए वर माँगने को कहा ।

शाल्व ने शिवजी से ऐसे विमान की माँग की, जो इतना शक्तिशाली हो कि उसका किसी भी देवता, असुर, मनुष्य, गन्धर्व, नाग अथवा राक्षस के द्वारा नाश न हो सके । इसके अतिरिक्त, उसने इच्छा प्रकट की कि उसके इच्छानुसार वह विमान कहीं भी उड़कर जा सके तथा यदु-वंश के लिए खतरनाक एवं भय का कारण हो । शिवजी उसे वह वरदान देने के लिए तैयार हो गए और शाल्व ने इस लोहे के विमान का निर्माण करने के लिए मयासुर की सहायता ली । वह विमान इतना शक्तिशाली और भयानक था कि उसका ध्वंस कोई नहीं कर सकता था । वह एक अत्यन्त भव्य यंत्र था, लगभग एक महानगर के समान तथा वह इतनी ऊँचाई तक और इतनी अधिक गति से उड़ सकता था कि उसकी स्थिति का पता लगाना लगभग असम्भव था, अत: उसपर आक्रमण का कोई प्रश्न ही नहीं उठता था । चाहे बाहर की ओर कितना ही अंधकार क्यों न हो, उसका चालक उस यान को कहीं भी और प्रत्येक स्थान पर ले जा सकता था । ऐसे अद्‌भुत विमान को प्राप्त करके, शाल्व उसे द्वारका नगर में उड़ाकर ले गया, क्योंकि उसका प्रमुख उद्देश्य यदुओं के राज्य पर आक्रमण करना था, जिनके प्रति वह सदैव वैर-भाव रखता था ।

इस प्रकार शाल्व ने न केवल द्वारका नगर पर आक्रमण किया, अपितु उसने उस नगर को पैदल सेना से घेर लिया । जमीन पर सैनिकों ने नगर के सुन्दर स्थलों पर आक्रमण करना आरम्भ कर दिया । वे स्नानगृहों, नगर-द्वारों, महलों एवं गगनचुम्बी भवनों का विध्वंस करने लगे । उन्होंने नगर की चारों दिशाओं में स्थित ऊँची दीवारों तथा मनोरंजन के लिए उपयोग में लाए जाने वाले सुन्दर महलों को भी नहीं छोड़ा । एक ओर जहाँ जमीन पर सैनिक हमला कर रहे थे, वहीं दूसरी ओर उसका विमान चट्टानों, वृक्ष के तनों, वज़ों, विषैले सपों तथा अन्य अनेक घातक वस्तुओं की वर्षा करने लगा । शाल्व ने सफलतापूर्वक नगर में ऐसा शक्तिशाली चक्रवात उत्पन्न किया कि धूल के द्वारा आकाश के ढँक जाने पर सम्पूर्ण

द्वारका में अंधकार छा गया । शाल्व के द्वारा अधिकृत विमान ने सम्पूर्ण द्वारका पर ठीक उसी प्रकार का संकट उत्पन्न कर दिया जैसे कि पृथ्वी पर अनेकानेक वर्षों पूर्व त्रिपुरासुर की गतिविधियों के द्वारा उत्पन्न हुआ था । द्वारकापुरी के निवासी इतने परेशान हो गए कि उन्हें एक क्षण के लिए भी शान्ति नहीं थी ।

प्रद्युम्न के समान अधिकारियों के नेतृत्व में द्वारका नगर के महान् वीरों ने शाल्व के विमान और सैनिकों पर प्रत्याक्रमण किया । जब उन्होंने नागरिकों के अत्यन्त दुर्भाग्य को देखा, तब श्रीप्रद्युम्न ने तुरन्त ही सैनिकों की व्यवस्था की तथा नागरिकों को सुरक्षा का आश्वासन देकर प्रोत्साहित करते हुए वे स्वयं एक रथ पर सवार हुए । उनके आदेश का पालन करते हुए सात्यकि, चारुदेष्ण तथा साम्ब के समान अनेक वीर, प्रद्युम्न के सभी छोटे भ्राता तथा अक्रूर, कृतवर्मा, भानुविन्द, गद, शुक तथा सारण-सभी शाल्व से युद्ध करने के लिए नगर से बाहर आ गए । ये सभी महान् योद्धा थे, प्रत्येक वीर हजारों वयक्तियों से लड़ने का सामथ्र्य रखते थे । सभी वीर आवश्यक अस्त्रों से लैस तथा हजारों सारथियों, हाथियों, घोड़ों तथा पैदल सैनिकों से परिपूर्ण थे । दोनों दलों में भयंकर युद्ध आरम्भ हुआ, जिस प्रकार भूतकाल में देवताओं एवं असुरों में हुआ करता था । युद्ध अत्यन्त भीषण था तथा जिसने भी उस लड़ाई की भयानक प्रकृति को देखा, उसने अनुभव किया कि उसके रोंगटे खड़े हो गए हैं ।

श्रीप्रद्युम्न ने तत्काल ही शाल्व के विमान के द्वारा उत्पन्न रहस्यमय प्रदर्शन को निष्फल कर दिया । विमान की रहस्यमय शक्ति के द्वारा, शाल्व ने रात के समान घने अंधकार को उत्पन्न कर दिया था, परन्तु अचानक ही उदीयमान सूर्य के समान प्रद्युम्न प्रकट हुए । जिस प्रकार सूर्य के उदय होते ही रात का अंधकार लुप्त हो जाता है, उसी प्रकार प्रद्युम्न के प्रकट होने पर शाल्व द्वारा प्रदर्शित शक्ति शून्य एवं प्रभावहीन हो गयी । प्रद्युम्न के प्रत्येक बाण में एक स्वर्ण पंख लगा हुआ था तथा उसका अगला भाग

लोहे का होने के कारण अत्यन्त तीक्ष्ण था । ऐसे पच्चीस बाणों को छोड़कर श्रीप्रद्युम्न ने शाल्व के सेनापति को गम्भीर रूप से घायल कर दिया । उसके पश्चात् उन्होंने प्रत्येक सैनिक को एक-एक बाण मार कर जख्मी कर डाला तथा प्रत्येक सारथी पर दस-दस बाण छोड़कर उन्हें मार डाला । घोड़ों एवं हाथियों जैसे संवाहक उनकी ओर छोड़े गए तीन बाणों से मारे गए । जब युद्धस्थल में उपस्थित सभी जनों ने प्रद्युम्न के इस अद्भुत साहसिक कार्य को देखा, तब दोनों दलों के महान् योद्धा उनके शौर्य के कार्यों की प्रशंसा करने लगे ।

फिर भी शाल्व के द्वारा अधिकृत विमान अत्यन्त रहस्यमय था । वह इतना प्रान्तৰাষ্ট্যাUা था कि कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता कि आकाश में अनेकानेक विमान हैं और कभी लगता कि एक भी विमान नहीं है । कभी वह दृष्टिगोचर होता था और कभी अदृश्य होता था, इससे यदुवंश के वीर उस रहस्यमय विमान के विषय में भ्रमित हो गए । वे विमान को कभी धरती पर, तो कभी आकाश में उड़ता हुआ पाते थे । कभी वे उसे पहाड़ की चोटी पर पाते, तो कभी पानी पर तैरता हुआ । वह भुत विमान पवन में उड़ते हुए जुगनू के समान आकाश में उड़ रहा था-वह एक क्षण के लिए भी स्थिर नहीं था । परन्तु वायुयान के रहस्यमय दुरुपयोग के उपरान्त, यदुवंश के सेनापति एवं सैनिक शाल्व की ओर दौड़ पड़ते, फिर चाहे वह जहाँ भी अपने विमान एवं सैनिकों के साथ होता । यदुवंश के द्वारा छोड़े गए बाण सूर्य के समान प्रकाशित तथा सर्षों की जिह्वा के समान खतरनाक थे ।

शाल्व के पक्ष में लड़ रहे सभी सैनिक यदुवंश के वीरों द्वारा निरन्तर छोड़े गए बाणों से व्यथित हो गए तथा इन बाणों के आक्रमण से स्वयं शाल्व भी अचेत पड़ गया । शाल्व के पक्ष में लड़ रहे सैनिक एवं योद्धा भी अत्यन्त बलवान थे एवं उनके द्वारा भी बाण छोड़ने पर यदुवंश के वीर परेशान हो गए । परन्तु इसके पश्चात् भी यादव इतने शक्तिशाली और दृढ़ थे कि

वे अपनी निश्चित स्थितियों से विचलित नहीं हुए । यदुवंश के वीर युद्धभूमि पर मरने अथवा विजय प्राप्त करने के लिए दृढ़ थे । वे इस सत्य के विषय में इतने विश्वस्त थे कि यदि वे लड़ते-लड़ते मर गए, तो वे वैकुण्ठ लोक को प्राप्त करेंगे और यदि वे विजयी रहे, तो वे इस विश्व का आनन्दस्वादन करेंगे । शाल्व के सेनापति का नाम द्युमान था । वह अत्यन्त बलवान था । यद्यपि वह प्रद्युम्न के पच्चीस बाणों से घायल था तथापि उसने अचानक ही अपनी भयानक गदा से इतना भरपूर वार किया कि प्रद्युम्न अपनी चेतना खो बैठे । तत्काल ही सर्वत्र यह ध्वनि गूँज उठी, "अब वह मर चुका है । अब वह मर चुका है ।" प्रद्युम्न की छाती पर गदा का वार अत्यन्त खतरनाक था जिससे सामान्य वयक्ति की छाती के टुकड़े-टुकड़े किए जा सकते थे ।

प्रद्युम्न के रथ का सारथी दारुक का पुत्र था । वैदिक सैन्य-सिद्धान्तों के अनुसार सारथी एवं रथ पर उपस्थित वीर को युद्ध के मध्य एक दूसरे का सहयोग करना पड़ता है, अतएव सारथी का यह कर्तव्य था कि वह युद्धस्थल पर आपत्ति काल में अपने रथ पर विद्यमान वीर की सहायता करे । इसलिए दारुक ने युद्धभूमि से प्रद्युम्न के शरीर को हटा लिया । दो घण्टों के पश्चात् शान्त स्थान पर प्रद्युम्न की चेतना वापस लौट आई तथा जब उन्होंने देखा कि वे युद्धभूमि के अतिरिक्त किसी अन्य स्थान पर हैं, तो उन्होंने सारथी को सम्बोधन किया और वे उसकी निन्दा करने लगे -

"ओह! तुमने अत्यन्त घृणित कार्य किया है । तुमने मुझे युद्धभूमि से क्यों हटाया? प्रिय सारथी! मैंने यह कभी नहीं सुना कि हमारे वंश में किसी को कभी युद्धभूमि से हटाया गया हो । उनमें से कोई भी लड़ते हुए युद्धभूमि छोड़कर नहीं गया । मुझे इस प्रकार हटाकर, तुमने मुझे अत्यन्त निन्दित किया है । अब ऐसी चर्चा होगी कि मैं युद्ध के बीच से युद्धभूमि छोड़कर चला गया । मेरे प्रिय सारथी! मैं तुमपर आरोप लगाता हूँ-तुम एक कायर

तथा नपुंसक हो । मुझे बताओ तो, मैं अपने ताऊ बलराम जी तथा पिता श्रीकृष्ण के सम्मुख क्या मुख लेकर जाऊँगा तथा मैं उनसे क्या कहूँगा? सभी लोग मेरे विषय में चर्चा करेंगे तथा कहेंगे कि मैं युद्धभूमि छोड़ कर चला गया तथा जब इस विषय में वे मुझसे पूछ-ताछ करेंगे, तो मेरा क्या उत्तर होगा? मेरी भाभियाँ इस प्रकार व्यंग्यपूर्ण शब्दों में मेरी खिल्ली उड़ाएँगी, 'मेरे प्रिय वीर ! आप कब से कायर बन गए हैं? क्या आप नपुंसक बन गए हैं? क्या आप अपने विरोधीदल के योद्धाओं की दृष्टि में इतने गिर गए हैं?' मेरे प्रिय पूरे विरहै कितुने तेकुमसेहक कपक असाधा.....

।"

प्रद्युम्न के सारथी ने उत्तर दिया, "प्रिय महोदय! मैं आपकी दीर्घायु की कामना करता हूँ । मेरे विचार से मैंने कोई भी गलत कार्य नहीं किया है, क्योंकि आपात्काल में रथ के योद्धा की रक्षा करना सारथी का कर्तव्य है । महोदय! आप युद्धविद्या में पूर्णरूपेण सुनिपुण हैं । सारथी एवं योद्धा का यह पारस्परिक कर्तव्य है कि वे खतरनाक स्थिति में एक-दूसरे की सहायता करें । मैं युद्ध के सिद्धान्तों से पूर्णतया परिचित था तथा मैंने अपना कर्तव्य निभाया है । शत्रु ने अचानक ही अपनी गदा से आप पर इतने भयंकर रूप से आक्रमण किया कि आप अपनी चेतना खो बैठे । आप अपने शत्रुओं से घिरे हुए एक खतरनाक स्थिति में थे । अतएव मैं इस प्रकार कार्य करने के लिए बाध्य था ।"

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "यदुवंश के सदस्यों एवं शाल्व के बीच युद्ध" नामक छिहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 76
शाल्व का उद्धार

दारुक के पुत्र अर्थात् अपने सारथी के साथ वार्ता करने के पश्चात् श्रीप्रद्युम्न ने स्वयं में पुन: स्फूर्ति का संचार किया । स्वयं को बाण एवं धनुष से लैस करके, उन्होंने अपने सारथी से कहा कि मुझे शाल्व के सेनापति के समीप ले चलो । युद्धस्थल से श्रीप्रद्युम्न की क्षणिक अनुपस्थिति के मध्य शाल्व का सेनापति, द्युमान, यदुवंश के सैनिकों पर विजय प्राप्त करता जा रहा था । युद्धभूमि में प्रकट होकर प्रद्युम्न ने उसे तत्काल ही रोक दिया और उस पर आठ बाणों की वर्षा की । चार बाणों से उन्होंने उसके चार घोड़े मार डाले, एक बाण से उसके सारथी का वध कर दिया तथा एक और बाण से उसने धनुष के दो टुकड़े कर दिए, एक अन्य से उसके झंडे के अनेकानेक टुकड़े कर दिये तथा एक से उन्होंने उसके सिर को अलग कर दिया ।

दूसरे भाग में गद, सात्यकि तथा साम्ब जैसे वीर योद्धा शाल्व के सैनिकों का वध करने में संलग्न थे । जो सैनिक शाल्व के साथ विमान में बैठे थे वे युद्ध में मारे गए और सागर में गिर पड़े । दोनों दल अपने विरोधी दलों पर गम्भीरतापूर्वक आक्रमण करने लगे । युद्ध भयानक और खतरोंपूर्ण था तथा सताईस दिनों तक अनवरत चलता रहा । जब द्वारका नगर में युद्ध हो रहा था, तब श्रीकृष्ण इन्द्रप्रस्थ में पाण्डवों एवं महाराज युधिष्ठिर के साथ रह रहे थे । शाल्व के साथ युद्ध की यह घटना शिशुपाल के वध तथा महाराज युधिष्ठिर के द्वारा राजसूय यज्ञ के सम्पादन के पश्चातू घटी । जब भगवान् श्रीकृष्ण को ज्ञात हुआ कि द्वारका नगर में चारों ओर संकटपूर्ण स्थिति पैदा हो रही है, तो उन्होंने पाण्डव परिवार के वयोवृद्ध सदस्यों, विशेषकर अपनी बुआ कुन्ती देवी, से अनुमति लेकर द्वारका के लिए प्रस्थान किया ।

भगवान् श्रीकृष्ण विचार करने लगे कि शिशुपाल के वध के पश्चात् जब वे बलराम के साथ हस्तिनापुर आ रहे थे, तब शिशुपाल के साथियों ने द्वारका पर आक्रमण किया होगा, द्वारका पहुँचने पर भगवान् श्रीकृष्ण ने देखा कि सम्पूर्ण नगर अति संकटापन्न था । नगर की सुरक्षा के हेतु श्रीकृष्ण ने श्रीबलराम को एक महत्वपूर्ण स्थिति में स्थापित कर दिया तथा अपने सारथी दारुक को आगे बढ़ने के लिए सूचित किया । उन्होंने कहा, "दारुक! मुझे उस स्थान पर ले चलो जहाँ शाल्व है । तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि शाल्व एक अत्यन्त शक्तिशाली तथा रहस्यमय व्यक्ति है । तुम तनिक भी उससे न डरो ।" जैसे ही दारुक को भगवान् श्रीकृष्ण से आज्ञा प्राप्त हुई, वैसे ही दारुक ने श्रीकृष्ण को रथ पर बिठाया तथा शीघ्र ही शाल्व की ओर चल पड़ा ।

भगवान् श्रीकृष्ण के रथ पर गरुड़ के चिह्न का झंडा था और यदुवंश के सैनिकों तथा वीरों ने उस झंडे को देखा, तो वे समझ गए कि श्रीकृष्ण युद्धस्थल पर पहुँच गए हैं । इस समय तक शाल्व के लगभग सभी सैनिकों का वध हो चुका था, परन्तु जब शाल्व ने देखा कि श्रीकृष्ण युद्धभूमि पर पहुँच गए हैं, तब उसने एक भव्य शक्तिशाली अस्त्र छोड़ा, जो भव्य उल्का के समान गर्जन करते हुए गगन की ओर उड़ चला । वह इतना प्रकाशमय था कि उसकी उपस्थिति मात्र से सम्पूर्ण आकाश प्रकाशित हो उठा । परन्तु प्रकट होते ही श्रीकृष्ण ने अपना एक बाण छोडकर उस भयानक अस्त्र के सैकड़ों-हजारों टुकड़े कर दिए । - ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने सोलह बाण शाल्व की ओर छोड़े तथा बाणों की वर्षा करके उन्होंने विमान को पराजित कर दिया, जिस प्रकार सूर्य सम्पूर्ण निर्मल अम्बर को अपनी किरणों के अनन्त अणुओं से अभिभूत कर लेता है । शाल्व ने श्रीकृष्ण की बायीं ओर भयानक रूप से आक्रमण किया, जिधर श्रीभगवान् ने अपना "शारंग" नामक धनुष धारण कर रखा था । इससे श्रीकृष्ण के हाथ से धनुष गिर पड़ा । धनुष का इस प्रकार गिरना

निस्सन्देह अद्‌भुत था । महान् व्यक्ति एवं देवतागण, जो श्रीकृष्ण एवं शाल्व के बीच इस युद्ध का अवलोकन कर रहे थे, अत्यन्त उद्विग्न हो उठे तथा वे हाय! हाय! करने लगे ।

शाल्व ने सोचा कि वह विजयी हो गया है, अत: गर्जन के साथ वह श्रीकृष्ण को इस प्रकार सम्बोधित करने लगा, "दुष्ट कृष्ण! तुमने हमारी उपस्थिति में बलपूर्वक रुक्मिणी का अपहरण किया । तुमने मेरे मित्र शिशुपाल के साथ छल करके स्वयं रुक्मिणी से विवाह किया । युधिष्ठिर महाराज के राजसूय यज्ञ में जब मेरे मित्र शिशुपाल का ध्यान दूसरी ओर बँट गया था, तब तुमने उसका वध करने का सुअवसर प्राप्त कर लिया । सभी लोग सोचते हैं कि तुम एक महान् योद्धा हो और तुम्हें कोई पराजित नहीं कर सकता, अतएव अब तुम्हें अपनी शक्ति का प्रमाण प्रस्तुत करना होगा । मेरा विचार है कि यदि तुम मेरे सम्मुख और अधिक खड़े रहे, तो तीक्ष्ण बाण के द्वारा मैं तुम्हें ऐसे स्थान पर पहुँचा दूँगा जहाँ से तुम कभी भी लौटकर नहीं आ सकोगे ।"

इसपर श्रीभगवान् ने उत्तर दिया, "मूर्ख शाल्व! तुम मूर्खतापूर्वक बातें कर रहे हो । तुम्हें ज्ञात नहीं है कि तुम्हारी मौत का क्षण समीप आ गया है । जो वीर होते हैं, वे अधिक बातें नहीं करते हैं । वे अपना पराक्रम उदात्त कार्यों के व्यावहारिक प्रदर्शन के द्वारा प्रमाणित करते हैं ।" ऐसा कहने के पश्चात् अत्यन्त क्रोध में आकर श्रीकृष्ण ने गदा से शाल्व की हँसली पर इतनी कठोरतापूर्वक वार किया कि भीतर ही भीतर रक्त-स्राव होने लगा तथा वह कुछ इस प्रकार काँपने लगा मानो वह अत्यन्त ठण्ड के कारण प्राणरहित हो जाने वाला है । तथापि इससे पहले कि श्रीकृष्ण उस पर पुन: आक्रमण कर पाते, शाल्व अपनी रहस्यमय शक्ति की सहायता से अदृश्य हो गया ।

कुछ ही क्षणों में, एक रहस्यमय अज्ञात व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख आया । वह श्रीभगवान् के चरणकमलों में झुका और उनसे कहा,

"आप अपने पिता वसुदेव के अति प्रिय पुत्र हैं, अतएव माता देवकी ने मुझे आपके पास यह सूचित करने के लिए भेजा है कि आपके पिता को शाल्व ने बन्दी बनाकर उन्हें बलपूर्वक अपने अधिकार में ले लिया है । वह उन्हें ठीक उसी प्रकार ले गया, जिस प्रकार एक कसाई पशु को निर्दयता के साथ ले जाता है ।" जब भगवान् श्रीकृष्ण ने इस अज्ञात व्यक्ति से इस दुर्भाग्यपूर्ण समाचार को सुना, तो सर्वप्रथम सामान्य व्यक्ति की भाँति वे अत्यन्त उद्विग्न हुए । उनका मुख दुख के चिह्न प्रदर्शित कर रहा था तथा वे दयनीय मुद्रा में चिल्ला उठे, "ऐसा कैसे सम्भव हो सकता है? मेरे भ्राता श्री बलराम वहाँ पर उपस्थित हैं तथा बलरामजी को पराजित करना किसी के लिए भी सम्भव नहीं है । वे द्वारका नगर के अधिकारी हैं तथा मुझे ज्ञात है कि वे सदैव सचेत रहते हैं । शाल्व किस प्रकार नगर में प्रवेश करके मेरे पिताजी को ऐसे बन्दी बना सकता है? चाहे वह कुछ भी हो, शाल्व की शक्ति सीमित है, अतएव यह कैसे सम्भव हो सकता है कि बलरामजी के बल को पराजित करके उसने मेरे पिताजी को बन्दी बना लिया है, जैसाकि इस व्यक्ति ने वर्णित किया है? आह! अन्ततः भाग्य बहुत बलवान है ।"

जब श्रीकृष्ण इस प्रकार सोच रहे थे तब शाल्व उनके सम्मुख एक ऐसे व्यक्ति को ले आया, जो पूर्णतया उनके पिता के समान प्रतीत हो रहा था । ये सभी शाल्व की रहस्यमय शक्तियों की रचनाएँ थीं । शाल्व श्रीकृष्ण को सम्बोधन करने लगा, "मूर्ख कृष्ण! देखो । यह तुम्हारे पिता हैं जिन्होंने तुम्हें जन्म दिया तथा जिनकी कृपा से तुम अभी भी जीवित हो । अब तुम देखते रहो कि किस प्रकार मैं तुम्हारे पिता का वध करता हूँ । यदि तुममें तनिक भी बल है, तो तुम उनकी रक्षा करने का प्रयत्न करो ।" रहस्यमय जादूगर शाल्व ने इस प्रकार श्रीकृष्ण के सम्मुख कहते हुए तत्काल ही नकली वसुदेव का सिर काट डाला और बिना हिचकिचाहट के उसने उस मृत शरीर को लेकर विमान में रख दिया । श्रीकृष्ण स्वयं में पूर्ण

श्रीभगवान् हैं, तथापि वे एक मानव का अभिनय कर रहे थे, अतएव एक क्षण के लिए वे अत्यन्त निराश हो उठे । उन्हें देखकर ऐसा प्रतीत हो रहा था कि सचमुच ही उनके पिता का वध हो चुका है । परन्तु अगले ही क्षण वे समझ गए कि उनके पिता का वध एवं बन्दी बनाना शाल्व की रहस्यमय शक्तियों का प्रदर्शन हैं, जिन्हें शाल्व ने मयासुर से सीखा था । अपनी वास्तविक चेतना में लौटने के पश्चात्, वे समझ गए कि वहाँ न तो कोई दूत था और न ही उनके पिता का सिर, परन्तु केवल शाल्व ही अपने विमान से आया था, जो पास ही उड़ रहा था । तब वे शाल्व का वध करने की सोचने लगे ।

श्रीकृष्ण की यह प्रतिक्रिया महान् अधिकारियों एवं सन्त पुरुषों में विवादास्पद विषय है । सम्पूर्ण ज्ञान एवं शक्ति के भण्डार भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार कैसे भ्रान्त हो सकते थे? विलाप, खिन्नता तथा घबड़ाहट बद्ध जीवात्माओं वाले व्यक्तियों की विशेषता है, परन्तु ऐसी वस्तुएँ परम पुरुष को कैसे प्रभावित कर सकती हैं, जो ज्ञान, शक्ति एवं सभी ऐश्वर्यों में परिपूर्ण हो? वास्तव में, यह सम्भव ही नहीं है कि शाल्व की रहस्यमय चातुरी से भगवान् श्रीकृष्ण भ्रमित हो गए । वे मानव के अभिनय में अपनी लीला का प्रदर्शन कर रहे थे । महान् सन्त पुरुष एवं ऋषि, जो भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों की भक्तिसेवा में संलग्न हैं तथा जिन्होंने इस प्रकार आत्म साक्षात्कार की चरम सिद्धि प्राप्त कर ली है, जीवन की शारीरिक धारणाओं की सम्भ्रान्तियों को पार कर चुके हैं । ऐसे सन्त पुरुषों को लिए भगवान् श्रीकृष्ण ही परम लक्ष्य हैं । तब भगवान् श्रीकृष्ण शाल्व की रहस्यमय चातुरी से कैसे भ्रमित हो सकते थे? निष्कर्ष यह है कि भगवान् श्रीकृष्ण का किंकर्तव्यविमूढ़ होना उनका एक अन्य ऐश्वर्य है ।

जब शाल्व ने सोचा कि श्रीकृष्ण उसके रहस्यमय प्रदर्शन के कारण भ्रान्त हो गए हैं, तब वह अत्यन्त प्रेरित हो उठा और अनेकानेक बाणों की वर्षा

करके अधिक शक्ति एवं बल के साथ श्रीभगवान् पर आक्रमण करने लगा । परन्तु शाल्व के उत्साह की तुलना पतंगों के द्वारा तेजी से अग्नि में जाने के कार्य से की जा सकती है । भगवान् श्रीकृष्ण ने अपार शक्ति के साथ बाण चलाकर शाल्व को घायल कर दिया, जिससे उसके कवच, धनुष तथा रत्न-जटित शिरस्त्राण टुकड़े-टुकड़े हो गए । श्रीकृष्ण की गदा के भयंकर प्रहार से शाल्व के विमान के टुकड़े-टुकड़े हो गए । शाल्व अत्यन्त सावधान था तथा विमान के साथ नीचे गिरने के स्थान पर वह धरती पर छलाँग लगाने में समर्थ हो गया । वह पुन: श्रीकृष्ण की ओर लपका । शाल्व जब अत्यन्त तेज गति से श्रीकृष्ण पर आक्रमण करने के हेतु दौड़ा, तब श्रीकृष्ण ने उसका हाथ काट लिया, जो गदा-सहित धरती पर गिर पड़ा । अन्तत: उसका वध करने का निश्चय करके श्रीभगवान् ने अद्‌भुत चक्र धारण किया, जो भौतिक सृष्टि के विनाश के काल में प्रकाशमय सूर्य के समान चमक रहा था । जब शाल्व का वध करने के लिए श्रीकृष्ण उठे, तब वे पर्वत पर उदीयमान लाल सूर्य के समान प्रतीत हो रहे थे । तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने उसका सिर काट डाला । कर्णफूलों एवं शिरस्त्राण सहित उसका सिर धरती पर गिर पड़ा । इस प्रकार शाल्व का वध ठीक उसी प्रकार हुआ, जैसे स्वर्ग के राजा इन्द्र द्वारा वृत्रासुर का वध हुआ था ।

जब शाल्व का वध हो गया, तो उसके सभी सैनिक तथा अनुयायी 'हाय! हाय!" करके चिल्लाने लगे । जब शाल्व के सैनिक इस प्रकार चिल्ला रहे थे, तब स्वर्गलोकों से देवताओं ने श्रीकृष्ण पर फूलों की वर्षा की तथा ढोल और बिगुल बजाकर उनकी विजयघोषणा की । इसी क्षण दन्तवक्र आदि शिशुपाल के अन्य मित्र उसकी मुत्यु का बदला लेने के हेतु श्रीकृष्ण से लड़ने के लिए घटनास्थल पर प्रकट हुए । श्रीकृष्ण के समक्ष जब दन्तवक्र प्रकट हुआ, तब वह अत्यन्त क्रोधित था ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "शाल्व का उद्धार" नामक सतहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 78
दन्तवक्र, विदूरथ तथा रोमहर्षण का वध

शाल्व एवं पौण्ड्र के निधन के उपरान्त, अपने मित्र शाल्व की मृत्यु का बदला लेने के लिए एक अन्य मूर्ख दुष्ट राजा, जिसका नाम दन्तवक्र था, श्रीकृष्ण को मारना चाहता था । वह इतना उत्तेजित हो उठा कि वह बिना अस्त्र-शस्त्र तथा बिना रथ के व्यक्तिगत रूप से युद्धभूमि पर उपस्थित हुआ । उसका एकमात्र शस्त्र उसका क्रोध था, जो अपनी चरम सीमा पर था । वह अपनी भुजाओं में केवल एक गदा धारण किए हुए था, परन्तु वह इतना शक्तिशाली था कि उसके हिलने पर सभी को धरती के काँपने का अनुभव होता था; जब श्रीकृष्ण ने उसे अत्यन्त तीव्रतापूर्वक आगे बढ़ते हुए देखा, तो वे तत्काल ही रथ से उतर गए, क्योंकि सैन्य शिष्टाचार का यह सिद्धान्त है कि समान शक्ति वाले व्यक्तियों के बीच में ही युद्ध होना चाहिए । यह जानकर कि दन्तवक्र अकेला है तथा केवल एक गदा से ही युक्त है, श्रीकृष्ण ने उसी प्रकार उत्तर दिया तथा हाथ में गदा लेकर स्वयं तत्पर हुए । जब श्रीकृष्ण उसके समक्ष प्रकट हुए, तब दन्तवक्र की वीरतापूर्ण पर आकर रुक जाती हैं ।

उस समय, दन्तवक्र जो करूष का राजा था, अपनी गदा के साथ दृढ़तापूर्वक खड़ा हो गया तथा श्रीकृष्ण से इस प्रकार कहने लगा: "कृष्ण! यह अत्यन्त प्रसन्नता की बात है तथा शुभ अवसर है कि हम दोनों आमने-सामने खड़े हैं । प्रिय कृष्ण! अन्ततः तुम मेरे सनातन चचेरे भाई हो तथा मुझे तुमको इस प्रकार नहीं मारना चाहिए, परन्तु दुर्भाग्य से मेरे मित्र शाल्व को मारकर तुमने एक भयंकर भूल की है । इसके अतिरिक्त, तुम

मेरे मित्र का वध करके भी सन्तुष्ट नहीं हो । मुझे ज्ञात है कि तुम मुझे भी मारना चाहते हो । तुम्हारी धृष्टता के कारण मुझे अपनी गदा से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े करके तुम्हें मारना होगा । कृष्ण! यद्यपि तुम मेरे सम्बन्धी हो, तद्यपि तुम मूर्ख हो । तुम हमारे सबसे बड़े शत्रु हो, अतएव आज तुम्हें उसी तरह मारना होगा, जिस तरह शल्य-क्रिया के द्वारा व्यक्ति अपने फोड़े को काटकर अलग कर देता है । मैं अपने मित्रों के प्रति सदैव कृतज्ञ रहा हूँ, अतएव मैं अपने प्रिय मित्र शाल्व के प्रति ऋणी हूँ । तुम्हारा वध करने मात्र से ही अपने ऋण को मैं उतार सकता हूँ ।"

जिस प्रकार महावत हाथी को नियंत्रण में रखने के लिए उस पर अंकुश से वार करता है, उसी प्रकार दन्तवक्र ने कठोर शब्द कहकर श्रीकृष्ण को नियंत्रण में लाने का प्रयत्न किया । अपने दुर्वचनों के पश्चात् उसने अपनी गदा से श्रीकृष्ण के सिर पर वार किया तथा सिंह के समान गर्जना की । यद्यपि दन्तवक्र ने अपनी गदा से श्रीकृष्ण पर जोरदार वार किया था, तथापि श्रीकृष्ण एक इंच भी नहीं हिले और न उन्होंने तनिक भी दर्द का अनुभव किया । अपनी कौमोदकी गदा उठाकर तथा कुशलतापूर्वक घूमकर श्रीकृष्ण ने दन्तवक्र के हृदय पर इतने भयंकर रूप से आक्रमण किया कि दन्तवक्र की छाती दो टुकड़ों में बिखर गयी । परिणामस्वरूप, दन्तवक्र रत की उलटी करने लगा, उसके केश तितर-बितर हो गए तथा अपने हाथों एवं पैरों को फैलाकर वह धरती पर गिर पड़ा । कुछ ही मिनटों के उपरान्त दन्तवक्र का मृत शरीर-मात्र शेष रह गया । दन्तवक्र की मृत्यु के पश्चात् शिशुपाल की मृत्यु के समय की ही भाँति, वहाँ पर विद्यमान सभी व्यक्तियों की उपस्थिति में, उस असुर में से दिव्य ज्योति का एक सूक्ष्म कण निकला और आश्चर्यजनक रूप से भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर में समा गया ।

दन्तवक्र का एक भ्राता था, जिसका नाम विदूरथ था । दन्तवक्र की मृत्यु होने पर वह दुख से अभिभूत हो गया । दुख एवं क्रोध के कारण, विदूरथ अत्यन्त जोरजोर से साँस ले रहा था तथा अपने भ्राता का बदला लेने के

लिए वह एक तलवार और एक ढाल लेकर श्रीकृष्ण के सम्मुख उपस्थित हुआ । वह श्रीकृष्ण को तत्काल ही मार डालना चाहता था । जब श्रीकृष्ण समझ गए कि विदूरथ उन्हें अपनी तलवार से मारने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है, तब उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया, जो एक अस्तुरे की धार के समान तेज था तथा बिना विलम्ब किए उन्होंने कर्णफूल और शिरस्त्राण सहित विदूरथ का सिर काट डाला ।
इस प्रकार, शाल्व का वध करके, उसका विमान नष्ट करके तथा उसके उपरान्त दन्तवक्र और विदूरथ का वध करके, अन्ततः श्रीकृष्ण ने अपने नगर द्वारका में प्रवेश किया । ऐसे महान् वीरों का वध करना श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी के लिए सम्भव नहीं था, अतएव स्वर्ग के सभी देवता तथा ब्रह्माण्ड के सभी मानव उनकी जयजयकार करने लगे । महान् ऋषि तथा तपस्वी, सिद्ध और गन्धर्व लोकों के निवासी, विद्याधर, वासुकि तथा महानाग कहलाने वाले निवासी, सुन्दर देवदूत, पितृलोक के निवासी, यक्ष, किन्नर तथा चारण सभी उनपर फूल बरसाने लगे तथा अत्यन्त उल्लास के साथ विजय के गीत गाने लगे । अत्यन्त आनन्द के साथ सम्पूर्ण नगर को सजाकर, द्वारका के नागरिकों ने एक उत्सव का आयोजन किया और जब भगवान् श्रीकृष्ण नगर में से होकर निकले, तो वृष्णि वंश के सभी सदस्यों तथा यदुवंश के वीरों ने अत्यन्त आदरपूर्वक उनका अनुगमन किया । ये श्रीकृष्ण की कुछ दिव्य लीलाएँ हैं, जो सभी अद्भुत शक्तियों के स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण विराट जगत के अधिपति हैं । जो मूर्ख हैं, जो पशु के समान हैं, वे कभी-कभी सोचते हैं कि श्रीकृष्ण पराजित हो गए, परन्तु वस्तुतः वे श्रीभगवान् हैं तथा कोई भी उन्हें पराजित नहीं कर सकता । वे सदैव सभी पर विजयी रहते हैं । वे ही एकमात्र भगवान् हैं तथा अन्य सभी उनके आज्ञाकारी सेवक हैं ।

एक समय की बात है, भगवान् बलरामजी ने सुना कि कुरु वंश में दोनों विरोधी दलों के बीच युद्ध की तैयारियाँ की जा रही है । एक का नेतृत्व

दुर्योधन कर रहा है और दूसरे का पाण्डव । उन्हें यह बात पसन्द नहीं आई कि वे युद्ध को रोकने के लिए एकमात्र मध्यस्थ हैं । इस विषय को असहनीय मानकर कि वे दोनों में से किसी भी दल में सक्रिय भाग नहीं ले रहे हैं, उन्होंने द्वारका से इस बहाने से प्रस्थान किया कि वे तीर्थयात्रा के विभिन्न पवित्र स्थलों के दर्शन हेतु जा रहे हैं । सर्वप्रथम उन्होंने प्रभासक्षेत्र नामक पवित्र स्थल के दर्शन किए । उन्होंने वहाँ पर स्नान किया तथा स्थानीय ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया । तब देवताओं, पितरों, महर्षियों तथा सामान्य जनता के वैदिक कर्मकाण्डों के अनुसार तर्पण किया । पवित्र स्थानों के दर्शन करने की यही वैदिक पद्धति है । इसके पश्चात् आदरणीय ब्राह्मणों के साथ, उन्होंने सरस्वती नदी के तट पर स्थित विभिन्न स्थानों के दर्शन करने का निर्णय किया । क्रमश: उन्होंने पृदक, बिंदुसर, त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ तथा चक्रतीर्थ नामक स्थानों के दर्शन किए । इनके अतिरिक्त उन्होंने पूर्व की ओर बहने वाली नदी सरस्वती के तट पर स्थित सभी विभिन्न पवित्र स्थानों के दर्शन किए । इसके उपरान्त, उन्होंने यमुना तथा गंगा तट पर स्थित सभी प्रमुख पवित्र स्थलों के दर्शन किए । इस प्रकार, अन्त में वे नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान पर पहुँचे ।

यह पवित्र स्थान, नैमिषारण्य, अभी भी भारत में विद्यमान है तथा प्राचीन काल में इसका उपयोग महर्षियों एवं सन्त पुरुषों की सभा के लिए होता था, जिसमें उनका लक्ष्य आध्यात्मिक जीवन को समझना एवं आत्म-साक्षात्कार करना होता था । जब भगवान् श्रीबलराम उस स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ पर आध्यात्मवादियों की एक भव्य सभा द्वारा आयोजित एक भव्य यज्ञ सम्पन्न हो रहा था । ऐसी सभा सहस्रों वर्षों तक चलती रहती थी । जब श्रीबलराम वहाँ उपस्थित हुए, तब सभा के सभी भाग लेने वाले-महर्षि तपस्वी, ब्राह्मण तथा विद्वान-तत्काल ही उठ खड़े हुए और उन्होंने

अत्यन्त आदर एवं सम्मान के साथ उनका स्वागत किया । कुछ व्यक्तियों ने उनकी सादर वन्दना की तथा जो वयोवृद्ध महर्षि तथा ब्राह्मण थे, उन्होंने खड़े होकर श्रीबलराम को आशीर्वाद दिए । इस औपचारिकता के पश्चात् बलरामजी को एक उचित सिंहासन दिया गया तथा सभी उपस्थित लोगों ने उनकी उपासना की । बलराम जी की उपस्थिति में सारे सदस्य खड़े हो गए, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि बलरामजी श्रीभगवान् हैं । शिक्षा अथवा ज्ञान का अर्थ होता है श्रीभगवान् को समझना । यद्यपि बलरामजी एक क्षत्रिय के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुए, परन्तु सभी ब्राह्मण एवं ऋषि इसलिए खड़े हो गए, क्योंकि वे जानते थे कि बलराम जी कौन हैं ।

दुर्भाग्य से, अपने सिंहासन पर बैठने एवं पूजे जाने के उपरान्त, बलरामजी की दृष्टि व्यासदेव (श्रीभगवान् के साहित्यिक अवतार) के शिष्य रोमहर्षण पर पड़ी, जो अभी भी अपने व्यासासन पर बैठा हुआ था । वह न अपने स्थान से उठा और न ही उसने बलराम जी की वन्दना की । चूंकि वह अपने व्यासासन पर विराजमान था, अत: मूर्खतापूर्वक उसने सोचा कि वह श्रीभगवान् से भी श्रेष्ठ है, अतएव वह अपने स्थान से नहीं उठा और न ही श्रीभगवान् के सम्मुख प्रणाम किया । तत्पश्चात् भगवान् श्रीबलराम ने रोमहर्षण के इतिहास पर विचार किया: वह सूत परिवार में जन्मा था, उसकी माता ब्राह्मणी तथा पिता क्षत्रिय था, अतः यद्यपि रोमहर्षण ने श्रीबलराम को

ही मार डालना चाहता था । जब श्रीकृष्ण समझ गए कि विदूरथ उन्हें अपनी तलवार से मारने के अवसर की प्रतीक्षा कर रहा है, तब उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र का प्रयोग किया, जो एक अस्तुरे की धार के समान तेज था तथा बिना विलम्ब किए उन्होंने कर्णफूल और शिरस्त्राण सहित विदूरथ का सिर काट डाला । इस प्रकार, शाल्व का वध करके, उसका

विमान नष्ट करके तथा उसके उपरान्त दन्तवक्र और विदूरथ का वध करके, अन्ततः श्रीकृष्ण ने अपने नगर द्वारका में प्रवेश किया । ऐसे महान् वीरों का वध करना श्रीकृष्ण के अतिरिक्त किसी के लिए सम्भव नहीं था, अतएव स्वर्ग के सभी देवता तथा ब्रह्माण्ड के सभी मानव उनकी जयजयकार करने लगे । महान् ऋषि तथा तपस्वी, सिद्ध और गन्धर्व लोकों के निवासी, विद्याधर, वासुकि तथा महानाग कहलाने वाले निवासी, सुन्दर देवदूत, पितृलोक के निवासी, यक्ष, किन्नर तथा चारण सभी उनपर फूल बरसाने लगे तथा अत्यन्त उल्लास के साथ विजय के गीत गाने लगे । अत्यन्त आनन्द के साथ सम्पूर्ण नगर को सजाकर, द्वारका के नागरिकों ने एक उत्सव का आयोजन किया और जब भगवान् श्रीकृष्ण नगर में से होकर निकले, तो वृष्णि वंश के सभी सदस्यों तथा यदुवंश के वीरों ने अत्यन्त आदरपूर्वक उनका अनुगमन किया । ये श्रीकृष्ण की कुछ दिव्य लीलाएँ हैं, जो सभी अद्भुत शक्तियों के स्वामी हैं तथा सम्पूर्ण विराट जगत के अधिपति हैं । जो मूर्ख हैं, जो पशु के समान हैं, वे कभी-कभी सोचते हैं कि श्रीकृष्ण पराजित हो गए, परन्तु वस्तुतः वे श्रीभगवान् हैं तथा कोई भी उन्हें पराजित नहीं कर सकता । वे सदैव सभी पर विजयी रहते हैं । वे ही एकमात्र भगवान् हैं तथा अन्य सभी उनके आज्ञाकारी सेवक हैं ।

एक समय की बात है, भगवान् बलरामजी ने सुना कि कुरु वंश में दोनों विरोधी दलों के बीच युद्ध की तैयारियाँ की जा रही है । एक का नेतृत्व दुर्योधन कर रहा है और दूसरे का पाण्डव । उन्हें यह बात पसन्द नहीं आई कि वे युद्ध को रोकने के लिए एकमात्र मध्यस्थ हैं । इस विषय को असहनीय मानकर कि वे दोनों में से किसी भी दल में सक्रिय भाग नहीं ले रहे हैं, उन्होंने द्वारका से इस बहाने से प्रस्थान किया कि वे तीर्थयात्रा के विभिन्न पवित्र स्थलों के दर्शन हेतु जा रहे हैं । सर्वप्रथम उन्होंने प्रभासक्षेत्र नामक पवित्र स्थल के दर्शन किए । उन्होंने वहाँ पर स्नान किया

तथा स्थानीय ब्राह्मणों को सन्तुष्ट किया । तब देवताओं, पितरों, महर्षियों तथा सामान्य जनता के वैदिक कर्मकाण्डों के अनुसार तर्पण किया । पवित्र स्थानों के दर्शन करने की यही वैदिक पद्धति है । इसके पश्चात् आदरणीय ब्राह्मणों के साथ, उन्होंने सरस्वती नदी के तट पर स्थित विभिन्न स्थानों के दर्शन करने का निर्णय किया । क्रमश: उन्होंने पृदक, बिंदुसर, त्रितकूप, सुदर्शनतीर्थ, विशालतीर्थ, ब्रह्मतीर्थ तथा चक्रतीर्थ नामक स्थानों के दर्शन किए । इनके अतिरिक्त उन्होंने पूर्व की ओर बहने वाली नदी सरस्वती के तट पर स्थित सभी विभिन्न पवित्र स्थानों के दर्शन किए । इसके उपरान्त, उन्होंने यमुना तथा गंगा तट पर स्थित सभी प्रमुख पवित्र स्थलों के दर्शन किए । इस प्रकार, अन्त में वे नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान पर पहुँचे ।

यह पवित्र स्थान, नैमिषारण्य, अभी भी भारत में विद्यमान है तथा प्राचीन काल में इसका उपयोग महर्षियों एवं सन्त पुरुषों की सभा के लिए होता था, जिसमें उनका लक्ष्य आध्यात्मिक जीवन को समझना एवं आत्म-साक्षात्कार करना होता था । जब भगवान् श्रीबलराम उस स्थान पर पहुँचे, तब वहाँ पर आध्यात्मवादियों की एक भव्य सभा द्वारा आयोजित एक भव्य यज्ञ सम्पन्न हो रहा था । ऐसी सभा सहस्रों वर्षों तक चलती रहती थी । जब श्रीबलराम वहाँ उपस्थित हुए, तब सभा के सभी भाग लेने वाले-महर्षि तपस्वी, ब्राह्मण तथा विद्वान-तत्काल ही उठ खड़े हुए और उन्होंने अत्यन्त आदर एवं सम्मान के साथ उनका स्वागत किया । कुछ व्यक्तियों ने उनकी सादर वन्दना की तथा जो वयोवृद्ध महर्षि तथा ब्राह्मण थे, उन्होंने खड़े होकर श्रीबलराम को आशीर्वाद दिए । इस औपचारिकता के पश्चात् बलरामजी को एक उचित सिंहासन दिया गया तथा सभी उपस्थित लोगों ने उनकी उपासना की । बलराम जी की उपस्थिति में सारे सदस्य खड़े हो गए, क्योंकि उन्हें ज्ञात था कि बलरामजी श्रीभगवान् हैं । शिक्षा अथवा ज्ञान का अर्थ होता है श्रीभगवान् को समझना । यद्यपि बलरामजी एक

क्षत्रिय के रूप में पृथ्वी पर प्रकट हुए, परन्तु सभी ब्राह्मण एवं ऋषि इसलिए खड़े हो गए, क्योंकि वे जानते थे कि बलराम जी कौन हैं ।

दुर्भाग्य से, अपने सिंहासन पर बैठने एवं पूजे जाने के उपरान्त, बलरामजी की दृष्टि व्यासदेव (श्रीभगवान् के साहित्यिक अवतार) के शिष्य रोमहर्षण पर पड़ी, जो अभी भी अपने व्यासासन पर बैठा हुआ था । वह न अपने स्थान से उठा और न ही उसने बलराम जी की वन्दना की । चूंकि वह अपने व्यासासन पर विराजमान था, अत: मूर्खतापूर्वक उसने सोचा कि वह श्रीभगवान् से भी श्रेष्ठ है, अतएव वह अपने स्थान से नहीं उठा और न ही श्रीभगवान् के सम्मुख प्रणाम किया । तत्पश्चात् भगवान् श्रीबलराम ने रोमहर्षण के इतिहास पर विचार किया: वह सूत परिवार में जन्मा था, उसकी माता ब्राह्मणी तथा पिता क्षत्रिय था, अतः यद्यपि रोमहर्षण ने श्रीबलराम को क्षत्रिय माना, तब भी उसे अपनी उच्च गद्दी पर बैठे नहीं रहना चाहिए था । बलरामजी ने विचार किया कि जन्म की अपनी स्थिति के अनुसार रोमहर्षण को उच्च सिंहासन स्वीकार नहीं करना चाहिए था, क्योंकि वहाँ पर अनेक विद्वान ब्राह्मण तथा ऋषि उपस्थित थे । उन्होंने यह भी अवलोकन किया कि सभा में बलरामजी के प्रवेश करने पर उनको सम्मान देने के लिए वह अपनी गद्दी पर से उठा ही नहीं । बलरामजी को रोमहर्षण का दुस्साहस अरुचिकर लगा तथा वे उससे अत्यन्त क्रोधित हो उठे ।

जब व्यक्ति व्यासासन पर विराजमान होता है, तब सामान्यत: उसे सभा में प्रवेश कर रहे किसी विशेष व्यक्ति के सत्कार के लिए उठना नहीं पड़ता, परन्तु इस सम्बन्ध में स्थिति कुछ और थी, क्योंकि श्रीबलदेव कोई सामान्य व्यक्ति नहीं थे । अतएव, यद्यपि रोमहर्षण सूत को व्यासासन के लिए योग्य व्यक्ति के रूप में सभी ब्राह्मणों द्वारा स्वीकार किया गया था, उसे वहाँ पर उपस्थित सभी अन्य विद्वान ऋषियों एवं ब्राह्मणों के आचरण का अनुसरण करना चाहिए था और उन्हें यह ज्ञात होना चाहिए था कि

बलरामजी भगवान् हैं । उनके प्रति सम्मान सदैव उचित है, जबकि ऐसा सम्मान सामान्य व्यक्ति के सम्बन्ध में टाला जा सकता है । श्रीकृष्ण और श्रीबलराम का प्राकटय विशेष रूप से धार्मिक सिद्धान्तों की पुनस्र्थापना के लिए होता है । भगवद्गीता के कथनानुसार, सर्वश्रेष्ठ धार्मिक सिद्धान्त श्रीभगवान् के प्रति समर्पण करना है । श्रीमद्भागवत में भी इसकी पुष्टि की गई है कि धार्मिकता की सर्वोच्चतम सिद्धि श्रीभगवान् की भक्ति में संलग्न रहना है ।

जब बलरामजी ने देखा कि सभी वेदों का अध्ययन करने के उपरान्त भी रोमहर्षण सूत ने धार्मिकता का सर्वोच्चतम सिद्धान्त नहीं समझा है, तब निस्सन्देह ही वे उसकी स्थिति का समर्थन नहीं कर सके । रोमहर्षण सूत को पूर्ण ब्राह्मण बनने का अवसर दिया गया था, परन्तु श्रीभगवान् के साथ उसके दुष्ट आचरण के कारण उसके निम्न जन्म का तत्काल ही स्मरण हुआ । रोमहर्षण सूत को ब्राह्मण की स्थिति प्रदान की गई थी, परन्तु उसका जन्म ब्राह्मण परिवार में नहीं हुआ था, उसका जन्म प्रतिलोम परिवार में हुआ था । वैदिक धारणा के अनुसार मिश्रित परिवार-परम्परा दो प्रकार की होती है । जब एक उच्च जाति का पुरुष निम्न जाति की कन्या के साथ विवाह करता है, तो उससे उत्पन्न संतान को अनुलोम कहते हैं, परन्तु जब एक पुरुष उच्च जाति की स्त्री से विवाह करता है, तो उनकी संतान को प्रतिलोम कहा जाता है । रोमहर्षण सूत प्रतिलोम परिवार का था, क्योंकि उसका पिता क्षत्रिय था तथा माता ब्राह्मणी थी । चूँकि रोमहर्षण की दिव्य अनुभूति पूर्ण नहीं थी, अतएव बलरामजी को ब्राह्मण प्रतिलोम परम्परा का स्मरण हुआ । कहने का तात्पर्य यह है कि किसी भी व्यक्ति को ब्राह्मण बनने का सुअवसर दिया जा सकता है, परन्तु यदि बिना वास्तविक अनुभूति किए वह ब्राह्मण की स्थिति का अनुचित

रूप से उपयोग करता है, तो ब्राह्मण पद पर में उसकी उन्नति वैध नहीं है ।

रोमहर्षण में अनुभूति की कमी देखने के उपरान्त, बलरामजी ने रोमहर्षण द्वारा गर्वित होने के लिए उसकी निन्दा करने का निश्चय किया । अतएव, बलराम जी ने इस प्रकार कहा, "यह व्यक्ति मृत्यु दण्ड के योग्य है । यद्यपि श्रीव्यासदेव का शिष्य होने का गुण इसमें विद्यमान है तथा इस महाजन ने इतने सम्पूर्ण वैदिक साहित्य का ज्ञान प्राप्त किया है, फिर भी श्रीभगवान् की उपस्थिति में वह विनम्र नहीं है ।" भ7वद्र/त7 के कथनानुसार, जो व्यक्ति वास्तव में ब्राह्मण है तथा अत्यन्त विद्वान है, उसे स्वयं ही विनम्र बन जाना चाहिए । रोमहर्षण सूत के सन्दर्भ में, यद्यपि वह अत्यन्त विद्वान था और उसे ब्राह्मण बनने का अवसर दिया गया था, फिर भी वह विनम्र नहीं बना था । इससे हम समझ सकते हैं कि जब व्यक्ति भौतिक लाभ से फूला नहीं समाता है, तब वह ब्राह्मण के योग्य नम्र व्यवहार की प्राप्ति नहीं कर सकता । ऐसे व्यक्ति का ज्ञान सर्प के फण को सुसजित करने वाले बहुमूल्य रत्न के समान होता है । अपने फण पर बहुमूल्य रत्न होने के पश्चात् भी, वह सर्प सर्प ही रहता है और किसी अन्य सर्प की भाँति भय का कारण होता है । यदि व्यक्ति विनम्र एवं विनीत नहीं बनता, तब वेदों एवं पुराणों का उसका अध्ययन तथा शास्त्रों का उसका विशाल ज्ञान एक बाहरी वस्त्र मात्र रह जाता है, ठीक उस नट कलाकार की भाँति जो मंच पर नृत्य करता है । अतएव, बलरामजी इस प्रकार कहने लगे: "मैं मिथ्या व्यक्तियों की निन्दा करने के लिए प्रकट हुआ हूँ, जो भीतर से अशुद्ध होते हैं परन्तु बाहर से अत्यन्त विद्वान एवं धार्मिक होने का ढोंग करते हैं । ऐसे व्यक्तियों का वध करना उन्हें आगामी पापपूर्ण कार्यों से रोकना है ।"

श्रीबलराम ने कुरुक्षेत्र के युद्ध में भाग नहीं लिया था, फिर भी अपनी स्थिति की वजह से, धार्मिक सिद्धान्तों की पुनस्र्थापना उनका प्रमुख कर्तव्य था

। इन तथ्यों को ध्यान में रखते हुए, उन्होंने कुश के तिनके से रोमहर्षण को मारकर उसका वध कर दिया । वह तिनका घास की एक पत्ती मात्र था । यदि कोई व्यक्ति यह प्रश्न करे कि बलरामजी कुश-मात्र से रामहर्षण का वध किस प्रकार कर सकते थे, तो इसका उत्तर श्रीमद्भागवत में "प्रभु" शब्द के प्रयोग के रूप में दिया गया है । श्रीभगवान् की स्थिति सदैव दिव्य है । चूँकि वे सर्वशक्तिमान हैं, अतएव वे अपनी इच्छानुसार भौतिक नियमों एवं सिद्धान्तों के प्रति कृतज्ञ हुए बिना कार्य कर सकते हैं । अतएव उनके लिए एक कुश (घास) मात्र से रोमहर्षण सूत को मारना सम्भव था ।

रोमहर्षण सूत की मृत्यु होने पर सभी उपस्थित जन अत्यन्त दुखी हो गए । तब गर्जना एवं चिल्लाने की ध्वनि सुनाई पड़ी । यद्यपि सभी उपस्थित ब्राह्मण एवं ऋषि गणों को ज्ञात था कि श्रीबलराम भगवान् हैं, तथापि भगवान् की इस गतिविधि का विरोध करने में वे तनिक भी नहीं हिचकिचाए । उन्होंने नम्रतापूर्वक निवेदन किया, "हमारे प्रिय भगवान् ! हमारा विचार है कि आपका यह कार्य धार्मिक सिद्धान्तों के अनुसार नहीं है । प्रिय भगवान्! यदुनन्दन! हम आपको सूचित करना चाहेंगे कि हम ब्राह्मणों ने इस महायज्ञ के मध्य श्रेष्ठ स्थिति पर बैठने के लिए रोमहर्षण सूत को नियुक्त किया था । हमारे चुनाव के द्वारा वह व्यासासन पर विराजमान था तथा जब कोई व्यासासन पर विराजमान होता है, तो किसी व्यक्ति का स्वागत करने के लिए अपने सिंहासन पर से उसका उठना अनुचित है । इसके अतिरिक्त, हमने रोमहर्षण सूत को अविचल आयु प्रदान की थी । इन परिस्थितियों में क्योंकि आप श्रीमान् ने पूर्ण तथ्यों को जाने बिना ही उसका वध कर दिया है, अतएव हमारा विचार है कि आपकी यह क्रिया किसी ब्राह्मण को मारने के समान है । प्रिय भगवन्! पतित आत्माओं के उद्धारक ! हमें निस्सन्देह ज्ञात है कि आप सभी वैदिक सिद्धान्तों के ज्ञाता हैं, आप सभी अद्भुत शक्तियों के स्वामी हैं, अतएव

सामान्य रूप से वैदिक आदेशों को आप पर लागू नहीं किया जा सकता । परन्तु हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि रोमहर्षण सूत के इस वध के लिए प्रायश्चित करके आप दूसरों पर अपनी अहैतुकी कृपा प्रदर्शित करें । तथापि, हम यह सुझाव नहीं देते कि आप उसका वध करने के हेतु प्रायश्चित करने के लिए किस प्रकार का कार्य करें, हम केवल यह सुझाव देते हैं कि आप प्रायश्चित की कोई विधि ग्रहण करें जिससे अन्य सभी लोग आपके कार्य का अनुसरण कर सकें । महान् व्यक्ति के द्वारा किए गए कार्यों का सामान्य व्यक्ति पालन करता है ।"

श्रीभगवान् ने उत्तर दिया, "हाँ, मुझे इस क्रिया के लिए अपने लिए उचित प्रायश्चित करना चाहिए, परन्तु दूसरों के लिए यह अनुचित है । अतएव मेरे विचार से यह मेरा कर्तव्य है कि मैं प्रामाणिक साहित्य के आदेशानुसार प्रायश्चित के योग्य कार्य का निष्पादन करूं । साथ-साथ मैं इस रोमहर्षण सूत को पुन: जीवन दे सकता हूँ, जो अत्यधिक लम्बी अवधि का हो, पर्याप्त शक्ति तथा इन्द्रियों की पूर्ण शक्ति से परिपूर्ण हो । इतना ही नहीं, यदि आप चाहें, तो मैं उसे जो आप कहेंगे, वह दे सकता हूँ । आपकी इच्छाओं की पूर्ति करने के लिए मैं इन सभी वरदानों को प्रदान करने में अत्यन्त प्रसन्नता अनुभव करुँगा ।"

बलरामजी का यह कथन निश्चित रूप से इस बात की पुष्टि करता है कि श्रीभगवान् किसी भी प्रकार का कार्य करने के लिए स्वतंत्र हैं । यद्यपि यह मान लिया जाए कि उनके द्वारा रोमहर्षण सूत का वध अनुचित था, तो वे तत्काल ही अपने इस कार्य का सभी को अधिक लाभ देकर प्रभावहीन कर सकते थे । अतएव, किसी व्यक्ति को श्रीभगवान् के कार्यों का अनुकरण नहीं करना चाहिए, उसको श्रीभगवान् ने आदेशों का केवल अनुसरण करना चाहिए । सभी उपस्थित विद्वान महर्षियों ने अनुभव किया कि यद्यपि वे श्रीबलराम जी के कार्य को अनुचित मानते थे, किन्तु

श्रीभगवान् अपने कार्य की पूर्ति और भी महान् लाभों के द्वारा करने को तत्पर थे । रोमहर्षण सूत को मारने में भगवान् के उद्देश्य को घटाने की इच्छा न रखते हुए, सभी जनों ने प्रार्थना की, "प्रिय भगवन्! रोमहर्षण सूत को मारने में कुश अस्त्र का असामान्य उपयोग जैसे का तैसा रहे, उसका वध करने की आपकी इच्छा के फलस्वरूप उसे पुन: जीवित नहीं किया जाना चाहिए! उसी के साथ आप स्मरण रखें कि हम ऋषियों तथा ब्राह्मणोंने उसे दीर्घायु प्रदान की थी, अतएव ऐसे वरदान को व्यर्थ नहीं जाना चाहिए ।" अत: सभा में सभी उपस्थित ब्राह्मणों का निवेदन द्रव्यर्थक था, क्योंकि वे उनके द्वारा दिए गए वरदान को बनाए रखना चाहते थे कि रोमहर्षण सूत की उस महायज्ञ के अन्त तक स्थिति बनी रहे, परन्तु साथ ही साथ वे श्री बलरामजी के द्वारा उसको मारने के कार्य को व्यर्थ नहीं करना चाहते थे । अतएव श्रीभगवान् ने समस्या का हल इस प्रकार निकाला, जो उनकी श्रेष्ठ स्थिति के उपयुक्त था । उन्होंने कहा, "क्योंकि पुत्र की उत्पति पिता के शरीर से होती है, यह वेदों का आदेश है कि पुत्र ही पिता का प्रतिनिधि होता है । अतएव मेरा कहना है कि रोमहर्षण सूत का पुत्र उग्रश्रवा, अपने पिता की स्थिति ग्रहण करे और पुराणों पर व्याख्या करने की क्रिया को कायम रखे और आप लोग रोमहर्षण की दीर्घ आयु चाहते थे, अतएव यह वरदान उसके पुत्र में हस्तान्तरित हो जाएगा । इस तरह उसका पुत्र उग्रश्रवा आप लोगों के द्वारा दी गई सुविधाओं को प्राप्त करेगा, जो इस प्रकार हैं-स्वस्थ शरीर, बिना किसी कठिनाई तथा सभी इन्द्रियों की पूर्ण शक्ति के साथ दीर्घ जीवन-अवधि ।

तत्पश्चात् बलरामजी ने सभी ब्राह्मणों एवं ऋषियों से प्रार्थना की कि रोमहर्षण को प्रदान किए गए वरदान के अतिरिक्त, उन्हें किसी अन्य वरदान की भी माँग करनी चाहिए, जिसे वे पूरा करने को तैयार हैं । इस तरह उन्होंने स्वयं को सामान्य क्षत्रिय की स्थिति में रखा तथा सभी ऋषियों को सूचित किया कि उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि वे किस प्रकार रोमहर्षण

के वध के लिए प्रायश्चित कर सकते हैं, परन्तु यदि वे कोई सुझाव दें, तो उसे सहर्ष स्वीकार करेंगे ।

ब्राह्मण लोग श्रीभगवान् का उद्देश्य समझ सकते थे, अतएव उन्होंने सुझाव दिया कि वे अपने कार्य का कुछ इस प्रकार प्रायश्चित करें, जो उन सबों के लिए लाभप्रद हो । उन्होंने कहा, "प्रिय भगवन्! बल्वल नाम का एक असुर है । वह इल्वल का पुत्र है, परन्तु वह एक अत्यन्त शक्तिशाली असुर है तथा यज्ञ के इस पवित्र स्थान में प्रत्येक पखवारे, पूर्णिमा एवं अमावस्या के दिन आता है तथा हमारे यज्ञ-कार्यों के निष्पादन में घोर विघ्न डालता है । हे दशाह परिवार के वंशज! हम सभी प्रार्थना करते हैं कि आप इस असुर का वध करें । हमारा विचार है कि यदि आप कृपापूर्वक उसका वध कर डालेंगे, तो हमारी ओर से यही आपका प्रायश्चित होगा । यह असुर समय-समय पर यहाँ आता है और प्रचुर मात्रा में पीब, रक्त, मल, मूत्र तथा शराब जैसे दूषित एवं अशुद्ध पदार्थ हम पर फेंकता है तथा ऐसी गन्दगी को हम पर बरसा कर इस पवित्र स्थान को दूषित कर देता है । बल्वल का वध करने के पश्चात् आप इन सभी पवित्र स्थानों की तीर्थयात्रा बारह महीनों तक कर सकते हैं और इस प्रकार आप सभी संदूषणों से मुक्त हो जाएँगे । यही हमारा आदेश है ।"

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "दन्तवक्र, विदूरथ तथा रोमहर्षण का वध" नामक अठहत्तरवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 79
बल्वल का उद्धार तथा बलरामजी का पवित्र स्थानों में भ्रमण करना

बलरामजी ने बल्वलासुर का सामना करने के लिए तैयारी की । उसी समय उस असुर ने उस पवित्र स्थान पर आक्रमण किया, उस समय एक भयंकर ओला-वृष्टि हुई, सम्पूर्ण आकाश धूल से ढक गया तथा वातावरण दुर्गन्ध से भर गया । इसके कुछ ही समय बाद, दुष्ट बल्वलासुर ने यज्ञ की वेदी पर प्रचुर मात्रा में मल एवं मूत्र तथा अन्य अशुद्ध पदार्थों की वर्षा की । इस अभ्याघात के पश्चात्, असुर अपनी भुजाओं में एक त्रिशूल लिए प्रकट हुआ । वह एक विशाल व्यक्ति था तथा उसका काला शरीर कोयले के एक विशाल ढेर के समान था । उसके केश, उसकी दाढ़ी तथा मूंछ ताम्बे की भाँति लाल प्रतीत हो रही थीं तथा उसकी बड़ी दाढ़ी और मूंछ से उसका चेहरा अत्यन्त भयानक प्रतीत हो रहा था । जैसे ही बलराम ने उस असुर को देखा, वैसे ही वे उस पर आक्रमण करने के लिए तैयार हो गए । वे सर्वप्रथम यह विचार करने लगे कि किस प्रकार उस असुर के टुकड़े-टुकड़े कर सकते हैं । बलरामजी ने अपनी गदा एवं हल का स्मरण किया तथा वे दोनों वस्तुएँ तत्काल ही उनके सम्मुख प्रकट हो गयीं । बल्वलासुर आकाश में उड़ रहा था तथा प्रथम अवसर पर ही श्रीबलराम ने अपने हल के द्वारा उसे नीचे घसीट लिया और क्रोधित होकर अपनी गदा से असुर के सिर को चूर कर डाला । बलरामजी के द्वारा आक्रमण करने पर असुर का ललाट फट गया । उसके ललाट में से अत्यधिक रक्त बहने लगा तथा वह जोर-जोर से चीखने लगा । इस प्रकार वह असुर जो धर्मपरायण ब्राह्मणों के लिए घोर अशान्ति का कारण था, धरती पर गिर पड़ा । उसका गिरना विशाल पर्वत की रक्त वर्ण वाली चोटी पर वज़पात होने तथा धरती पर टूट पड़ने के समान था ।

नैमिषारण्य के निवासी, विद्वान ऋषि तथा ब्राह्मण, यह दृश्य देखकर प्रसन्न हो उठे तथा उन्होंने अपनी सादर वन्दनाएँ बलराम जी को अर्पित कीं । उन्होंने हार्दिक आशीर्वाद अर्पित किए तथा सभी ने स्वीकार किया कि कुछ-भी करने का श्रीबलराम का प्रयास कभी-भी असफल नहीं होता । ऋषियों एवं ब्राह्मणों ने तत्पश्चात् श्रीबलराम-धर्मानुष्ठान-स्नान-समारोह सम्पन्न कराया जैसे राजा इन्द्र को असुरों पर विजय पाने के अवसर पर देवताओं द्वारा स्नान कराया जाता है । ब्राह्मणों एवं ऋषियों ने श्रीबलराम को सर्वोत्तम नवीन वस्त्र तथा आभूषण और विजय की कमल-पुष्प-माला भेंट में देकर सम्मानित किया । वह माला सर्व-सौन्दर्य का भण्डार थी, जो कभी न सूखकर सदैव ताजा रहने वाली थी ।

इस घटना के पश्चात्, श्रीबलराम ने नैमिषारण्य में उपस्थित सभी ब्राह्मणों से आज्ञा ली तथा अन्य ब्राह्मणों सहित, वे कौषिकी नदी के तट पर पहुँचे । इस पवित्र स्थल पर स्नान करने के पश्चात् वे सरयू नदी की ओर बढ़े तथा अन्ततः वे प्रयाग पहुँच गए, जहाँ पर गंगा, यमुना एवं सरस्वती का संगम होता है । यहाँ पर भी उन्होंने नियमित रूप से स्नान किया, भगवान् के स्थानीय मन्दिरों के दर्शन किए तथा, जैसाकि वैदिक साहित्य में आदेश दिया गया है, पितरों एवं ऋषियों को तर्पण किया । अन्तत: वे पुलह ऋषि के आश्रम में पहुँचे तथा वहाँ से गोमती नदी पर स्थित गण्डकी गए । विपाशा नदी में स्नानोपरान्त क्रमश: वे शोण नदी के तट पर आए । (आज भी शोण नदी बिहार प्रदेश की बड़ी नदियों में से एक के रूप में बह रही है ।) उन्होंने वहाँ पर भी स्नान किया तथा वैदिक कर्मकाण्ड सम्पन्न किया । उन्होंने अपनी यात्रा को चालू रखा तथा क्रमश: वे तीर्थनगर गया में पहुँचे, जहाँ पर श्रीविष्णु का एक प्रसिद्ध मन्दिर है । अपने पिता वसुदेव के परामर्श के अनुसार उन्होंने इसी विष्णु-मन्दिर में अपने पूर्वजों को तर्पण किया । यहाँ से वे गंगा नदी के मुहाने पर पहुँचे, जहाँ पवित्र गंगा नदी बंगाल की खाड़ी में मिलती है । इस पवित्र स्थान को

गंगासागर कहा जाता है तथा जनवरी के अन्त में हर वर्ष, आज भी सन्त पुरुषों एवं पुण्यपुरुषों की विशाल सभा होती है, जिस प्रकार हर वर्ष प्रयाग में सन्त पुरुषों की सभा होती है-जिसे माघ-मेला कहते हैं ।

गंगासागर में स्नान तथा अन्य कर्मकाण्डीय समारोहों की समाप्ति करने के उपरान्त, बलरामजी महेन्द्र पर्वत की ओर अग्रसर हुए । इस स्थान पर वे श्रीकृष्ण के अवतार श्रीपरशुराम से मिले तथा उन्होंने उनके सम्मुख झुककर वन्दना करके उनको सम्मानित किया । इसके पश्चात् अन्तत: वे दक्षिण भारत की ओर मुड़े तथा उन्होंने गोदावरी नदी के दर्शन किए । गोदावरी नदी में स्नान करने तथा आवश्यक कार्मकाण्ड सम्पन्न करने के पश्चात्, उन्होंने अन्य नदियों के दर्शन किए जो इस प्रकार हैं- वेणा, पम्पा तथा भीमरथी । भीमरथी नदी के तट पर 'स्वामी कार्तिकेय" नामक श्रीमूर्ति है । कार्तिकेय के दर्शन करने के उपरान्त, श्रीबलराम जी शैलपुर नामक महाराष्ट्र के तीर्थ स्थान की ओर बढ़े । शैलपुर महाराष्ट्र प्रदेश के बड़े जिलों में से एक है । तत्पश्चात् वे द्रविड़ देश की ओर अग्रसर हुए । दक्षिण भारत पाँच भागों में विभाजित है, जिन्हें पंचद्रविड़ कहते हैं । उत्तर भारत भी पाँच भागों में विभाजित है, जिन्हें पंचगौड़ कहते हैं । आधुनिक युग के सभी महत्वपूर्ण आचार्य, जैसे शंकराचार्य, रामानुजाचार्य, मध्वाचार्य, विष्णुस्वामी तथा निम्बार्क, इन द्रविडु प्रदेशों में प्रकट हुए । भगवान् श्री चैतन्य बंगाल में प्रकट हुए, जो पंचगौड़ देशों का एक अंग है ।

दक्षिण भारत, अर्थात् द्रविड़ का सर्वोच्च महत्वपूर्ण दर्शनीय स्थान वेंकटाचल है, जो सामान्यत: बालाजी के नाम से प्रसिद्ध है । इस स्थान का भ्रमण करने के पश्चात् बलराम जी विष्णुकांची की ओर बढ़े तथा वहाँ से वे कावेरी नदी के तट की ओर अग्रसर हुए । उन्होंने कावेरी में स्नान किया, तत्पश्चात् वे रंगक्षेत्र पहुँचे । विश्व का सबसे बड़ा मन्दिर रंगक्षेत्र में है तथा वहाँ पर विद्यमान श्री विष्णु की श्रीमूर्ति श्री रंगनाथ के नाम से

प्रख्यात है । उसी प्रकार का रंगनाथ का मन्दिर वृन्दावन में भी है, तथापि वह रंगक्षेत्र के मन्दिर के समान भव्य नहीं है ।

विष्णुकांची को जाते हुए श्रीबलराम ने शिवकांची का भी भ्रमण किया । रंगक्षेत्र का दर्शन करने के उपरान्त, वे क्रमश: मदुरा की ओर बढ़े, जो सामान्य: "दक्षिण भारत का मथुरा" के नाम से प्रसिद्ध है । इस स्थान का दर्शन करने के उपरान्त व सेतुबन्ध की ओर बढ़े । सेतुबन्ध वह स्थान है जहाँ श्रीरामचन्द्र जी ने भारत से लंका (सीलोन) के बीच चट्टानों का पुल बाँधा था । इस विशेष पवित्र स्थान पर, लीला पुरुषोत्तम अणवान् श्रीकृष्ण बलरामजी ने स्थानीय ब्राह्मण पुजारियों के बीच दस हजार गायों का वितरण किया । यह एक वैदिक प्रथा है कि जब कोई धनी दर्शनार्थी किसी भी तीर्थ-स्थान पर जाता है, तो वह स्थानीय पुजारियों को भेंट में घोड़े, आभूषण तथा वस्त्र का दान देता है । तीर्थ-स्थानों का भ्रमण करने की एवं स्थानीय ब्राह्मण-पुजारियों के जीवन की आवश्यकताओं की अभिपूर्ति करने की प्रथा इस कलियुग में भ्रष्ट हो गई है । जनसंख्या का धनी वर्ग, वैदिक संस्कृति के पतन हो जाने के कारण, इन तीर्थस्थानों से तनिक भी आकृष्ट नहीं होता तथा जो ब्राह्मण पुजारी ऐसे दर्शनार्थियों पर निर्भर करते थे, उनकी सहायता करने के अपने व्याव्यवस्थायिक कर्तव्य में उनका भी पतन हो गया है । इसका अर्थ हुआ कि वे पूर्व में अत्यन्त विद्वान ब्राह्मण हुआ करते थे तथा दर्शनार्थियों को वहाँ आने के हर उद्देश्य के विषय में उनका मार्गदर्शन करते थे । इस प्रकार दोनों दर्शनार्थी तथा पुजारी पारस्परिक सहयोग से लाभान्वित होते थे ।

श्रीमद्रा/वत के वर्णन से यह स्पष्ट है कि जब श्रीबलराम विभिन्न तीर्थ-स्थलों का भ्रमण कर रहे थे, तब उन्होंने उचित रूप से वैदिक प्रणाली का पालन किया । सेतुबन्ध में गायों का वितरण करने के पश्चात्, श्रीबलराम कृतमाला तथा ताम्रपर्णी नदियों की ओर अग्रसर हुए । इन दोनों नदियों को पवित्र माना जाता है तथा बलरामजी ने दोनों में स्नान किया । तत्पश्चात्

वे मलय पहाड़ी की ओर अग्रसर हुए । यह मलय पहाड़ी अत्यन्त भव्य है तथा कहा जाता है कि वह मलय पहाड़ कहलाने वाली सात चोटियों में से एक है । महर्षि अगस्त्य वहीं रहा करते थे । बलरामजी ने उनके दर्शन किए तथा उनके सम्मुख झुककर उन्हें प्रणाम किया । ऋषि का आशीर्वाद लेने के पश्चात्, उनकी अनुमति से बलरामजी हिन्द महासागर की ओर बढ़े ।

अन्तरीप के बिन्दु पर दुर्गादेवी का एक भव्य मन्दिर है, जहाँ उसे कन्याकुमारी के नाम से जाना जाता है । इस कन्याकुमारी मन्दिर के दर्शन श्रीरामचन्द्रजी ने भी किए थे, अतएव यह मानना चाहिए कि वह मन्दिर लाखों वर्षों से विद्यमान है । वहाँ से बलरामजी फाल्गुनतीर्थ नामक तीर्थ स्थान का दर्शन करने हेतु आगे बढ़े, जो हिन्द महासागर अर्थात् दक्षिण महासागर के तट पर स्थित है । फाल्गुनतीर्थ का महत्व है, क्योंकि अनन्त के अपने अवतार के रूप में भगवान् श्रीविष्णु वहाँ पर विराजमान हैं । फाल्गुनतीर्थ से श्रीबलराम ने प्रस्थान किया और उन्होंने पंचाप्सरस नामक एक अन्य तीर्थस्थान के दर्शन किए । शास्त्रीय नियमों के अनुसार वहाँ पर भी उन्होंने स्नान किया तथा धार्मिक कर्मकाण्ड सम्पन्न किया । इस स्थल का महत्त्व भगवान् विष्णुकी श्रीमूर्ति के कारण है, अतएव, श्रीबलराम ने स्थानीय ब्राह्मण पुजारियों को दस हजार गायें वितरित कीं ।

कन्याकुमारी अन्तरीप से श्रीबलराम केरल की ओर बढ़े । केरल देश वर्तमान में भी दक्षिण भारत में दक्षिण केरल के नाम से विद्यमान है । इस स्थान का दर्शन करने के उपरान्त वे गोकर्णतीर्थ में आए, जहाँ शिवजी की नित्य उपासना की जाती है । तब बलराम आर्यादेवी के मन्दिर गये, जो जल से घिरा हुआ है । उस द्वीप से वे शूरपारक नामक स्थान पर गए । तत्पश्चात्, उन्होंने तापी, पयोष्णी तथा निर्विंध्या नामक नदियों में स्नान किया तथा वे दण्डकारण्य नामक वन में पहुँचे । यह वही दण्डकारण्य वन है जहाँ वनवास के समय रामचन्द्रजी रहे थे । तत्पश्चात् श्रीबलराम

नर्मदा नदी के तट पर आए, जो मध्य भारत की सबसे बड़ी नदी है । इस पवित्र नर्मदा नदी के तट पर महिष्मती पुरी नामक तीथस्थल है । वहाँ स्नान करने के उपरान्त, शास्त्रीय नियमों के अनुसार, श्रीबलराम प्रभासतीर्थ को लौटे, जहाँ से उन्होंने अपनी यात्रा आरम्भ की gif

जब बलरामजी प्रभासतीर्थ को लौटे, तो उन्होंने ब्राह्मणों से सुना कि अधिकतर क्षत्रिय कुरुक्षेत्र में मारे जा चुके थे । उन्होंने यह सुनकर स्वयं को मुक्त अनुभव किया कि विश्व का भार घट चुका है । श्रीकृष्ण और बलरामजी उच्चाभिलाषी क्षत्रिय राजाओं द्वारा उत्पन्न सैन्य शक्ति के भार को घटाने के हेतु इस धरती पर प्रकट हुए थे । यह भौतिकतापूर्ण जीवन की विधि है : जीवन की परम आवश्यकताओं से सन्तुष्ट न होकर, लोग महत्वाकांक्षापूर्वक अन्य आवश्यकताओं की उत्पत्ति करते हैं तथा उनकी अवैधानिक कामनाओं का अवरोधक प्रकृति के नियमों अथवा भगवान् के नियमों द्वारा किया जाता है, जो अकाल, युद्ध, महामारी तथा इस प्रकार के अनर्थों के रूप में प्रकट होते हैं । श्रीबलराम ने सुना कि यद्यपि अधिकतर क्षत्रियों की मृत्यु हो गई थी, तथापि कुरु अभी भी युद्ध में संलग्न थे । अतएव वे युद्धस्थल पर उसी समय लौटे जब भीमसेन और दुर्योधन द्वन्द्र युद्ध में संलग्न थे । दोनों का शुभचिन्तक होने के कारण, श्रीबलराम इन्हें रोकना चाहते थे, परन्तु वे रुकने को तैयार नहीं थे ।

जब बलरामजी युद्धस्थल पर प्रकट हुए, तब महाराज युधिष्ठिर तथा उनके छोटे भ्राता नकुल एवं सहदेव, भगवान् श्रीकृष्ण और श्रीअर्जुन ने उनकी सादर वन्दना की, परन्तु उन्होंने तनिक भी वार्तालाप नहीं किया । उनके शान्त रहने का कारण यह था कि श्रीबलराम को दुर्योधन के प्रति स्नेह था तथा दुर्योधन ने श्रीबलराम के द्वारा ही गदा से युद्ध करने की कला सीखी थी । इस प्रकार जब उनका युद्ध चल

रहा था, तब महाराज युधिष्ठिर तथा अन्यों ने सोचा कि दुर्योधन का पक्ष लेने श्री बलराम वहाँ आ सकते हैं, अतएव वे शान्त रहे । दुर्योधन

और भीमसेन दोनों युद्ध करने के अत्यन्त उत्सुक थे तथा असंख्य दर्शकों के मध्य वे एक दूसरे पर कलात्मक रूप से आक्रमण करने का प्रयत्न कर रहे थे और उनको ऐसा करने का प्रयास करते हुए देखकर प्रतीत होता कि वे नृत्य कर रहे हैं । यद्यपि वे नृत्य करते हुए प्रतीत हो रहे थे, परन्तु यह स्पष्ट था कि दोनों अत्यन्त क्रोधित थे ।

युद्ध को रोकने के हेतु बलरामजी ने कहा, "मेरे प्रिय राजन्, दुर्योधन और भीमसेन! मुझे ज्ञात है कि आप दोनों महान् योद्धा हैं तथा सम्पूर्ण विश्व में महान् वीर के रूप में सर्वप्रसिद्ध हैं, परन्तु तो भी शारीरिक शक्ति में भीमसेन दुर्योधन से श्रेष्ठ है । दूसरी ओर, गदा के द्वारा लड़ने की कला में दुर्योधन भीमसेन से श्रेष्ठ है । इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए, मेरा मत है कि युद्ध-कला में तुम दोनों में से कोई भी आपस में श्रेष्ठ नहीं है । इन परिस्थितियों में तुम में से एक का दूसरे के द्वारा पराजित होने की संभावना अत्यन्त कम है । अत: मैं तुम दोनों से अनुरोध करता हूँ कि इस प्रकार लड़कर अपना समय व्यर्थ न करो । मैं चाहता हूँ कि तुम दोनों इस अनावश्यक युद्ध को समाप्ति करो ।'

भीमसेन और दुर्योधन को श्रीबलराम द्वारा दिया गया अच्छा उपदेश दोनों के समान लाभ के लिए था । परन्तु एक दूसरे के विरुद्ध क्रोध में वे इतने उलझ गए थे कि वे केवल अपनी लम्बी शत्रुता का ही स्मरण कर सके । प्रत्येक यही सोचता था कि किस प्रकार दूसरे का वध किया जाय । उन्होंने बलरामजी के उपदेश को अधिक महत्व नहीं दिया । तत्पश्चात् दोनों पागल आदमियों की भाँति बन गए और वे परस्पर दुव्यवहार एवं एक-दूसरे पर लगाए गए क्रूर आरोप का स्मरण करने लगे । इसे प्रारब्ध समझते हुए श्रीबलराम इस विषय में आगे कुछ नहीं कहना चाहते थे । अतएव, वहाँ पर न ठहर कर उन्होंने द्वारका लौटने का निर्णय किया ।

जब वे द्वारका लौटे, तो सम्बन्धियों एवं मित्रों द्वारा अत्यन्त उत्साह के साथ उनका स्वागत किया गया । इसका नेतृत्व महाराज उग्रसेन तथा

अन्य वयोवृद्ध व्यक्तियों ने किया । उनका स्वागत करने के लिए वे सभी आगे आए । इसके पश्चात् वे पुनः नैमिषारण्य नामक तीर्थ स्थान पर गए, जहाँ ऋषियों, सन्त पुरुषों एवं ब्राह्मणों ने उठकर उनका स्वागत किया । वे समझ गए कि यद्यपि बलरामजी क्षत्रिय हैं, किन्तु अब वे युद्ध के कार्य से अवकाश प्राप्त कर चुके हैं । ब्राह्मण तथा ऋषि, जो सदैव सुख-शान्ति के पक्ष में थे, इसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए । सभी ने अत्यन्त स्नेहपूर्वक श्रीबलराम का आलिंगन किया तथा नैमिषारण्य नामक पवित्र स्थान में विभिन्न प्रकार के यज्ञ करने के लिए प्रेरित किया । वास्तव में, साधारण मानवों के निमित्त यज्ञों को सम्पन्न करना बलरामजी का कार्य नहीं था, वे श्रीभगवान् हैं, अत: वे सभी यज्ञों के भोगकर्ता हैं । यज्ञों का सम्पादन करने में उनका अनुकरणीय कार्य सामान्य मनुष्य को पाठ पढ़ाने के लिए है कि किस प्रकार व्यक्ति को वेदों के आदेश का पालन करना चाहिए ।

भगवान् बलरामजी ने नैमिषारण्य में ऋषियों एवं सन्त पुरुषों को इस विराट जगत के साथ जीवों के सम्बन्ध के विषय में, उपदेश दिया कि इस ब्रह्माण्ड को किस प्रकार स्वीकार किया जाय तथा सिद्धि का सर्वोच्च लक्ष्य प्राप्त करने के लिए किस तरह ब्रह्माण्ड से अपने को सम्बन्धित किया जाय, कि सम्पूर्ण विराट जगत भगवान् पर आश्रित है, कि भगवान् अपने परमात्मा रूप में सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु के भी भीतर सर्वव्यापी हैं ।

श्रीबलराम ने तत्पश्चात् अवभूथ स्नान किया, जिसे यज्ञ सम्बन्धी क्रियाओं की समाप्ति के उपरान्त स्वीकार किया जाता है । स्नान करने के पश्चात् उन्होंने नवीन कौशेय (रेशमी) वस्त्र धारण किए तथा अपने सम्बन्धियों एवं मित्रों के मध्य स्वयं को सुन्दर आभूषणों से सजित किया । वे आकाश में अनेक नक्षत्रों के बीच प्रकाशमय पूर्ण चन्द्रमा के समान प्रतीत हो रहे थे । बलरामजी स्वयं भगवान् अनन्त हैं, अतएव वे शरीर, मन अथवा बुद्धि की समझ के क्षेत्र से परे हैं । वे मनुष्य के समान अवतरित

हुए तथा स्वयं के हेतु उन्होंने इस प्रकार व्यवहार किया । हम उनके कार्यों को केवल श्रीभगवान् की लीलाओं के रूप में स्पष्ट कर सकते हैं । उनकी लीलाओं के अनन्त प्रदर्शनों की सीमा का अनुमान कोई नहीं लगा सकता, क्योंकि वे सर्वशक्तिमान हैं । श्रीबलराम मूल विष्णु हैं, अतएव जो व्यक्ति प्रात:काल और सायंकाल बलरामजी की लीलाओं का स्मरण करेगा वह निश्चय ही श्रीभगवान् का महान् भक्त बनेगा और इस प्रकार प्रत्येक दृष्टि से उसका जीवन सफल हो जाएगा ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " बल्वल का उद्धार तथा बलरामजी का पवित्र स्थानों में भ्रमण करना" नामक उन्यासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 82
भगवान् का वृन्दावनवासियों के साथ मिलन

एक बार जब श्रीकृष्ण और बलरामजी अपने महानगर द्वारका में शान्तिपूर्वक रह रहे थे, तब पूर्ण सूर्यग्रहण का विरल अवसर आया, जो प्रत्येक कल्प अथवा ब्रह्मा के दिवस के अन्त में घटित होता है । प्रत्येक कल्प के अन्त में, सूर्य एक भव्य बादल से आवृत हो जाता है और निरन्तर पड़ने वाली वर्षा स्वर्गलोक तक के सभी निम्न लोकों को आच्छादित कर देती है । खगोल शास्त्रीय गणना के द्वारा, लोगों को इस महान् ग्रहण के विषय में, उसके घटने से पूर्व सूचित किया गया । अतएव सभी लोगों ने कुरुक्षेत्र में स्थित समन्त-पंचक नामक पवित्र स्थान पर एकत्रित होने का निश्चय किया ।

समन्त-पंचक तीर्थ-स्थान पूजनीय है, क्योंकि श्रीपरशुराम ने विश्व के सभी क्षत्रियों को २१ बार मारकर वहाँ महायज्ञों का सम्पादन किया था ।

श्रीपरशुराम ने सभी क्षत्रियों को मार डाला और उनका एकत्रित रत नदी की भाँति प्रवाहित होने लगा । श्रीपरशुराम ने समन्त-पंचक में पाँच भव्य झीलें खोदीं तथा उन्हें इस रत से भर दिया । श्रीपरशुराम विष्णु-तत्व हैं । जैसाकि ईशोपनिषद् में कहा गया है, विष्णु तत्व को किसी प्रकार के पापपूर्ण कार्य के द्वारा दूषित नहीं किया जा सकता । फिर भी, यद्यपि श्रीपरशुराम सम्पूर्ण रूप से शक्तिशाली एवं अदूषित हैं, तथापि आदर्श चरित्र को प्रदर्शित करने के हेतु उन्होंने क्षत्रियों को मारने के इस तथाकथित पापपूर्ण कार्य का प्रायश्चित करने के लिए समन्त-पंचक में महायज्ञों का सम्पादन किया । उस उदाहरण के द्वारा श्रीपरशुराम ने यह स्थापित किया कि यद्यपि कभी-कभी हत्या करने की आवश्यकता पड़ती है, फिर भी यह अच्छी नहीं है । श्रीपरशुराम ने स्वयं को क्षत्रियों की पापपूर्ण हत्या के लिए निन्दनीय माना । इसलिए, ऐसे घृणित एवं अमान्य कार्यों के लिए हम कितने अधिक निन्दनीय हैं । जीवात्माओं का वध करने के कार्य को सम्पूर्ण विश्व में अविस्मरणीय काल से प्रतिबन्धित किया गया है । सूर्यग्रहण के अवसर का लाभ उठाते हुए सभी महत्वपूर्ण व्यक्तियों ने इस तीर्थस्थान के दर्शन किये । उनमें से कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों का यहाँ उल्लेख किया गया है । वयोवृद्ध व्यक्तियों में वहाँ श्रीअक्रूर, श्रीवसुदेव एवं श्रीउग्रसेन थे । कनिष्ठ पीढ़ी में वहाँ श्रीगद, श्री प्रद्युम्न, श्री साम्ब तथा यदुवंश के अन्य अनेक सदस्य थे, जो अपने कर्तव्यों के पालन के मध्य हुए पापपूर्ण कार्यों का प्रायश्चित करने की दृष्टि से वहाँ आए थे । चूँकि यदुवंश के लगभग सभी सदस्य कुरुक्षेत्र गए, अतएव द्वारका नगर की रक्षा करने के लिए श्रीप्रद्युम्न के पुत्र अनिरुद्ध एवं यदुवंश के सेनापति श्रीकृतवर्मा आदि कुछ महान् व्यक्ति, श्रीसुचन्द्र, श्रीशुक एवं श्रीसारण सहित वहीं रहे ।

स्वाभाविक रूप से यदुवंश के सभी सदस्य अत्यन्त सुन्दर थे, तथापि इस अवसर पर, जब स्वर्ण-मालाओं एवं पुष्प-मालाओं से अलंकृत एवं मूल्यवान वस्त्रों एवं अपने अस्त्रों सहित पूर्णरूपेण सशस्त्र होकर वे प्रकट हुए, तब उनका स्वाभाविक सौन्दर्य एवं व्यक्तित्व सौगुना बढ़ा हुआ था । यदुवंश के सदस्य कुरुक्षेत्र में अपने शानदार रूप से सजित रथों में आए, जो जलयान के सदृश थे एवं सागर की लहरों के समान हिलने वाले विशाल घोड़ों द्वारा खींचे जा रहे थे । उनमें से कुछ सदस्य तगड़े हाथियों पर सवार थे, जो आकाश के बादलों के समान गतिशील थे । उनकी पत्नियाँ सुन्दर पालकियों पर विराजमान थीं, जिन्हें विद्याधरों के समान रूप वाले सुन्दर पुरुष उठाए हुए थे । सम्पूर्ण सभा स्वर्ग के देवताओं की सभा के समान सुन्दर लग रही थी ।

कुरुक्षेत्र में पहुँचने के पश्चात् यदुवंश के सदस्यों ने शास्त्रीय धार्मिक रीति के अनुसार आत्मसंयम के साथ स्नान किया, एवं अपने पापपूर्ण कार्यों की प्रतिक्रियाओं को नष्ट करने के लिए उन्होंने सम्पूर्ण ग्रहण-काल में उपवास किया । ग्रहण के मध्य यथा-सम्भव दान करना एक वैदिक प्रथा है, अतएव यदुवंश-सदस्यों ने ब्राह्मणों को हजारों गायें दान में दीं । वे सभी गायें सुन्दर वस्त्रों एवं आभूषणों से अलंकृत थीं । इन गायों का विशिष्ट लक्षण यह था कि उनके पैरों में स्वर्ण के धुंघरू एवं गले में पुष्पमालाएँ थीं ।

यदुवंश के सभी सदस्यों ने श्रीपरशुराम द्वारा निर्मित झीलों में पुन: स्नान किया । इसके पश्चात् उन्होंने वैभवपूर्ण रूप से ब्राह्मणों को उत्तम भोजन कराया, जो मक्खन में बना हुआ था । वैदिक पद्धति के अनुसार, भोजन की दो श्रेणियाँ होती हैं । एक को कच्चा भोजन कहते हैं और दूसरे को पका भोजन कहते हैं । कच्चे भोजन में कच्ची तरकारी एवं कच्चे अनाज का समावेश नहीं होता, अपितु जल में पकाए हुए भोजन का समावेश होता है । पका भोजन घी से पकाया जाता है । चपाती, दाल,

चावल तथा सामान्य तरकारियों को कच्चा भोजन कहा जाता है, जैसाकि फलों एवं सलाद को कहा जाता है । परन्तु पूरी, कचौरी, समोसा एवं रसगुल्ले आदि को पका भोजन कहा जाता है । उस अवसर पर यदुवंश के सदस्यों द्वारा आमंत्रित सभी ब्राह्मणों को भव्यतापूर्वक पका भोजन कराया गया ।

यदुवंश के सदस्यों द्वारा सम्पन्न किए गए औपचारिक कार्य उन कर्मकाण्डी क्रियाओं के सदृश थे जिन्हें कमी लोग करते थे । जब कोई कर्मकाण्डी धर्मक्रिया को सम्पन्न करता है, तब उसकी आकांक्षा इन्द्रियतृप्ति की होती है-अच्छी स्थिति, अच्छी पत्नी, अच्छा घर, अच्छे बच्चे अथवा अच्छा धन; परन्तु यदुवंश के सदस्यों की आकांक्षा भिन्न थी । यदुवंश के सभी सदस्य महान् भक्त थे । कई जन्मों के एकत्रित पुण्य कार्यों के पश्चात् उन्हें श्रीकृष्ण से सम्पर्क करने का असर दिया गया था । कुरुक्षेत्र के तीर्थस्थान पर स्नान अथवा सूर्यग्रहण के मध्य धार्मिक सिद्धान्तों का पालन अथवा ब्राह्मणों को भोजन कराते समय, वे केवल कृष्ण-भक्ति के विषय में ही सोचते थे । उनके आदर्श, पूजनीय भगवान् श्रीकृष्ण ही थे । अन्य कोई नहीं ।

ब्राह्मणों को भोजन कराने के पश्चात् आतिथेय के लिए यह प्रथा है, कि उनकी अनुमति ग्रहण करके वह प्रसाद का सेवन करे । इस प्रकार ब्राह्मणों की अनुमति लेकर, सभी यदुवंशियों ने भोजन ग्रहण किया । तत्पश्चात् उन्होंने भव्य, छायादार वृक्षों के नीचे विश्राम करने के स्थलों का चुनाव किया एवं जब उन्होंने पर्याप्त विश्राम कर लिया, तब वे दर्शनार्थियों का स्वागत करने के लिए तत्पर हुए, जिनमें सम्बन्धी एवं मित्रगण तथा अनेक अधीन राजाओं एवं शासकों का समावेश था । उनमें मत्स्य, प्रदेशों एवं देशों के राजा थे । उनमें से कुछ विरोधी दलों के शासक थे, तो कुछ मित्र थे, परन्तु कुल मिलाकर वृन्दावन के दर्शनार्थी सर्वाधिक प्रमुख थे । नन्द महाराज के नेतृत्व में वृन्दावन के निवासी श्रीकृष्ण एवं बलराम जी

से वियोग के कारण अत्यन्त उद्विग्नता से रह रहे थे । सूर्यग्रहण का लाभ उठाते हुए, वे सभी अपने जीवन एवं आत्मा भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी को देखने के लिए आए ।

वृन्दावनवासी यदुवंश के शुभचिन्तक एवं घनिष्ठ मित्र थे । दीर्घ वियोग के पश्चात् दो दलों का मिलन अत्यन्त मर्मस्पर्शी घटना थी । दोनों, यदु एवं वृन्दावन के वासियों ने एक दूसरे से मिलने एवं वार्तालाप करने में इतने अधिक आनन्द का अनुभव किया कि वह एक अनुपम दृश्य बन गया । दीर्घ वियोग के पश्चात् मिलकर आनन्दविभोर होने के कारण उनके हृदय धड़क रहे थे तथा उनके चेहरे नवीन खिले हुए कमलपुष्पों के समान प्रतीत हो रहे थे । उनके नेत्रों से आँसू टपक रहे थे, उनके रोंगटे खड़े हो गए थे और अत्यन्त आनन्द के कारण वे कुछ समय के लिए अवाक् रह गए । दूसरे शब्दों में, वे आनन्द-सागर में डुबकियाँ लगाने लगे ।

जब सारे पुरुष इस प्रकार मिल रहे थे, तब स्त्रियाँ भी उसी प्रकार एक दूसरे से मिल रही थीं । वे अत्यन्त मैत्रीपूर्वक एक दूजे का आलिंगन कर रही थीं तथा मुस्कराती हुई, वे एक दूसरे की ओर अत्यन्त स्नेह के साथ देख रही थीं । जब वे अपनी भुजाओं से आलिंगन कर रही थीं, तब उनके वक्षस्थलों पर बिखरा हुआ कुमकुम तथा केशर एक दूसरे को लग गया और उन सभी स्त्रियों ने स्वर्गिक आनन्द का अनुभव किया । इस प्रकार हार्दिक आलिंगन करने के कारण अश्रु की प्रचण्ड धाराएँ उनके गालों से बहने लगीं । अवस्था में छोटे जन वयोवृद्ध व्यक्तियों की सादर वन्दना कर रहे थे एवं वयोवृद्ध अपने से छोटों को आशीर्वाद दे रहे थे । इस प्रकार वे एक दूसरे का स्वागत करते हुए एक दूसरे का कुशल-मंगल पूछ रहे थे । अन्ततः उनकी चर्चा का विषय श्रीकृष्ण ही थे । सभी पड़ोसी एवं रिश्तेदार इस विश्व में श्रीकृष्ण की लीलाओं से सम्बद्ध हैं और श्रीकृष्ण सभी गतिविधियों के केन्द्र हैं । उन लोगों द्वारा किए गए कार्य-चाहे वे

सामाजिक, राजनैतिक, धार्मिक अथवा परम्परागत हों-दिव्य हुआ करते थे ।

मानव जीवन का वास्तविक उत्थान ज्ञान एवं वैराग्य पर निर्भर करता है । जैसाकि श्रीमद्रा/वत के प्रथम स्कन्ध में उल्लेख है, श्रीकृष्ण के प्रति भक्ति अपने आप ही पूर्ण ज्ञान एवं वैराग्य उत्पन्न करती है । यदुवंश के पारिवारिक सदस्यों एवं वृन्दावन के ग्वालों के मन श्रीकृष्ण पर केन्द्रित थे । सम्पूर्ण ज्ञान का वही लक्षण है और चूँकि उनके मन सदैव श्रीकृष्ण में संलग्न रहते थे, अतएव वे सभी भौतिक कार्यों से अपने आप मुक्त हो गए थे । श्रील रूप गोस्वामी की घोषणा के अनुसार जीवन की इस अवस्था को "युक्त वैराग्य" कहते हैं । अतएव ज्ञान एवं वैराग्य का अर्थ नीरस चिन्तन अथवा कार्यों का त्याग नहीं होता, अपितु व्यक्ति को केवल श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में सुनना एवं कार्य करना चाहिए ।

कुरुक्षेत्र की इस सभा में, कुन्ती देवी एवं वसुदेव, जो भाई-बहन थे, वियोग के दीर्घकाल के पश्चात् मिले थे तथा उनके साथ उनके पुत्र तथा पुत्र-वधुएँ पत्नियाँ बच्चे एवं परिवार के अन्य सदस्य थे । आपस में वार्ता करके वे अपने सभी दुखों को भूल गए । कुन्ती देवी ने विशेष रूप से अपने भ्राता श्री वसुदेव को इस प्रकार सम्बोधित किया: "प्रिय भ्राता! मैं अत्यन्त अभागी हूँ, क्योंकि मेरी कोई भी इच्छा पूर्ण नहीं हुई है, अन्यथा ऐसा कैसे हो सकता था कि यद्यपि मेरे पास आप जैसे सन्त भ्राता हैं, जो प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण हैं, तथापि आपने मुझसे यह जिज्ञासा नहीं की कि जीवन की दुखद स्थिति में मैं अपने दिन किस प्रकार व्यतीत कर रही हूँ?" ऐसा प्रतीत होता है कि कुन्ती देवी को उन दुखद दिनों का स्मरण हो रहा था जब उन्हें अपने पुत्रों सहित धृतराष्ट्र एवं दुर्योधन की अनिष्ठकर योजनाओं के द्वारा निर्वासित किया गया था । उन्होंने आगे कहा, "प्रिय बन्धु! मैं समझ सकती हूँ कि जब ईश्वर किसी के विरुद्ध कार्य करता है, तो उस व्यक्ति का सर्वाधिक समीपी भी उसे भूल जाता है । ऐसी अवस्था

में, व्यक्ति के पिता, माता और यहाँ तक कि उसकी सन्तान भी उसे भूल जाती है । अतएव, हे भ्राता! मैं आप पर आरोप नहीं लगा रही हूँ ।"

श्री वसुदेव ने अपनी बहन को उत्तर दिया, "प्रिय बहन! उदास मत हो और इस प्रकार मुझे दोषी मत ठहराओ । हमें सदैव स्मरण रखना चाहिए कि हम भगवान् के हाथों के खिलौने हैं । सभी लोग भगवान् के नियंत्रण में हैं । यह उनके नियंत्रण में ही है कि सभी प्रकार के फलदायक कार्य और फल घटित होते हैं । प्रिय बहन! तुम्हें ज्ञात है कि हमें राजा कंस ने बहुत दुख पहुँचाया था और उसके अत्याचारों द्वारा हम यहाँ-वहाँ तितर-बितर हो गए थे । हम सदैव व्यकुल रहते थे । पिछले दिनों भगवत्कृपा से हम अपने स्थानों को लौटे हैं ।"

इस वार्तालाप के पश्चात् श्री वसुदेव और श्रीउग्रसेन ने मिलने के लिए आए राजाओं का स्वागत किया । उस स्थान पर श्रीकृष्ण को विद्यमान देखकर, सभी दर्शनार्थियों ने दिव्यानन्द का अनुभव किया तथा वे शान्त हो गए । उनमें से कुछ प्रमुख दर्शनार्थी इस प्रकार थेः श्रीभीष्मदेव, श्रीद्रोणाचार्य, श्रीदुर्योधन एवं गान्धारी सहित उनके पुत्र, अपनी पत्नी के साथ महाराज युधिष्ठिर तथा कुन्ती देवी के साथ नग्नजित, श्रीपुरुजित, श्रीद्रुपद, श्रीशल्य, श्रीधृष्टकेतु, काशी के राजा श्रीदमघोष, मिथिला के राजा श्री विशालाक्ष, मद्रास (पूर्व काल में मद्र कहलाने वाला स्थान) का राजा, केकय का राजा, श्रीयुधामन्य, श्री सुशर्मा, श्रीबाहीक के साथ उसके पुत्र तथा ऐसे अनेक शासक जो महाराज युधिष्ठिर के अधीन थे ।

जब उन्होंने श्रीकृष्ण को अपनी हजारों पत्नियों के साथ देखा, तब वे सौन्दर्य एवं दिव्यानन्द से पूर्णरूपेण सन्तुष्ट हो गए । वहाँ उपस्थित सभी लोगों ने श्रीकृष्ण एवं बलराम के दर्शन किए तथा भगवान् द्वारा उचित रूप से स्वागत किए जाने पर वे यदुवंश के सदस्यों की, विशेष रूप से कृष्ण-बलराम की जय-जयकार करने लगे । चूँकि श्रीउग्रसेन भोज के राजा थे, अत: उनको प्रमुख यदु माना जाता था, अतएव दर्शनार्थियों ने

विशेष रूप से उन्हें सम्बोधित किया: "श्रीमान् उग्रसेन जी! हे भोज के राजा! वस्तुत: इस विश्व में यदु ही ऐसे लोग हैं, जो प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण हैं । आपकी जय हो! आपकी जय हो! आपकी पूर्णता की विशिष्ट स्थिति यह है कि आप सदैव भगवान् कृष्ण को देखते हैं, जो सहस्रों वर्षों तक तपस्या करने वाले योगियों द्वारा खोजे जाते हैं । आप सभी लोग प्रत्येक क्षण श्रीकृष्ण के सम्पर्क में रहते हैं ।

"सभी वैदिक मंत्र भगवान् श्रीकृष्ण की जय-जयकार करते हैं । गंगा-जल को पवित्र माना जाता है क्योंकि उसका जल भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों को धोने के उपयोग में लाया जाता है । वैदिक साहित्य श्रीकृष्ण के आदेशों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । वेदों के अध्ययन का उद्देश्य श्रीकृष्ण को समझना है, अतएव श्रीकृष्ण के शब्द एवं उनकी लीलाओं के सन्देश सदैव शुद्धिकारक हैं । काल एवं परिस्थिति के प्रभाव से, इस विश्व के सभी ऐश्वर्य लगभग मिट चुके थे, परन्तु इस लोक में जब से श्रीकृष्ण अवतरित हुए हैं, उनके चरणकमलों के स्पर्श के द्वारा सभी शुभ लक्षण पुनः प्रकट हो गए । उनकी उपस्थिति के द्वारा हमारी सभी इच्छाएँ एवं आकांक्षाएँ क्रमश: पूर्ण हो जाती हैं । हे श्रीमान् भोज के राजा! आप वैवाहिक सम्बन्ध के कारण यदुवंश से सम्बन्धित हैं तथा खून के रिश्ते से भी । परिणामस्वरूप आप सदैव श्रीकृष्ण के सम्पर्क में रहते हैं तथा उनको किसी भी समय देखने में आपको कोई कठिनाई नहीं होती । श्रीकृष्ण आपके साथ घूमते हैं, बात करते हैं, बैठते हैं, विश्राम करते हैं और भोजन भी करते हैं । यदुजनों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि वे उन सांसारिक गतिविधियों में सदैव संलग्न रहते हैं, जिन्हें नरक के शाही मार्ग की ओर से जाने वाला माना जाता है । परन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की उपस्थिति के कारण, जो सर्वज्ञ, सर्वव्यापी एवं सर्वशक्तिमान् हैं, आप सभी लोग वास्तविकता में भौतिक संदूषण से मुक्त हैं और ब्रह्म एवं मुक्ति की इन्द्रियातीत अवस्था में स्थित हैं ।"

जब उन्होंने सुना कि सूर्यग्रहण के कारण कुरुक्षेत्र में श्रीकृष्ण उपस्थित होंगे, तब वृन्दावन के निवासियों ने, नन्द महाराज के नेतृत्व में वहाँ जाने का निश्चय किया । अतएव, यदुवंश के सभी सदस्य उपस्थित थे । अपने ग्वालों के साथ, नन्द महाराज ने सभी आवश्यक सामग्री बैलगाड़ियों पर लाद दी थी और सभी वृन्दावन-वासी अपने प्रिय पुत्रों सहित भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी को देखने आए थे । जब वृन्दावन के ग्वाले कुरुक्षेत्र में पहुँचे, तब यदुवंश के सभी सदस्य अत्यन्त प्रसन्न हुए । जैसे ही उन्होंने वृन्दावन-वासियों को देखा, वे उनका स्वागत करने के लिए खड़े हो गए तथा ऐसा प्रतीत होता था कि उन्होंने अपने जीवन को पुन: प्राप्त कर लिया है । दोनों आपस में मिलने के लिए अतिशय उत्सुक थे तथा जब वास्तव में वे आगे आकर मिले, उन्होंने जी-भर कर एक दूजे का आलिंगन किया तथा इसी प्रकार बहुत समय तक आलिंगन-बद्ध रहे ।

जैसे ही श्रीवसुदेव ने नन्द महाराज को देखा, वे उछल पड़े और भागकर अत्यन्त स्नेह से उन्होंने उनका आलिंगन किया । श्री वसुदेव अपने पूर्व-इतिहास का वर्णन करने लगे-किस प्रकार राजा कंस ने उन्हें बन्दी बना लिया था, किस प्रकार उनके बच्चे मारे गए थे तथा किस प्रकार श्रीकृष्ण के जन्म के पश्चात् उन्हें नन्द महाराज के घर पहुँचाया था तथा किस प्रकार अपने बच्चों के समान नन्द महाराज एवं माता यशोदा ने श्रीकृष्ण एवं बलराम जी का पालन किया था । उसी प्रकार, श्रीबलराम जी एवं श्रीकृष्ण ने भी नन्द महाराज एवं यशोदा माता का आलिंगन किया एवं उन्होंने उन दोनों के कमल-चरणों की झुककर सादर वन्दना की । नन्द महाराज एवं यशोदा जी के प्रति पुत्रसुलभ स्नेह होने के कारण, श्रीकृष्ण एवं बलरामजी की वाणी कुछ क्षणों के लिए अवरुद्ध हो गई और वे बोल नहीं पा रहे थे । अत्यन्त सौभाग्यशाली नन्द महाराज एवं यशोदा माता ने अपने पुत्रों को अपनी गोद में रख लिया और पूर्ण सन्तुष्टि होने

तक वे उनका आलिंगन करते रहे । श्रीकृष्ण एवं बलरामजी के वियोग के कारण, नन्द जी एवं यशोदा जी दीर्घकाल से अति दुख में निमग्न थे । अब, उनसे मिलकर और उनका आलिंगन करके उनका दुख कम हो गया ।

इसके पश्चात् श्रीकृष्ण की माता देवकी तथा श्री बलराम की माता रोहिणी ने माता यशोदा का आलिंगन किया । उन्होंने कहा, "प्रिय महारानी यशोदा देवी! आप एवं नन्द महाराज दोनों ही हमारे घनिष्ठ मित्र हैं और जब हम आपका स्मरण करती हैं, तो हम आपके मित्रतापूर्व कार्यों से अभिभूत हो जाती हैं । हम आपकी इतनी ऋणी हैं कि यदि स्वर्ग का ऐश्वर्य देकर हम आपके आशीष को लौटाना भी चाहें, तो भी आपके मैत्रीपूर्ण व्यवहार के लिए पर्याप्त न होगा । अपने प्रति आपके दयालु व्यवहार को हम कभी नहीं भूलेंगी । जब श्रीकृष्ण एवं बलराम जी का जन्म हुआ था, उनके द्वारा अपने यथार्थ माता-पिता को देखने के पूर्व ही उन्हें आपकी देख-रेख में सौंप दिया गया तथा आपने अपने बच्चे की भाँति उनका पालन-पोषण किया । आपने उनका पालन-पाषण उसी प्रकार किया, जैसे पक्षी अपने घोंसले में अपनी सन्तान की देखभाल करते हैं । आपने अच्छी तरह से उनका भरणपोषण किया है, उनके साथ प्रेम किया तथा उनके लाभ के हेतु अनेक मांगलिक, धार्मिक क्रियाएँ सम्पन्न की ।

"वास्तव में वे हमारे पुत्र नहीं हैं । आप एवं नन्द महाराज श्रीकृष्ण-बलराम के वास्तविक माता-पिता हैं । जब तक वे आपके संरक्षण में रहे, उन्हें तनिक भी कठिनाई नहीं थी । आपके संरक्षण में वे सभी प्रकार के भय से दूर थे । उनके लिए आपने जो यह स्नेहपूर्ण देखभाल की है, वह आपके उच्च पद के लिए पूर्णरूपेण उपयुक्त है । अत्यन्त महान् व्यक्ति अपने पुत्रों एवं दूसरों के पुत्रों में भेद नहीं करते तथा आप एवं नन्द महाराज से बढ़कर अन्य कोई महान् व्यक्ति नहीं हो सकता ।"

जहाँ तक वृन्दावन की गोपियों का सम्बन्ध है, उनके जीवन के आरम्भ से उन्हें श्रीकृष्ण से परे अन्य कुछ भी ज्ञात नहीं था । श्रीकृष्ण एवं बलरामजी उनके लिए जीवन एवं आत्मा थे । गोपियाँ श्रीकृष्ण से इतनी आसक्त थीं कि एक निमिष के लिए भी श्रीकृष्ण का उनकी पलकों से ओझल होना उन्हें असह्य था । उन्होंने शरीर के स्रष्टा ब्रह्माजी की निन्दा की, क्योंकि उन्होंने मूर्खतापूर्वक पलकों का निर्माण किया, जो मूँदने पर श्रीकृष्ण को उनकी दृष्टि से ओझल कर देती थीं । चूँकि वे श्रीकृष्ण से इतने अधिक वर्षों तक अलग रही थीं, अतएव गोपियों ने श्रीकृष्ण को देखकर परमानन्द का अनुभव किया । कोई भी व्यक्ति इस बात की कल्पना नहीं कर सकता कि श्रीकृष्ण को पुन: देखने के लिए गोपियाँ कितनी उत्सुक थीं । जैसे ही श्रीकृष्ण उन्हें दिखाई पड़े, वैसे ही उन्होंने श्रीकृष्ण को अपने नेत्रों द्वारा अपने हृदय में बिठा लिया और अपनी सन्तुष्टि तक वे उनका आलिंगन करती रहीं । यद्यपि वे मन-ही- मन श्रीकृष्ण का आलिंगन कर रही थीं, तथापि वे आनन्द के कारण परमानन्द से इतनी भावविभोर हो उठीं कि कुछ समय के लिए वे स्वयं को पूर्ण रूप से भूल गई । गोपियों ने श्रीकृष्ण का मन-ही-मन आलिंगन करके जो दिव्य परमानन्द प्राप्त किया था, उस दिव्यानन्द को प्राप्त करना सदैव भगवान् के चिन्तन में लीन महान् योगियों के लिए भी असम्भव है । श्रीकृष्ण समझ सकते थे कि मन-ही-मन उनका आलिंगन करके गोपियाँ परमानन्द में लीन थीं, अतएव चूँकि वे सबके हृदय में अवस्थित हैं, उन्होंने भी प्रत्युतर में मन-ही-मन गोपियों का आलिंगन किया ।

श्रीकृष्ण माता यशोदा एवं अपनी अन्य माताओं, देवकी एवं रोहिणी, के साथ बैठे थे, परन्तु जब तीनों माताएँ वार्ता में तल्लीन थीं, तब श्रीकृष्ण ने अवसर का लाभ उठाया और वे गोपियों से मिलने के लिए एकान्त स्थान पर गए । जैसे ही श्रीभगवान् गोपियों के पास पहुँचे वे मुस्कराने लगे और उनका आलिंगन करने के पश्चात् उन्होंने उनके कुशल-समाचार के

विषय में पूछताछ की, एवं उनको प्रोत्साहित करते हुए उन्होंने कहा, "प्रिय सखियो! तुमको ज्ञात है कि श्रीबलराम और मैं केवल अपने सम्बन्धियों एवं परिवार के सदस्यों को प्रसन्न करने के लिए वृन्दावन छोड़कर आए, इसलिए हम युद्ध में बहुत समय से लगे हुए थे और तुम लोगों को भूलने के लिए विवश हो गए । तुम सभी गोपियाँ प्रेम एवं स्नेह के कारण मुझसे कितनी आसक्त थीं । मैं समझ सकता हूँ कि इस क्रिया से मैं तुम्हारे प्रति कृतघ्न रहा हूँ, परन्तु तो भी मुझे ज्ञात है कि तुम मेरे प्रति निष्ठावान रही हो । क्या मैं पूछ सकता हूँ कि यद्यपि हमने तुम्हें छोड़ दिया था, फिर भी तुम हमारे बारे में क्यों सोचती रहीं? प्रिय गोपियो! क्या यह समझकर कि मैं तुम्हारे प्रति अकृतज्ञ रहा हूँ, अब तुम मेरा स्मरण करने में अरुचि का अनुभव करती हो ? क्या अपने साथ मेरे दुर्व्यवहार को तुम गम्भीरतापूर्वक ले रही हो ?

"तुम्हें ज्ञात होना चाहिए कि तुम सबों को छोड़ने का मेरा अभिप्राय नहीं था, हमारा वियोग ईश्वर द्वारा निश्चित किया गया था, जो परम नियंत्रक हैं और जो अपने इच्छानुसार कार्य करते हैं । वे विभिन्न व्यक्तियों के परस्पर मिलन के कारण हैं और वे उन्हें अपने इच्छानुसार विलग कर देते हैं । कभी-कभी हम देखते हैं कि तीव्र पवन एवं बदली की उपस्थिति के कारण धूल के सूक्ष्म कण एवं रुई के टूटे हुए टुकड़ों का पारस्परिक मिलन होता है तथा जब तीव्र पवन शान्त हो जाती है, तो धूल एवं रुई के सभी कण पुन: पृथक् हो जाते हैं और विभिन्न स्थानों पर फैल जाते हैं । उसी प्रकार, परम-ईश्वर सभी वस्तुओं के स्रष्टा हैं । हमारे द्वारा देखे जाने वाले पदार्थ उनकी शक्ति की विभिन्न अभिव्यक्तियाँ हैं । उनकी परम इच्छा से हम कभी-कभी एक हो जाते हैं और कभी-कभी अलग हो जाते हैं । अतएव हम निष्कर्षत: कह सकते हैं कि अन्तत: हम उनकी इच्छा पर पूर्णरूपेण निर्भर हैं ।

सौभाग्यवश, तुमने मेरे प्रति प्रेममय स्नेह विकसित किया है, जो मेरे साथ सम्बन्ध की दिव्य स्थिति को प्राप्त करने का एकमात्र मार्ग है । जो जीवात्मा मेरे प्रति ऐसा विशुद्ध भक्तिमय स्नेह उत्पन्न करता है, वह निस्सन्देह ही अपने जीवन के अन्त में भगवद्धाम को लौट जाता है । दूसरे शब्दों में, मेरे प्रति विशुद्ध भक्ति और स्नेह ही परम मुक्ति के कारण हैं ।

'मेरी प्रिय गोपियो! तुम मुझसे ज्ञात कर सकती हो कि मेरी ही शक्तियाँ सर्वत्र कार्य कर रही हैं । उदाहरण के लिए, मिट्टी का बर्तन लो । वह बर्तन मृतिका, जल, वायु, अग्नि एवं आकाश के सम्मिश्रण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । बर्तन सदैव इन्हीं के प्राकृतिक सम्मिश्रण से युक्त होता है । जब तक वह अस्तित्व में रहता है, उसका मिश्रण एक ही होता है, चाहे वह स्थिति के प्रारम्भ, अस्तित्व के मध्य, अथवा उनके विनाश के पश्चात् हो । जब मिट्टी के बर्तन की सृष्टि होती है, तब उसका निर्माण मृतिका, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश के द्वारा होता है । जब तक वह विद्यमान रहता है, तब तक उसका रूप एक ही रहता है तथा जब टूटकर उसका विनाश होता है, तब उसके विभिन्न अवयव भौतिक शक्ति के विभिन्न भागों में सुरक्षित रहते हैं । चूँकि वह शक्ति मुझसे भिन्न नहीं है, अत: यह निष्कर्ष निकलना चाहिए कि मैं प्रत्येक वस्तु में अस्तित्व रखता हूँ ।

'इसी प्रकार, जीव का शरीर पाँच तत्वों के सम्मिश्रण के अतिरिक्त और कुछ नहीं है तथा भौतिक स्थिति में सम्मिलित जीवात्मा भी मेरा विभिन्न अंश है । जीवात्मा भौतिक स्थिति में कैद है, क्योंकि उसमें स्वयं को परम-आनन्द का भोक्ता होने की मिथ्या धारणा है । परम सत्य होने के नाते, मैं जीवात्मा तथा उसके भौतिक बन्धन से श्रेष्ठ हूँ । भौतिक एवं आध्यात्मिक दोनों शक्तियाँ मेरे परम नियंत्रण में कार्य कर रही हैं । प्रिय गोपियो! मेरी प्रार्थना है कि इतना दुखी होने के स्थान पर, तुम्हें सभी बातों

को दार्शनिक भाव में रहकर स्वीकार करने पर विलाप का कोई कारण नहीं है ।"

भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा गोपियों को दिए गए इस उपदेश को कृष्णभावनामृत में संलग्न भक्तों द्वारा भी प्रयोग में लाया जा सकता है । सम्पूर्ण दर्शन अचिन्त्य भेदाभेद आधार पर समझा जाता है । श्रीमद्रा/वत में श्रीभगवान् कहते हैं कि अपने निराकार रूप में वे सर्वत्र विद्यमान हैं । सभी कुछ उनमें अस्तित्व रखता है, परन्तु तो भी वे व्यक्तिगत रूप से सर्वत्र विद्यमान नहीं हैं । विराट जगत श्रीकृष्ण की शक्ति के प्रदर्शन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है और चूँकि शक्तिमान से शक्ति भिन्न नहीं है, अतएव श्रीकृष्ण से कुछ भी भिन्न नहीं है । जब यह परम चेतना अर्थात् कृष्णभावना

अविद्यमान रहती है, तब हम श्रीकृष्ण से अलग हो जाते हैं, परन्तु सौभाग्यवश यदि यह कृष्णभावना विद्यमान रहती है, तो हम श्रीकृष्ण से अलग नहीं होते हैं । भक्ति की पद्धति तो कृष्णभावना का नवजागरण है और यदि भक्त को यह समझने का सौभाग्य प्राप्त है कि भौतिक शक्ति श्रीकृष्ण से अलग नहीं है, तो वह भौतिक शक्ति एवं उसकी सम्पतियों का प्रयोग श्रीकृष्ण की सेवा में कर सकता है । परन्तु कृष्णभावना की अनुपस्थिति में विस्मरणशील जीवात्मा, यद्यपि वह श्रीकृष्ण का विभिन्न अंश है, मिथ्या रूप से स्वयं को भौतिक जगत के उपभोक्ता की अवस्था में समझता है और इस प्रकार भौतिक बन्धन में लिप्त रहकर, वह भौतिक शक्ति (माया) द्वारा अपना भौतिक अस्तित्व बनाए रखने के लिए बाध्य किया जाता है । इसकी पुष्टि श्रीमद्भगवद्गीता में भी की गई है । यद्यपि जीवात्मा भौतिक शक्ति के इच्छानुसार कार्य करने पर बाध्य की जाती है, फिर भी वह मिथ्या रूप से सोचती है कि वही सब कुछ तथा परम भोता है ।

यदि भक्त को पूर्णरूप से ज्ञात होता है कि मन्दिर में भगवान् श्रीकृष्ण का मूर्तिरूप अर्थात् अर्चा-विग्रह स्वयं श्रीकृष्ण की भाँति ही सच्चिदानन्द-विग्रह है, तो मन्दिर-मूर्ति के प्रति उसकी सेवा भगवान् के प्रति सेवा कहलाती है । उसी प्रकार मन्दिर, मन्दिर की सामग्री एवं श्रीविग्रह को अर्पित कोई भी वस्तु श्रीकृष्ण से भिन्न नहीं है । व्यक्ति को आचार्यों द्वारा आदेशित नियमों का पालन करना चाहिए और इस प्रकार उच्च मार्गदर्शन में इस भौतिक जगत में भी श्रीकृष्ण-साक्षात्कार पूर्णरूपेण सम्भव हो सकेगा ।

गोपियाँ एक ही समय में भेदाभेद के दर्शन के विषय में श्रीकृष्ण द्वारा शिक्षित किए जाने पर सदैव कृष्णभावना में बनीं रहीं और इस प्रकार वे भौतिक संदूषण से मुक्त हो गई । उस जीवात्मा की चेतना को जीवकोश कहते हैं, जो मिथ्या रूप से स्वयं को भौतिक जगत का भोक्ता मानता है । "जीवकोश" का अर्थ है मिथ्या अहंकार द्वारा बन्धन । केवल गोपी ही नहीं अपितु कोई भी व्यक्ति, जो श्रीकृष्ण के इन उपदेशों का पालन करता है, तत्काल ही जीवकोश के बन्धन से मुक्त हो जाता है । पूर्णरूपेण कृष्णभावनामृत में स्थित व्यक्ति सदैव ही मिथ्या अहंकार से मुक्त हो जाता है, वह प्रत्येक वस्तु का उपयोग कृष्ण-सेवा में करता है और किसी भी क्षण श्रीकृष्ण से अलग नहीं होता ।

अतएव गोपियों ने श्रीकृष्ण से प्रार्थना की, "प्रिय कृष्ण! आपकी नाभि से मूल कमल-पुष्प उत्पन्न हुआ, जो स्रष्टा ब्रह्माजी का जन्मस्थान है । कोई भी आपकी महिमा अथवा ऐश्वर्यों का अनुमान नहीं लगा सकता, क्योंकि यह सर्वोच्च चिन्तनशील व्यक्ति के लिए रहस्य ही बना रहता है । तथापि इस भौतिक अस्तित्व के गहरे कुएँ में गिरी बद्ध-आत्मा अत्यन्त सरलतापूर्वक श्रीकृष्ण के कमल-चरणों की शरण ले सकती है । अत: उसका उद्धार सुनिश्चित है ।"गोपियों ने आगे कहा: "प्रिय कृष्ण! हम अपने गृहस्थ-कार्यों में सदैव व्यस्त रहती हैं । अत: हमारी आपसे प्रार्थना है कि

उदीयमान सूर्य के समान आप हमारे हृदय में स्थित रहें और यही हमारे लिए सबसे बड़ा वरदान होगा ।"

गोपियाँ सदैव मुक्त आत्माएँ हैं, क्योंकि वे पूर्णरूपेण कृष्णभावना में रहती हैं । उन्होंने वृन्दावन में गृहस्थ-कार्यों में बद्ध रहने का केवल बहाना किया । उनके इतने लम्बे वियोग के पश्चात् भी, वृन्दावन की गोपियाँ श्रीकृष्ण के साथ उनकी राजधानी द्वारका जाने के लिए तनिक भी उत्सुक नहीं थीं । वे वृन्दावन में व्यस्त रहकर अपने जीवन के प्रत्येक चरण में श्रीकृष्ण की उपस्थिति का अनुभव करना चाहती थीं । उन्होंने तत्काल ही श्रीकृष्ण को वृन्दावन लौटने का निमंत्रण दिया । गोपियों का यह दिव्य भावुक जीवन ही श्री चैतन्य महाप्रभु की शिक्षाओं का मूल सिद्धान्त है । भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा मनाया गया रथयात्रा महोत्सव श्रीकृष्ण को वृन्दावन वापस ले जाने की भावात्मक पद्धति है । श्रीमती राधारानी ने श्रीकृष्ण साथ द्वारका जाकर राजसी ऐश्वर्य के वातावरण में उनकी संगति के रसास्वादन के विचार को अस्वीकार कर दिया । वे मूल वृन्दावन के वातावरण में श्रीकृष्ण के साथ का आनन्द उठाना चाहती थीं । गोपियों से अत्यधिक आसक्त होने के कारण श्रीकृष्ण कभी भी वृन्दावन छोड़कर नहीं जाते तथा गोपियाँ तथा वृन्दावन के अन्य निवासी कृष्णभावनामृत में पूर्णरूप से सन्तुष्ट रहते हैं ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् का वृन्दावनवासियों के साथ मिलन" नामक बयासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 84
वसुदेवजी द्वारा सम्पादित यज्ञ

के समय कुरुक्षेत्र में उपस्थित स्त्रियों में कुन्ती, गान्धारी, द्रौपदी, सुभद्रा, अन्य अनेक राजाओं की रानियाँ तथा वृन्दावन की गोपियाँ भी थीं । जब भगवान् श्रीकृष्ण की विभिन्न रानियों ने इस विषय में अपने कथन प्रस्तुत किए कि किस प्रकार उनका विवाह हुआ तथा भगवान् श्रीकृष्ण ने उन्हें पत्नी के रूप में स्वीकार किया, तब कुरु देश की समस्त नारियाँ आश्चर्यचकित हो गई । श्रीकृष्ण की समस्त रानियों का उनके प्रति प्रेम व स्नेहपूर्ण आसक्ति देख कर वे स्त्रियाँ श्रद्धा से भर गई । जब उन्होंने श्रीकृष्ण के प्रति रानियों के प्रेम तथा अनुराग की तीव्रता के विषय में सुना, तो वे अपने नयनों को अश्रुपूरित होने से रोक न सकीं ।

जब स्त्रियाँ आपस में वार्तालाप में संलग्न थीं तथा पुरुष भी उन्हीं के समान आपस में वार्तालाप कर रहे थे, तभी भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी के दर्शन के प्रयोजन से सभी दिशाओं से आनेवाले प्रमुख ऋषि तथा साधुगण वहाँ आ पहुँचे । कृष्णद्वैपायन व्यास, महर्षि नारद, च्यवन, देवल, असित, विश्वामित्र, शतानन्द, अत्रि, मार्कण्डेय, बृहस्पति, द्वित, त्रित, एकत, ब्रह्मापुत्र चारों मार-सनक, सनन्दन, सनातन तथा सनत्कुमार-अंगिरा, अगस्त्य, याज्ञवल्क्य तथा वामदेव उन ऋषियों में प्रमुख थे ।

जैसे ही ऋषि तथा साधुगण पधारे, महाराज युधिष्ठिर, समस्त पाण्डव, भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी सहित समस्त राजा तत्काल अपने आसनों से उठ गए । उन सबने सिर झुका कर विश्ववंद्य आदरणीय ऋषियों को प्रणाम किया । इसके उपरान्त चरण-प्रक्षालन के निमित जल तथा आसन देकर ऋषियों का उचित सत्कार किया गया, सुस्वादु फल, पुष्पमालाएँ धूप तथा चन्दन का आलेप प्रस्तुत किए गए तथा श्रीकृष्ण एवम् बलरामजी के नेतृत्व में समस्त राजाओं ने वैदिक विधि-विधानों के अनुसार ऋषियों की उपासना की । जब समस्त ऋषि सुखपूर्वक बैठ गए तब धर्म की रक्षा के लिए अवतरित भगवान् श्रीकष्ण ने समस्त राजाओं की ओर से उन्हें सम्बोधित किया । जब श्रीकृष्ण ने बोलना प्रारम्भ किया

तब ऋषियों के स्वागतार्थ कहे गए उनके शब्दों को सुनने तथा समझने के लिए उत्सुक सभी लोग शान्त हो गए ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने इस प्रकार कहा, "एकत्रित ऋषि तथा तपस्वी महात्माओ! आज हम सबको अपना जीवन सफल प्रतीत हो रहा है । आज हमने जीवन का वांछित लक्ष्य प्राप्त कर लिया है, क्योंकि जिन उत्कृष्ट, मुक्त ऋषियों तथा तपस्वियों के दर्शन के लिए स्वर्ग लोक के महान् देवता तक लालायित रहते हैं, हम उनका प्रत्यक्ष दर्शन कर रहे हैं । भक्ति में नवागन्तुक व्यक्ति केवल मन्दिर की श्रीमूर्ति को सादर प्रणाम करते हैं, किन्तु यह नहीं समझते हैं कि भगवान् प्रत्येक प्राणी के हृदय में विराजमान हैं तथा जो केवल अपनी वासनाओं की पूर्ति के लिए विभिन्न देवताओं की उपासना करते हैं, वे इन ऋषियों की महत्ता को समझने में असमर्थ हैं । वे अपने नयनों से उनके दर्शन करने, उनके चरणों का स्पर्श करने, उनके कल्याण के विषय में पूछताछ करने अथवा उनकी उपासना द्वारा इन ऋषियों का स्वागत करने का लाभ नहीं उठा सकते हैं ।" कनिष्ठ भक्त अथवा नाम-मात्र के धार्मिक व्यक्ति महान् महात्माओं के महत्व को नहीं समझ सकते हैं । वे केवल औपचारिकता वश मन्दिर में जाते हैं तथा श्रीमूर्ति को प्रणाम करते हैं । जब व्यक्ति का उत्कर्ष उदात्त भावना के स्तर तक पहुँच जाता है, तब वह महात्माओं तथा भक्तों के महत्व को समझ सकता है तथा उस स्थिति में भक्त उनको प्रसन्न करने की चेष्टा करता है । अतएव भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा कि कनिष्ठ भक्त महर्षियों, भक्तों तथा संन्यासियों के महत्व को नहीं समझ सकता है ।

श्रीकृष्ण ने आगे कहा, "तीर्थ स्थानों पर जाने, वहाँ स्नान करने तथा मन्दिरों में श्रीमूर्तियों के दर्शन के द्वारा कोई स्वयं को निर्मल नहीं कर सकता है । किन्तु यदि व्यक्ति को किसी महान् भक्त, श्रीभगवान् के प्रतिनिधि किसी महात्मा से मिलने का सौभाग्य मिलता है, तब वह व्यक्ति तत्काल ही निर्मल हो जाता है । निर्मल होने के लिए अग्नि, सूर्य, चन्द्र,

पृथ्वी, जल, वायु, आकाश तथा मन की उपासना करने का विधान है । समस्त तत्वों तथा उनके अधिष्ठाता देवताओं की उपासना के द्वारा व्यक्ति द्वेष के प्रभाव से मुक्त हो जाता है, किन्तु एक विद्वेषी व्यक्ति के समस्त पाप केवल किसी महात्मा की सेवा करने से तत्काल ही नष्ट हो सकते हैं । हे पूज्य ऋषियो तथा अदरणीय राजाओ! मुझसे सुनकर आप यह तथ्य मान लीजिए कि कफ, वात तथा पित्त नामक तीन तत्वों से निर्मित भौतिक शरीर को निज आत्मा के रूप में स्वीकार करने वाला मानव एक पशु-मात्र है । जो व्यक्ति अपने परिवार तथा परिजनों को अपना मानता है तथा जो भौतिक वस्तुओं को उपास्य मानता है, वह पशु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । जो व्यक्ति केवल वहाँ स्नान करने के लिए पवित्र तीर्थों की यात्रा करता है, किन्तु ऋषियों, मुनियों तथा महात्माओं जैसे महाजनों की संगति कभी नहीं करता, ऐसा व्यक्ति मानव शरीरधारी होते हुए भी गधे के समान एक पशु के अतिरिक्त और कुछ नहीं है ।"

जब परम अधिकारी भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक बोल रहे थे तब समस्त ऋषि व संन्यासी पूर्णतया शान्त थे । जीवन के परम पूर्ण दर्शन का इस प्रकार संक्षिप्त में भगवान् के द्वारा कथन सुन कर वे चकित थे । यदि व्यक्ति का ज्ञान अत्यन्त उन्नत न हो, तो व्यक्ति अपने शरीर को ही अपनी आत्मा मानता है, अपने परिवार के सदस्यों को अपना सम्बन्धी मानता है तथा अपनी जन्मभूमि को उपास्य मानता है । जीवन की इसी धारणा से राष्ट्रीय भावना के आधुनिक आदर्श का जन्म हुआ है । भगवान् श्रीकृष्ण ने ऐसे विचारों की भत्सना की । उन्होंने ऐसे लोगों की भी भत्सना की जो केवल स्नान करने के लिए ही पवित्र तीर्थस्थानों में जाने का कष्ट उठाते हैं तथा वहाँ निवास करने वाले महान् भक्तों तथा महात्माओं की संगति का लाभ उठाये बिना ही लौट आते हैं । ऐसे व्यक्तियों की तुलना सर्वाधिक मूर्ख पशु, गधे, से की गई है । भगवान् के वचनों का श्रवण करने वाले समस्त लोगों ने कुछ काल तक

विचार किया । उस सबसे यह निष्कर्ष निकाला कि भगवान् श्रीकृष्ण वस्तुत: श्रीभगवान् हैं, जो अपने विगत कर्मों के फल के परिणामस्वरूप एक विशेष प्रकार का शरीर ग्रहण करने को बाध्य एक साधारण मानव की जैसी भूमिका निभा रहे हैं । साधारण मानव की भूमिका करने की लीला वे केवल जन-साधारण को यह शिक्षा देने के लिए ही कर रहे थे कि मानव जीवन के ध्येय की पूर्णता के लिए किस प्रकार का जीवन जीना चाहिए ।

श्रीकृष्ण के श्रीभगवान् होने का निष्कर्ष निकालने के उपरान्त ऋषियों ने उनको इस प्रकार सम्बोधित करना प्रारम्भ किया, "प्रिय भगवन्! समझा जाता है कि मानव-समाज के नेता के रूप में हम लोगों के पास जीवन का उचित दर्शन है, तो भी हम आपकी बहिरंगा शक्ति के प्रभाव से भ्रमित हो रहे हैं । हम आपका व्यवहार देखकर चकित हैं । आपका व्यवहार एक साधारण मानव के समान है और यह श्रीभगवान् के रूप में आपके वास्तविक स्वरूप को छुपाए रखता है, अतएव हम आपकी लीलाओं को अत्यन्त अद्‌भुत मानते हैं ।

"प्रिय भगवन्! जिस प्रकार पृथ्वी विभिन्न प्रकार के पाषाणों, वृक्षों तथा अन्य अनेक प्रकार के नाम व रूपों की रचना करती है और फिर भी वैसी ही रहती है उसी प्रकार अपनी शक्ति के द्वारा आप विभिन्न नाम-रूपों की सम्पूर्ण सृष्टि की रचना, पालन व संहार कर रहे हैं । यद्यपि आप अपनी शक्ति के माध्यम से विभिन्न प्रकार की सृष्टि कर रहे हैं, तथापि आप इस सब कर्मों से अप्रभावित रहते हैं । प्रिय भगवन्! आपके अद्‌भुत कार्यों को देखकर हम आश्चर्यचकित रह जाते हैं । यद्यपि आप इस सम्पूर्ण भौतिक सृष्टि से ऊपर हैं तथा परमेश्वर एवम् समस्त जीवों के परमात्मा हैं, फिर भी आप अपने भक्तों की रक्षा तथा दुष्कर्मियों के विनाश के लिए अपनी अन्तरंगा शक्ति के द्वारा इस पृथ्वी पर प्रकट होते हैं । माया के साथ दीर्घकालीन सम्बन्ध के कारण मानव-समाज शाश्वत धर्म के जिस

सिद्धान्त को भूल जाता है, उसे आप इस प्रकार प्रकट हो कर पुनस्र्थापित करते हैं । प्रिय भगवन्! आप सामाजिक व्यवस्था तथा कर्म की श्रेष्ठता के अनुरूप मानव-समाज के आध्यात्मिक नियमों के रचयिता हैं । जब अनैतिक व्यक्ति इन व्यवस्थाओं का गलत दिशाओं में उपयोग करते हैं, तब आप प्रकट हो कर उनकी भूल सुधारते हैं ।

"प्रिय भगवन्! वैदिक ज्ञान आपके निर्मल हृदय का प्रतिनिधि है । तपस्या, वेदाध्ययन तथा समाधि आपके प्रकाशित तथा अप्रकाशित रूपों में आपका साक्षात्कार कराते हैं । समस्त दृश्य जगत आपकी निर्विशेष शक्ति का एक प्रकाश है, किन्तु श्रीभगवान् के रूप में आप स्वयं वहाँ अप्रकाशित हैं । आप परमात्मा, परम ब्रह्म हैं, अतएव ब्राह्मण संस्कृति में स्थित लोग आपके अप्राकृत रूप-विषयक सत्य को समझ सकते हैं । इस प्रकार आप सदैव ही ब्राह्मणों का आदर करते है । इस प्रकार आपको ब्राह्मण संस्कृति का अनुसरण करने वालों में मूर्धन्य माना जाता है । अतएव आपको ब्रह्मण्यदेव कहा जाता है । प्रिय भगवन्! आप सौभाग्य की पराकाष्ठा हैं तथा सज्जनों के अन्तिम आश्रय हैं । अतएव हम सब यह मानते हैं कि आपसे मिलकर हमने अपने जीवन, शिक्षा, तप तथा दिव्य–ज्ञान प्राप्ति की पूर्णता को प्राप्त कर लिया है । वस्तुत: आप समस्त दिव्य उपलब्धियों के चरम लक्ष्य हैं ।

"प्रिय भगवन्! आपके असीम ज्ञान का कोई अन्त नहीं है । आपका स्वरूप दिव्य तथा सच्चिदानन्द है । आप श्रीभगवान्, परम ब्रह्म हैं, परमात्मा हैं । अपनी अन्तरंगा शक्ति, योगमाया, के प्रभाव से आच्छादित होकर, इस समय आपने अपनी असीम शक्तियों को अस्थायी रूप से छुपा रखा है, किन्तु फिर भी हम आपके उत्कृष्ट पद को समझ सकते हैं, अतएव हम सब आपको सादर प्रणाम करते हैं । प्रिय भगवन्! एक मानव की भूमिका में, अप्राकृत ऐश्वर्ययुक्त अपने वास्तविक चरित्र को छुपा कर आप अपनी लीलाओं का आनन्द उठा रहे हैं । इसीलिए यहाँ उपस्थित

समस्त राजा तथा आपसे मिलने वाले, आपके साथ भोजन करने वाले तथा आपके साथ बैठने वाले यदुवंश के सदस्य भी यह नहीं समझ सकते हैं कि आप समस्त कारणों के मूल कारण, प्रत्येक जीव की आत्मा तथा समस्त सृष्टि के आदि कारण हैं ।

"जब कोई व्यक्ति रात्रि में स्वप्न देखता है, तब स्वप्ननिर्मित मायावी रूपों को वह सत्य मान लेता है तथा काल्पनिक स्वप्न-शरीर को अपना वास्तविक शरीर स्वीकार कर लेता है । उस समय व्यक्ति यह भूल जाता है कि मतिभ्रम द्वारा निर्मित शरीर के अतिरिक्त जाग्रतावस्था में उसका एक अन्य वास्तविक शरीर भी है । इसी के समान जाग्रतावस्था में भी भ्रमित बद्धात्मा इन्द्रियभोग को वास्तविक सुख मानती है ।

" भौतिक शरीर की इन्द्रियों के भोग के द्वारा आत्मा आच्छादित हो जाती है तथा उसकी चेतना भौतिकता से दूषित हो जाती है । भौतिक चेतना के कारण ही व्यक्ति श्रीभगवान् श्रीकृष्ण को समझने में असमर्थ रहता है । समस्त महान् योगी, योगप्रणाली के अभ्यास के द्वारा अपनी कृष्णभावना को पुनर्जीवित करने का प्रयास करते हैं और इस प्रकार उन्हें आपके चरणकमलों का ज्ञान होता है तथा वे आपके दिव्य स्वरूप पर ध्यान एकाग्र करते हैं । इस विधि से पापों के संचित फल का नाश हो जाता है । कहा जाता है कि गंगाजल व्यक्ति के ढेरों पापों का नाश कर सकता है, किन्तु गंगाजल आपके चरणों के प्रताप से ही यशस्वी है । गंगाजल आपके चरणरविन्दों के स्वेद जल के रूप में प्रवाहित हो रहा है । हम सब इतने भाग्यवान् हैं कि आज हम आपके चरणकमलों का साक्षात् दर्शन करने में समर्थ हुए हैं । प्रिय भगवन्! हम सब शरणागत आत्माएँ हैं, आपके भक्त हैं, अतएव कृपया दयालु होइए तथा हम पर अपनी अहैतुकी दया की वर्षा कीजिए । हमें भलीभाँति ज्ञात है कि जो लोग आपकी भक्ति में निरन्तर संलग्न रहने के कारण मुक्त हो गए हैं, वे अब प्रकृति के भौतिक त्रिगुणों से दूषित नहीं हैं । इस प्रकार वे

वैकुण्ठलोक में भगवान् के राज्य में प्रवेश पाने के अधिकारी बन गए हैं ।"

आदि भगवान् श्रीकृष्ण की स्तुति करने के उपरान्त एकत्र ऋषि राजा धृतराष्ट्र तथा राजा युधिष्ठिर से आज्ञा लेकर अपने-अपने आश्रमों को प्रस्थान करना चाहते थे । किन्तु उसी समय पुण्यात्माओं में सर्वश्रेष्ठ तथा भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेवजी ऋषियों के समीप गए तथा अत्यन्त विनयपूर्वक उनके चरणों में गिर कर उनकी वन्दना की । वसुदेव जी ने कहा "प्रिय महर्षियो! आप देवताओं से भी अधिक आदरणीय हैं, अतएव मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ । मेरी कामना है कि आप मेरी एक विनती स्वीकार करें । कृपया यदि आप अन्य समस्त कर्मों के फल को निष्फल करने वाले परम सकाम कर्म की व्याख्या कर दें, तो मैं इसे एक महान् अनुग्रह समझुंगा ।"

वहाँ उपस्थित ऋषियों के नेता देवर्षि नारद थे । अतएव उन्होंने कहना प्रारम्भ किया, "प्रिय ऋषियो! यह समझना अति कठिन नहीं है कि श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में स्वीकार करके श्रीभगवान् के पिता बनने वाले वसुदेवजी अपनी महान् सदाशयता तथा सादगी के कारण हमसे अपने कल्याण के विषय में प्रश्न करने की प्रवृत्ति रखते हैं । कहा जाता है कि समीपता तिरस्कार की जननी है । इस प्रकार श्रीकृष्ण को पुत्र रूप में प्राप्त कर के वसुदेवजी श्रीकृष्ण को आदर तथा भय से नहीं देखते हैं । कभीकभी ऐसा देखा जाता है कि गंगा नदी के तट पर निवास करने वाले लोग गंगा को अत्यन्त महत्वपूर्ण नहीं समझते हैं तथा वे स्नान के लिए अत्यन्त दूर किसी तीर्थस्थान पर जाते हैं । यह देखते हुए कि किसी भी परिस्थिति में अद्वितीय ज्ञान वाले भगवान् श्रीकृष्ण यहाँ उपस्थित हैं, अतएव हमसे उपदेश लेने की वसुदेवजी को कोई आवश्यकता नहीं है ।

"भगवान् श्रीकृष्ण सृष्टि, पालन तथा संहार की प्रक्रियाओं से अप्रभावित रहते हैं । उनका ज्ञान अपने से परे की किसी भी वस्तु से

कदापि प्रभावित नहीं होता है । वे वस्तुओं को काल के गुणों में परिवर्तित करने वाली भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रिया से कभी विचलित नहीं होते हैं । उनका दिव्य रूप ज्ञानमय है, जो अज्ञान, अहंकार, मोह, द्वेष अथवा इन्द्रियभोग से कभी-भी उद्विग्न नहीं होता है । पाप तथा कर्मों के सम्बन्ध में उनका ज्ञान कभी-भी कर्म के नियम का विषय नहीं बनता है, न ही यह प्रकृति के त्रिगुणों से प्रभावित होता है । न तो कोई उनसे बड़ा है, न उनके बराबर है, क्योंकि वे परम अधिकारी श्रीभगवान् हैं ।

'साधारण बद्ध मानव यह विचार कर सकते हैं कि अपनी भौतिक इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि द्वारा आच्छादित बद्धात्मा श्रीकृष्ण के बराबर है । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण सूर्य के समान हैं, जो कभी-कभी मेघ, हिम, कुहरे अथवा अन्य ग्रहों से आच्छादित प्रतीत तो होता है, किन्तु वास्तव में वह कभी-भी किसी वस्तु से आच्छादित नहीं होता । जब अल्पबुद्धि मनुष्यों के नेत्र ऐसे प्रभावों से आच्छादित होते हैं, तब वे यह विचार करते हैं कि सूर्य अदृश्य है । उसी के समान इन्द्रियों से प्रभावित तथा भौतिक भोगों के आदी लोगों को श्रीभगवान् के स्पष्ट दर्शन नहीं हो सकते हैं ।"

तदुपरान्त उपस्थित ऋषियों ने भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी तथा अन्य अनेक राजाओं की उपस्थिति में वसुदेवजी को सम्बोधित करना प्रारम्भ किया । वसुदेवजी की प्रार्थना के अनुसार ऋषियों ने उन्हें अपना उपदेश दिया, "कर्म के प्रभाव को अथवा सकाम कर्म के लिए व्यक्ति को बाध्य करने वाली इच्छाओं को निष्फल करने के लिए भगवान् विष्णु की उपासना के हेतु विशेष रूप से जिन यज्ञों की व्यवस्था की गई है, उनका विश्वास तथा भक्तिपूर्वक सम्पादन करना चाहिए । भगवान् विष्णु समस्त यज्ञों के फल के भोता हैं । भूत, भविष्य तथा वर्तमान के ज्ञाता, त्रिकालदर्शी, महाजन, साधु तथा धर्मग्रन्थों के नेत्रों से सब वस्तुओं को स्पष्ट रूप से देखने में समर्थ मनीषी एकमत होकर कहते हैं कि हृदय में संचित भौतिक दूषणों की धूलि को निर्मल करके तथा भक्ति के पथ को

निष्कंटक करके दिव्य आनन्द प्राप्त करने के लिए प्राणी को भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना चाहिए । विभिन्न सामाजिक वर्गो (ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य) में गृहस्थ के रूप में रहने वालों के लिए, पुरुषोत्तम नाम से प्रसिद्ध आदि पुरुष भगवान् श्रीविष्णु की इस उपासना को एकमेव शुभ मार्ग कहा गया है ।

''बद्धात्माओं की इस भौतिक जगत में भौतिक प्रकृति पर प्रभुत्व प्राप्त करने की इच्छा बहुत गहरी है । प्रत्येक व्यक्ति सम्पति एकत्र करना चाहता है, प्रत्येक व्यक्ति अधिकतम सीमा तक जीवन का सुख भोगना चाहता है, प्रत्येक व्यक्ति पत्नी, घर तथा सन्तान की कामना करता है । प्रत्येक व्यक्ति की इच्छा है कि वह इस जगत में सुखी हो तथा अगले जीवन में स्वर्ग प्राप्त करे । किन्तु ये इच्छाएँ ही व्यक्ति के भौतिक बन्धन के कारण हैं । अतएव इस बन्धन से छुटकारा प्राप्त करने के लिए व्यक्ति को भगवान् विष्णु की सन्तुष्टि के निमित्त ईमानदारी से अर्जित अपनी सम्पत्ति न्योछावर करनी पड़ती है ।

"सभी प्रकार की भौतिक इच्छाओं के निष्फल करने की एकमात्र प्रक्रिया भगवान् विष्णु की भक्ति है । इस प्रकार गृहस्थ जीवन में रहते हुए भी एक आत्मसंयमी व्यक्ति को तीनों प्रकार की भौतिक इच्छाओं का परित्याग करना चाहिए । ये तीन भौतिक इच्छाएँ हैं-भौतिक ऐश्वर्य के संचय की इच्छा, पत्नी तथा सन्तान-भोग की इच्छा एवं स्वर्ग-लोक गमन की इच्छा । अन्ततः वह गृहस्थ जीवन का परित्याग कर के संन्यास-जीवन को अपना सकता है । तब वह पूर्ण रूप से स्वयं को भगवान् की भक्ति में संलग्न कर देता है । यदि किसी व्यक्ति का जन्म उच्च वर्ण जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य वर्ण में भी हुआ हो तब भी प्रत्येक व्यक्ति निश्चित रूप से देवताओं, ऋषियों, पूर्वजों तथा जीवों का ऋणी है । इन सब ऋणों से उऋण होने के लिए व्यक्ति को यज्ञ करने होते हैं, वैदिक साहित्य का अध्ययन करना होता है तथा गृहस्थ जीवन में सन्तान उत्पन्न करनी होती

है । यदि किसी प्रकार से कोई व्यक्ति अपने ऋण चुकाये बिना ही संन्यास ग्रहण कर लेता है, तब वह निश्चय ही अपने पद से च्युत हो जाता है । आज आपने अपने पूर्वजों तथा ऋषियों का ऋण पहले से ही चुका दिया है । अब यज्ञ सम्पादन के द्वारा आप स्वयं को देवताओं के ऋण से मुक्त कर सकते हैं और इस प्रकार पूर्णरूप से श्रीभगवान् की शरण ग्रहण कर सकते हैं । प्रिय वसुदेव जी! आपने निश्चय ही अपने पूर्व जन्म में अनेक पुण्य कर्म किए हैं अन्यथा आप भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के पिता किस प्रकार हो सकते थे?"

साधु प्रकृति के वसुदेवजी ने ऋषियों के वचन सुनने के उपरान्त उनके चरणकमलों में सादर प्रणाम किया । इस प्रकार उन्होंने ऋषियों को प्रसन्न कर लिया तथा तत्पश्चात् उन ऋषियों से ही यज्ञ करवाने का निश्चय किया । जब यज्ञ के पुरोहित के रूप में उन ऋषियों का चयन हो गया तब उन्होंने भी उस पुण्य क्षेत्र में यज्ञ सम्पादन के लिए आवश्यक सामग्री का संग्रह करने के लिए वसुदेवजी से कहा । इस प्रकार वसुदेव जी यज्ञ सम्पादन के लिए तत्पर हो गए तथा यदुवंश के समस्त सदस्यों ने स्नान करके उत्तम वस्त्र धारण किए । उन्होंने सुरुचिपूर्वक अपना श्रृंगार किया तथा कमलपुष्पों की माला धारण की । उत्तम वस्त्राभूषण तथा स्वर्णहार धारण किए हुए वसुदेवजी की पत्नियाँ अपने हाथों में यज्ञ में अर्पण की जाने वाली आवश्यक सामग्री लेकर यज्ञभूमि के समीप आई ।

जब सब कुछ पूर्ण हो गया तब मृदंगों, शंखों, नगाड़ों तथा अन्य वाद्ययंत्रों की ध्वनि सुनाई पड़ी । नारी व पुरुष नर्तक नृत्य करने लगे । सूत तथा मागधों ने गाकर स्तुति करना प्रारम्भ किया । मधुर स्वर वाले गन्धवों तथा उनकी पत्नियों ने अनेक मंगल गीत गाने प्रारम्भ किया । वसुदेवजी ने अपने नयनों में अंजन लगाया तथा समस्त शरीर पर मक्खन का लेप किया । तत्पश्चात् अपनी पटरानी देवकी सहित अपनी अठारह पत्नियों के साथ वे अभिषेक-संस्कार द्वारा निर्मल किए जाने के निमित्त

पुरोहितों के सम्मुख बैठे । सारे संस्कार धर्मग्रन्थ के सिद्धान्तों के अनुसार किये गये, जैसे कि पहले चन्द्र तथा नक्षत्रों के सम्बन्ध में किया गया था । वसुदेवजी को यज्ञ में दीक्षित होना था, अतएव उन्होंने मृगछाला धारण की थी, किन्तु उनकी सभी पत्नियों ने उत्तम साड़ियाँ, कंगन, हार, नुपूर, कर्णफूल तथा अन्य अनेक आभूषण धारण कर रखा था । अपनी पत्नियों से घिरे हुए वसुदेवजी अत्यन्त सुन्दर दिखाई दे रहे थे, जैसे कि ऐसे यज्ञ करते समय स्वगाधिपति इन्द्र दीखते हैं ।

उस समय, जब अपनी पत्नियों, सन्तानों तथा सम्बन्धियों सहित भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीबलराम ने विशाल यज्ञभूमि में अपने आसन ग्रहण किए तब ऐसा प्रतीत हुआ मानो अपने अंश, जीवों तथा अनेक शक्तियों सहित श्रीभगवान् वहाँ उपस्थित थे । हमने शास्त्रों से सुना है कि भगवान् श्रीकृष्ण की अनेक शक्तियाँ तथा अंश हैं, किन्तु अब उस यज्ञ भूमि में सब लोग वास्तव में अनुभव कर रहे थे कि किस प्रकार अपनी विविध शक्तियों सहित श्रीभगवान् नित्य अस्तित्ववान् हैं । उस समय समस्त जीवों के सागर भगवान् श्रीकृष्ण भगवान् श्रीनारायण के रूप में तथा भगवान् श्रीबलराम संकर्षण के रूप में प्रकट हुए ।

ज्योतिष्टोम, दर्श तथा पूर्णमास जैसे विभिन्न प्रकार के यज्ञों का सम्पादन करके वसुदेवजी ने भगवान् विष्णु को प्रसन्न कर लिया । इनमें से कुछ यज्ञों को प्राकृत तथा कुछ को सौर्यसत्र अथवा वैकृत कहा जाता है । तत्पश्चात् अग्निहोत्र नामक अन्य यज्ञ किए गए तथा निर्धारित वस्तुएँ उचित रीति से अर्पित की गई । इस प्रकार भगवान् विष्णु प्रसन्न हो गए । यज्ञ में नैवेद्य अर्पित करने का अन्तिम उद्देश्य भगवान् विष्णु को प्रसन्न करना है । किन्तु इस कलियुग में यज्ञ करने के निमित्त आवश्यक विभिन्न वस्तुओं को एकत्र करना अत्यन्त कठिन है । अतएव इस कलियुग में, जबकि लोग अधिकांशत: अभागे, उद्विग्नताओं से पूर्ण तथा विभिन्न प्रकार के प्रकोपों से उद्वेलित हैं, केवल एक ही यज्ञ करने का परामर्श दिया जा

सकता है और वह है संकीर्तन यज्ञ । भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु की उपासना इस संकीर्तन यज्ञ के द्वारा करना ही इस युग में एकमात्र उचित प्रक्रिया है ।

विभिन्न यज्ञों के सम्पादन के पश्चात् वसुदेवजी ने पुरोहितों को प्रचुर सम्पति, वरुत्र, आभूषण, गउएँ भूमि तथा सेविकाएँ अर्पित कीं । तत्पश्चात् वसुदेवजी तथा उनकी सभी पत्नियों ने अवभूथ स्नान किया तथा पत्नीसंप्याज नामक यज्ञ-कर्म के भाग का सम्पादन किया । समस्त आवश्यक सामग्री सहित यज्ञ समाप्त करने के उपरान्त परशुरामजी के द्वारा निर्मित राम-ह्रद नाम से विख्यात सरोवरों में उन सबों ने एकसाथ स्नान किया । वसुदेवजी तथा उनकी पत्नियों के स्नान कर लेने के पश्चात् उनके पहने हुए समस्त वस्त्राभूषण नृत्य तथा गायन में संलग्न दीन-हीन लोगों में बाँट दिए गए । यहाँ हमें इस तथ्य का ध्यान रखना चाहिए कि यज्ञों के सम्पादन के समय मुक्त हस्त से धन या सम्पत्ति का दान आवश्यक होता है । प्रारम्भ में पुरोहितों तथा ब्राह्मणों को दान दिया जाता है तथा यज्ञ के सम्पादन के उपरांत पहने हुए वस्त्राभूषण दीन-हीनों को दान कर दिए जाते हैं ।

पहने हुए वस्त्रादि गायकों तथा भाटों को देने के पश्चात् वसुदेवजी तथा उनकी पत्नियों ने नवीन वस्त्राभूषण धारण किए तथा ब्राह्मणों से लेकर कुत्तों तक, सबको भरपेट भोजन कराया गया । इसके पश्चात् समस्त राजाओं तथा विदर्भ, कोशल, कुरु, काशी, केकय तथा सुंजय वंशों के सदस्यों सहित वसुदेवजी के मित्र, परिजन, पत्नियाँ तथा सन्तानें सब एक स्थान पर एकत्र हो गए । पुरोहितों, देवताओं, जनसामान्य, पूर्वजों, भाटों तथा चारणों सभी को बहुत से उपहार तथा आदर देकर उन्हें पर्याप्त पारितोषिक दिया गया । तत्पश्चात् वहाँ उपस्थित सभी सजनों ने लक्ष्मी के पति श्रीकृष्ण से अनुमति ली और वसुदेवजी के द्वारा किए गए यज्ञ की

पूर्णता का यशगान करते हुए उन्होंने अपने-अपने घरों को प्रस्थान किया ।

उस समय जब राजा धृतराष्ट्र, विदुर, युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, भीष्मदेव, द्रोणाचार्य, कुन्ती, नकुल, सहदेव, नारद, भगवान् व्यासदेव तथा अन्य अनेक सम्बन्धी तथा परिजन विदा होने वाले थे, तब उन सबको विरह का अनुभव हुआ, अतएव उन्होंने यदुवंश के प्रत्येक सदस्य का अत्यन्त भावनापूर्वक आलिंगन किया । यज्ञ-भूमि में एकत्र अन्य लोगों ने भी प्रस्थान किया । इसके पश्चात् राजा उग्रसेन सहित भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीबलराम ने अनेक प्रकार के उपहार अर्पित करके वृन्दावन के निवासियों को सन्तुष्ट किया । वृन्दावन के निवासियों में प्रमुख नन्द महाराज तथा ग्वालबाल थे । उनके सत्कार तथा प्रसन्नता के लिए उन्हें बहुत मात्रा में अनेक प्रकार के उपहार अर्पित किए । अपने अति सखाभाव के कारण वृन्दावनवासियों ने वहाँ यदुवंशियों के साथ दीर्घ काल तक निवास किया ।

इस यज्ञ को करने के पश्चात् वसुदेवजी को इतना संतोष हुआ कि उनके हर्ष की उग्रसेन, भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान् बलराम, उद्धवजी तथा समस्त यदुवंशियों ने सीमा न रही । उनके परिवार के समस्त सदस्य वहाँ थे और उनकी उपस्थिति में अपने-अपने व्यक्तिगत उपहार नन्द महाराज तथा उनके साथियों को भेंट किए । इन उन्होंने नन्द महाराज के हाथ पकड़ कर उन्हें इस प्रकार सम्बोधित किया, "प्रिय सब विदाई-उपहारों के ग्रहण करने के उपरान्त अपने सहयोगियों सहित नन्द भ्राता! श्रीभगवान् ने प्रेम तथा स्नेह के महान् बन्धन का निर्माण किया है । मेरे विचार महाराज ने व्रजभूमि वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया । किन्तु वृन्दावनवासियों के मन से महार्षियों तथा स्वजनों के लिए भी ऐसे प्रेम-बन्धन को काटना एक कठिन कार्य श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के समीप ही बने रहे, अतएव उन सबने बेमन के वृन्दावन है । प्रिय भ्राता! आपने

मेरे प्रति प्रेम-भाव प्रदर्शित किया था, किन्तु मैं उसका प्रत्युतर के लिए प्रस्थान किया । न दे सका । अतएव मेरा विचार है कि मैं कृतघ्न हूँ । आपने एक संत पुरुष के योग्य व्यवहार किया है, किन्तु मैं आपको कभी-भी इसका प्रतिदान न कर सकूंगा । आपके सौहार्दपूर्ण व्यवहार का प्रतिदान करने के लिए मेरे पास कोई साधन नहीं है । फिर भी मुझे विश्वास है की हमारा प्रेम-बंधन कभी भंग नहीं होगा । मैं आपको प्रतिदान करने में असमर्थ हूँ, फिर भी हमारा सखा-सम्बन्ध सदैव चलता रहना चाहिए । मुझे आशा है की इस असमर्थता के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे ।

"प्रिय भ्राता! प्रारम्भ में अपने बन्दी होने के कारण मैं एक मित्र के रूप में कभी आपकी सेवा न कर सका । यद्यपि अब मैं अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हूँ किन्तु अपनी भौतिक समृद्धि के कारण मैं अन्धा हो गया हूँ । अतएव अब भी मैं आपको उचित रीति से सन्तुष्ट नहीं कर सकता हूँ । प्रिय भ्राता! आप इतने उत्तम तथा मृदु स्वभाव के हैं कि आप दूसरों का पूर्ण आदर करते हैं, किन्तु अपने लिए आपको किसी आदर सत्कार की इच्छा नहीं है । अत्यधिक भौतिक ऐश्वर्य व्यक्ति को गवीला तथा मदान्ध बना देता है, अतएव जीवन में मंगल की इच्छा करने वाले व्यक्ति को अत्यधिक धनवान नहीं होना चाहिए, अपितु उसे अपने बन्धु-बान्धवों की देखभाल करनी चाहिए ।"

जब वसुदेवजी नन्द महाराज से इस प्रकार कह रहे थे तब वे नन्द महाराज की मैत्री तथा अपने लिए राजा नन्द द्वारा सम्पादित लाभप्रद कार्यों के प्रति प्रगाढ़ भावना से प्रभावित थे । इस कारण उनके नयन अश्रुओं से भर गए तथा वे रो पड़े । अपने सखा वसुदेवजी को प्रसन्न करने के लिए और भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी के प्रेम के बन्धन में स्नहपूर्वक बँधे होने के कारण, नन्द महाराज ने उनके साथ तीन मास व्यतीत किए । इस अवधि की समाप्ति पर समस्त यदुवंशियों ने जी-भर कर वृन्दावनवासियों को प्रसन्न करने का प्रयास किया । यदुवंशियों ने

वस्त्राभूषण तथा अन्य अनेक बहुमूल्य वस्तुएँ उन्हें अर्पित कर के नन्द महाराज तथा उनके साथियों को सन्तुष्ट करने का प्रयास किया तथा वे सभी पूर्णरूपेण सन्तुष्ट हो गए । वसुदेवजी, उग्रसेन, भगवान श्रीकृष्ण, भगवान बलराम, उद्धव जी तथा समस्त यदुवंशियों ने अपने-अपने व्यक्तिगत उपहार नन्द महाराज तथा उनके साथियों को भेंट किये । इन सब विदाई-उपहारों के ग्रहण करने के उपरान्त अपने सहयोगियों सहित नन्द महाराज ने व्रजभूमि वृन्दावन के लिए प्रस्थान किया ।

जब वृष्णिवंशियों ने अपने समस्त मित्रों तथा अतिथियों को प्रस्थान करते हुए देखा तब वर्षा ऋतु समीप आ रही थी । अत: उन्होंने द्वारका लौटने का निश्चय किया । वे श्रीकृष्ण को सब कुछ मानते थे, अतएव वे पूर्णतया संतुष्ट थे । द्वारका लौटने पर उन्होंने अत्यन्त संतोषपूर्वक वसुदेवजी द्वारा सम्पादित यज्ञ, विभिन्न मित्रों तथा शुभचिन्तकों से अपनी भेंट आदि का वर्णन करना प्रारम्भ किया । उन्होंने विभिन्न आशा है कि इस असमर्थता के लिए आप मुझे क्षमा करेंगे । तीर्थस्थानों की यात्रा के मध्य हुई अन्य अनेक घटनाओं का भी वर्णन किया ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "वसुदेवजी द्वारा सम्पादित यज्ञ" नामक चौरासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 85
भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा देवकी के छ: पुत्रों को लौटाना

एक वैदिक रीति है कि परिवार के छोटे सदस्यों को प्रतिदिन प्रात:काल वयोवृद्ध लोगों को प्रणाम करना चाहिए । विशेष रूप से बालकों एवं शिष्यों को प्रातःकाल अपने माता-पिता अथवा अपने गुरु को प्रणाम

करना चाहिए । इस वैदिक सिद्धान्त का पालन करते हुए, भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी अपने पिता वसुदेवजी एवं उनकी पत्नियों को प्रणाम करते थे । एक दिन कुरुक्षेत्र के यज्ञ में भाग लेकर लौटने पर भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलराम जी वसुदेवजी को प्रणाम करने गए । तब वसुदेवजी ने अपने दोनों पुत्रों के श्रेष्ठ पद की प्रशंसा करने के लिए इस अवसर का लाभ उठाया । यज्ञ-भूमि में एकत्र हुए महान् ऋषियों से श्रीकृष्ण एवं बलराम के पद की महत्ता को समझने का अवसर वसुदेवजी को प्राप्त हुआ था । उन्होंने न केवल ऋषियों से सुना, अपितु अनेक अवसरों पर उन्होंने वास्तव में अनुभव भी किया कि श्रीकृष्ण एवं बलरामजी साधारण मानव नहीं हैं, अपितु वे अत्यन्त असाधारण हैं । इस प्रकार उन्होंने ऋषियों के इन शब्दों पर विश्वास किया कि उनके पुत्र श्रीकृष्ण एवं बलरामजी श्रीभगवान् हैं ।

अपने पुत्रों में दृढ़ निष्ठा सहित वसुदेवजी ने उनको इस प्रकार सम्बोधित किया, "प्रिय श्रीकृष्ण! आप सच्चिदानन्द विग्रह श्रीभगवान् हैं तथा हे बलराम! आप समस्त सिद्धियों के स्वामी संकर्षण हैं । मैं अब समझ गया हूँ कि आप अनादि हैं । आप दोनों ही इस सृष्टि तथा इसके कारण से अतीत हैं, आप परम पुरुष महाविष्णु हैं । आप सबके आदि नियन्ता हैं । आप इस भौतिक सृष्टि के आश्रय हैं । आप इसके रचयिता हैं तथा इसकी रचना में प्रयुक्त सामग्री भी आप ही हैं । आप इस सृष्टि के स्वामी हैं तथा वस्तुत: इस सृष्टि की रचना आपकी लीलाओं के लिए ही हुई है ।

"सृष्टि के प्रारम्भ से अन्त तक विभिन्न कालसूत्रों के अन्तर्गत प्रकाशित विभिन्न भौतिक रूप भी आप स्वयं हैं, क्योंकि आप इस सृष्टि के कार्य तथा कारण दोनों ही हैं । इस भौतिक जगत के दोनों लक्षण, प्रभावकर्ता तथा प्रभावित होने वाले भी आप ही हैं तथा आप परम दिव्य नियन्ता भी हैं, जो उनसे ऊपर है । अतएव आप इन्द्रियअनुभव से परे,

इन्द्रियातीत, हैं । आप अजन्मा तथा अपरिवर्तनशील परमात्मा हैं । भौतिक शरीर में होने वाले छः प्रकार के परिवर्तनों से आप अप्रभावित रहते हैं । इस भौतिक जगत की अद्‌भुत विविधताओं की रचना भी आपने की है । आपने प्रत्येक जीव तथा परमाणु में भी परमात्मा के रूप में प्रवेश किया है । आप प्रत्येक वस्तु के पालक हैं ।

"प्रत्येक वस्तु में जीवन तत्व के रूप में कार्य करने वाली प्राण-शक्ति तथा इससे प्राप्त होने वाली रचनात्मक शक्ति स्वतंत्र रूप से कार्य करती है, फिर भी आप पर निर्भर है । आप इन शक्तियों के पीछे रहने वाले परम पुरुष हैं । आपकी इच्छा के बिना ये कार्य नहीं कर सकती हैं । भौतिक शक्ति जड़ होती है । यदि आप इसे गतिशील न करें, तो यह स्वतंत्र रूप से कार्य नहीं कर सकती है । भौतिक प्रकृति आप पर निर्भर है, अतएव जीव कार्य करने का प्रयास मात्र कर सकते हैं । किन्तु आपकी अनुमति तथा इच्छा के बिना वे कुछ नहीं कर सकते हैं और न ही अपेक्षित परिणाम प्राप्त कर सकते हैं ।

"मूल शक्ति आप से उत्पन्न होने वाली एक शक्ति मात्र है । प्रिय भगवन्! चन्द्रमा की चमक, अग्नि की उष्मा, सूर्य की किरणें, नक्षत्रों की जगमगाहट तथा अत्यन्त प्रबल रूप में प्रकाशित होने वाली विद्‌युत् की चमक-ये सभी आपके विभिन्न प्रकाश हैं । जल का शुद्ध स्वाद तथा समस्त प्राणियों को जीवन देने वाली प्राण-शक्ति भी आप का ही लक्षण है । जल तथा इसका स्वाद भी आप स्वयं हैं । "प्रिय भगवन्! यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि इन्द्रियों की शक्तियाँ विचार, इच्छा, अनुभव की मानसिक शक्ति, शरीर के बल, विकास तथा गति का कारण शरीर में वायु की भिन्न-भिन्न प्रकार की गतियाँ है, तथापि अन्ततः वे सब आपकी शक्ति के ही प्रकाश हैं । अन्तरिक्ष का विशाल विस्तार आप में निहित है । आकाश का कम्पन तथा इसकी गर्जना, परम शब्द ओकार तथा एक वस्तु का दूसरी से वैभिन्य बताने के लिए विभिन्न शब्दों का विन्यास आपके ही

सांकेतिक प्रतिनिधि हैं । प्रत्येक वस्तु आप ही हैं । इन्द्रियाँ तथा इन्द्रियों के नियन्ता, देवता, ज्ञान की प्राप्ति जो कि इन्द्रियों का प्रयोजन है एवं ज्ञान की विषयवस्तु सभी कुछ आप ही हैं । बुद्धि की विश्लेषण शक्ति तथा जीव की तीक्षण स्मरणशक्ति भी आप स्वयं हैं । अहंवादी सिद्धान्त, जो इन्द्रियों का कारण है, वह भी आप हैं । इस भौतिक जगत के विभिन्न नियंत्रक देवताओं के मूल सतीगुण का अहंवादी सिद्धान्त भी आप ही हैं । बद्ध आत्माओं के एक शरीर से दूसरे शरीर में सतत देहान्तरण का कारण माया भी आप हैं ।

"प्रिय श्रीभगवान्! आप समस्त कारणों के मूल कारण हैं । यह उसी तरह है जैसे कि विभिन्न प्रकार के वृक्षों, पौधों तथा अन्य उसी प्रकार के आविर्भावों का मूल कारण भूमि है । जिस भाँति भूमि सबमें है उसी भाँति परमात्मा के रूप में आप इस भौतिक सृष्टि में सर्वत्र उपस्थित हैं । आप सनातन सिद्धान्त हैं, आप समस्त कारणों के परम कारण हैं । वस्तुत: प्रत्येक वस्तु आपकी एक शक्ति का प्रकाश है । सत्व, रजस तथा तमस नामक भौतिक प्रकृति के तीनों गुण तथा उनकी परस्पर क्रिया का परिणाम आपकी प्रतिनिधि योगमाया के द्वारा आपसे संयुक्त हैं । उन्हें स्वतंत्र माना जाता है, किन्तु वास्तव में सम्पूर्ण भौतिक शक्ति आप परमात्मा पर आश्रित है । आप प्रत्येक वस्तु के परम कारण हैं, अतएव भौतिक जगत की क्रिया-प्रतिक्रिया-जन्म, अस्तित्व, विकास, रूप परिवर्तन, क्षय तथा विनाश-सभी आपमें अनुपस्थित हैं । आपकी परम शक्ति, योगमाया, चित्र-विचित्र आविर्भावों में कार्य कर रही है, किन्तु योगमाया आपकी शक्ति है, अतएव आप प्रत्येक वस्तु में उपस्थित हैं ।"

भगवद्गीता के नौवें अध्याय में इस तथ्य की अत्यन्त उत्तमतापूर्वक व्याख्या की गई है, जहाँ पर भगवान् कहते हैं, "अपने निराकार रूप में मैं सम्पूर्ण भौतिक शक्ति पर छाया हुआ हूँ, प्रत्येक मुझमें आश्रित है, किन्तु मैं वहाँ नहीं हूँ ।" यही कथन वसुदेवजी का भी है । भगवान् सर्वत्र

उपस्थित नहीं हैं-कहने का तात्पर्य यह है कि यद्यपि उनकी शक्ति सर्वत्र कार्य कर रही है, तथापि वे प्रत्येक वस्तु से पृथक् हैं । इसे एक स्थूल उदाहरण से समझा जा सकता है-एक बड़े संस्थान में सर्वोच्च अधिकारी की शक्ति अथवा उसका प्रबन्ध व्यापार के कोने-कोने में कार्य कर रहा है । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि मूल स्वामी वहाँ उपस्थित है, यद्यपि प्रत्येक विभाग तथा वातावरण में कार्यकर्ताओं को स्वामी की उपस्थिति का अनुभव होता है । प्रत्येक विभाग में स्वामी की सशरीर उपस्थिति एक औपचारिकता मात्र है । वास्तव में सर्वत्र उसकी शक्ति कार्य करती । उसी भाँति श्रीभगवान् की सर्वव्यापकता का अनुभव उनकी शक्तियों की क्रियाओं में होता है । अतएव परमेश्वर में एकसाथ अचिन्तनीय एकात्मकता तथा विभिन्नता की पुष्टि सर्वत्र होती है । भगवान् एक हैं, किन्तु उनकी शक्तियाँ अनेक हैं ।

वसुदेवजी ने कहा, "यह भौतिक जगत एक बहती हुई महान् नदी के समान है तथा सत, रज तथा तम नामक प्रकृति के तीन भौतिक गुण इसकी लहरों के समान हैं । यह भौतिक शरीर, इन्द्रियाँ विचार, अनुभव, इच्छा की शक्तियाँ दुख, सुख, मोह वासना की स्थितियाँ आदि सभी प्रकृति के इन तीनों गुणों की विभिन्न प्रकार की उपज हैं । जो मूढ़ व्यक्ति इस समस्त भौतिक प्रक्रियाओं से परे आपके दिव्य स्वरूप को नहीं पहचान सकता है, वह सकाम कर्म के बन्धन में पड़ा रहता है तथा वह मुक्ति का अवसर प्राप्त हुए बिना जन्म-मरण की निरन्तर प्रक्रिया का भागी होता है ।"

भगवद्गीता के चौथे अध्याय में भगवान् ने भी इस तथ्य की पुष्टि एक अन्य प्रकार से की है । वहाँ कहा गया है कि जो कोई परम भगवान् श्रीकृष्ण के स्वरूप एवं उनकी गतिविधियों को जान लेता है, वह भौतिक प्रकृति के बन्धन से मुक्त हो जाता है तथा भगवान् के धाम लौट जाता है

। अतएव श्रीकृष्ण का दिव्य नाम, रूप, कार्य तथा गुण भौतिक प्रकृति की उपज नहीं हैं ।

वसुदेवजी ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! बद्धात्माओं के इन दोषों के होने पर भी यदि कोई व्यक्ति किसी प्रकार भक्ति के सम्पर्क में आ जाता है, तब उसे यह विकसित चेतना वाली सुसंस्कृत मानव-देह प्राप्त होती है और इस प्रकार वह भक्ति में और आगे प्रगति करने में समर्थ हो जाता है । फिर भी बहिरंगा शक्ति से भ्रमित मानव, साधारणतया मानव-देह में जन्म लेने की इस सुविधा का लाभ नहीं उठाते हैं । इस प्रकार वे सनातन मुक्ति का अवसर खो देते हैं तथा हजारों जन्मों के पश्चात् उन्होंने जो प्रगति की होती है उसे अनावश्यक रूप से नष्ट कर देते हैं ।

"जीवन की देहात्मबुद्धि धारणा में अपने मिथ्या अंहकार के कारण मानव अपनी देह से उत्पन्न सन्तान के प्रति मोह रखता है । इस बद्ध जीवन में प्रत्येक प्राणी झूठे सम्बन्धों तथा झूठे मोह के द्वारा बन्धनों में जकड़ा हुआ है । समस्त जगत भौतिक दासता के झूठे प्रभाव के अन्तर्गत कार्य कर रहा है । मैं जानता हूँ कि आप दोनों में से कोई भी मेरे पुत्र नहीं हैं, आप आदि स्वामी तथा पूर्वपुरुष हैं । आप प्रधान तथा पुरुष के नाम से विख्यात श्रीभगवान् हैं । किन्तु अनावश्यक रूप से अपनी सैन्य शक्ति की वृद्धि करने वाले क्षत्रिय राजाओं को मार कर इस जगत का भार कम करने के लिए आप इस भूतल पर प्रकट हुए हैं । विगत में आपने पहले ही मुझे इस विषय में सूचित किया है । प्रिय भगवन्! आप शरणागत आत्माओं के आश्रय हैं, दीन-हीनों के आप परम शुभ चिन्तक हैं । केवल आपके चरणकमल ही मानव को भौतिक जीवन के बन्धन से मुक्ति प्रदान कर सकते हैं, अतएव मैं आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण करता हूँ ।

“दीर्घकाल तक मैंने इस शरीर को ही अपना समझा है और यद्यपि आप श्रीभगवान् हैं, तथापि मैं आपको अपना पुत्र मानता था । प्रिय भगवन्! जिस क्षण आप कंस के कारागृह में सर्वप्रथम प्रकट हुए थे, तभी

मुझे सूचित किया गया था कि आप श्रीभगवान् हैं तथा आप धर्म के सिद्धान्तों की रक्षा तथा अधर्मियों का विनाश करने के लिए अवतरित हुए हैं । यद्यपि आप अजन्मा हैं, तथापि अपने ध्येय का सम्पादन करने के लिए आप प्रत्येक युग में अवतीर्ण होते हैं । जिस प्रकार आकाश में अनेक आकार-प्रकार प्रकट तथा तिरोहित होते रहे हैं, उसी भाँति आप भी अनेक सनातन रूपों में प्रकट तथा अप्रकट होते हैं । अतएव आपकी लीलाओं तथा आपके आविर्भाव तथा तिरोभाव के रहस्य को कौन समझ सकता है? अतएव आपकी परमोत्कृष्टता का यशगान करना ही हमारा एकमात्र कार्य होना चाहिए ।"

जब वसुदेवजी अपने दिव्य पुत्रों को इस प्रकार सम्बोधित कर रहे थे तब भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी मुस्करा रहे थे, क्योंकि वे अपने भक्तों के प्रति अत्यन्त वत्सल हैं । अत: उन्होंने वसुदेवजी की समस्त प्रशंसा को कृपापूर्ण, मुस्कानयुक्त मुद्रा से स्वीकार किया । तत्पश्चात् श्रीकृष्ण ने वसुदेव के समस्त कथनों की पुष्टि की, "हे तात! आप कुछ भी कहें, हम आपके पुत्र हैं । आपने हमारे विषय में जो कुछ भी कहा है, वह निश्चय ही आध्यात्मिक ज्ञान की एक उत्कृष्ट दार्शनिक समझ है । मैं बिना किसी अपवाद के इसे समस्त रूप में स्वीकार करता हूँ ।"

भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलरामजी को अपना पुत्र मानने में वसुदेवजी जीवन की पूर्ण आदर्श स्थिति में थे, किन्तु कुरुक्षेत्र के तीर्थस्थल पर एकत्र ऋषियों ने भगवान् को प्रत्येक वस्तु का परम कारण कहा था, अतएव श्रीकृष्ण एवं बलरामजी के प्रति अपने प्रेम के कारण वसुदेवजी ने इसको दुहरा दिया था । वसुदेवजी से अपने पितापुत्र के सम्बन्ध में कोई न्यूनता लाने की भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा नहीं थी, अतएव अपने उत्तर के प्रारम्भ में ही उन्होंने यह तथ्य स्वीकार किया कि वे वसुदेवजी के सनातन पुत्र हैं तथा वसुदेवजी श्रीकृष्ण के सनातन पिता हैं । इसके उपरान्त उन्होंने आगे कहा, "प्रिय तात! मेरे तथा मेरे भाई बलरामजी सहित प्रत्येक

प्राणी, साथ ही साथ द्वारका नगर के समस्त निवासी तथा समस्त सृष्टि ठीक उसी प्रकार की है जैसा आपने स्पष्ट किया है, किन्तु हम सब गुणात्मक रूप में भी एक हैं ।" भगवान् श्रीकृष्ण की इच्छा थी कि वसुदेवजी प्रत्येक वस्तु को प्रथम श्रेणी के भत महाभागवत की दृष्टि से देखें । एक प्रथम श्रेणी का भत समस्त जीवों को परम भगवान् के विभिन्न अंशों के रूप में देखता है तथा वह परम भगवान् को प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित देखता है । वास्तव में प्रत्येक जीव का आध्यात्मिक स्वरूप होता है, किन्तु भौतिक जगत के सम्पर्क में वह प्रकृति के भौतिक गुणों से प्रभावित हो जाता है । वह देहात्मबुद्धि से आच्छादित हो जाता है और उसे यह विस्मृत हो जाता है कि उसकी आत्मा भी उसी कोटि (गुण) की है, जिस कोटि के श्रीभगवान् हैं । हम भूल से केवल उसके भौतिक दैहिक आवरण के कारण एक व्यक्ति को दूसरे से भिन्न मानते हैं । शरीरों में वैभिन्य के कारण आत्मा हमारे सम्मुख भिन्न-भिन्न रूपों में प्रकट होती है ।

तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण ने पंचभूतों (तत्वों) के सम्बन्ध में एक उत्तम दृष्टान्त दिया । गगन, समीर, अग्नि, भूमि तथा जल नामक समस्त तत्व इस भौतिक जगत की प्रत्येक वस्तु में उपस्थित हैं, चाहे वह मिट्टी का पात्र हो, पर्वत वृक्ष अथवा एक कुण्डल ही क्यों न हो । यही पाँच तत्व प्रत्येक वस्तु में विभिन्न अनुपातों एवं मात्राओं में उपस्थित हैं । एक पर्वत इन पंचभूतों के संयोग का एक विशाल रूप है तथा एक छोटा मिट्टी का पात्र भी इन्हीं तत्वों की उपज है, किन्तु छोटी मात्रा में । अतएव समस्त भौतिक पदार्थ यद्यपि विभिन्न आकारों अथवा मात्रा में होते हैं, तथापि उनका निर्माण करने वाली सामग्री एक-सी होती है । उसी भाँति भगवान् श्रीकृष्ण से प्रारम्भ करके, विष्णु तत्व तथा करोड़ों विष्णु-रूपों एवम् ब्रह्माजी से प्रारम्भ करके क्षुद्र चींटी तक जीवों के विभिन्न रूप, सभी की आत्मा एक ही कोटि की है । मात्रा में कुछ महान् हैं तथा कुछ क्षुद्र किन्तु

गुणवत्ता में वे एक ही स्वभाव के हैं । अतएव उपनिषदों में इस तथ्य की पुष्टि की गई है, कि श्रीकृष्ण अथवा परमेश्वर समस्त जीवों में प्रमुख हैं । वे उन सब जीवों का पालन करते हैं तथा उनके लिए जीवन की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति करते हैं । जो कोई यह दर्शन समझ लेता है उसे पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो जाता है । वैदिक कथन " तत्वमसि', "-"तू वही है"-का अर्थ यह नहीं है, कि प्रत्येक व्यक्ति ईश्वर है । इसका वास्तविक अर्थ यह है कि प्रत्येक व्यक्ति गुणवत्ता में भगवान् के समान स्वभाव वाला है ।

आध्यात्मिक जीवन के सम्पूर्ण दर्शन का श्रीकृष्ण के द्वारा संक्षिप्त कथन सुन कर वसुदेवजी अपने पुत्र से अत्यधिक प्रसन्न हो गए । इस प्रकार गद्गद् हो कर वे बोल न सके, अपितु मौन रहे । इस मध्य भगवान् श्रीकृष्ण की माता देवकीजी अपने पति ते पार्श्व में बैठी थीं । उन्होंने पहले सुना था कि श्रीकृष्ण एवं बलरामजी दोनों ही अपने गुरु पर इतने कृपालु थे कि वे गुरु के मृत पुत्रों को यमराज के चंगुल से छुड़ा कर वापस लौटा लाए थे । जब से उन्होंने इस घटना का श्रवण किया था तब से वे भी कंस द्वारा वध किए गए अपने पुत्रों के विषय में चिन्तन कर रही थीं । उन्हें स्मरण करते हुए वे दुख से व्याकुल हो जाती थीं ।

अपने मृत पुत्रों के प्रति करुणा से भर कर देवकी जी भगवान् श्रीकृष्ण एवं बलराम जी से इस प्रकार विनती करने लगीं, "प्रिय बलराम! आपके नाम से ही संकेत प्राप्त होता है कि आप प्रत्येक प्राणी को समस्त सुख तथा शक्ति प्रदान करते हैं । आपकी असीम शक्ति हमारे मन तथा शब्दों की पहुँच से परे है । हे श्रीकृष्ण! आप योगेश्वर हैं । मुझे यह भी ज्ञात है कि आप ब्रह्मा तथा उनके सहायकों जैसे समस्त प्रजापतियों के स्वामी हैं तथा आप आदि भगवान् श्री नारायण हैं । मुझे यह भी निश्चित रूप से ज्ञात है कि आप काल की धारा में पथच्युत हो गए समस्त दुष्कर्मियों के विनाश के हेतु अवतीर्ण हुए हैं । उस दुष्कर्मियों ने अपने मन तथा इन्द्रियों पर से नियंत्रण खो दिया है, वे सतीगुण से स्खलित हो गए हैं । उन्होंने

जानबूझ कर धर्मग्रन्थों द्वारा प्रदर्शित दिशा की उपेक्षा की है तथा अतिशयता एवं अविवेक का जीवन व्यतीत किया है । ऐसे दुष्कर्मी राजाओं का वध करके जगत के भार को कम करने के लिए आप इस भूतल पर अवतीर्ण हुए हैं । प्रिय श्रीकृष्ण! मुझे ज्ञात है कि सृष्टि के आदि कारण सागर में विश्राम करने वाले महाविष्णु जो इस समस्त सृष्टि के स्रोत हैं, आपके अंश के एक विस्तार-मात्र हैं । इस प्राकृत सृष्टि की रचना, पालन तथा संहार आपके केवल अंश के द्वारा की जा रही है । अतएव मैं निरंशक मन से आपकी शरण ग्रहण करती हूँ । मैंने सुना है कि जब आप अपने गुरु सान्दीपनी मुनि को गुरुदक्षिणा देना चाहते थे, तो उन्होंने आपसे अपने मृत पुत्र को वापस लाने की प्रार्थना की थी, तब यद्यपि वह दीर्घ काल से मृत था तथापि आप तथा बलरामजी तत्काल ही उसे यमराज के बन्धन से छुड़ा लाए थे । इस कार्य से मैं समझती हूँ कि आप समस्त योगियों के स्वामी परम योगेश्वर हैं । अतएव मैं आपसे इसी भाँति अपनी इच्छा को भी पूर्ण करने की प्रार्थना करती हूँ । दूसरे शब्दों में, मैं आपसे कंस द्वारा वध किए गए अपने सभी पुत्रों को वापस लाने की प्रार्थना करती हूँ । आपके द्वारा उन्हें वापस लाने पर मेरा हृदय सन्तुष्ट हो जाएगा तथा उनके एक बार दर्शन करने से ही मुझे सुख प्राप्त होगा ।"

अपनी माता के इस प्रकार के वचनों को सुन करके भगवान् श्रीबलराम तथा श्रीकृष्ण ने तत्काल योगमाया की सहायता ली तथा सुतल नामक पाताल लोक की ओर प्रस्थान कर दिया । पहले अपने वामनावतार के समय असुरराज बलि महाराज ने अपना सर्वस्व श्रीभगवान् को दान करके उन्हें प्रसन्न कर दिया था । तत्पश्चात् भगवान् ने बलि महाराज को उनके निवास स्थान तथा राज्य के रूप में सम्पूर्ण सुतल दे दिया था । अब जब इस महान् भक्त बलि महाराज ने देखा कि भगवान् श्रीबलराम एवं श्रीकृष्ण उनके गृह पर पधारे हैं तब वे तत्काल ही आनन्द के सागर में डूब गए । जैसे ही उन्होंने अपने समक्ष भगवान् श्रीकृष्ण एवं

बलरामजी के दर्शन किए वैसे ही वे तथा उनके परिवार के सभी सदस्य अपने आसनों से उठ खड़े हुए तथा उन्होंने भगवान् के चरणकमलों में प्रणाम किया । बलि महाराज ने अपने पास का सर्वोत्तम आसन भगवान् श्रीकृष्ण तथा बलरामजी को दिया और जब दोनों ही भगवान् सुखपूर्वक बैठ गए तब बलि महाराज उनके चरणाविन्दों का प्रक्षालन करने लगे । तत्पश्चात् उन्होंने उस चरणामृत को अपने तथा अपने परिवार के सदस्यों के सिर पर चढ़ाया । श्रीकृष्ण एवं बलरामजी के पदकमलों के प्रक्षालन में प्रयुक्त जल ब्रह्माजी जैसे महानतम देवताओं को भी पावन कर सकता है ।

उसके उपरान्त बलि महाराज मूल्यवान वस्त्र, आभूषण, चन्दन का आलेप, पान, दीपक तथा विभिन्न प्रकार के अमृतमय भोजन ले आये । अपने परिवार के सदस्यों सहित उन्होंने नियमपूर्वक भगवान् की उपासना की तथा अपनी सम्पत्ति तथा देह को भगवान् के चरणकमलों में अर्पित किया । राजा बलि को ऐसे दिव्य सुख का अनुभव हो रहा था कि वे बारम्बार भगवान् के पदकमलों को पकड़ कर उन्हें अपने वक्षस्थल पर रख लेते थे, कभी-कभी वे श्रीचरणों को अपने मस्तक पर रख लेते थे । इस प्रकार वे दिव्य आनन्द का अनुभव कर रहे थे । उनके नेत्रों से स्नेह तथा प्रेमवश अश्रु प्रवाहित होने लगे तथा उन्हें रोमांच हो आया । वे बीच-बीच में अवरुद्ध होती हुई वाणी से भगवान् की स्तुति करने लगे ।

"प्रिय भगवान् श्रीबलराम! आप आदि अनन्तदेव हैं । आप इतने महान् हैं कि अनन्तदेव शेषजी तथा अन्य दिव्य रूप मूलत: आपसे तथा भगवान् श्रीकृष्ण से ही उत्पन्न हुए हैं । आप आदि श्रीभगवान् हैं तथा आपका सनातन रूप पूर्णानन्दमय तथा पूर्ण ज्ञानमय है । आप समस्त जगत के स्रष्टा हैं । आप श्रीभगवान् परम-ब्रह्म हैं । अतएव मैं पूर्ण आदर सहित आप दोनों को प्रणाम करता हूँ । प्रिय भगवन्! जीवों के भक्तों पर कृपालु होते हैं तब उनके लिए आपके दर्शन प्राप्त करना सरल हो जाता

है । अपनी अहैतुकी कृपा के कारण ही आप यहाँ आकर हमें दर्शन देने के लिए सहमत हुए हैं, क्योंकि हम साधारणत: रजोगुण एवं तमोगुण से प्रभावित हैं और आपकी इस कृपा के योग्य नहीं हैं ।

"प्रिय भगवन्! हम दैत्य अथवा असुर वर्ग के जीव हैं । असुर, गन्धर्व, सिद्ध, विद्याधर, चारण, यक्ष, राक्षस, पिशाच, भूत-प्रेत जैसे लोग स्वभावत: ही आपकी उपासना करने अथवा आपके भक्त बनने में असमर्थ हैं । आपके भक्त बनने के स्थान पर वे भक्ति के मार्ग में बाधा बन जाते हैं । इसके विपरीत आप श्रीभगवान् हैं । आप समस्त वेदों के प्रतिनिधि हैं तथा सदैव ही निर्दोष सतीगुण में स्थित हैं । आपका पद सदैव ही दिव्य है । इसी कारण रजोगुण एवं तमोगुण से उत्पन्न होने पर भी हममें से कुछ लोगों ने आपके चरणारविन्दों की शरण ग्रहण की है तथा भक्त बन गए हैं । हममें से कुछ वास्तव में विशुद्ध भक्त हैं तथा कुछ लोग भक्ति द्वारा कुछ प्राप्त करने की इच्छा से आपके चरणकमलों की शरण में आए हैं ।

"हम असुरगण केवल आपकी अहैतुकी कृपा के कारण ही आपके प्रत्यक्ष सम्पर्क में आए हैं । यह सम्पर्क महान् देवताओं को भी प्राप्त होना असम्भव हैं । अपनी योगमाया की शक्ति के माध्यम से आप किस प्रकार कार्य करते हैं, यह किसी को ज्ञात नहीं है । आपकी अन्तरंगा शक्ति की गतिविधियों के विस्तार का अनुमान देवता भी नहीं लगा सकते हैं, तब हमारे लिए इसे समझना किस प्रकार सम्भव है ? अतएव मैं अपनी विनम्र विनती आपके समक्ष रखता हूँ-मैं आपके प्रति पूर्ण रूप से समर्पित (शरणागत) हूँ । कृपया मुझ पर दयालु हों तथा मुझ पर अपनी अहैतुकी दया की कृपा कीजिए, जिससे कि मैं जन्म-जन्मांतर आपके चरणकमलों का स्मरण कर सकूं । मेरी एकमात्र महत्वाकांक्षा है कि मैं एक परमहंस की भाँति एकाकी रह सकूं, जो कि मन की महान् शान्ति में यत्र-तत्र यात्रा करते हुए केवल आपके पादपद्मों पर ही निर्भर रहते हैं । मेरी यह भी इच्छा है कि यदि मुझे किसी की संगति करनी हो, तो मैं केवल आपके

विशुद्ध भक्तों की संगति करूं और किसी की नहीं, क्योंकि आपके शुद्ध भक्त सदैव समस्त जीवों के शुभ-चिन्तक होते हैं ।

"प्रिय भगवन्! आप समस्त जगत के परम स्वामी तथा निर्देशक हैं । अतएव कृपया मुझे अपनी सेवा में संलग्न कर लीजिए और इस प्रकार मुझे समस्त भौतिक दूषणों से मुक्त हो जाने दीजिए । आप मुझे इस प्रकार पावन कर सकते हैं, क्योंकि यदि कोई स्वयं को आपकी भक्ति में संलग्न करता है, तब वह तत्काल ही वेदों में बताए गए सभी प्रकार के विधि-विधानों से मुक्त हो जाता है ।"

यहाँ पर प्रयुक्त परमहंस शब्द का अर्थ है सर्वश्रेष्ठ हंस । कहा जाता है कि हंस जल मिश्रित दूध के कुण्ड में से दूध ले सकता है । इसी के समान वह व्यक्ति, जो कि इस भौतिक जगत में से आध्यात्मिक अंश को ग्रहण कर लेता है तथा जो केवल परमात्मा पर निर्भर रह कर एकाकी रह सकता है, परमहंस कहलाता है । जब कोई व्यक्ति परमहंस के स्तर को प्राप्त कर लेता है, तब वह वैदिक निर्देशों के विधिविधानों के अधीन नहीं रह जाता । परमहंस केवल शुद्ध भक्तों की संगति को स्वीकार करता है तथा भौतिकता में लिप्त अन्य प्राणियों का त्याग कर देता है । दूसरे शब्दों में, भौतिकता में लिप्त प्राणी परमहंस के महत्व को नहीं समझ सकते हैं, किन्तु जो व्यक्ति सौभाग्यमय आध्यात्मिक रूप से प्रगति कर चुके हैं, वे परमहंस की शरण में जाते हैं और इस प्रकार मानव-जीवन के ध्येय की सफलतापूर्वक पूर्ति करते हैं ।

बलि महाराज की स्तुति सुनने के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा, "प्रिय असुरराज ! स्वायंभुव मनु के संवत्सर में मरीचि नामक प्रजापति ने अपनी पत्नी ऊर्णा के गर्भ से छः पुत्र प्राप्त किए, जो सभी देवता थे । एक बार ब्रह्माजी अपनी पुत्री पर मुग्ध हो गए तथा उन्होंने कामवासना से प्रेरित हो कर उसका पीछा किया । उस समय इन छः देवाताओं ने अत्यन्त घृणापूर्वक ब्रह्माजी के इस कार्य का अवलोकन किया था । ब्रह्माजी के

कार्य की यह आलोचना उनका एक महान् अपराध था तथा इसी कारण उन्हें हिरण्यकशिपु के पुत्रों के रूप में जन्म लेने का दण्ड प्राप्त हुआ । तदनन्तर हिरण्यकशिपु के इन पुत्रों को माता देवकी के गर्भ में स्थापित किया गया तथा जैसे ही उन्होंने जन्म लिया, कंस ने एक के पश्चात् एक उनका वध कर दिया । प्रिय असुरराज ! माता देवकी इस मृत पुत्रों का फिर से दर्शन करने के लिए अत्यन्त उत्सुक हैं तथा कंस के हाथों उनकी अकाल मृत्यु के कारण वे अत्यन्त दुखी हैं । मुझे ज्ञात है कि वे सब तुम्हारे साथ निवास कर रहे हैं । अपनी माता देवकी को सन्तुष्ट करने के लिए मैंने उन्हें अपने साथ ले जाने का निश्चय किया है । मेरी माताजी के दर्शन करने के पश्चात् ये छहों बद्धात्माएँ मुक्त हो जाएँगी तथा इस प्रकार अत्यन्त सुखपूर्वक वे अपने लोक को चली जाएँगी । इन छ: बद्धात्माओं के नाम हैं-स्मर, उद्गीथ, परिष्वंग, पतंग, क्षुद्रमृत तथा घृणी । उन्हें पुन: अपना देवताओं का पद (देवत्व) प्राप्त हो जाएगा ।"

इस प्रकार असुरराज को सूचित करने के उपरान्त श्रीकृष्ण ने बोलना बन्द कर दिया और बलि महाराज भगवान् का प्रयोजन समझ गए । उन्होंने भगवान् की समुचित उपासना की । तत्पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण तथा भगवान् श्रीबलराम छ: बद्धात्माओं को साथ लेकर द्वारका नगरी लौट गए । वहाँ उन्होंने उन बद्धात्माओं को शिशुओं के रूप में अपनी माता देवकी के सम्मुख प्रस्तुत किया । माता देवकी आनन्द से विह्वल हो गई तथा वात्सल्य से इतनी आनन्दित हो गई कि तत्काल उनके स्तनों से दूध बहने लगा । उन्होंने अत्यन्त सन्तोषपूर्वक शिशुओं को दुग्धपान कराया । वे शिशुओं को बारम्बार अपनी गोद में लेने लगीं तथा उनका सिर सूंघते हुए विचार करने लगीं, "वे मेरे खोए हुए पुत्रों को वापस ले आए हैं!" उस समय वे विष्णु की शक्ति के अधीन हो गई तथा अत्यन्त ममतापूर्वक वे अपने खोए हुए पुत्रों के सान्निध्य का आनन्द लेने लगीं ।

देवकीजी के स्तनों से निकला हुआ दूध दिव्य अमृत था, क्योंकि भगवान् श्रीकृष्ण ने भी उसी दूध का पान किया था । इस प्रकार जब उन शिशुओं ने देवकीजी के उस स्तनों से दुग्धपान किया, जिसको भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर का स्पर्श प्राप्त हुआ था, तब वे तत्काल आत्मज्ञानी बन गए । अतएव वे शिशु भगवान् श्रीकृष्ण, बलरामजी, अपने पिता वसुदेवजी तथा माता देवकीजी को प्रणाम करने लगे । इसके उपरान्त वे तत्काल अपने-अपने स्वर्गलोकों को चले गए ।

उनके प्रस्थान के पश्चात् माता देवकी आश्चर्यचकित रह गई कि उनके मृत पुत्र वापस लौट आए थे तथा पुन: अपने-अपने लोकों को चले गए । वे भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का चिन्तन करके ही इन घटनाओं से सामंजस्य कर सकीं । भगवान् श्रीकृष्ण की शक्तियाँ अचिन्त्य हैं, अतएव कुछ भी अद्‌भुत सम्पादित हो सकता है । भगवान् की अचिन्त्य तथा असीम शक्तियों को स्वीकार किए बिना व्यक्ति यह नहीं समझ सकता है कि भगवान् श्रीकृष्ण परमात्मा हैं । अपनी असीम शक्तियों से वे असीम लीलाएँ करते हैं । न कोई पूर्णरूपेण उनका वर्णन कर सकता है, न ही किसी को उन सबका ज्ञान हो सकता है । नैमिषारण्य के ऋषियों के सम्मुख, जिनमें शौनक ऋषि प्रमुख थे, श्रीमद्भागवत की कथा कहते हुए सूत गोस्वामी ने इस विषय में अपना निम्नांकित निर्णय दिया है ।

"महर्षियो! कृपया आप यह समझ लीजिए कि भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाएँ चिर सनातन हैं । वे ऐतिहासिक घटनाओं के साधारण कथन नहीं हैं । ये कथाएँ स्वयं श्रीभगवान् से एकरूप हैं । अतएव जो कोई भगवान् की लीलाओं की इन कथाओं का श्रवण करता है, वह तत्काल ही भौतिक जगत के दूषणों से मुक्त हो जाता है । जो शुद्ध भक्त हैं, वे अपने कानों में प्रवेश करते हुए अमृत की भाँति इन कथाओं का आनन्द उठाते हैं ।" व्यासदेव के सुपुत्र श्रील शुकदेव गोस्वामी ने इन कथाओं का वर्णन किया था । इन कथाओं का श्रवण करने वाला तथा दूसरों के श्रवणार्थ

इनका वर्णन करने वाला व्यक्ति कृष्णभावनाभावित हो जाता है । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति ही अपने घर, भगवान् के धाम, लौटने का अधिकारी होता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण द्वारा देवकी के छ: पुत्रों को लौटाना" नामक पचासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 86

सुभद्रा-हरण तथा भगवान् श्रीकृष्ण का श्रुतदेव एवं बहुलाश्व के समीप जाना

घटना का श्रवण करने के पश्चात् राजा परीक्षित भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनकी लीलाओं के विषय में श्रवण करने के लिए और अधिक जिज्ञासु हो गए । इस प्रकार उन्होंने श्री शुकदेव गोस्वामी से प्रश्न किया कि किस प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण की प्रेरणा पर उनके पितामह अर्जुन ने पितामही सुभद्रा का हरण किया था । राजा परीक्षित अपने पितामह द्वारा पितामही के हरण एवं उनके विवाह के विषय में सुनने के लिए अत्यन्त उत्सुक थे ।

इस प्रकार श्रीशुकदेव गोस्वामी ने निम्नांकित प्रकार से उस कथा को प्रारम्भ किया, "एक बार, तुम्हारे पितामह, महान्-वीर अर्जुन अनेकों तीर्थ स्थानों की यात्रा कर रहे थे । जब वे इस प्रकार सर्वत्र यात्रा कर रहे थे, तब वे प्रभासक्षेत्र पहुँचे । प्रभासक्षेत्र में उन्होंने सुना कि बलरामजी सुभद्रा के विवाह की चर्चा कर रहे हैं । सुभद्रा अर्जुन के मामा वसुदेवजी की पुत्री थीं । यद्यपि सुभद्रा के पिता वसुदेवजी तथा भ्राता श्रीकृष्ण उनसे सहमत

नहीं थे, तथापि बलरामजी सुभद्रा का विवाह दुर्योधन से करने के पक्ष में थे । किन्तु अर्जुन की इच्छा सुभद्रा से पाणिग्रहण करने की थी ।"

जैसे-जैसे उन्होंने सुभद्रा के तथा उसके सौन्दर्य के विषय में विचार किया वैसे-वैसे उससे विवाह करने का विचार उन्हें भी आकर्षित लगने लगा । अपने मन में एक योजना बना कर उन्होंने हाथ में त्रिदण्ड लिए हुए एक वैष्णव संन्यासी का वेश धारण किया । मायावादी संन्यासी एक दण्ड लेते हैं, जबकि वैष्णव संन्यासी तीन दण्ड लेते हैं । त्रिदण्ड यह संकेत करते हैं कि वैष्णव संन्यासी अपने तन, मन तथा वचन से श्रीभगवान् की सेवा करने का प्रण लेता है । त्रिदण्ड संन्यासी की प्रणाली का अस्तित्व दीर्घ काल से रहा है तथा वैष्णव संन्यासी को त्रिदण्डी अथवा कभीकभी त्रिदण्डी-स्वामी या त्रिदण्डी-गोस्वामी कहा जाता है ।

साधारणतया संन्यासियों को धर्मोपदेश के लिए सम्पूर्ण देश में यात्रा करनी होती है, किन्तु भारतवर्ष में वर्षा ऋतृ के चातुर्मास में सितम्बर से दिसम्बर तक वे यात्रा नहीं करते हैं । इस काल में वे एक स्थान पर आश्रय लेते हैं तथा बिना प्रवास किए वहीं रहते हैं । संन्यासी का यह प्रवास न करना चातुर्मास्य व्रत कहलाता है । जब संन्यासी चार मास के लिए एक स्थान पर निवास करता है, तब इस स्थान के स्थानीय निवासी आध्यात्मिक प्रगाति के लिए उस संन्यासी की उपस्थिति का लाभ उठाते हैं । त्रिदण्डी संन्यासी के वेश में अर्जुन द्वारका नगरी में चार मास तक रुके रहे तथा ऐसी योजना बनाते रहे जिससे कि वे सुभद्रा को पत्नी रूप में प्राप्त कर सकें । द्वारकावासी तथा भगवान् श्रीबलराम भी अर्जुन को संन्यासी के रूप में पहचान न पाए, अतएव वस्तुस्थिति को न समझते हुए उन सबने संन्यासी को सादर प्रणाम अर्पित किया ।

एक दिन भगवान् श्रीबलराम ने इस विशेष संन्यासी को अपने यहाँ भोजन के लिए निमंत्रित किया । बलरामजी ने अत्यन्त आदरपूर्वक उन्हें सर्वप्रकार का सुस्वादु भोजन अर्पित किया तथा वह कथित संन्यासी

अत्यन्त आनन्दपूर्वक भोजन कर रहा था । बलरामजी के घर पर भोजन करते हुए अर्जुन केवल सुन्दरी सुभद्रा को ही निहार रहे थे । महान् वीरों तथा राजाओं को भी सुभद्रा अति मोहक लगती थी । उसके प्रति प्रेम के कारण अर्जुन के नेत्र चमक उठे, वह चमकते हुए नयनों से उसको निहारने लगे । अर्जुन ने निश्चय किया कि किसी-न-किसी प्रकार से वह सुभद्रा को पत्नी रूप में प्राप्त करेंगे और इस बलवती इच्छा के कारण उनका मन उद्विग्न हो उठा ।

महाराज परीक्षित के पितामह अर्जुन स्वयं भी अद्‌भुत सौन्दर्य के स्वामी थे तथा उनकी शारीरिक आकृति सुभद्रा को भी आकर्षक प्रतीत होती थी । सुभद्रा ने भी मन ही मन निश्चय कर लिया कि वह केवल अर्जुन को ही पति रूप में स्वीकार करेगी । एक निश्छल कन्या के रूप में, अर्जुन को देखते हुए वह अत्यन्त सुखपूर्वक मुस्कुरा रही थी । इस प्रकार अर्जुन भी उसके प्रति अधिकाधिक आकर्षित हो गए । इस प्रकार सुभद्रा ने स्वयं को अर्जुन के प्रति समर्पित कर दिया तथा अर्जुन ने किसी भी प्रकार उससे विवाह करने का निश्चय किया । तदनन्तर अर्जुन दिन-रात चौबीसों घण्टे इसी विचार में मग्न रहने लगे कि वे किस प्रकार सुभद्रा को अपनी पत्नी के रूप में प्राप्त कर सकते हैं । उन्हें सुभद्रा को प्राप्त करने का रोग लग गया था, उन्हें क्षणमात्र की भी मानसिक शान्ति नहीं थी ।

एक बार मन्दिर में देवताओं के दर्शनार्थ सुभद्रा रथ पर बैठ कर महल से बाहर आई । अर्जुन ने इस अवसर का लाभ उठाया और वसुदेवजी तथा देवकीजी की अनुमति से सुभद्रा का हरण कर लिया । सुभद्रा के रथ पर सवार होने के उपरान्त अर्जुन युद्ध के लिए तैयार हो गए । उन्हें रोकने के लिए जो सैनिक भेजे गए थे, उनको अर्जुन ने अपना धनुष लेकर अपने बाणों से रोक दिया तथा वे सुभद्रा को ले गए । जब अर्जुन इस प्रकार सुभद्रा का हरण कर रहे थे तब सुभद्रा के परिवार वाले तथा सम्बन्धी विलाप करने लगे, किन्तु फिर भी अर्जुन उसको उसी प्रकार

ले गए जैसे एक सिंह अपना भाग ले कर चला जाता है । जब भगवान् श्रीबलराम को यह ज्ञात हुआ कि वह तथाकथित संन्यासी अर्जुन था तथा उन्होंने ऐसी योजना केवल सुभद्रा-हरण के निमित्त बनाई थी तथा वह वास्तव में सुभद्रा को हर ले गया है, तब बलरामजी अत्यन्त क्रोधित हो गए । जिस प्रकार पूर्णमासी के दिन सागर की लहरें उद्विग्न हो जाती हैं उसी प्रकार बलरामजी भी अत्यन्त विचलित हो गए ।

भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के पक्ष में थे, अतएव उन्होंने अन्य परिवारजनों के साथ बलराम जी के चरणों पर गिर कर तथा उनसे अर्जुन को क्षमा करने की याचना करके उन्होंने बलरामजी को शान्त करने का प्रयास किया । तत्पश्चात् बलरामजी को प्रतीति हो गई कि सुभद्रा को अर्जुन से प्रेम है और उन्हें यह जान कर हर्ष हुआ कि वह अर्जुन को पति रूप में प्राप्त करना चाहती थी । विवाद समाप्त हो गया तथा नवविवाहित दम्पति को प्रसन्न करने के लिए भगवान् श्रीबलराम ने उन्हें दहेज भेजने का प्रबन्ध किया । इस दहेज में धन-सम्पत्ति, हाथियों, घोड़ों, रथों, दासों तथा दासियों का बाहुल्य था । महाराज परीक्षित श्रीकृष्ण के विषय में और अधिक श्रवण करने को उत्सुक थे, अतएव अर्जुन द्वारा सुभद्राहरण की कथा समाप्त करने के उपरान्त श्रीशुकदेव गोस्वामी ने निम्न प्रकार से एक अन्य कथा कहनी प्रारम्भ की ।

विदेह राज्य की राजधानी मिथिला नगरी में एक गृहस्थ ब्राह्मण रहता था । श्रुतदेव नामक यह ब्राह्मण भगवान् श्रीकृष्ण का एक महान् भक्त था । पूर्ण रूप से कृष्णभावनाभावित होने के कारण उसका मन पूर्णरूपेण शान्त था तथा वह समस्त भौतिक आकर्षणों से निर्लिप्त था । वह अत्यन्त विद्वान था तथा पूर्ण रूप से कृष्णभावनामृत में स्थित होने के अतिरिक्त उसकी और कोई इच्छा नहीं थी । यद्यपि वह गृहस्थ था, तथापि वह आजीविका अर्जित करने का कोई विशेष प्रयास नहीं करता था । बिना अधिक प्रयास किए उसे जो कुछ प्राप्त हो जाता, वह उसी में सन्तुष्ट था

तथा किसी-न-किसी प्रकार वह इस रीति से जीवन-यापन कर रहा था । प्रतिदिन वह आवश्यक मात्रा में जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ जुटाता तथा कभी भी आवश्यकता से अधिक लेने का प्रयास नहीं करता था । यही उसका सौभाग्य था । अपनी आवश्यकता से अधिक प्राप्त करने की ब्राह्मण की कोई इच्छा नहीं थी । इस प्रकार वह धर्मग्रन्थों में निर्देशित ब्राह्मण-जीवन के विधि-विधानों का शान्तिपूर्वक पालन कर रहा था ।

सौभाग्यवश मिथिला के राजा भी उस ब्राह्मण के ही समान एक अच्छे भक्त थे । इस प्रसिद्ध राजा का नाम बहुलाव था । एक अच्छे राजा के रूप में उनकी कीर्ति फैली हुई थी तथा इन्द्रियतृप्ति के लिए अपने राज्य का विस्तार करने की उसे तनिक भी आकांक्षा नहीं थी । इस प्रकार वह ब्राह्मण तथा राजा बहुलाश्व दोनों ही मिथिला में भगवान् श्रीकृष्ण के विशुद्ध भक्त थे ।

भगवान् श्रीकृष्ण इन दोनों भक्तों, राजा बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेव, के प्रति अतिशय दयालु थे, अतएव उन्होंने एकदिन अपने सारथी दारुक को अपना रथ मिथिला ले चलने की आज्ञा दी । भगवान् श्रीकृष्ण के साथ महर्षि नारद, वामदेव, अत्रि, व्यासदेव, परशुराम, असित, अरुणि, बृहस्पति, कण्व, मैत्रेय, च्यवन तथा अन्य ऋषि-मुनिगण भी थे । भगवान् श्रीकृष्ण तथा ऋषिगण अनेक ग्रामों तथा नगरों से होते हुए जा रहे थे । प्रत्येक स्थल पर नागरिक अत्यन्त आदरपूर्वक उनका स्वागत करते थे तथा अनेक प्रकार की वस्तुएँ उनको अर्पित करके उनकी उपासना करते थे । जब नागरिक भगवान् के दर्शनार्थ आते थे तथा वे सब एक स्थान पर एकत्र हो जाते थे तब ऐसा प्रतीत होता था कि अपने उपग्रहों सहित सूर्य वहाँ उपस्थित है । उस यात्रा में भगवान् श्रीकृष्ण तथा ऋषिगण आनर्त, धन्व, कुरुजांगल, कंक, मत्स्य, चाल, कुन्ति, मधु, केकय, कोशल तथा अर्ण नामक राज्यों से होकर गए । इस प्रकार इन स्थानों के समस्त नागरिकों, स्त्रियों तथा पुरुषों ने भगवान् श्रीकृष्ण के प्रत्यक्ष दर्शन किए । इस प्रकार

भगवान् के प्रति प्रेम व स्नेह से पूर्ण खुले हृदय से उन्होंने स्वर्गिक सुख का भोग किया । जब उन्होंने भगवान् के श्रीमुख के दर्शन किए तब उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ कि वे अपने नयनों से अमृतपान कर रहे हैं । जब उन्होंने श्रीकृष्ण के दर्शन किए तब उनके जीवन की समस्त अज्ञानपूर्ण धारणाएँ नष्ट हो गई । जब भगवान् विभिन्न देशों से होकर जाते तथा लोग उनसे भेंट करने आते थे तब श्रीभगवान् दृष्टिपात करने मात्र से समस्त सौभाग्यों की वर्षा कर देते तथा उन्हें सर्वप्रकार के अज्ञानों से मुक्त कर देते थे । किसी-किसी स्थान पर देवगण भी मानवों के साथ सम्मिलित हो जाते तथा उनके द्वारा किया गया भगवान् का यशगान समस्त दिशाओं को सर्व अमंगलों से रहित कर देता था । इस प्रकार शनैःशनैः भगवान् श्रीकृष्ण विदेह राज्य में पहुँचे ।

जब भगवान् के आगमन का समाचार नागरिकों को प्राप्त हुआ तब उन्हें असीम सुख का अनुभव हुआ । भगवान् को अर्पित करने के लिए अपने हाथों में उपहार लेकर नागरिक उनका स्वागत करने आए । भगवान् श्रीकृष्ण के दर्शन करते ही उनके हृदय दिव्य आनन्द से तत्काल इस प्रकार खिल गए जैसे कि उदित होते हुए सूर्य के दर्शन करके पद्मपुष्प प्रस्फुटित हो जाते हैं । पहले महर्षियों के नामों का उन्होंने केवल श्रवण किया था । अब भगवान् श्रीकृष्ण की दया से उन्हें महर्षियों तथा स्वयं भगवान् दोनों ही के दर्शनों का अवसर प्राप्त हुआ ।

राजा बहुलाश्व तथा ब्राह्मण श्रुतदेव, दोनों ही को भली-भाँति ज्ञात था कि भगवान् उन पर अनुग्रह करने के लिए ही वहाँ आए हैं, अतएव वे दोनों तत्काल ही भगवान् के चरणकमलों में गिर पड़े तथा उन्हें प्रणाम किया । हाथ जोड़ कर राजा तथा ब्राह्मण दोनों ने एकसाथ भगवान् श्रीकृष्ण एवं समस्त ऋषियों को अपने घर आने का निमंत्रण दिया । उन दोनों को ही प्रसन्न करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण ने दो रूपों में विस्तार किया तथा उनमें से प्रत्येक के गृह गए । फिर भी राजा अथवा ब्राह्मण

कोई भी यह न समझ सका कि भगवान् दूसरे के घर भी गए थे । प्रत्येक ने यही सोचा कि भगवान् केवल उसी के घर आए हैं । यद्यपि ब्राह्मण तथा राजा यह सोच रहे थे कि भगवान् केवल उसके ही घर उपस्थित हैं, किन्तु भगवान् तथा उनके संगी दोनों ही घरों में उपस्थित थे । यह श्रीभगवान् का एक अन्य ऐश्वर्य है । धर्मग्रन्थों में इस ऐश्वर्य का वर्णन वैभव-प्रकाश के रूप में किया गया है । इसी के समान जब भगवान् श्रीकृष्ण ने सोलह हजार रानियों से विवाह किया था तब उन्होंने सोलह हजार रूपों में अपना विस्तार किया था और उनमें से प्रत्येक स्वयं उनके ही समान बलशाली था । इसी भाँति जब वृन्दावन में ब्रह्मा ने श्रीकृष्ण की गउएँ बछड़े तथा ग्वालबालों को चुरा लिया था तब श्रीकृष्ण ने अनेक नवीन गायों, बछड़ों तथा ग्वालबालों के रूप में अपना विस्तार किया था ।

विदेहराज बहुलाश्व अत्यन्त बुद्धिमान तथा एक आदर्श सजन था । श्रीभगवान् सहित इतने महापुरुषों को अपने घर में साक्षात् उपस्थित देख कर वह चकित हो गया । उसे भलीभाँति ज्ञात था कि बद्धात्माएँ तथा विशेषरूप से सांसारिक कर्मों में संलग्न व्यक्ति शतप्रतिशत शुद्ध नहीं हो सकते हैं, जबकि श्रीभगवान् तथा उनके शुद्ध भक्त ही सांसारिक दूषणों से परे होते हैं । अतएव जब उसने पाया कि श्रीभगवान् तथा सब महान् ऋषि-मुनि उसके घर पर पधारे हैं, तब वह आश्चर्य-चकित हो गया तथा वह उनकी अहैतुकी कृपा के लिए भगवान् श्रीकृष्ण को धन्यवाद देने लगा ।

राजा स्वयं को अत्यन्त अनुगृहीत अनुभव कर रहा था तथा वह अपनी सामथ्र्य के अनुसार अतिथियों का सर्वोत्तम स्वागत करना चाहता था । उसने उत्तम आसन तथा गद्दियाँ मैंगवाई तथा समस्त ऋषियों सहित भगवान् श्रीकृष्ण सुखपूर्वक बैठ गए । उस समय राजा बहुलाश्व का मन अत्यन्त चंचल हो रहा था, किन्तु इसका कारण कोई समस्या नहीं, अपितु भगवान् के प्रति प्रेम और भक्ति का दिव्य आनन्द था । उसका हृदय

भगवान् तथा उनके संगियों के प्रति प्रेम व स्नेह से भर आया था तथा उसके नयनों में आनन्द-अश्रु आ गए थे । उसने अपने दिव्य अतिथियों के पादप्रक्षालन का प्रबन्ध किया और उनके चरणों का प्रक्षालन करने के उपरान्त उसने तथा उसके परिवार के सदस्यों ने उस चरणामृत को अपने सिर पर धारण किया । तदुपरान्त उसने अपने अतिथियों को उत्तम पुष्पमालाएँ चन्दन का लेप, धूप, नवीन परिधान, आभूषण, दीपक, गाएँ और बैल अर्पित किए । अपने राजसी पद के योग्य विधि से उसने इस प्रकार प्रत्येक अतिथि की आराधना की । जब सब भोजन करके तृप्त हो गए और सुखपूर्वक बैठे हुए थे, तब बहुलाव भगवान् श्रीकृष्ण के सम्मुख आया और उसने भगवान् के श्रीचरणों को अपनी गोद में रख लिया और हाथों से उनको सहलाते हुए मधुर स्वर में भगवान् के यश का गान करने लगा ।

"प्रिय भगवन्! आप समस्त जीवों के परमात्मा हैं तथा सबके हृदय में निवास करने वाले साक्षी के रूप में आपको प्रत्येक जीव के कर्मों का ज्ञान है । जैसाकि हमारा कर्तव्य है हम सदैव आपके चरणकमलों का चिन्तन करते रहते हैं जिससे कि आपकी शाश्वत सेवा के मार्ग से भ्रष्ट न होते हुए हम सुरक्षित स्थिति में रह सकें । आपके चरणकमलों के प्रति हमारे निरन्तर चिन्तन के फलस्वरूप मुझ पर अपनी अहैतुकी कृपा करने के लिए आप स्वयं मेरे घर पधारे हैं । प्रिय भगवन्! हमने सुना है कि अपने विभिन्न कथनों के द्वारा आप इस बात की पुष्टि करते हैं कि आपके शुद्ध भक्त आपको भगवान् श्रीबलराम अथवा अपनी सनातन सेविका श्रीदेवी से भी अधिक प्रिय हैं । आपके भक्त आपको अपने प्रथम पुत्र ब्रह्माजी से भी अधिक प्रिय हैं और मुझे विश्वास है कि अपने दिव्य कथन को सिद्ध करने के लिए ही आप अत्यन्त कृपापूर्वक मेरे घर पधारे हैं । मैं कल्पना भी नहीं कर सकता हूँ कि कृष्णभावनामृत में संलग्न अपने भक्तों के प्रति आपकी अहैतुकी कृपा का ज्ञान होने पर भी किस प्रकार

लोग नास्तिक तथा आसुरी प्रवृति में रह सकते हैं । वे आपके चरणारविन्दों को कैसे विस्मृत कर सकते हैं?

"प्रिय भगवन्! हमें यह ज्ञात है कि आप इतने कृपालु तथा उदार हैं कि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत में संलग्न होने के लिए सर्वस्व त्याग देता है, तब आप इस सेवा के बदले में स्वयं अपने आपको दे देते हैं । भौतिक अस्तित्व के पापकर्मों में सड़ रही सभी बद्धात्माओं को सुधारने के अपने ध्येय को पूर्ण करने के लिए आप यदुवंश में प्रकट हुए हैं तथा आपका यह आविर्भाव पहले से ही समस्त जगत में प्रसिद्ध हो चुका है । प्रिय भगवन्! आप असीम दया, प्रेम व स्नेह के सागर हैं । आपका दिव्य रूप सच्चिदानन्द युक्त है । श्यामसुन्दर श्रीकृष्ण के रूप में आप सबका हृदय मोह लेते हैं । आपका ज्ञान असीम है तथा लोगों को यह शिक्षा देने के लिए कि भक्ति किस प्रकार करनी चाहिए, आपने अवतार नर-नारायण को भेजा है, जो कि बदरीनारायण में घोर तपस्या में संलग्न हैं । अतएव कृपापूर्वक अपने चरणकमलों में मेरा विनीत प्रणाम स्वीकार कीजिए । प्रिय भगवन्! मैं आप तथा आपके संगी ऋषियों एवं ब्राह्मणों से अपने घर पर ठहरने की विनती करता हूँ, जिससे कि कम से कम कुछ दिनों के लिए राजा निमि का यह परिवार आपके चरणकमलों की रज से पावन हो सके ।" भगवान् श्रीकृष्ण अपने भक्त की प्रार्थना अस्वीकार नहीं कर सके । इस प्रकार मिथिला नगरी तथा इसके समस्त नागरिकों को पावन करने के लिए ऋषियों सहित भगवान् ने कुछ दिनों तक निवास किया ।

इसी मध्य, वह ब्राह्मण भी उन्हीं भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके साथी ऋषियों का अपने घर पर स्वागत करके दिव्य आनन्द में निमग्न हो गया । अपने अतिथियों को उत्तम आसन देकर, अपने वस्त्र उछाल-उछालकर वह ब्राह्मण नृत्य करने लगा । निर्धन होने के कारण श्रुतदेव अपने विशिष्ट अतिथियों श्रीकृष्ण तथा ऋषियों को केवल गद्दे, पीढ़े तथा चटाई आदि ही आसन के रूप में दे सका, किन्तु उसने अपनी सामथ्र्य भर उनका स्वागत

किया । उसने भगवान् तथा ऋषियों की अति प्रशंसा की और उसने तथा उसकी पत्नी ने अतिथि का पद-प्रक्षालन किया । इसके पश्चात् उसने चरणामृत लेकर उसे अपने परिवार के सभी सदस्यों के ऊपर छिड़का । यद्यपि ऐसा प्रतीत होता था कि वह ब्राह्मण अत्यन्त निर्धन है, किन्तु उस समय वह सर्वाधिक भाग्यवान् था । जब श्रुतदेव भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके संगी ऋषियों का स्वागत कर रहा था, तब दिव्य आनन्द में उसे आत्मविस्मरण हो गया । भगवान् तथा उनके साथियों का स्वागत करने के उपरान्त ब्राह्मण अपनी सामथ्र्य के अनुसार फल, धूप, सुगन्धित मिट्टी, तुलसीदल, कुश तथा कमलपुष्प ले आया । ये सब पदार्थ महँगे नहीं थे तथा इन्हें सरलता से प्राप्त किया जा सकता था, किन्तु वे भक्ति तथा प्रेमपूर्वक अर्पित किए गए थे, अतएव भगवान् श्रीकृष्ण एवं उनके साथियों ने उन्हें अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक ग्रहण किया, क्योकि वह भोजन अत्यन्त भक्ति तथा प्रेमपूर्वक अर्पित किया गया था । जब भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके पार्षद इस प्रकार भोजन ग्रहण कर रहे थे, तब ब्राह्मण श्रुतदेव इस प्रकार विचार कर रहा था, "मैं गृहस्थ जीवन के एक गहरे अन्धे कूप में पतित हो गया हूँ और एक अत्यन्त अभागा व्यक्ति हूँ । फिर यह किस प्रकार सम्भव हुआ कि भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनके पार्षद महर्षिगण मेरे घर पधारे जिनकी उपस्थिति-मात्र किसी स्थान को इतनी पावन कर देती है जितना कि तीर्थस्थान?" जब ब्राह्मण इस प्रकार विचार कर रहा था, तो अतिथियों ने अपना भोजन समाप्त किया तथा वे अत्यन्त सुखपूर्वक बैठ गए । उसी समय ब्राह्मण श्रुतदेव, उसकी पत्नी तथा सन्तान एवं अन्य सम्बन्धी सम्मानित अतिथियों की सेवा करने के लिए वहाँ उपस्थित हुए । भगवान् श्रीकृष्ण के चरणकमलों का स्पर्श करते हुए ब्राह्मण ने कहना प्रारम्भ किया, "प्रिय भगवन्! आप पुरुषोत्तम हैं, श्रेष्ठतम व्यक्ति हैं । आप व्यक्त तथा अव्यक्त भौतिक सृष्टि से अतीत हैं । इस भौतिक जगत तथा बद्धात्माओं की गतिविधियों का आपके पद से कोई सम्बन्ध नहीं है । हम यह समझ सकते हैं कि ऐसा नहीं है कि आपने आज ही मुझे अपने दर्शन

दिये हैं । सृष्टि के प्रारम्भ से ही परमात्मा के रूप में आप समस्त जीवों के साथ हैं ।"

ब्राह्मण का यह कथन अत्यधिक शिक्षाप्रद है । यह एक तथ्य है कि अपने परमात्मा रूप में श्रीभगवान् ने महाविष्णु, गर्भादकशायी विष्णु तथा क्षीरोदकशायी विष्णु के रूप में इस भौतिक जगत की सृष्टि की । भगवान् इस शरीर में बद्धात्मा के साथ-साथ अत्यन्त सौहार्दपूर्ण रूप से स्थित हैं । अतएव प्रारम्भ से ही भगवान् प्रत्येक जीव के साथ हैं, किन्तु जीवन की अपनी भ्रामक धारणा के कारण जीव यह तथ्य समझ नहीं पाता है । किन्तु जब उसकी यह भ्रामक धारणा कृष्णभावनामृत में परिवर्तित हो जाती है, तब वह तत्काल ही समझ सकता है कि बद्धात्माओं को किमों से किशतकनेकेल श्रीकृष्ण किस प्रकार उनकी सहायता कर रह हैं ।

श्रुतदेव ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! आपने इस भौतिक जगत में इस प्रकार प्रवेश किया है, जैसे कि सुप्तावस्था में बद्ध-जीव असत्य तथा अस्थायी जगत का निर्माण कर लेता है । वह अनेक भ्रामक गतिविधियों में संलग्न हो जाता है, कभी वह राजा बन जाता है, कभी उसका वध होता है तथा कभी अज्ञात नगर की यात्रा करता है । ये सब अस्थायी व्यापार होते हैं । उसी भाँति भगवान्! आप भी एक अस्थायी सृष्टि का निर्माण करने के हेतु सुप्तावस्था में इस भौतिक जगत में प्रवेश करते हैं । आप अपनी व्यक्तिगत आवश्यकताओं के लिए ऐसा नहीं करते हैं, अपितु भोक्ता के रूप में जो आपकी नकल करना चाहते हैं उन बद्धात्माओं के लिए आप सृष्टि करते हैं । यद्यपि वे इच्छाएँ अस्थायी तथा भ्रामक हैं, तथापि उसकी इच्छाओं की पूर्ति के लिए, उसकी सहायता करने के लिए आप इस अस्थायी सृष्टि में प्रवेश करते हैं । इस प्रकार बद्ध-जीव आपके विशुद्ध भक्त के सम्पर्क में आता है तथा भक्ति अपना लेता है, तब वह शनै: शनै: भौतिक अस्तित्व के दूषणों से मुक्त हो जाता है । वह आपकी दिव्य लीलाओं का श्रवण भी प्रारम्भ करता है, आपकी दिव्य गतिविधियों

का यशगान करता है, मन्दिर में आपके शाश्वत रूप की उपासना करता है, आपकी स्तुति करता है तथा आपकी दिव्य स्थिति को समझने के लिए चर्चा करता है । तब वह धीरे-धीरे भौतिक अस्तित्व के दूषणों से मुक्त हो जाता है । उसका हृदय समस्त भौतिक धूल से मुक्त हो कर स्वच्छ हो जाता है । इस प्रकार शनै: शनै: आप उस भक्त के हृदय में दृष्टिगोचर होने लगते हैं । यद्यपि आप सदैव ही बद्ध-जीवों के साथ रहते हैं, किन्तु आप तभी उसके समक्ष प्रकट होते हैं जब कि वह भक्ति के द्वारा शुद्ध हो जाता है । वैदिक निर्देशों अथवा परम्परागत आचरण के द्वारा जो लोग सकाम कर्म द्वारा भ्रमित हो गए हैं तथा जो भक्ति नहीं अपनाते हैं, वे देहात्मबुद्धि के बाह्य सुखों पर मुग्ध हो जाते हैं । आप ऐसे व्यक्तियों के सम्मुख प्रकट नहीं होते हैं, अपितु आप उनसे दूर-दूर रहते हैं । किन्तु आपकी भक्ति में संलग्न रह कर आपके पावन नाम का निरन्तर जप कर के, जिसने अपने हृदय को शुद्ध कर लिया है, वह अत्यन्त सरलतापूर्वक यह समझ लेता है कि आप उसके सनातन तथा सतत संगी हैं । सुभद्रा-हरण तथा भगवान् श्रीकृष्ण का श्रुतदेव एवं बहुलाश्व के समीप जाना

"भगवन्! यह कहा जाता है कि अपने भत के हृदय में आसीन रहकर आप उसका मार्गदर्शन करते हैं, जिससे कि वह अत्यन्त शीघ्रता से आपके धाम लौट सकता है । आपके द्वारा किया गया यह प्रत्यक्ष मार्गदर्शन भत के हृदय में आपके अस्तित्व को प्रकट करता है । केवल एक भक्त ही अपने हृदय के अन्दर आपके अस्तित्व को तत्काल समझ सकता है, जबकि ऐसा व्यक्ति, जो जीवन की केवल देहात्मबुद्धि रखता है तथा इन्द्रियतृप्ति में संलग्न है और सदैव ही योगमाया के आवरण से आवृत रहता है नहीं समझ पाता है कि आप उसके अति निकट हैं, उसके हृदय में आसीन हैं । जो आपका भत नहीं है, वह आपको केवल अन्तिम काल (मृत्यु) के रूप में समझ सकता है । दोनों में वैसा ही भेद है जैसाकि बिल्ली द्वारा अपने बच्चों को मुख में रख कर ले जाने तथा एक चूहे को

अपने मुख में रख कर ले जाने में होता है । चूहे को बिल्ली के मुख में अपनी मृत्यु का अनुभव होता है, जबकि उसके बच्चे उसके मुख में मातृ-स्नेह का अनुभव करते हैं । उसी भाँति आप सबके लिए उपस्थित हैं, किन्तु जो भक्त नहीं हैं वे आपका अनुभव अन्तिम क्रूर मृत्यु के रूप में करते हैं, जबकि एक भक्त के लिए आप परम शिक्षक तथा दार्शनिक हैं । अतएव नास्तिक व्यक्ति ईश्वर की उपस्थिति को मृत्यु के रूप में समझता है, किन्तु भत सदैव ही अपने हृदय में भगवान् की उपस्थिति को समझता है । वह (भत) आपका आदेश ग्रहण करता है तथा भौतिक जगत के दूषणों से अप्रभावित रह कर उदार रूप से जीवन व्यतीत करता है ।

"भौतिक प्रकृति की गतिविधियों के आप परम नियन्ता तथा प्रबन्धक हैं । मानवों का नास्तिक वर्ग केवल भौतिक प्रकृति की गतिविधियों को ही देखता है । वह आदि परिप्रेक्ष्य के रूप में आपको ढूँढ नहीं पाता है । किन्तु एक भक्त भौतिक प्रकृति की प्रत्येक चेष्टा में आपका हाथ तत्काल देख सकता है । योगमाया का आवरण आपके भक्त के नेत्रों को नहीं ढँक सकता, किन्तु यह अभक्तों के नेत्रों को ढंक सकता है । अभक्त आपके प्रत्यक्ष दर्शन में असमर्थ रहता है, ठीक उसी प्रकार जैसे कि वह व्यक्ति, जिसकी दृष्टि बादलों के आवरण द्वारा अवरुद्ध हो जाती है, सूर्य को नहीं देख सकता, यद्यपि मेघों के ऊपर उड़ने वाले व्यक्ति सूर्य के चमकदार प्रकाश को यथारूप देख सकते हैं । प्रिय भगवन्! मैं आपको सादर प्रणाम करता हूँ । हे स्वयं कांतिमान् भगवन्! मैं आपका सनातन सेवक हूँ अतएव आप कृपापूर्वक मुझे आदेश दीजिए कि मैं आपकी क्या सेवा करूं । जब तक आप उसे दृष्टिगोचर नहीं होते हैं तब तक बद्धात्मा को त्रिदाह के रूप में भौतिक ताप के दुखों का अनुभव होता है, किन्तु कृष्णभावनामृत के विकास के द्वारा आप जैसे ही दृष्टिगोचर होते हैं वैसे ही भौतिक अस्तित्व के समस्त दुख साथ-साथ विनष्ट हो जाते हैं ।"

भगवान् श्रीकृष्ण का अपने भक्तों की ओर स्वाभाविक रूप से स्नेहपूर्ण झुकाव होता है । जब उन्होंने श्रुतदेव की विशुद्ध भक्ति की स्तुति का श्रवण किया तब वे अत्यन्त प्रसन्न हो गए । उन्होंने तत्काल ही श्रुतदेव का हाथ पकड़ कर उसे इस प्रकार सम्बोधित किया, "प्रिय श्रुतदेव ! तुमसे भेंट करने के लिए स्वयं यहाँ आकर उन महर्षियों तथा सन्तों ने तुम पर अत्यन्त कृपा की है । तुम्हें इस अवसर को अपना एक महान् सौभाग्य समझना चाहिए । वे इतने दयालु हैं कि मेरे साथ यात्रा कर रहे हैं और वे जहाँ भी जाते है उसे अपने चरणों की धूल के स्पर्श से तत्काल ही शुद्ध व उदात्त बना देते हैं । लोगों को देव-मन्दिर में जाने की आदत होती है । वे पवित्र तीर्थस्थानों की यात्रा भी करते हैं तथा इन गतिविधियों से दीर्घकाल तक सम्बन्ध रहने पर, स्पर्श तथा उपासना के द्वारा धीरे-धीरे वे पावन होते हैं, किन्तु महर्षियों तथा सन्तों का प्रभाव इतना महान् है कि उनके दर्शन से व्यक्ति तत्काल ही पूर्ण रूप से पवित्र हो जाता है ।

"इससे भी बढ़कर तथ्य यह है कि तीर्थस्थानों अथवा विभिन्न देवताओं की उपासना की पवित्रीकरण की शक्ति भी अन्ततः सन्तों की कृपा से ही प्राप्त होती है । कोई भी तीर्थस्थल सन्तजनों की उपस्थिति के कारण ही पवित्र स्थान बन जाता है । प्रिय श्रुतदेव! जब किसी व्यक्ति को ब्राह्मण का जन्म प्राप्त होता है, तब वह तत्काल ही मानवों में सर्वश्रेष्ठ बन जाता है । यदि ऐसा ब्राह्मण आत्मतुष्ट रहते हुए तपश्चर्या करता है, वेदों का अध्ययन करता है तथा ब्राह्मणों के कर्तव्यानुसार मेरी भक्ति-सेवा में संलग्न रहता है-दूसरे शब्दों में कहें तो, यदि एक ब्राह्मण वैष्णव बन जाता है, तब उसकी महानता कितनी अद्‌भुत होती है! चतुर्भुज नारायण का अपना रूप भी मुझे उतना अधिक प्रिय नहीं है जितना कि एक ब्राह्मण वैष्णव । ब्राह्मण का अर्थ है, "वह व्यक्ति जिसने वैदिक ज्ञान में समुचित दक्षता प्राप्त की है ।" एक ब्राह्मण पूर्ण ज्ञान का अधिकार चिह्न है तथा मैं समस्त देवताओं का पूर्ण प्रकाश हूँ । मानवों का अल्पबुद्धि वर्ग मुझे सर्वोच्च ज्ञान

के रूप में नहीं समझ पाता है । वह ब्राह्मण वैष्णवों के प्रभाव को भी नहीं समझ पाता है । अल्पबुद्धि मानव भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों से प्रभावित होते हैं और इस प्रकार मेरी तथा मेरे शुद्ध भक्तों की आलोचना करने का साहस करते हैं । एक ब्राह्मण वैष्णव अथवा ब्राह्मणत्व के स्तर को प्राप्त एक भक्त अपने हृदय में मेरा साक्षात्कार कर सकता है । अतएव यह निश्चित रूप से निष्कर्ष निकलता है कि समस्त सृष्टि तथा इसके विभिन्न लक्षण भगवान् की विभिन्न शक्तियों के प्रभाव हैं । इस प्रकार समस्त भौतिक प्रकृति तथा सम्पूर्ण भौतिक शक्ति की उसे एक स्पष्ट धारणा होती है तथा इस प्रकार का भक्त प्रत्येक क्रिया में मेरे अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु का दर्शन नहीं करता है ।

"प्रिय श्रुतदेव! तुम इन सब महर्षियों, ब्राह्मणों तथा सन्तजनों को मेरे प्रामाणिक प्रतिनिधियों के रूप में स्वीकार कर सकते हो । श्रद्धापूर्वक उनकी उपासना करते हुए तुम मेरी और अधिक सपरिश्रम उपासना करोगे । मैं अपनी प्रत्यक्ष उपासना से अपने भक्तों की उपासना को अधिक श्रेष्ठ मानता हूँ । यदि कोई मेरे भक्तों की उपासना किए बिना प्रत्यक्ष रूप से मेरी उपासना करने का प्रयास करता है, तब मैं ऐसी उपासना को स्वीकार नहीं करता हूँ । यदि ऐसी उपासना अत्यन्त ऐश्वर्य-पूर्वक की गई हो तब भी मैं उसे स्वीकार नहीं करता हूँ ।"

इस प्रकार ब्राह्मण श्रुतदेव तथा मिथिला के राजा दोनों ने भगवान् के निर्देशन में श्रीकृष्ण तथा उनके पार्षदों की उपासना की । उन्होंने आध्यात्मिक महत्ता के समान स्तर पर महर्षियों तथा सन्त ब्राह्मणों की उपासना की । ब्राह्मण तथा राजा दोनों ने अन्ततः भगवद्धाम गमन के परम लक्ष्य को प्राप्त किया । भक्त को भगवान् श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु का ज्ञान नहीं होता तथा श्रीकृष्ण अपने भत के प्रति अत्यन्त स्नेहमय हैं । भगवान् श्रीकृष्ण मिथिला में ब्राह्मण श्रुतदेव के घर एवं राजा बहुलाव के महल, दोनों ही स्थानों पर रहे । अपने दिव्य उपदेशों

के द्वारा उन पर अनुग्रह करने के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण अपनी राजधानी द्वारका लौट गए । इस घटना से हमें जो उपदेश प्राप्त होता है, वह यह है कि भगवान् ने राजा बहुलाव तथा ब्राह्मण श्रुतदेव को एकसमान माना, क्योंकि दोनों ही विशुद्ध भक्त थे । श्रीभगवान् के द्वारा पहचाने जाने के लिए यही वास्तविक योग्यता है । एक क्षत्रिय अथवा एक ब्राह्मण के परिवार में जन्म लेने पर झूठा गर्व करना आज के युग का प्रचलन बन गया है, अतएव हम पाते हैं कि जन्म के अतिरिक्त अन्य किसी योग्यता के न होते हुए लोग ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य होने का दावा करते हैं, किन्तु जैसाकि धर्मग्रन्थों में कहा गया है, कलों शूद्र-सम्भव-इस कलियुग में प्रत्येक व्यक्ति शूद्र है । इसका कारण संस्कार नामक शुद्धीकरण की प्रक्रियाओं का सम्पादन न होना है । इन संस्कारों का प्रारम्भ माता के गर्भाधान से होता है तथा ये संस्कार व्यक्ति की मृत्युपर्यन्त चलते रहते हैं, किसी भी व्यक्ति को जन्मजात अधिकार के आधार पर किसी विशेष वर्ण, विशेष रूप से उच्च वर्ण जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय अथवा वैश्य वर्ण के सदस्य के रूप में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता है । यदि गर्भाधानसंस्कार के द्वारा किसी का शुद्धीकरण नहीं किया जाता है, तो उसे तत्काल ही शूद्रों में वर्गीकृत किया जाता है, क्योंकि केवल शूद्र ही ऐसे हैं, जो यह शुद्धीकरण नहीं करते हैं । कृष्णभावनामृत की शुद्धीकरण की प्रक्रिया से रहित ऐन्द्रिय जीवन शूद्रों अथवा पशुओं की गर्भाधान प्रक्रिया-मात्र है । किन्तु कृष्णभावनामृत सर्वोच्च पूर्णता है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति एक वैष्णव के स्तर को प्राप्त कर सकता है । इसमें समस्त ब्राह्मणोचित योग्यताओं से युक्त होना भी सम्मिलित है । वैष्णवों को ऐसी शिक्षा दी जाती है, जिससे कि वे चारों प्रकार के पापकर्मों से मुक्त हो जाते हैं । ये चार पापकर्म हैं-अवैध स्त्री-पुरुष सम्पर्क, नशीले पदार्थों का सेवन, जुआ तथा मांस-भक्षण । इन प्रारम्भिक योग्यताओं के बिना कोई भी ब्राह्मणत्व के स्तर पर नहीं रह सकता और योग्य ब्राह्मण बने बिना व्यक्ति शुद्ध भक्त नहीं बन सकता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत " सुभद्रा-हरण तथा भगवान् श्रीकृष्ण का श्रुतदेव एवं बहुलाश्व के समीप जाना" नामक छियासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 87
मूर्तिमान् वेदों द्वारा स्तुति

विषयवस्तु को समझने में एक अत्यन्त महत्वपूर्ण विषय पर राजा परीक्षित ने श्रीशुकदेव गोस्वामी से प्रश्न किया । उनका प्रश्न था, 'साधारणत: वैदिक ज्ञान भौतिक जगत के त्रिगुणों की विषय-वस्तु से सम्बन्धित होता है, अतएव यह दिव्य तत्व की विषयवस्तु तक कैसे पहुँच सकता है, जो कि भौतिक त्रिगुणों की पहुँच से परे है? मन भौतिक है तथा शब्दों की ध्वनि एक भौतिक ध्वनि है, अतएव भौतिक ध्वनि के द्वारा मन के विचारों को व्यक्त करने वाला वैदिक ज्ञान दिव्य तत्व तक किस प्रकार पहुँच सकता है? किसी विषयवस्तु के विवरण में इसके उद्गम-स्रोत, इसके गुणों तथा इसकी गतिविधियों का विवरण देना आवश्यक होता है । भौतिक मन से विचार करने तथा भौतिक शब्दों को ध्वनित करने से ही ऐसा विवरण सम्भव हो सकता है । यद्यपि ब्रह्म अथवा परम सत्य भौतिक गुणों से परे है, किन्तु हमारी वाक्शक्ति भौतिक गुणों से परे नहीं जाती । अतएव आपके शब्दों द्वारा ब्रह्म अथवा परम सत्य का विवरण किस प्रकार सम्भव है? यह मेरी समझ में नहीं आता है कि भौतिक ध्वनि की ऐसी अभिव्यक्तियों से ब्रह्म को कैसे समझा जा सकता है?"

राजा परीक्षित के इस प्रकार प्रश्न करने का प्रयोजन श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा इस तथ्य की पुष्टि कराना था कि वेद अन्तत: परम सत्य का किस प्रकार वर्णन करते हैं । वे यह पुष्टि कराना चाहते थे कि अन्तत:

वेद परम सत्य को साकार बताते हैं अथवा निराकार? परम सत्य को समझने की प्रगति तीन रूपों में होती है-निराकार ब्रह्म, प्रत्येक प्राणी के हृदय में स्थित परमात्मा तथा अन्त में भगवान् श्रीकृष्ण ।

वेद हमें कर्मों के तीन विभागों के विषय में बताते हैं । एक को कर्मकाण्ड कहा जाता है अथवा वैदिक निर्देशों के अन्तर्गत किया गया कर्म जो शनैःशनैः व्यक्ति को शुद्ध कर के उसे अपना वास्तविक पद समझने के योग्य बनाता है । दूसरा ज्ञानकाण्ड है, यह परम सत्य को मीमांसात्मक रीति से समझने की प्रकिया है । तीसरा उपासना-काण्ड अथवा श्रीभगवान् तथा कभी-कभी देवताओं की भी उपासना करना है । श्रीभगवान् के साथ देवताओं के सम्बन्ध को समझते हुए वेदों में देवताओं की उपासना का आदेश दिया गया है । श्रीभगवान् के अनेक अंश हैं, कुछ को स्वांश अथवा उनका व्यक्तिगत विस्तार कहा जाता है । उनके कुछ अंशों को विभिन्नांश कहा जाता है । स्वांश विस्तारों को विष्णु-तत्व कहा जाता है । जबकि विभिन्नांश को इन्द्रियतृप्ति के हेतु भौतिक जगत की गतिविधियों में रखा जाता है, अतएव जैसाकि भ/वद्र/ता में कहा गया है, जो व्यक्ति विभिन्न प्रकार की इन्द्रियतृप्ति में अत्यधिक लिप्त हो जाते हैं उनको नियमित करने के लिए कभी-कभी देवोपासना का परामर्श दिया जाता है । उदाहरण के लिए, जिन व्यक्तियों को मांस-भक्षण का व्यसन है उनके लिए वेदों का आदेश है कि काली-पूजा के उपरान्त तथा कर्मकाण्ड के नियमों के अन्तर्गत एक बकरे की (अन्य किसी पशु की नहीं) बलि देने पर उपासक को मांस खाने की अनुमति दी जा सकती है । इसके पीछे विचार यह है कि व्यक्ति को मांसभक्षण के लिए प्रोत्साहित न किया जाए, किन्तु जो व्यक्ति ऐसा करने का आग्रह करता है उसे कुछ विशेष सीमित स्थितियों में मांस खाने की अनुमति दी जाए । उपासना करने से व्यक्ति शनैःशनैः अप्रत्यक्ष रूप से श्रीभगवान् को भी स्वीकार करने लगता है । अप्रत्यक्ष स्वीकृति को भगवद्गीता में 'अविधि' कहा गया

है । अविधि का अर्थ है अप्रामाणिक । देवताओं की उपासना प्रामाणिक नहीं है, अतएव निराकारवादी जन परम सत्य के निराकार रूप पर ध्यान एकाग्र करने पर बल देते हैं । राजा परीक्षित का प्रश्न था कि वैदिक ज्ञान का परम लक्ष्य क्या है-परम सत्य के निराकार रूप पर ध्यान एकाग्र करना अथवा साकार रूप पर ध्यान एकाग्र करना? परमेश्वर के साकार अथवा निराकार दोनों ही रूप हमारी भौतिक धारणाओं से परे हैं । परम सत्य का मूर्तिमान् वेदों द्वारा स्तुति निराकार रूप, ब्रह्मज्योति, श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह की किरणों के अतिरिक्त और कुछ नहीं है । श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह की ये किरणें ईश्वर की सृष्टि पर सर्वत्र विकीर्ण होती हैं । ज्योति का वह भाग, जो कि भौतिक मेघ से आच्छादित हो जाता है, तीनों भौतिक गुणों-सत्व, रजस तथा तमस-की क्रमबद्ध सृष्टि कहलाता है । भौतिक जगत कहलाने वाले इस मेघाच्छादित भाग में रहने वाले व्यक्ति फिर विवेचनात्मक रीति से किस प्रकार परम सत्य को समझ सकते हैं?

राजा परीक्षित के प्रश्न के उत्तर में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया कि एक शरीर से दूसरे में देहान्तरण में इन्द्रियतृप्ति तथा साथ ही साथ भौतिक स्थितियों से मुक्ति प्राप्त करने के प्रयोजन से, श्रीभगवान् ने मन, इन्द्रियों तथा प्राण-शक्ति की सृष्टि की है । दूसरे शब्दों में, इन्द्रियों, मन तथा प्राण-शक्ति का उपयोग इन्द्रियतृप्ति तथा एक शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण के हेतु किया जा सकता है अथवा इनका उपयोग मुक्ति प्राप्त करने के लिए भी किया जा सकता है । बद्धात्माओं को विधिविधानों के अन्तर्गत इन्द्रियतृप्ति का अवसर प्रदान करने के लिए ही वैदिक निर्देश हैं । इसके द्वारा ये निर्देश बद्धात्माओं को जीवन की उच्च स्थितियों तक प्रगाति करने का अवसर भी देते हैं । अन्तत: यदि चेतना निर्मल हो जाती है, तब व्यक्ति अपने मूल पद को प्राप्त कर लेता है तथा अपने घर, भगवान् के धाम, लौट जाता है ।

प्राण-शक्ति बुद्धिमय है । अतएव व्यक्ति को अपने मन तथा इन्द्रियों के ऊपर अपनी बुद्धि का उपयोग करना पड़ता है । जब बुद्धि के उचित उपयोग के द्वारा मन तथा इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं तब बद्धात्मा मुक्त हो जाती है । इसके विपरीत यदि मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण रखने के हेतु बुद्धि का उचित उपयोग नहीं किया जाता है, तब केवल इन्द्रियतृप्ति के लिए ही एक प्रकार के शरीर से दूसरे प्रकार के शरीर में बद्धात्मा के देहान्तर का क्रम चलता रहता है । श्रीशुकदेव गोस्वामी के उत्तर में एक और बात जो स्पष्ट रूप से कथित है, वह यह है कि मन, इन्द्रियों तथा वैयक्तिक प्राण-शक्ति की बुद्धि-रचना भगवान् ने की है । यह नहीं कहा गया है कि स्वयं जीवों की भी कभी रचना की गई थी । जिस प्रकार सूर्य के साथ-साथ उसकी किरणों के प्रकाशमान कणों का सदैव ही अस्तित्व रहता है, उसी भाँति श्रीभगवान् के अंशों के रूप में जीवों का अस्तित्व भी शाश्वत है । यद्यपि परमेश्वर के अंश के रूप में उनका शाश्वत अस्तित्व है तथापि बद्धात्माएँ कभी-कभी जीवन की भौतिक धारणा के आवरण में, अज्ञान के अंधकार में पड़ जाती हैं । समस्त वैदिक प्रक्रिया का उद्देश्य उस अंधकार (अज्ञान) की स्थिति का निराकरण करना ही है । अन्तत: जब बद्ध प्राणी का मन तथा इन्द्रियाँ पूर्ण रूप से निर्मल हो जाती हैं तब वह कृष्णभावानामृत नामक अपने मूल पद को प्राप्त कर लेता है और यही मोक्ष है ।

वेदान्त-सूत्र में, प्रथम सूत्र परम सत्य के विषय में प्रश्न करता है । अथातो ब्रह्म जिल/स/-परम सत्य की प्रकृति कैसी है? अगला सूत्र उत्तर देता है कि परम सत्य की प्रकृति यह है कि वह प्रत्येक वस्तु का मूल है । जीवन की इस भौतिक दशा में भी हम जो कुछ भी अनुभव करते हैं वह परम सत्य से ही उत्पन्न होता है । परम सत्य ने मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि की रचना की है । इसका अर्थ यह है कि परम सत्य मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि से रहित नहीं है । अन्य शब्दों में कहें, तो वह निराकार नहीं है ।

"रचना की" शब्द से ही बोध होता है कि वह दिव्य बुद्धि का स्वामी है । उदाहरण के लिए जब पिता को सन्तान प्राप्त होती है, तब शिशु की इन्द्रियाँ इसलिए होती हैं, क्योंकि पिता के पास भी इन्द्रियाँ हैं । शिशु का हाथ पैर से युक्त जन्म होता है, क्योंकि पिता हाथ पैर से युक्त है । अतएव कभी-कभी यह भी कहा जाता है कि मानव का निर्माण ईश्वर के स्वरूप के अनुसार ही किया गया है । अतएव परम सत्य दिव्य मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि से युक्त श्रीभगवान् है । जब भौतिक दूषण से रहित हो कर व्यक्ति का मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं, तब वह पुरुष के रूप में परम सत्य के आदि स्वरूप को समझ सकता है ।

बद्धात्मा की तमोगुण से रजोगुण तक, रजोगुण से सतीगुण तक शनै:शनै: प्रगति ही वैदिक प्रक्रिया है । वस्तुओं को यथारूप समझने के लिए सतोगुण में समुचित प्रकाश होता है । उदाहरणार्थ, भूमि से वृक्ष का विकास होता है तथा वृक्ष की लकड़ी से अग्नि प्रज्वलित की जाती है । उस प्रज्वलन की प्रक्रिया में हमें सर्वप्रथम धुआँ दीखता है । तब द्वितीय दशा ताप की होती है । तत्पश्चात् अग्नि दृष्टिगोचर होती है । जब अग्नि वास्तव में जल जाती है, तब हम विभिन्न प्रयोजनों के लिए इसका उपयोग कर सकते हैं, अतएव अग्नि ही अन्तिम लक्ष्य है । उसी भाँति जीवन के स्थूल भौतिक स्तर पर तमोगुण की अत्यधिक प्रधानता है । बर्बर स्तर से सभ्य जीवन तक पहुँच जाने पर उसे रजोगुण में अवस्थित कहा जाता है । बर्बरावस्था अथवा तमोगुण की अवस्था में इन्द्रियों की तृप्ति एक सुसंस्कृत रीति से की जाती है । किन्तु जब व्यक्ति की उन्नति सतीगुण तक हो जाती तब वह समझ सकता है कि विकृत चेतना से आच्छादित होने के कारण मन तथा इन्द्रियाँ केवल भौतिक गतिविधियों में संलग्न रहती हैं । जब इस विकृत चेतना का रूपान्तर क्रमिक रूप से कृष्णभावनामृत में हो जाता है, तब मोक्ष का मार्ग खुल जाता है । अतएव ऐसा नहीं है कि व्यक्ति इन्द्रियों तथा मन के माध्यम से परम सत्य तक

पहुँचने में असमर्थ है अपितु निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रदूषण की स्थूल स्थिति में मन, इन्द्रियाँ तथा बुद्धि परम सत्य के महत्व को नहीं समझ सकती हैं, किन्तु निर्मल हो जाने पर मन, बुद्धि तथा इन्द्रियाँ यह समझ सकती हैं कि परम सत्य क्या है । मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों को निर्मल करने की इस प्रक्रिया को भक्ति अथवा कृष्णभावनामृत कहते हैं ।

भगवद्गीता में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि वैदिक ज्ञान का प्रयोजन श्रीकृष्ण को समझना है तथा श्रीकृष्ण को भक्ति के द्वारा समझा जाता है । भक्ति का प्रारम्भ श्रीकृष्ण की शरण में आने की प्रक्रिया के साथ होना चाहिए । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है व्यक्ति को सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करना चाहिए, सदैव ही श्रीकृष्ण की प्रेमपूर्ण सेवा करनी चाहिए तथा सदैव ही श्रीकृष्ण की उपासना तथा उनको प्रणाम करना चाहिए । केवल इस प्रक्रिया के द्वारा ही व्यक्ति निस्सन्देह भगवान् के राज्य में प्रवेश कर सकता है ।

जब भक्ति की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति को सतीगुण में बोध हो जाता है, तब तमस तथा रजस के गुणों से वह मुक्त हो जाता है । आत्मन् शब्द ब्राह्मणत्व की योग्यता के उस स्तर की ओर इंगित करता है, जिस स्तर पर व्यक्ति को उपनिषदों के नाम से प्रसिद्ध वैदिक साहित्य के अध्ययन की अनुमति प्राप्त होती है । उपनिषदें विभिन्न प्रकार से परमेश्वर के दिव्य गुणों का वर्णन करती हैं । परम सत्य परमेश्वर को निर्गुण कहा जाता है । इसका यह अर्थ नहीं है कि उनमें कोई गुण नहीं है । यह कहने का अर्थ केवल यही है कि उनमें वे गुण हैं, जो बद्धजीवों के लिए अचिन्त्य हैं । सत्य, रज तथा तम के भौतिक गुणों के विपरीत परम सत्य के दिव्य गुणों को समझना ही उपनिषदों के अध्ययन का प्रयोजन है । वैदिक बोध का यही मार्ग है । सनकादिक चार कुमारों जैसे महर्षियों ने वैदिक ज्ञान के इन्हीं सिद्धान्तों का अनुसरण किया और शनैःशनैः वे निराकार बोध से परमेश्वर के साकार रूप की उपासना के स्तर तक पहुँच गए । अतएव

हमें महाजनों का अनुसरण करने का परामर्श दिया जाता है । श्रीशुकदेव गोस्वामी भी महापुरुषों में से एक हैं तथा महाराज परीक्षित के प्रश्न का उनका उत्तर प्रामाणिक है । जो ऐसे महापुरुषों के पदचिह्नों का अनुसरण करता है, वह निश्चय ही मोक्ष के मार्ग पर अत्यन्त सरलतापूर्वक चलता है और अन्ततः अपने घर, भगवान् के धाम, वापस लौट जाता है । इस मानव जीवन के लिए पूर्णता प्राप्त करने का यही मार्ग है ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने परीक्षित महाराज से आगे कहा, "प्रिय राजन्! मैं इस सम्बन्ध में एक उत्तम कथा सुनाता हूँ । यह कथा इसलिए महत्वपूर्ण है, क्योंकि इसका सम्बन्ध श्रीभगवान् नारायण से है । यह कथा नारायण ऋषि तथा देवर्षि नारद के मध्य एक वार्तालाप है । हिमालय पर्वतमालाओं में स्थित बदरिकाश्रम में आज भी नारायण ऋषि निवास करते हैं तथा उन्हें नारायण के अवतार के रूप में स्वीकार किया जाता है । एक बार जब देवताओं में संन्यासी तथा महान् भक्त देवर्षि नारद भिन्न-भिन्न लोकों की यात्रा कर रहे थे, तब उन्हें बदरिकाश्रम में नारायण ऋषि से स्वयं भेंट करने तथा उन्हें प्रणाम करने की इच्छा हुई । श्रीभगवान् के अवतार ये महर्षि नारायण सृष्टि के प्रारम्भ से ही कठोर तप तथा व्रत कर रहे थे । इनके इस प्रकार तपस्या करने का उद्देश्य भारतवर्ष के निवासियों को भगवान् के धाम लौटने तथा सर्वोच्च पूर्णता की स्थिति को प्राप्त करने की शिक्षा देना था । उनका व्रत तथा तप मानवों के लिए आदर्श आचरण है ।"

बदरिकाश्रम हिमालय की पर्वतश्रृंखला के उत्तरी भाग में स्थित है तथा यह स्थल सदैव ही हिमाच्छादित रहता है । ग्रीष्म ऋतु में अभी भी धार्मिक प्रवृत्ति के भारतीय वहाँ की यात्रा करते हैं, क्योंकि इस ऋतु में हिमपात अधिक प्रबल नहीं होता है । एक बार भगवान् के अवतार नारायण ऋषि अनेक भक्तों के मध्य कल्पग्राम नामक ग्राम में बैठे हुए थे । उनके समीप बैठे हुए ऋषिगण साधारण ऋषि नहीं थे । उसी समय

देवर्षि नारद भी वहाँ प्रकट हुए । नारायण ऋषि को प्रणाम करने के उपरान्त नारदजी ने नारायण ऋषि से वही प्रश्न किया, जो राजा परीक्षित ने शुकदेव गोस्वामी से पूछा था । तब नारायण ऋषि ने भी अपने पूर्वगामियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करते हुए उत्तर दिया । उन्होंने एक कथा सुनाई कि किस प्रकार जनलोक नामक लोक में इसी प्रश्न पर विचार-विमर्श हुआ था । जनलोक स्वर्गलोक के ग्रहों, जैसे चन्द्र, शुक्र आदि, से ऊपर है । इस लोक में महर्षि तथा सन्तजन निवास करते हैं तथा वे भी ब्रह्म तथा उनके वास्तविक स्वरूप को समझने सम्बन्धी इसी बिन्दु पर विचार-विमर्श कर रहे थे ।

महर्षि नारायण ने कथन प्रारम्भ किया, "प्रिय नारद! मैं तुम्हें एक ऐसी कथा बताऊँगा, जो दीर्घकाल पूर्व घटित हुई थी । स्वर्गलोक के निवासियों की एक विशाल सभा थी जिसमें लगभग सभी महत्वपूर्ण ब्रह्मचारियों जैसे-सनत, सनन्दन, सनक तथा सनातन चारों कुमारों-ने भाग लिया । उन्होंने परम सत्य, ब्रह्म को समझने की विषयवस्तु पर विचार-विमर्श किया । तुम उस सभा में उपस्थित नहीं थे, क्योंकि तुम श्वेतद्वीप पर निवास करने वाले मेरे अंश अनिरुद्ध के दर्शनार्थ गए हुए थे । इस सभा में समस्त महर्षियों तथा ब्रह्मचारियों ने उस बिन्दु पर विशद विचार-विमर्श किया जिसके विषय में तुमने मुझसे प्रश्न किया है । यह विचार-विमर्श अत्यन्त रोचक था । यह विचार-विमर्श इतना सुन्दर था कि वेद भी इसमें उठाए हुए गूढ़ प्रश्नों का उत्तर देने में असमर्थ थे ।"

नारायण ऋषि ने नारदजी को बताया कि उनके द्वारा उठाये गए प्रश्न पर ही जनलोक की सभा में विचार-विमर्श किया गया था । यही परम्परा के माध्यम से अथवा गुरु-परम्परा से समझने का मार्ग है । महाराज परीक्षित को श्रीशुकदेव गोस्वामी के समीप भेजा गया था । श्रीशुकदेव गोस्वामी ने यह विषय नारदजी से पूछा, जिन्होंने इस प्रश्न को नारायण ऋषि के समक्ष रखा था । नारायण ऋषि ने इस विषय को जनलोक में

उच्चतर विशेषज्ञों के समक्ष प्रस्तुत किया, जहाँ महान् कुमारों—सनत, सनातन, सनक तथा सनन्दन के मध्य इस विषय पर विचार-विमर्श हुआ । ये चारों ब्रह्मचारी वेदों तथा शास्त्रों के माने हुए पण्डित हैं । उनके अनन्त ज्ञान के भण्डार तथा उनके व्रत तथा तप का प्रदर्शन उनके उत्कृष्ट तथा आदर्श चरित्र के द्वारा होता है । वे व्यवहार में अत्यन्त सौजन्यपूर्ण हैं तथा उनके लिए मित्रों शुभैषियों तथा शत्रुओं में कोई अन्तर नहीं है । उदासीन पद पर स्थित होने के कारण कुमारों जैसी विभूतियाँ समस्त भौतिक विचारों से ऊपर होती हैं । वे भौतिक द्वैत के सम्बन्ध में सदैव ही तटस्थ रहते हैं । चारों भाइयों के मध्य हुए विचार-विमर्श में सनन्दन का चयन वक्ता के रूप में किया गया तथा अन्य भाई उनके वचनों का श्रवण करने हेतु श्रोता बन गए । सनन्दनजी ने कहा, "समस्त सृष्टि प्रलय के पश्चात् अपने बीज रूप में गर्भादकशायी विष्णु के विग्रह में प्रवेश कर जाती है । उस समय भगवान् अत्यन्त दीर्घकाल तक निद्रामग्न रहते हैं । जब पुनः सृष्टि की आवश्यकता होती है, तब मूर्तिमान् वेद भगवान् के चारों ओर एकत्र हो कर उनका यशगान करना प्रारम्भ करते हैं । वे भगवान् की अद्‌भुत दिव्य लीलाओं का वर्णन करते हैं । यह ठीक एक राजा के समान ही है । जब राजा प्रात:काल निद्रामग्न होता है, तब उसके द्वारा नियुक्त चारणगण उसके शयन-कक्ष में आकर उसके वीरतापूर्ण कार्यों का गान करना प्रारम्भ करते हैं । अपने यशस्वी कार्यों के विषय में श्रवण करते हुए राजा धीरे-धीरे जग जाता है ।

"वेदों के गायक अथवा मूर्तिमान वेद इस प्रकार गायन करते हैं-"हे अजेय ! आप श्रीभगवान् हैं । न कोई आपके बराबर है न आपसे महान् है । अपने कार्यों में आपसे अधिक यशस्वी और कोई नहीं हो सकता है । आप यशस्वी हों! आप यशस्वी हों! आपकी अपनी अलौकिक प्रकृति के द्वारा सभी षडैश्वर्य आपके अधिकार में हैं । आप समस्त बद्धात्माओं को माया के फन्दे से मुक्त कराने में सक्षम हैं । हे भगवन्! हम आपसे

बारम्बार प्रार्थना करते हैं कि आप कृपापूर्वक ऐसा ही कीजिए । आपके अंश होने के कारण समस्त जीव स्वाभाविक रूप से आनन्दमय, सनातन तथा ज्ञान में परिपूर्ण (सच्चिदानन्दमय) हैं, किन्तु अपने ही दोष के कारण वे परम भोक्ता बनने के प्रयास में आपका अनुकरण करने की चेष्टा करते हैं । इस प्रकार वे आपकी अवज्ञा करके अपराधी बन जाते हैं । उनके अपराधों के कारण आपकी भौतिक शक्ति ने उन्हें अपने नियंत्रण में ले लिया है । इस प्रकार उनके सत्, चित् तथा आनन्द के अलौकिक गुणों पर भौतिक त्रिगुणों के मेघों ने आवरण डाल दिया है । भौतिक त्रिगुणों से निर्मित यह सृष्टि बद्धात्माओं के लिए एक कारागृह की भाँति ही है । भौतिक बन्धन से मुक्त होने के लिए बद्धात्माएँ कठोर संघर्ष कर रही हैं । उनके जीवन की विभिन्न परिस्थितियों के अनुरूप उन्हें विभिन्न प्रकार के व्यापार सौंप दिए गए हैं । किन्तु समस्त व्यापार आपके ज्ञान पर ही आधारित हैं । आपकी दया द्वारा प्रेरित होने पर ही पुण्यकर्म किए जा सकते हैं । अतएव आपके चरणकमलों की शरण ग्रहण किए बिना व्यक्ति भौतिक शक्ति के प्रभाव पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता है । वस्तुत: मूर्तिमान् वैदिक ज्ञान के रूप में हम सदैव ही आपकी सेवा में संलग्न रहते हैं । यह सेवा आपको समझने में बद्धात्माओं की सहायता करना है ।"

मूर्तिमान वेदों की यह स्तुति इस तथ्य की पुष्टि करती है कि वेद श्रीकृष्ण को समझने में बद्धात्माओं की सहायता के लिए ही हैं, यही वेदों का प्रयोजन है । समस्त श्रुतियों अथवा मूर्तिमान् वेदों ने बारम्बार 'जय ! जय !" का गान करते हुए भगवान् की स्तुति की । इससे संकेत मिलता है कि भगवान् के यशों के लिए उनकी स्तुति की जाती है । उनके समस्त यशों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण माया के बन्धन से बद्धात्माओं को छुड़ाने की उनकी अहैतुकी दया ही है ।

विभिन्न प्रकार की योनियों में असंख्य जीव हैं जिनमें से कुछ चल हैं तथा कुछ अचल । इन जीवों का यह बद्ध जीवन श्रीभगवान् से अपने

सनातन सम्बन्ध के विस्मरण के कारण ही है । जब श्रीकृष्ण का अनुकरण करते हुए जीव भौतिक शक्ति पर प्रभुता प्राप्त करना चाहता है, तब तत्काल ही भौतिक शक्ति उसे बन्दी बना लेती है तथा उसे विभिन्न प्रकार की चौरासी लाख योनियों में से अपने इच्छानुसार चुनाव करने को कहती है । यद्यपि वह भौतिक अस्तित्व के त्रिगुणों को सहन कर रहा होता है, तथापि माया बद्धजीव झूठमूठ स्वयं को समस्त दृश्य जगत का स्वामी समझने लगता है । जीवात्मा भौतिक त्रिगुणों का प्रतिनिधित्व करने वाले भौतिक गुणों के प्रभाव में इतना जकड़ा हुआ रहता है कि वह उस पर विजय नहीं प्राप्त कर सकता है, जब तक परमात्मा का अनुग्रह उसे प्राप्त न हो । किन्तु भौतिक प्रकृति परमेश्वर के नियंत्रण के अधीन कार्य कर रही है, अतएव भगवान् इसके अधिकार क्षेत्र से परे हैं । भगवान् को छोड़ कर ब्रह्मा से लेकर एक चींटी तक समस्त जीव भौतिक प्रकृति के सम्पर्क से विजित हो जाते हैं ।

धन, बल, यश, सौन्दर्य, ज्ञान तथा वैराग्य के षडैश्वयों के पूर्ण रूप से स्वामी होने के कारण केवल भगवान् ही भौतिक प्रकृति के प्रभाव से परे हैं । जब तक जीव कृष्णभावनामृत में स्थित नहीं होता है, वह श्रीभगवान् के समीप नहीं जा सकता है । फिर भी अपनी सर्वज्ञता के द्वारा भगवान् परमात्मा के रूप में अन्दर से आदेश दे सकते हैं । भगवद्गीता में भगवान् परामर्श देते हैं, "तुम जो कुछ भी करो मेरे निमित करो, तुम जो भी भोजन करो प्रथम उसे मुझे अर्पित करो, जो भी दान दो प्रथम मुझको दो, तुम जो भी व्रत या तप सम्पादित करना चाहो उसे मेरे निमित्त करो ।" इस प्रकार कर्मियों को धीरे-धीरे कृष्णभावनामृत का विकास करने का निर्देश दिया गया है । इसी के समान दार्शनिकों को श्रीकृष्ण ने ब्रह्म तथा माया के मध्य भेद करने के द्वारा शनै:शनै: अपने समीप आने का निर्देश दिया है । अन्तत: जब व्यक्ति का ज्ञान परिपक्व हो जाता है, तब वह श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण कर लेता है । जैसाकि श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है,

"जन्म-जन्मांतरों के पश्चात् बुद्धिमान दार्शनिक मेरी शरण में आ जाता है ।" योगियों को भी अपने अन्तर्मन में श्रीकृष्ण पर अपना ध्यान एकाग्र करने का निर्देश दिया गया है । इस प्रकार की कृष्णभावनामृत की निरन्तर प्रक्रिया के द्वारा योगी भौतिक शक्ति के पाश से मुक्त हो सकता है । किन्तु जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, भक्तजन प्रारम्भ से ही प्रेम व स्नेहपूर्वक भक्ति-सेवा में संलग्न रहते हैं, अतएव भगवान् उनका ऐसा मार्गदर्शन करते है कि वे बिना कठिनाई के तथा मार्गच्युत हुए बिना भगवान् के समीप पहुँच सकें । जीव केवल भगवान् को कृपा द्वारा ही ब्रह्म, परमात्मा तथा भगवान् की वस्तुस्थिति को समझ सकता है ।

मूर्तिमान वेदों के कथन से यह स्पष्ट प्रमाण प्राप्त होता है कि केवल श्रीकृष्ण को समझने के लिए ही वैदिक साहित्य को प्रस्तुत किया गया है । भ/वद्गीता में इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि समस्त वेदों के माध्यम से केवल श्रीकृष्ण को ही समझना है । श्रीकृष्ण सदैव ही भोता हैं, चाहे भौतिक जगत में हो अथवा आध्यात्मिक जगत में, क्योंकि वे परम भोता हैं तथा उनके लिए भौतिक जगत तथा आध्यात्मिक जगत के मध्य कोई भेद नहीं है । साधारण जीवों के लिए भौतिक जगत एक प्रतिबन्ध अथवा अवरोध है, क्योंकि वे इसके नियंत्रण में हैं, किन्तु श्रीकृष्ण भौतिक जगत के नियन्ता हैं, अतएव इसके प्रतिबन्धों अथवा अवरोधों से उनका कोई सरोकार नहीं होता है । अतएव उपनिषदों के विभिन्न भागों में वेद घोषणा करते हैं, 'ब्रह्म सनातन है, वह समस्त ज्ञान तथा समस्त आनन्द से पूर्ण है, किन्तु एक श्रीभगवान् प्रत्येक जीव के हृदय में निवास करते हैं ।" अपनी सर्वव्यापकता के कारण वे न केवल जीवों के हृदय में प्रवेश करने में समर्थ हैं, अपितु वे अणुओं में भी प्रवेश करने में सक्षम हैं । परमात्मा के रूप में वे जीवों की समस्त गतिविधियों के नियन्ता हैं । वे उन सबमें निवास कर रहे हैं तथा उनके कार्यों के साक्षी हैं । वे जीवों को उनके इच्छानुसार कार्य करने देते हैं तथा उन्हें उनके विभिन्न कर्मों का फल देते

हैं । वे सभी पदार्थों की प्राण-शक्ति हैं, तथापि वे त्रिगुणातीत हैं । वे सर्वज्ञ हैं, वे प्रत्येक वस्तु के निर्माण में कुशल हैं तथा अपने उच्चतर स्वाभाविक ज्ञान के कारण वे सबको अपने अधीन कर सकते हैं । इस भाँति वे प्रत्येक वस्तु के स्वामी हैं । कभी-कभी वे भूतल पर भी प्रकट होते हैं, किन्तु साथ ही साथ वे समस्त पदार्थों में उपस्थित हैं । अनेक रूपों में अपना विस्तार करने की इच्छा से उन्होंने भौतिक शक्ति पर दृष्टिनिक्षेप किया और इस प्रकार असंख्य जीवों का प्राकटय हुआ । प्रत्येक वस्तु की रचना उनकी परा शक्ति के द्वारा हुई है तथा उनकी सृष्टि में प्रत्येक वस्तु पूर्णत: निर्दोष रूप से रचित प्रतीत होती है ।

अतएव जिन्हें इस भौतिक जगत से मोक्ष प्राप्त करने की आकांक्षा है, उन्हें श्रीभगवान् की उपासना करनी चाहिए जो कि समस्त कारणों के परम कारण हैं । वे मिट्टी के पिंड के समान हैं, जिसमें से अनेक प्रकार के मिट्टी के पात्रों का निर्माण होता है । वे पात्र मिट्टी से बने होते हैं, वे मिट्टी में ही आधारित होते हैं तथा उनके नष्ट होने के पश्चात् उनके तत्व अन्ततः पुन: मिट्टी पर ही मिल जाते हैं । यद्यपि श्रीभगवान् समस्त प्रकार के प्राकटयों के मूल कारण हैं तथापि निराकारवादी विशेष रूप से वेदों के कथन, सव खल्विद ब्रह्म-'प्रत्येक वस्तु ब्रह्म हैं" पर बल देते हैं । निराकारवादी ब्रह्म के परम कारण से निकलने वाले विभिन्न प्रकार के प्राकटयों का विचार नहीं करते हैं । वे केवल इसी पर विचार करते हैं कि प्रत्येक वस्तु का उद्गम ब्रह्म से होता है तथा विनाश के बाद वह ब्रह्म में विलीन हो जाती है तथा प्राकटय की मध्यवर्ती स्थिति भी ब्रह्म है । यद्यपि मायावादी विश्वास करते हैं कि अपने प्राकटय से पूर्व क्रमबद्ध संसार ब्रह्म में था, सृष्टि के पश्चात् भी यह ब्रह्म में रहता है तथा विनाश के पश्चात् यह ब्रह्म में विलीन हो जाता है, किन्तु उन्हें यह ज्ञात नहीं है कि ब्रह्म क्या है । ब्रह्म-सहित7 में इस तथ्य का स्पष्ट रूप से वर्णन किया गया हैजीव, अन्तरिक्ष, काल तथा अग्नि, गगन, जल एवं मन जैसे भौतिक तत्वों से ही

समग्र सृष्टि निर्मित है । यह सृष्टि भूभव, स्व. के नाम से विख्यात है तथा गोविन्द ने इसका विस्तार किया है । यह गोविन्द की शक्ति के बल पर पनपती है तथा प्रलय के उपरान्त गोविन्द में प्रवेश करके उनमें ही आश्रय पाती है । अतएव ब्रह्माजी कहते हैं-"मैं आदि भगवान् श्री गोविन्द की उपासना करता हूँ, वे ही समस्त कारणों के कारण हैं ।"

ब्रह्म शब्द से महान्तम तथा सबके पालनकर्ता का संकेत प्राप्त होता है । निर्विशेषवादी आकाश की महानता की ओर आकृष्ट होते हैं, किन्तु अपनी अल्पज्ञता के कारण वे श्रीकृष्ण की महानता की ओर आकृष्ट नहीं होते हैं, किन्तु अपने व्यावहारिक जीवन में हम व्यक्ति-विशेष की महानता द्वारा तो आकर्षित होते हैं, किन्तु किसी पर्वत की महानता द्वारा नहीं । वस्तुत: ब्रह्म शब्द का प्रयोग केवल श्रीकृष्ण के लिए ही किया जा सकता है । अतएव भगवद्गीता में अर्जुन ने स्वीकार किया है कि भगवान् श्रीकृष्ण परमब्रह्म हैं, अथवा वे प्रत्येक वस्तु के परम आश्रय हैं ।

अपने अनन्त ज्ञान, अनन्त शक्ति, अनन्त बल, अनन्त प्रभाव, अनन्त सौन्दर्य तथा अनन्त त्याग के कारण श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं । अतएव ब्रह्म शब्द केवल श्रीकृष्ण के लिए ही प्रयुक्त हो सकता है । अर्जुन इस तथ्य की पुष्टि करते हैं कि श्रीकृष्ण के दिव्य विग्रह से विकीर्ण होने वाली किरणों की ज्योति ही निराकार ब्रह्म है, अतएव श्रीकृष्ण ही परब्रह्म हैं । प्रत्येक वस्तु ब्रह्म पर आश्रित है, किन्तु ब्रह्मा स्वयम् श्रीकृष्ण पर आश्रित हैं । अतएव श्रीकृष्ण परब्रह्म हैं । भौतिक तत्वों को श्रीकृष्ण की हीन शक्तियाँ माना जाता है, क्योंकि उनकी परस्पर क्रिया के द्वारा सृष्टि का निर्माण होता है । यह सृष्टि श्रीकृष्ण पर आधारित है तथा प्रलय के उपरान्त यह श्रीकृष्ण की सूक्ष्म शक्ति के रूप में पुन: उनके शरीर में प्रवेश करती है । अतएव सृष्टि के विस्तार तथा प्रलय दोनों के कारण श्रीकृष्ण हैं ।

सव खल्विदं ब्रह्म का अर्थ है कि प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण है । यही महाभागवतों की दृष्टि है । वे प्रत्येक वस्तु का अवलोकन श्रीकृष्ण के सम्बन्ध में करते हैं ।

निर्विशेषवादी तर्क करते हैं कि श्रीकृष्ण ने स्वयं को अनेक रूपों में परिवर्तित कर लिया है, अतएव प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण है तथा प्रत्येक वस्तु की उपासना उनकी ही उपासना है । इस कुतर्क का उत्तर श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में दिया है, "यद्यपि प्रत्येक वस्तु श्रीकृष्ण की शक्ति का ही एक परिवर्तित रूप है, किन्तु वे सर्वत्र उपस्थित नहीं हैं । वे एक साथ उपस्थित भी है तथा अनुपस्थित भी हैं ।" अपनी शक्ति के द्वारा वे प्रत्येक स्थान पर उपस्थित हैं, किन्तु शक्तिमान के रूप में वे सर्वत्र उपस्थित नहीं हैं । यह एक साथ होने वाली उपस्थिति तथा अनुपस्थिति हमारी वर्तमान इन्द्रियों के लिए अचिन्त्य है । किन्तु ईशोपनिषद् के प्रारम्भ में एक स्पष्ट व्याख्या की गई है, जिसमें कहा गया है कि परमेश्वर इतने पूर्ण हैं कि यद्यपि अनन्त शक्तियाँ तथा उनके रूपान्तर श्रीकृष्ण से निकल रहे हैं, तथापि श्रीकृष्ण के व्यक्तित्व में रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं होता है । श्रीकृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं, अतएव बुद्धिमान व्यक्तियों को उनके चरणकमलों की शरण ग्रहण करनी चाहिए । श्रीकृष्ण प्रत्येक व्यक्ति को केवल अपनी ही शरण में आने का परामर्श देते हैं तथा वेदों की शिक्षा का मार्ग भी यही है, चूँकि समस्त कारणों के कारण श्रीकृष्ण हैं, अतएव विधि-विधानों का पालन करके सभी प्रकार के ऋषि-मुनि उनकी उपासना करते हैं । जब भी ध्यान करने की आवश्यकता होती है, तब महान् व्यक्ति अन्तर्मन में स्थित श्रीकृष्ण के दिव्य विग्रह पर ही ध्यान करते हैं । इस रीति से महान् व्यक्तियों का मन सदैव ही श्रीकृष्ण में संलग्न रहता है । उनके मन श्रीकृष्ण में लीन रहते हैं, अतएव स्वाभाविक ही है कि मुग्ध भक्त केवल श्रीकृष्ण के विषय में वार्तालाप करते हैं ।

श्रीकृष्ण के विषय में वार्तालाप अथवा गायन को कीर्तन कहा जाता है । भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु ने कीतनीय, सदा हरि को श्रेष्ठ बताया है । इसका अर्थ है श्रीकृष्ण के विषय में ही चिन्तन तथा वार्ता करनी चाहिए, अन्य किसी वस्तु के विषय में नहीं । इसे ही कृष्णभावनामृत कहते हैं । यह इतना उत्कृष्ट है कि जो कोई भी इस विधि को अपनाता है, वह मोक्ष की धारणा से भी कहीं अधिक आगे जीवन की सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त कर लेता है । अतएव भगवद्गीता में श्रीकृष्ण सबको परामर्श देते हैं कि वे सदैव उनका चिन्तन करें, सदैव श्रीकृष्ण की भक्ति करें, उनकी उपासना करें तथा उन्हें ही प्रणाम करें । इस रीति से एक भक्त पूर्णतया श्रीकृष्णमय हो जाता है तथा सदैव ही कृष्णभावनामृत में स्थित होने के कारण वह अन्ततः श्रीकृष्ण के समीप लौट जाता है ।

यद्यपि वेदों ने श्रीकृष्ण के अंश रूप में विभिन्न देवों की उपासना को भी उपयुक्त कहा है, किन्तु यह समझ लेना चाहिए कि ये निर्देश अल्पबुद्धि वालों के लिए हैं । ये निर्देश उनके लिए हैं, जिन्हें अभी भी भौतिक इन्द्रिय-भोग का आकर्षण है । किन्तु जो व्यक्ति वास्तव में मानव जीवन के ध्येय को पूर्णतः परिपूर्ण करना चाहता है उसे केवल श्रीकृष्ण की उपासना करनी चाहिए । इससे यह विषय अत्यन्त सरल हो जाएगा तथा उसकी मानव योनि की पूर्णता उसे निश्चित रूप से प्राप्त होगी । यद्यपि आकाश, जल तथा पृथ्वी सभी इस भौतिक जगत के अंश हैं, तथापि आकाश अथवा जल में खड़े होने की अपेक्षा जब व्यक्ति ठोस पृथ्वी पर खड़ा होता है, तब उसकी स्थिति अधिक सुरक्षित होती है । यद्यपि विभिन्न देवता श्रीकृष्ण के ही अंश हैं, तथापि एक बुद्धिमान व्यक्ति उनकी शरण ग्रहण नहीं करता है । वह कृष्णभावनामृत की ठोस धरती पर खड़ा होता है । कृष्णभावनामृत का आश्रय उसकी स्थिति को सुदृढ़ और सुरक्षित बना देता है ।

निर्विशेषवादी कभी-कभी यह उदाहरण देते हैं कि यदि कोई एक शिला अथवा लकड़ी के टुकड़े पर खड़ा होता है, तब निश्चय ही वह धरातल पर खड़ा होता है, क्योंकि शिला अथवा लकड़ी दोनों ही धरातल पर टिके हुए हैं । किन्तु इसके उत्तर में यह कहा जा सकता है कि यदि व्यक्ति सीधे धरातल पर खड़ा हो तब वह धरती पर टिके हुए पत्थर अथवा लकड़ी पर खड़े होने की अपेक्षा अधिक सुक्षित होता है । दूसरे शब्दों में, परमात्मा अथवा निराकार ब्रह्म की शरण ग्रहण करना उतना सुरक्षित मार्ग नहीं है जितना कि कृष्णभावनामृत में प्रत्यक्ष रूप से श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करना । अतएव ज्ञानियों तथा योगियों की स्थिति उतनी सुरक्षित नहीं है जितनी कि कृष्णभक्तों की स्थिति है । अतएव भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने परामर्श दिया है कि केवल पागल व्यक्ति ही देवताओं की उपासना का मार्ग अपनाता है । निराकार ब्रह्म का पक्ष लेने वाले व्यक्तियों के विषय में श्रीमद्रा/वत का कहना है, "प्रिय भगवन्! जो व्यक्ति बौद्धिक तकों के द्वारा स्वयं को युक्त मानते हैं, वे अभी तक प्रकृति के प्रदूषण से निर्मल नहीं हुए हैं, क्योंकि वे आपके चरणारविन्दों की शरण ग्रहण करने में असमर्थ हैं । यद्यपि निराकार ब्रह्म में स्थित होने की दिव्य स्थिति तक उनका उत्कर्ष हो जाता है, तथापि वे उस श्रेष्ठ स्थान से निश्चय ही स्खलित हो जाते हैं, क्योंकि उन्होंने आपके चरणकमलों की कामना करने की उपेक्षा की है ।" अतएव भगवान् श्रीकृष्ण परामर्श देते हैं कि देवोपासक लोग अत्यन्त बुद्धिमान नहीं हैं, क्योंकि वे केवल अस्थायी तथा नश्वर फल ही प्राप्त करते हैं । उनके प्रयास अल्पबुद्धि मानवों के प्रयास हैं । किन्तु भगवान् यह विश्वास दिलाते हैं कि उनके भक्तों को स्खलित होने का कोई भय नहीं है ।

मूर्तिमान वेदों ने आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! सभी दृष्टिकोणों से विचार करते हुए यदि किसी को अपने से श्रेष्ठ किसी की उपासना करनी हो, तब सद्व्यवहार के कारण व्यक्ति को आपके पदकमलों की उपासना

को ही अपनाना चाहिए । व्यक्ति को आपके पदकमलों की ही उपासना करनी चाहिए, क्योंकि आप ही सृष्टि, पालन तथा प्रलय के परम नियन्ता हैं । आप भूर् भुवर् तथा स्वर् नामक तीनों लोकों के नियन्ता हैं । आप उच्चतर तथा निम्नतर चौदह लोकों तथा भौतिक त्रिगुणों के नियन्ता हैं । देवता तथा आध्यात्मिक ज्ञान में योग्यता प्राप्त व्यक्ति सदैव ही आपकी दिव्य लीलाओं के विषय में श्रवण तथा कीर्तन करने में संलग्न रहते हैं, क्योंकि आपकी लीलाओं के श्रवण व कीर्तन में पापों के एकत्र हुए फल को विफल करने की विशिष्ट शक्ति है । वास्तव में बुद्धिमान व्यक्ति आपकी अमृतमय गतिविधियों के सागर में डुबकी लगाते हैं तथा अत्यन्त धैर्यपूर्वक उनके विषय में श्रवण करते हैं । इस प्रकार वे तत्काल ही भौतिक त्रिगुणों के प्रदूषण से मुक्त हो जाते हैं । आध्यात्मिक जीवन की गति के लिए उन्हें कठोर व्रत एवं तप नहीं करना पड़ता है । आपकी दिव्य लीलाओं के विषय में यह श्रवण तथा कीर्तन आत्मज्ञान की सरलतम प्रक्रिया है । दिव्य सन्देश को केवल विनम्रता पूर्वक अपने कानों से श्रवण करने से व्यक्ति का मन निर्मल हो जाता है । इस प्रकार भक्त के हृदय में कृष्णभावनामृत दृढ़ हो जाता है ।

"महान् अधिकारी श्री भीष्मदेव ने भी यह मत दिया है कि श्रीभगवान् के विषय में श्रवण तथा जप की यह प्रक्रिया ही वेदों के समस्त शास्त्रोत सम्पादनों का सार है । प्रिय भगवन्! श्रवण तथा कीर्तन की भक्तिपूर्ण क्रियाओं की इस प्रक्रिया के द्वारा ही जो भक्त अपना उत्कर्ष करने की इच्छा रखता है, वह शीघ्र ही भौतिक अस्तित्व के द्वैत के फन्दे से मुक्त हो जाता है । तप एवं त्याग की इस सरल प्रक्रिया के द्वारा भत के हृदय में स्थित परमात्मा अति प्रसन्न हो जाते हैं तथा वे भक्ति का मार्गदर्शन करते हैं जिससे कि वह अपने घर, भगवान् के धाम, लौट सके । भगवद्गीता में कहा गया है कि अपनी समस्त गतिविधियों एवं इन्द्रियों को भगवान् की भक्ति में संलग्न करने वाला प्राणी पूर्ण रूप से शान्त हो जाता

है, क्योंकि परमात्मा उससे सन्तुष्ट होते हैं । इस प्रकार भत समस्त प्रकार के द्वैतों, जैसे कि शीत, ताप, मान-अपमान, से ऊपर उठ जाता है । समस्त द्वैतों से मुक्त होने से वह दिव्य आनन्द का अनुभव करता है तथा भौतिक अस्तित्व के कारण होने वाली चिन्ताएँ तथा उद्विग्नताएँ उसे नहीं सताती हैं । भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि सदैव कृष्णभावनामृत में लीन रहने वाले भक्त को अपने भरण-पोषण अथवा सुरक्षा के विषय में कोई चिन्ता नहीं होती है । सतत रूप से कृष्णभावनामृत में लीन रहने के कारण वह अन्तत: सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त करता है । जब तक वह भौतिक अस्तित्व में रहता है, वह अत्यन्त शान्ति और आनन्दपूर्वक रहता है । उसे कोई भी चिन्ता अथवा उद्विग्नता नहीं रहती है । इस देह को त्यागने के उपरान्त वह अपने घर, भगवान् के धाम, लौट जाता है । भगवान् ने भगवद्गीता में पुष्टि की है, "मेरा श्रेष्ठ निवासस्थान एक दिव्य स्थान है, जहाँ जाकर कोई भी इस भौतिक जगत को नहीं लौटता है । शाश्वत निवासस्थान में मेरी साकार भक्ति-सेवा में संलग्न रह कर जो कोई भी परम पूर्णता को प्राप्त कर लेता है, वह मानव-जीवन की सर्वोच्च पूर्णता तक पहुँच जाता है । उसे पुन: इस दुखपूर्ण भौतिक जगत में लौटना नहीं पड़ता है ।"

"प्रिय भगवन्! यह अत्यावश्यक है कि जीवात्मा शास्त्रोत विधि से श्रवण, जप तथा आपके आदेशों का पालन करने के द्वारा सदैव भक्ति करते हुए कृष्णभावनामृत में संलग्न रहे । यदि कोई व्यक्ति भक्ति तथा कृष्णभावनामृत में संलग्न नहीं है, तो उसका जीवन व्यर्थ है । यदि कोई व्यक्ति श्वास लेता है, तब उसे साधारणतया जीवित माना जाता है । किन्तु कृष्णभावनामृतविहीन व्यक्ति की तुलना लुहार की दुकान में प्रयुक्त धौंकनी से की जा सकती है । विशाल धौंकनी श्वासोच्छास लेती हुई चमड़े की एक थैली होती है । यदि कोई व्यक्ति प्रेमानुगा-भक्ति तथा कृष्णभावनामृत को अंगीकार नहीं करता है, तो अस्थि व चमड़े के थैले

में केवल जीवित रहने वाला वह व्यक्ति धौंकनी से किसी भी प्रकार श्रेष्ठ नहीं है । उसी भाँति अभक्तों के दीर्घ जीवन की तुलना वृक्ष के दीर्घकालीन अस्तित्व से की गई है । उनकी अतिलोलुप भक्षणक्षमता की तुलना श्वान व शूकर से की गई है । विषय-भोग में उनके आनन्द की तुलना शूकरों तथा बकरियों से की गई है ।

"विराट जगत में महाविष्णु के रूप में श्रीभगवान् के इस प्रवेश के कारण ही यह सृष्टि सम्भव हुई है । महाविष्णु के दृष्टिनिक्षेप से समग्र भौतिक शक्ति आन्दोलित हो जाती है और तभी भौतिक त्रिगुणों की परस्पर क्रिया-प्रतिक्रिया का क्रम प्रारम्भ होता है । अतएव यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि हम जो भी भौतिक सुविधाएँ भोगने का प्रयास कर रहे हैं, वे केवल श्रीभगवान् की दया से ही प्राप्य हैं । 'शरीर के छह भिन्न-भिन्न कोश हैं, जिन्हें अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय-कोश के नाम से जाना जाता है । जीवन के प्रारम्भ में प्रत्येक प्राणी भोजन के प्रति चेतन होता है । एक बालक अथवा पशु केवल उत्तम भोजन प्राप्त होने पर ही सन्तुष्ट होता है । चेतना का यह स्तर, जिसमें भरपेट भोजन करना ही ध्येय होता है, अन्नमय कहा जाता है । अन्न का अर्थ है भोजन । इसके उपरान्त मनुष्य में जीवित रहने की चेतना होती है । यदि बिना किसी आक्रमण अथवा संहार के व्यक्ति जीवनयापन कर सकता है, तब वह स्वयं को सुखी मानता है । इस स्थिति को प्राणमय अथवा अपने अस्तित्व की चेतना कहते हैं । भौतिक सभ्यता मूल रूप से अन्नमय, प्राणमय तथा मनोमय इन्हीं तीन अवस्थाओं पर स्थित है । सभ्य व्यक्तियों की प्रथम चिन्ता आर्थिक विकास की होती है, द्वितीय चिन्ता विनाश से सुरक्षा की होती है तथा इसके उपरान्त उसे मानसिक विचार की चिन्ता होती है, जिसमें वह दार्शनिकतापूर्वक जीवन के मूल्यों पर विचार करता है ।

'दार्शनिक जीवन की विकास प्रक्रिया के द्वारा व्यति यदा-कदा बौद्धिक जीवन के स्तर पर पहुँच जाता है तथा वह यह समझ पाता है कि वह भौतिक शरीर नहीं, अपितु एक आध्यात्मिक आत्मा है । यदि ऐसा हो जाता है, तब आध्यात्मिक जीवन के विकास के द्वारा वह परमेश्वर अथवा परमात्मा को समझ लेता है । जब व्यक्ति भगवान् से अपना सम्बन्ध विकसित कर लेता है तथा भक्ति करता है, तब जीवन की उस स्थिति को कृष्णभावनामृत अथवा आनन्दमय स्थिति कहते हैं, अ।//न्द#योऽभ्य्/स्// परब्रह्म तथा ब्रह्म अथवा श्रीभगवान् तथा जीव दोनों ही स्वभाव से आनन्दमय हैं । जब तक जीव अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय नामक चारों निम्नतर जीवन स्तरों में स्थित रहते हैं, उन्हें जीवन की भौतिक दशा में स्थित माना जाता है । किन्तु जैसे ही व्यक्ति आनन्दमय स्थिति को प्राप्त करता है, वह मुतात्मा बन जाता है । भगवद्गीता में इस आनन्दमय स्थिति को ब्रह्मभूत स्थिति कहा गया है । वहाँ कहा गया है कि जीवन की ब्रह्मभूत स्थिति में कोई उद्वेग अथवा कोई तृष्णा नहीं होती है । इस स्थिति का प्रारम्भ तब होता है जब व्यक्ति समस्त जीवों के प्रति समभाव रखता है । इसके उपरान्त इसका विस्तार कृष्णभावनामृत की स्थिति में होता है, जिसमें व्यक्ति सदैव श्रीभगवान् की सेवा के लिए लालायित रहता है । भक्ति में प्रगति की यह लालसा भौतिक अस्तित्व में इन्द्रियतृप्ति की लालसा करने के समान नहीं है । दूसरे शब्दों में, आध्यात्मिक जीवन में भी लालसा रहती है, किन्तु यह निर्मल हो जाती है । जब हमारी इन्द्रियाँ निर्मल हो जाती हैं तब वे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय तथा विज्ञानमय नामक समस्त भौतिक स्थितियों से मुक्त हो जाती हैं तथा वे कृष्णभावनामृत के आनन्दमय जीवन में अथवा सर्वोच्च स्थिति, आनन्दमय मूर्तिमान् वेदों द्वारा स्तुति \9-\9 स्थिति, में अवस्थित हो जाती हैं । मायावादी दार्शनिक आनन्दमय को परब्रह्म में लीन होने की स्थिति कहते हैं । उनके लिए आनन्दमय का तात्पर्य है कि परमात्मा तथा जीवात्मा एक हो जाते हैं । किन्तु वास्तविक तथ्य यह है कि एकात्म हो

जाने का अर्थ परम ब्रह्म में मिलना और अपना व्यक्तिगत अस्तित्व खो देना नहीं है । आध्यात्मिक अस्तित्व में लीन हो जाने का अर्थ है कि परमेश्वर के सच्चिदानन्द रूप के साथ जीव की एकात्मता की अनुभूति है । वास्तविक आनन्दमय स्थिति तभी प्राप्त होती है जब व्यक्ति भक्ति में संलग्न होता है । इस तथ्य की पुष्टि भगवद्गीता में की गई है । मद्रकिं लभते परासू-ब्रह्मभूत-आनन्दमय स्थिति तभी पूर्ण होती है जब परमात्मा तथा गौण जीवात्माओं के मध्य प्रेम का आदान-प्रदान होता है । जब तक व्यक्ति जीवन के इस आनन्दमय स्तर को प्राप्त नहीं कर लेता है, तब तक उसकी श्वास लुहार की धौंकनी के श्वास लेने के समान ही है । उसके जीवन का अन्तराल वृक्ष के जीवन-काल की भाँति है तथा वह निम्नतरीय पशुओं, जैसे ऊँटों, शूकरों तथा कुत्तों, से किसी भी भाँति श्रेष्ठ नहीं है ।

निस्सन्देह, शाश्वत जीवात्मा का कभी भी विनाश नहीं हो सकता है । किन्तु निम्न योनियों के प्राणी शोचनीय दशा में रहते हैं, जबकि परमेश्वर की भक्ति में संलग्न रहने वाला प्राणी जीवन की आनन्दमय अथवा सुखपूर्ण स्थिति में रहता है । ऊपर वर्णित विभिन्न स्थितियाँ सभी श्रीभगवान् के सम्बन्ध में हैं । यद्यपि समस्त परिस्थितियों में श्रीभगवान् तथा जीवात्माएँ दोनों ही रहते हैं, किन्तु भेद यह है कि श्रीभगवान् सदैव आनन्दमय स्थिति में ही रहते हैं । इसके विपरीत परमेश्वर के क्षुद्र अंश के रूप में अपनी क्षुद्र स्थिति के कारण गौण जीवात्माएँ जीवन के अन्य स्तरों में पतित हो जाने की ओर उन्मुख होती हैं । यद्यपि सभी स्तरों पर परमेश्वर तथा जीव दोनों का ही अस्तित्व होता है, श्रीभगवान् सदैव ही जीवन-विषयक हमारी धारणा से ऊपर होते हैं । हम चाहे बन्धन में रहें अथवा मुक्त हों, श्रीभगवान् हमारी जीवन सम्बन्धी धारणा से सदैव ही अतीत हैं । परमेश्वर की कृपा से ही समस्त सृष्टि सम्भव होती है, परमेश्वर की कृपा से ही इसका अस्तित्व रहता है तथा जब इसका विनाश होता है, तब यह परमेश्वर के अस्तित्व में ही विलीन हो जाती है । इस प्रकार

परमेश्वर ही परम अस्तित्व हैं, वे समस्त कारणों के कारण हैं । अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि कृष्णभावनामृत के विकास के बिना व्यक्ति का जीवन समय का अपव्यय है । वे अति भौतिकतावादी व्यक्ति, जो आध्यात्मिक जगत की स्थिति को नहीं समझ सकते हैं, श्रीकृष्ण के धाम को भी नहीं समझ सकते हैं । ऐसे व्यक्तियों के लिए महर्षियों ने योगिक प्रक्रिया प्रस्तुत की है । योगिक प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति उदर पर ध्यान के द्वारा क्रमश: ऊपर उठता जाता है । इस ध्यान को मूल/धार अथवा मणिपूर का ध्यान कहते हैं । मूलाधार तथा मणिपूर शब्द उदरस्थ आँतों के लिए प्रयुक्त होने वाले विशेष शब्द हैं । स्थूल रूप से भौतिकवादी व्यक्ति यह विचार करते हैं कि आर्थिक विकास सर्वाधिक महत्वपूर्ण है, क्योंकि उन्हें ऐसी धारणा है कि जीव केवल भोजन करने से ही जीवित रहता है । स्थूल रूप से भौतिकतावादी व्यक्ति यह भूल जाते हैं कि यद्यपि हम जितना चाहें खा सकते हैं, किन्तु यदि वह भोजन पचता नहीं है, तो यह अपच तथा अम्लता उत्पन करता है । अतएव भोजन अपने आपमें जीवन की प्राणशक्ति का कारण नहीं है । भोज्य पदार्थों के पचने के लिए हमें अन्य श्रेष्ठतर शक्ति का आश्रय लेना पड़ता है । इस श्रेष्ठतर शक्ति का उल्लेख भगवद्गीता में वैश्व/नर के रूप में किया गया है । भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि वे वैश्वानर के रूप में पाचनक्रिया की सहायता करते हैं । श्रीभगवान् सर्वव्यापी हैं, अतएव वैश्वानर के रूप में उनकी उपस्थिति असाधारण नहीं है ।

वास्तव में श्रीकृष्ण सर्वत्र उपस्थित हैं, अतएव वैष्णव अपने शरीर पर भगवान् विष्णु के मन्दिर चिह्नित करते हैं । सर्वप्रथम वे अपने उदर पर एक तिलक चिह्नित करते हैं । इसके उपरान्त वे अपने भाल पर तथा धीरे-धीरे अपने सिर के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र पर तिलक लगाते हैं । एक वैष्णव के शरीर पर मुद्रित तिलक के तेरह मन्दिर निम्न प्रकार से प्रसिद्ध हैं-भाल पर भगवान् केशव का मन्दिर, उदर पर भगवान् नारायण का मन्दिर, वक्ष

पर भगवान् माधव का मन्दिर, दोनों हँसली के मध्य कण्ठ पर भगवान् गोविन्द का मन्दिर, कटि के दाहिने भाग पर भगवान् विष्णु का मन्दिर दाहिनी भुजा पर भगवान् मधुसूदन का मन्दिर तथा हँसुली की हड़ी के दाहिने भाग (स्कन्ध) पर भगवान् त्रिविक्रम का मन्दिर है । इसी के समान कटि के बाई ओर भगवान् वामन देव का मन्दिर है, बाई भुजा पर भगवान् श्रीधर का मन्दिर है, हँसली के बाई ओर (स्कन्ध पर) भगवान् हृषीकेष का मन्दिर, ऊपरी पृष्ठ-भाग पर भगवान् पद्मनाभ का मन्दिर, निम्न पृष्ठ-भाग पर भगवान् दामोदर का मन्दिर, सिर के ऊपर वासुदेव का मन्दिर है । यह शरीर के विभिन्न अंगों में भगवान् की स्थिति पर ध्यान की प्रक्रिया है । किन्तु उन लोगों के लिए, जो वैष्णव नहीं हैं, महर्षियों ने जीवन की शारीरिक धारणाओं पर ध्यान को प्रस्तावित किया है, जैसे-आँतों पर ध्यान, हृदय कण्ठ, भाल पर तथा तदुपरात शीश के ऊपरी भाग पर ध्यान महर्षि अरुण की गुरुपरम्परा में कुछ ऋषि हृदय में ध्यान करते हैं, क्योंकि जीवात्मा के साथ-साथ परमात्मा भी हृदय में निवास करते हैं । भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में इस तथ्य की पुष्टि की गई है, जहाँ पर भगवान् कहते हैं, "मैं सबके हृदय में स्थित हूँ ।"

वैष्णव के लिए भगवान् की सेवा हेतु शरीर-रक्षा भक्ति का अंग है, किन्तु वे व्यक्ति जो स्थूल रूप में भौतिकतावादी हैं शरीर की योगिक प्रक्रिया के द्वारा शरीर की ही उपासना करते हैं । ये शरीर के अंग मणिपूर, दहर तथा हृदय हैं तथा धीरे-धीरे वे शीश के ऊपर ब्रह्मरन्ध्र तक उठते जाते हैं । योग की प्रणाली के अभ्यास में पूर्णता प्राप्त करके प्रथम श्रेणी का योगी अन्ततः ब्रह्मरन्ध्र से निकल जाता है तथा भौतिक अथवा आध्यात्मिक जगतों के किसी एक लोक को चला जाता है । एक योगी किस प्रकार एक लोक से दूसरे लोक को अपना स्थानान्तरण कर सकता है, इसका अत्यन्त स्पष्टता से वर्णन श्रीमद्भागवत के दूसरे अध्याय में किया गया है ।

इस सम्बन्ध में शुकदेव गोस्वामी नवारम्भ करने वालों को भगवान् के विशाल विश्व रूप, विराट पुरुष, की उपासना करने का परामर्श देते हैं । वे व्यक्ति, जो यह विश्वास नहीं कर सकते हैं कि समान सफलता के साथ भगवान् की उपासना श्रीमूर्ति अथवा अर्चा-रूप में की जा सकती है अथवा जो इस रूप पर मन एकाग्र नहीं कर सकते हैं, भगवान् के विश्वरूप की उपासना कर सकते हैं । ब्रह्माण्ड का मध्यवर्ती भाग भगवान् के विश्वरूप का पाँव माना जाता है । ब्रह्माण्ड का मध्यवर्ती भाग भगवान् की नाभि अथवा उदर माना जाता है । उच्चवर्ती ग्रह मण्डल, जैसे जनलोक तथा महलॉक भगवान् के हृदय हैं । सबसे ऊपर स्थित लोक, ब्रह्मलोक भगवान् का मस्तक माना जाता है । उपासक की स्थिति के अनुसार ऋषियों ने विभिन्न प्रक्रियाओं का प्रस्ताव किया है, किन्तु समस्त ध्यान तथा योगिक प्रक्रियाओं का चरम लक्ष्य अपने घर, भगवान् के धाम, लौटना ही है । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, जो कोई भी श्रीकृष्ण के धाम सर्वोच्च लोक पर पहुँच जाता है, अथवा वैकुण्ठ लोक ही पहुँच जाता है, उसे पुनः कभी इस दुखी भौतिक जीवन में नहीं आना पड़ता है ।

अतएव वेदों का प्रस्ताव है कि व्यक्ति को अपने सभी प्रयासों का लक्ष्य भगवान् श्री विष्णु ते चरणारिवन्दो को बनाना चाहिए । परम पर्दा— विष्णु लोक समस्त भौतिक लोकों से ऊपर स्थित हैं । ये वैकुण्ठ लोक सनातन-धाम के नाम से प्रसिद्ध हैं तथा शाश्वत हैं । इस भौतिक जगत का नाश होने पर भी उनका कभी भी विनाश नहीं होता है । इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई मानव परमेश्वर की उपासना करके अपने जीवन का ध्येय पूर्ण नहीं करता है तथा भगवान् के धाम को वापस नहीं लौटता है, तब यह समझना चाहिए कि वह मानव-जीवन के मुख्य प्रयोजन को सिद्ध करने में निष्फल रहा है ।

मूर्तिमान् वेदों द्वारा की गई भगवान् की अगली स्तुति का सम्बन्ध भगवान् द्वारा विभिन्न जीव योनियों में प्रवेश करने से है । भगवद्गीता के चौदहवें अध्याय में कहा गया है कि जीवों के प्रत्येक रूप तथा योनि में परमेश्वर का आध्यात्मिक अंश उपस्थित है । भगवान् ने गीता में स्वयं कहा है कि वे जीवों के समस्त प्रकारों तथा योनियों को बीज प्रदान करने वाले पिता हैं, अतएव उन सबको भगवान् की सन्तान मानना चाहिए । प्रत्येक प्राणी के हृदय में परमात्मा के रूप में परमेश्वर का प्रवेश कभी-कभी निराकारवादियों को भ्रमित कर देता है, क्योंकि उनके विचार में जीव तथा परमेश्वर समान हैं । वे विचार करते हैं कि जीवात्मा के साथ-साथ परमेश्वर भी विभिन्न शरीरों में प्रवेश करते हैं, अत: भगवान् तथा जीवात्माओं में कोई भेद नहीं है । वे चुनौती देते हैं, "जीवात्माएँ परमात्मा की उपासना क्यों करें?" उनके अनुसार परमात्मा तथा जीवात्मा के मध्य एक भेद है तथा इसे भगवद्गीता के पन्द्रहवें अध्याय में स्पष्ट किया गया है । इसमें भगवान् कहते हैं कि यद्यपि वे जीवात्मा के साथ एक ही शरीर में निवास करते हैं, किन्तु वे श्रेष्ठतर हैं । वे अन्दर से जीवात्मा को आदेश अथवा बुद्धि दे रहे हैं । भगवद्गीता में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि भगवान् जीवात्मा को बुद्धि देते हैं तथा स्मृति एवं विस्मृति दोनों ही परमात्मा के प्रभाव के कारण होती हैं । परमात्मा की अनुज्ञा से स्वतंत्र रह कर कोई भी व्यक्ति कार्य नहीं कर सकता है । अतएव भगवान् के स्मरण दिलाने पर जीवात्मा अपने विगत कर्मों के अनुसार कार्य करती है । विस्मृति तो जीवात्मा का स्वभाव है, किन्तु हृदय में भगवान् की उपस्थिति उसे यह स्मरण दिलाती है कि वह अपने पूर्वजन्म में क्या करना चाहती थी । जीवात्मा की बुद्धि उसी प्रकार प्रदर्शित होती है, जिस प्रकार काष्ठ में अग्नि । यद्यपि अग्नि सदैव ही अग्नि है, तथापि यह काष्ठ के टुकड़े के आकार के अनुसार बड़े अथवा छोटे आकार में प्रदर्शित होती है । उसी भाँति यद्यपि गुण में जीवात्मा परमेश्वर के ही समान है, किन्तु वह अपने वर्तमान शरीर की सीमाओं के अनुसार अपना प्रदर्शन करती है ।

परमेश्वर अथवा परमात्मा को एक-रस कहा गया है । एक का अर्थ है एक तथा रस का अर्थ है माधुर्य । परमेश्वर की दिव्य स्थिति सत्, चित् तथा आनन्दमय है । जब परमेश्वर प्रत्येक प्राणी के शरीर में जीवात्मा के साक्षी तथा परामर्शदाता बन जाते हैं तब उससे उनकी एक-रस की स्थिति में रंचमात्र भी परिवर्तन नहीं होता है ।

ब्रह्माजी से प्रारम्भ कर के चींटी तक जीवात्मा अपने वर्तमान शरीर के अनुसार अपनी आध्यात्मिक शक्ति का प्रदर्शन करती है । देवता भी मानव शरीरों अथवा पशु शरीरों में निवास करने वाली जीवात्मा के समान वर्ग के हैं । अतएव बुद्धिमान व्यक्ति विभिन्न देवताओं की उपासना नहीं करते हैं, जो कि स्वयं बद्ध शरीरों में प्रकाशित श्रीकृष्ण के अति सूक्ष्म प्रतिनिधि-मात्र हैं । अपने शरीर के आकार तथा प्रकृति के अनुपात में ही जीवात्मा अपने बल तथा क्षमताओं (शक्तियों) का प्रदर्शन कर सकती है । किन्तु श्रीभगवान् किसी भी रूप अथवा आकार में, बिना किसी परिवर्तन के अपनी पूर्ण शक्तियों का प्रदर्शन कर सकते हैं । मायावादियों का यह विचार कि भगवान् तथा जीवात्मा एक हैं, स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि जीवात्मा को विभिन्न प्रकार के शरीरों में निवास करने के अनुसार अपने बल तथा शक्तियों को विकसित करना पड़ता है । जीवात्मा एक शिशु के शरीर में एक वयस्क पुरुष के बल तथा शक्ति का प्रदर्शन नहीं कर सकती है । किन्तु अपनी माता की गोद में शिशु रूप में पड़े होने पर भी, भगवान् श्रीकृष्ण अपने पर आक्रमण करने वाली पूतना तथा अन्य असुरों का वध करके अपने पूर्ण बल तथा शक्ति का प्रदर्शन कर सके थे । अतएव श्रीभगवान् की आध्यात्मिक शक्ति को एक–रस अथवा परिवर्तनहीन कहा गया है । अतएव श्रीभगवान् ही एकमात्र आराध्य हैं तथा भौतिक प्रकृति की शक्ति से अदूषित लोगों को यह तथ्य पूर्ण रूप से ज्ञात है । दूसरे शब्दों में, केवल मुतात्माएँ ही श्रीभगवान् की उपासना

कर सकती हैं । यह विचार करके कि भगवान् तथा देवता एक ही स्तर के हैं, अल्पबुद्धि मायावादी देवताओं की उपासना को अपना लेते हैं ।

मूर्तिमान् वेदों ने भगवान् को प्रणाम करते हुए आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! जन्म-जन्मांतरों के उपरान्त जो लोग वास्तव में बुद्धिमान हो जाते हैं, वे पूर्ण ज्ञान में आपके पादपद्मों की उपासना को अपना लेते हैं ।" इस तथ्य की पुष्टि भगवद्गीता में भी की गई है, जहाँ भगवान् कहते हैं कि जन्म-जन्मांतरों के पश्चात् महात्मा भलीभाँति यह जानते हुए कि वासुदेव श्रीकृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं, भगवान् की शरण ग्रहण करते हैं । वेदों में आगे कहा, "जैसे कि पहले ही स्पष्ट किया जा चुका है, हमारा मन, इन्द्रियाँ तथा बुद्धि हमें भगवान् ने प्रदान की हैं । अतएव जब ये उपकरण वास्तव में निर्मल हो जाते हैं, तब उन सबको भगवान् की भक्ति में संलग्न करने के अतिरिक्त और कोई विकल्प नहीं रहता है । विभिन्न योनियों में जीवात्मा का बन्धन, उसके द्वारा मन, बुद्धि तथा इन्द्रियों का भौतिक गतिविधियों में दुरुपयोग करने के कारण होता है । जीव के कर्मों के फलस्वरूप उसे विभिन्न प्रकार के शरीर प्राप्त होते हैं तथा जीव की इच्छा के अनुसार भौतिक प्रवृत्ति इन शरीरों की रचना करती है । जीव एक विशेष प्रकार के शरीर का अधिकारी होता है तथा उसकी इच्छा करता है, अतएव परमेश्वर के आदेश के अन्तर्गत भौतिक प्रकृति उसे वैसा ही शरीर प्रदान करती है ।

श्रीमद्भागवत के तृतीय स्कन्ध में यह स्पष्ट किया गया है कि उच्चाधिकारी के नियंत्रण के अधीन जीव को किसी नर के वीर्य में स्थापित किया जाता है । तत्पश्चात् जीवयुक्त वह वीर्य किसी मादा विशेष के गर्भ में स्थापित किया जाता है, जिससे कि वह एक विशिष्ट प्रकार के शरीर का विकास कर सके । जीव अपनी रुचि के अनुसार एक विशिष्ट विधि से अपनी इन्द्रियों, बुद्धि तथा मन आदि का उपयोग करता है और इस प्रकार वह एक विशेष प्रकार के शरीर का विकास करता है, जिसके

अन्दर वह बन्दी बन जाता है । इस रीति से विभिन्न स्थितियों तथा परिस्थितियों के अनुसार जीव देवता, मानव अथवा पशु शरीर की विभिन्न स्थितियों में अवस्थित हो जाता है ।

वैदिक साहित्य में स्पष्ट किया गया है कि विभिन्न योनियों में बन्दी जीव परमेश्वर के अंश हैं । मायावादी दार्शनिक जीव को परमात्मा समझने की भूल कर बैठते हैं । वास्तव में परमात्मा एक मित्र के रूप में जीव के साथ रहता है । श्रीभगवान् का अन्तर्यामी पक्ष परमात्मा तथा जीवात्मा दोनों ही शरीर के अन्दर हैं, अतएव कभी-कभी यह समझने में भूल हो जाती है कि दोनों में कोई अन्तर नहीं है । किन्तु जीवात्मा तथा परमात्मा के मध्य एक निश्चित अन्तर है तथा इसे वराह-पुर/7 में इस प्रकार स्पष्ट किया गया है :-परमेश्वर के दो प्रकार के अंश होते हैं-जीव को विभिन्न/श कहते हैं, परमात्मा अथवा परमेश्वर के पूर्ण अंश को स्वांश कहते हैं । श्रीभगवान् के स्वांश, श्रीभगवान् के समान ही शक्तिमान हैं । परम पुरुष तथा उनके पूर्ण अंश परमात्मा की शक्ति के मध्य रंचमात्र भी अन्तर नहीं है । किन्तु विभिन्नांश भगवान् की शक्तियों के एक लघुतम अंश से ही युक्त होते हैं । नारद पंचरात्र का कथन है कि परमेश्वर की तटस्था शक्ति-जीव-आध्यात्मिक अस्तित्व की गुणवत्ता में भगवान् के समान ही है, किन्तु उसमें भौतिक गुणों का पुट भी होता है । भौतिक गुणों के प्रभाव का भागी होने के कारण सूक्ष्म जीवात्मा को जीव कहा जाता है । कभी-कभी श्रीभगवान् को शिव भी कहा जाता है । शिव का अर्थ है सर्वकल्याणमय । अतएव शिव तथा जीव के मध्य यह अन्तर है कि सर्वकल्याणमय श्रीभगवान् पर भौतिक गुण कभी-भी कोई प्रभाव नहीं डालते हैं, जबकि श्रीभगवान् के सूक्ष्म अंश (जीव) भौतिक प्रकृति के गुणों से प्रभावित हो जाते हैं ।

किसी जीव विशेष के शरीर में निवास करने वाले परमात्मा यद्यपि भगवान् के एक अंश हैं, तथापि वे जीव द्वारा उपास्य हैं । अतएव महर्षियों

ने निष्कर्ष निकाला है कि ध्यान की प्रक्रिया की संरचना इस प्रकार की गई है, जिससे कि जीव परमात्मा के रूप (श्रीविष्णु) के चरणकमलों पर अपना ध्यान एकाग्र कर सके । यही समाधि का वास्तविक रूप है । जीव अपने ही प्रयासों द्वारा भौतिक बन्धनों से मुक्त नहीं हो सकता है । अतएव उसे परमेश्वर के चरणकमलों अथवा अपने अन्दर स्थित परमात्मा की भक्ति को स्वीकार करना चाहिए । श्रीमद//वत के प्रख्यात टीकाकार श्री श्रीधर स्वामी ने इस सम्बन्ध में एक सुन्दर पद की रचना की है । इस पद का तात्पर्य इस प्रकार है-"प्रिय भगवन्! मैं सनातन रूप से आपका अंश हूँ किन्तु मैं आपसे ही विकीर्ण होने वाली भौतिक शक्तियों के बन्धन में बद्ध हो गया हूँ । समस्त कारणों के कारण के रूप परमात्मा के रूप में आपने मेरे शरीर में प्रवेश किया है और आपके साथ परमानन्द ज्ञान के जीवन का उपभोग करना मेरा अधिकार है । अतएव हे भगवन्! मुझे अपनी (भगवान् की) प्रेम-सेवा का आदेश दीजिए, जिससे कि मैं पुनः दिव्य आनन्द की अपनी आदि स्थिति को प्राप्त का सकूं ।"

महाजनों को इस तथ्य का बोध है कि इस भौतिक जगत के बंधन में बद्धजीव अपने प्रयास से मुक्त हो सकता है । दृढ़ निष्ठा तथा भक्ति के साथ ऐसे महान् व्यक्ति भगवान् की दिव्य प्रेम-सेवा में संलग्न हो जाते हैं । यही मूर्तिमान् वेदों का निर्णय है ।

मूर्त्तमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! परम सत्य का पूर्ण ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । पतित आत्माओं पर आप इतने कृपालु हैं कि आप विभिन्न अवतारों में प्रकट होते हैं तथा विभिन्न कार्य सम्पादित करते हैं । आप इस भौतिक जगत के एक ऐतिहासिक पुरुष के रूप में भी प्रकट होते हैं तथा वैदिक साहित्य में आपकी लीलाओं का अत्यन्त सुन्दर वर्णन किया गया है । यह लीलाएँ दिव्यानन्द के सागर की भाँति आकर्षक हैं । जिन कथाओं में साधारण जीवों का यशगान होता हो, उनका पठन करने की ओर लोगों का स्वाभाविक झुकाव होता है । किन्तु

जब वे आपकी शाश्वत लीलाओं का वर्णन करने वाले वैदिक साहित्य की ओर आकर्षित होते हैं, तब वे वास्तव में दिव्य आनन्द के सागर में डुबकी लगाते हैं । जैसे एक श्रमित मानव जलाशय में डुबकी लगा कर विश्रान्ति का अनुभव करता है, उसी भाँति भौतिक गतिविधियों के प्रति अरुचि रखने वाली बद्धात्मा आपकी लीलाओं के दिव्य सागर में डुबकी लगाने मात्र से विश्रान्त हो जाती है तथा भौतिक गतिविधियों के समस्त श्रम को विस्मृत कर देती है । अन्तत: वह दिव्यानन्द के सागर में लीन हो जाती है । अतएव अति बुद्धिमान भक्त भक्ति तथा नवधा भक्ति में सतत संलग्न रहने के अतिरिक्त आत्म-साक्षात्कार के अन्य किसी साधन को नहीं अपनाते हैं । भक्ति की नवधा प्रक्रियाओं में भी श्रवण तथा कीर्तन विशेष महत्वपूर्ण हैं । आपकी दिव्य लीलाओं के विषय में श्रवण तथा कीर्तन करते हुए आपके भक्त, मुक्ति अथवा परम सत्ता के अस्तित्व में लीन हो जाने से प्राप्त होने वाले दिव्य आनन्द की भी परवाह नहीं करते हैं । ऐसे भक्त तथाकथित मुक्ति में भी रुचि नहीं रखते हैं । निश्चय ही उन्हें इन्द्रियतृप्ति के हेतु स्वर्ग लोक प्राप्ति के लिए की जाने वाली भौतिक गतिविधियों में भी कोई रुचि नहीं होती है । शुद्ध भक्त केवल परमहंसों अथवा महान्-भक्तों की संगति की ही खोज में रहते हैं, जिससे कि वे निरन्तर आपके यश का श्रवण या जप कर सकें । इस प्रयोजन के लिए शुद्ध भक्त जीवन के समस्त सुखों का परित्याग करने को तत्पर रहते हैं । वे पारिवारिक जीवन एवं तथाकथित समाज, मैत्री तथा प्रेम के भौतिक सुखों का त्याग करने के लिए भी तत्पर रहते हैं । आपके यश का कीर्तन करने की दिव्य ध्वनि

हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे । हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे ।

का रसास्वादन करने के द्वारा जिन्होंने भक्ति के अमृत का आस्वाद ले लिया है, वे अन्य किसी आध्यात्मिक आनन्द अथवा भौतिक सुखों में रुचि

नहीं रखते हैं । शुद्ध भक्त को ये सुख तथा आनन्द तृण से भी तुच्छ प्रतीत होते हैं ।"

मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! जब पूर्ण कृष्णभावनामृत में स्वयं को भक्ति-सेवा में संलग्न करने के द्वारा कोई व्यक्ति अपने मन, इन्द्रियों तथा बुद्धि को निर्मल करने में समर्थ हो जाता है, तब उसका मन उसका सखा बन जाता है । अन्यथा उसका मन सदैव ही उसका शत्रु होता है । जब मन भगवान् की भक्ति-सेवा में संलग्न होता है, तब यह जीव का घनिष्ठ मित्र बन जाता है, क्योंकि तब मन सदैव ही परमेश्वर का चिन्तन कर सकता है । भगवान् जीवात्मा को सनातन रूप से प्रिय हैं, अतएव जब मन आपके चिन्तन में संलग्न होता है, तब व्यक्ति तत्काल ही उस परम सन्तोष का अनुभव करता है, जिसकी उसे जन्म-जन्मांतर से लालसा रही है । जब व्यक्ति का मन इस प्रकार से श्रीभगवान् के चरणकमलों में केन्द्रित हो जाता है, तब वह किसी अन्य प्रकार की निकृष्ट उपासना अथवा आत्म-साक्षात्कार की निकृष्ट प्रक्रिया को नहीं अपनाता है । किसी एक देवता की उपासना का प्रयास करने अथवा आत्म-साक्षात्कार की किसी अन्य प्रक्रिया का अवलम्ब लेने से जीव जन्म-मरण के चक्र का शिकार बन जाता है । इस बात का कोई अनुमान नहीं लगा सकता है कि जीवन की कुत्ते-बिल्ली जैसी निकृष्ट योनियों में प्रवेश करने से जीव कितना तुच्छ बन जाता है ।"

श्रीनरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है कि भगवान् की भक्ति को न अपना कर मीमांसा तथा कर्मकाण्ड के प्रति आकृष्ट होने वाले लोगों को ऐसे कर्मों का विषैला परिणाम भोगना पड़ता है । ऐसे लोगों को विभिन्न योनियों में जन्म लेने तथा मांसभक्षण एवं मदिरापान जैसी घृणित आदतों को अपनाने के लिए बाध्य होना पड़ता है । साधारण भौतिकतावादी लोग क्षणभंगुर भौतिक शरीर की उपासना करते हैं तथा शरीर के अन्दर की आत्मा के कल्याण को विस्मृत कर देते हैं । कुछ लोग दैहिक सुखों की

वृद्धि के हेतु भौतिकतावादी विज्ञान का आश्रय लेते हैं तथा अन्य लोकों को जाने की कामना से देवताओं की उपासना अपना लेते हैं । उनके जीवन का उद्देश्य भौतिक शरीर को सुखी बनाना है, जबकि वे आत्मा के लाभ को विस्मृत कर देते हैं । ऐसे लोगों को वैदिक साहित्य में आत्मघाती कहा गया है, क्योंकि भौतिक शरीर एवं इसके सुखों के प्रति मोह जीव को निरन्तर जीवन-मरण की प्रक्रिया में भटकने को बाध्य कर देता है, जहाँ उसे अनिवार्य रूप से भौतिक दुख सहन करने पड़ते हैं । मानव-योनि में जन्म लेना जीव के लिए अपनी स्थिति को समझने का एक अवसर है तथा बुद्धिमान व्यक्ति अपने मन, इन्द्रियों तथा शरीर को बिना चूके भगवान् की सेवा में संलग्न करने के लिए भक्ति का आश्रय लेता है ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! अनेक योगी ऐसे हैं, जो अति विद्वान तथा जीवन की सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त करने में हढ़ संकल्प हैं । वे प्राणवायु को शरीर के अन्दर नियंत्रित कर के योग-प्रणाली का अभ्यास करते हैं । किन्तु अत्यन्त श्रमपूर्ण त्याग, तपस्या तथा नियमन के उपरान्त भी उन्हें वही गन्तव्य प्राप्त होता है, जो आपके प्रति वैरभाव रखने वाले लोगोंको प्राप्त होता है । दूसरे शब्दों में, योगी तथा महान् बुद्धिमान दार्शनिक विचारक दोनों को अन्ततः निराकार ब्रह्म की ज्योति प्राप्त होती है । भगवान् के नियमित शत्रु असुरों को भी यही ब्रह्म-ज्योति अनायास ही प्राप्त होती है । कंस, शिशुपाल तथा दन्तवक्र के समान असुरों को भी ब्रह्म-ज्योति प्राप्त होती है, क्योंकि वे निरन्तर श्रीभगवान् का ध्यान करते हैं । गोपियों के समान स्त्रियाँ श्रीकृष्ण से प्रेम करती थीं तथा उनके सौन्दर्य से मोहित हो गई थीं । श्रीकृष्ण पर उनके मन की एकाग्रता के मूल में वासना थी । वे सर्प की गोलाकार सुन्दर आकृति के सदृश दीखने वाली श्रीकृष्ण की भुजाओं द्वारा आलिंगनबद्ध होना चाहती थीं । इसी तरह हम वैदिक ऋचाएँ भी अपना मन आपके चरणारविन्दों पर

केन्द्रित करती हैं । गोपियों के समान स्त्रियाँ वासना के वशीभूत हो कर आप पर मन एकाग्र करती हैं तथा हम अपने घर, भगवान् के धाम, लौटने के लिए आपके पदकमलों पर ध्यान केन्द्रित करती हैं । आपके शत्रु भी सदैव आपका वध करने के उपायों के विषय में विचार करते हुए आप पर ध्यान केन्द्रित करते हैं तथा आपकी निर्विशेष ज्योति को प्राप्त करने के लिए योगी महान् तप तथा त्याग करते हैं । ये सभी विभिन्न व्यक्ति यद्यपि अपने मन को भिन्न-भिन्न प्रकार से एकाग्र करते हैं, तथापि वे अपने विभिन्न दृष्टिकोणों के अनुसार आध्यात्मिक पूर्णता प्राप्त करते हैं, क्योंकि आप अपने समस्त भक्तों के प्रति समभाव रखते हैं ।"

इस सम्बन्ध में श्री श्रीधर स्वामी ने एक श्रेष्ठ पद की रचना की है- "प्रिय भगवन्, सदैव आपके चरणाविन्दों के चिन्तन में संलग्न रहना अत्यन्त कठिन है । ऐसा करना केवल उन महान् भक्तों के लिए सम्भव होता है, जिन्होंने पहले से ही आपके प्रति प्रेम को प्राप्त कर लिया है तथा जो दिव्य प्रेमाभक्ति में संलग्न हैं । प्रिय भगवन्! मेरी इच्छा है कि कम से कम कुछ समय के लिए ही, मेरा मन भी किसी प्रकार से आपके चरण कमलों में संलग्न हो जाए ।"

विभिन्न अध्यात्मवादियों के द्वारा आध्यात्मिक पूर्णता की प्राप्ति को भगवद्गीता में स्पष्ट किया गया है, जहाँ भगवान् कहते हैं कि वे अपने प्रति समर्पण के अनुपात में भक्त को उसकी अभीप्सित पूर्णता प्रदान करते हैं । निरार्विशेषवादी, योगी तथा भगवान् के शत्रु भगवान् की दिव्य ज्योति में प्रवेश करते हैं । किन्तु वृन्दावनवासियों के चरणचिह्नों का अनुसरण करने वाले अथवा भक्ति के पथ पर दृढ़तापूर्वक चलने वाले सगुणवादी श्रीकृष्ण के निजी धाम गोलोक वृन्दावन अथवा वैकुण्ठ लोकों को प्राप्त करते हैं । निर्विशेषवादी तथा सगुणवादी दोनों ही अध्यात्म क्षेत्र अथवा चिदाकाश में प्रवेश करते हैं, किन्तु निर्विशेषवादियों को निर्विशेष ब्रह्म ज्योति में स्थान प्राप्त होता है, जबकि सगुणवादियों को भगवान् की विभिन्न रसों में सेवा

करने की उनकी इच्छा के अनुसार वैकुण्ठ लोकों अथवा वृन्दावन लोक में स्थान प्रदान किया जाता है ।

मूर्तिमान् वेदों ने कहा कि इस भौतिक जगत की सृष्टि के उपरान्त जन्म लेने वाले लोग अपने भौतिक ज्ञान का उपभोग कर के श्रीभगवान् के अस्तित्व को नहीं समझ सकते हैं । जैसे कि किसी एक विशेष परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति वर्तमान पीढ़ी के जन्म से पूर्व जीवित रहने वाले अपने पितामह की स्थिति को नहीं समझ सकता है, उसी भाँति हम भी आध्यात्मिक जगत में शाश्वत अस्तित्व वाले श्रीभगवान् नारायण अथवा श्रीकृष्ण को समझने में असमर्थ हैं । भगवद्गीता के आठवें अध्याय में यह स्पष्टरूप से कहा गया है कि सनातन रूप से भगवान् के आध्यात्मिक लोक (सनातन-धाम) में निवास करने वाले परम पुरुष के समीप केवल भक्ति के द्वारा ही जाया जा सकता है ।

जहाँ तक भौतिक सृष्टि का सम्बन्ध है, ब्रह्मा उसके प्रथम व्यक्ति हैं । ब्रह्मा से पूर्व इस भौतिक जगत में कोई जीव नहीं था । गभौंदकशायी विष्णु के उदर से निकले हुए कमल पुष्प पर ब्रह्मा का जन्म होने के पूर्व यह शून्य एवं अंधकारमय था । गर्भादकशायी विष्णु कारणोदकशायी विष्णु के अंश हैं, कारणोदकशायी विष्णु संकर्षण के अंश हैं तथा संकर्षण बलराम जी के अंश हैं । बलराम जी भगवान् श्रीकृष्ण के स्वांश हैं । ब्रह्मा की सृष्टि के उपरान्त दो प्रकार के देवताओं का जन्म हुआ: सनक, सनातन, सनन्दन तथा सनत् । कुमार चार भाइयों जैसे देवता, जो कि जगत में वैराग्य के प्रतिनिधि हैं; तथा मरीचि एवं उनके वंशजों जैसे देवता, जिनकी सृष्टि इस भौतिक जगत के उपभोग के लिए हुई । इन्हीं दो प्रकार के देवताओं से धीरे-धीरे मानव सहित अन्य सब जीव आविभूत हुए । इस प्रकार ब्रह्मा, समस्त देवताओं तथा समस्त राक्षसों सहित इस भौतिक जगत के किसी भी जीव को आधुनिक समझना चाहिए । इसका अर्थ है कि उनका जन्म हाल ही में हुआ है । अतएव जैसे कि हाल ही में किसी

परिवार में जन्म लेने वाला व्यक्ति अपने अतीत के पूर्वज को नहीं समझ सकता है, उसी भाँति इस भौतिक जगत का कोई जीव आध्यात्मिक जगत में परमेश्वर की स्थिति को नहीं समझ सकता है, क्योंकि भौतिक जगत की रचना हाल ही में हुई है । यद्यपि उनका अस्तित्व दीर्घकालीन है, तथापि भौतिक जगत के सभी अंश जैसे कि काल, तत्व, जीव, वेद तथा स्थूल व सूक्ष्म तत्व सभी की कभी-न-कभी सृष्टि की गई थी । इस निर्मित स्थिति में रचित किसी भी वस्तु को अथवा जिस किसी वस्तु को सृष्टि के मूल कारण को समझने का साधन स्वीकार किया जाए आधुनिक मानना चाहिए ।

अतएव कर्मकाण्ड, मीमांसा अथवा योग के माध्यम से आत्म-साक्षात्कार अथवा भगवद्-साक्षात्कार की प्रक्रिया के द्वारा व्यक्ति वास्तव में प्रत्येक वस्तु के परम स्रोत तक नहीं पहुँच सकता । जब सृष्टि का पूर्ण रूप से अन्त हो जाता है, जब वेदों का कोई अस्तित्व नहीं रहता है, भौतिक काल, सूक्ष्म तथा स्थूल भौतिक तत्वों का कोई अस्तित्व नहीं रहता है तथा जब अव्यक्त स्थिति में समस्त जीव नारायण में विश्राम कर रहे होते हैं, तब ये सब निर्मित प्रक्रियाएँ अर्थहीन हो जाती हैं तथा कार्य नहीं कर सकती हैं । किन्तु शाश्वत आध्यात्मिक जगत में भक्ति शाश्वत रूप से चलती रहती है । अतएव आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर के साक्षात्कार की एकमात्र तथ्यपूर्ण प्रक्रिया भक्ति ही है । यदि कोई इस प्रक्रिया को अपनाता है, तो वह ईश्वर के साक्षात्कार की वास्तविक प्रक्रिया को अपनाता है । अतएव श्रील श्रीधर स्वामी ने इस सम्बन्ध में एक पद की रचना की है । इसका आशय है कि प्रत्येक वस्तु के परम स्रोत श्रीभगवान् इतने महान् तथा असीम हैं कि किसी भौतिक उपलब्धि के द्वारा उन्हें समझना जीव के लिए सम्भव नहीं है । अतएव प्रत्येक व्यक्ति को भगवान् से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि वह शाश्वत रूप से भगवान् की भक्ति में संलग्न रहे, जिससे कि भगवान् की कृपा से व्यक्ति सृष्टि के परम स्रोत

को समझ सके । सृष्टि के परम स्रोत परमेश्वर, स्वयं को केवल भक्तों के समक्ष ही प्रकट करते हैं । भगवद्गीता के चौथे अध्याय में भगवान् अर्जुन से कहते हैं, "प्रिय अर्जुन, तुम मेरे भक्त हो तथा तुम मेरे अन्तरंग सखा हो, अतएव मुझे समझने की प्रक्रिया मैं तुम्हारे समक्ष प्रकट करूंगा ।" दूसरे शब्दों में, सृष्टि के परम स्रोत श्रीभगवान् को हम केवल अपने प्रयास से नहीं समझ सकते हैं । प्रथम हमें भक्ति के द्वारा भगवान् को प्रसन्न करना होगा तब वे स्वयं को हमारे समक्ष प्रकट करेंगे । तब हम उन्हें कुछ सीमा तक समझ सकते हैं ।

विभिन्न प्रकार के ऐसे दार्शनिक भी हैं जिन्होंने परम स्रोत को अपने मानसिकचिन्तन के द्वारा समझने का प्रयास किया है । साधारणतया छह प्रकार के दार्शनिक होते हैं । उन्हें षड्-दर्शन कहा जाता है । ये समस्त दार्शनिक निराकारवादी हैं तथा इन्हें मायावादी कहा जाता है । इनमें से प्रत्येक ने अपने मत की स्थापना करने का प्रयत्न किया है, यद्यपि कालान्तर में उन्होंने समझौता कर लिया है तथा कहा है कि सभी मत एक ही लक्ष्य की ओर ले जाते हैं, अतएव प्रत्येक मत न्यायोचित है । किन्तु मूर्तिमान् वेदों की स्तुति के अनुसार उनमें से कोई भी मत न्यायोचित नहीं है, क्योंकि उनकी ज्ञान-प्रक्रिया की रचना अस्थायी भौतिक जगत में हुई है । वे सभी वास्तविक विषय से चूक गए हैं । वास्तविक तथ्य यह है कि परम सत्य अथवा श्रीभगवान् को केवल भक्ति के द्वारा ही समझा जा सकता है ।

मीमांसक नाम से विख्यात दार्शनिकों के एक वर्ग ने, जिसका प्रतिनिधित्व जैमिनि जैसे ऋषि करते हैं, निष्कर्ष निकाला है कि प्रत्येक व्यक्ति को पुण्य कर्मों अर्थात् अपने नियत कर्मों में संलग्न रहना चाहिए तथा ऐसे कर्मों से सर्वोच्च सिद्धि मिल सकती है । १//वद्गीता के नवें अध्याय में इसका खण्डन किया गया है, जहाँ भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि पुण्य कर्मों के द्वारा व्यक्ति का स्वर्ग लोकों तक उन्नयन हो सकता है,

किन्तु जैसे ही व्यक्ति के संचित पुण्य समाप्त हो जाते हैं वैसे ही उसे स्वर्ग लोक त्याग देना पड़ता है । संचित पुण्यों के समाप्त होते ही व्यक्ति को स्वर्ग लोकों में उच्चतर स्तर की भौतिक सम्पन्नता के भोग की त्याग कर तत्काल ही इन निम्न लोकों को आना पड़ता है । इन निम्न लोकों में जीवन की अवधि अत्यन्त अल्प होती है तथा भौतिक सुख का स्तर भी निम्न स्तर का होता है । गीता में प्रयुक्त शब्द हैं, क्षीणे पुण्ये सत्यलोक विक्षति/अतएव मीमासंक दार्शनिकों का यह निष्कर्ष, कि पुण्य कर्मों की ओर स्वाभाविक झुकाव होता है, वैध नहीं है । तथापि केवल पुण्य कर्मों के द्वारा ही कोई भी श्रीभगवान् की कृपा नहीं प्राप्त कर सकता हैं । पुण्य कर्म व्यक्ति को तमो तथा रजोगुण के कारण हुए दूषणों से निर्मल कर सकते हैं । किन्तु भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत तथा उसी के समान अन्य धर्मग्रन्थों के रूप में श्रीभगवान् के दिव्य सन्देश का श्रवण करने में निरन्तर संलग्न रहने वाले भत को यह स्थिति अपने आप प्राप्त हो जाती है । भ्र/वद्र/ता से हमें समझ में आता है कि यदि कोई व्यक्ति पुण्य कर्मों के स्तर तक नहीं पहुँचा है, किन्तु वह पूर्ण रूप से भक्ति में संलग्न है, तब उसे आध्यात्मिक पूर्णता के मार्ग पर भलीभाँति स्थित समझना चाहिए । भगवद्गीता में यह भी कहा गया है कि भक्ति में प्रेम तथा श्रद्धापूर्वक संलग्न व्यक्ति का मार्गदर्शन उसके अन्दर से स्वयं श्रीभगवान् करते हैं । परमात्मा के रूप में स्वयं भगवान् अथवा व्यक्ति के हृदय में आसीन गुरु भक्त का ठीक-ठीक मार्गदर्शन करते हैं, जिसके द्वारा वह शनैःशनैः भगवान् के धाम जा सकता है । मीमांसक दार्शनिकों का निष्कर्ष व्यक्ति को वास्तविक समझ की ओर ले जाने वाला सत्य नहीं है ।

इसी के समान सांख्यवादी दार्शनिक, तत्वज्ञानी अथवा भौतिक वैज्ञानिक हैं, जो कि अपने द्वारा आविष्कृत वैज्ञानिक विधि से इस सृष्टि का अध्ययन करते हैं । वे सृष्टि के रचयिता के रूप में भगवान् की परम सत्ता को नहीं मानते हैं । इसके विपरीत वे यह अशुद्ध निष्कर्ष निकालते

है कि सृष्टि का मूल कारण भौतिक तत्वों की क्रियाप्रतिक्रिया है । किन्तु भगवद्गीता इस विचार को स्वीकार नहीं करती । उसमें यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि सृष्टि की गतिविधियों के पीछे श्रीभगवान् का निर्देशन है । असद् व इदम् अग्र आसीत-इस वैदिक निर्देश के द्वारा भी उपर्युक्त तथ्य की पुष्टि होती है । असद् वा इदम् अग्र आसीत् का अर्थ है विराट जगत की अभिव्यक्ति के पूर्व सृष्टि के मूल का अस्तित्व था । यद्यपि भौतिक तत्वों को भौतिक कारणों के रूप में स्वीकार किया जाता है, तथापि परम कारण स्वयं श्रीभगवान् हैं । अतएव भगवद्गीता का कथन है कि भौतिक प्रकृति श्रीकृष्ण के निर्देशन में कार्य करती है ।

नास्तिक सांख्य दर्शन का निष्कर्ष है कि भौतिक जगत के परिणाम अस्थायी व मायावी होते हैं, अतएव उसका कारण भी मायावी अथवा भ्रममूलक है । सांख्यवादी दार्शनिक शून्यवाद के पक्ष में है, किन्तु वास्तविक तथ्य यह है कि श्रीभगवान् मूल कारण हैं तथा यह सृष्टि भगवान् की भौतिक शक्ति की अस्थायी अभिव्यक्ति है । जब इस अस्थायी अभिव्यक्ति (जगत) का विनाश हो जाता है, तब इसके कारण, आध्यात्मिक जगत का सनातन अस्तित्व जैसे का तैसा बना रहता है । इसीलिए आध्यात्मिक जगत को सनातन-धाम कहा जाता है । सनातन-धाम का अर्थ है, शाश्वत निवास-स्थान । अतएव सांख्यवादी का निष्कर्ष न्यायोचित नहीं है ।

इसके अतिरिक्त वे दार्शनिक भी हैं जिनके प्रमुख गौतम तथा कणाद हैं । उन्होंने भौतिक तत्वों के कार्य-कारण का अत्यन्त सूक्ष्मता से अध्ययन किया है और वे अन्ततः इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आणविक संयोग सृष्टि का मूल कारण है । वर्तमान काल के भौतिक वैज्ञानिक भी गौतम तथा कणाद अनुयायी हैं जिन्होंने परमाणुवाद की स्थापना की है । किन्तु इस सिद्धान्त की कोई पुष्टि नहीं हो सकती है, क्योंकि अणु प्रत्येक वस्तु के मूल कारण नहीं हैं । इस तथ्य की पुष्टि भगवद्गीता, श्रीमद्भागवत

तथा वेदों में भी की गई है, जिसमें कहा गया है, एको नारायण अ/सीए/इसका अर्थ है सृष्टि के पूर्व केवल नारायण का अस्तित्व था । श्रीमद्रा/वत तथा वेदान्त-सूत्र भी कहते हैं कि मूल कारण चेतन है तथा प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों ही रूप से उसे इस सृष्टि के अन्दर प्रत्येक वस्तु का ज्ञान है । भगवद्गीता में श्रीकृष्ण कहते है, अहं सवस्य प्रभव-"मैं प्रत्येक वस्तु का मूल कारण हूँ ।" वे यह भी कहते हैं, मत, सव प्रवर्तीते-'मुझसे ही प्रत्येक वस्तु को अस्तित्व प्राप्त होता है ।" अतएव अणु भौतिक अस्तित्व के आधारभूत संयोग बन सकते हैं, किन्तु इन अणुओं की उत्पति श्रीभगवान् से होती है । इस प्रकार गौतम तथा कणाद के दर्शन का अनुमोदन नहीं किया जा सकता है ।

इसी प्रकार निर्विशेषवादियों में प्रमुख अष्टावक्र तथा बाद में शंकराचार्य स्वीकार करते हैं कि निराकार ब्रह्म ही सभी कारणों का मूल कारण है । उनके सिद्धान्त के अनुसार यह भौतिक जगत अस्थायी और मिथ्या है तथा निर्विशेष ब्रह्मज्योति सत्य है । किन्तु इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं कहते हैं कि ब्रह्माज्योति भगवान् श्रीकृष्ण के शरीर की किरण मात्र है । इस प्रकार निराकार ब्रह्म इस ब्रह्माण्ड का वास्तविक कारण नहीं हो सकता । सभी कारणों के परम कारण तो भगवान् श्रीगोविन्द ही हैं ।

निर्विशेषवादियों का सबसे खतरनाक सिद्धान्त तो यह है कि उनके अनुसार जब श्रीभगवान् अवतरित होते हैं, तो वे भौतिक त्रिगुणों के अधीन यह शरीर धारण करते हैं । यह कथन बहुत ही अपराधपूर्ण है तथा इस मायावादी सिद्धान्त की श्री चैतन्य महाप्रभु द्वारा निन्दा की गई है । उन्होंने कहा, यदि कोई यह सोचे कि श्रीभगवान् के दिव्य शरीर का निर्माण इस भौतिक प्रकृति के अधीन हुआ है, तो यह भगवान् विष्णु के प्रति एक महान् अपराध है । इसी प्रकार श्रीमद्रा/वत में भी कथन है कि मूर्ख तथा अज्ञानी ही श्रीभगवान् का उपहास करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण, भगवान्

राम तथा भगवान् श्री चैतन्य महाप्रभु मानव-समाज में वस्तुत: नरवत् लीला मात्र करते हैं ।

मूर्तिमान वेद पूर्ण रूप से निराकारवादी धारणा की असत्य कथन के रूप में निन्दा करते हैं । ब्रह्म-सहित) में अ/नद चिन्मयरस कह कर श्रीभगवान् के श्रीविग्रह का वर्णन किया गया है । श्रीभगवान् आध्यात्मिक विग्रह के स्वामी हैं, न कि भौतिक देह के । वे अपने शरीर के किसी भी भाग से किसी भी वस्तु को भोग सकते हैं, इसीलिए वे सर्वशक्तिमान हैं । भौतिक शरीर के अंग केवल एक विशेष कार्य को ही सम्पादित कर सकते हैं, जैसे कि हाथ पकड़ने का काम करते हैं, किन्तु वे देख अथवा सुन नहीं सकते हैं । किन्तु श्रीभगवान् का शरीर आनन्द चिन्मयरस से निर्मित है अथवा सच्चिदानन्दविग्रह है, अतएव वे अपने किसी भी अंग से कुछ भी भोग सकते हैं अथवा सब कुछ कर सकते हैं । भगवान् के आध्यात्मिक शरीर को भौतिक मानने की धारणा का जन्म श्रीभगवान् को बद्धात्मा के बराबर बना देने की व्यक्ति की प्रवृत्ति के कारण होता है । बद्धात्मा भौतिक शरीरधारी होती है । अतएव यदि भगवान् भी भौतिक शरीरधारी हों, तब श्रीभगवान् तथा जीवों को एक मानने के निराकारवादी सिद्धान्त का अत्यन्त सरलता से प्रचार किया जा सकता है ।

वास्तव में जब श्रीभगवान् का आगमन होता है, तब वे विभिन्न लीलाओं का प्रदर्शन करते हैं, फिर माता यशोदा की गोद में लेटे हुए उनके शिशु शरीर तथा असुरों से युद्ध कर रहे उनके तथाकथित युवा शरीर के मध्य कोई भेद नहीं है । अपने शिशु शरीर में भी उन्होंने पूतना, तृणावर्त, अघासुर आदि के समान असुरों से युद्ध किया था । उस समय भी उनकी शक्ति उसी के बराबर थी, जितनी शक्ति से उन्होंने अपनी युवावस्था में दन्तवक्र, शिशुपाल तथा अन्य असुरों से युद्ध किया था । भौतिक जीवन में जैसे ही एक बद्धात्मा अपना शरीर परिवर्तन करती है, उसे अपने पूर्व शरीर के विषय में सब कुछ विस्मृत हो जाता है । किन्तु

भगवद्गीता से हमें ज्ञात होता है कि सच्चिदानन्दविग्रह होने के कारण श्रीकृष्ण को यह विस्मृति नहीं हुई कि करोड़ों वर्ष पूर्व उन्होंने सूर्यदेव को भगवद्गीता के विषय में उपदेश दिया था । अतएव भौतिक तथा आध्यात्मिक दोनों ही अस्तित्वों से परे होने के कारण भगवान् को पुरुषोत्तम के रूप में जाना जाता है । वे समस्त कारणों के कारण हैं । इसका अर्थ है कि वे आध्यात्मिक जगत के साथ-साथ भौतिक जगत के भी कारण हैं । श्रीभगवान् सर्वशक्तिमान तथा सर्वज्ञ हैं । चूँकि एक भौतिक शरीर न तो सर्वशक्तिमान हो सकता है न ही सर्वज्ञ, अतएव निश्चित रूप से भगवान् का शरीर भौतिक नहीं है । मायावादियों के इस सिद्धान्त का किसी भी प्रकार से अनुमोदन नहीं किया जा सकता है कि श्रीभगवान् एक भौतिक शरीर के साथ इस भौतिक जगत में आते हैं ।

यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भौतिकतावादी दार्शनिकों की समस्त उत्पतियाँ स्वप्न में निकाले गए निष्कर्षों के समान अस्थायी मायावी अस्तित्व से उद्धृत होती हैं । निश्चित रूप से ऐसे निष्कर्ष हमें परम सत्य तक नहीं ले जा सकते हैं । परम सत्य को केवल भक्ति के द्वारा ही समझा जा सकता है, जैसाकि भगवान् भगवद्गीता में कहते हैं, भक्त्या मामू अभिजान/ति-"कोई भी व्यक्ति मुझे केवल भति के द्वारा ही समझ सकता है ।" श्रील श्रीधर स्वामी ने इस सम्बन्ध में एक उत्तम पद की रचना की है, जिसमें कहा है, "प्रिय भगवन्! अन्य लोगों को झूठे तकों एवं नीरस विचारों में संलग्न रहने दीजिए । उन्हें अपने महान् दार्शनिक विचारों पर सिद्धान्त बनाने दीजिए । उन्हें अज्ञान एवं माया के अंधकार में भटकने दीजिए । यद्यपि वे श्रीभगवान् के ज्ञान से रहित हैं, तथापि स्वयं को अत्यन्त विद्वान पण्डित समझ कर वे झूठे आनन्द में मग्न रहते हैं । जहाँ तक मेरा सम्बन्ध है, मैं सर्वसुन्दर श्रीभगवान् के पावन नामों-माधव, वामन, त्रिनयन, संकर्षण, श्रीपति तथा गोविन्द-का जप करने मात्र के द्वारा ही मोक्षप्राप्ति

की कामना करता हूँ । केवल भगवान् के दिव्य नामों के जप के द्वारा ही मुझे इस भौतिक अस्तित्व के दूषणों से मुक्त हो जाने दीजिए ।"

इस प्रकार से मूर्तिमान् वेदों ने कहा, "प्रिय भगवन्! आपकी कृपा मात्र से जब कोई जीव आपकी उत्कृष्ट दिव्य स्थिति के विषय में उचित निष्कर्ष पर पहुँच जाता है, तब वह तथाकथित दार्शनिकों अथवा मीमांसकों के द्वारा विरचित विभिन्न सिद्धान्तों के विषय में चिन्ता करना बन्द कर देता है ।" यहाँ पर गौतम, कणाद, पतञ्जलि तथा कपिल (निरीश्वरवादी) के तर्कवादी सिद्धान्तों के विषय में उल्लेख किया गया है । वास्तव में दो कपिल हैं-कर्दम मुनि के पुत्र कपिल भगवान् के एक अवतार हैं तथा दूसरे कपिल आधुनिक काल के एक नास्तिक हैं । नास्तिक कपिल को असत्य रूप से प्राय: स्वायम्भुव मनु की कालावधि में कर्दम मुनि के पुत्र के रूप में प्रकट हुए श्रीभगवान् को समझ लिया जाता है । श्रीभगवान् के अवतार भगवान् कपिल दीर्घ काल पूर्व प्रकट हुए थे । आधुनिक युग वैवस्वत मनु का युग है जब कि वे स्वायम्भुव मनु के काल में प्रकट हुए थे ।

मायावादी दर्शन के अनुसार यह व्यक्त जगत अथवा भौतिक जगत मिथ्या, माया अथवा असत्य है । उनका सिद्धान्त है ब्रह्म-सत्य ज/लू-मिथ्य//उनके अनुसार केवल ब्रह्मज्योति ही सत्य है तथा सृष्टि मायावी (भ्रम) अथवा असत्य है । किन्तु वैष्णव दर्शन के अनुसार श्रीभगवान् इस सृष्टि के रचयिता हैं । भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि वे अपने एक अंश के द्वारा इस भौतिक जगत में प्रवेश करते हैं और इस प्रकार सृष्टि होती है । वेदों से भी हम समझ सकते हैं कि यह असत् अथवा अस्थायी जगत सत् अथवा तथ्य का एक विकिरण भी है । वेदात्त-सूत्र से भी हम यह समझते हैं कि प्रत्येक वस्तु का जन्म परब्रह्म से हुआ है । इस प्रकार वैष्णव इस सृष्टि को मिथ्या नहीं मानते हैं । वैष्णव दार्शनिक इस भौतिक जगत में प्रत्येक वस्तु का अवलोकन परमेश्वर के सम्बन्ध में करते हैं ।

भौतिक जगत की इस धारणा का श्रील रूप गोस्वामी ने अतीव सुन्दरता से स्पष्टीकरण किया है । उन्होंने कहा कि इस तथ्य से अज्ञात रह कर कि यह भौतिक जगत भी परमेश्वर का ही विस्तार है, इस भौतिक जगत को माया अथवा मिथ्या मान कर त्याग देने का व्यावहारिक रूप से कोई मूल्य नहीं है । किन्तु वैष्णवजन इस जगत के प्रति मोह से मुक्त होते हैं, क्योंकि सामान्यतया भौतिक जगत को इन्द्रियतृप्ति की विषयवस्तु के रूप में स्वीकार किया जाता है । वैष्णवजन इन्द्रियतृप्ति के पक्ष में नहीं है, अतएव वे भौतिक गतिविधियों पर अनुरत नहीं हैं । वैष्णवजन इस भौतिक जगत को वैदिक आदेशों के विधि-विधानों के अनुसार स्वीकार करते हैं । श्रीभगवान् प्रत्येक वस्तु के मूल कारण हैं, अतएव इस भौतिक जगत में भी वैष्णवजन प्रत्येक वस्तु का अवलोकन श्रीकृष्ण से उसका सम्बन्ध मान कर करते हैं । इस प्रगतिशील ज्ञान के द्वारा प्रत्येक वस्तु अध्यात्ममय बन जाती है । दूसरे शब्दों में भौतिक जगत में प्रत्येक वस्तु पहले से ही अध्यात्ममय है, किन्तु अपनी अज्ञानता के कारण हम वस्तुओं को भौतिक रूप में देखते हैं ।

मूर्तिमान् वेदों ने दृष्टान्त प्रस्तुत किया कि स्वर्ण की खोज करने वाले स्वर्ण निर्मित कुण्डल, चूड़ियों अथवा स्वर्णनिर्मित अन्य किसी वस्तु का केवल इसलिए तिरस्कार नहीं करते कि वे मूल स्वर्ण से भिन्न आकार में हैं । समस्त जीव परमेश्वर के विभिन्न अंश हैं तथा गुण में उनके समान ही हैं, किन्तु अब उन्हें चौरासी लाख योनियों में भिन्न-भिन्न आकार प्राप्त हैं । यह ठीक उसी प्रकार है जैसे स्वर्ण के एक ही स्रोत से भिन्न-भिन्न प्रकार के आभूषण निर्मित होते हैं । जिस प्रकार स्वर्ण में रुचि रखने वाला व्यक्ति समस्त विभिन्न आकार-प्रकार के स्वर्ण आभूषणों को स्वीकार कर लेता है, उसी भाँति यह भलीभाँति जानते हुए कि समस्त जीव गुणों में श्रीभगवान् के समान ही हैं, एक वैष्णव समस्त जीवों को भगवान् के सनातन सेवकों के रूप में स्वीकार करता है । इस प्रकार एक वैष्णव के

रूप में व्यक्ति को इन बद्ध तथा पथभ्रष्ट जीवों को सुधार कर, उन्हें कृष्णभावनामृत में प्रशिक्षित करने तथा उन्हें अपने घर, भगवान् के धाम, ले जाने के द्वारा श्रीभगवान् की सेवा करने का पर्याप्त अवसर प्राप्त होता है । तथ्य यह है कि अब जीवों के मन भौतिक त्रिगुणों द्वारा व्याकुल हैं तथा इसीलिए जीव स्वप्नवत् एक देह से दूसरे देह में देहान्तरण कर रहे हैं । किन्तु जब उनकी चेतना कृष्णभावनामृत में परिवर्तित हो जाती है, तब वे तत्काल ही श्रीकृष्ण को अपने हृदय में स्थापित कर लेते हैं और इस प्रकार उनके मोक्ष का मार्ग निष्कंटक बन जाता है ।

समस्त वेदों में श्रीभगवान् एवं जीवों को समान गुणयुत-चैतन्य अथवा आध्यात्मिक-कहा गया है । इस तथ्य की पुष्टि पद्म-पुराण में भी की गई है, जिसमें कहा गया है कि दो प्रकार के आध्यात्मिक अस्तित्व होते हैं, एक को जीव तथा दूसरे को परमेश्वर कहा जाता है । ब्रह्माजी से लेकर चींटी तक समस्त जीवित इकाइयाँ जीव हैं, जबकि भगवान् चतुर्भुज श्रीविष्णु अथवा जनार्दन हैं । आत्मा शब्द केवल श्रीभगवान् के लिए ही प्रयुक्त किया जा सकता है, किन्तु जीव भी भगवान् के अंश हैं, अतएव कभी-कभी आत्मा शब्द जीवों के लिए भी प्रयुक्त होता है । अतएव जीवों को जीव/त्मा कहा जाता है तथा परमेश्वर को परमात्मा कहा जाता है । परमात्मा तथा जीवात्मा दोनों ही इस भौतिक जगत में हैं, अतएव इस भौतिक जगत का इन्द्रियतृप्ति से भिन्न एक दूसरा ही प्रयोजन है । इन्द्रियतृप्ति के जीवन की धारणा माया (भ्रम) है, किन्तु इस भौतिक जगत में भी जीवात्मा के द्वारा परमात्मा की सेवा की धारणा कदापि माया अथवा भ्रममूलक नहीं है । एक कृष्ण भत को इस तथ्य का पूर्ण बोध रहता है, इस प्रकार वह इस भौतिक जगत को मिथ्या नहीं मानता, अपितु दिव्य सेवा की वस्तुस्थिति में कर्म करता है । इसलिए भक्त इस भौतिक जगत में प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा के अवसर के रूप में देखता है । वह किसी भी वस्तु को भौतिक कह कर उसका तिरस्कार नहीं करता है,

अपितु प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा में नियोजित कर देता है । इस प्रकार भक्त सदैव दिव्य स्थिति में रहता है तथा वह प्रत्येक वस्तु, जिसका भक्त उपयोग करता है, भगवान् की सेवा में प्रयुक्त होने से आध्यात्मिक रूप से निर्मल हो जाती है ।

इस सम्बन्ध में श्रीधर स्वामी ने एक सुन्दर पद की रचना की है- "कुछ लोगों द्वारा मिथ्या समझे जाने वाले इस भौतिक जगत में भी सदैव सत्य के रूप में प्रकाशित होने वाले श्रीभगवान् की मैं उपासना करता हूँ ।" इस भौतिक जगत के मिथ्या होने की धारणा का कारण अज्ञान है, किन्तु कृष्णभावनामृत में प्रगतिशील व्यक्ति प्रत्येक वस्तु में श्रीभगवान् के दर्शन करता है । यह वास्तव में वैदिक सूत्रसव खल्विद ब्रह्म "सब कुछ ब्रह्म है"-का साक्षात्कार है ।

मूर्तमान वेदों ने आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! अल्पबुद्धि मानव आत्म– साक्षात्कार के अन्य मार्गों का अवलम्बन करते हैं, किन्तु वास्तव में जब तक व्यक्ति पूर्ण रूप से विशुद्ध भक्त न हो तब तक भौतिक प्रदूषण से मुक्ति अथवा जन्म तथा मृत्यु के निरन्तर चक्र को रोकने का कोई अवसर नहीं है । हे भगवन्! जैसाकि वेदों में कहा गया है (एको बहूनां यो विदधाति काम/नू) प्रत्येक वस्तु आपकी विभिन्न शक्तियों पर आश्रित है तथा आप प्रत्येक व्यक्ति का पोषण करते हैं । अतएव भगवन्! आप समस्त जीवों-देवताओं, मानवों तथा पशुओं-के पोषक तथा पालनकर्ता हैं । आप सबका पोषण करते हैं तथा आप सबके हृदय में भी स्थित हैं । दूसरे शब्दों में, आप समस्त सृष्टि के मूल हैं । अतएव आपकी भक्ति में संलग्न व्यक्ति स्थिर चित्त से सदैव आपकी उपासना करते हैं । वस्तुत: ऐसे भक्त विश्ववृक्ष के मूल में जलदान करते हैं । अतएव भक्ति सेवा के द्वारा व्यक्ति न केवल श्रीभगवान् को अपितु अन्य सबों को भी सन्तुष्ट करता है, क्योंकि श्रीभगवान् ही प्रत्येक जीव के पोषणकर्ता एवं पालनहार हैं । श्रीभगवान् के सर्वव्यापी स्वभाव को समझने के कारण

एक भक्त सर्वाधिक व्यावहारिक लोकहित चिन्तक तथा परोपकारी है । कृष्णभावनामृत में पूर्णरूपेण संलग्न ऐसे विशुद्ध भक्त अति सरलतापूर्वक जन्म-मरण के चक्र पर विजय प्राप्त कर लेते हैं तथा वे मृत्यु के सिर पर से छलांग लगा लेते हैं ।"

एक भक्त मृत्यु अथवा शरीर-परिवर्तन से कभी भी भयभीत नहीं होता है । उसकी चेतना कृष्णभावनामृत में रूपान्तरित हो गई है और यदि वह भगवान् के धाम वापस नहीं जाता है, यदि वह अन्य भौतिक शरीर में देहान्तरण करता है, तब भी उसके लिए भय का कोई कारण नहीं है । इसका एक ज्वलन्त दृष्टान्त भरत महाराज हैं । यद्यपि अपने अगले जन्म में वे एक मृग बने तथापि उसके बाद के जन्म में वे समस्त भौतिक दूषणों से पूर्णरूपेण मुक्त हो गए तथा उन्हें भगवान् के धाम की प्राप्ति हुई । अतएव भगवद्गीता में पुष्टि की गई है कि एक भक्त की कभी-भी पराजय नहीं होती है । उसका अपने घर, भगवान् के धाम, वैकुण्ठ लोक को लौटने का पथ निश्चित है । यद्यपि एक जन्म में भक्त से कोई भूल हो जाए, तदापि उसके कृष्णभावनामृत की निरन्तरता के कारण उसकी अधिकाधिक उन्नति होती जाती है, जब तक कि वह भगवान् के धाम नहीं लौट जाता है । एक शुद्ध भक्त न केवल अपने व्यक्तिगत अस्तित्व को ही निर्मल करता है, अपितु जो कोई उसका शिष्य बनता है, वह भी अन्ततः निर्मल हो जाता है तथा बिना किसी कठिनाई के भगवान् के धाम में प्रवेश करने में समर्थ होता है । शुद्ध भक्त न केवल स्वयं सरलतापूर्वक मृत्यु का अतिक्रमण कर लेता है, अपितु उसकी कृपा से उसके शिष्य भी बिना किसी कठिनाई के ऐसा कर सकते हैं । भक्ति की शक्ति इतनी महान् है कि अज्ञान के सागर को पार करने पर अपने दिव्य उपदेशों के द्वारा एक शुद्ध भक्त अन्य व्यक्ति को भी प्रेरित कर सकता है ।

एक शुद्ध भक्त का अपने शिष्य को उपदेश देना भी अत्यन्त सरल होता है । शुद्ध भत के पदचिह्नों का अनुसरण करने में किसी को कोई कठिनाई नहीं होती है । जो श्रीशुकदेव गोस्वामी, यमराज आदि भगवान् के महान् भक्तकों की गुरु–परम्परा का अनुसरण करता है, उसे मोक्ष के द्वार सरलतापूर्वक प्राप्त होते हैं । दूसरी ओर वे लोग हैं, जो भक्त नहीं हैं, किन्तु ज्ञान, योग तथा कर्म जैसी आत्म-साक्षात्कार की अनिश्चित प्रक्रियाओं में संलग्न हैं । उन्हें अभी-भी दूषित समझा जाता है । दूषित व्यक्ति यद्यपि आत्म-साक्षात्कार में प्रगतिशील प्रतीत होते हैं, तथापि वे स्वयं को भी मुक्त नहीं कर सकते हैं, फिर उनका अनुसरण करने वाले अन्य लोगों का तो कहना ही क्या! ऐसे अभक्तों की तुलना खूंटे से बँधे हुए पशु से की गई है, क्योंकि वे एक निश्चित मत की औपचारिकताओं की सीमा से आगे जा सकने में असमर्थ रहते हैं । वेदवाद कह कर भगवद्गीता में उनकी निन्दा की गई है । वे यह नहीं समझ सकते हैं कि वेद प्रकृति के भौतिक गुणों-रज तम तथा सत-की गतिविधियों के विषय में बताते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को परामर्श दिया था कि व्यक्ति को वेदों द्वारा निर्धारित कर्तव्यों की सीमा से आगे जाना चाहिए तथा कृष्णभावनामृत अर्थात् भक्ति को अपनाना चाहिए । भगवद्गीता में कहा गया है, निस्त्रैगुण्यो भावार्जुन, "प्रिय अर्जुन! वैदिक शास्त्रोत विधियों से ऊपर उठने का प्रयास करो ।" वैदिक शास्त्रोत विधियों के सम्पादन से आगे की यह दिव्य स्थिति भक्ति है । भगवद्गीता में भगवान् स्पष्ट रूप से कहते हैं कि जो व्यक्ति विशुद्ध रूप से उनकी भक्ति में संलग्न हैं, वे ब्रह्म में स्थित हैं । वास्तविक ब्रह्म-साक्षात्कार का अर्थ है कृष्णभावनामृत तथा भक्ति में संलग्न रहना । अतएव भक्तगण सच्चे ब्रह्मचारी हैं, क्योंकि उनकी गतिविधियाँ सदैव ही कृष्णभावनामृत अथवा भक्ति में होती है ।

अतएव कृष्णभावनामृत आन्दोलन सभी प्रकार के धर्मवादियों के लिए एक महान् आह्वान है । यह आह्वान अधिकारपूर्वक उन्हें इस आन्दोलन में सम्मिलित होने का निमंत्रण देता है, जिसके द्वारा व्यक्ति भगवान् से प्रेम करने की विधि सीख सकता है तथा इस प्रकार धर्मग्रन्थों के विधि-निषेधों के समस्त सूत्रों तथा औपचारिकताओं का अतिक्रमण कर सकता है । जो व्यक्ति अपरिवर्तनशील धार्मिक सिद्धान्तों की सीमाओं पर विजय प्राप्त नहीं कर सकता, उसकी तुलना अपने स्वामी द्वारा खूंटे से बाँध दिए गए पशु से की गई है । समस्त धर्मों का प्रयोजन भगवान् को समझना तथा श्रीभगवान् के प्रति अपने सुप्त प्रेम का विकास करना है । यदि कोई व्यक्ति केवल धार्मिक सूत्रों तथा औपचारिकताओं से ही चिपका रहता है तथा ईश्वर के प्रति प्रेम की स्थिति तक उन्नति नहीं करता है, तब उसे खूंटे से बद्ध पशु समझा जाता है । दूसरे शब्दों में, यदि कोई व्यक्ति कृष्णभावनामृत में अवस्थित नहीं है, तब वह भौतिक अस्तित्व के दूषणों से मुक्त होने का अधिकारी नहीं होता है ।

श्रील श्रीधर स्वामी ने एक सुन्दर पद की रचना की है, जिसमें कहा है, "अन्य लोगों को कठोर तप में संलग्न रहने दीजिए, उन्हें पर्वत के शिखर से भूमि पर गिर कर प्राणोत्सर्ग करने दीजिए, उन्हें मोक्ष के लिए अनेक तीर्थ स्थानों की यात्रा करने दीजिए, अथवा उन्हें दर्शन तथा वैदिक साहित्य के गहन अध्ययन में संलग्न रहने दीजिए, योगियों को ध्यान मग्न रहने दीजिए तथा विभिन्न मतों को अपने-अपने मत की श्रेष्ठता सिद्ध करने के लिए अनावश्यक तर्क-वितर्क में संलग्न रहने दीजिए । किन्तु यह तथ्य है कि जब तक व्यक्ति कृष्णभावनाभावित नहीं होता है, जब तक व्यक्ति भक्ति में संलग्न नहीं होता है तथा जब तक व्यक्ति को श्रीभगवान् की दया प्राप्त नहीं होती है, वह भव-सागर को पार नहीं कर सकता है ।" अतएव बुद्धिमान व्यक्ति समस्त अपरिवर्तशील धारणाओं को त्याग देता है तथा

वास्तविक मोक्ष के हेतु कृष्णभावनामृत-आन्दोलन में सम्मिलित हो जाता है ।

मूर्तिमान वेदों ने आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! आपके निराकार लक्षण को वेदों में स्पष्ट किया गया है-आपके हाथ नहीं हैं, किन्तु आप अर्पित किए जाने वाले समस्त यज्ञ स्वीकार कर सकते हैं । आपके पैर नहीं है, किन्तु आप किसी से भी अधिक तीव्र गति से चल सकते हैं । यद्यपि आपके नेत्र नहीं हैं, तथापि आप भूत, वर्तमान तथा भविष्य की समस्त घटनाओं को देख सकते हैं । आपके कर्ण नहीं हैं । किन्तु आप कही हुई प्रत्येक बात सुन सकते हैं । यद्यपि आपके मन नहीं है, तथापि आपको प्रत्येक व्यक्ति तथा उसके भूत, वर्तमान तथा भविष्य के समस्त कर्मों का ज्ञान है । फिर भी कोई यह नहीं जानता है कि आप कौन हैं । आप सबको जानते हैं, किन्तु आपको कोई नहीं जानता है, अतएव आप आदि तथा परम-पुरुष हैं ।"

इस भाँति वेदों के एक अन्य भाग में कहा गया है, "आपके लिए कोई कार्य नहीं है । आप अपने ज्ञान तथा शक्ति में इतने पूर्ण हैं कि आपकी इच्छा मात्र से प्रत्येक वस्तु प्रकाशित हो जाती है । आपके बराबर अथवा आपसे बढ़कर कोई नहीं तथा प्रत्येक प्राणी आपके सनातन सेवक के रूप में कार्य कर रहा है ।" इस प्रकार वैदिक कथन वर्णन करते हैं कि परम सत्ता के पैर, हाथ, नेत्र, कर्ण तथा मन नहीं हैं और फिर भी वे अपनी शक्तियों के माध्यम से क्रिया कर सकते हैं तथा समस्त जीवों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, भगवान् के हाथ व पैर सर्वत्र हैं, वह सर्वव्यापी है । समस्त जीवों के हाथ, पैर, कर्ण तथा चक्षु जीव के हृदय में स्थित परमात्मा के निर्देशानुसार ही कर्म कर रहे हैं तथा गतिशील हैं । जब तक परमात्मा उपस्थित न हों, हाथ व पैरों का कर्म करना सम्भव नहीं है । किन्तु श्रीभगवान् इतने महान्, स्वतंत्र तथा पूर्ण हैं कि चक्षु, पैर तथा कर्ण के न होने पर भी वे अपनी

गतिविधियों के लिए अन्यों पर निर्भर नहीं हैं । इसके विपरीत अपनी विभिन्न इन्द्रियों की गतिविधियों के लिए अन्य लोग ही श्रीभगवान् पर निर्भर हैं । जब तक कि जीव को परमात्मा से प्रेरणा प्राप्त नहीं होती है, वह कर्म नहीं कर सकता है ।

तथ्य यह है कि अन्तत: परम सत्य ही परम पुरुष हैं । किन्तु वे अपनी विभिन्न शक्तियों के माध्यम से कार्य कर रहे हैं, जिन्हें देखना स्थूल भौतिकतावादियों के लिए असम्भव है, अतएव भौतिकतावादी उन्हें निराकार अथवा निर्विशेष मानते हैं । उदाहरण के लिए एक पुष्प के चित्र में हम व्यक्तिगत कलात्मक कौशल देख सकते हैं तथा यह भी समझ सकते हैं कि रंग-संयोजन तथा आकार आदि के चित्रण में कलाकार ने अपना पूर्ण ध्यान लगाया है । विभिन्न खिले हुए पुष्पों के चित्रण में कलाकार का कौशल स्पष्ट रूप से प्रदर्शित होता है । किन्तु वास्तविक खिले हुए पुष्पों जैसी कलात्मक अभिव्यक्ति में ईश्वर का हाथ देखे बिना स्थूल भौतिकतावादी यह निष्कर्ष निकाल लेते हैं कि परम सत्य निराकार है । वास्तव में परम सत्य साकार है, किन्तु वह स्वतंत्र है । उसे स्वयं रंग व तूलिका उठा कर फूलों में रंग भरने की आवश्यकता नहीं होती है, किन्तु उसकी शक्तियाँ इतने अद्‌भुत रूप से कार्य कर रही हैं कि ऐसा प्रतीत होता है कि किसी कलाकार की सहायता बिना पुष्प अपने आप ही उत्पन्न हो गए हैं । अल्प बुद्धि मानव ही परम सत्य के निराकार दृष्टिकोण को स्वीकार करते हैं, क्योंकि जब तक व्यक्ति भगवान् की सेवा में संलग्न नहीं होता है, वह परमेश्वर की कार्य-विधि को नहीं समझ सकता है, वह उनके नाम को भी नहीं जान सकता है । उनकी गतिविधियों तथा व्यक्तिगत लक्षणों के विषय में प्रत्येक बात भक्त के सम्मुख उसकी भक्ति की प्रवृत्ति के माध्यम से ही प्रकट होती है ।

भगवद्गीता में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है, भोकारं यज्ञ तपसामू- भगवान् सभी प्रकार के यज्ञों तथा समस्त तपों के फल का भोग करने

वाले हैं । भगवान् यह भी कहते हैं, सव-लोक-महेश्वरम्-"मैं समस्त लोकों का स्वामी हूँ ।" इस प्रकार यही श्रीभगवान् की स्थिति है । यद्यपि वे वृन्दावन में उपस्थित हैं तथा अपने सनातन संगियों, गोपियों तथा ग्वालबालों, के सान्निध्य में दिव्य सुख का भोग करते हैं, तथापि उनकी शक्तियाँ उनके निर्देशन में सम्पूर्ण सृष्टि में कार्य कर रही हैं । वे उनकी सनातन लीलाओं में व्यवधान नहीं डालती हैं ।

भक्ति के माध्यम से ही व्यक्ति यह समझ सकता है कि अपनी अचिन्त्य शक्तियों के द्वारा श्रीभगवान् किस प्रकार एक ही साथ निराकार तथा साकार रूप में कार्य करते हैं । वे ठीक एक सम्राट की भाँति कार्य कर रहे हैं तथा उनके अन्तर्गत हजारों राजा तथा मुखिया कार्य कर रहे हैं । श्रीभगवान् परम स्वतंत्र नियन्ता हैं तथा ब्रह्माजी, शिवजी, स्वर्ग के राजा इन्द्र, चन्द्र लोक के राजा तथा सूर्यलोक के राजा सहित समस्त देवता उनके निर्देशन में कार्य कर रहे हैं । वेदों में इस बात की पुष्टि की गई है कि श्रीभगवान् के भय के कारण ही सूर्य चमक रहा है, पवन बह रहा है तथा अग्नि ताप वितरित कर रहा है । भौतिक प्रकृति समस्त प्रकार की चल तथा अचल वस्तुओं का उत्पादन कर रही है, किन्तु उनमें से कोई भी स्वतंत्र रूप से, परमेश्वर के निर्देशन के बिना, न तो कुछ निर्माण कर सकती है, न कार्य कर सकती है । जिस प्रकार सम्राट को वार्षिक कर देने वाले अधीनस्थ राजा होते हैं उसी भाँति वे सब् श्रीभगवान् के सहायक के रूप में कार्य कर रही हैं । वैदिक निर्देशों में कहा गया है कि प्रत्येक जीव श्रीभगवान् को अर्पित किए गए भोजन के शेषांश को खा कर जीवित रहता है । महान् यज्ञों के विषय में विधान है कि यज्ञ के अधिष्ठाता देवता के रूप में श्रीनारायण को उपस्थित रहना चाहिए तथा यज्ञ के सम्पादित होने के पश्चात् भोजन का शेषांश देवताओं में वितरित किया जाता है । इसे यश-५// कहते हैं । प्रत्येक देवता के लिए एक निश्चित यज्ञ-भाग होता है, जिसे वह प्रसाद के रूप में स्वीकार करता है । इससे यह निष्कर्ष

निकलता है कि देवतागण स्वतंत्ररूप से शक्तिमान नहीं हैं । श्रीभगवान् के आदेश के अन्तर्गत उन्हें विभिन्न अधिकारियों के रूप में नियुक्त किया गया है तथा वे प्रसाद अथवा यज्ञों के शेषांश का भक्षण कर रहे हैं । वे परमेश्वर के आदेशों को ठीक उनके योजनानुसार कार्यन्वित कर रहे हैं । श्रीभगवान् पृष्ठभूमि में हैं तथा अन्य लोग उनके आदेशों को कार्यान्वित कर रहे हैं । यह केवल प्रतीत होता है कि वे निराकार हैं, किन्तु वास्तव में ऐसा नहीं है । अपनी पूर्णरूपेण भौतिकतावादी विधि से हम यह सोच भी नहीं सकते हैं कि परमेश्वर किस प्रकार भौतिक प्रकृति की निर्विशेष गतिविधियों से ऊपर हैं । अतएव भगवान् भगवद्गीता में स्पष्ट करते हैं कि उनसे श्रेष्ठ और कुछ नहीं है तथा उनकी व्यक्तिगत किरणों के प्रकाश के रूप में निराकार ब्रह्म उनके अधीनस्थ रूप में स्थित है । श्रीपाद श्रील श्रीधर स्वामी ने इस सम्बन्ध में एक श्रेष्ठ पद की रचना की है, "मैं श्रीभगवान् को सादर प्रणाम करता हूँ, जो स्वयं भौतिक इन्द्रिय-विहीन हैं, किन्तु जिनके निर्देश तथा इच्छा के माध्यम से समस्त भौतिक इन्द्रियाँ क्रियाशील हैं । वे समस्त भौतिक इन्द्रियों की परम शक्ति हैं । वे सर्वशक्तिमान हैं तथा वे प्रत्येक कार्य के परम कर्ता हैं । अतएव वे सबके उपास्य हैं । उन परम पुरुष को मैं सादर प्रणाम करता हूँ ।"

भगवद्गीता में श्रीकृष्ण ने स्वयं भी घोषणा की है कि वे पुरुषोतम हैं, जिसका अर्थ है परम पुरुष । पुरुष का अर्थ है व्यक्ति तथा उत्तम का अर्थ है परम अथवा दिव्य । भगवद्गीता में भगवान् ने यह भी कहा है कि समस्त जड़ तथा जीवों से ऊपर होने के कारण वे पुरुषोत्तम के नाम से विख्यात हैं । एक अन्य स्थान पर भगवान् कहते हैं, जैसे वायु सर्वव्यापी आकाश में स्थित है, उसी भाँति प्रत्येक प्राणी उनमें स्थत है तथा प्रत्येक व्यक्ति उनके निर्देशन में कार्य कर रहा है ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! आप सबके प्रति सम भाव खते हैं । किसी विशेष जीव के प्रति आप पक्षपात नहीं करते हैं ।

आपके अंश के रूप में जीव जीवन की विभिन्न दशाओं में सुख अथवा दुख भोगते हैं । वे ठीक अग्नि के स्फुलिंग की भाँति हैं । जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि पर स्फुलिंग नृत्य करते हैं, उसी भाँति समस्त जीव आपके पोषण के भरोसे पर नृत्य कर रहे हैं । आप उन्हें उनकी इच्छित प्रत्येक वस्तु उपलब्ध करा देते हैं, तथापि आप उनकी सुख अथवा दुख की दशा के लिए उत्तरदायी नहीं हैं । जीव विभिन्न प्रकार के होते हैं यथा देवता, मानव, पशु, वृक्ष, पक्षी, वन्य पशु, कीड़े, मकोड़े, कीटाणु तथा जलचर । वे सब आप पर आश्रित होने से सुख अथवा दुख भोग रहे हैं । जीव दो प्रकार के होते हैं-एक वर्ग को नित्य-मुक्त कहते हैं तथा दूसरे वर्ग को नित्य-बद्ध कहते हैं । नित्य-मुक्त जीव आध्यात्मिक लोक में हैं तथा नित्य-बद्धजीव इस भौतिक जगत में हैं ।

"आध्यात्मिक जगत में भगवान् तथा जीव दोनों ही ज्वलन्त अग्नि में जलते हुए स्फुलिंगों की भाँति अपनी मौलिक वस्तु-स्थिति में प्रकाशित होते हैं । यद्यपि भगवान् अपने निराकार लक्षण में सर्वव्यापी हैं, किन्तु भौतिक जगत में जीवों ने अपने कृष्णभावनामृत को विस्मृत कर दिया है जैसे कि प्रज्वलित अग्नि से कभीकभी स्फुलिंग गिर पड़ते हैं तथा अपनी मौलिक जगमगाहट को खो देते हैं । कोईकोई स्फुलिंग सूखी हुई घास पर गिर जाते हैं तथा इस प्रकार एक अन्य अग्नि को प्रज्वलित कर देते हैं । यहाँ पर यह बात शुद्ध भक्तों के सम्बन्ध में कही गई है, जो कि दीन एवं निर्दोष जीवों पर दयालु हो जाते हैं । शुद्ध भक्त बद्धात्माओं के हृदय में कृष्णभावनामृत की ज्योति जलाते हैं और इस प्रकार आध्यात्मिक जगत की प्रज्वलित अग्नि भौतिक जगत में भी प्रकाशित हो जाती है । कुछ स्फुलिंग जल में गिर पड़ते हैं और तत्काल अपनी मौलिक प्रभा को खो कर लगभग बुझ जाते हैं । इसकी तुलना उन जीवों से की जा सकती है, जो पूर्णरूप से भौतिकतावादी लोगों के मध्य जन्म लेते हैं, जिस दशा में उनका मौलिक कृष्णभावनामृत लगभग बुझ जाता है । कुछ स्फुलिंग

धरती पर गिर जाते हैं तथा ज्वलन्त एवं बुझी हुई दशाओं के मध्य स्थित रहते हैं । इस प्रकार कुछ जीव कृष्णभावनामृत से रहित होते हैं, कुछ कृष्णभावनामृत युक्त तथा उससे रहित होने की अवस्था के मध्य रहते हैं तथा कुछ वास्तविक रूप से कृष्णभावनामृत में अवस्थित होते हैं । ब्रह्माजी से लेकर इन्द्र, चन्द्र, सूर्यदेव, चन्द्रदेव तथा अन्य अनेक उच्चतर लोकों में निवास करने वाले देवता, सभी कृष्णभावनाभावित हैं । मानव-समाज देवताओं तथा पशुओं के मध्य में है, अतएव कुछ मानव कुछ अधिक कृष्णभावनाभावित हैं तथा कुछ मानवों को कृष्णभावनामृत पूर्णरूपेण विस्मृत हो गया है । तृतीय श्रेणी के जीवन जैसे पशु, वृक्ष आदि तथा जलजीवों ने कृष्णभावनामृत को पूर्ण रूप से विस्मृत कर दिया है । वेदों में कथित प्रज्वलित अग्नि के स्फुलिंगों का यह उदाहरण विभिन्न प्रकार के जीवों की दशा को समझने के लिए अत्यन्त उपयुक्त है । किन्तु समस्त जीवों के ऊपर श्रीभगवान्, श्रीकृष्ण अथवा पुरुषोत्तम हैं, जो कि सदैव ही समस्त भौतिक दशाओं से मुक्त हैं ।

"अब यह प्रश्न उठाया जा सकता है कि जीव क्यों दैवयोग से जीवन की विभिन्न दशाओं में पतित हुए हैं । इस प्रश्न का उत्तर देने के लिए हमें पहले यह समझना आवश्यक है कि जीवों के लिए दैवयोग का कोई प्रभाव नहीं हो सकता है । दैवयोग निर्जीवों के लिए है । वैदिक साहित्य के अनुसार जीवों को ज्ञान होता है और इस प्रकार उन्हें चैतन्य कहा जाता है, जिसका अर्थ है, वह व्यक्ति जो ज्ञान में स्थित हो । अतएव जीवन की विभिन्न दशाओं में उनकी स्थिति आकस्मिक नहीं है । यह स्थिति उनके अपने चयन के द्वारा है, क्योंकि उन्हें ज्ञान है । भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं, 'सबकुछ त्याग कर मेरी शरण में आ जाओ ।" श्रीभगवान् के साक्षात्कार की यह प्रक्रिया सबके लिए उपलब्ध है, किन्तु इस प्रस्ताव को स्वीकार अथवा अस्वीकार करना जीव-विशेष का अपना चयन है । भगवद्गीता के अन्तिम भाग में भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन से अत्यन्त स्पष्ट

रूप से कहा है, "प्रिय अर्जुन! अब मैंने तुमसे सब कुछ कह दिया है । अब सब कुछ इस पर ही निर्भर करता है कि तुम स्वीकार करना चाहते हो अथवा नहीं ।" इसी भाँति इस जगत में आए हुए जीवों ने इस भौतिक जगत के सुखोपभोग करने का चयन कर लिया है । ऐसा नहीं है कि श्रीकृष्ण ने उन्हें इस भौतिक जगत में भेजा है । भौतिक जगत की सृष्टि उन जीवों के भोग के लिए की हुई है, जो स्वयं ही परम भोक्ता बनने के लिए भगवान् की सनातन सेवा को त्यागना चाहते थे । वैष्णव दर्शन के अनुसार जब जीव भगवान् की सेवा को विस्मृत कर देता है तथा अपनी इन्द्रियों की तृप्ति की कामना करता है, तब उसे अपने इच्छानुसार स्वतंत्र रूप से कार्य करने के लिए भौतिक जगत में स्थान दे दिया जाता है । इस प्रकार वह जीवन की ऐसी दशा का निर्माण करता है, जिसमें वह या तो सुख भोगता है अथवा दुख । हमें यह निश्चित रूप से ज्ञात होना चाहिए कि भगवान् तथा जीव शाश्वत रूप से सचेत हैं । भगवान् अथवा जीवों के लिए न तो कोई जन्म है न मृत्यु । जब सृष्टि की रचना होती है, तो इसका यह अर्थ नहीं है कि जीवों की रचना होती है । बद्धात्माओं को कृष्णभावनामृत के उच्चतर स्तर तक अपना उत्कर्ष करने का अवसर प्रदान करने के लिए भगवान् इस भौतिक जगत की सृष्टि करते हैं । यदि बद्धात्मा इस अवसर का लाभ नहीं उठाती है, तो इस भौतिक जगत के प्रलय के उपरान्त वह नारायण के शरीर में प्रवेश करती है तथा दूसरी सृष्टि के समय तक प्रगाढ़ निद्रा में वहीं रहती है ।

"इस सम्बन्ध में वर्षा ऋतु का उदाहरण अत्यन्त उपयुक्त है । ऋतु के अनुरूप वर्षा को सृष्टि के कर्ता के रूप में लिया जा सकता है, क्योंकि वर्षा के उपरान्त भीगे हुए खेत विभिन्न प्रकार की वनस्पतियों के उत्पादन के लिए अनुकूल होते हैं । उसी भाँति भगवान् के भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात के द्वारा जैसे ही सृष्टि होती है वैसे ही जीव तत्काल ही जीवन की अपनी विभिन्न दशाओं में प्रकट हो जाते हैं । यह ठीक वैसा ही है जैसे कि

वर्षा के उपरान्त विभिन्न प्रकार की वनस्पतियाँ उग जाती हैं । वर्षा तो एक ही है, किन्तु विभिन्न वनस्पतियों की रचना में वैभिन्य है । पूरे खेत पर वर्षा एक-सी ही होती है, किन्तु बोए हुए बीजों के अनुसार भिन्न-भिन्न रूप व आकार में भिन्न-भिन्न सब्जियाँ उग जाती हैं । इसी भाँति हमारी इच्छाओं के बीज भिन्न-भिन्न प्रकार के हैं । प्रत्येक जीव की इच्छा एक भिन्न प्रकार की होती है तथा वह इच्छा ही वह बीज है, जो एक विशेष प्रकार के शरीर में उसके विकास का कारण बनता है । श्रीरूप गोस्वामी ने इसे पाप-बीज शब्द के द्वारा स्पष्ट किया है । हमारी समस्त भौतिक इच्छाओं को पाप-बीज समझना चाहिए । भगवद्गीता में स्पष्ट किया गया है कि वह पापपूर्ण इच्छा अथवा पाप-बीज यह है कि हम भगवान् की शरण में नहीं जाते हैं । अतएव भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं, 'मैं तुम्हें पापेच्छा के कर्मफल से सुरक्षा प्रदान करूंगा ।" इन पापेच्छाओं का विस्तार विभिन्न प्रकार के शरीरों में होता है । अतएव कोई भी परमेश्वर पर यह दोषारोपण नहीं कर सकता है कि उन्होंने एक जीव को एक विशेष प्रकार का शरीर प्रदान किया है तथा दूसरे जीव को दूसरे प्रकार का । चौरासी लाख योनियों के समस्त शरीर जीव विशेष की मानसिक दशा के अनुसार आते हैं । श्रीभगवान् पुरुषोत्तम जीवों को उनके इच्छानुसार कार्य करने का अवसर-मात्र प्रदान करते हैं । अतएव ईश्वर-प्रदत सुविधाओं का लाभ उठाते हुए जीव कर्म कर रहे हैं ।

"साथ ही साथ उनका जन्म भगवान् के दिव्य विग्रह से हुआ है । वैदिक साहित्य में जीवों तथा भगवान् के मध्य इस सम्बन्ध को स्पष्ट किया गया है । वहाँ कहा गया है कि अपनी समस्त सन्तानों को उनकी अभीप्सित वस्तु देकर परमेश्वर उन सबका पालन करते हैं । इसी भाँति भगवद्गीता में भगवान् कहते है, 'मैं समस्त जीवों का बीज प्रदान करने वाला पिता हूँ ।" यह समझना अत्यन्त सरल है कि पिता सन्तान को जन्म देता है, किन्तु सन्तान अपने इच्छानुसार कार्य करती है । अतएव अपनी

सन्तानों के भिन्न-भिन्न भविष्य के लिए पिता कभी भी उत्तरदायी नहीं है प्रत्येक सन्तान अपने पिता की सम्पति तथा उपदेशों का लाभ उठा सकती है । किन्तु यद्यपि उत्तराधिकार तथा उपदेश समस्त सन्तानों के लिए एक ही हैं, तथापि अपनी भिन्न-भिन्न इच्छाओं के कारण प्रत्येक सन्तान एक भिन्न जीवनपद्धति का निर्माण करती है तथा उसके द्वारा सुख अथवा दुख भोगती है ।

"उसी भाँति भगवद्गीता का उपदेश सबके लिए बराबर है । प्रत्येक व्यक्ति को परमेश्वर की शरण ग्रहण करनी चाहिए तथा वे उसका भार ग्रहण करके पापों से उसकी रक्षा करेंगे । भगवान् की सृष्टि में जीने की सुविधाएँ समस्त जीवों को समान रूप से प्राप्त हैं । आकाश में, जल पर अथवा पृथ्वी पर जो कुछ भी है, वह समस्त जीवों को समान रूप से दिया गया है । समस्त जीव परमेश्वर की सन्तानें हैं, अतएव प्रत्येक जीव ईश्वरप्रदत्त भौतिक सुविधाओं का सुखोपभोग कर सकता है । किन्तु दुर्भाग्यवश परस्पर युद्ध करने के द्वारा जीव जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों का निर्माण कर लेते हैं । इस युद्ध तथा जीवन की अनुकूल एवं प्रतिकूल स्थितियों के निर्माण का उत्तरदायित्व श्रीभगवान् पर नहीं, अपितु जीवों पर है । अतएव यदि जीव भगवद्गीता में दिए गए भगवान् के उपदेशों का लाभ उठाएँ एवं कृष्णभावनामृत का विकास करें, तब जीवन उदात्त बन जाएँगे तथा वे अपने घर, भगवान् के धाम, लौट सकेंगे ।

"कोई तर्क कर सकता है कि यह भौतिक जगत भगवान् द्वारा निर्मित है, अतएव वे ही इसकी स्थिति के लिए उत्तरदायी हैं । निश्चय ही वे इस भौतिक जगत की सृष्टि तथा इसके पालन के लिए परोक्ष रूप से उत्तरदायी हैं, किन्तु जीवों की विभिन्न स्थितियों के लिए वे कदापि उत्तरदायी नहीं हैं । भगवान् के द्वारा इस भौतिक जगत की रचना की तुलना मेघों द्वारा वनस्पति की सृष्टि से की गई है । वर्षा ऋतु में मेघ धरती पर जल वर्षा करता है, किन्तु यह प्रत्यक्ष रूप से कभी-भी धरती का स्पर्श

नहीं करता है । उसी भाँति भगवान् भौतिक शक्ति पर केवल दृष्टिपात करके इस भौतिक जगत की सृष्टि करते हैं । इस तथ्य की पुष्टि वेदों में भी की गई है । 'भगवान् ने भौतिक प्रकृति पर दृष्टिपात किया और इस प्रकार सृष्टि हुई ।" भगवद्गीता में इस तथ्य की पुष्टि भी की गई है कि भौतिक प्रकृति पर अपने दिव्य दृष्टि-निक्षेप के द्वारा भगवान् चर तथा अचर जीवित एवं मृत आदि भिन्न-भिन्न प्रकार के जीवों की सृष्टि करते हैं ।

"अतएव इस भौतिक जगत की सृष्टि को भगवान् की एक लीला के रूप में लया जा सकता है । जब कभी-भी उनकी इच्छा होती है, भगवान् इस भौतिक जगत की रचना करते हैं, अतएव इसे भगवान् की एक लीला कहा गया है । श्रीभगवान् की यह इच्छा उनकी महती दया भी है, क्योंकि यह बद्धात्माओं को अपनी मौलिक चेतना का विकास करने तथा भगवान् के धाम लौटने का एक और अवसर प्रदान करती है । अतएव कोई भी परमेश्वर को इस भौतिक जगत की सृष्टि करने के लिए दोषी नहीं ठहरा सकता है ।

"विचाराधीन विषयवस्तु से हम निराकारवादी तथा साकारवादियों के मतभेद को स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं । निराकारवादी धारणा परम सत्ता के अस्तित्व में लीन हो जाने को कहती है तथा शून्यवादी दर्शन समस्त भौतिक भिन्नताओं को शून्य कर देने (अथवा नकारने) को कहता है । यह दोनों ही दर्शन मायावाद के नाम से प्रसिद्ध हैं । निश्चय ही जब जीव एक अन्य सृष्टि होने तक विश्राम करने के लिए नारायण के शरीर में लीन हो जाते हैं, सृष्टि का अन्त होकर शून्य हो जाता है तथा इसे एक निराकार स्थिति कहा जा सकता है, किन्तु ये दशाएँ कभी-भी नित्य नहीं होती हैं । भौतिक जगत की विविधता-विचित्रता की समाप्ति तथा अपने जीवों का परम सत्ता के शरीर में लय होना स्थायी नहीं है, क्योंकि सृष्टि पुन: होगी तथा अपनी कृष्णभावनामृत का विकास किए बिना जो जीव

परम सत्ता के शरीर में लीन हो जाते हैं, वे एक और सृष्टि होने पर पुन: इस भौतिक जगत में प्रकट होंगे । भगवद्गीता इस तथ्य की पुष्टि करती है कि इस भौतिक जगत की सृष्टि तथा विनाश होता रहता है । यह क्रम निरन्तर चलता रहता है तथा जब-जब भौतिक सृष्टि होती है कृष्णभावनामृत रहित बद्धात्माएँ पुन: पुन: भौतिक जगत में आती रहती हैं । यदि ऐसी बद्धात्माएँ इस अवसर का लाभ उठाकर, भगवान् के प्रत्यक्ष उपदेश के अन्तर्गत कृष्णभावनामृत का विकास करती हैं, तो वे अध्यात्म लोक को चली जाती हैं तथा उन्हें पुन: इस भौतिक सृष्टि में नहीं आना पड़ता है । अतएव कहा गया है कि शून्यवादी तथा निराकारवादी बुद्धिमान नहीं हैं, क्योंकि वे भगवान् के चरणारविन्दों में शरण नहीं ग्रहण करते हैं । अल्पबुद्धि होने के कारण ये शून्यवादी तथा निराकारवादी जीवन की भौतिक दशा की समाप्ति, अर्थात् निर्वाण की स्थिति अथवा भगवान् के शरीर में लीन होने के द्वारा उनसे एकीकरण प्राप्त करने के लिए विभिन्न प्रकार की तपस्या का अवलम्बन लेते हैं । वे सभी पुन: पतित हो जाते हैं, क्योंकि वे भगवान् के चरणकमलों की उपेक्षा करते हैं ।"

चैतन्य चरितामृत के रचयिता श्रीकृष्णदास कविराज गोस्वामी ने समस्त वैदिक साहित्य के अध्ययन तथा समस्त माहत्माओं के विचारों का श्रवण करने के उपरान्त अपना मत दिया है कि श्रीकृष्ण ही एकमात्र परम स्वामी हैं तथा समस्त जीव उनके नित्य दास हैं । मूतिमान् वेदों की स्तुति में उनके कथन की पुष्टि की गई है । अत: निष्कर्ष यह निकलता है कि प्रत्येक व्यक्ति श्रीभगवान् के नियंत्रण में है, प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के परम निर्देश के अन्तर्गत सेवा कर रहा है तथा प्रत्येक व्यक्ति श्रीभगवान् से भयभीत है । उनके ही भय से कार्य उचित रीति से किए जा रहे हैं । सब की स्थिति परमेश्वर के अधीन है, तथापि जीवों के प्रति भगवान् के दृष्टिकोण में कोई पक्षपात नहीं है । भगवान् अनन्त आकाश की भाँति हैं । जिस प्रकार अग्नि में अग्निकण नाचते हैं, उसी भाँति समस्त जीव अनन्त

आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की भाँति हैं । उनमें से कुछ अत्यधिक ऊँचे उड़ रहे हैं, कुछ उससे कम ऊँचाई पर उड़ रहे हैं तथा कुछ उससे भी कम ऊँचाई पर उड़ रहे हैं । अपनी-अपनी उड़ान की क्षमता के अनुसार भिन्न-भिन्न पक्षी भिन्न-भिन्न स्थितियों में उड़ रहे हैं, किन्तु इस क्षमता से आकाश का कोई सम्बन्ध नहीं है । भ7वद्गीता में भी भगवान् इसकी पुष्टि करते हैं कि वे विभिन्न जीवों को उनकी शरणागति के अनुसार स्थितियाँ प्रदान करते हैं । श्रीभगवान् के द्वारा जीवों को यह आनुपातिक पुरस्कार पक्षपात नहीं है । अतएव विभिन्न दशाओं, विभिन्न लोकों तथा विभिन्न योनियों में जीवों के स्थित होने पर भी वे समस्त जीव सदैव ही श्रीभगवान् के नियंत्रण के अधीन हैं और फिर भी भगवान् उनके जीवन की विभिन्न दशाओं के लिए कदापि उत्तरदायी नहीं हैं । अतएव स्वयं को परमेश्वर के बराबर समझना बनावट तथा मूर्खता है । उससे भी अधिक मूर्खता यह सोचना है कि किसी से ईश्वर के दर्शन नहीं किए हैं । प्रत्येक व्यक्ति भगवान् के विभिन्न रूपों में उनके दर्शन कर रहा है । अन्तर केवल इतना ही है कि आस्तिक व्यक्ति भगवान् के दर्शन परम प्रिय श्रीकृष्ण, श्रीभगवान् के रूप में करता है तथा नास्तिक व्यक्ति परम सत्य का दर्शन मृत्यु के रूप में करता है ।"

मूतिमान् वेदों ने आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! समस्त वैदिक ज्ञान से यह समझ में आ जाता है कि आप परम नियन्ता हैं तथा समस्त जीव नियंत्रित हैं । भगवान् तथा जीव दोनों को ही नित्य कहा जाता है और इस प्रकार गुणवत्ता में वे एक ही हैं । फिर भी एक नित्य है अथवा परमेश्वर नियन्ता हैं, जबकि अनेक नित्य नियंत्रित हैं । विशेष, नियंत्रित जीव शरीर में निवास करता है तथा परम नियन्ता भी परमात्मा के रूप में वहाँ उपस्थित हैं, किन्तु परमात्मा जीवात्मा का नियंत्रण कर रहे हैं । वेदों का यही निर्णय है । यदि जीवात्मा परमात्मा के द्वारा नियंत्रित न हो तब वेदों के इस मत की व्याख्या किस प्रकार कर सकते हैं कि अपने पूर्वकर्मों के

फल का सुख अथवा दुख भोगते हुए जीव एक देह से दूसरे देह में देहान्तरण करता है । कभी-कभी उसका उत्कर्ष जीवन के उच्चतर स्तर तक हो जाता है तथा कभी-कभी उसकी अवनति जीवन के निम्नतर स्तर तक हो जाती है । इस प्रकार बद्धात्माएँ न केवल परमेश्वर के नियंत्रण के अन्तर्गत हैं, अपितु वे भौतिक प्रकृति के नियंत्रण द्वारा भी बद्ध हैं । परमेश्वर के साथ जीवों का यह नियंत्रित तथा नियन्ता का सम्बन्ध निश्चित रूप से यह सिद्ध कर देता है कि यद्यपि परमात्मा सर्वव्यापक हैं, किन्तु जीवात्माएँ कदापि सर्वव्यापक नहीं हैं । यदि जीवात्माएँ सर्वव्यापक होतीं तब उनके नियंत्रित होने का प्रश्न ही नहीं उठता । अतएव यह सिद्धान्त कि परमात्मा एवं जीवात्मा एकसमान हैं, एक दूषित निष्कर्ष है तथा कोई भी समझदार व्यक्ति इसे स्वीकार नहीं करता है । इसके विपरीत व्यक्ति को परम नित्य तथा गौण नित्य के मध्य भेद को समझने का प्रयास करना चाहिए ।"

अतएव मूक्तिमान वेदों ने निष्कर्ष के रूप में कहा, "हे भगवन्! आप तथा सीमित श्रुव// अर्थात् जीव दोनों ही नित्य हैं । कभी-कभी अनन्त नित्य को विश्वरूप में देख-जाता है तथा उपनिषदों जैसे वैदिक साहित्य में सीमित नित्य के रूप का स्पष्ट वर्णन किया गया है । उसमें कहा गया है कि जीव का मौलिक आध्यात्मिक रूप एक बाल की नोक के आकार का दस हजारवाँ भाग होता है । कहा गया है कि आत्मा विशालतम से भी विशाल तथा लघुतम से भी लघु होती है । भगवान् के नित्यअंश जीवात्माएँ लघुतम से भी लघु हैं । अपनी भौतिक इन्द्रियों से हम न तो महानतम से महान् परमात्मा के दर्शन कर सकते हैं न ही लघुतम से लघु जीवात्मा के । महानतम तथा लघुतम दोनों को ही हमें वैदिक साहित्य के अधिकारी स्रोतों से समझना पड़ता है । वैदिक साहित्य में कहा गया है कि जीव के शरीर में आसीन परमात्मा अँगूठे के बराबर बड़ा है । अतएव यह तर्क प्रस्तुत किया जा सकता है कि अँगूठे के आकार की कोई वस्तु चींटे के

हृदय में किस प्रकार रह सकती है । इसका उत्तर यह है कि परमात्मा को अँगूठे के आकार से नापने की कल्पना जीव के शरीर के अनुपात में की गई है । अतएव यद्यपि दोनों ही एक जीव के भौतिक शरीर में प्रवेश करते हैं, तथापि समस्त परिस्थितियों में जीव तथा परमात्मा को एक नहीं माना जा सकता है । शरीर में निवास करने वाले परमात्मा का कार्य जीव पर नियंत्रण रखना या सदैव ही उसका निर्देशन करना है । यद्यपि दोनों ही ध्रुव अर्थात् नित्य हैं, तथापि जीव सदैव ही परमात्मा के निर्देशन के अन्तर्गत रहता है ।

'यह तर्क किया जा सकता है कि भौतिक प्रकृति से उत्पन्न होने के कारण समस्त जीव एकसमान तथा स्वतंत्र हैं । किन्तु वैदिक साहित्य में यह कहा गया है कि श्रीभगवान् भौतिक प्रकृति को जीवों से पूरित करते हैं और तत्पश्चात् बाहर आ जाते हैं । अतएव एक स्त्री द्वारा उत्पादित सन्तान उसका स्वतंत्र उत्पादन नहीं है । उसी भाँति जीवात्माओं का प्राकटय, तथ्यत: केवल भौतिक प्रकृति के कारण ही नहीं होता है । पहले एक पुरुष द्वारा स्त्री का गर्भाधान किया जाता है और तब सन्तान उत्पन्न होती है । स्त्री द्वारा उत्पन्न सन्तान पुरुष का अंश होती है । इसी भाँति प्रकट रूप में जीवों की उत्पत्ति भौतिक प्रकृति के द्वारा होती है, किन्तु यह क्रिया स्वतंत्र रूप से नहीं होती है । परम पिता के द्वारा भौतिक प्रकृति के गर्भाधान के कारण ही जीवों की उपस्थिति सम्भव है । अतएव यह तर्क कि जीव परमात्मा के अंश नहीं हैं, सिद्ध नहीं होता है । उदाहरणार्थ, शरीर के विभिन्न अंशों को पूर्ण शरीर के रूप में नहीं लिया जा सकता है । इसके विपरीत पूर्ण शरीर विभिन्न अंगों को नियंत्रण में रखता है । इसी भाँति परम पूर्ण के अंश सदैव ही उस पर निर्भर रहते हैं तथा सदैव ही अंशों के उद्गम के द्वारा नियंत्रित होते हैं । भगवद्गीता में इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि जीव श्रीकृष्ण के ही अंश हैं-मर्मेवांशो/ अतएव कोई भी बुद्धिमान व्यक्ति इस सिद्धान्त को स्वीकार नहीं करेगा कि परमात्मा तथा

जीवात्मा एक ही वर्ग के हैं । गुणवत्ता में वे समान हैं, किन्तु परिमाण में परमात्मा सदैव ही सर्वोत्कृष्ट है तथा जीवात्मा सदैव ही परमात्मा के अधीन है । वेदों का यही निष्कर्ष है ।"

इस सम्बन्ध में प्रयुक्त दो अर्थपूर्ण शब्द हैं- यन्मय तथा चिन्मय/ संस्कृत व्याकरण में मयलू शब्द का प्रयोग रूपान्तर तथा यथेष्ठता के अर्थ में किया गया है । मायावादी दार्शनिक यह अर्थ निकालते हैं कि यन्मय अथवा चिन्मय का संकेत यह है कि जीव सदैव ही परमात्मा के समान है । किन्तु हमें यह विचार करना है कि मयन् उपसर्ग का प्रयोग यथेष्ठता के लिए हुआ है अथवा रूपान्तर के लिए । जीव के पास कुछ भी ठीक उसी अनुपात में नहीं होता है, जिस अनुपात में वह श्रीभगवान् के पास होता है । अतएव मयत् उपसर्ग का प्रयोग इस अर्थ में नहीं किया जा सकता है कि जीव "स्वयं-पूर्ण" है । जीव के पास कभी-भी पूर्ण ज्ञान नहीं होता है, अन्यथा वह माया अथवा भौतिक शक्ति के नियंत्रण के अन्तर्गत किस प्रकार आ सकता था? अतएव "पूर्ण" शब्द को जीव के महत्व के अनुपात में ही स्वीकार किया जा सकता है । परमेश्वर तथा जीव की आध्यात्मिक एकता को कदापि समानता के रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है । प्रत्येक जीव एक विशिष्ट व्यक्तित्व का स्वामी होता है । यदि समानता को स्वीकार कर लिया जाए तब एक जीवात्मा के मुक्त होने के द्वारा ही अन्य सब जीवात्माएँ मुक्त हो गई होतीं । किन्तु तथ्य यह है कि प्रत्येक विशिष्ट जीवात्मा भौतिक जगत में भिन्न-भिन्न प्रकार से सुख और दुख भोग रही है ।

"मयत्" शब्द का प्रयोग रूपान्तर के अर्थ में भी किया जाता है, अथवा कभीकभी इसका प्रयोग अप्रधान रचना के अर्थ में भी किया जाता है । निर्विशेषवादियों का सिद्धान्त है कि स्वयं ब्रह्म ने भिन्न-भिन्न प्रकार की देहों को स्वीकार किया है तथा यह उसकी लीला है । किन्तु जीवन की दशाओं के विभिन्न स्तरों में सैकड़ों व हजारों योनियाँ हैं, जैसे कि मानव,

देवता, पशु, पक्षी तथा वन्य पशु । यदि वे सभी परम पूर्ण सत्य के विस्तार होते तब मोक्ष का प्रश्न ही नहीं उठता, क्योंकि ब्रह्म पहले से ही मुक्त है । मायावादियों द्वारा प्रस्तुत एक और अर्थ यह है कि प्रत्येक मन्वन्तर में विभिन्न प्रकार के शरीर अभिव्यक्त होते हैं और जब मन्वन्तर का अन्त होता है, तब भिन्न-भिन्न प्रकार के सारे शरीर अथवा ब्रह्म के विस्तार अपने आप एक हो जाते हैं, जिससे भिन्न-भिन्न प्रकार की समस्त अभिव्यक्तियों का अन्त हो जाता है । यदि हम इस सिद्धान्त को स्वीकार करें, तो ब्रह्म परिवर्तनशील हो जाता है । किन्तु यह स्वीकार नहीं किया जा सकता है । वेदान्त-सूत्र से हमें ज्ञात होता है कि ब्रह्म स्वभाव से आनन्दमय है । अतएव वह अपने को दुखमय परिस्थितियों का भागी होने वाले शरीर में परिवर्तित नहीं कर सकता है । वस्तुत: ब्रह्म के अंश जीव अतिसूक्ष्म कण हैं, जिन्हें माया ने आच्छादित कर लिया है । जैसाकि पहले भी स्पष्ट किया गया है, ब्रह्म के कण अग्नि में आनन्दपूर्वक नृत्य करते हुए स्फुलिंगों के समान हैं । किन्तु उनके अग्नि से धूम्र में पतित हो जाने का भय है । यद्यपि धूम्र भी अग्नि की ही एक अन्य स्थिति है, किन्तु यह अग्नि नहीं है । यह भौतिक जगत ठीक धूम्र की भाँति है तथा आध्यात्मिक जगत ठीक प्रज्वलित अग्नि की भाँति है । जब वे माया से प्रभावित होते हैं तब असंख्य जीव आध्यात्मिक जगत से भौतिक जगत तक पतित हो जाते हैं । जब वास्तविक ज्ञान के विकास के द्वारा जीव पूर्णरूप से भौतिक जगत के दूषणों से निर्मल हो जाता है, तब उसके लिए पुनः मुक्त हो जाना भी सम्भव है ।

असुरों का यह सिद्धान्त है कि भौतिक प्रकृति अथवा प्रकृति से पुरुष के संयोग से जीवों का जन्म होता है । इस सिद्धान्त को भी स्वीकार नहीं किया जा सकता है, क्योंकि श्रीभगवान् तथा प्रकृति दोनों का ही नित्य अस्तित्व है । प्रकृति अथवा श्रीभगवान् में से कोई भी उत्पन्न नहीं हो सकता है । परमेश्वर को आज के रूप में जाना जाता है । इसी के समान

प्रकृति को भी अजा कहा जाता है । प्रकृति तथा परमेश्वर दोनों ही अजन्मा हैं, अतएव उनसे जीवों की उत्पत्ति होना सम्भव नहीं है । जिस प्रकार वायु के सम्पर्क में आने पर कभी-कभी जल में असंख्य बुलबुले दीखते हैं, उसी प्रकार श्रीभगवान् एवं भौतिक प्रकृति के संयोग से इस भौतिक जगत में जीवों का प्रादुर्भाव होता है । जिस प्रकार जल में विभिन्न आकारों के बुलबुले प्रकट होते हैं, उसी भाँति भौतिक प्रकृति के गुणों से प्रभावित होकर जीव भी इस भौतिक जगत में विभिन्न आकारों तथा स्थितियों में प्रकट होते हैं । अतएव यह निष्कर्ष निकालना अनुचित न होगा कि मानवों, देवताओं, पशु, पक्षियों तथा वन्य पशुओं आदि जैसे विभिन्न आकारों में इस भौतिक जगत में प्रकट होने वाले सभी जीव अपनी भिन्न-भिन्न इच्छाओं के कारण अपने-अपने शरीर को प्राप्त करते हैं । कोई यह नहीं कह सकता है कि उनमें ये इच्छाएँ कब जाग्रत हुई थीं, अतएव कहा गया है, "अनादि-कर्म"-ऐसे भौतिक अस्तित्व का कारण खोजना सम्भव नहीं है । यह किसी का प्रारम्भ बिन्दु अवश्य है, क्योंकि मौलिक रूप से प्रत्येक जीव एक चिल्कण है । जिस भाँति अग्नि से भूमि पर गिरने वाले स्फुलिंग का एक प्रारम्भ होता है, उसी भाँति इस भौतिक जगत में आने वाले जीवों का भी एक आदि अथवा प्रारम्भ होता है, किन्तु यह प्रारम्भ कब हुआ यह कोई नहीं कह सकता । प्रलय के समय भी ये जीव, गहन निद्रामग्न की भाँति भगवान् के आध्यात्मिक अस्तित्व में लीन रहते हैं, किन्तु भौतिक जगत पर प्रभुता की उनकी कामनाओं का अन्त नहीं होता है । जब पुनः सृष्टि होती है, तब वे उन्हीं इच्छाओं की पूर्ति के लिए पुन: भौतिक जगत में आते हैं और इसीलिए वे विभिन्न योनियों में प्रकट होते हैं ।

प्रलय के काल में परमेश्वर में इस विलय की तुलना मधु से की गई है । मधुमक्खी के छत्ते में विभिन्न पुष्पों व फलों का रस संचित रहता है । जब व्यक्ति मधुपान करता है, तब वह यह भेद नहीं कर पाता है कि कौन-

सा मधु किस पुष्प से एकत्र किया गया है । किन्तु मधु के सुमधुर स्वाद में ही यह तथ्य समाहित है कि मधु किसी एक प्रकार का रस नहीं है, अपितु विभिन्न रसों का संयोग है । एक अन्य उदाहरण है कि यद्यपि विभिन्न नदियाँ अन्ततः सागर के जल में मिल जाती हैं, किन्तु उसका यह तात्पर्य नहीं है कि उससे नदियों का वैयक्तिक स्वरूप लुप्त हो जाता है । यद्यपि गंगा एवं यमुना नदियों का जल सागर के जल में मिल जाता है, तथापि गंगा तथा यमुना नदियों का स्वतंत्र अस्तित्व बना रहता है । प्रलय के समय विभिन्न जीवों के ब्रह्म में विलय होने में भिन्न-भिन्न प्रकार के शरीरों का विलोप निहित है । किन्तु अपनी भिन्न-भिन्न रुचियों रहित जीव ब्रह्म में वैयक्तिक रूप से निमग्न रहते हैं तथा भौतिक जगत की एक अन्य अभिव्यक्ति होने तक वैसे ही रहते हैं । जिस प्रकार सागर के जल का खारापन तथा गंगाजल का मधुर स्वाद अलग-अलग है तथा यह भेद बराबर बना रहता है उसी भाँति परमेश्वर तथा जीवों के मध्य का भेद भी सतत रूप से रहता है, चाहे फिर प्रलय के समय वे दोनों एक होते हुए क्यों न प्रतीत हों । अतएव निष्कर्ष यह है कि जब जीव भौतिक दशाओं के समस्त प्रदूषणों से मुक्त हो जाते हैं तब वे अध्यात्म जगत में लीन हो जाते हैं, किन्तु परमेश्वर के सम्बन्ध में उनकी वैयक्तिक रुचियों का अस्तित्व तब भी रहता है ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! हमारा निष्कर्ष यह है कि समस्त जीव आपकी भौतिक शक्ति द्वारा आकर्षित हैं तथा वे आपके साथ अपने सनातन सम्बन्ध को भूल कर, एक प्रकार के शरीर से दूसरे शरीर में देहान्तरण कर रहे हैं । अज्ञानवश ये जीव स्वयं को भिन्न-भिन्न योनियों में एक रूप मानने की भूल करते हैं । विशेषरूप से जब उनका उत्कर्ष मानव योनि तक हो जाता है, तब वे आपके सनातन सेवकों के रूप में अपने वास्तविक स्वरूप को भूल कर किसी विशेष वर्ग, देश, जाति अथवा तथाकथित धर्म के मनुष्यों के साथ अपनी पहचान जोड़ लेते हैं । जीवन

की इस दोषपूर्ण धारणा के कारण उन्हें बारम्बार जन्म-मरण का भागी बनना होता है । ऐसे करोड़ों लोगों में से यदि कोई एक जीव बुद्धिमान हो जाता है, तब भक्तों के संसर्ग के द्वारा उसे कृष्णभावनामृत की समझ प्राप्त होती है तथा वह मिथ्या भौतिक धारणाओं के अधिकार-क्षेत्र से बाहर आ जाता है ।"

चैतन्यचरितामृत में भगवान् श्री चैतन्य ने इस बात की पुष्टि की है कि इस ब्रह्माण्ड में जीव अनेक योनियों में भटक रहे हैं, किन्तु यदि उनमें से कोई एक गूरु तथा भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से पर्याप्त बुद्धिमान हो जाता है, तब वह कृष्णभावनामृत में अपना भक्तिपूर्ण जीवन प्रारम्भ कर देता है । कहा गया है, हरि बिना न मृतेिं तरति-श्रीभगवान् की सहायता के बिना प्राणी बारम्बार जन्म-मरण के फन्दे से मुक्त नहीं हो सकता है । दूसरे शब्दों में, केवल परमेश्वर, श्रीभगवान् ही बद्धात्माओं को बारम्बार जन्म-मरण के चक्र से छुटकारा दिला सकते हैं ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे स्तुति की, "भूत, वर्तमान तथा भविष्य-काल का प्रभाव तथा भौतिक दुख जैसे कि अति ताप, अति शीत, जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्याधियाँ आदि समस्त आपकी भ्रू-भंगिमाएँ हैं । प्रत्येक वस्तु आपके संकेत पर कार्य कर रही है । भगवद्गीता में कहा गया है कि समस्त भौतिक गतिविधियाँ भगवान् श्रीकृष्ण के निर्देशन में हो रही हैं । जो आपके प्रति शरणागत नहीं हैं ऐसे व्यक्तियों के लिए भौतिक अस्तित्व की समस्त दशाएँ विरोधी तत्व हैं । किन्तु शरणागत तथा पूर्णरूपेण कृष्णभावनामृत में स्थित आत्माओं के लिए ये वस्तुएँ भय का कारण नहीं हो सकती हैं । जब भगवान् नृसिंहदेव प्रकट हुए थे तब प्रह्लाद महाराज उनसे भयभीत नहीं हुए थे, जबकि उनके नास्तिक पिता को मूर्तिमान् यमराज का साक्षात्कार हुआ तथा उसका वध कर दिया गया । यद्यपि हिरण्यकशिपु जैसे नास्तिक के लिए नृसिंहदेव मृत्यु के रूप में प्रकट हुए, तथापि प्रह्लाद जैसे भक्तों के लिए वे सदैव ही दयालु तथा समस्त सुखों के

सागर हैं । अतएव एक विशुद्ध भक्त जन्म, मृत्यु, जरा तथा व्यधियों से भयभीत नहीं होता है ।"

श्रीपाद श्रीधर स्वामी ने एक सुन्दर पद की रचना की है, जिसका तात्पर्य इस प्रकार है : "मैं भौतिक अस्तित्व की दशाओं द्वारा निरन्तर उद्विग्न होने वाला एक जीव हूँ । भौतिक अस्तित्व के विनाशकारी चक्र ने मुझे विभिन्न खण्डों में भंग कर दिया है । इस भौतिक जगत में रहते हुए किए गए अपने अनेक पापकर्मों में मैं भौतिक फल की प्रज्वलित अग्नि में दग्ध हो रहा हूँ । हे भगवन्! किसी प्रकार मैं अब आपके चरणारविन्दों की शरण में आ गया हूँ । कृपया मुझे स्वीकार कीजिए तथा मुझे अभयदान दीजिए ।" श्रील नरोत्तमदास ठाकुर भी इसी प्रकार स्तुति करते हैं, "प्रिय भगवन्! हे नन्दलाल, वृषभानुसुता के स्वामी! जीवन की भौतिक दशा से अत्यन्त दुखी होने के उपरान्त मैं आपके चरणकमलों की शरण में आया हूँ । मैं यही प्रार्थना कर रहा हूँ कि कृपया आप मुझ पर दयालु हो जाँए । कृपया मुझे न ठुकराएँ आपके अतिरिक्त मेरा कोई आश्रय नहीं है ।"

निष्कर्ष यह है कि आत्म-साक्षात्कार अथवा ईश्वर-साक्षात्कार की, भक्तियोग अथवा भक्ति के अतिरिक्त, अन्य कोई भी प्रक्रिया अत्यन्त कठिन है । अतएव पूर्ण कृष्णभावनामृत में भगवान् की भक्ति का आश्रय लेना, विशेष रूप से इस युग में, भौतिक बद्ध जीवन के दूषणों से मुक्त होने का एकमात्र मार्ग है । जो व्यक्ति कृष्णभावनामृत में स्थित नहीं हैं, वे केवल अपना समय व्यर्थ कर रहे हैं तथा उनके पास आध्यात्मिक जीवन का कोई ठोस प्रमाण नहीं है ।

भगवान् श्रीरामचन्द्र ने कहा है, "जो कोई मेरी शरण ग्रहण करता है तथा निश्चित रूप से यह निश्चय कर लेता है कि वह मेरा सनातन सेवक है, में सदैव ही उसको विश्वास तथा सुरक्षा प्रदान करता हूँ क्योंकि यह मेरी प्रवृत्ति है ।" इसी के समान भगवान् श्रीकृष्ण भगवद्गीता में कहते हैं,

"भौतिक प्रकृति का प्रभाव अजेय है, किन्तु जो कोई मेरी शरण ग्रहण करता है, वह अत्यन्त सरलता से भौतिक प्रकृति के प्रभाव पर विजय प्राप्त कर सकता है ।" अभक्तों के सिद्धान्तों का खण्डन करने के लिए उनसे तर्क करने में भक्तों की रंचमात्र भी रुचि नहीं है । अपने समय को व्यर्थ करने के स्थान पर वे सदैव ही पूर्ण कृष्णभावनामृत में भगवान् की सेवा में संलग्न रहते हैं ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे स्तुति की, "प्रिय भगवन्! महान् योगियों का अपने मनरूपी मातंग पर और इन्द्रियरूपी तूफान पर पूर्ण नियंत्रण हो सकता है, तथापि जब तक वे एक प्रामाणिक गुरु की शरण में नहीं जाते हैं, वे भौतिक प्रभाव के शिकार बने रहते हैं तथा आत्म-साक्षात्कार के अपने प्रयास में कभी सफल नहीं होते हैं । ऐसे गुरुहीन लोगों की तुलना नाविकरहित जलयान पर समुद्र में जाने वाले व्यापारियों से की गई है । अतएव अपने व्यक्तिगत प्रयासों के द्वारा कोई भी व्यक्ति भौतिक प्रकृति के चंगुल से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता है । व्यक्ति को एक प्रामाणिक गुरु स्वीकार करके उनके निर्देश के अनुसार कार्य करना पड़ता है । तभी भौतिक दशाओं के अज्ञान पर विजय प्राप्त करना सम्भव है । इस सम्बन्ध में श्रीपाद श्रीधर गोस्वामी ने एक उत्तम पद की रचना की है, जिसमें वे कहते हैं, "हे परमदयालु गुरुदेव! आप श्रीभगवान् के प्रतिनिधि हैं । मेरा मन कब पूर्णरूपेण आपके चरणकमलों की शरण में आएगा? तभी, केवल आपकी दया से मैं आध्यात्मिक जीवन के मार्ग की समस्त बाधाओं से मुक्ति पाने तथा आनन्दमय जीवन में स्थित होने में समर्थ हो सकूंगा ।"

वस्तुत: आनन्दमय समाधि अथवा श्रीभगवान् में चित्त की लवलीनता, भगवान् की सेवा में निरन्तर संलग्न रहने के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है । इन भक्ति में सतत संलग्न रहना तभी सम्भव हो सकता है, जब व्यक्ति किसी प्रामाणिक गुरु के निर्देश में कार्य कर रहा हो । अतएव वेदों का

उपदेश है कि भक्ति के विज्ञान को जानने के लिए व्यक्ति को प्रामाणिक गुरु के प्रति आत्म-समर्पण करना पड़ता है । जिसे गुरु-परम्परा में भक्ति के विज्ञान का ज्ञान है, वही प्रामाणिक गुरु है । इस गुरुपरम्परा को "श्रोत्रियम्" कहते हैं । गुरु-परम्परा में गुरु बन चुके व्यक्ति का मुख्य लक्षण यह है कि वह भक्तियोग में शत प्रतिशत अविचल रूप से स्थिर होता है । कभी-कभी लोग गुरु स्वीकार करने के उपदेश की अवहेलना कर देते हैं और उसके स्थान पर वे योग-साधना के द्वारा आत्म-साक्षत्कार करने का प्रयास करते हैं, किन्तु इसमें विश्वामित्र जैसे महान् योगियों की असफलता के भी अनेक उदाहरण हैं । अर्जुन ने भगवद्गीता में कहा है कि मन को नियंत्रित करना उतना ही अव्यावहारिक है जितना की तूफान को रोकना । कभी-कभी मन की तुलना मत-मातंग से की जाती है । गुरु के निर्देशों का अनुसरण किए बिना व्यक्ति मन तथा इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं कर सकता है । दूसरे शब्दों में, यदि कोई योग-साधना करता है, किन्तु प्रामाणिक गुरु की शरण नहीं लेता है, तब वह निश्चित रूप से असफल होगा । वह केवल अपना समय ही नष्ट करेगा । वेदों का आदेश है कि आचार्य के पथ-प्रदर्शन के बिना किसी को पूर्णज्ञान प्राप्त नहीं हो सकता है । आचार्यावान् पुरुषो वेद-जिसने एक आचार्य को स्वीकार कर लिया है उसी को वस्तुस्थिति का ज्ञान होता है । परम सत्य को तकों के द्वारा नहीं समझा जा सकता है । जिसने आदर्श ब्राह्मणत्व की स्थिति प्राप्त कर ली है, वह स्वाभाविक रूप से त्यागी बन जाता है । वह भौतिक लाभ के लिए प्रयास नहीं करता है, क्योंकि आध्यात्मिक ज्ञान के द्वारा वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि इस जगत में कोई अभाव नहीं है । श्रीभगवान् ने प्रत्येक वस्तु पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध कराई है । अत: एक सच्चा ब्राह्मण भौतिक पूर्णता के लिए प्रयास नहीं करता है, अपितु वह उनसे आदेश लेने के लिए किसी प्रामाणिक गुरु के समीप जाता है । एक गुरु की योग्यता यह है कि वह ब्रह्मनिष्ठमू होता है, जिसका अर्थ है कि उसने अन्य समस्त गतिविधियों का त्याग कर दिया है तथा अपना जीवन भगवान्

श्रीकृष्ण के लिए कार्य करने के हेतु समर्पित कर दिया है । जब एक प्रामाणिक शिष्य एक प्रामाणिक गुरु के समीप जाता है, वह अत्यन्त विनम्रतापूर्वक गुरु से प्रार्थना शिक्षा दीजिए कि मैं आत्म-साक्षात्कार की अन्य समस्त प्रक्रियाओं को त्यागने में समर्थ हो सकूं एवं केवल कृष्णभावनामृत या भक्ति में संलग्न हो सकूं ।

" गुरु के निर्देशन द्वारा भगवान् की दिव्य भक्ति में संलग्न भक्त इस प्रकार चिन्तन करता है, "प्रिय भगवन्! आप सुख के सागर हैं । आप उपस्थित हैं, अतएव समाज, मैत्री तथा प्रेम से प्राप्त होने वाले क्षणिक सुखों का क्या उपयोग है? सुख के परम सागर से अनजान व्यक्ति इन्द्रियतृप्ति के सुख प्राप्त करने में संलग्न रहते हैं, किन्तु यह सुख अनित्य तथा भ्रामक है ।" महान् वैष्णव भक्त तथा कवि इस सम्बन्ध में कहते है, "प्रिय भगवन्! समाज के मध्य, मैत्री तथा प्रेम में निस्सन्देह कुछ सुख है, यद्यपि यह सुख भौतिक प्रकृति का है । किन्तु मेरा हृदय एक मरुस्थल की भाँति है, जिसे ऐसे सुख सन्तुष्ट नहीं कर सकते हैं ।" एक मरुस्थल में जल के सागर की आवश्यकता होती है । किन्तु यदि मरुस्थल में जल की केवल एक बूंद डाली जाए, तो ऐसे जल का मूल्य क्या है? इसी भाँति हमारे भौतिक हृदय विविध इच्छाओं से पूर्ण हैं, जिन्हें मैत्री तथा प्रेम के भौतिक समाज में पूरा नहीं किया जा सकता है । जब हमारे हृदय सुख के परम सागर से सुख प्राप्त करना प्रारम्भ करते हैं तभी हम सन्तुष्ट हो सकते हैं । पूर्ण कृष्णभावनामृत में या भक्ति में ही वह दिव्य सन्तोष सम्भव है ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! आप सच्चिदानन्द-विग्रह हैं अर्थात् ज्ञान के नित्य आनन्द स्वरूप । जीव आपके स्वरूप के ही अंश हैं, अतएव उनके अस्तित्व की स्वाभाविक स्थिति यह है कि वे आपके प्रति पूर्ण सचेत रहें । इस भौतिक जगत में जिसने भी ऐसे कृष्णभावनामृत का विकास कर लिया है, उसे भौतिकतावादी जीवनधारा में रुचि नहीं

रहती है । एक कृष्णभावनाभावित व्यक्ति की पारिवारिक जीवन अथवा ऐश्वर्यपूर्ण जीवन में रुचि नहीं रहती है । उसे अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए अति अल्प सुविधाओं की आवश्यकता होती है । दूसरे शब्दों में, अब इन्द्रियतृप्ति में उसकी रुचि नहीं रहती है । मानव जीवन की पूर्णता ज्ञान तथा वैराग्य पर आधारित है, किन्तु गृहस्थ जीवन में रहते हुए ज्ञान तथा वैराग्य की स्थिति तक पहुँचने का प्रयास करना अत्यन्त कठिन है । ऐसे लोगों को परमात्मा तथा जीवों के मध्य के सम्बन्ध का बोध होता है तथा वे शरीर को जीवन मानने की धारणा नहीं रखते है । ऐसे लोग आपको पूर्ण चेतना के साथ सदैव अपने हृदय में धारण करते हैं, अतएव वे इतने पावन हो जाते हैं कि वे जिस स्थान पर भी जाते हैं वह एक पावन तीर्थस्थान बन जाता है । उनके चरण धोने वाला जल (चरणोदक) इस भौतिक जगत में भटकने वाले अनेक पापियों को मुक्त करने में समर्थ है ।

" जब प्रह्लाद महाराज के नास्तिक पिता ने उनसे अपनी सीखी हुई किसी अत्यन्त उत्तम वस्तु का वर्णन करने को कहा, तब उन्होंने अपने पिता को उत्तर दिया कि अस्थायी तथा सापेक्ष सत्यों में संलग्न रहने के कारण सदैव ही उद्विग्नताओं से परिपूर्ण रहने वाले एक भौतिकतावादी व्यक्ति के लिए सर्वोत्तम मार्ग यह है कि वह गृहस्थ जीवन के अन्धे कुएँ को त्याग दे तथा परमेश्वर की शरण ग्रहण करने के लिए वन में चला जाए । जो वास्तव में विशुद्ध भक्त हैं उन्हें महात्मा अथवा महर्षि कह कर उनकी सराहना की जाती है । वे ज्ञान में पूर्ण पुरुष हैं । वे सदैव ही परमेश्वर तथा उनके चरणकमलों का चिन्तन करते हैं और इस प्रकार वे अपने आप मुक्त हो जाते हैं । उस दशा में सदा स्थित रहने वाले भत भगवान् की अचिन्त्य शक्तियों से प्राणान्वित हो जाते हैं और इसलिए जो कोई ऐसे शुद्ध भक्त का स्पर्श करता है या उसकी शरण में जाता है, वह स्वयं आध्यात्मिक शक्तियों से अनुप्राणित हो जाता है । ऐसे भक्त भौतिक

ऐश्वर्यों से कभी गर्व-स्फीत नहीं होते । सामान्य रूप से भौतिक ऐश्वयों में उत्तम वंश, शिक्षा, सुंदरता और सम्पवि की गणना की जाती है, किन्तु, यद्यपि भगवान् के एक भक्त को ये चारों भौतिक ऐश्वर्य सुलभ हो सकते हैं, वह कभी-भी ऐसी विशिष्टताओं का स्वामी होने के गर्व में अपने को नहीं खोता । भगवान् के महान् भत एक तीर्थस्थान से दूसरे तीर्थस्थान में होते हुए संसार भर की यात्रा करते हैं और मार्ग में उन्हें अनेक बद्धजीव मिलते हैं जिनका उद्धार वे अपने साहचर्य और दिव्य ज्ञान के वितरण से करते हैं । वे वृन्दावन, मथुरा, द्वारका, जगन्नाथपुरी एवं नवद्वीप जैसे स्थानों में रहते हैं और संतों की संगति का लाभ उठाते हैं और ऐसी संगति के परिणाम स्वरूप कृष्णभावनामृत की साधना में उत्तरोत्तर आगे बढ़ते जाते हैं । ऐसी प्रगति गृहस्थ-जीवन में संभव नहीं और इस प्रकार वे स्वयं अपने अनुयायियों एवं भक्तों के लिए मोक्ष का स्रोत बन जाते हैं । कृष्णभावनाभावित व्यक्ति आध्यात्मिक रूप से पूर्णत: प्राणान्वित होता है । क्योंकि साधारण गृहस्थ जीवन कृष्णभावनामृत से शून्य है ।

मूर्तिमान वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! अध्यात्मवादियों के दो वर्ग हैं, निर्विशेषवादी तथा साकारवादी । निर्विशेषवादियों का मत है कि यह भौतिक सृष्टि मिथ्या है तथा केवल परम सत्य ही तथ्यरूप है । किन्तु साकारवादियों का मत है, यद्यपि भौतिक जगत अत्यन्त अस्थायी है, तथापि यह मिथ्या नहीं, अपितु वास्तविक है । इस प्रकार अध्यात्मवादियों के पास अपने-अपने मत की प्रामाणिकता को स्थापित करने के लिए भिन्न-भिन्न तर्क हैं । वास्तविकता यह है कि भौतिक जगत एक ही साथ सत्य व मिथ्या दोनों ही है । यह सत्य है क्योंकि प्रत्येक वस्तु परम पूर्ण सत्य का ही प्रकाश है और यह मिथ्या है, क्योंकि भौतिक जगत का अस्तित्व अस्थायी है । इसकी सृष्टि होती है तथा इसका विनाश होता है । इसके अस्तित्व की विभिन्न दशाओं के कारण सृष्टि की कोई निश्चित स्थिति नहीं होती है । भौतिक जगत को मिथ्या स्वीकार करने का परामर्श देने

वाले साधारणतया ब्रह्म सत्य जामिथ्याके सूत्र के द्वारा विख्यात हैं । वे यह तर्क देते हैं कि भौतिक जगत में प्रत्येक वस्तु द्रव्यों से निर्मित होती है । उदाहरणार्थ, मिट्टी से अनेक वस्तुओं का निर्माण होता है, जैसे मिट्टी के घड़े, कटोरी तथा गेंद । इनके नष्ट होने के उपरान्त ये वस्तुएँ अन्य अनेक भौतिक वस्तुओं में परिवर्तित हो सकती हैं, किन्तु इन सबमें मिट्टी के रूप में उनका अस्तित्व बना रहता है । मिट्टी का घड़ा टूटने के पश्चात् कटोरी, तश्तरी अथवा अन्य पात्र में परिवर्तित हो सकता है, किन्तु तश्तरी, कटोरी अथवा घड़े के रूप मिथ्या हैं, परन्तु मिट्टी के रूप में उनका अस्तित्व सत्य है । यह निर्विशेषवादियों का मत है । यह सृष्टि निश्चय ही परम सत्य से ही उत्पन्न होती है, परन्तु इसका अस्तित्व अस्थायी होने के कारण यह मिथ्या है । निर्विशेषवादियों का मत है कि सदैव उपस्थित रहने वाला परम सत्य ही एकमात्र सत्य है । किन्तु दूसरे अध्यात्मवादियों के मतानुसार परम सत्य से उत्पन्न होने वाला यह भौतिक जगत भी सत्य है । इसके उत्तर में निर्विशेषवादी तर्क देते हैं कि भौतिक जगत तथ्यरूप नहीं है, क्योंकि कभी-कभी आत्मा से भौतिक द्रव्य की उत्पत्ति होते दिखाई देती है तथा कभी-कभी भौतिक द्रव्य से आत्मा की उत्पत्ति होती दिखाई देती है । ऐसे दार्शनिक यह मत प्रस्तुत करते हैं कि यद्यपि गोबर एक निर्जीव द्रव्य है, तो भी कभी-कभी गोबर में से बिच्छू निकलता हुआ भी मिलता है । उसी भाँति जीवित देह में से निर्जीव नाखून तथा बाल निकलते हैं । अतएव एक वस्तुविशेष से उत्पन्न होने वाली वस्तुएँ सदैव उसके समान नहीं होती हैं । इस तर्क के बल पर मायावादी दार्शनिक यह स्थापित करते हैं कि यद्यपि यह सृष्टि निश्चय ही परम सत्य से ही निकलती है, किन्तु यह आवश्यक नहीं है कि सृष्टि भी सत्य हो । अतएव इस दृष्टिकोण के अनुसार परम सत्य ब्रह्म को सत्य स्वीकार करना चाहिए । यद्यपि यह सृष्टि परम सत्य से ही उत्पन्न होती है तथापि इसे सत्य रूप में स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।"

मायावादी दार्शनिकों के दृष्टिकोण को भगवद्गीता में असुरों का दृष्टिकोण कहा गया है । भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं असत्यमप्रतिछ ते जगदाहुरनीश्वरम् / असुरों का सृष्टि सम्बन्धी दृष्टिकोण है कि सृष्टि मिथ्या है । असुरों का विचार है कि केवल द्रव्यों की क्रिया-प्रतिक्रिया ही सृष्टि का स्रोत है तथा कोई नियन्ता अथवा ईश्वर नहीं है । किन्तु वस्तुत: तथ्य यह नहीं है । गीता के सातवें अध्याय से हमें ज्ञात होता है कि क्षिति, जल, पावक गगन व समीर के स्थूल तत्व तथा मन, बुद्धि तथा अंहकार के तीन सूक्ष्म तत्व परमेश्वर की आठ भिन्न शक्तियाँ हैं । इस तीन भौतिक शक्तियों से परे एक आध्यात्मिक शक्ति भी है, जिसे जीवों के रूप में जाना जाता है । जीवों को भी भगवान् की श्रेष्ठतर शक्ति माना जाता है । समस्त सृष्टि हीन व श्रेष्ठ शक्तियों का एक संयोग है तथा इन शक्तियों का स्रोत श्रीभगवान् है । श्रीभगवान् विभिन्न प्रकार की शक्तियों के स्वामी हैं । इस बात की पुष्टि वेदों में की गई है, परास्य शक्ति/वंविधैव भ्रूयते-भगवान् की दिव्य शक्तियाँ विविधरंगी हैं । परमेश्वर से अद्‌भुत होने के कारण ये विविधाताएँ मिथ्या नहीं हो सकती हैं । भगवान् का अस्तित्व नित्य है तथा उनकी शक्तियाँ भी नित्य अस्तित्व वाली हैं । कुछ शक्तियाँ अस्थायी हैं-वे कभी प्रकाशित होती हैं कभी अप्रकाशित रहती हैं-किन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि ये मिथ्या हैं । यह उदाहरण दिया जा सकता है कि क्रोधावस्था में व्यक्ति अपने सामान्य जीवन की स्थिति से भिन्न रूप में व्यवहार करता है, किन्तु इस क्रोध के भाव के प्रकट व अप्रकट होने का यह अर्थ नहीं कि क्रोध की शक्ति मिथ्या है । वैष्णव दार्शनिक मायावादियों के इस तर्क को कि जगत मिथ्या है स्वीकार नहीं करते हैं । भगवान् ने स्वयं इस तथ्य की पुष्टि की है कि इस भौतिक सृष्टि का कोई परम कारण न मानने वाला दृष्टिकोण आसुरी दृष्टिकोण है । ईश्वर के अस्तित्व को न मानने वाला तथा प्रत्येक वस्तु को द्रव्यों की क्रिया-प्रतिक्रिया की रचना-मात्र मानने वाला दृष्टिकोण असुरों का दृष्टिकोण है ।

मायावादी दार्शनिक कभी-कभी रस्सी व सर्प का तर्क प्रस्तुत करते हैं । संध्या के अंधकार में गोलाकार पड़ी हुई रस्सी को कभी-कभी अज्ञानवश सर्प समझा जा सकता है । किन्तु रस्सी को सर्प समझने का यह अर्थ नहीं है कि रस्सी अथवा सर्प मिथ्या है । अतएव जगत के मिथ्यात्व को प्रदर्शित करने वाले मायावादियों द्वारा प्रयुक्त यह उदाहरण न्यायोचित नहीं है । जब किसी वस्तु को तथ्य मान लिया जाता है, किन्तु वास्तव में उसका कोई अस्तित्व नहीं होता है, तब उसे मिथ्या कहते हैं । किन्तु यदि किसी एक वस्तु को भूल से कुछ दूसरी वस्तु समझ लिया जाए, तो इसका यह अर्थ नहीं की वह मिथ्या है । इस भौतिक जगत की तुलना एक मिट्टी के पात्र से करते हुए, वैष्णव दार्शनिक एक अत्यन्त उपयुक्त दृष्टान्त का उपयोग करते हैं । जब हम एक मिटट्री के पात्र को देखते हैं तब यह तत्काल ही तिरोहित होकर किसी अन्य वस्तु में परिवर्तित नहीं हो जाता है । यह अनित्य हो सकता है किन्तु मिटट्री के पात्र का उपयोग जल लाने के लिए किया जाता है तथा हम इसे मिट्टी के पात्र के रूप में देखते रहते हैं । यद्यपि घड़ा अनित्य है तथा मूल मिट्टी से भिन्न है, तथापि हम इसको मिथ्या नहीं कह सकते हैं । अतएव हमें यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि सम्पूर्ण भूमि तथा घड़ा दोनों ही सत्य हैं, क्योंकि एक वस्तु दूसरे से उत्पन्न होता है । भगवद्गीता से हमें ज्ञात होता है कि सृष्टि के प्रलय के उपरान्त शक्ति श्रीभगवान् में प्रवेश कर जाती है । अपनी विविध शक्तियों सहित श्रीभगवान् का नित्य अस्तित्व रहता है । भौतिक सृष्टि भगवान् से ही निकलती है, अतएव हम यह नहीं कह सकते हैं कि यह सृष्टि शून्य से उत्पन्न होती है । श्रीकृष्ण शून्य नहीं हैं । जब कभी-भी हम श्रीकृष्ण की चर्चा करते हैं, वे अपने रूप, गुण, नाम, पार्षदों तथा वैशिष्य के साथ उपस्थित रहते हैं । अतएव श्रीकृष्ण निर्विशेष नहीं हैं । प्रत्येक वस्तु का मूल कारण न तो शून्य है न ही निर्विशेष, अपितु परम पुरुष है । असुर यह कह सकते हैं कि यह भौतिक सृष्टि अनीश्वर अथवा नियन्ता या भगवान् से रहित हैं, किन्तु अन्ततः ऐसे तर्क सिद्ध नहीं हो सकते हैं ।

मायावादी दार्शनिकों द्वारा प्रस्तुत तर्क कि नाखून, केश आदि निर्जीव द्रव्य सजीव शरीर से निकलते हैं, अत्यन्त युक्तियुक्त तर्क नहीं है । नाखून तथा केश निस्सन्देह ही निर्जीव हैं, किन्तु वे सजीव जीवों से नहीं अपितु निर्जीव भौतिक देह से निकलते हैं । उसी भाँति गोबर में से बिच्छू निकलता है, अर्थात् पदार्थ में से जीव निकलता है, यह तर्क भी युक्तियुक्त नहीं है । गोबर में से निकलने वाला बिच्छू निस्सन्देह ही एक जीव है, किन्तु जीव गोबर में से नहीं निकलता है । जीव का केवल भौतिक शरीर अथवा बिच्छू का शरीर ही गोबर में से निकलता है । जैसाकि हमें भगवद्गीता से ज्ञात होता है जीवों के स्फुलिंग भौतिक प्रकृति में स्थापित हो जाते हैं और तत्पश्चात् वे बाहर आते हैं । विभिन्न रूपों में जीवों का शरीर भौतिक प्रकृति की देन है, किन्तु जीव स्वयं परमेश्वर से प्राप्त होता है । जीव के लिए विशेष परिस्थितियों में आवश्यक शरीर उसे माता पिता देते हैं । जीव अपनी विभिन्न इच्छाओं के अनुसार एक शरीर से दूसरे में देहान्तरण करता रहता है । बुद्धि, मन तथा अंहकार के सूक्ष्म रूप में इच्छाएँ जीव के साथ एक देह से दूसरे देह में जाती हैं तथा परमेश्वर के प्रबन्ध के द्वारा जीव को एक विशेष प्रकार के भौतिक शरीर के गर्भ में स्थापित कर दिया जाता है और तत्पश्चात् वह भी उसी के समान शरीर विकसित कर लेता है । अतएव आत्मा की उत्पति द्रव्य से नहीं होती है, अपितु यह परमेश्वर के प्रबन्ध के अन्तर्गत एक विशेष प्रकार का शरीर धारण करती है । हमारे वर्तमान अनुभव में यह भौतिक जगत पदार्थ व आत्मा का संयोग है-आत्मा पदार्थ को गतिमान करती है । आत्मा (जीव) तथा पदार्थ परमेश्वर की भिन्न-भिन्न शक्तियाँ हैं । दोनों ही शक्तियाँ परम नित्य अथवा परम सत्य की उत्पाद हैं, अतएव वे सत्य हैं, मिथ्या नहीं हैं । जीव परमेश्वर का अंश है, अतएव उसका अस्तित्व नित्य है । फलत: जन्म तथा मृत्यु का कोई प्रश्न ही नहीं उठता है । तथाकथित जन्म तथा मृत्यु भौतिक परम ब्रह्म से निकलती हैं, अतएव हम जिसका अनुभव करते हैं, वह प्रत्येक वस्तु ब्रह्म से भिन्न नहीं है ।

इस भौतिक जगत के अस्तित्व के विषय में अनेक तर्क हैं, किन्तु वैष्णवों का दार्शनिक निष्कर्ष सर्वश्रेष्ठ है । घड़े का उदारहण अत्यन्त उपयुक्त है । घड़े का रूप अनित्य हो सकता है, किन्तु इसका एक निश्चित प्रयोजन है । घड़े का प्रयोजन एक स्थान से दूसरे स्थान तक जल ले जाना है । उसी भाँति यह भौतिक शरीर भी अनित्य है, किन्तु इसका एक विशेष उपयोग है । सृष्टि के प्रारम्भ से ही जीव को अनन्त काल से संचित अपनी एकत्र इच्छाओं के अनुसार, विभिन्न प्रकार की भौतिक देहों का विकास करने का अवसर प्रदान किया गया है । मानव-शरीर एक विशेष अवसर है, जिसमें चेतना के विकसित रूप का उपयोग किया जा सकता है ।

कभी-कभी मायावादी दार्शनिक यह तर्क प्रस्तुत करते हैं कि यदि यह भौतिक जगत सत्य है, तो गृहस्थ लोगों को इस भौतिक जगत से अपना सम्बन्ध-विच्छेद कर के संन्यास ग्रहण करने का परामर्श क्यों दिया जाता है? किन्तु वैष्णव दार्शनिकों के संन्यास का दृष्टिकोण यह नहीं है कि यह जगत मिथ्या है, अतएव मानव को भौतिक गतिविधियों का त्याग करना चाहिए । वैष्णव संन्यास का प्रयोजन है कि वस्तुओं का उचित उपयोग करें । श्रील रूप गोस्वामी ने इस भौतिक जगत से व्यवहार करने के दो सूत्र दिए हैं । जब एक वैष्णव जीवन की भौतिकतावादी रीति को त्याग कर संन्यास ग्रहण करता है, तब वह ऐसा भौतिक जगत के मिथ्यात्व की धारणा के आधार पर नहीं करता है । अपितु वह प्रत्येक को पूर्ण रूप से भगवान् की सेवा में संलग्न करने के हेतु अपने को समर्पित करने के लिए ऐसा करता है । अतएव श्रील रूप गोस्वामी यह सूत्र प्रदान करते हैं कि व्यक्ति को भौतिक जगत से अनासक्त रहना चाहिए, क्योंकि भौतिक मोह निरर्थक है । समस्त भौतिक जगत या समस्त सृष्टि भगवान् श्रीकृष्ण की है । अतएव प्रत्येक वस्तु का उपयोग श्रीकृष्ण के लिए ही करना चाहिए तथा भक्त को भौतिक वस्तुओं के प्रति अनासक्त रहना चाहिए । वैष्णव संन्यास का यही प्रयोजन है । भौतिकवादी इन्द्रियतृप्ति के लिए

जगत से चिपका रहता है, किन्तु वैष्णव संन्यासी अपनी वैयक्तिक इन्द्रियतृप्ति के लिए किसी वस्तु को स्वीकार नहीं करता है, तथापि प्रत्येक वस्तु को भगवान् की सेवा के लिए उपयोग करने की कला उसे ज्ञात होती है । अतएव श्रील रूप गोस्वामी ने मायावादी संन्यासियों की आलोचना की है, क्योंकि उन्हें यह ज्ञान नहीं है कि प्रत्येक वस्तु का भगवान् की सेवा के लिए उपयोग होता है । इसके विपरीत वे जगत को मिथ्या मानते हैं और इस प्रकार भौतिक जगत के दूषणों से मुक्त होने का मिथ्या विचार करते हैं । प्रत्येक वस्तु परमेश्वर की शक्ति का एक अंश है, अतएव अंश उतने ही वास्तविक हैं जितने की परमेश्वर हैं ।

सृष्टि केवल अस्थायी रूप से अभिव्यक्त होती है । इसका यह अर्थ नहीं है कि यह मिथ्या है, अथवा इसकी अभिव्यक्ति का स्रोत मिथ्या है । इसकी अभिव्यक्ति का स्रोत सत्य है, अतएव अभिव्यक्ति भी सत्य है, किन्तु व्यक्ति को इसका उपयोग करने की रीति आनी चाहिए । यहाँ भी वही उदारहण दिया जा सकता है-सम्पूर्ण भूमि से अस्थायी घड़े का उत्पादन किया जाता है, किन्तु जब इसका उचित प्रयोजन के लिए उपयोग किया जाता है, तब घड़ा मिथ्या नहीं होता है । वैष्णव दार्शनिकों को इस भौतिक जगत की अस्थायी रचना के उचित उपयोग की प्रणाली ज्ञात है, जैसे कि एक बुद्धिमान व्यक्ति को घड़े की अस्थायी रचना के उपयोग की विधि ज्ञात होती है । जब घड़े का उपयोग गलत उद्देश्य के लिए किया जाता है, तब वह मिथ्या है । उसी भाँति जब यह भौतिक शरीर या यह भौतिक जगत मिथ्या इन्द्रियतृप्ति हेतु प्रयुक्त किया जाता है, तो वह मिथ्या है । किन्तु यदि मानव-शरीर तथा भौतिक सृष्टि का उपयोग परमेश्वर की सेवा के लिए किया जाए, तो उनकी गतिविधियाँ कभी भी मिथ्या नहीं होती हैं । अतएव भगवद्गीता में इसकी पुष्टि की गई है कि इस देह तथा भौतिक जगत को भगवान् की सेवा के लिए उपयोग करने की थोड़ी सी सेवाभावना व्यक्ति को जीवन के भयंकरतम संकटों से मुक्ति

दिला सकती है । जब उनका उचित उपयोग किया जाता है, तब श्रीभगवान् से निकलने वाली श्रेष्ठ (परा) तथा निकृष्ट (अपरा) दोनों शक्तियों में से कोई भी मिथ्या नहीं होती है । जहाँ तक सकाम कर्मों का प्रश्न है वे मुख्यत: इन्द्रियतृप्ति के स्तर पर आधारित हैं । अतएव एक प्रगतिशील कृष्णभावनाभावित व्यक्ति उन्हें अंगीकार नहीं करता है । सकाम कर्मों का फल व्यक्ति का उच्चतर लोकों (स्वर्ग) तक उत्कर्ष कर सकता है । किन्तु जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, स्वर्ग लोक में अपने पुण्यकर्मों के फल को भोगने के पश्चात् मूर्खलोग पुन: इस निम्न जगत में लौट आते हैं । तत्पश्चात् वे पुन: स्वर्ग लोक जाने का प्रयास करते हैं । उनका एकमात्र लाभ जाने तथा आने का कष्ट है, जैसे कि आजकल कई भौतिक वैज्ञानिक चन्द्रलोक पर जाने तथा वापस लौटने के प्रयास में इतना समय नष्ट कर रहे हैं । ऐसे कार्यों में संलग्न लोगों को मूर्तिमान वेदों ने अन्धपरम्परा अथवा वेदों के विधि-विधानों का अन्धानुसरण करने वाला कहा है । यद्यपि ऐसे संस्कारों का वेदों में निश्चित रूप से उल्लेख किया गया है, किन्तु वे बुद्धिमान वर्ग के लोगों के लिए नहीं हैं । भौतिक सुख से अत्यधिक लगाव रखने वाले व्यक्ति स्वर्गादि लोकों तक उत्कर्ष करने की सम्भावना से मुग्ध हो जाते हैं, अतएव वे ऐसे विधि-विधानों को अंगीकार कर लेते हैं । किन्तु एक बुद्धिमान व्यक्ति, अथवा वस्तुओं को उनके वास्ताविक रूप में देखने की इच्छा से प्रामाणिक गुरु की शरण में आया हुआ व्यक्ति सकाम कर्म नहीं करता है, अपितु वह भगवान् की दिव्य प्रेमसेवा में संलग्न हो जाता है ।

जो व्यक्ति भक्त नहीं हैं, वे भौतिक कारणों से वैदिक विधि-विधानों को अंगीकार करते हैं और तत्पश्चात् वे दिग्भ्रमित हो जाते हैं । इसका एक सजीव उदाहरण दिया जा सकता है-करोड़ों रुपयों के नोटों का स्वामी, एक बुद्धिमान व्यक्ति उन रुपयों का उपयोग किए बिना ही उन्हें रखे नहीं रहता है । यद्यपि उसे भलीभाँति यह ज्ञात होता है कि अपने आप में नोट

कागजमात्र हैं और अन्य कुछ भी नहीं । जब व्यक्ति के पास करोड़ों रुपए के नोट होते हैं तब वास्तव में वह केवल कागजों के एक विशाल गट्ठर का स्वामी होता है, किन्तु यदि वह इसका उपयोग किसी प्रयोजन के लिए करता है, तो वह लाभान्वित होता है । उसी भाँति यद्यपि यह भौतिक जगत कागज की भाँति मिथ्या हो सकता है, किन्तु इसका भी उचित लाभकारी उपयोग है । रुपये के नोटों को सरकार चलाती है, अतएव उनका पूरा मूल्य है । उसी भाँति यह भौतिक जगत भी मिथ्या तथा अस्थायी हो सकता है, किन्तु परमेश्वर से निकलने के कारण इसका पूरा मूल्य है । वैष्णव दार्शनिक इस भौतिक जगत के मूल्य को पहचान कर उसे स्वीकार करते हैं तथा उन्हें इसके उचित उपयोग की विधि ज्ञात है, जबकि मायावादी दार्शनिक भूल से रुपये के नोटों को मिथ्या कागज मान कर उसका त्याग कर देता है तथा धन का उपयोग नहीं कर सकता है । अतएव श्रील रूप गोस्वामी कहते हैं कि श्रीभगवान् की सेवा को साधन के रूप में इस भौतिक जगत की महत्ता पर विचार न करते हुए यदि कोई इस भौतिक जगत को मिथ्या मान कर इसका परित्याग कर देता है, तो ऐसे त्याग का मूल्य अत्यल्प है । जो व्यक्ति भगवान् की सेवा के निमित्त इस भौतिक जगत के यथार्थ मूल्य को जानता है, जिसे भौतिक जगत से मोह नहीं है तथा जो इन्द्रियतृप्ति के लिए भौतिक जगत को स्वीकार न करके इसका परित्याग करता है, वही वास्तविक त्यागी अथवा संन्यासी है । यह भौतिक जगत भगवान् की भौतिक शक्ति का विस्तार है । अतएव यह सत्य है । सर्प तथा रज्जु के दृष्णन्त के द्वारा कभी-कभी जो निष्कर्ष निकाला जाता है कि जगत मिथ्या है, वह सत्य नहीं है । यह जगत मिथ्या नहीं है ।

मूर्तिमान वेदों ने आगे कहा, "अपने अस्थायी अस्तित्व की चंचल प्रकृति के कारण अल्पबुद्धि मानवों को यह सृष्टि मिथ्या प्रतीत होती है ।" मायावादी दार्शनिक इस जगत को मिथ्या बताने वाले अपने सिद्धान्त को

सिद्ध करने के लिए इस सृष्टि की चंचल प्रकृति का लाभ उठाते हैं । वेदों के अनुसार सृष्टि से पूर्व इस जगत का कोई अस्तित्व नहीं था तथा प्रलय के उपरान्त जगत का अस्तित्व नहीं रहेगा । शून्यवादी दार्शनिक भी वेदों के इस मत का लाभ उठा कर यह निष्कर्ष निकालते हैं कि इस भौतिक जगत का कारण शून्य है । किन्तु वेदों का आदेश यह नहीं कहता है कि यह शून्य है । वेदों का निर्देश सृष्टि के उद्गम तथा प्रलय की परिभाषा इस प्रकार करता है-यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते-अर्थात् "वह, जिनसे यह सृष्टि निकलती है तथा प्रलय के उपरान्त जिनमें प्रत्येक वस्तु विलीन हो जाएगी ।" इसी को वेदान्तसूत्र में तथा श्रीमद्भागवत के प्रथम अध्याय के प्रथम श्लोक में जन्माद्यस्य शब्द के द्वारा स्पष्ट किया गया है-वह जिससे प्रत्येक वस्तु उत्पन्न होती है । ये सभी वैदिक निर्देश यह संकेत देते हैं कि सृष्टि के कारण परम पूर्ण श्रीभगवान् हैं तथा जब इस सृष्टि का प्रलय होता है, तब यह उनमें ही विलीन हो जाती है । इस बात की पुष्टि भगवद्गीता में भी की गई है-यह सृष्टि अस्तित्व में आती है और इसका लय होता रहता है जब इस सृष्टि का प्रलय होता है, तो प्रलयोपरान्त यह परमेश्वर के अस्तित्व में विलीन हो जाती है । यह कथन इस बात की निश्चितरूप से पुष्टि करता है कि माया के नाम से विख्यात चंचल प्रकृति की यह बहिरंगा शक्ति परमेश्वर की शक्ति है तथा अपने आप में यह मिथ्या नहीं हो सकती है । यह केवल मिथ्या प्रतीत होती है । मायावादी दार्शनिक यह निष्कर्ष निकालते हैं कि प्रारम्भ में भौतिक प्रकृति का कोई अस्तित्व नहीं था तथा प्रलय के पश्चात् भी इसका अस्तित्व नहीं होता, अतएव यह मिथ्या है । किन्तु मिट्टी के घड़े तथा पात्रों के दृष्टान्त के द्वारा वैदिक मत प्रस्तुत किया जाता है-यद्यपि परम सत्य से निकलने वाले विशिष्ट पदार्थ अनित्य हैं, तथापि परमेश्वर की शक्ति नित्य है । मिट्टी का घड़ा टूट सकता है, अथवा उसका दूसरे आकार में रूपान्तर हो सकता है, जैसे कि थाली अथवा कटोरी के आकार में, किन्तु उसकी सामग्री अथवा मिट्टी नामक आधारभूत पदार्थ वही रहता है । इस सृष्टि का आधारभूत सिद्धान्त सदैव

वही ब्रह्म अथवा परम सत्य रहता है । अतएव मायावादी दार्शनिकों का सिद्धान्त कि जगत मिथ्या है, निश्चय ही उनके दिमाग की उपज-मात्र है । सृष्टि के अनित्य तथा चंचल होने का यह अर्थ नहीं है कि यह मिथ्या है । मिथ्या की परिभाषा है, वह वस्तु जिसका कभी अस्तित्व नहीं था, किन्तु जिसका अस्तित्व केवल नाम-मात्र का है । उदाहरणार्थ घोड़े का अंडा, आकाशकुसुम अथवा खरगोश के सींग आदि ऐसे पदार्थ हैं जिनका अस्तित्व उनके नाम-मात्र का ही है । घोड़े के अंडे नहीं होते है, खरगोश के कोई सींग नहीं होता है तथा आकाश में प्रस्फुटित होने वाला कोई पुष्प नहीं है । ऐसी बहुत सी वस्तुएँ हैं जिनका अस्तित्व केवल नाम में अथवा कल्पना में ही होता है, किन्तु उनका कोई वास्तविक विस्तार नहीं होता है । ऐसी वस्तुओं को मिथ्या कहा जा सकता है । किन्तु केवल भौतिक जगत की अनित्य प्रकृति के व्यक्त तथा प्रलय होने के कारण ही वैष्णव दार्शनिक इसे मिथ्या नहीं मान सकते हैं ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा कि परमात्मा तथा जीवात्मा किसी भी परिस्थिति में समान नहीं हो सकते हैं, यद्यपि दोनों एक ही वृक्ष पर बैठे हुए पक्षियों के समान एक ही शरीर में प्रतिष्ठित हैं । जैसाकि वेदों में घोषित किया गया है ये दोनों पक्षी यद्यपि मित्रवत् बैठे हैं, तथापि वे समान नहीं हैं । उनमें से एक केवल साक्षी-मात्र है । यह पक्षी परमात्मा है । दूसरा पक्षी वृक्ष का फल खा रहा है, वह जीवात्मा है । जब सृष्टि होती है, तब जीवात्मा अपने पूर्व सकाम कर्मों के अनुसार सृष्टि में विभिन्न रूपों में प्रकट होता है । अपने वास्तविक अस्तित्व को विस्मृत कर देने के कारण वह भौतिक प्रकृति के नियमों द्वारा प्रदत्त किसी रूप विशेष से अपना तादात्म्य स्थापित कर लेता है । एक भौतिक रूप ग्रहण कर लेने के उपरान्त वह प्रकृति के भौतिक त्रिगुणों का विषय बन जाता है तथा भौतिक जगत में अपने अस्तित्व का क्रम जारी रखता है । अत्यन्त सूक्ष्म मात्रा में उसके प्राकृतिक ऐश्वयों का अस्तित्व रहता है, तथापि वे लगभग

लुप्तप्राय हो जाते हैं । किन्तु परमात्मा अथवा श्रीभगवान् के ऐश्वर्यों का ह्रास कभी नहीं होता है, चाहे वे भौतिक जगत में ही क्यों न प्रकट हों । वे समस्त ऐश्वयों एवं पूर्णताओं को सम्पूर्ण रूप से बनाए रखते हैं और फिर भी स्वयं को इस भौतिक जगत के समस्त दुखों से अलग रखते हैं । बद्धात्मा इस भौतिक जगत में फैंस जाता है, जबकि परमात्मा अथवा श्रीभगवान् इसे बिना किसी मोह के उसी प्रकार त्याग देते हैं, जैसे सर्प अपनी केंचुल त्याग देता है । परमात्मा तथा बद्ध जीवात्मा में भेद यह है कि परमात्मा अथवा श्रीभगवान् अपने प्राकृतिक ऐश्वर्यों को बनाए रखते हैं । ये प्राकृतिक ऐश्वर्य षडैश्वर्य, अष्टसिद्धि तथा अष्टगुण हैं ।

अपनी अल्पज्ञता के कारण मायावादी दार्शनिक यह तथ्य विस्मृत कर देते हैं कि श्रीकृष्ण सदैव ही षडैश्वर्यों, अष्ट दिव्य गुणों तथा अष्ट सिद्धियों से परिपूर्ण रहते हैं । कोई भी धन, बल, सौन्दर्य, यश, ज्ञान तथा वैराग्य में श्रीकृष्ण से बढ़कर नहीं है । यही षडैश्वर्य हैं । श्रीकृष्ण के अष्ट दिव्य गुणों में सर्वप्रथम यह है कि भौतिक अस्तित्व का दूषण उन्हें कभी स्पर्श नहीं करता है । इस बात का उल्लेख ईशोपनिषद् में भी किया गया है-अप/प विद्धसू/जिस प्रकार सूर्य किसी भी दूषण से दूषित नहीं होता है उसी प्रकार परमेश्वर किसी भी पाप से दूषित नहीं होता है । उसी के समान यद्यपि कभी-कभी श्रीकृष्ण के कर्म अपवित्र प्रतीत हो सकते हैं, किन्तु वे ऐसे कर्मों से कभी भी दूषित नहीं होते हैं । द्वितीय दिव्य गुण है कि श्रीकृष्ण की कभी मृत्यु नहीं होती है । भगवद्गीता के चौथे अध्याय में वे अर्जुन को सूचित करते हैं कि वे तथा अर्जुन दोनों ही अनेक बार इस भौतिक जगत में प्रकट हो चुके हैं, किन्तु केवल श्रीकृष्ण ही भूत, भविष्य तथा वर्तमान की ऐसी समस्त गतिविधियों को स्मरण रखते हैं । इसका अर्थ है कि उनकी कभी मृत्यु नहीं होती है । विस्मृति का कारण मृत्यु है । जब हमारी मृत्यु होती है, तब हम अपना शरीर परिवर्तित करते हैं । वही विस्मृति है । किन्तु श्रीकृष्ण को कभी-भी विस्मृति नहीं होती है । वे

भूतकाल में घटित प्रत्येक घटना का स्मरण कर सकते हैं । अन्यथा वे यह कैसे स्मरण कर सकते थे कि उन्होंने भगवद्गीता में योग-प्रणाली का उपदेश प्रथम सूर्यदेव विवस्वान् को दिया था ? अतएव उनकी कभी भी मृत्यु नहीं होती है, न ही वे कभी वृद्ध प्रतीत होते । श्रीकृष्ण किसी भी पाप के द्वारा दूषित नहीं हो सकते हैं, श्रीकृष्ण की कभी मृत्यु नहीं होती है, श्रीकृष्ण कभी वृद्ध नहीं होते हैं तथा कभी भी शोक के भागी नहीं होते हैं । श्रीकृष्ण को कभी क्षुधा अथवा तृष्णा नहीं सताती है । वे जिस किसी वस्तु की भी इच्छा करते हैं, वह पूर्णत: नियमानूकूल है तथा वे जो कुछ भी निश्चय करते हैं उसे कोई परिवर्तित नहीं कर सकता है । ये श्रीकृष्ण के दिव्य गुण हैं । इसके अतिरिक्त श्रीकृष्ण योगेश्वर के नाम से भी विख्यात हैं । वे समस्त ऐश्वर्यों अथवा सिद्धियों के स्वामी हैं, जैसे कि अणिमा-सिद्धि अर्थात् सूक्ष्मतम से भी सूक्ष्म बनने की शक्ति । ब्रह्म-सहिता में कहा गया है कि श्रीकृष्ण ने अणु में भी प्रवेश किया है, अण्डान्तरस्थपरमाणु चयान्तरस्थमू/ इसी के समान गर्भादकशायी विष्णु के रूप में श्रीकृष्ण विशाल ब्रह्माण्ड में हैं तथा वे कारण समुद्र में महाविष्णु के रूप में इतने विशाल शरीर में शयन कर रहे हैं कि जब उच्छास लेते हैं तब उनके शरीर से करोड़ों अरबों ब्रह्माण्ड निकलते हैं । इसे महिमा सिद्धि कहते हैं । श्रीकृष्ण लघिमा सिद्धि के भी स्वामी हैं । वे सर्वाधिक अल्प भार वाले बन सकते हैं । भगवद्गीता में कहा गया है कि श्रीकृष्ण इस ब्रह्माण्ड तथा अणुओं में प्रवेश करते हैं, इसी कारण समस्त ग्रह वायु में तैर रहे हैं । भारहीनता की यही व्याख्या है । श्रीकृष्ण प्राप्ति नामक सिद्धि के भी स्वामी हैं-वे अपनी इच्छा होने पर कुछ भी प्राप्त कर सकते हैं । इस भाँति उन्हें ईशिता अथवा नियंत्रण की शक्ति भी प्राप्त है । उन्हें परम नियन्ता, परमेश्वर कहा जाता है । इसके साथ-साथ श्रीकृष्ण किसी को भी अपने वश में कर सकते हैं । इसे वशिता कहते हैं ।

श्रीकृष्ण समस्त ऐश्वयाँ, दिव्य गुणों तथा सिद्धियों से युक्त हैं । किसी भी साधारण मानव की तुलना उनसे नहीं की जा सकती है । अतएव मायावादियों का यह सिद्धान्त कि परमात्मा तथा जीवात्मा एकसमान हैं, एक मिथ्या बुद्धि-मात्र है । अतएव निष्कर्ष यह है कि श्रीकृष्ण उपास्य हैं तथा अन्य समस्त जीव केवल उनके दास हैं । यह ज्ञान ही आत्म-साक्षात्कार कहलाता है । कहा जाता है कि जीव को श्रीभगवान् के बराबर बनने का प्रयास करने का आदेश देना माया का अन्तिम जाल है । मायावादी दार्शनिक ईश्वर के बाराबर होने का दावा करता है, किन्तु वह इस प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकता है कि वह भौतिक बन्धन में किस प्रकार पतित हुआ । यदि वह परमेश्वर है, तब यह किस प्रकार हुआ कि वह पापों में फैंस गया और इस कारण कर्म के नियम के दुखों का विषय बना? जब मायावादियों से यह प्रश्न किया जाता है, तब वे इसका उचित उत्तर नहीं दे पाते हैं । यह तर्क कि जीव श्रीभगवान् के बराबर है पापमय जीवन का एक अन्य लक्षण है । जब तक व्यक्ति समस्त पापों से मुक्त नहीं होता है, तब तक वह कृष्णभावनामृत ग्रहण नहीं कर सकता । यह तथ्य कि मायावादी परमेश्वर से एकाकार होने का दावा करते हैं बताता है कि वह अभी पापपूर्ण कर्मों के फल से मुक्त नहीं हुआ । भगवद्गीता के अनुसार ऐसे व्यक्ति अविशुद्ध बुद्धया हैं-इसका अर्थ है कि वे मिथ्या ही स्वयं को मुक्त समझते हैं, यद्यपि उसी के साथ वे स्वयं को परम सत्ता के बराबर भी मानते हैं । उनकी बुद्धि निर्मल नहीं है ।

मूर्तिमान् वेदों ने कहा कि यदि योगी तथा ज्ञानी स्वयं को पापेच्छाओं से मुक्त नहीं करते हैं, तब उनकी आत्म-साक्षात्कार की प्रक्रिया कदापि सफल नहीं होगी । मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! यदि सन्त जन पापेच्छाओं को पूर्णत: निर्मूल करने की सावधानी नहीं बरतते हैं, तब यद्यपि परमात्मा जीवात्मा के साथसाथ प्रतिष्ठित है, तथापि वे परमात्मा का अनुभव नहीं कर सकते हैं । समाधि अथवा ध्यान का अर्थ है कि व्यक्ति

को अपने अन्दर परमात्मा को प्राप्त करना होता है । जो पापों से मुक्त नहीं है, वह परमात्मा के दर्शन नहीं कर सकता है । यदि कोई गले में रत्नजटित लाकेट धारण करता है, किन्तु रत्न को विस्मृत कर देता है, तब यह लगभग वैसा ही है जैसे कि उसके पास रत्न हो ही नहीं । उसी भाँति यदि एक जीवात्मा समाधि लगाता है, किन्तु वस्तुत: अपने अन्दर में परमात्मा की उपस्थिति को नहीं देख पाता, तब उसे परमात्मा का साक्षात्कार नहीं हुआ है । अतएव जिन व्यक्तियों ने आत्म-साक्षात्कार के मार्ग को अपनाया है उन्हें माया के प्रभाव से अदूषित रहने के लिए अत्यधिक सावधान रहना चाहिए । श्रील रूप गोस्वामी का कथन है कि एक भक्त को समस्त प्रकार की भौतिक इच्छाओं से पूर्णतया मुक्त होना चाहिए । भक्त को कर्म तथा ज्ञान के फलस्वरूप होने वाले कर्मों से प्रभावित नहीं होना चाहिए । व्यक्ति को केवल श्रीकृष्ण को समझ कर उनकी इच्छाओं का पालन करना चाहिए । वही शुद्ध भक्ति की अवस्था है । कभी-भी इन्द्रियतृप्ति की दूषित इच्छाओं से युक्त योगी अपने प्रयास में सफल नहीं हो सकते हैं । न ही वे जीवात्मा के अन्दर परमात्मा का साक्षात्कार ही कर सकते हैं । इस प्रकार मानसिक तर्कवितर्क अथवा सीमित सिद्धियों के प्रदर्शन के द्वारा विभिन्न प्रकार की इन्द्रियतृप्ति में अपना समय नष्ट करने वाले योगी तथा ज्ञानी कभी भी बद्ध जीवन से मुक्त नहीं होंगे तथा बारम्बार जन्म-मृत्यु के चक्र में पड़ेंगे । ऐसे व्यक्तियों के लिए यह जीवन तथा अगला जीवन दोनों ही दुख के स्रोत बनते हैं । ऐसे पापी व्यक्ति इस जीवन में तो दुख भोग ही रहे हैं और आत्म-साक्षात्कार में पूर्ण न होने के कारण वे अगले जीवन में और भी दुखों से व्यथित होंगे । पूर्णता प्राप्त करने के समस्त प्रयत्न करने पर भी इन्द्रियतृप्ति की इच्छाओं से दूषित ऐसे योगी इस जीवन तथा अगले जीवन में भी दुख भोगते रहेंगे ।

इस सम्बन्ध में श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर ने टिप्पणी की है कि संन्यासी तथा आत्म-साक्षात्कार के लिए गृह त्याग करने वाले व्यक्ति भगवान् की भक्ति में संलग्न न हो कर यदि परोपकार के कार्यों से आकर्षित हो जाते हैं तब उन्हें केवल कष्ट ही प्राप्त होता है । भगवान् की सेवा न करके शिक्षा-संस्थान, अस्पताल अथवा मठ, चर्च एवं देवताओं के मन्दिर आदि खोलने के परोपकारी कर्म करने वाले संन्यासियों को भी ऐसे कार्यों से इस जन्म तथा अगले जन्म में भी केवल कष्ट ही प्राप्त होता है । जो इस जीवन का लाभ उठा कर श्रीकृष्ण से साक्षात्कार का प्रयास नहीं करते हैं, वे संन्यासी संन्यास-आश्रम के अधिकार क्षेत्र से बाहर की गतिविधियों में केवल अपना समय तथा शक्ति ही नष्ट करते हैं । किन्तु एक भक्त यदि भगवान् विष्णु के मन्दिर के निर्माण में अपनी शक्ति लगाता है, तब ऐसी गतिविधियों में व्यय की गई उसकी शक्ति कभी-भी व्यर्थ नहीं होती है । ऐसे कर्मों को कृष्णार्थ अखिल चेष्टा कहा जाता है । ये वे कर्म हैं, जो श्रीकृष्ण को प्रसन्न करने के लिए किए जाते हैं । एक परोपकारी का स्कूल खोलना तथा एक भक्त का एक मन्दिर का निर्माण करना एक ही स्तर के कार्य नहीं हैं । यद्यपि परोपकारी के द्वारा एक शिक्षण संस्थान खोलना एक पुण्यकर्म हो सकता है किन्तु यह कर्म के नियमों के अन्तर्गत आता है, जबकि श्रीविष्णु के लिए मन्दिर का निर्माण करना भक्ति है ।

भक्ति कभी भी कर्म के नियम के अन्तर्गत नहीं आती है । भगवद्गीता में कहा गया है कि भक्त भौतिक प्रकृति की प्रतिक्रिया से ऊपर होते हैं तथा ब्रह्म-साक्षात्कार के मंच पर अवस्थित होते हैं-ब्रह्मभूयाय कल्पते/ भ/वद्गीता में कहा गया है, स गुणान्समतीत्यैतान्ब्रह्मभूयाय कल्पते- श्रीभगवान् के भक्त भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों की प्रतिक्रिया से ऊपर उठ जाते हैं तथा वे दिव्य ब्रह्म-मंच पर स्थित होते हैं । भक्त इस जन्म तथा अगले जन्म दोनों में ही मुक्त होते हैं । इस भौतिक जगत में यज्ञ, विष्णु

अथवा श्रीकृष्ण के निमित किया गया कोई भी कार्य मुक्त कर्म समझा जाना चाहिए । किन्तु अच्युत श्रीभगवान् से सम्बन्धित न होने पर कर्म के नियम के प्रतिफल को रोकने की कोई सम्भावना नहीं है । कृष्णभावनामृत का जीवन मुक्ति का जीवन है । निष्कर्ष यह है कि भगवान् की कृपा से एक भक्त इस जीवन तथा अगले जीवन दोनों ही में मुक्त होता है, जबकि कर्मी, ज्ञानी तथा योगी इस जीवन अथवा अगले जीवन में कभी भी मुक्त नहीं होते हैं ।

मूर्तिमान् वेदों ने आगे कहा, "प्रिय भगवन्! जिस किसी ने भी आपकी कृपा सेआपके चरणकमलों के यश को समझ लिया है, वह भौतिक सुख-दुख के प्रति निर्मम रहता है । जब तक हम इस भौतिक जगत में हैं तब तक भौतिक दुख अपरिहार्य है, किन्तु एक भक्त पुण्य तथा पापकर्मों के फल रूपी ऐसी क्रिया प्रतिक्रिया की ओर अपना ध्यान नहीं जाने देता है । न ही सामान्यतया लोगों की प्रशंसा अथवा निन्दा के द्वारा भक्त अत्यन्त विचलित अथवा प्रसन्न होता है । कभी
कभी अपनी दिव्य गतिविधियों के कारण भक्त जनसमुदाय के द्वारा अत्यधिक प्रशंसित होता है तथा कभी-कभी निन्दा का कारण न होने पर भी उसकी आलोचना की जाती है । साधारण लोगों के द्वारा की गई प्रशंसा अथवा निन्दा के प्रति शुद्ध भक्त सदैव ही निर्मम होता है । वस्तुत: भक्त की गतिविधियाँ दिव्य स्तर पर होती हैं । भौतिक गतिविधियों में संलग्न लोगों के द्वारा की गई स्तुति अथवा निन्दा में उसकी कोई रुचि नहीं होती है । इस प्रकार यदि भक्त अपनी दिव्य स्थिति को बनाए रखता है, तब श्रीभगवान् के द्वारा इस जीवन तथा अगले जीवन में उसका मोक्ष निश्चित है । इस भौतिक जगत में भक्त को दिव्य स्थिति बनाए रखने के लिए उसे शुद्ध भक्तों की संगति की आवश्यकता होती है । विभिन्न युगों तथा विभिन्न अवतारों में भगवान् द्वारा की गई यशस्वी गतिविधियों (लीलाओं) के

श्रवण-मात्र से भक्त अपनी दिव्य स्थिति को बनाए रखने में सक्षम होता है ।"

कृष्णभावनामृत-आन्दोलन इसी सिद्धान्त पर आधारित है । श्रील नरोत्तम दास ठाकुर ने गाया है, "प्रिय भगवन्! जैसाकि पहले के आचार्यों ने इंगित किया है, मुझे अपनी दिव्य प्रेमा-भक्ति में संलग्न कर लीजिए, मुझे शुद्ध भक्तों की संगति में रहने दीजिए । जन्म-जन्मांतर से मेरी यही इच्छा है ।" दूसरे शब्दों में, वह मुक्त होता है अथवा नहीं, भक्त को इसकी चिन्ता नहीं होती है, किन्तु वह केवल भक्ति के लिए उत्सुक होता है । भक्ति का अर्थ है कि व्यक्ति आचार्यों की अनुमति से स्वतंत्र कुछ भी नहीं करता है । कृष्णभावनामृत के कार्यों का निर्देश पहले के आचार्यों ने दिया है, जिनमें से प्रमुख श्रील रूप गोस्वामी हैं । इन सिद्धान्तों का अनुसरण करने वाले भक्तों की संगति में भक्त अपनी दिव्य स्थिति को आदर्श रूप से बनाए रखने में समर्थ होता है ।

भगवद्गीता में भगवान् कहते हैं कि उनको पूर्ण रूप से जानने वाला भक्त उन्हें अत्यन्त प्रिय है । चार प्रकार के पुण्यात्मा भक्ति को अंगीकार करते हैं । यदि कोई व्यक्ति पुण्यात्मा है, तब विपत्ति में वह अपने दुख की शान्ति के लिए भगवान् के समीप जाता है । यदि पुण्यात्मा व्यक्ति को भौतिक सहायता की आवश्यकता होती है, तब भी वह इस सहायता के लिए भगवान् की प्रार्थना करता है । यदि कोई पुण्यात्मा व्यक्ति वास्तव में भगवद्विज्ञान के विषय में जिज्ञासु होता है, तब भी वह भगवान् श्रीकृष्ण की शरण में जाता है । इसी भाँति केवल श्रीकृष्ण-विज्ञान को जानने के लिए उत्सुक पुण्यात्मा व्यक्ति भी परमेश्वर के समीप जाता है । मनुष्यों के इन चार वर्गों में से अन्तिम की प्रशंसा स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में की है । परमेश्वर के वैज्ञानिक ज्ञान में निपुण पूर्ण आचार्यों के चरणचिह्नों का अनुसरण करने से जो व्यक्ति पूर्ण ज्ञान तथा भक्ति के साथ श्रीकृष्ण को समझने का प्रयास करता है, वह प्रशंसनीय है । ऐसा भक्त यह समझ सकता है कि जीवन की अनुकूल तथा प्रतिकूल समस्त दशाएँ भगवान्

की परम इच्छा द्वारा निर्मित हैं । जब वह परमेश्वर के चरणकमलों की शरण में पूर्णतया चला जाता है, तब उसे इस बात की चिन्ता नहीं रहती है कि उसके जीवन की परिस्थिति अनुकूल है अथवा प्रतिकूल । एक भक्त प्रतिकूल परिस्थिति को भी श्रीभगवान् का विशेष अनुग्रह मानता है । वस्तुत: भक्त के लिए कोई प्रतिकूल परिस्थिति है ही नहीं । भगवान् की इच्छा से आने वाली प्रत्येक वस्तु को वह अनुकूल ही समझता है तथा जीवन की किसी भी परिस्थिति में वह केवल अपनी भक्ति के सम्पादन के लिए उत्सुक रहता है । इस भक्ति की प्रवृत्ति को भगवद्गीता में स्पष्ट किया गया है-एक भक्त जीवन की प्रतिकूल परिस्थितियों में कभी शोकाकुल नहीं होता है, न ही वह अनुकूल परिस्थितियों में अति प्रसन्न होता है । भक्ति के उच्चतर स्तरों में भक्त विधि-निषेधों की सूची से भी कोई सम्बन्ध नहीं रखता है । ऐसी दशा केवल आचार्यों के चरणचिह्नों का अनुसरण करके ही प्राप्त की जा सकती है । शुद्ध भक्त आचार्यों के चरणचिह्नों का अनुसरण करता है, अतएव भक्ति के सम्पादनार्थ जो भी कर्म करता है उसे दिव्य स्तर का समझना चाहिए । अतएव भगवान् श्रीकृष्ण हमें उपदेश देते हैं कि एक आचार्य आलोचनाओं से ऊपर होता है । एक नव-भक्त को स्वयं को आचार्य के स्तर का नहीं समझाना चाहिए । हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि आचार्य उसी स्तर पर हैं जिस स्तर पर श्रीभगवान् हैं और नव-भक्तों को श्रीकृष्ण की अथवा उनके प्रतिनिधि आचार्यों की किसी प्रकार की प्रतिकूल आलोचना नहीं करनी चाहिए ।

इस प्रकार मूर्तिमान् वेदों ने विभिन्न प्रकार से श्रीभगवान् की उपासना की । स्तुति करने के द्वारा श्रीभगवान् की उपासना करने का अर्थ है उनके दिव्य गुणों, लीलाओं तथा गतिविधियों का स्मरण करना । किन्तु भगवान् की लीलाएँ तथा गुण अनन्त हैं । हम लोगों के लिए भगवान् के समस्त गुणों का स्मरण करना सम्भव नहीं है । अतएव मूर्तिमान् वेदों

ने अपने पूर्ण सामथ्र्य भर भगवान् की उपासना की तथा अन्त में उन्होंने निम्न प्रकार से कहा ।

"प्रिय भगवन्! यद्यपि उच्चतम लोक, ब्रह्म लोक के अधिष्ठाता देवता ब्रह्मा, स्वर्ग लोक के अधिष्ठाता देवता राजा इन्द्र, एवं सूर्य तथा चन्द्रलोकों के अधिष्ठाता देवता सभी इस भौतिक जगत के विश्वस्त निर्देशक हैं, तथापि उन्हें आपके विषय में अत्यन्त अल्प ज्ञान है । फिर साधारण मानवों तथा चिन्तकों का तो कहना ही क्या? भगवन्! आपके अनन्त दिव्य गुणों की गणना करना किसी के लिए सम्भव नहीं है । उच्चतर लोकों के देवताओं तथा चिन्तकों सहित कोई भी आपके आकार एवं लक्षणों की लम्बाई, चौड़ाई का वास्तविक अनुमान लगाने में समर्थ नहीं है । भगवन्! हमारे विचार में आपको स्वयं भी अपने दिव्य गुणों का पूर्ण ज्ञान नहीं है । इसका कारण यह है कि आप अनन्त हैं । यद्यपि आपके विषय में यह कहना कि आप स्वयं को नहीं जानते हैं योग्य नहीं दिखता है । किन्तु फिर भी इस बात को समझना व्यावहारिक है कि आपके गुण अनन्त हैं, शक्तियाँ अनन्त हैं तथा आपका ज्ञान भी अनन्त है, इस कारण आपके ज्ञान तथा आपकी शक्तियों के प्रकाश के मध्य प्रतिस्पर्धा है ।"

यहाँ पर धारणा यह है कि भगवान् तथा उनका ज्ञान दोनों ही अनन्त हैं, अतएव जैसे ही भगवान् को अपनी कुछ शक्तियों का ज्ञान होता है, वे देखते हैं कि उनकी और भी अधिक शक्तियाँ हैं । इस रीति से उनकी शक्तियों तथा उनके ज्ञान दोनों में ही वृद्धि होती है । यह दोनों ही अनन्त हैं, अतएव न तो शक्तियों का कोई अन्त हैं न ही मूर्तिमान् वेदों द्वारा स्तुति ज्ञान का कोई अन्त है, जिससे कि शक्तियों को समझा जा सके । भगवान् निस्सन्देह सर्वज्ञ हैं, किन्तु मूर्तिमान् वेदों का कथन है कि स्वयं भगवान् को भी अपनी सम्पूर्ण शक्तियों का पूर्ण ज्ञान नहीं है । इसका यह अर्थ नहीं है कि भगवान् सर्वज्ञ नहीं हैं । जब कोई वास्तविक तथ्य किसी विशेष व्यक्ति को ज्ञात नहीं होता है, तब उसे अज्ञान कहते हैं । यह बात भगवान् के विषय में लागू नहीं होती है, क्योंकि वे स्वयं को पूर्णरूपेण जानते हैं,

किन्तु फिर भी उनकी शक्तियों तथा गतिविधियों में वृद्धि होती रहती है । अतएव वे इनको समझने के लिए अपने ज्ञान में भी वृद्धि करते हैं । दोनों की ही अनन्त रूप से वृद्धि होती रहती है और इसका कोई अन्त नहीं है । इसी अर्थ में कहा जा सकता है कि स्वयं भगवान् भी अपनी शक्तियों तथा गुणों की सीमा को नहीं जानते हैं ।

कोई बुद्धिमान तथा गम्भीर जीव इस बात का मोटा अनुमान लगा सकता है कि किस प्रकार अपनी शक्तियों एवं गतिविधियों में भगवान् अनन्त हैं । वैदिक साहित्य में कहा गया है कि जब अपनी योगनिद्रा में महाविष्णु उच्छास लेते हैं तब अंसख्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है तथा जब वे पुनः श्वास लेते हैं तब अंसख्य ब्रह्माण्ड उनके शरीर में प्रविष्ट हो जाते हैं । हमें इस बात की कल्पना करनी होगी कि हमारे सीमित ज्ञान के अनुसार ये ब्रह्माण्ड असीम रूप से विस्तृत हैं । ये इतने विशाल हैं कि इनकी स्थूल सामग्री अर्थात् भूमि, जल, अग्नि, आकाश तथा वायु नामक सृष्टि के पंचभूत न केवल ब्रह्माण्ड के अन्दर हैं, अपितु वे सात कोशों में ब्रह्माण्ड को आच्छादित किए हुए हैं । इन सात कोशों में प्रत्येक अपने से पहले के कोश से दस गुना बड़ा है । इस रीति से प्रत्येक ब्रह्माण्ड भलीभाँति बँधा हुआ है तथा ब्रह्माण्ड अगणित हैं । महाविष्णु के दिव्य शरीर के अगणित रोमकूपों में ये समस्त ब्रह्माण्ड तैर रहे हैं । कहा गया है कि जिस प्रकार पक्षियों के साथ वायु में परमाणु तथा धूल के कण तैर रहे हैं तथा उनकी संख्या की गणना नहीं की जा सकती है, उसी प्रकार भगवान् के दिव्य शरीर के रोमकूपों में असंख्य ब्रह्माण्ड तैर रहे हैं । इसी कारणवश वेद कहते हैं कि भगवान् हमारे ज्ञान की क्षमता से परे हैं । अव/मनस गोचर-भगवान् के विस्तर को समझना हमारे मानसिक चिन्तन के अधिकार-क्षेत्र के बाहर है । अतएव वास्तव में जो विद्वान तथा बुद्धिमान व्यक्ति है, वह भगवान् होने का दावा नहीं करता है, अपितु आत्मा तथा पदार्थ के मध्य भेद करते हुए भगवान् को समझने का प्रयास करता है । इस प्रकार सावधानीपूर्वक किए गए भेद के द्वारा व्यक्ति को

यह तथ्य स्पष्ट रूप से समझ में आ सकता है कि परमात्मा प्रकृति तथा अपरा प्रकृति दोनों से ही ऊपर है । यद्यपि भगवान् का दोनों प्रकृतियों से ही सीधा सम्पर्क है, तथापि वे दोनों से ऊपर हैं । भगवद्गीता में भगवान् ने स्पष्ट किया है कि यद्यपि प्रत्येक वस्तु उनकी शक्ति पर आश्रित है, तथापि वे उस शक्ति से अलग अथवा भिन्न हैं ।

प्रकृति तथा जीव को कभी-कभी क्रमश: प्रकृति एवं पुरुष भी कहा जाता है । समस्त सृष्टि प्रकृति एवं पुरुष का एक मिश्रण ही है । प्रकृति समग्रीभूत कारण है तथा जीव फलोत्पादक कारण हैं । यदि दोनों कारण एकसाथ संयुक्त होते हैं, तो उसका परिणाम यह सृष्टि है । जब कोई व्यक्ति सौभाग्यवश इस सृष्टि तथा इसनें होने वाली प्रत्येक वस्तु के विषय में ठीक निष्कर्ष पर पहुँच जाता है, तब उसे ज्ञात हो जाता है कि इसका कारण प्रत्यक्ष एवं परोक्ष रूप से श्रीभगवान् स्वयं ही हैं । अतएव ब्रह्म-संहिता में यह निष्कर्ष निकाला गया है-

ईश्वरःपरमः कृष्णः सच्चिदानन्दविग्रहः ।
अनादिरादिर्गोविन्दः सर्वकारणकारणम् । ।

जब अत्यधिक चिन्तन तथा विचार के उपरान्त व्यक्ति को ज्ञान की पूर्णता प्राप्त हो जाती है, तब वह इस निष्कर्ष पर पहुँचता है कि श्रीकृष्ण अथवा भगवान् समस्त कारणों के मूल कारण हैं । भगवान् की नाप-तौल के विषय में अनुमान लगाने कि वे इतने लम्बे हैं, इतने चौड़े हैं-अथवा दार्शनिक चिन्तन करने के स्थान पर व्यक्ति को ब्रह्म-संहिता के निष्कर्ष पर आ जाना चाहिए- सवकारणकारणम्-"श्रीकृष्ण अथवा भगवान् समस्त कारणों के कारण हैं ।" यही ज्ञान की पूर्णता है ।

इस प्रकार यह वेद-स्तुति, मूर्तिमान् वेदो द्वारा गर्भीदकशायी विष्णु को अर्पित की गई स्तुति, गुरु-परम्परा में सर्वप्रथम सनन्दन ने अपने भाइयों को सुनाया । ये सभी भाई ब्रह्मा की सन्तान थे । प्रारम्भ में चारों कुमार ब्रह्माजी की प्रथम सन्तान थे, अतएव उन्हें पूर्वजात के नाम से भी

जाना जाता है । भगवद्गीता में कहा गया है कि परम्परा-प्रणाली अथवा गुरु-परम्परा का प्रारम्भ स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण से होता है । इसी भाँति, यहाँ मूर्तिमान् वेदों की स्तुति में गुरु-परम्परा प्रणाली का प्रारम्भ भगवान् श्रीनारायण ऋषि से समझना चाहिए । हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि इस वेदस्तुति को कुमार सनन्दन सुना रहे हैं तथा उस कथन की पुनरावृत्ति श्रीनारायण ऋषि बद्रिकाश्रम में कर रहे हैं । कठोर तपश्चर्या के द्वारा आत्म-साक्षात्कार का मार्ग हमें दिखाने के लिए श्रीकृष्ण के अवतार श्रीनारायण ऋषि ने भक्ति के पथ को प्रदर्शित किया है । इस युग में भगवान् चैतन्य ने एक शुद्ध भक्त की भूमिका में अपने को रखकर प्रेमाभक्ति का मार्ग प्रदर्शित किया । इसी भाँति विगत युग में श्रीनारायण ऋषि श्रीकृष्ण के अवतार थे जिन्होंने हिमालय पर घोर तपस्या की थी । नारद मुनि उनसे वेद-स्तुति का श्रवण कर रहे थे । इस प्रकार कुमार सनन्दन के जिसका वेद-स्तुति के रूप में कथन किया था तथा जिसे श्रीनारायण ऋषि नारद मुनि को सुना रहे थे, उस कथन में यह स्पष्ट समझ में आ जाता है कि भगवान् एकमेव परम सत्ता हैं तथा अन्य सब उनके सेवक अथवा पार्षद हैं ।

श्रीचैतन्यचरितामृत में यह कहा गया है कि एकला ईश्वर कृष्ण-'श्रीकृष्ण एकमात्र परमेश्वर हैं । आर सब भ्रत्य-"अन्य सब उनके सेवक हैं ।" जारे जाहच्छे न/चाय, से तैच्छे करे नृत्य-अपनी इच्छा के अनुसार परमेश्वर समस्त जीवों को विभिन्न गतिविधियों में संलग्न कर रहे हैं और इस प्रकार वे (जीव) अपनी विभिन्न प्रवृत्तियों तथा प्रतिभा का प्रदर्शन कर रहे हैं । इस प्रकार श्रीभगवान् तथा जीवों के मध्य सम्बन्ध के विषय में यह वेद-स्तुति मौलिक उपदेश है । जीव के लिए साक्षात्कार का चरम स्तर इस भक्ति-जीवन की प्राप्ति है । जब तक व्यक्ति भौतिक दूषणों से पूर्णतया मुक्त नहीं हो जाता है, वह भक्ति-जीवन अथवा कृष्णभावनामृत में संलग्न नहीं हो सकता है । श्रीनारायण ऋषि ने नारदमुनि को सूचित किया कि वेदों तथा (चारों वेद, उपनिषद, पुराण आदि) वैदिक साहित्य का सार हमें

भगवान् की प्रेमपूर्ण सेवा करने की शिक्षा देता है । इस सन्दर्भ में श्रीनारायण ऋषि ने एक विशेष शब्द रस का उपयोग किया है । भक्ति में यह रस जीव तथा भगवान् के मध्य सम्बन्धों के आदान-प्रदान का साधन अथवा आधारभूत सिद्धान्त है । रस का वर्णन वेदों में ईशावास्य के रूप में भी किया गया है-"परमेश्वर समस्त सुखों के सागर हैं ।" पुराण, वेद, उपनिषद तथा वेदान्त-सूत्र आदि समस्त वैदिक साहित्य जीवों को यही शिक्षा देते हैं कि किस प्रकार रस की स्थिति को प्राप्त किया जाए । भ//वत में भी कहा गया है कि महापुराण (श्रीमद्भागवत) के कथनों में समस्त वैदिक साहित्य के रसों का सार निहित है । निगमकल्परोगलित फलसू/ वैदिक साहत्यि के वृक्ष में भागवत परिपक्व फल का सार है ।

हमें ज्ञात है कि श्रीभगवान् के श्वास के साथ चारों वेद निकले हैं । ये चारों वेद हैं । ऋग्वेद, सामवेद, यजुर्वेद तथा अथर्ववेद । वेदों के साथ ही इतिहास, जैसे महाभारत तथा समस्त पुराणों का भी उद्भव हुआ । इन्हें विश्व का इतिहास भी माना जाता है । पुराणों तथा महाभारत जैसे वैदिक इतिहासों को पंचम वेद भी कहा जाता है । वेदस्तुति के श्लोकों को समस्त वैदिक ज्ञान का सार मानना चाहिए । चारों कुमार तथा अन्य समस्त प्रामाणिक ऋषियों को यह भलीभाँति ज्ञात है कि कृष्णभावनामृत में भक्ति ही समस्त वैदिक साहित्य का सार है । वे बाह्य अन्तरिक्ष में यात्रा करते हुए विभिन्न लोकों को इसी का उपदेश दे रहे हैं । यहाँ कहा गया है कि नारदमुनि सहित ऐसे ऋषि कदाचित् ही भूमि पर यात्रा करते हैं, वे निरन्तर अन्तरिक्ष में यात्रा कर रहे हैं ।

नारद तथा कुमार जैसे ऋषिगण ब्रह्माण्ड-भर में बद्धात्माओं को शिक्षित करने तथा उन्हें यह दिखाने के लिए यात्रा करते रहते है कि जगत में उनका कार्य इन्द्रियतृप्ति नहीं है, अपितु श्रीभगवान् की भतिसेवा के अपने मौलिक पद पर अपनी पुनप्रतिष्ठा है । अनेक स्थानों पर यह कहा गया है कि जीव अग्नि के स्फुलिंगों की भाँति हैं तथा श्रीभगवान् स्वयं अग्नि

के समान हैं । किसी भाँति जब अग्निकण अग्नि से बाहर गिर जाते हैं तब वे अपनी स्वाभाविक प्रभा खो देते हैं । इस प्रकार यह पुष्टि की गई है कि जीव इस भौतिक जगत में ठीक उसी भाँति आते हैं जिस भाँति एक विशाल अग्नि से अग्निकण गिरते हैं । जीव श्रीकृष्ण का अनुकरण करना चाहता है तथा वह भौतिक प्रकृति पर प्रभुता प्राप्त करने का प्रयास करता है । इस प्रकार वह अपनी मौलिक स्थिति को भूल जाता है और उसकी प्रकाशित होने की शक्ति, उसकी आध्यात्मिक पहचान समाप्त हो जाती है । किन्तु यदि कोई जीव कृष्णभावनामृत को अंगीकार कर लेता है, तब वह अपने पूर्व पद पर पुन: प्रतिष्ठित कर दिया जाता है । नारद तथा कुमारों जैसे ऋषि-मुनि लोगों को शिक्षा देते हुए समस्त ब्रह्माण्ड में यात्रा कर रहे हैं । वे अपने शिष्यों को भी भक्ति की इस प्रणाली का उपदेश देने को प्रोत्साहित करते हैं जिससे कि समस्त बद्धजीव अपनी मौलिक चेतना अथवा कृष्णभावनामृत को पुनर्जीवित करने में समर्थ हो सकें और इस प्रकार भौतिक जीवन की दुखमय दशा से मुक्ति पा सकें ।

श्रीनारद मुनि नैष्टिक-ब्रह्मचारी हैं । ब्रह्मचारी चार प्रकार के होते हैं । प्रथम प्रकार के ब्रह्मचारी को सावित्र ब्रह्मचारी कहते हैं । यह वे ब्रह्मचारी होते हैं जिनके लिए दीक्षा तथा यज्ञोपवीत संस्कार के उपरान्त कम से कम तीन दिवस तक ब्रह्मचर्य का पालन आवश्यक होता है । अगले ब्रह्मचारी को प्रजापत्य ब्रह्मचारी कहते हैं, जिनके लिए दीक्षा के उपरान्त कम से कम एक वर्ष तक पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना आवश्यक होता है । अगले ब्रह्मचारी को ब्रह्म-ब्रह्मचारी कहते हैं, जो दीक्षा के समय से वैदिक साहित्य के अध्ययन के पूर्ण होने तक ब्रह्मचर्य का पालन करते हैं । अगले स्तर के ब्रह्मचारी मैंटिक कहलाते हैं । ये वे ब्रह्मचारी होते हैं, जो अपने सम्पूर्ण जीवन में ब्रह्मचर्य पालन करते हैं । इनमें से प्रथम तीन को उपक्रम कहते हैं, जिसका अर्थ है कि ब्रह्मचर्य-काल के समाप्त होने के पश्चात् ब्रह्मचारी बाद में विवाह कर सकता है । किन्तु नैष्ठिक ब्रह्मचारी

रुत्री-सम्बन्ध से पूर्णतया विमुख होते हैं, अतएव कुमारों तथा नारदमुनि को नैष्टिक ब्रह्मचारी कहा जाता है । जीवन में ब्रह्मचारीप्रणाली इसलिए विशेष रूप से लाभप्रद है, क्योंकि यह स्मृति तथा दृढ़निश्चय की शक्ति में वृद्धि करती है । इस सम्बन्ध में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि नैष्टिक ब्रह्मचारी होने के कारण नारदमुनि अपने गुरु से जो भी सुनते थे वह उन्हें स्मरण रहता था । वे उसे कभी भी भूलते नहीं थे । वह व्यक्ति जो निरन्तर प्रत्येक वस्तु को स्मरण रख सकता है 'श्रुतधर" कहलाता है । एक श्रुतधर ब्रह्मचारी समस्त सुनी हुई बातों को बिना लिखे अथवा पुस्तकों में देखे शब्दश: दुहरा सकता है । महर्षि नारद के पास यह गुण है, अतएव श्रीनारायण ऋषि से उपदेश ले कर वे भक्ति के दर्शन का प्रसार समस्त जगत में करने में संलग्न हैं । ऐसे महर्षियों को प्रत्येक बात का स्मरण रहता है । इस प्रकार अपने गुरु श्रीनारायण ऋषि का उपदेश सुन कर महर्षि नारद पूर्ण ज्ञानी बन गए । वे सत्य में स्थित तथा इतने प्रसन्न हो गए कि उन्होंने श्रीनारायण ऋषि की निम्न प्रकार से स्तुति की ।

एक नैष्टिक ब्रह्मचारी को वीर-व्रत भी कहा जाता है । नारद मुनि ने श्रीनारायण ऋषि को श्रीकृष्ण का अवतार कह कर सम्बेधित किया तथा उन्हें विशेष रूप से बद्धात्माओं का परम हितैषी कहा । भगवद्गीता में कहा गया है कि भगवान् श्रीकृष्ण प्रत्येक युग में भक्तों की रक्षा तथा अभक्तों के संहार के लिए भी अवतरित होते हैं । श्रीकृष्ण का अवतार होने के कारण श्री नारायण ऋषि को भी बद्धात्माओं का हितैषी कह कर सम्बोधित किया गया है । जैसाकि भगवद्गीता में कहा गया है, प्रत्येक व्यक्ति को यह ज्ञात होना चाहिए कि श्रीकृष्ण के समान हितैषी और कोई भी नहीं है । प्रत्येक प्राणी को यह समझना चाहिए कि श्रीकृष्ण सबके हितचिन्तक हैं तथा सबको श्रीकृष्ण की शरण ग्रहण करनी चाहिए । इस प्रकार यह जानते हुए कि उसका कोई ऐसा हितैषी है, जो उसे सर्व सुरक्षा प्रदान कर सकता है, व्यक्ति पूर्णतया विश्वस्त तथा सन्तुष्ट हो जाता है ।

स्वयं श्रीकृष्ण, उनके अवतार तथा स्वांश बद्धजीवों के परम शुभेच्छु हैं, किन्तु कृष्ण असुरों के भी हितैषी हैं, क्योंकि उन्होंने अपने को मारने के लिए वृन्दावन आए हुए समस्त असुरों का उद्धार करके उन्हें मोक्ष प्रदान किया । अतएव श्रीकृष्ण के कल्याण-कार्य पूर्ण हैं, क्योंकि चाहे वे एक असुर का संहार करते हों या एक भक्त को सुरक्षा प्रदान करते हों, उनकी गतिविधियाँ एकसमान ही हैं । कहा गया है कि असुरिनी पूतना को श्रीकृष्ण की माता के समान उच्च स्थान दिया गया था । जब श्रीकृष्ण है । किन्तु भगवान् एक शुद्ध भक्त की सदैव ही रक्षा करते हैं ।

अपने गुरु को प्रणाम करने के किसी असुर का वध करते हैं तब यह समझना चाहिए कि इससे उस असुर का परम हित हुआउपरान्त नारद मुनि व्यासदेव के आश्रम में गए और सम्पूर्ण कथा अपने शिष्य को सुनाई । वहाँ पहुँचने पर व्यास देव ने अपने आश्रम में नारद मुनि का समुचित सत्कार किया तथा उन्हें सुखपूर्वक बैठाया । सुखपूर्वक आसीन होने के उपरान्त नारद मुनि ने श्रीनारायण ऋषि से श्रवण किया हुआ पूर्ण वृतान्त कहना प्रारम्भ किया । इस प्रकार राजा परीक्षित के वेदों के ज्ञान के सार तथा वेदों के अनुसार जीवन के चरम लक्ष्य सम्बन्धी प्रश्नों का श्रीशुकदेव गोस्वामी ने उत्तर दिया । जीवन का परम लक्ष्य श्रीभगवान् के दिव्य आशीर्वाद को प्राप्त करना और इस प्रकार भगवान् की प्रेमसेवा में संलग्न हो जाना है । व्यक्ति को श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा गुरु-परम्परा में स्थित समस्त वैष्णवों के चरणचिह्नों पर चलना चाहिए तथा भगवान् श्रीकृष्ण अर्थात् भगवान् श्रीहरि को सादर प्रणाम करना चाहिए । वैष्णव गुरु-परम्परा के चारों सम्प्रदाय-रामानुज सम्प्रदाय, मध्व सम्प्रदाय, विष्णुस्वामी सम्प्रदाय तथा निम्बार्क सम्प्रदाय-समस्त वैदिक निष्कर्षों के अनुरूप इस बात पर एकमत हैं कि व्यक्ति को श्रीभगवान् की शरण में जाना चाहिए ।

वैदिक साहित्य के दो भाग किए गए हैं-श्रुतियाँ तथा स्मृतियाँ । चारों वेदऋक्,साम, अथर्व तथा यजुः तथा उपनिषद् श्रुतियाँ हैं । भगवद्गीता सहित महाभारत तथा पुराण स्मृतियाँ हैं । इन सबका निष्कर्ष यही है कि व्यक्ति को श्रीभगवान् के रूप में श्रीकृष्ण का ज्ञान होना चाहिए । वे परम-पुरुष अथवा श्रीभगवान् हैं जिनके निरीक्षण में भौतिक प्रकृति कार्य करती है, उसका निर्माण, पालन व संहार होता है । सृष्टि की रचना के उपरान्त परमेश्वर ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव के रूप में अवतरित होते हैं । ये तीनों भौतिक प्रकृति के तीनों गुणों का कार्यभार सँभालते हैं, किन्तु परम निर्देशन भगवान् विष्णु के हाथ में ही रहता है । त्रिगुणों के अन्तर्गत भौतिक प्रकृति की सम्पूर्ण गतिविधियों का संचालन भगवान् श्रीकृष्ण के निर्देशन में हो रहा है । इसकी पुष्टि भगवद्गीता, न्यादर्शन तथा वेदों में की गई है ।

नास्तिक संख्यवादी दार्शनिक अपना तर्क प्रस्तुत करते हैं की भौतिक सृष्टि प्रकृति तथा पुरुष के कारण होती है । उनका तर्क है कि प्रकृति तथा भौतिक शक्ति भौतिक कारण तथा सार्थक कारण बनते हैं । किन्तु श्रीकृष्ण समस्त कारणों के कारण हैं । वे समस्त समग्रीभूत कारण तथा सार्थक कारणों के कारण हैं । प्रकृति एवं पुरुष अन्तिम कारण नहीं हैं । ऊपरी तौर पर ऐसा प्रतीत होता है कि माता-पिता के संयोग से शिशु का जन्म होता है, किन्तु माता तथा पिता के भी अन्तिम कारण श्रीकृष्ण हैं । अतएव वे ही मूल कारण हैं अथवा जैसाकि ब्रह्म-सहित) में कहा गया है वे समस्त कारणों के कारण हैं ।

भौतिक प्रकृति में परमेश्वर तथा जीव दोनों ही प्रवेश करते हैं । अपने एक अंश के द्वारा परमेश्वर श्रीकृष्ण, क्षीरोदकशायी विष्णु तथा कारण-सागर में शयन करने वाले विशालकाय विष्णु रूप, महाविष्णु के रूप में प्रकट होते हैं । तत्पश्चात् महाविष्णु के विशाल रूप में से गर्भादकशायी विष्णु प्रत्येक ब्रह्माण्ड में विस्तार करते हैं । उनसे ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव

का विस्तार होता है । विष्णु प्रत्येक जीव के हृदय तथा साथ ही साथ अणु सहित प्रत्येक भौतिक तत्व में प्रवेश कर जाते हैं । ब्रह्मसहित/संहिता में कहा गया है-अण्डान्तरस्थपरमाणुचयन्तरस्थसम /वे इस ब्रह्माण्ड के अन्दर हैं तथा प्रत्येक अणु में भी हैं ।

विभिन्न योनियों तथा रूपों से प्राप्त जीव का एक क्षुद्र भौतिक शरीर होता है, उसी के समान सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड श्रीभगवान् का भौतिक शरीर ही है, अन्य कुछ नहीं । शास्त्रों में इस शरीर को विराट रूप कहा गया है । जैसे एक विशेष जीव अपने विशेष शरीर का पालन करता है, वैसे ही श्रीभगवान् सम्पूर्ण सृष्टि तथा इसमें की प्रत्येक वस्तु का पालन करते हैं । जैसे ही जीव भौतिक शरीर का त्याग करता है, वैसे ही शरीर का नाश हो जाता है । इसी भाँति जैसे ही भगवान् विष्णु सृष्टि का त्याग करते हैं वैसे ही हर वस्तु का नाश हो जाता है । जब जीव श्रीभगवान् की शरण ग्रहण करता है, तब ही भौतिक अस्तित्व से उसकी मुक्ति निश्चित होती है । इस तथ्य की पुष्टि भगवद्गीता में भी की गई है- मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरति ते/ अतएव श्रीभगवान् की शरण में जाना ही मुक्ति का एकमात्र कारण है, अन्य कुछ नहीं । जीव भगवान् की शरण में जाने के पश्चात् किस प्रकार भौतिक प्रकृति के गुणों से मुक्त होता है, यह एक कमरे में सो रहे व्यक्ति के उदाहरण से स्पष्ट हो जाता है । जब एक व्यक्ति शयन कर रहा होता है, तब प्रत्येक व्यक्ति देखता है कि वह कमरे में उपस्थित है, किन्तु वास्तव में वह व्यक्ति स्वयं उस शरीर में नहीं होता है, क्योंकि सुप्तावस्था में व्यक्ति अपने दैहिक अस्तित्व को भूल जाता है । यद्यपि अन्य लोग उसके शरीर की उपस्थिति को देख सकते हैं, किन्तु सोया हुआ व्यक्ति स्वयं शारीरिक अस्तित्वको भूल जाता है । इसी के समान भगवान् की भक्ति में संलग्न एक मुक्त व्यक्ति को अन्य लोग भौतिक जगत के गृहस्थ जीवन के कर्तव्यों में संलग्न देख सकते हैं । किन्तु उस भक्त की भावना पूर्णरूपेण श्रीकृष्ण में केन्द्रित है, अतएव वह इस जगत

में निवास नहीं करता है । उसके कार्यकलाप ठीक उसी प्रकार से जगत के अन्य लोगों के कार्यकलापों से भिन्न हैं, जिस प्रकार सुप्त व्यक्ति के कार्यकलाप उसके शरीर के कार्यकलापों से भिन्न हैं । भगवद्गीता में इस बात की पुष्टि की गई है कि भगवान् की दिव्य प्रेमा-भक्ति में सदैव संलग्न एक भक्त ने पहले से ही भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों के प्रभाव पर विजय प्राप्त कर ली है । यद्यपि वह सशरीर अथवा इस भौतिक जगत में निवास करता प्रतीत होता है, तथापि वह पहले से ही अध्यात्म-ज्ञान के ब्रह्म-पद पर स्थित है ।

इस सम्बन्ध में श्रील रूप गोस्वामी ने भक्तिरसामृत-सिंधु में कहा है कि जिस व्यक्ति की एकमात्र इच्छा श्रीभगवान् की सेवा करने की होती है, वह भौतिक जगत में चाहे किसी भी दशा में रहे, उसे जीवन्मुक्त समझना चाहिए । इसका अर्थ है कि भौतिक जगत अथवा शरीर में रहते हुए भी उसे मुक्त मानना चाहिए । अतएव निष्कर्ष यह निकलता है कि कृष्णभावनामृत में पूर्णरूपेण संलग्न व्यक्ति मुक्त व्यक्ति है । ऐसे व्यक्ति को भौतिक जगत से कोई सरोकार नहीं होता है । जो लोग कृष्णभावनामृत में स्थित नहीं हैं उन्हें कर्मी अथवा ज्ञानी कहा जाता है । वे शारीरिक अथवा मानसिक स्तर पर भटकते रहते हैं तथा मुक्त नहीं होते हैं । इस स्थिति को कैवल्य-निरस्तयोनि कहा जाता है । दिव्य मंच पर स्थित व्यक्ति जीवन-मरण की पुनरावृत्ति से मुक्त हो जाता है । इसकी पुष्टि भगवद्गीता के चौथे अध्याय में भी की गई है । श्रीभगवान् के दिव्य स्वभाव के ज्ञान-मात्र से व्यक्ति जन्म-मरण की पुनरावृत्ति के बन्धन से मुत हो जाता है तथा वर्तमान शरीर को त्यागने के उपरान्त वह अपने घर, भगवान् के धाम, लौट जाता है । समस्त वेदों का यही निष्कर्ष है । इस प्रकार मूर्तिमान् वेदों द्वारा की गई स्तुति को समझने के उपरान्त व्यक्ति को भगवान् श्रीकृष्ण के पदारविन्दों की शरण में जाना चाहिए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "मूर्तिमान् वेदों द्वारा स्तुति" नामक सत्तासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ

अध्याय 89
भगवान् शिव का उद्धार

श्री कृष्ण के महान् भक्त के रूप में राजा परीक्षित पहले से ही मुक्त थे, किन्तु अपनी शंकाएँ दूर करने के लिए वे श्रीशुकदेव गोस्वामी से अनेक प्रकार के प्रश्न पूछ रहे थे । इससे पहले के अध्याय में राजा परीक्षित का प्रश्न था, 'वेदों का चरम लक्ष्य क्या है?" श्रीशुकदेव गोस्वामी ने सनन्दन से प्रारम्भ कर के श्रीनारायण ऋषि, नारद मुनि, व्यास देव तथा तत्पश्चात् स्वयं अपने तक गुरुपरम्परा का प्रामाणिक वर्णन कर के इस विषय को स्पष्ट किया । निष्कर्ष यह था कि भक्ति ही वेदों का चरम लक्ष्य है । एक नवभक्त यह प्रश्न कर सकता है, "यदि वेदों का निष्कर्ष अथवा जीवन का चरम लक्ष्य भक्ति के स्तर तक पहुँचना ही है, तब ऐसा क्यों देखा जाता है कि भगवान् विष्णु का भक्त साधारणतया भौतिक रूप से सम्पन्न नहीं होता है, जबकि भगवान् शिव का भक्त अत्यन्त ऐश्वर्यवान् दिखाई देता है?" इस विषय में शंका दूर करने के उद्देश्य से परीक्षित महाराज ने श्रीशुकदेव गोस्वामी से प्रश्न किया, "प्रिय शुकदेव गोस्वामी जी ! साधारणतया देखा जाता है कि मनुष्यों, असुरों अथवा देवताओं के समाज में से जो कोई भी भगवान् शिव की उपासना करता है, वह भौतिक रूप से अत्यन्त ऐश्वर्यशाली हो जाता है, यद्यपि भगवान् शिव स्वयं एक अकिंचन की भाँति रहते हैं । दूसरी ओर श्रीदेवी के स्वामी भगवान् विष्णु के भत सम्पन्न प्रतीत नहीं होते हैं, कभी-कभी तो वे बिना किसी भौतिक वैभव के जीवन-यापन करते दिखाई देते हैं । भगवान् शिव किसी वृक्ष के नीचे अथवा हिमालय पर्वत के हिम में निवास करते हैं । वे अपने लिए एक

भवन का निर्माण भी नहीं करते हैं, फिर भी भगवान् शिव के भक्त अत्यन्त सम्पन्न हैं । श्रीकृष्ण अथवा भगवान् वैकुण्ठ-लोक में हों, अथवा इस भौतिक जगत में हों, वे अत्यन्त ऐश्वर्यपूर्वक जीवन व्यतीत करते हैं, किन्तु उनके भक्त दरिद्र प्रतीत होते हैं, ऐसा क्यों है?"

महाराज परीक्षित का प्रश्न अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण है । भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु के भक्तों के दोनों वर्ग सदैव ही असहमत रहते हैं । भारत में आज भी भक्तों के ये दोनों वर्ग एक दूसरे की आलोचना करते हैं । विशेषरूप से दक्षिण भारत में रामानुजाचार्य के अनुयायी तथा शंकराचार्य के अनुयायी वेदों के निष्कर्ष को समझने के लिए सम्मेलन करते हैं । साधारणतया इन सम्मेलनों में रामानुजाचार्य के अनुयायी विजयी होते हैं । इस प्रकार श्रीशुकदेव गोस्वामी से प्रश्न करके महाराज परीक्षित इस स्थिति को स्पष्ट करना चाहते थे । यद्यपि उनके भक्त अत्यन्त सम्पन्न प्रतीत होते हैं, किन्तु भगवान् शिव दरिद्र के समान रहते हैं, जबकि भगवान् श्रीकृष्ण अथवा भगवान् विष्णु सदैव ही अत्यन्त वैभवशाली हैं, फिर भी उनके भक्त दरिद्र प्रतीत होते हैं । यह एक ऐसी स्थिति है, जो विवेकशील व्यक्ति को विरोधी तथा पहेली-सी प्रतीत होती है ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी भगवान् शिव तथा भगवान् विष्णु की उपासना के विषय में दृष्टिगोचर होने वाले विरोधाभास के सम्बन्ध में राजा परीक्षित के प्रश्न का उत्तर देने लगे । शिवजी भौतिक शक्ति के स्वामी हैं । भौतिक शक्ति की प्रतिनिधि दुर्गादेवी हैं तथा शिवजी उनके पति हैं । दुर्गादेवी पूर्ण रूप से शिवजी की शक्ति के अधीन हैं, अतएव यही समझना चाहिए कि शिवजी इस भौतिक शक्ति के स्वामी हैं । भौतिक शक्ति का प्रकाश सत, रज तथा तमस नामक त्रिगुणों में होता है, अतएव शिवजी इस त्रिगुणों के स्वामी हैं । यद्यपि बद्धात्माओं के कल्याण के लिए शिवजी इस गुणों के सम्पर्क में रहते हैं, किन्तु वे इनके निर्देशक हैं तथा इनसे प्रभावित नहीं

होते हैं । यद्यपि बद्धात्माओं पर इन तीनों गुणों का प्रभाव पड़ता है, किन्तु इन गुणों का स्वामी होने के कारण शिवजी इनसे प्रभावित नहीं होते हैं ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी के कथन से हमें ज्ञात होता है कि विभिन्न देवताओं की उपासना का फल भगवान् विष्णु की उपासना के समान नहीं होता है, जैसाकि कुछ अल्पबुद्धि लोगों की धारणा है । वे स्पष्ट रूप से कहते हैं कि शिवजी की उपासना के द्वारा व्यक्ति को एक प्रकार का पुरस्कार प्राप्त होता है, जबकि भगवान् विष्णु की उपासना के द्वारा एक दूसरा ही पुरस्कार प्राप्त होता है । इस तथ्य की पुष्टि भगवद्गीता में भी की गई है-विभिन्न देतवाओं की उपासना करने वालों को वे अभीप्सित फल प्राप्त होते हैं, जिन्हें वे देवता प्रदान कर सकते हैं । इसी भाँति जो भौतिक शक्ति की उपासना करते हैं, उन्हें ऐसी गतिविधियों के योग्य पुरस्कार प्राप्त होता है तथा जो पितरों की उपासना करते हैं, उन्हें भी वैसे ही फल प्राप्त होते हैं । किन्तु वे व्यक्ति जो परमेश्वर, भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण की भक्ति अथवा उपासना में संलग्न हैं वैकुण्ठ लोक अथवा श्रीकृष्ण लोक को जाते हैं । शिवजी अथवा ब्रह्माजी अथवा अन्य किसी देवता की उपासना के द्वारा व्यक्ति दिव्य क्षेत्र अथवा परव्योम के समीप नहीं जा सकता है ।

यह भौतिक जगत भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों का उत्पाद है, अतएव समस्त प्रकार के विस्तार इन्ही त्रिगुणों से उत्पन्न होते हैं । भौतिकतावादी विज्ञान की सहायता से आधुनिक सभ्यता ने अनेक यंत्रों तथा जीवन की सुविधाओं का निर्माण कर लिया है, किन्तु फिर भी वे सब भौतिक त्रिगुणों की पारस्परिक क्रिया-प्रतिक्रिया के प्रकार ही हैं । यद्यपि शिव-भक्त अनेक भौतिक उपलब्धियों को प्राप्त करने में समर्थ होते हैं, फिर भी हमें ज्ञात होना चाहिए कि वे केवल त्रिगुणों द्वारा निर्मित पदार्थों को ही एकत्र कर रहे हैं । आगे इन त्रिगुणों का सोलह में विभाजन होता है जैसे-दस इन्द्रियाँ (पाँच कर्मेन्द्रियाँ तथा पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ), मन तथा पंच तत्व (पृथ्वी,

जल, वायु, अग्नि तथा आकाश) । ये सोलह वस्तुएँ त्रिगुणों का विस्तार है । भौतिक सुख अथवा वैभव का अर्थ है इन्द्रियों की तृप्ति, विशेष रूप से जननेन्द्रिय, जिह्वा तथा मन की तृप्ति । अपने मन का उपयोग करके हम जननेन्द्रियों तथा जिह्वा के भोग के लिए अनेक सुखदायक वस्तुएँ उत्पन्न करते है । इस भौतिक जगत में मनुष्य के ऐश्वर्य का अनुमान इससे लगाया जाता है कि वह किस सीमा तक अपनी काम-क्षमताओं का उपयोग करने में समर्थ है तथा वह सुस्वादु व्यंजन खाकर किस हद तक अपनी तुस्तोषणीय को सन्तुष्ट करने में समर्थ है । दूसरे शब्दों में कहें तो वह अपनी जननेन्द्रियों तथा जिह्वा को कितना अधिक संतोष दे सकता है, इससे व्यक्ति के वैभव का अनुमान लगाया जाता है । सभ्यता की भौतिक प्रगति में मानसिक प्रक्रिया के द्वारा भोग की वस्तुओं का निर्माण करना आवश्यक हो जाता है, जिससे कि जननेन्द्रियों तथा जिह्वा के सुख के आधार पर सुखी हुआ जा सके । इसी में शुकदेव गोस्वामी से परीक्षित द्वारा पूछे इस प्रश्न का उत्तर निहित है कि शिवजी के भक्त इतने वैभवशाली क्यों हैं ।

शिवजी के भक्त केवल भौतिक गुणों के मामले में ही समृद्ध हैं । वस्तुत: सभ्यता की यह तथाकथित प्रगति भौतिक अस्तित्व में बन्धन का कारण है । वास्तव में यह प्रगति नहीं अपितु अधोगति है । निष्कर्ष यह निकलता है कि शिवजी त्रिगुणों के स्वामी हैं, अतएव उनके भक्तों को इन्द्रियतृप्ति के लिए इन त्रिगुणों की पारस्परिक क्रिया द्वारा निर्मित वस्तुएँ प्रदान की जाती हैं । किन्तु भगवद्गीता में हमें भगवान् श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि व्यक्ति को गुणात्मक अस्तित्व से ऊपर उठने का प्रयत्न करना चाहिए । निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन-मानव-जीवन का ध्येय त्रिगुणातीत होना है । जब तक व्यक्ति निस्त्रैगुण्य नहीं होता है, वह भौतिक बन्धनों से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है । दूसरे शब्दों में, भगवान् शिव से प्राप्त अनुग्रह

यद्यपि ऊपर से वैभवशाली प्रतीत होते हैं, तथापि वे वास्तव में बद्धात्माओं के लिए लाभदायक नहीं हैं ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा, "भगवान् श्री हरि भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों से ऊपर हैं (त्रिगुणातीत हैं) ।" भगवद्गीता में कहा गया है कि जो कोई श्रीहरि की शरण में जाता है, वह भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों के प्रभुत्व से ऊपर उठ जाता है । अतएव, चूँकि श्रीहरि के भक्त भौतिक त्रिगुणों के प्रभुत्व से ऊपर हैं, तब निश्चित ही स्वयं हरि भी त्रिगुणातीत हैं । अतएव श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि श्रीहरि अथवा श्रीकृष्ण ही श्रीभगवान् हैं । प्रकृति अथवा शक्तियाँ दो प्रकार की हैं-अन्तरंगा शक्ति तथा बहिरंगा शक्ति और श्रीकृष्ण इन दोनों ही प्रकृतियों अथवा शक्तियों के स्वामी हैं । वे सवहकू अथवा अन्तरंगा तथा बहिरंगा शक्तियों के समस्त कार्यों के निरीक्षक हैं तथा उन्हें उपद्रष्टा अर्थात् परम परामर्शदाता भी कहा जाता है । वे परम परामर्शदाता होने के कारण समस्त देवताओं से ऊपर हैं, जो कि केवल परम परामर्शदाता के निर्देश का अनुसरण करते हैं । इस प्रकार जैसाकि श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता में बताया गया है, यदि कोई व्यक्ति परमेश्वर के आदेशों का प्रत्यक्ष पालन करता है, तो वह शनै: शनै: निर्गुण बन जाता है अर्थात् भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रिया से ऊपर उठ जाता है । निर्गुण होने का अर्थ है भौतिक वैभव से रहित हो जाना, क्योंकि जैसाकि हमने पहले समझाया है भौतिक ऐश्वर्य का अर्थ है भौतिक त्रिगुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया में वृद्धि । श्रीभगवान् की उपासना करने के द्वारा व्यक्ति भौतिक वैभवों से फूल उठने के स्थान पर कृष्णभावनामृत में ज्ञान की आध्यात्मिक प्रगति से समृद्ध हो जाता है । निर्गुण होने का तात्पर्य है नित्य शान्ति, निर्भयता, धार्मिकता, ज्ञान तथा त्याग को प्राप्त करना । ये सब भौतिक गुणों के दूषणों से मुक्त होने के लक्षण हैं ।

परीक्षित महाराज के प्रश्न का उत्तर देने में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे परीक्षित महाराज के पितामह राजा युधिष्ठिर से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक दृष्टान्त दिया । उन्होंने कहा कि विशाल यज्ञभूमि में अश्वमेघ यज्ञ कि समाप्ति के उपरान्त, महान् विशेषज्ञों की उपस्थिति में, राजा युधिष्ठिर ने इसी विषय में प्रश्न किया था-ऐसा कैसे है कि शिव-भक्त भौतिक ऐश्वर्यों के स्वामी हो जाते हैं, जबकि भगवान् विष्णु, के भत नहीं होते हैं? राजा युधिष्ठिर का उल्लेख श्रीशुकदेव गोस्वामी ने विशेष रूप से, "तुम्हारे पितामह" कह कर किया, जिससे कि राजा परीक्षित यह सोचने को उत्साहित हों कि वे श्रीकृष्ण के सम्बन्धी हैं तथा उनके पितामह का श्रीभगवान् से घनिष्ठ सम्बन्ध था ।

यद्यपि श्रीकृष्ण स्वभाव से ही सदैव सन्तुष्ट हैं, किन्तु जब महाराज युधिष्ठिर ने यह प्रश्न किया, तो वे और अधिक सन्तुष्ट हो गए, क्योंकि सम्पूर्ण कृष्णभावनाभावित समाज के लिए ऐसे प्रश्नों तथा उनके उत्तरों का विशेष अर्थ होगा । जब कभी भी भगवान् श्रीकृष्ण किसी विषय पर किसी विशेष भक्त से कुछ कहते हैं, तब वह केवल उस भक्त के लिए ही न होकर सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए होता है । श्रीभगवान् के उपदेश ब्रह्मा, शिवादि देवताओं के लिए भी महत्वपूर्ण हैं । समस्त जीवों के कल्याण के लिए इस जगत में अवतीर्ण होने वाले श्रीभगवान् के उपदेशों का जो भी लाभ नहीं उठाता है, वह निश्चय ही अत्यन्त अभागा है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न का इस प्रकार से उत्तर दिया"यदि मैं किसी भक्त पर विशेष अनुग्रह करता हूँ तथा उसकी देखभाल करने की विशेष इच्छा रखता हूँ तब मैं सर्वप्रथम उसकी सम्पत्ति का हरण कर लेता हूँ ।" जब एक भक्त निर्धन या दरिद्र बन जाता है अथवा तुलनात्मक रूप से निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसमें रुचि नहीं लेते हैं तथा अधिकतर वे उससे सम्बन्धविच्छेद कर लेते हैं, तब भक्त द्विगुणित रूप से दुखी हो जाता है । प्रथमत: वह इसलिए

दुखी होता है कि श्रीकृष्ण ने उसकी सम्पति का हरण कर लिया है तथा जब उसकी दरिद्रावस्था के कारण उसके सम्बन्धी उसे छोड़ जाते हैं तब वह और अधिक दुखी हो जाता है । किन्तु यहाँ पर हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब कोई भत इस प्रकार दुखी अवस्था को प्राप्त होता है, तब यह उसके गत पापों के कारण नहीं होता अर्थात् यह उसका कर्म-फल नहीं, अपितु भक्त का दारिद्रय श्रीभगवान् परीक्षित द्वारा पूछे इस प्रश्न का उत्तर निहित है कि शिवजी के भक्त इतने वैभवशाली क्यों हैं । शिवजी के भक्त केवल भौतिक गुणों के मामले में ही समृद्ध हैं । वस्तुत: सभ्यता की यह तथाकथित प्रगति भौतिक अस्तित्व में बन्धन का कारण है । वास्तव में यह प्रगति नहीं अपितु अधोगति है । निष्कर्ष यह निकलता है कि शिवजी त्रिगुणों के स्वामी हैं, अतएव उनके भक्तों को इन्द्रियतृप्ति के लिए इन त्रिगुणों की पारस्परिक क्रिया द्वारा निर्मित वस्तुएँ प्रदान की जाती हैं । किन्तु भगवद्गीता में हमें भगवान् श्रीकृष्ण उपदेश देते हैं कि व्यक्ति को गुणात्मक अस्तित्व से ऊपर उठने का प्रयत्न करना चाहिए । निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन-मानव-जीवन का ध्येय त्रिगुणातीत होना है । जब तक व्यक्ति निस्त्रैगुण्य नहीं होता है, वह भौतिक बन्धनों से मुक्ति नहीं प्राप्त कर सकता है । दूसरे शब्दों में, भगवान् शिव से प्राप्त अनुग्रह यद्यपि ऊपर से वैभवशाली प्रतीत होते हैं, तथापि वे वास्तव में बद्धात्माओं के लिए लाभदायक नहीं हैं । श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा, "भगवान् श्री हरि भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों से ऊपर हैं (त्रिगुणातीत हैं) ।" भगवद्गीता में कहा गया है कि जो कोई श्रीहरि की शरण में जाता है, वह भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों के प्रभुत्व से ऊपर उठ जाता है । अतएव, चूँकि श्रीहरि के भक्त भौतिक त्रिगुणों के प्रभुत्व से ऊपर हैं, तब निश्चित ही स्वयं हरि भी त्रिगुणातीत हैं । अतएव श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि श्रीहरि अथवा श्रीकृष्ण ही श्रीभगवान् हैं । प्रकृति अथवा शक्तियाँ दो प्रकार की हैं- अन्तरंगा शक्ति तथा बहिरंगा शक्ति और श्रीकृष्ण इन दोनों ही प्रकृतियों अथवा शक्तियों के स्वामी हैं । वे सवहकू अथवा अन्तरंगा तथा बहिरंगा

शक्तियों के समस्त कार्यों के निरीक्षक हैं तथा उन्हें उपद्रष्टा अर्थात् परम परामर्शदाता भी कहा जाता है । वे परम परामर्शदाता होने के कारण समस्त देवताओं से ऊपर हैं, जो कि केवल परम परामर्शदाता के निर्देश का अनुसरण करते हैं । इस प्रकार जैसाकि श्रीमद्भागवत तथा भगवद्गीता में बताया गया है, यदि कोई व्यक्ति परमेश्वर के आदेशों का प्रत्यक्ष पालन करता है, तो वह शनै: शनै: निर्गुण बन जाता है अर्थात् भौतिक गुणों की पारस्परिक क्रिया से ऊपर उठ जाता है । निर्गुण होने का अर्थ है भौतिक वैभव से रहित हो जाना, क्योंकि जैसाकि हमने पहले समझाया है भौतिक ऐश्वर्य का अर्थ है भौतिक त्रिगुणों की क्रिया-प्रतिक्रिया में वृद्धि । श्रीभगवान् की उपासना करने के द्वारा व्यक्ति भौतिक वैभवों से फूल उठने के स्थान पर कृष्णभावनामृत में ज्ञान की आध्यात्मिक प्रगति से समृद्ध हो जाता है । निर्गुण होने का तात्पर्य है नित्य शान्ति, निर्भयता, धार्मिकता, ज्ञान तथा त्याग को प्राप्त करना । ये सब भौतिक गुणों के दूषणों से मुक्त होने के लक्षण हैं । परीक्षित महाराज के प्रश्न का उत्तर देने में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे परीक्षित महाराज के पितामह राजा युधिष्ठिर से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक दृष्टान्त दिया । उन्होंने कहा कि विशाल यज्ञभूमि में अश्वमेघ यज्ञ कि समाप्ति के उपरान्त, महान् विशेषज्ञों की उपस्थिति में, राजा युधिष्ठिर ने इसी विषय में प्रश्न किया था-ऐसा कैसे है कि शिव-भक्त भौतिक ऐश्वर्यों के स्वामी हो जाते हैं, जबकि भगवान् विष्णु, के भत नहीं होते हैं? राजा युधिष्ठिर का उल्लेख श्रीशुकदेव गोस्वामी ने विशेष रूप से, "तुम्हारे पितामह" कह कर किया, जिससे कि राजा परीक्षित यह सोचने को उत्साहित हों कि वे श्रीकृष्ण के सम्बन्धी हैं तथा उनके पितामह का श्रीभगवान् से घनिष्ठ सम्बन्ध था ।

यद्यपि श्रीकृष्ण स्वभाव से ही सदैव सन्तुष्ट हैं, किन्तु जब महाराज युधिष्ठिर ने यह प्रश्न किया, तो वे और अधिक सन्तुष्ट हो गए, क्योंकि सम्पूर्ण कृष्णभावनाभावित समाज के लिए ऐसे प्रश्नों तथा उनके उत्तरों का विशेष

अर्थ होगा । जब कभी भी भगवान् श्रीकृष्ण किसी विषय पर किसी विशेष भक्त से कुछ कहते हैं, तब वह केवल उस भक्त के लिए ही न होकर सम्पूर्ण मानव-समाज के लिए होता है । श्रीभगवान् के उपदेश ब्रह्मा, शिवादि देवताओं के लिए भी महत्वपूर्ण हैं । समस्त जीवों के कल्याण के लिए इस जगत में अवतीर्ण होने वाले श्रीभगवान् के उपदेशों का जो भी लाभ नहीं उठाता है, वह निश्चय ही अत्यन्त अभागा है ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने महाराज युधिष्ठिर के प्रश्न का इस प्रकार से उत्तर दिया"यदि मैं किसी भक्त पर विशेष अनुग्रह करता हूँ तथा उसकी देखभाल करने की विशेष इच्छा रखता हूँ तब मैं सर्वप्रथम उसकी सम्पत्ति का हरण कर लेता हूँ ।" जब एक भक्त निर्धन या दरिद्र बन जाता है अथवा तुलनात्मक रूप से निर्धन हो जाता है, तब उसके सगे-सम्बन्धी उसमें रुचि नहीं लेते हैं तथा अधिकतर वे उससे सम्बन्धविच्छेद कर लेते हैं, तब भक्त द्विगुणित रूप से दुखी हो जाता है । प्रथमत: वह इसलिए दुखी होता है कि श्रीकृष्ण ने उसकी सम्पति का हरण कर लिया है तथा जब उसकी दरिद्रावस्था के कारण उसके सम्बन्धी उसे छोड़ जाते हैं तब वह और अधिक दुखी हो जाता है । किन्तु यहाँ पर हमें इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि जब कोई भत इस प्रकार दुखी अवस्था को प्राप्त होता है, तब यह उसके गत पापों के कारण नहीं होता अर्थात् यह उसका कर्म-फल नहीं, अपितु भक्त का दारिद्रय श्रीभगवान् द्वारा रचित होता है । इसी भाँति जब एक भक्त भौतिक रूप से समृद्ध हो जाता है, तब उसका कारण भी उसके पुण्यकर्म नहीं होते । दोनों ही दशाओं में, चाहे भक्त दरिद्र बने अथवा समृद्ध, यह व्यवस्था श्रीभगवान् के द्वारा की जाती है । श्रीकृष्ण यह व्यवस्था विशेष रूप से इसलिए करते हैं जिससे भक्त पूर्ण रूप से उन पर निर्भर हो जाए तथा समस्त भौतिक बन्धनों से मुक्त हो जाए । तब वह अपनी शक्तियाँ, मन तथा देह, सब कुछ भगवान् की सेवा के लिए एकाग्र कर सकता है और वह शुद्ध भक्ति होती है । अतएव

नारद पंचरात्र में स्पष्ट किया गया है-सर्वोपाधि विनिमुकम्जिसका तात्पर्य है समस्त उपाधियों से मुक्त होना । परिवार, समाज, समुदाय, देश अथवा मानवता के लिए किए गए कार्य, सभी उपाधियुक्त हैं-"मैं इस समाज का अंग हूँ," "मैं इस समुदाय का अंग हूँ," "मैं इस देश का अंग हूँ," "मैं इस प्राणिजाति का अंग हूँ ।" ऐसी पहचानें केवल उपाधियाँ-मात्र हैं । जब भगवत्कृपा से कोई भत समस्त उपाधियों से मुक्त हो जाता है, तब उसकी भक्ति नैष्कर्म होती है । नैष्कर्म की स्थिति के द्वारा ज्ञानी अत्यधिक आकर्षित होते हैं, जिसमें कि व्यक्ति के कर्मों का कोई भौतिक प्रभाव नहीं होता है । जब भक्त के कर्म फल से मुक्त हो जाते हैं, तब वे कर्मफल वाली कोटि में नहीं रहते हैं, अथवा वे सकाम कर्म नहीं रहते हैं । अतएव जैसाकि मूर्तिमान् वेदों ने स्पष्ट किया है कि एक भक्त के लिए उसके दुख तथा क्लेश को श्रीभगवान् उत्पन्न करते हैं अतएव भत को इस बात की चिन्ता नहीं रहती है कि वह सुखी है अथवा दुखी है । वह भक्ति के अपने कर्तव्य को पूरा करता रहता है । यद्यपि ऐसा प्रतीत होता है कि उसका व्यवहार कर्म-फल की क्रिया-प्रतिक्रिया का विषय है, किन्तु वास्तव में वह कर्म फल से मुक्त है ।

यह प्रश्न किया जा सकता है कि श्रीभगवान् भक्त को ऐसे कष्टों में क्यों डालते हैं । इसका उत्तर यह है कि जिस प्रकार कभी-कभी पिता अपनी सन्तान पर निर्दय हो जाता है, भगवान् का इस प्रकार का प्रबन्ध भी ठीक वैसा ही है । भक्त एक शरणागत आत्मा है और भगवान् उसका भार उठाते हैं, अतएव जब भी भगवान् उसे दुखी जीवन की किसी भी परिस्थिति में रखते हैं, तब यह समझना चाहिए कि इस व्यवस्था के पीछे श्रीभगवान् द्वारा नियोजित कोई विशाल योजना है । उदाहरण के लिए, भगवान् श्रीकृष्ण ने पाण्डवों को ऐसी घोर दुखद स्थिति में रखा था कि भीष्म पितामह भी यह नहीं समझ पाए कि इतना दुख किस प्रकार हो सकता है । वे शोक करते थे कि यद्यपि सम्पूर्ण पाण्डव परिवार के मुखिया

सर्वाधिक पुण्यात्मा राजा युधिष्ठिर थे, महान् योद्धा भीम एवं अर्जुन इनके रक्षक थे तथा सबसे बढ़कर यह कि पाण्डव भगवान् श्रीकृष्ण के घनिष्ठ सखा तथा सम्बन्धी थे, फिर भी उन्हें इतने कष्ट उठाने पड़े । किन्तु बाद में यह सिद्ध हो गया कि भक्तों की रक्षा तथा दुष्कर्मियों के विनाश के अपने महान् ध्येय के अंग के रूप में भगवान् श्रीकृष्ण ने ही इसकी योजना बनायी थी ।

एक अन्य प्रश्न उठाया जा सकता है कि भक्तों को सुख अथवा दुख श्रीभगवान् की व्यवस्था से प्राप्त होता है तथा एक सामान्य मानव को अपने विगत कर्मों के फलस्वरूप सुख-दुख प्राप्त होता है, फिर दोनों में भेद क्या है? साधारण कर्मी से भत किस प्रकार उत्तम है? उत्तर यह है कि कर्मी तथा भक्त एक ही स्तर पर नहीं हैं । कर्मी चाहे जीवन की किसी भी दशा में हो उसका जन्म-मरण का चक्र चलता रहता है, क्योंकि कर्म अथवा सकाम कर्म का बीज वहाँ उपस्थित रहता है, जो अवसर पाते ही फल उत्पन्न करता है । सामान्य मनुष्य कर्म के नियम के कारण बारम्बार जन्म-मृत्यु में निरन्तर फैसा रहता है, जबकि कर्म के नियम के अधीन न होने के कारण एक भक्त के सुख-दुख भगवान् की अस्थायी व्यवस्था के अंग हैं तथा इनके द्वारा भक्त बन्धन में नहीं पड़ता है । भगवान् ऐसी व्यवस्था केवल एक अस्थायी प्रयोजन सिद्ध करने के लिए करते हैं । यदि कोई कर्मी शुभ कार्य करता है, तब उसे स्वर्गलोक की प्राप्ति होती है तथा यदि वह पापकर्म करता है, तब उसे नरक में डाल दिया जाता है । किन्तु एक भक्त चाहे तथाकथित पुण्य अथवा पापपूर्ण रीति से कार्य करे, उसकी न तो स्वर्ग तक उन्नति होती है, न नरक में पतन, अपितु उसे आध्यात्म लोक में स्थान प्राप्त होता है । अतएव भक्त के सुख-दुख एक ही स्तर के नहीं हैं । इस बात की पुष्टि अजामिल के मोक्ष के सम्बन्ध में अपने एक सेवक से यमराज के कथन से भी होती है । यमराज ने अपने पार्षदों को परामर्श दिया कि जिन लोगों ने कभी-भी भगवान् का पवित्र नाम नहीं

लिया है तथा भगवान् के रूप, गुण तथा लीलाओं का स्मरण नहीं किया है, यमदूतों को उनके समीप जाना चाहिए । उन्होंने अपने दूतों को आदेश दिया कि इसके विपरीत यदि उनकी भेंट किसी भक्त से हो, तो वे भक्त को सादर प्रणाम करें । अतएव इस भौतिक जगत में किसी भत की प्रगति अथवा अधोगति होने का प्रश्न ही नहीं उठता है । जैसे कि माता द्वारा दिए गए दण्ड तथा एक शत्रु द्वारा दिए गए दण्ड के मध्य एक विशाल अन्तर होता है उसी भाँति एक भक्त की दुखी अवस्था तथा एक सामान्य कर्मी की दुखी अवस्था एकसमान नहीं है ।

यहाँ एक अन्य प्रश्न उठाया जा सकता है । यदि ईश्वर सर्वशक्तिमान हैं तब वे भक्तों को दुखी करके उनके सुधार का प्रयत्न क्यों करते हैं? इसका उत्तर यह है कि जब श्रीभगवान् अपने भक्त को दुख की अवस्था में डालते हैं तब इसका कोई प्रयोजन होता है । कभी-कभी उद्देश्य यह होता है कि दुख में श्रीकृष्ण के प्रति भक्त की आसक्ति में वृद्धि हो जाती है । उदाहरणार्थ, जब पाण्डवों की राजधानी छोड़ने से पूर्व श्रीकृष्ण प्रस्थान की आज्ञा माँग रहे थे, तब कुन्तीदेवी ने कहा, "प्रिय कृष्ण! हमारे दुख की अवस्था में तुम सदैव हमारे साथ रहते हो । अब हमें राजसी पद प्राप्त हो गया है, अब तुम हमसे विदा ले रहे हो । अतएव मैं तुम्हें खोने की अपेक्षा दुख में जीवन व्यतीत करना श्रेयस्कर समझेंगी ।" जब एक भक्त दुखद परिस्थिति में होता है, तब उसकी भक्ति सम्बन्धी गतिविधियों में तीव्रता आ जाती है । अतएव किसी भक्त पर विशेष अनुग्रह का प्रदर्शन करने के लिए भगवान् कभी-कभी उसे दुख दे देते हैं । इसके अतिरिक्त कहा जाता है कि जिन्होंने दुख की तितता का अनुभव किया है उन्हें सुख की मधुरता और अधिक मधुर लगती है । अपने भक्तों की दुख से रक्षा करने के लिए ही परमेश्वर इस जगत में अवतीर्ण होते हैं । दूसरे शब्दों में, यदि भक्तों को दुख न होता, तो भगवान् भी अवतार न लेते । जहाँ तक दुष्कर्मियों तथा असुरों को मारने का प्रश्न है, तो वह उनकी विभिन्न

शक्तियों के द्वारा भी सरलतापूर्वक किया जा सकता है, जैसाकि उनकी बहिरंगा शक्ति, दुर्गादेवी, ने अनेक असुरों का वध किया । अतएव ऐसे असुरों का वध करने के लिए भगवान् को स्वयं अवतार लेने की आवश्यकता नहीं है, किन्तु जब उनके भक्त दुखी होते हैं तब उनको आना ही पड़ता है । भगवान् नृसिंहदेव हिरण्यकशिपु का वध करने के लिए नहीं, अपितु प्रह्लाद से मिलने तथा उनको आशीर्वाद देने के लिए प्रकट हुए थे । दूसरे शब्दों में, प्रह्लाद महाराज को अत्यधिक कष्ट दिए गए थे, अतएव भगवान् प्रकट हुए ।

जब गहन रात्रि के उपरान्त अन्ततः प्रातःकाल सूर्योदय होता है, तब वह अत्यन्त सुखद होता है । जब भीषण गर्मी होती है, तब शीतल जल अत्यन्त सुखकर होता है । जब जमा देने वाली सर्दी पड़ती है, तब गरम जल अत्यन्त सुखद लगता है । इसी भाँति जब एक भक्त भौतिक जगत की अवस्था का अनुभव करने के उपरान्त भगवान् द्वारा प्रदत्त आध्यात्मिक सुख का आनन्द उठाता है, तब उसकी दशा और भी आनन्ददायक तथा सुखकर हो जाती है ।

भगवान् ने आगे कहा, "जब मेरा भक्त समस्त भौतिक सम्पति से वंचित हो जाता है तथा उसके बन्धु-बान्धव तथा स्वजन उसका परित्याग कर देते हैं, तब उसकी देखभाल करने वाला कोई नहीं रहता है, अतएव वह पूर्णरूपेण श्रीभगवान् के चरणकमलों की शरण में चला जाता है ।" इस सम्बन्ध में श्रील नरोत्तमदास ठाकुर ने गाया है, 'हे कृष्ण, हे नन्दनन्दन! आप राधारानी के साथ मेरे समक्ष खड़े हैं । मैं अब आपकी शरण में आया हूँ । कृपया मुझे स्वीकार कीजिए । कृपया मुझे ठुकराइये मत । आपके अतिरित मेरी अन्य कोई शरणस्थली नहीं है ।"

जब एक भक्त इस तथाकथित दुख की दशा को प्राप्त होता है तथा सम्पति और परिवार से वंचित हो जाता है, तब वह भौतिक वैभव की अपनी पूर्वदशा को प्राप्त करने का प्रयास करता है । यद्यपि वह बारम्बार

प्रयत्न करता है, किन्तु श्रीकृष्ण बारम्बार उसके समस्त साधनों को हर लेते हैं । इस प्रकार अन्ततः वह भौतिक गतिविधियों से निराश हो जाता है तथा समस्त प्रयासों में निराशा के उस स्तर पर वह पूर्ण रूप से श्रीभगवान् की शरण ग्रहण कर सकता है । अन्तस्थल से भगवान् ऐसे व्यक्तियों को भक्तों का संग करने का परामर्श देते हैं । भक्तों की संगति में रहने से स्वभावतः उनका झुकाव श्रीभगवान् की सेवा करने की ओर हो जाता है तथा कृष्णभावनामृत में प्रगति करने के लिए समस्त सुविधाएँ भगवान् की ओर से उन्हें तत्काल ही प्राप्त होती हैं । किन्तु अभक्त अपने जीवन की भौतिक दशा को बनाए रखने के प्रति अत्यन्त सतर्क होते हैं । अतएव ऐसे अभत श्रीभगवान् की उपासना के लिए नहीं आते हैं, अपितु तात्कालिक भौतिक लाभ के लिए शिवजी अथवा अन्य देवताओं की उपासना करते हैं । भगवद्गीता में कहा गया है, कांक्षन्तः कर्माणां सिद्धि यजन्त इह देवता-इस भौतिक जगत में सफलता प्राप्त करने के लिए कर्मी विभिन्न देवताओं की उपासना करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण ने यह भी कहा है कि देवताओं की उपासना करने वाले लोग अल्प बुद्धि के होते हैं । अतएव भगवान् के प्रति तीव्र मोह होने के कारण श्रीभगवान् के उपासक देवताओं के समीप जाने की मूर्खता नहीं करते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण ने राजा युधिष्ठिर से कहा, "मेरा भक्त जीवन की किसी भी प्रतिकूल परिस्थिति से विचलित नहीं होता है, वह सदैव ही दृढ़ तथा एकनिष्ठ रहता है । अतएव मैं स्वयं को उसे देता हूँ तथा मैं उस पर अनुग्रह करता हूँ जिससे कि वह जीवन में सर्वोच्च सफलता प्राप्त कर सके ।" परीक्षा में उतीर्ण हुए भक्त पर श्रीभगवान् जो दया करते हैं उसे ब्रह्म कहा जाता है । इससे संकेत मिलता है कि उस दया की महानता की तुलना केवल सर्वव्यापक महानता (ब्रह्म) से ही की जा सकती है । ब्रह्म का अर्थ है अनन्त रूप से महान् तथा अनन्त रूप से प्रकाशित होने वाला । उस दया को परम भी कहते हैं, क्योंकि इस भौतिक जगत में

इसकी कोई तुलना नहीं है । इसे सूक्ष्मम् अर्थात् अति सूक्ष्म भी कहा जाता है । एक परीक्षित भक्त पर भगवान् की दया न केवल महान् तथा अनन्त रूप से उदार है, अपितु यह भत तथा भगवान् के मध्य सर्वोत्कृष्ट प्रकार का दिव्य प्रेम भी है । ऐसी दया का वर्णन आगे चिन्मात्रम् अर्थात् पूर्णरूपेण आध्यात्मिक कह कर भी किया गया है । मात्रम् शब्द का प्रयोग भौतिक गुणों के लेशमात्र से भी रहित, पूर्ण आध्यात्मिकता का संकेत देता है । उस दया को सत् भी कहते हैं, नित्य तथा अनन्तकसू भी कहते हैं । भगवान् के भक्त को ऐसा अनन्त आध्यात्मिक लाभ प्राप्त होता है, अतएव वह देवताओं की उपासना क्यों करे? श्रीकृष्ण का भक्त शिवजी, ब्रह्माजी अथवा अन्य किसी गौण देवता की उपासना नहीं करता है । वह स्वयं को पूर्ण रूप से श्रीभगवान् की दिव्य प्रेम-सेवा के प्रति समर्पित कर देता है ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने आगे कहा, "ब्रह्मा, शिव, इन्द्र, चन्द्र, वरुण तथा देवताओं सहित समस्त देवता अपने भक्तों के सुव्यवहार अथवा दुव्र्यवहार से अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न अथवा अप्रसन्न हो जाते हैं । किन्तु भगवान् श्रीविष्णु के साथ ऐसा नहीं है ।" इसका तात्पर्य है कि इस जगत में देवताओं सहित कोई भी जीव भौतिक प्रकृति के त्रिगुणों से संचालित होता है, अतएव इस भौतिक जगत में रज तथा तम गुणों की अत्यन्त प्रधानता है । देवताओं का आशीर्वाद प्राप्त करने वाले भत भी भौतिक गुणों, विशेषरूप से रजोगुण तथा तमोगुण, से दूषित हो जाते हैं । अतएव भगवान् श्रीकृष्ण ने भगवद्गीता में कहा है कि देवताओं का आशीर्वाद लेना अल्पबुद्धि का परिचायक है, क्योंकि जब व्यक्ति देवताओं से आशीर्वाद लेता है, तब इन आशीर्वादों का फल अस्थायी होता है । देवताओं की उपासना के द्वारा भौतिक वैभव की प्राप्ति सरल है, किन्तु कभी-कभी इसका फल भयंकर होता है । फिर देवताओं से प्राप्त करने वाले लोग

शनै: शनै: भौतिक ऐश्वर्य के मद में फूल जाते हैं तथा अपने उपकारक की उपेक्षा करने लगते हैं ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित को इस बार सम्बोधित किया, "प्रिय राजन्! भौतिक सृष्टि की प्रधान त्रिमूर्ति ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी किसी को भी वरदान या शाप देने में समर्थ हैं । इस त्रिमूर्ति में ब्रह्माजी तथा शिवजी अति सरलता से प्रसन्न हो जाते हैं तथा साथ ही साथ अति सरलता से रुष्ट भी हो जाते हैं । जब वे सन्तुष्ट होते हैं तब बिना विचार किए भक्त को वरदान देते हैं तथा रुष्ट होने पर बिना विचार किए भक्त को शाप दे देते हैं । किन्तु भगवान् विष्णु वैसे नहीं है । भगवान् विष्णु अत्यन्त विचारवान् हैं । जब कभी कोई भत भगवान् विष्णु से कुछ माँगता है, सर्वप्रथम भगवान् यह विचार करते हैं कि अन्तत: ऐसा वरदान भक्त के लिए हितकारी होगा अथवा नहीं । भगवान् विष्णु कभी-भी कोई ऐसा वरदान नहीं देते हैं, जो अन्तत: भक्त के लिए विपदा सिद्ध हो । अपने दिव्य स्वभाव से ही वे सदैव दयालु हैं, अतएव कोई वरदान देने से पूर्व वे यह विचार करते हैं कि यह वरदान भत के लिए हितकर सिद्ध होगा अथवा नहीं । श्रीभगवान् सदैव दयालु हैं, अतएव जब ऐसा प्रतीत होता है कि उन्होंने किसी असुर का वध किया है, अथवा जब वे किसी भत से अप्रसन्न हुए प्रतीत होते हैं तब भी उनके कार्य सदैव ही मांगलिक होते हैं । अतएव श्रीभगवान् को सर्वमंगलमय कहा जाता है । वह जो कुछ भी करते हैं वह मांगलिक होता है ।

जहाँ तक शिवजी द्वारा दिए गए वरदानों का प्रश्न है, महर्षियों द्वारा दृष्टान्त रूप में दी गई निम्नलिखित एक ऐतिहासिक घटना है । एक बार शकुनि के पुत्र वृकासुर नामक असुर को वरदान देने के उपरान्त शिवजी स्वयं ही एक अत्यन्त विकट परिस्थिति में फैंस गए थे । वृकासुर एक वरदान की खोज में था । वह यह निश्चय करने का प्रयास कर रहा था कि वर प्राप्ति के लिए तीनों अधिष्ठाता देवताओं में से किसकी उपासना करे

। इसी मध्य उसकी भेंट महर्षि नारद से हुई और उसने उनसे इस विषय पर विचार-विमर्श किया कि अपनी तपस्या का शीघ्र फल प्राप्त करने के लिए वह किसके समीप जाए । उसने प्रश्न किया, 'ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवजी नामक तीनों देवताओं में से कौन सर्वाधिक शीघ्र प्रसन्न हो जाते हैं?" नारद मुनि असुर की योजना को समझ गए और उन्होंने उसको परामर्श दिया, "तुम्हें शिवजी की उपासना करनी चाहिए, तब तुम्हें शीघ्र ही वांछित फल की प्राप्ति होगी । शिवजी अत्यन्त शीघ्र प्रसन्न तथा अत्यन्त शीघ्र अप्रसन्न भी हो जाते हैं । अतएव तुम शिवजी को सन्तुष्ट करने का प्रयास करो ।" नारदजी ने दृष्टान्त भी दिए जिनमें रावण तथा बाणासुर जैसे असुर स्तुति के द्वारा शिवजी को प्रसन्न करके अत्यन्त वैभवशाली हो गए थे । महर्षि नारद को वृकासुर के स्वभाव का ज्ञान था, अतएव उन्होंने उसे ब्रह्मा अथवा विष्णु के समीप जाने का परामर्श नहीं दिया । तमस के भौतिक गुण में स्थित वृकासुर जैसे लोग विष्णु की उपासना नहीं कर सकते हैं ।

नारदजी से उपदेश प्राप्त करके वृकासुर केदारनाथ गया । केदारनाथ का तीर्थस्थल आज भी कश्मीर के पास स्थित है । यह लगभग सदैव हिमाच्छादित रहता है, किन्तु जुलाई मास में, वर्ष के कुछ भाग के लिए, श्रीमूर्ति के दर्शन किए जा सकते हैं तथा भक्त-गण प्रणाम करने के लिए वहाँ जाते हैं । केदारनाथ शिव-भक्तों के लिए है । वैदिक सिद्धान्त के अनुसार जब कोई वस्तु देवताओं के भक्षण के हेतु अर्पित की जाती है, तब अग्नि में उसकी आहुति दी जाती है । अतएव सभी प्रकार के संस्कारों में अग्नि-यज्ञ आवश्यक होता है । शास्त्रों में विशेषरूप से कहा गया है कि देवताओं को खाने की कोई भी वस्तु अग्नि के माध्यम से अर्पित की जानी चाहिए । अतएव वृकासुर केदारनाथ गया तथा उसने शिवजी को प्रसन्न करने के लिए यज्ञ की अग्नि प्रज्वलित की ।

शिवजी के नाम पर अग्नि प्रज्वलित करके उसने उन्हें प्रसन्न करने के लिए अपने शरीर से मांस काट-काट कर शिवजी को अर्पित करना

प्रारम्भ किया । यह तमोगुण में उपासना का एक उदाहरण है । भगवद्गीता में विभिन्न प्रकार के यज्ञों का उल्लेख किया गया है । कुछ यज्ञ सतीगुण में होते हैं, कुछ रजोगुण में तथा कुछ तमोगुण में होते हैं । जगत में भिन्न-भिन्न प्रकार के लोग होते हैं, अतएव भिन्न-भिन्न प्रकार की तपस्याएँ तथा उपासनाएँ भी होती हैं । किन्तु परम तपस्या, कृष्णभावनामृत, परम योग तथा परम यज्ञ है । जैसे कि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है, हृदय में सदैव श्रीकृष्ण का चिन्तन करना ही परम योग है तथा संकीर्तन यज्ञ करना परम यज्ञ है ।

भगवद्गीता में कहा गया है कि देवताओं के उपासक अपनी बुद्धि खो बैठे हैं । जैसे कि इस अध्याय में आगे प्रकट होगा, वृकासुर एक निम्न कोटि के भौतिक उद्देश्य के लिए शिवजी को संतुष्ट करना चाहता था । वह उद्देश्य वास्तविक हित से रहित तथा अस्थायी था । तमोगुणी व्यक्ति अथवा असुर देवताओं से ऐसे वरदानों को स्वीकार करा लेते हैं । तमोगुण में इस यज्ञ से एकदम विपरीत भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण की उपासना की प्रणाली अर्चना-विधि है, जो अत्यन्त सरल है । भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं कि वे अपने भक्तों से कुछ फल, एक पुष्प अथवा थोड़ा जल भी स्वीकार कर लेते हैं, जिसे धनी अथवा निर्धन कोई भी व्यक्ति इकट्ठा कर सकता है । वैसे जो धनवान हैं, उनसे यह अपेक्षा नहीं की जाती है कि वे केवल थोड़ा-सा जल, फल का टुकड़ा अथवा एक पता भगवान् को अर्पित करेंगे । एक धनवान व्यक्ति को अपने पद के अनुसार भेंट देनी चाहिए, किन्तु यदि भक्त निर्धन हो, तो भगवान् अत्यल्प भी स्वीकार कर लेंगे । भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण की उपासना अति सरल है तथा इस जगत में इसे कोई भी कर सकता है । किन्तु जैसाकि वृकासुर ने प्रदर्शित किया था, तमोगुण में उपासना न केवल अत्यन्त कठिन तथा कष्टपूर्ण है, अपितु यह समय का निरुद्देश्य अपव्यय है । अतएव भगवद्गीता का कथन है कि देवताओं के उपासक बुद्धिहीन हैं । उनकी

उपासना की प्रणाली अत्यन्त कठिन है तथा साथ ही साथ प्राप्त होने वाला फल स्थिर तथा अस्थायी है । यद्यपि वृकासुर ने अपना यज्ञ छः दिनों तक जारी रखा, किन्तु वह अपने उद्देश्य, शिवजी के प्रत्यक्ष दर्शन में असफल रहा । वह उनके प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता था तथा उनसे वरदान माँगना चाहता था । यहाँ भक्त तथा असुर के मध्य एक विरोध स्पष्ट होता है । भक्त को यह विश्वास होता है कि भक्ति में वह श्रीमूर्ति को जो कुछ भी अर्पित करता है, भगवान् उसे स्वीकार करते हैं, किन्तु असुर अपने आराध्य देव के प्रत्यक्ष दर्शन करना चाहता है, जिससे कि वह सीधे कोई वरदान माँग सके । किन्तु एक भत भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण की उपासना किसी वरदान की प्राति के हेतु नहीं करता है । अतएव एक भक्त को 'अकाम" अर्थात् इच्छाओं से रहित तथा एक अभत को "सर्व-काम" अर्थात् प्रत्येक वस्तु की इच्छा रखने वाला कहते हैं । सातवें दिन असुर वृकासुर ने निश्चय किया कि शिवजी को प्रसन्न करने के लिए उसे अपना सिर काट कर अर्पित करना चाहिए । इस प्रकार उसने समीपस्थ जलाशय में स्नान किया और शरीर तथा केश सुखाए बिना ही अपना सिर काटने को तत्पर हो गया । वैदिक प्रणाली के अनुसार बलि चढ़ाए जाने वाले पशु को पहले स्नान कराया जाता है तथा जब वह गीला ही रहता है तभी उसकी बलि दी जाती है । जब असुर इस प्रकार अपना सिर काटने को उद्यत हो रहा था तब शिवजी अत्यन्त दयाद्री हो उठे । यह दयार्द्रता सतीगुण का लक्षण है । शिवजी को त्रिलिंग कहते हैं । अतएव उनके द्वारा दयालु प्रकृति का प्रकाश सतोगुणी है । यह दयालुता समस्त जीवों में उपस्थित है । शिवजी की दयालुता इसलिए जाग्रत हुई, क्योंकि वह असुर यज्ञ की अग्नि में अपने मांस की आहुति दे रहा था । यह स्वाभाविक दयालुता है । यदि कोई सामान्य आदमी भी किसी को आत्महत्या करने पर तुला देखता है, तो यह उसका कर्तव्य है कि उसे बचाने का प्रयास करे । वह अनायास ही ऐसा करता है । उससे विनती करने की कोई आवश्यकता नहीं होती है । अतएव जब असुर को आत्महत्या से रोकने

के लिए शिवजी यज्ञ की अग्नि में से प्रकट हुए, तो यह उस पर महान् अनुग्रह करने की दृष्टि से नहीं था ।

शिवजी के स्पर्श से असुर आत्महत्या करने से बच गया । उसके शरीर के घाव तत्काल भर गए तथा उसका शरीर पूर्ववत् हो गया । तब शिवजी ने असुर से कहा, "प्रिय वृकासुर! तुम्हें सिर काटने की कोई आवश्यकता नहीं है । तुम मुझसे कोई भी वरदान माँग सकते हो तथा मैं तुम्हारी इच्छा पूर्ण करूंगा । मुझे ज्ञात नहीं कि तुम मुझे प्रसन्न करने के लिए अपना सिर क्यों काटना चाहते हो । मैं तो केवल थोड़े से जल की भेंट चढ़ाने से भी सन्तुष्ट हो जाता हूँ ।" वास्तव में वैदिक प्रक्रिया के अनुसार मंदिर में रखा लिंग अथवा शिवमूर्ति की उपासना केवल गंगाजल चढ़ा कर की जाती है, क्योंकि कहा जाता है कि उनके सिर पर गंगाजल चढ़ाने से शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो जाते हैं । साधारणत: भक्त गंगाजल तथा बिल्वपत्र चढ़ाते हैं, जिन्हें विशेषरूप से शिवजी तथा दुर्गादेवी पर चढ़ाने का विधान है । बेल का फल भी शिवजी पर चढ़ाया जाता है । शिवजी ने वृकासुर को विश्वास दिलाया कि वे अत्यन्त सरल उपासनाविधि से सन्तुष्ट हो जाते हैं । फिर वह अपना सिर काटने को इतना उत्सुक क्यों था, अपने शरीर के टुकड़े करके वह अग्नि में उनकी आहुति देने का कष्ट क्यों उठा रहा था? इतने कठोर तप की कोई आवश्यकता नहीं थी । दया तथा सहानुभूति के कारण शिवजी उसे कोई भी वर देने को तत्पर थे ।

जब शिव ने असुर से वर माँगने को कहा तब उसने एक अत्यन्त भयंकर तथा निन्दनीय वर माँगा । वह असुर अत्यन्त पापी था तथा पापी लोगों को यह ज्ञात नहीं होता है कि श्रीमूर्ति से किस प्रकार का वरदान माँगना चाहिए । अतएव उसने शिवजी से वरदान माँगा कि वे उसे ऐसी शक्ति का वर दें जिससे यदि वह किसी के सिर का स्पर्श करे, तो उसका सिर फट जाए तथा वह व्यक्ति मर जाए । भगवद्गीता में असुरों को दुष्कृतिन अथवा दुष्कर्म करने वाला कहा गया है । कृति का अर्थ है

अत्यन्त योग्य, किन्तु जब उसमें दुष्यू उपसर्ग लगता है, तब इसका अर्थ निन्दनीय हो जाता है । श्रीभगवान् की शरण में आने के स्थान पर दुष्कृतिन निन्दनीय भौतिक सुविधाओं को प्राप्त करने के लिए विभिन्न देवताओं की उपासना करते हैं । कभी-कभी भौतिक वैज्ञानिकों के रूप में ऐसे असुर घातक अस्त्रों की खोज करते हैं । वे अपनी शक्ति का प्रदर्शन मानव की मृत्यु से रक्षा करने वाली किसी वस्तु की खोज के द्वारा नहीं कर सकते हैं । उसके स्थान पर वे ऐसे अस्त्रों की खोज्ञ करते हैं, जो मृत्यु की प्रक्रिया की गति को तीव्र कर देते हैं । शिवजी कोई भी वरदान देने में सक्षम हैं । वह असुर उनसे मानव-समाज के लिए हितकारी कोई भी वस्तु माँग सकता था, किन्तु अपने व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए उसने यह माँगा कि जिस किसी के सिर पर भी उसके हाथ का स्पर्श हो उसकी तत्काल मृत्यु हो जाय ।

शिवजी असुर के उद्देश्य को समझ सकते थे तथा उन्हें अत्यन्त खेद था कि उन्होंने असुर को उसका अभीप्सित वरदान देने का आश्वासन दिया था । वे अपने वचन को वापस नहीं ले सकते थे, किन्तु उन्हें अपने हृदय में इस बात का अत्यन्त दुख था कि वे मानव-समाज के लिए इतना संकटमय वरदान उसे देने वाले हैं । असुरों को दुष्कृतिन या दुष्कर्मी इसीलिए कहा गया है क्योंकि यद्यपि उनके पास बुद्धिबल तथा योग्यता होती है, तथापि वह बुद्धिबल तथा योग्यता निन्दनीय कार्यो के लिए प्रयोग की जाती है । उदाहरण के लिए, कभी-कभी भौतिकतावादी असुर किसी घातक अस्त्र की खोज करते हैं । ऐसी खोज के लिए आवश्यक वैज्ञानिक शोधकार्य के लिए निश्चय ही अच्छे मस्तिष्क की आवश्यकता होती है, किन्तु मानव-समाज के लिए उपयोगी किसी वस्तु की खोज करने के स्थान पर वे ऐसी वस्तु की खोज करते हैं, जिससे कि प्रत्येक मानव के लिए पहले से ही अवश्यम्भावी मृत्यु की गति में तीव्रता आ जाती है । इसी भाँति वृकासुर ने शिवजी से मानव-समाज के लिए लाभदायक किसी वस्तु

की माँग न करके मानव-समाज के लिए अत्यन्त संकटप्रद वस्तु की माँग की । अतएव शिवजी को अत्यन्त खेद का अनुभव हुआ । किन्तु श्रीभगवान् के भत भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण से कभी कोई वरदान नहीं माँगते हैं । यदि वे भगवान् से कुछ माँगते भी हैं, तो वह मानवसमाज के लिए तनिक भी हानिकारक नहीं होता है । असुरों तथा भक्तों में अथवा शिवजी के उपासकों तथा भगवान् के उपासकों में यही भेद है ।

जब श्रीशुकदेव गोस्वामी वृकासुर का इतिहास बता रहे थे तब उन्होंने महाराज परीक्षित को १/रत कह कर सम्बोधित किया । इससे राजा परीक्षित के द्वारा भक्तों के परिवार में जन्म लेने का संकेत मिलता है । माता के गर्भ में रहते समय राजा परीक्षित की रक्षा भगवान् श्रीकृष्ण ने की थी । इसी भाँति वे ब्राह्मण के शाप से अपनी रक्षा करने के लिए भी वे भगवान् श्रीकृष्ण से कह सकते थे, किन्तु उन्होंने ऐसा नहीं किया । किन्तु यह असुर अपने हाथ के स्पर्श से सबका वध करके अमर बनना चाहता था । शिवजी इस तथ्य को समझ सकते थे, किन्तु उन्होंने वचन दिया था, अतएव उन्होंने उसको वरदान दे दिया ।

किन्तु अत्यन्त पापी होने के कारण असुर ने तत्काल निश्चय किया कि वह वरदान का उपयोग शिवजी का वध करने के लिए करेगा तथा गौरी (पार्वती) को अपने भोग के लिए उठा ले जाएगा । उसने तत्काल अपना हाथ शिवजी के सिर पर रखने का निश्चय किया । इस प्रकार एक असुर को दिए गए वरदान के कारण शिवजी के लिए संकट उत्पन्न हो गया तथा उनकी स्थिति विषम हो गई । देवताओं से प्राप्त की गई शक्ति का भौतिकतावादी भक्तों के द्वारा दुरुपयोग का यह भी एक उदाहरण है ।

आगे कुछ विचार किए बिना शिवजी के सिर पर हाथ रखने के लिए वृकासुर शिवजी के समीप गया । शिवजी उससे इतने भयभीत हो गए कि उनका शरीर काँपने लगा तथा वे धरती से आकाश, आकाश से अन्य

ग्रहों में भागते रहे जब तक कि वे उच्चतर लोकों के ऊपर ब्रह्माण्ड की सीमा तक नहीं पहुँच गए । शिवजी एक स्थान से दूसरे स्थान को भागते रहे, किन्तु वृकासुर ने उनका पीछा नहीं छोड़ा । अन्य लोकों के अधिष्ठाता देवता, जैसे ब्रह्मा, इन्द्र तथा चन्द्र, भी आसन्न संकट से शिवजी की रक्षा का कोई उपाय न खोज सके । शिवजी जहाँ कहीं भी गए अन्य देवता चुप रहे ।

अन्त में शिवजी इस ब्रह्माण्ड में श्वेतद्वीप नामक लोक में स्थित भगवान् विष्णु के समीप गए । बहिरंगा शक्ति के प्रभाव-क्षेत्र से ऊपर श्वेतद्वीप स्थानीय वैकुण्ठ लोक है । अपने सर्वव्यापी रूप में भगवान् विष्णु सर्वत्र रहते हैं, किन्तु अपने साकार रूप में वे जहाँ कहीं-भी रहते हैं वहाँ वैकुण्ठ का वातावरण होता है । भगवद्गीता में कहा गया है कि भगवान् समस्त जीवों के हृदय में रहते हैं । इस भाँति भगवान् अनेक नीच कुल के जीवों के हृदय में रहते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि वे नीच कुल के हैं । वे जहाँ कहीं-भी रहते हैं वह स्थान वैकुण्ठ में परिवर्तित हो जाता है । इसीलिए इस ब्रह्माण्ड में श्वेतद्वीप नाम से विख्यात लोक भी वैकुण्ठ लोक है । शास्त्रों में कहा गया है कि वन में स्थित निवासस्थान सतोगुणी हैं, बड़े-बड़े नगरों, कस्बों में तथा ग्रामों में स्थित आवासगृह रजोगुणी हैं । अवैध काम, मदिरापान, मांस-भक्षण द्युतक्रीड़ा आदि चारों पापकर्मों में लिप्त रहने की जहाँ प्रधानता हो, ऐसे तमोगुणी हैं । किन्तु परमेश्वर या विष्णु के मन्दिर के आवासगृह वैकुण्ठ में हैं । मन्दिर स्वयं चाहे जहाँ भी हो, वैकुण्ठ होता है । इसी भाँति भौतिक क्षेत्र के अन्दर होने पर भी श्वेतद्वीप वैकुण्ठ है ।

अन्ततः शिवजी ने श्वेतद्वीप वैकुण्ठ में प्रवेश किया । श्वेतद्वीप में ऐसे महान् सन्त जन हैं, जो भौतिक जगत की ईष्यालु प्रकृति से पूर्णरूपेण मुक्त हो चुके हैं तथा जो धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष की भौतिक गतिविधियों के चारों सिद्धान्तों के अधिकार-क्षेत्र से ऊपर हैं । जो कोई उस वैकुण्ठ

लोक में प्रवेश करता है, वह पुन: इस भौतिक जगत में वापस नहीं आता है । भगवान् नारायण भक्तवत्सल के रूप में प्रसिद्ध हैं तथा जैसे ही उन्हें ज्ञात हुआ कि शिवजी भयंकर संकट में हैं, वे एक ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट हुए तथा स्वयं शिवजी का स्वागत करने के लिए एक दूरवर्ती स्थान से उनके समीप गए । कटि में करधनी, यज्ञोपवीत, मृगचर्म, ब्रह्मचारी के दण्ड तथा रुद्राक्ष माला के साथ भगवान् एक आदर्श ब्रह्मचारी के रूप में प्रकट हुए । रुद्राक्ष तुलसी के मनकों से भिन्न है । शिव भक्त रुद्र के मनकों का उपयोग करते हैं । ब्रह्मचारी वेशभूषा में शिवजी के समक्ष खड़े थे । उनके शरीर से निकलने वाली द्युतिमान् कान्ति ने न केवल शिवजी को अपितु वृकासुर को भी आकर्षित किया ।

भगवान् नारायण ने वृकासुर का ध्यान तथा सहानुभुति आकृष्ट करने के लिए उसे प्रणाम किया । इस प्रकार असुर को रोकने के उपरान्त उन्होंने उसे इस प्रकार से सम्बोधित किया, "प्रिय शकुनिपुत्र! तुम अत्यन्त क्लान्त प्रतीत होते हो, जैसे कि तुम अत्यन्त दूरवर्ती स्थान से आ रहे हो । तुम्हारा प्रयोजन क्या है? तुम इतने दूर क्यों आए हो? मैं देख रहा हूँ कि तुम अत्यन्त क्लान्त तथा थके हुए हो, अतएव मेरा तुमसे निवेदन है कि तुम विश्राम कर लो । तुम्हें अपने शरीर को अनावश्यक रूप से क्लान्त नहीं करना चाहिए । प्रत्येक व्यक्ति अपने शरीर को अत्यन्त मूल्यवान समझता है, क्योंकि इस शरीर से ही व्यक्ति अपने मन की समस्त इच्छाओं को पूर्ण कर सकता है । अतएव हमें इस शरीर को अनावश्यक कष्ट नहीं देना चाहिए ।"

ब्रह्मचारी ने वृकासुर को शकुनिपुत्र के रूप में सम्बोधित किया जिससे कि उसे यह विश्वास हो जाए कि ब्रह्मचारी का उसके पिता शकुनि से परिचय था । तब वृकासुर ने ब्रह्मचारी को अपने परिवार का परिचित मान लिया और इसीलिए ब्रह्मचारी के सहानुभूतिपूर्ण शब्द उसे भले लगे । इसके पूर्व कि असुर यह तर्क कर महत्व के विषय में बताना प्रारम्भ

कर दिया । इससे असुर को प्रतीति हो गई । कोई भी मानव, विशेष रूप से असुर अपने शरीर को अत्यन्त महत्वपूर्ण समझता है । इस प्रकार वृकासुर को अपने शरीर के महत्व के विषय में प्रतीति हो गई ।

तत्पश्चात् असुर को शान्त करने के लिए ब्रह्मचारी ने उससे कहा, "प्रिय भगवन्! यदि आप यह समझे कि आप अपना ध्येय मुझ पर प्रकट कर सकते हैं जिसके लिए आपने यहाँ आने का कष्ट किया है, तब हो सकता है कि मैं आपके प्रयोजन को सरलता से सिद्ध करने में आपकी सहायता कर सकूं ।" परोक्ष रूप से भगवान् ने उसे सूचित किया कि भगवान् परम ब्रह्म हैं, अतएव शिवजी द्वारा निर्मित विषम स्थिति को सुलझाने में वे निश्चय ही समर्थ होंगे ।

ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् नारायण के मधुर वचनों को सुन कर असुर को अत्यन्त शान्ति प्राप्त हुई और अन्ततः उसने शिवजी द्वारा प्रदत्त वरदान सम्बन्धी समस्त घटनाएँ भगवान् को सुनायीं । भगवान् ने असुर को उत्तर दिया, "मुझे इस बात का विश्वास नहीं होता है कि वास्तव में शिवजी ने तुम्हें ऐसा वरदान दिया है । जहाँ तक मुझे ज्ञात है, शिवजी की मानसिक दशा ठीक नहीं है । उन्होंने अपने श्वसुर दक्ष से झगड़ा किया था तथा उन्हें पिशाच बनने का शाप मिला है । इस प्रकार वे भूतपिशाचों के नायक बन गए हैं । अतएव उनके शब्दों में मुझे कोई विश्वास नहीं है । किन्तु यदि तुम्हें अभी भी शिवजी के शब्दों में विश्वास है, तब तुम अपने सिर पर हाथ रख कर प्रयोग करके क्यों नहीं देखते ? यदि वरदान असत्य सिद्ध होता है, तब तुम तत्काल मिथ्यावादी शिवजी का वध कर सकते हो जिससे कि भविष्य में उन्हें मिथ्या वरदान देने का साहस नहीं होगा ।"

इस रीति से भगवान् के मधुर शब्दों से तथा उनकी माया के प्रकाश से भ्रमित हो गया तथा उसे शिवजी की शक्ति तथा उनके वरदान का वास्तव में हो गया । इस प्रकार वह सरलता से अपना हाथ अपने सिर पर रखने को तत्पर हो गया । जैसे ही असुर ने वैसा किया कि उसका सिर

वैसे ही फट गया मानो वज़ का आघात हुआ हो और उसकी तत्काल मृत्यु हो गई । स्वर्ग से देवता उनके समस्त यशों की स्तुति करते हुए, धन्यवाद देते हुए भगवान् नारायण पर पुष्पवर्षा करने लगे । देवताओं ने भगवान् को प्रणाम किया । वृकासुर की मृत्यु पर उच्च लोकों के समस्त नागरिक, जैसे देवता, पितर, गन्धर्व तथा जनलोकवासी, श्रीभगवान् पर पुष्प वर्षा करने लगे ।

इस प्रकार ब्रह्मचारी के रूप में भगवान् विष्णु ने शिवजी को आसन्न संकट से मुक्त किया तथा स्थिति को सुधारा । तत्पश्चात् भगवान् नारायण ने शिवजी को सूचित किया कि अपने पापकर्मों के फलस्वरूप वृकासुर की मृत्यु हुई । वह अपने ही स्वामी शिवजी के ऊपर प्रयोग करना चाहता था इसलिए वह विशेष रूप से पापी तथा बुरा था । तत्पश्चात् भगवान् नारायण ने शिवजी से कहा, "प्रिय भगवन्! महाजनों के प्रति अपराध करने वाले का अस्तित्व समाप्त हो जाता है । वह अपने ही पापकर्मों द्वारा विनष्ट हो जाता है तथा यह तथ्य इस असुर के विषय में निश्चित रूप से सत्य है-जिसने आपके विरुद्ध इतना बड़ा अपराध किया है ।"

इस प्रकार समस्त भौतिक गुणों से परे भगवान् श्रीनारायण की कृपा से एक असुर द्वारा वध होने से शिवजी की रक्षा हुई । जो कोई भी श्रद्धा एवं भक्तिपूर्वक इसका श्रवण करता है, वह निश्चय ही शत्रुओं के पंजे से तथा भौतिक बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् शिव का उद्धार" नामक अट्ठासीवें अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 89
श्रीकृष्ण की परमश्रेष्ठ शक्ति

बहुत काल पूर्व सरस्वती नदी के तट पर महर्षियों की सभा हुई तथा उन्होंने उपस्थित महर्षि वैदिक विषयवस्तु तथा दार्शनिक विषयों पर विचार-विमर्श करते हैं । इस सभा में निम्नांकित प्रश्न उठाए गए-इस भौतिक जगत के ब्रह्मा, विष्णु, शिव नामक तीन प्रमुख देवता संसार के समस्त प्रपंचों का निर्देशन कर रहे हैं, किन्तु उनमें से सर्वोच्च कौन है? इस प्रश्न पर अत्यधिक वादविवाद के उपरान्त ब्रह्माजी के पुत्र महर्षि भृगु को तीनों प्रमुख देवों की परीक्षा लेने के लिए नियुक्त किया गया । परीक्षा के उपरान्त उन्हें सभा को यह बताना था कि कौन देवता महानतम है ।

इस प्रकार नियुक्त किए जाने पर महर्षि भृगु मुनि सर्वप्रथम अपने पिता के घर ब्रह्मलोक में गए । तीनों देवता भौतिक त्रिगुणों सत, रजम तथा तम के स्वामी हैं । ऋषियों की योजना थी कि भृगु मुनि यह परीक्षा लेंगे कि किस प्रमुख देवता में सतीगुण पूर्ण रूप से है । अतएव जब भृगु मुनि अपने पिता ब्रह्माजी के समीप पहुँचे तब जानबूझ कर उन्होंने प्रणाम करके अथवा स्तुति द्वारा अपने पिता के प्रति आदर प्रदर्शित नहीं किया । ब्रह्माजी के पास सतोगुण है या नहीं यह परीक्षा लेने के लिए उन्होंने न तो अपने पिता को प्रणाम किया, न ही उनकी स्तुति की । एक पुत्र अथवा शिष्य का यह कर्तव्य है कि जब वह अपने पिता अथवा गुरु के समीप जाए तब प्रणाम करे तथा स्तुति पाठ करे । किन्तु भृगु मुनि ने जानबूझकर प्रणाम नहीं किया, क्योंकि वे इस उपेक्षा पर ब्रह्माजी की प्रतिक्रिया देखना चाहते थे । अपने पुत्र की उद्दण्डता पर ब्रह्माजी अत्यन्त कुद्ध हुए तथा उनके मुख पर उनके क्रोध को प्रदर्शित करने वाले चिह्न प्रकट हो आये । वे शाप देकर भृगु मुनि को दण्डित करने के लिए भी उद्यत थे, किन्तु

भृगु मुनि उनके पुत्र थे, अतएव ब्रह्माजी ने अपनी महती बुद्धि से अपने क्रोध पर संयम रखा । इसका अर्थ यह है कि यद्यपि ब्रह्माजी में रजोगुण की प्रधानता थी तथापि उनके पास इस पर संयम करने की शक्ति थी । ब्रह्माजी का क्रोध तथा उनके क्रोध पर संयम की तुलना अग्नि तथा जल से की गई है । जल की उत्पत्ति अग्नि से होती है, किन्तु साथ ही साथ जल अग्नि को बुझा भी सकता है । इसी के समान यद्यपि अपने रजोगुण के कारण ब्रह्माजी अत्यन्त क्रोधित थे, तथापि भृगु मुनि उनके पुत्र थे, अतएव वे अब भी अपनी भावना पर संयम कर सकते थे ।

ब्रह्माजी की परीक्षा लेने के उपरान्त भृगुमुनि शिवजी के निवासस्थान कैलाश लोक गए । भृगुमुनि शिवजी के भ्राता थे । अतएव जैसे ही भृगुमुनि समीप आए शिवजी अत्यन्त प्रसन्न हो गए तथा उनका आलिंगन करने के लिए स्वयं उठ गए । किन्तु जब शिवजी समीप आए तब भृगुमुनि ने उनका आलिंगन करना अस्वीकार कर दिया । उन्होंने कहा "प्रिय भाई! तुम सदैव अशुद्ध रहते हो । तुम अपने शरीर पर भस्म लगाए रहते हो, अतएव तुम स्वच्छ नहीं हो । तुम मेरा स्पर्श मत करो ।" जब यह कह कर कि शिवजी अत्यन्त अशुद्ध हैं, भृगुमुनि ने उनको आलिंगन करना अस्वीकार कर दिया, तब शिवजी उनसे अत्यन्त कुपित हो गए । कहा जाता है कि अपराध मन, शरीर अथवा वाणी से किया जा सकता है । ब्रह्माजी के प्रति किया गया भृगुमुनि का प्रथम अपराध मन से किया गया था । शिवजी का अपमान करने तथा अस्वच्छ आदतों के लिए उनकी आलोचना करने के द्वारा शिवजी के प्रति किया गया यह दूसरा अपराध वाणी से किया गया था । शिवजी में तमोगुण की प्रधानता है, अतएव जब उन्होंने भृगुमुनि के कटुवचन सुने तब क्रोध से उनके नेत्र तत्काल लाल हो गए । आपे से बाहर होकर उन्होंने अपना त्रिशूल उठा लिया तथा वे भृगुमुनि को मारने के लिए तत्पर हो गए । उस समय शिवजी की पत्नी पार्वतीजी वहाँ उपस्थित थीं । उनका व्यक्तित्व तीनों गुणों का सम्मिश्रण है, अतएव उन्हें

त्रिगुणमयी कहा जाता है । इस मामले में उन्होंने शिवजी के सतीगुण को जाग्रत करके परिस्थिति को सुधार लिया । वे अपने पतिदेव के चरणों पर गिर पड़ीं तथा उन्होंने अपने मधुर वचनों से शिवजी को भृगुमुनि का वध करने से विमुख कर दिया । शिवजी के क्रोध से रक्षा हो जाने के उपरान्त भृगुमुनि सीधे श्वेतद्वीप लोक गए जहाँ भगवान् विष्णु एक पुष्पशैया पर लेटे हुए थे । उनकी पत्नी श्रीदेवी उनके समीप थीं तथा वे भगवान् के चरणकमलों को सहला रही थीं । वहाँ पर भृगुमुनि ने जानबूझ कर भगवान् विष्णु को अपनी शारीरिक क्रिया द्वारा अप्रसन्न करने का सबसे बड़ा पाप किया । भृगुमुनि द्वारा किया गया प्रथम अपराध मानसिक था, दूसरा अपराध वाणी का था तथा तीसरा अपराध शारीरिक था । ये विभिन्न अपराध एक के बाद एक गुरुतर होते गए । मन के अन्दर किया गया अपराध सीधा अपराध है । वही अपराध जब वाणी द्वारा किया जाए को वह गुरुतर है और जब इसे शारीरिक क्रिया के द्वारा किया जाए तब वह गुरुतम अपराध है । अतएव भृगुमुनि ने श्रीदेवी की उपस्थिति में भगवान् की छाती पर अपना पैर स्पर्श कराकर गुरुतम अपराध किया । भगवान् विष्णु सर्वदा दयालु हैं । वे भृगुमुनि की गतिविधियों पर कुद्ध नहीं हुए, क्योंकि भृगुमुनि एक महान् ब्राह्मण थे । यदि एक ब्राह्मण कभी अपराध कर भी दे, तो उसे क्षमा तक देना चाहिए तथा भगवान् ने इसका उदाहरण स्थापित किया । फिर भी कहा जाता है कि इस घटना के पश्चात् से श्रीदेवी लक्ष्मी ब्राह्मणों के प्रति अधिक अनुग्रह का भाव नहीं रखती हैं । श्रीदेवी उन्हें अपने वरदान से वंचित रखती हैं, इसीलिए साधारणतया ब्राह्मण निर्धन होते हैं । भृगुमुनि द्वारा पैर से भगवान् की छाती का स्पर्श करना एक भारी अपराध था, किन्तु भगवान् विष्णु इतने महान् हैं कि उन्होंने इस बात की चिन्ता नहीं की । कलियुग के तथाकथित ब्राह्मण कभी-कभी अत्यधिक गर्व करते हैं कि वे भगवान् विष्णु के वक्ष को अपने चरणों से स्पर्श कर सकते हैं । किन्तु जब भृगुमुनि ने अपने चरणों से भगवान् विष्णु के वक्ष का स्पर्श किया था, तब बात भिन्न थी । यद्यपि यह गुरुतम अपराध

था, किन्तु अत्यधिक उदार होने के कारण भगवान् विष्णु ने इसे गम्भीरता से नहीं लिया ।

भूगुमुनि को शाप देने अथवा कुद्ध होने के स्थान पर, अपनी पत्नी श्रीदेवी सहित भगवान् विष्णु तत्काल अपनी शैया पर से उठ गए तथा ब्राह्मण को सादर प्रणाम किया । उन्होंने भृगुमुनि को इस प्रकार सम्बोधित किया, "प्रिय ब्राह्मणदेव! आपका यहाँ आना मेरे लिए एक महान् आशीर्वाद है । अतएव आप कृपया इस गद्दी पर कुछ पलों के लिए आसन ग्रहण करें । हे ब्राह्मणदेव! मुझे इस बात का अत्यन्त खेद है कि जब आपने प्रवेश किया तब मैं आपका उचित स्वागत नहीं कर सका । यह मेरा एक महान् अपराध था । मेरी आपसे विनती है कि मुझे क्षमा करें । आप इतने निर्मल तथा महान् हैं कि आपका चरणोदक तीर्थ स्थानों को भी निर्मल करने वाला है । आप उस स्थान को भी पवित्र कीजिये जहाँ मैं अपने पार्षदों सहित निवास करता हूँ । हे पिता! हे महर्षि! मुझे ज्ञात है कि आपके चरणकमल पुष्प की भाँति कोमल हैं तथा मेरी छाती वज़्र के समान कठोर है । अतएव मुझे भय है कि मेरे वक्ष को अपने चरणों से स्पर्श करने में आपको कुछ कष्ट का अनुभव हुआ होगा । अतएव आपको जो कष्ट हुआ उसे दूर करने के लिए मुझे अपने चरणों का स्पर्श करने दीजिए ।" तत्पश्चात् भगवान् विष्णु भूगुमुनि के चरण सहलाने लगे ।

भगवान् ने भृगुमुनि को आगे सम्बोधित किया, "प्रिय भगवन्! आपके चरणों के स्पर्श से मेरा वक्ष पावन को गया है तथा मुझे विश्वास है कि अब श्रीदेवी लक्ष्मी वहाँ अत्यन्त प्रसन्नतापूर्वक निरन्तर निवास करेंगी ।" लक्ष्मीजी का एक अन्य नाम चंचला है । वे एक स्थान पर अधिक समय तक नहीं रहती हैं । अतएव हम पाते हैं कि कुछ पीढ़ियों के उपरान्त एक धनी व्यक्ति का परिवार कभी-कभी निर्धन बन जाता है तथा कभी-कभी हम देखते हैं कि एक निर्धन व्यक्ति का परिवार अत्यन्त धनी बन जाता है । इस भौतिक जगत में श्रीदेवी लक्ष्मी चंचला हैं, जबकि वैकुण्ठ लोक में

वे नित्य भगवान् के चरणकमलों में निवास करती हैं । भगवान् नारायण ने संकेत दिया कि हो सकता है कि लक्ष्मीजी चंचला के नाम से उनके समीप निवास न करतीं, किन्तु भृगुमुनि के चरणों का स्पर्श हो जाने से अब उनका वक्ष पावन हो गया था तथा श्रीदेवी के लिए उनके पास से जाने का कोई अवसर नहीं था । किन्तु भृगुमुनि अपनी स्थिति तथा भगवान् की स्थिति को समझ सकते थे तथा वे श्रीभगवान् के व्यवहार पर आश्चर्यचकित रह गए । अपनी कृतघ्नता के कारण उनकी वाणी अवरुद्ध हो गई तथा वे भगवान् के शब्दों का उत्तर देने में सफल न हुए । उनके नेत्रों से अश्रु प्रवाहित होने लगे तथा वे कुछ न कह सके । वे चुपचाप भगवान् के समक्ष केवल खड़े रहे ।

ब्रह्माजी, शिवजी तथा भगवान् विष्णु की परीक्षा लेने के उपरान्त भृगुमुनि सरस्वती नदी के तट पर महर्षियों की सभा में लौट आए तथा उन्होंने अपने अनुभव का वर्णन किया कि छोटा दीपक थोड़ी सी वायु से विचलित हो जाता है, किन्तु महान् दीपक अथवा प्रकाश का महानतम स्रोत सूर्य बड़े से बड़े झंझावात से भी कभी नहीं हिलता है । उत्तेजित करने वाली परिस्थितियों को सहन कर सकने की किसी की क्षमता के द्वारा ही व्यक्ति की महानता का आकलन करना चाहिए । सरस्वती नदी के तट पर एकत्र ऋषियों ने यह निष्कर्ष निकाला कि यदि किसी को वास्तविक शान्ति तथा समस्त भयों से मुक्ति चाहिए, तो उसे भगवान् विष्णु के चरणकमलों की शरण लेनी चाहिए । यदि किंचित् उत्तेजित किए जाने पर ब्रह्माजी तथा शिवजी ने अपनी शान्तिपूर्ण प्रवृत्ति खो दी, तब वे अपने भक्तों की शान्ति को किस प्रकार बनाए रख सकते हैं? जहाँ तक भगवान् विष्णु का प्रश्न है, भगवद्गीता में कहा गया है कि जो कोई भी भगवान् विष्णु अथवा श्रीकृष्ण को परम सखा के रूप में स्वीकार करता है, वह शान्तिपूर्वक जीवन की सर्वोच्च पूर्णता को प्राप्त करता है ।

इस प्रकार ऋषियों ने निष्कर्ष निकाला कि वैष्णव धर्म के सिद्धान्तों का अनुसरण करके व्यक्ति वास्तव में पूर्ण बन जाता है । किन्तु यदि कोई व्यक्ति किसी सम्प्रदाय विशेष के समस्त धार्मिक सिद्धान्तों का पालन करता है तथा भगवान् श्रीविष्णु को समझने में प्रगति नहीं करता है, तब उसके प्रेम का यह समस्त परिश्रम निष्फल हो जाता है । धार्मिक सिद्धान्तों के सम्पादन का अर्थ है पूर्ण ज्ञान के स्तर पर पहुँचना । यदि कोई पूर्ण ज्ञान के स्तर पर पहुँच जाता है, तब भौतिक प्रपंचों के प्रति उसकी रुचि नहीं रह जाती । पूर्ण ज्ञान का अर्थ आत्मज्ञान तथा परमात्मा का ज्ञान है । यद्यपि परमात्मा तथा जीवात्मा गुणवत्ता में समान हैं, तथापि वे परिमाण में भिन्न हैं । ज्ञान की यह विवेचनात्मक समझ पूर्ण है । केवल यह समझना कि, "मैं पदार्थ नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ," पूर्ण ज्ञान नहीं है । सच्चा धार्मिक सिद्धान्त भक्ति है । इसकी पुष्टि भगवद्गीता में की गई है । भगवान् श्रीकृष्ण कहते हैं, 'समस्त धार्मिक सिद्धान्तों को त्याग कर केवल मेरी शरण में आओ ।" अतएव धर्म शब्द केवल वैष्णव-धर्म अथवा भगवद्धर्म के लिए प्रयुक्त होता है । इस धर्म का अनुसरण करके समस्त अन्य सद्गुण तथा जीवन में प्रगति अनायास ही प्राप्त हो जाती है ।

ज्ञान परमेश्वर को जानना है । उन्हें भक्ति के अतिरिक्त धर्म की किसी अन्य प्रणाली के द्वारा नहीं समझा जा सकता है । अतएव भक्ति के सम्पादन के द्वारा पूर्ण ज्ञान का तात्कालिक फल प्राप्त किया जाता है । ज्ञान प्राप्ति के उपरान्त व्यक्ति की भौतिक जगत में रुचि समाप्त हो जाती है । शुष्क दार्शनिक चिन्तन के कारण ऐसा नहीं होता है । भक्तों की भौतिक जगत में अरुचि केवल सैद्धान्तिक समझ के कारण ही नहीं होती है, अपितु उसके व्यावहारिक अनुभव के कारण होती है । जब एक भक्त को परमेश्वर से अपने सम्बन्ध के परिणाम का बोध होता है, तब वह स्वाभाविक रूप से तथाकथित समाज, मैत्री तथा प्रेम के सम्बन्धों से घृणा करने लगता है । यह निस्संगता अथवा पृथक्त्व शुष्क नहीं है, अपितु दिव्य

आनन्द के रसास्वादन के द्वारा जीवन के उच्च स्तर को प्राप्त कर लेने के कारण है । श्रीमद//वत में आगे कहा गया है कि ऐसे ज्ञान तथा इन्द्रियतृप्ति के प्रति निर्मोह की प्राप्ति के उपरान्त योगियों को प्राप्त होने वाली आठों सिद्धियाँ-अणिमा, लघिमा, प्राप्तिआदि भी व्यक्ति को अलग से कोई प्रयास किए बिना ही प्राप्त हो जाती हैं । इसका आदर्श उदाहरण राजा अम्बरीष हैं । महाराज अम्बरीष योगी नहीं थे, अपितु एक महान् भक्त थे, फिर भी महाराज अम्बरीष से विवाद होने पर उनकी भक्तिपूर्ण प्रवृत्ति के सामने महायोगी दुर्वासा पराजित हो गए थे । दूसरे शब्दों में, भक्त को शक्ति प्राप्त करने के लिए योग-साधना की आवश्यकता नहीं होती है । भगवान् की कृपा से शक्ति उनके पीछे होती है, जैसे जब एक बालक बलशाली पिता की शरण में होता है, तब पिता की समस्त शक्तियाँ बालक के पीछे होती हैं ।

जब कोई व्यक्ति भगवान् के एक भक्त के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है, तब उसकी कीर्ति कभी समाप्त नहीं होती है । रामानन्द राय से सम्भाषण करते समय भगवान् श्री चैतन्य ने प्रश्न किया, "सर्वश्रेष्ठ कीर्ति क्या है?" रामानन्द राय ने उत्तर दिया कि भगवान् श्रीकृष्ण के एक शुद्ध भक्त के रूप में विख्यात होना ही आदर्श कीर्ति है । अतएव यह निष्कर्ष निकलता है कि वैष्णव धर्म अथवा श्रीभगवान् के प्रति भक्ति का धर्म विचारवान् व्यक्तियों के लिए है । विचारशक्ति के उचित उपयोग के द्वारा व्यक्ति श्रीभगवान् के चिन्तन तक पहुँच जाता है । श्रीभगवान् के विषय में चिन्तन करने से व्यक्ति भौतिक जगत के साथ दोषपूर्ण सम्बन्ध के दूषण से मुक्त हो जाता है । इस प्रकार व्यक्ति को शान्ति प्राप्त हो जाती है । मानव समाज में ऐसे शान्त भक्तों की कमी के कारण ही जगत ऐसी विक्षुब्ध अवस्था में है । जब तक व्यक्ति भत न हो वह समस्त जीवों में समभाव नहीं रख सकता है । एक भक्त पशुओं, मानवों तथा समस्त जीवों के प्रति समभाव रखता है, क्योंकि वह प्रत्येक जीव को परमेश्वर के अंश

के रूप में देखता है । ईशोपनिषद् में यह स्पष्ट रूप से कहा गया है कि जो प्रत्येक जीव को समदृष्टि से देखने के स्तर पर पहुँच गया है, वह न किसी से घृणा करता है, न ही किसी का पक्ष लेता है । भक्त को अपनी आवश्यकता से अधिक प्राप्ति करने की लालसा नहीं होती है । अतएव भक्त अकिञ्चन होता है, भक्त जीवन की किसी भी दशा में सन्तुष्ट रहता है । कहा जाता है कि चाहे वह स्वर्ग में हो या नरक में, भक्त का मन निरुद्वेलित रहता है । भक्त अपनी प्रेमानुगाभक्ति के अतिरिक्त अन्य सभी विषयों के प्रति उदासीन रहता है । भक्ति में यह संलग्नता आदर्श स्थिति है, जहाँ से व्यक्ति ऊपर उठ कर आध्यात्मिक जगत में, अपने घर, भगवान् के धाम, जा सकता है । श्रीभगवान् के भक्त सर्वोच्च भौतिक गुण, सतीगुण द्वारा विशेष रूप से आकर्षित होते हैं तथा योग्य ब्राह्मण इस सतीगुण का लाक्षणिक प्रतिनिधि है । अतएव एक भक्त को जीवन की ब्राह्मणत्व स्थिति से मोह होता है । यद्यपि रजोगुण तथा तमोगुण भी परमेश्वर विष्णु से ही निकलते हैं, तथापि भक्त की इनमें अधिक रुचि नहीं होती है । श्रीमद्भागवत में भक्तों को निपुणबुद्धय, कहा गया है, जिसका अर्थ है कि वे मनुष्यों के सर्वाधिक बुद्धिमान वर्ग हैं । मोह तथा घृणा से अप्रभावित भक्त अत्यन्त शान्तिपूर्वक जीवन-यापन करता है तथा वह रजोगुण के प्रभाव से विचलित नहीं होता है ।

यहाँ पर यह प्रश्न किया जा सकता है कि यदि वह समस्त भौतिक गुणों से ऊपर है, तो भक्त को सतीगुण के प्रति मोह क्यों होना चाहिए? उत्तर यह है कि भौतिक प्रकृति के गुणों में अस्तित्व वाले विभिन्न प्रकार के लोग इस जगत में हैं । जो तमोगुणप्रधान हैं उन्हें राक्षस कहा जाता है, जो रजोगुणप्रधान हैं उन्हें असुर कहा जाता है तथा जो सतीगुणप्रधान हैं उन्हें सुर अथवा देवता कहा जाता है । परमेश्वर के निर्देशन में भौतिक प्रकृति के द्वारा मानवों के इन तीनों वर्गों की रचना हुई है, किन्तु जो

सतीगुणप्रधान हैं उनके आध्यात्मिक लोक, अपने घर, भगवान् के धाम वापस लौटने की अधिक सम्भावना है ।

इस प्रकार सर्वोत्कृष्ट प्रमुख देव कौन हैं, यह निश्चय करने के लिए सरस्वती नदी के तट पर एकत्र समस्त ऋषि भगवान् विष्णु के पूजा-विषयक समस्त सन्देहों से मुक्त हो गए । उसके पश्चात् वे सब भक्ति में संलग्न हो गये और इस प्रकार उन्होंने अपना अभीप्सित फल प्राप्त किया तथा भगवान् के धाम लौट गए ।

भौतिक बन्धानों से मुक्त होना चाहते हैं, उनके लिए श्रेयस्कर होगा कि वे श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा ही श्रीमद्रा/वत के प्रारम्भ में दिए गए निष्कर्ष को तुरन्त स्वीकार कर लें । उसमें कहा गया है कि श्रीमद्भागवत का श्रवण मोक्षप्राप्ति में अत्यधिक सहायक है, क्योंकि इसका कथन श्रीशुकदेव गोस्वामी ने किया है । सूत गोस्वामी ने भी पुन: इसी तथ्य की पुष्टि की है कि यदि इस भौतिक जगत में निरुद्देश्य यात्रा करने वाला कोई भी प्राणी श्रीशुकदेव गोस्वामी के अमृतमय वचनों का श्रवण करता है, तब वह निश्चित ही उचित निष्कर्ष पर पहुँच जाएगा । केवल श्रीभगवान् की भक्ति के सम्पादन के द्वारा वह एक भौतिक शरीर से दूसरे में निरन्तर देहान्तरण के श्रम को रोकने में समर्थ होगा । दूसरे शब्दों में, उचित श्रवण के द्वारा व्यक्ति विष्णु की प्रेमा-भक्ति में दृढ़चित हो जाएगा । वह जीवन की इस भौतिक यात्रा से छुटकारा पाने में निश्चित रूप से सफल होगा । इसकी प्रक्रिया अत्यन्त सरल है । इसके लिए व्यक्ति को केवल श्रीमद्भागवत के रूप में कथित श्रीशुकदेव गोस्वामी के मधुर शब्दों का श्रवण करना होगा ।

दूसरा निष्कर्ष यह है कि हमें शिवजी तथा ब्रह्माजी जैसे देवताओं को भी भगवान् विष्णु के बराबर के स्तर का नहीं मानना चाहिए । यदि हम ऐसा करते हैं तब पद्मपुराण के अनुसार हम तत्काल ही नास्तिक बन जाते हैं । हरिवंश नामक वैदिक ग्रन्थ में यह भी कहा गया है, कि केवल

भगवान् श्रीविष्णु की ही उपासना करनी चाहिए । हरेकृष्ण महामंत्र अथवा ऐसे ही किसी विष्णुमंत्र का सदैव जप करना चाहिए । श्रीमद्भागवत के द्वितीय श्लोक में ब्रह्माजी कहते हैं, "श्रीभगवान् ने मुझे तथा शिवजी दोनों को अपने निर्देशन में कार्य करने के लिए नियुक्त किया है ।" श्री चैतन्यचरितामृत में यह भी कहा गया है कि एकमात्र स्वामी श्रीकृष्ण हैं तथा जीवन की समस्त श्रेणियों में प्रत्येक जीव श्रीकृष्ण का सेवक मात्र हैं ।

श्रीभगवद्गीता में भगवान् ने इस बात की पुष्टि की है कि श्रीकृष्ण से श्रेष्ठ कोई सत्य नहीं है । समस्त विष्णु-तत्वों में भगवान् श्रीकृष्ण शत-प्रतिशत श्रीभगवान् हैं, इस तथ्य की ओर ध्यान आकर्षित करने के लिए श्रीशुकदेव गोस्वामी ने भी भगवान् श्रीकृष्ण की उपस्थिति में घटी एक घटना सुनाई ।

किसी समय एक ब्राह्मण की पत्नी ने एक शिशु को जन्म दिया । किन्तु दुर्भाग्यवश जन्म के उपरान्त धरती का स्पर्श होते ही शिशु की मृत्यु हो गई । ब्राह्मण पिता मृत शिशु को ले कर सीधे द्वारका के राजमहल में गया । युवा माता-पिता की उपस्थिति में शिशु की अकाल मृत्यु के कारण ब्राह्मण अत्यन्त दुखी था । इस प्रकार उसका मन अत्यन्त उद्विग्न हो गया था । पूर्वकाल में, द्वापर युग तक, जब भगवान् श्रीकृष्ण उपस्थित थे उत्तरदायित्वपूर्ण राजा हुआ करते थे । तब माता-पिता की उपस्थिति में शिशु की अकाल मृत्यु का दोष राजा पर लगाया जाता था । इसी भाँति भगवान् रामचन्द्र के काल में भी ऐसा उत्तरदायित्व होता था । जैसाकि हमने श्रीमद्भागवत के प्रथम स्कन्ध में स्पष्ट किया है, राजा नागरिकों के सुख के प्रति इतना उत्तरदायी होता था कि उसे यह भी देखना पड़ता था कि अधिक शीत अथवा गर्मी न हो । यद्यपि राजा का कोई दोष नहीं था, तथापि जिस ब्राह्मण के शिशु की मृत्यु हो गई थी, वह राजद्वार पर गया तथा निम्न प्रकार से राजा पर दोषारोपण करने लगा ।

"वर्तमान राजा, उग्रसेन ब्राह्मण-द्वेषी है ।" इस सम्बन्ध में प्रयुक्त शब्द ब्रह्मद्विष था । जो व्यक्ति वेदों के प्रति अथवा योग्य ब्राह्मण जाति के प्रति द्वेष रखता है उसे ब्रह्म-द्विष कहते हैं । अतएव राजा पर ब्रह्म-द्विष होने का दोष लगाया गया । उन पर शठधी अथवा दुर्बुद्धि होने का आरोप भी लगाया गया । राज्य का प्रशासक अत्यन्त बुद्धिमान होना चाहिए जिससे कि वह नागरिकों की सुविधा का ध्यान रख सके । किन्तु ब्राह्मण के अनुसार यद्यपि राजा राजसिंहासन पर आसीन था, तथापि वह निर्बुद्धि था । अतएव ब्राह्मण ने उसे लुब्ध अर्थात् लालची भी कहा । दूसरे शब्दों में, यदि कोई राजा अथवा प्रशासक लोभी तथा स्वार्थी हो, तो उसे राजा अथवा सम्राट के श्रेष्ठ पद पर आसीन नहीं होना चाहिए । किन्तु यदि कोई राजा भौतिक सुखों के प्रति मोह रखता है, तो स्वाभाविक है कि वह स्वार्थी बन जाता है । अतएव यहाँ एक अन्य शब्द विषयात्मन: का प्रयोग किया गया है ।

ब्राह्मण ने राजा पर क्षत्र-बन्धु होने का भी आरोप लगाया । यह शब्द ऐसे व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है, जो क्षत्रिय परिवार में अथवा राज-परिवार में उत्पन्न हो, किन्तु राजकीय व्यक्तित्व के गुणों से रहित हो । राजा का कर्तव्य है कि वह ब्राह्मण संस्कृति की रक्षा करे तथा नागरिकों के कल्याण के प्रति अत्यन्त सतर्क रहे । भौतिक सुखों के प्रति मोह के कारण उसे लोभी नहीं होना चाहिए । यदि एक गुणहीन व्यक्ति स्वयं को राजवंशी क्षत्रिय के रूप में प्रस्तुत करता है, तब उसे क्षत्रिय न कह कर क्षत्र-बन्धु कहा जाता है । इसी के समान ब्राह्मण पिता से उत्पन्न, किन्तु ब्राह्मणोचित गुणों से रहित व्यक्ति को ब्रह्म-बन्धु अथवा द्विज-बन्धु कहते हैं । इसका अर्थ है कि केवल जन्म के कारण किसी को ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय स्वीकार नहीं किया जाता है । व्यक्ति को उस पद-विशेष के लिए योग्यता अर्जित करनी होती है, तभी उसे ब्राह्मण अथवा क्षत्रिय के रूप में स्वीकार किया जाता है ।

इस प्रकार उस ब्राह्मण ने राजा पर आरोप लगाया कि राजा की अयोग्यता के कारण उसके नवजात शिशु की मृत्यु हो गई । ब्राह्मण ने इस बात को अत्यन्त अस्वाभाविक रूप से लिया और इसी कारण उसने राजा को उत्तरदायी ठहराया । वैदिक इतिहास में हमें यह भी दिखता है कि यदि कोई राजा उत्तरदायित्वहीन होता था, तो कभी-कभी राजाओं द्वारा स्थापित ब्राह्मणों की परमर्शदायिनी परिषद् उसे राजगद्दी से उतार देती थी । इन सब बातों पर विचार करने से प्रतीत होता है कि वैदिक सभ्यता में राजा का पद अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण था ।

अतएव ब्राह्मण ने कहा, "किसी को भी द्वेष करने वाले राजा को प्रणाम नहीं करना चाहिए, न ही किसी को उस राजा की उपासना करनी चाहिए । ऐसा राजा या तो वन में पशुओं का आखेट तथा वध करने में अथवा अपराधपूर्ण कार्यों के लिए नागरिकों का वध करने में अपना समय व्यतीत करता है । वह असंयमी तथा दुश्चरित्र होता है । यदि नागरिक ऐसे राजा की उपासना व आदर करेंगे, तो नागरिक कभी भी सुखी नहीं होंगे । वे सदैव ही निर्धन, उद्विग्न तथा शोकाकुल रहेंगे तथा सदैव दुखी रहेंगे । यद्यपि आधुनिक राजनीति में राजा का पद समाप्त कर दिया गया है, तथापि नागरिकों की सुख-सुविधा के लिए राष्ट्रपति को उत्तरदायी नहीं माना जाता है । इस कलियुग में राज्य का प्रशासक किसी न किसी प्रकार मत प्राप्त कर के श्रेष्ठ पद के लिए चुन लिया जाता है, किन्तु नागरिकों की दशा चिन्ता, शोक, दुख तथा असंतोष से पूर्ण ही रहती है ।

ब्राह्मण के द्वितीय तथा तृतीय शिशु भी मृत उत्पन्न हुए । उसके नौ सन्तानें हुई तथा प्रत्येक मृत उत्पन्न हुई । प्रत्येक बार वह राजा को दोष देने राजमहल के द्वार पर आया । जब नौवीं बार ब्राह्मण द्वारका के राजा को दोष देने आया तब श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन भी उपस्थित थे । यह सुनकर कि वह ब्राह्मण राजा पर उसकी उचित प्रकार से रक्षा न किये जाने का दोषारोपण कर रहा है, अर्जुन को जिज्ञासा उत्पन्न हुई तथा वे

ब्राह्मण के समीप गए । उन्होंने कहा, "प्रिय ब्राह्मण! आप ऐसा क्यों कहते हैं कि आपके देश के नागरिकों की रक्षा करने के लिए कोई योग्य क्षत्रिय नहीं है? क्या कोई ऐसा भी नहीं है, जो क्षत्रिय होने का दिखावा कर सके, जो रक्षा का प्रदर्शन करने के लिए धनुष बाण उठा सके? तथा क्या आपके विचार में इस देश के समस्त राजपुरुष ब्राह्मणों के साथ केवल यज्ञ करने में संलग्न रहते हैं और उनमें शूरवीरों का शौर्य नहीं है?" इस प्रकार अर्जुन ने संकेत दिया कि क्षत्रियों को सुखपूर्वक बैठ कर केवल वैदिक संस्कारों का सम्पादन-मात्र करने में संलग्न नहीं होना चाहिए । इसके विपरीत उन्हें नागरिकों की रक्षा के हेतु अत्यन्त शूरवीर होना चाहिए । आध्यात्मिक गतिविधियों में संलग्न होने के कारण ब्राह्मणों से शारीरिक श्रम वाले कार्यों को करने की अपेक्षा नहीं की जाती है । अतएव क्षत्रियों द्वारा उनकी रक्षा करना आवश्यक होता है, जिससे कि उनके अपने उच्चकोटि के कर्तव्यों के पालन में व्यवधान न हो ।

अर्जुन ने आगे कहा, "यदि ब्राह्मणों को अपनी पत्नियों तथा सन्तानों से अवांछित वियोग का अनुभव होता है तथा क्षत्रिय राजा उनकी देखभाल नहीं करते हैं, तब ऐसे क्षत्रिय को रंगमच के अभिनेता से अधिक और कुछ नहीं समझना चाहिए । नाटयगृह में नाटक करते हुए कोई अभिनेता राजा का अभिनय कर सकता है, किन्तु ऐसे काल्पनिक राजा से कोई भी किसी लाभ की आशा नहीं करता है । इसी भाँति यदि कोई राजा अथवा राज्य का प्रशासक सामाजिक ढाँचे के प्रमुख (ब्राह्मणों) को सुरक्षा प्रदान नहीं करता है, तब उसे केवल एक वंचक समझना चाहिए । राज्य प्रमुख के श्रेष्ठ पदों पर आसीन रहते हुए ऐसे प्रशासन प्रमुख केवल अपनी जीविका के लिए जीवित रहते हैं । प्रिय देव! मैं वचन देता हूँ कि आपकी सन्तानों की रक्षा मैं करूंगा तथा यदि मैं ऐसा न कर सका, तो मैं प्रज्वलित अग्नि में प्रवेश करूंगा, जिससे कि मुझे दूषित करने वाले पापों का निराकरण हो जाएगा ।"

अर्जुन को इस प्रकार कहते हुए सुन कर, ब्राह्मण ने उत्तर दिया, "प्रिय अर्जुन! भगवान् श्रीबलराम उपस्थित हैं, किन्तु वे मेरी सन्तानों को सुरक्षा प्रदान न कर सके । भगवान् श्रीकृष्ण भी उपस्थित हैं, किन्तु वे भी उनकी रक्षा न कर सके । अन्य वीर धनुर्धर, जैसे प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध, भी हैं, किन्तु वे मेरी सन्तान की रक्षा न कर सके ।" ब्राह्मण ने सीधा संकेत किया कि जो बात श्रीभगवान् के लिए भी असम्भव थी उसे अर्जुन नहीं कर सकते थे । उसे अनुभव हुआ कि अर्जुन अपनी शक्ति से बाहर की बात का वचन दे रहे थे । ब्राह्मण ने कहा, 'आपके वचन को मैं एक अनुभवहीन बालक के वचन के समान मानता हूँ । मैं आपके वचन पर विश्वास नहीं कर सकता ।"

तब अर्जुन को बोध हुआ कि ब्राह्मण क्षत्रिय राजाओं में समस्त विश्वास खो बैठा है । अतएव उसे प्रोत्साहित करने के लिए अर्जुन ने इस प्रकार कहा, जैसे कि वे अपने सखा भगवान् श्रीकृष्ण की भी आलोचना कर रहे हों । जब भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोग सुन रहे थे तब अर्जुन ने यह कह कर श्रीकृष्ण पर विशेष रूप से आघात किया, "प्रिय ब्राह्मण! न तो मैं संकर्षण हूँ न श्रीकृष्ण, न ही प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध के समान मैं श्रीकृष्ण का पुत्र हूँ । मेरा नाम अर्जुन है तथा मेरा धनुष गाण्डीव है । तुम मेरा अपमान नहीं कर सकते, क्योंकि वन में जब हम दोनों आखेट कर रहे थे तब मैंने अपनी कुशलता से शिवजी से युद्ध किया था तथा जब वे मेरी कुशलता से सन्तुष्ट हो गए तब उन्होंने मुझे पाशुपत नामक अस्त्र प्रदान किया था । यदि मुझे साक्षात् यम से भी युद्ध करना पड़े तब भी मैं तुम्हारे पुत्रों को वापस लाऊँगा ।" जब अर्जुन ने ब्राह्मण को ऐसे श्रेष्ठ शब्दों में विश्वास दिलाया, तब किसी प्रकार उसे प्रतीति हो गई तथा वह घर लौट गया ।

जब ब्राह्मण की पत्नी एक अन्य सन्तान को जन्म देने वाली थी तब ब्राह्मण पुकारने लगा, "हे अर्जुन! कृपया अब आकर मेरी सन्तान की रक्षा

करो ।" उसकी बात सुन कर, पावन जल का स्पर्श करके तथा अपने धनुर्बाणों द्वारा संकट से रक्षा करने के लिए पवित्र मंत्रों का उच्चारण करते हुए अर्जुन तत्काल तत्पर हो गए । विशेष रूप से उन्होंने शिवजी द्वारा प्रदत्त बाण को लिया तथा बाहर जाते हुए वे शिवजी तथा उनके महान् अनुग्रह का स्मरण करने लगे । इस प्रकार अपने गाण्डीव नामक धनुष तथा अन्य अनेकों आयुधों से सजित होकर वे प्रसूति-गृह के सम्मुख उपस्थित हुए ।

ऐसा प्रतीत होता है कि ब्राह्मण को दिए गए अपने वचन को पूर्ण करने के लिए ही अर्जुन अभी तक द्वारका से गए नहीं थे । जब ब्राह्मण की पत्नी का प्रसव होने वाला था तब उन्हें रात्रि में बुलाया गया था । ब्राह्मण की पत्नी के प्रसव के लिए प्रसूतिगृह की ओर जाते हुए अर्जुन ने अपने सखा श्रीकृष्ण का नहीं, अपितु शिवजी का स्मरण किया । उन्होंने विचार किया कि श्रीकृष्ण ब्राह्मण की रक्षा नहीं कर सके हैं, अतएव शिवजी की शरण में जाना ही श्रेयस्कर है । यह इस बात का एक और उदाहरण है कि किस प्रकार व्यक्ति देवताओं की शरण में जाता है । इसकी व्याख्या भगवद्गीता में हुई है-कार्मेस्तस्तहृचलाना-जो व्यक्ति लोभ तथा कामवासना के कारण भगवान् को विस्मृत कर अन्य देवताओं की शरण लेता है, वह अपनी बुद्धि खो देता है । यद्यपि अर्जुन एक साधारण प्राणी नहीं थे, किन्तु श्रीकृष्ण के साथ उनका सखा-सम्बन्ध होने के कारण उन्होंने सोचा कि श्रीकृष्ण ब्राह्मण की रक्षा करने में असमर्थ हैं, अतएव शिवजी का स्मरण करना ही उत्तम होगा । कालान्तर में यह सिद्ध हो गया कि श्रीकृष्ण के स्थान पर अर्जुन का शिवजी की शरण में जाना तनिक भी सफल नहीं हुआ । किन्तु अर्जुन ने विभिन्न मंत्रों का जप करके अपके सामथ्र्य के अनुरूप प्रयास किया तथा प्रसूतिगृह की समस्त दिशाओं से रक्षा करने के लिए उन्होंने अपना धनुष उठा लिया ।

ब्राह्मण की पत्नी ने एक बालक को जन्म दिया । तब सदा की भाँति शिशु ने क्रन्दन करना प्रारम्भ किया । किन्तु अचानक, कुछ ही पलों में शिशु तथा अर्जुन के बाण दोनों ही आकाश में तिरोहित हो गए । ब्राह्मण का गृह श्रीकृष्ण के महल के समीप था तथा अपनी सत्ता की अवज्ञा में घटित हो रही समस्त घटनाओं का श्रीकृष्ण आनन्द उठा रहे थे । उन्होंने ही ब्राह्मण के शिशु तथा शिवजी द्वारा प्रदत्त बाण सहित समस्त बाणों का अपहरण करने का खेल किया था । अर्जुन को शिवजी द्वारा प्रदत्त बाण पर अत्यन्त गर्व था, किन्तु श्रीकृष्ण ने अन्य बाणों के साथ उसे भी हर लिया । तद्रवति अल्पमेधसाम्-अल्पबुद्धि मानव भ्रमवश देवताओं की शरण में जाते हैं तथा उनके द्वारा प्रदत्त सुविधाओं से सन्तुष्ट रहते हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण तथा अन्य लोगों की उपस्थिति में वह ब्राह्मण अर्जुन पर दोषारोपण करने लगा, "हे उपस्थित लोगो! मेरी मूर्खता देखो । मैंने निर्बल अर्जुन के शब्दों पर विश्वास किया जो केवल मिथ्या वचन देने में ही चतुर है । अर्जुन पर विश्वास करना मेरी कितनी बड़ी मूर्खता थी । जब प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, अथवा भगवान् बलराम तथा भगवान् श्रीकृष्ण असफल रहे तब उसने मेरी सन्तान की रक्षा करने का वचन दिया । यदि ऐसे महान् पुरुष मेरी सन्तान की रक्षा न कर सके तब कौन ऐसा कर सकता है? अतएव मैं अर्जुन के मिथ्या वचन के लिए उसकी भत्सना करता हूँ, उसके प्रसिद्ध गाण्डीव तथा स्वयं को भगवान् बलराम, भगवान् श्रीकृष्ण, प्रद्युम्न तथा अनिरुद्ध से भी महान् घोषित करने की उसकी धृष्टता की भी मैं निन्दा करता हूँ । मेरी सन्तान की रक्षा कोई नहीं कर सकता है, क्योंकि वह पहले ही अन्य लोक को स्थानान्तरित किया जा चुका है । केवल मूर्खतावश ही अर्जुन ने सोचा था कि वह मेरी सन्तान को अन्यलोक से वापस ला सकेगा ।"

ब्राह्मण द्वारा इस प्रकार निन्दित होकर अर्जुन ने अपने को एक योगशक्ति से युक्त किया जिससे कि वह ब्राह्मण के शिशु को प्राप्त करने

के लिए किसी भी लोक में जा सकें । ऐसा प्रतीत होता है कि अर्जुन ने उस योगिक सिद्धि पर अधिकार प्राप्त कर लिया था, जिससे योगी अपने इच्छानुसार किसी भी लोक की यात्रा कर सकते हैं । सर्वप्रथम वे यमलोक गए जहाँ मृत्यु के देवता यमराज का निवास है । वहाँ उन्होंने ब्राह्मण के शिशु को ढूँढ़ा, किन्तु उसे न ढूँढ़ सके । तत्पश्चात् वे तत्काल ही स्वर्गलोक गए । जब वे वहाँ भी शिशु को प्राप्त करने में असमर्थ रहे तब वे अग्नि देवताओं के लोक नैऋति गए, तत्पश्चात् चन्द्रलोक गए । तब वे वायु तथा वरुण लोक गए । जब वे उन लोकों में शिशु को ढूँढ़ने में असमर्थ रहे तब वे निम्नतम लोक, रसातल लोक, में गए । इन सब विभिन्न लोकों की यात्रा करने के उपरान्त वे योगियों के लिए भी अगम्य ब्रह्मलोक गए । भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन को यह शक्ति प्राप्त थी तथा वे स्वर्गलोकों से ऊपर ब्रह्मलोक में गए । जब समस्त सम्भव लोकों में ढूँढ़ने के उपरान्त भी वे शिशु को खोजने में असमर्थ रहे तब उन्होंने स्वयं को अग्नि को भेंट करने का प्रयास किया, क्योंकि उन्होंने शिशु को वापस न ला सकने की दशा में वैसा करने का वचन ब्राह्मण को दिया था । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण अर्जुन के प्रति अत्यधिक दयालु थे, क्योंकि अर्जुन भगवान् के अभिन्न सखा थे । भगवान् ने कलंकित होकर अग्नि में प्रवेश करने से अर्जुन को रोका । श्रीकृष्ण ने संकेत किया कि अर्जुन उनके सखा थे, अतएव यदि वे निराशा में अग्नि में प्रवेश करें, तो यह परोक्ष रूप से भगवान् पर कलंक होगा । अतएव भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन को यह विश्वास दिलाते हुए रोक लिया कि वे शिशु को ढूँढ़ लाएँगे । उन्होंने अर्जुन से कहा, "मूर्खतापूर्वक आत्महत्या मत करो ।"

अर्जुन को इस प्रकार सम्बोधित करने के उपरान्त भगवान् श्रीकृष्ण ने अपना दिव्य रथ मैंगाया । अर्जुन के साथ रथ पर आरूढ़ होकर उन्होंने उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया । सर्वशक्तिमान भगवान् श्रीकृष्ण बिना कोई प्रयास किए ही शिशु को वापस ला सकते थे, किन्तु हमें सदैव यह

स्मरण रखना चाहिए कि वे एक मानव का अभिनय कर रहे थे । जैसे एक मानव को कुछ फल प्राप्त करने के लिए प्रयास करना पड़ता है, उसी प्रकार एक साधारण मानव अथवा अपने सखा अर्जुन के समान, भगवान् श्रीकृष्ण ने ब्राह्मण-शिशु को वापस लाने के लिए द्वारका से प्रस्थान किया । मानव-समाज में प्रकट होने तथा एक मानव के रूप में अपनी लीलाओं के प्रदर्शन करने से श्रीकृष्ण ने यह निश्चित रूप से प्रदर्शित कर दिया कि कोई भी उनसे महान् नहीं है । "ईश्वर महान् हैं ।" यही श्रीभगवान् की परिभाषा है । अतएव श्रीकृष्ण ने कम से कम इस भौतिक जगत में जब वे उपस्थित थे यह सिद्ध कर दिया कि ब्रह्माण्ड में उनसे महान् और कोई नहीं है । अर्जुन के साथ अपने रथ पर आसीन श्रीकृष्ण ने अनेक लोकों के पार जाते हुए उत्तर की ओर बढ़ना प्रारम्भ किया । इन लोकों को श्रीमद्रागवत में सप्तद्वीप कहा गया है । इन सब लोकों को कभी-कभी वैदिक साहित्य में द्वीप कहा जाता है । जिस लोक पर हमारा निवास है उसे जम्बूद्वीप कहते हैं । अंतरिक्ष को वायु का एक विशाल सागर माना जाता है तथा वायु के उस सागर में अनेक द्वीप हैं, जो कि विभिन्न लोक हैं । विभिन्न लोकों में भी सागर हैं । कुछ लोकों में खारे जल के सागर हैं तथा कुछ में दूध के सागर हैं । किन्हीं अन्य लोकों में मदिरा के सागर हैं तथा किन्हीं में घी अथवा तेल के सागर हैं । विभिन्न प्रकार के पर्वत भी हैं । प्रत्येक लोक का एक भिन्न प्रकार का वायुमण्डल है ।

श्रीकृष्ण इन सब लोकों को पार करके ब्रह्माण्ड के आवरण तक पहुँच गए । इस आवरण को श्रीमद्रागवत में महा अंधकार कहा गया है । इस भौतिक जगत को भी अंधकारमय कहा गया है । मुक्त अंतरिक्ष में सूर्य का प्रकाश है, अतएव वह प्रकाशमान् है, किन्तु आवरण के नीचे सूर्य के प्रकाश का अभाव होने के कारण स्वाभाविक रूप से अंधकार है । जब श्रीकृष्ण इस ब्रह्माण्ड के आवरण के समीप पहुँचे तब उनके रथ को खींचने वाले चारों अश्व-शैब्य, सुग्रीव, मेघपुष्प तथा बलाहक-अंधकार में

प्रवेश करने से हिचकिचाते हुए प्रतीत हुए । यह हिचकिचाहट भी भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का एक भाग है, क्योंकि श्रीकृष्ण के अश्व साधारण अश्व नहीं हैं । साधारण अश्वों के लिए सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की यात्रा करना तथा तत्पश्चात् इसके बाह्यावरण में प्रवेश करना सम्भव नहीं है । जिस प्रकार श्रीकृष्ण दिव्य हैं उसी प्रकार उनका रथ, उनके अश्व तथा श्रीकृष्ण विषयक प्रत्येक वस्तु दिव्य है, त्रिगुणातीत है । हमें यह सदैव स्मरण रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण साधारण मानव का अभिनय कर रहे थे तथा श्रीकृष्ण की इच्छा के अनुरूप उनके अश्वों ने भी अंधकार में प्रवेश करने में हिचकिचाने के द्वारा साधारण अश्वों का अभिनय किया ।

जैसाकि भगवद्गीता के अन्तिम भाग में कहा गया है श्रीकृष्ण योगेश्वर के नाम से प्रसिद्ध हैं । योगेश्वर हरि समस्त सिद्धियों के स्वामी हैं । अपने अनुभव में हम अनेक सिद्धियों से युक्त मानव को देख सकते हैं । कभी-कभी वे अत्यन्त अद्भुत कार्य करते हैं । किन्तु श्रीकृष्ण को समस्त सिद्धियों का स्वामी समझा जाता है । अतएव जब उन्होंने अपने अश्वों को अंधकार में प्रवेश करने से हिचकिचाते हुए देखा तब उन्होंने तत्काल अपना सुदर्शन चक्र छोड़ा, जिसने आकाश को सूर्य के प्रकाश से हजार गुना अधिक प्रकाशित कर दिया । ब्रह्माण्ड के आवरण का अंधकार भी श्रीकृष्ण की ही रचाना है तथा सुदर्शन चक्र सदैव श्रीकृष्ण के साथ रहता है । इस प्रकार सुदर्शन चक्र को सामने रखने से उसके प्रकाश ने अंधकार को भेद दिया । श्रीमद्भागवत में कहा गया है कि सुदर्शन चक्र ने अंधकार को ठीक उसी प्रकार भेद दिया जिस प्रकार भगवान् रामचन्द्र के शाङ्ग धनुष से छुटे बाण ने रावण की सेना को भेद दिया था । "सु" का अर्थ है उत्तम तथा दर्शन का अर्थ है देखना । भगवान् श्रीकृष्ण के चक्र सुदर्शन की कृपा से प्रत्येक वस्तु भलीभाँति देखी जा सकती है तथा कुछ भी अंधकार में नहीं रह सकता है । इस प्रकार श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भौतिक

ब्रह्माण्ड को आवृत करने वाले विशाल अंधकारमय क्षेत्र को पार कर गए ।

तत्पश्चात् अर्जुन ने प्रकाश की उस कान्ति के दर्शन किए, जिसे ब्रह्मज्योति कहा जाता है । ब्रह्मज्योति भौतिक ब्रह्माण्ड के आवरण के बाहर स्थित है तथा अपने वर्तमान चक्षुओं से हम इसके दर्शन नहीं कर सकते हैं, अतएव कभी-कभी इस ब्रह्मज्योति को अव्यक्त भी कहा जाता है । वेदान्तियों के नाम से विख्यात निर्विशेषवादियों के लिए यह आध्यात्मिक ज्योति चरम लक्ष्य है । ब्रह्मज्योति को अनन्तपारम् भी कहा जाता है, जिसका अर्थ है सीमाहीन तथा अपार । जब भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ब्रह्मज्योति के इस क्षेत्र में पहुँचे तब अर्जुन इस देदीप्यमान ज्योति को सहन न कर सके तथा उन्होंने अपने नेत्र बन्द कर लिए । भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन के ब्रह्मज्योति क्षेत्र में पहुँचने का वर्णन हरिवंश पुराण में किया गया है । उसमें श्रीकृष्ण ने अर्जुन को सूचित किया, "प्रिय अर्जुन! जिस देदीप्यमान कान्ति, जिस दिव्य ज्योति के तुम दर्शन कर रहे हो वे मेरी शारीरिक किरणें हैं । हे भरतवंशियों में शिरोमणि! यह ब्रह्मज्योति मैं ही हूँ ।" जिस प्रकार सूर्य तथा सूर्य के प्रकाश को वियुक्त नहीं किया जा सकता है, उसी भाँति श्रीकृष्ण तथा उनकी अंगकान्ति, ब्रह्मज्योति, को भी वियुक्त नहीं किया जा सकता है । इस प्रकार श्रीकृष्ण ने कहा कि ब्रह्मज्योति वे स्वयं ही हैं । इस तथ्य को हरिव7 में स्पष्ट रूप से कहा गया है जब श्रीकृष्ण कहते हैं अह स; / चित्कणों अथवा चित्कण के नाम से विख्यात जीवों के रूप में सूक्ष्म कणों का संयोग ही ब्रह्मज्योति है । वैदिक शब्द सोऽह अथवा मैं ब्रह्मज्योति हूँ का प्रयोग जीवों के लिए भी किया जा सकता है । वे भी ब्रह्मज्योति का अंश होने का दावा कर सकते हैं । हरिवंश में श्रीकृष्ण ने आगे स्पष्ट किया है, "यह ब्रह्मज्योति मेरी आध्यात्मिक शक्ति का प्रकाश है ।"

श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा, "ब्रह्मज्योति माया शक्ति के नाम से प्रसिद्ध मेरी बहिरंगाशक्ति के क्षेत्र से ऊपर है ।" जब तक व्यक्ति भौतिक जगत में रहता है उसके लिए ब्रह्मज्योति का अनुभव कर पाना असम्भव है । अतएव भौतिक जगत में यह ज्योति प्रकाशित नहीं होती है, जबकि आध्यात्मिक जगत में यह प्रकाशित होती है । व्यक-अव्यक्त शब्द का यही तात्पर्य है । भगवद्गीता में कहा गया है अव्यकी व्यक/लू सनातन, ये दोनों ही शक्तियाँ नित्य प्रकाशित हैं ।

इसके उपरान्त श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने एक विशाल आध्यात्मिक सागर में प्रवेश किया । यह आध्यात्मिक सागर कारण//व अथवा विरजा कहा जाता है, जिसका अर्थ है कि यह सागर भौतिक जगत की सृष्टि का मूल है । मृत्युञ्जय तंत्र नामक एक वैदिक ग्रंथ में कारणार्णव (कारण-सागर) अथवा विरजा का सजीव वर्णन है । उसमें कहा गया है कि भौतिक जगत का सर्वोच्च लोक सत्यलोक अथवा ब्रह्मलोक है । उससे परे रुद्रलोक तथा महाविष्णु लोक हैं । इस महाविष्णुलोक के सम्बन्ध में ब्रह्मसहित7 में कहा गया है, य:

जल भजति स्म योग:-"भगवान् महाविष्णु कारण-सागर में शयन कर रहे हैं ।" जब वे उच्छास लेते हैं तब असंख्य ब्रह्माण्डों की उत्पत्ति होती है तथा जब वे श्वास लेते हैं तब असंख्य ब्रह्माण्ड उनके अन्दर प्रवेश कर जाते हैं । इस प्रकार भौतिक सृष्टि का उदय तथा विलय होता है । जब भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने सागर में प्रवेश किया उस समय दिव्यकान्ति का एक तूफान आने वाला था तथा कारण-समुद्र का जल अत्यन्त उद्वेलित था । भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन को अत्यन्त सुन्दर कारण–सागर के दर्शन का अपूर्व अनुभव प्राप्त हुआ । भगवान् श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन ने जल में एक विशाल राजमहल के दर्शन किए । उस महल में रत्ननिर्मित हजारों स्तम्भ थे तथा उन स्तम्भों की देदीप्यमान कान्ति इतनी सुन्दर थी कि अर्जुन उस पर मुग्ध हो गए । उस महल में

श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने अनन्तदेव के विशाल रूप के दर्शन किए । अनन्तदेव को शेष भी कहा जाता है । भगवान् अनन्तदेव अथवा शेषनाग सहस्रों फणों वाले एक विशाल सर्प के रूप में थे । उनका प्रत्येक फण मूल्यवान तथा कान्तिवान् रत्नों से सजित था, जो कि अति सुन्दरतापूर्वक जगमगा रहे थे । अनन्तदेव के प्रत्येक फण में दो भयंकर नेत्र थे । उनका शरीर सदैव हिमाच्छादित रहने वाले कैलाश पर्वत के शिखरों की भाँति श्वेत था । उनका कण्ठ तथा जिह्वाएँ नीली थीं । इस प्रकार अर्जुन ने शेषनाग के दर्शन किए तथा शेषनाग के अत्यन्त मृदु, धवल शरीर पर सुखपूर्वक लेटे हुए भगवान् महाविष्णु के भी दर्शन किए । वे सर्वव्यापक तथा अत्यन्त शक्तिशाली प्रतीत होते थे । अर्जुन यह समझ सकते थे कि उस रूप में श्रीभगवान् को पुरुषोत्तम कहा जाता है । उन्हें पुरुषोत्तम, सर्वोत्तम अथवा श्रीभगवान् कहा जाता है, क्योंकि इस रूप से विष्णु का एक अन्य रूप निकलता है, जिसे भौतिक जगत में गभौंदकशायी विष्णु कहा जाता है । भगवान् का महाविष्णु रूप, पुरुषोत्तम भौतिक जगत से परे है । उन्हें उत्तम भी कहा जाता है । तम का अर्थ है अंधकार तथा उलू का अर्थ है ऊपर अथवा दिव्य, अतएव उत्तम का अर्थ है भौतिक जगत के अंधकारमय क्षेत्र से ऊपर । अर्जुन ने देखा कि महाविष्णु के शरीर का रंग वर्षाऋतु के नवीन मेघ की भाँति श्याम था तथा वे अति उत्तम पीत वस्त्र धारण किए थे । उनका मुखमंडल मधुर मुस्कान से युक्त था तथा कमलदल के समान उनके नयन अत्यन्त आकर्षक थे । भगवान् महाविष्णु का मुकुट मूल्यवान रत्नों से मण्डित था तथा उनके सुन्दर कुण्डल उसके सिर पर के कुश्चित केशों के सौन्दर्य में अभिवृद्धि कर रहे थे । महाविष्णु की आठ भुजाएँ थीं तथा सभी आजानु (लम्बी) थीं । उनके कण्ठ में कौस्तुभ मणि सुशोभित था तथा उनके वक्ष पर श्रीवत्स का चिह्न था, जिसका अर्थ है श्रीदेवी का विश्रामस्थल । भगवान् ने घुटनों तक लम्बी कमलपुष्पों की माला धारण की थी । इस लम्बी माला को वैजयन्तीमाला कहते हैं ।

भगवान् के समीप उनके पार्षद् नन्द और सुनन्द खड़े थे तथा मूर्तिमान् सुदर्शन चक्र भी उनके समीप ही खड़ा था । जैसाकि वेदों में कहा गया है, भगवान् की असंख्य शक्तियाँ हैं तथा मूर्तिमान् रूप में वे सभी वहाँ उपस्थित थीं । उन शक्तियों में से सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण थीं, पुष्टि–पुष्ट करने वाली शक्ति, श्री—सौन्दर्य की शक्ति, कीर्ति-यश की शक्ति तथा अजा-भौतिक सृष्टि की शक्ति । ये सब शक्तियाँ भौतिक जगत के व्यवस्थापकों, जैसे ब्रह्माजी, शिवजी, भगवान् विष्णु तथा स्वर्ग लोकों के राजाओं जैसे इन्द्र, चन्द्र, वरुण तथा सूर्यदेव आदि, में प्रतिष्ठित हैं । दूसरे शब्दों में, भगवान् के द्वारा कुछ विशेष शक्तियों से युक्त किए गए ये समस्त देवता श्रीभगवान् की दिव्य प्रेमसेवा में संलग्न रहते हैं । महाविष्णु रूप श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह का ही एक अंश हैं । ब्रह्म-सहिता में भी इस तथ्य की पुष्टि की गई है कि महाविष्णु श्रीकृष्ण के स्वांश हैं । ऐसे समस्त अंशों तथा श्रीभगवान् के मध्य अभेद है अर्थात् कोई भेद नहीं है, किन्तु श्रीकृष्ण मानव के रूप में अपनी लीलाओं को प्रकाशित करने के लिए इस भौतिक जगत में प्रकट हुए थे, अतएव उन्होंने तथा अर्जुन ने महाविष्णु के समक्ष नमन करके तत्काल उनको प्रणाम किया । श्रीमद्रा/वत में कहा गया है कि श्रीकृष्ण ने महाविष्णु को केवल इसलिए प्रणाम किया, क्योंकि भगवान् महाविष्णु तथा उनमें अभेद है । श्रीकृष्ण के द्वारा महाविष्णु को इस प्रकार प्रणाम करना अहंग्रह उपासना का रूप नहीं है । अहंग्रह उपासना करने का परामर्श कभी-कभी उन लोगों को दिया जाता है, जो ज्ञान-यज्ञ करने के द्वारा आध्यात्मिक लोक तक आत्मोत्कर्ष करने का प्रयास करते हैं । भगवद्गीता में भी यह कहा गया है-ज्ञानयज्ञेन चाप्यन्ते यजन्तो मामुपासते ।

यद्यपि श्रीकृष्ण के लिए प्रणाम करने की कोई आवश्यकता नहीं थी, किन्तु वे सर्वोत्कृष्ट गुरु हैं, अतएव उन्होंने अर्जुन को यह शिक्षा दी कि महाविष्णु को किस प्रकार प्रणाम करना चाहिए । किन्तु भौतिक अनुभव

से भिन्न प्रत्येक वस्तु का विशाल रूप देख कर अर्जुन अत्यन्त भयभीत हो गए । श्रीकृष्ण को भगवान् महाविष्णु को प्रणाम करते देख कर उन्होंने तत्काल उनका अनुसरण किया तथा भगवान् के समक्ष हाथ जोड़ कर खड़े हो गए । इसके उपरान्त अत्यन्त प्रसन्न होकर मुस्कराते हुए श्रीभगवान् महाविष्णु इस प्रकार बोले—

"प्रिय श्रीकृष्ण तथा अर्जुन! मैं आप दोनों से भेंट करने के लिए अत्यन्त उत्सुक था और इसीलिए मैंने ब्राह्मण के शिशुओं का हरण करके उन्हें यहाँ पर रखने की व्यवस्था की । मैं आप दोनों के इस महल में आने की अपेक्षा रखता था । जगत पर भारस्वरूप असुरों की शक्ति को क्षीण करने के लिए आप भौतिक जगत में मेरे अवतार के रूप में प्रकट हुए हैं । अब इन सब अवांछित असुरों का वध करने के पश्चात् आप पुन: मेरे समीप लौट आएँगे । आप दोनों ही महर्षि नर-नारायण के अवतार हैं । यद्यपि आप दोनों अपने आप में पूर्ण हैं, तथापि भक्तों की रक्षा तथा असुरों के संहार के लिए तथा विशेष रूप से जगत में धार्मिक सिद्धान्तों की स्थापना के लिए आपने अवतार लिया है । जगत में शान्ति बनी रहे, इसके लिए आप यथार्थ धर्म के आधारभूत सिद्धान्तों की शिक्षा दे रहे हैं जिससे कि जगत के लोग आपका अनुसरण कर सकें तथा उसके द्वारा शान्ति प्राप्त करें तथा सम्पन्न हो सकें ।"

तत्पश्चात् अर्जुन तथा भगवान् श्रीकृष्ण दोनों ने ही भगवान् महाविष्णु को प्रणाम किया तथा ब्राह्मण की सन्तानों को लेकर उसी मार्ग से द्वारका लौट गए, जिस मार्ग से उन्होंने अध्यात्मलोक में प्रवेश किया था । ब्राह्मण के सभी बालक अपनी आयु के अनुरूप बड़े हो गए थे । द्वारका लौटने पर भगवान् श्रीकृष्ण तथा अर्जुन ने ब्राह्मण को उसके सभी पुत्र लौटा दिए ।

किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की कृपा से दिव्य जगत की यात्रा करने के उपरान्त अर्जुन अत्यन्त आश्चर्यचकित थे । श्रीकृष्ण की कृपा से अर्जुन को

यह ज्ञान हो गया कि इस भौतिक जगत में उपलब्ध समस्त ऐश्वर्य श्रीकृष्ण से ही निकल रहे हैं । किसी व्यक्ति को कोई भी वैभवशाली पद इस जगत में प्राप्त होता है, तो वह श्रीकृष्ण की दया ही है । अतएव श्रीकृष्ण के प्रति पूर्णत: आभारी होकर व्यक्ति हो सदैव कृष्णभवनामृत में रहना चाहिए, क्योंकि व्यक्ति के पास जो कुछ भी है, वह भगवान् की दया से ही है ।

इस भौतिक जगत में अपने निवास काल में श्रीकृष्ण ने सहस्रों लीलाएँ की थीं । श्रीकृष्ण की दया से अर्जुन का अद्‌भुत अनुभव उन लीलाओं में से एक है । श्रीकृष्ण की समस्त लीलाएँ अपूर्व थीं तथा जगत के इतिहास में उनकी कोई तुलना नहीं मिलती है । वह समस्त लीलाएँ यह सिद्ध करती हैं कि श्रीकृष्ण श्रीभगवान् हैं, फिर भी जब वे इस जगत में उपस्थित थे तब उन्होंने अनेक लौकिक कर्तव्यों से युक्त एक साधारण मानव का अभिनय किया । उन्होंने एक आदर्श गृहस्थ का अभिनय किया तथा यद्यपि उनके 2, ooo रानियाँ १६,००० महल तथा १,६०,००० सन्तानें थीं, तथापि राजवंशियों को भौतिक जगत में मानव-जाति के कल्याण के लिए जीवन की शिक्षा देने के लिए उन्होंने अनेक यज्ञ भी किए । एक आदर्श श्रीभगवान् के रूप में उन्होंने मानव समाज नें उच्चतम ब्राह्मणों से लेकर क्षुद्रतम मानवों सहित समस्त साधारण जीवों तक सबकी इच्छाओं को पूर्ण किया । जिस प्रकार समयानुसार प्रत्येक व्यक्ति को सन्तुष्ट करने के लिए सम्पूर्ण जगत में वर्षा के वितरण का कार्यभार राजा इन्द्र के अधिकार में है उसी भाँति श्रीकृष्ण अपनी अहैतुकी दया की वर्षा के द्वारा प्रत्येक व्यक्ति को सन्तुष्ट करते हैं । उनका उद्देश्य भक्तों की रक्षा तथा आसुरी राजाओं का वध करना था, अतएव उन्होंने लाखों असुरों का वध किया । उनमें से कुछ का वध उन्होंने स्वयं किया तथा कुछ का वध उनके द्वारा नियुक्त अर्जुन ने किया । इस प्रकार उन्होंने जगत के प्रपंचों के नायक के रूप में युधिष्ठिर जैसे अनेक पुण्यात्मा राजाओं को प्रतिष्ठित

किया । इस प्रकार अपनी दिव्य व्यवस्था के द्वारा उन्होंने युधिष्ठिर की उत्तम सरकार की सृष्टि की जिससे सुख एवं शान्ति स्थापित हुई ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "श्रीकृष्ण की परमश्रेष्ठ शक्ति " नामक अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

अध्याय 90
भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का संक्षिप्त विवरण

श्रीकृष्ण के साथ अर्जुन स्वयं अध्यात्मलोक की यात्रा से लौटने के उपरान्त अत्यन्त चकित हो गए थे । उन्होंने विचार किया कि यद्यपि वे एक साधारण मानव थे, तथापि श्रीकृष्ण की कृपा से वे अध्यात्मलोक के स्वयं दर्शन करने में समर्थ हुए थे । उन्होंने न केवल अध्यात्मलोक के दर्शन किए थे, अपितु उन्होंने भौतिक सृष्टि के कारण, मूल महाविष्णु के भी स्वयं दर्शन किए थे । कहा जाता है कि श्रीकृष्ण कभी वृन्दावन से बाहर नहीं जाते हैं-वृन्दावन परित्यज्य न पादमक गच्छति/मथुरा में श्रीकृष्ण श्रेष्ठ हैं, द्वारका में श्रेष्ठतर हैं तथा वृन्दावन में वे श्रेष्ठतम हैं । द्वारका में श्रीकृष्ण की लीलाओं का प्रदर्शन उनके वासुदेव अंश ने किया है, फिर भी मथुरा व द्वारका में प्रकाशित वासुदेव अंश तथा वृन्दावन में श्रीकृष्ण के मूल प्रकाश में कोई भेद नहीं है । इस पुस्तक के प्रारम्भ में हमने विवेचना की है कि जब श्रीकृष्ण प्रकट होते हैं तब उनके समस्त अवतार, अंश तथा अंशों के अंश उनके साथ आते हैं । इस प्रकार उनकी विभिन्न लीलाओं में से कुछ का प्रकाश स्वयं मूल श्रीकृष्ण के द्वारा न होकर उनके विभिन्न अंशों तथा अवतारों के अंशों द्वारा होता है । अतएव अर्जुन को यह समझ में नहीं आ रहा था कि अध्यात्मलोक में कारण/विस्/यी विष्णु

के दर्शन हेतु श्रीकृष्ण किस प्रकार गए । इसकी पूर्ण विवेचना श्रील विश्वनाथ चक्रवर्ती ठाकुर की टीका में की गई है ।

महाविष्णु के कथन से समझ में आता है, वे श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए अत्यन्त उत्सुक थे । किन्तु यह कहा जा सकता है कि महाविष्णु ने ब्राह्मणपुत्रों का हरण किया था, अतएव ऐसा करने के लिए वे द्वारका अवश्य ही गए होंगे । अत: उन्होंने वहीं श्रीकृष्ण के दर्शन क्यों नहीं किये? एक उत्तर यह हो सकता है कि जब तक श्रीकृष्ण की अनुमति न हो तब तक कारणार्णव में शयन करने वाले महाविष्णु भी उनके दर्शन शहीं कर सकते हैं । इस प्रकार उनके जन्म के तत्काल बाद, एक के पश्चात् एक ब्राह्मण पुत्रों को महाविष्णु हर ले गए, जिससे कि श्रीकृष्ण स्वयं उन्हें ले जाने के लिए आएँ तब महाविष्णु वहाँ उनके दर्शन कर सकें । यदि ऐसा था तब दूसरा प्रश्न यह है-यदि वे श्रीकृष्ण के दर्शन नहीं कर सकते थे तब महाविष्णु स्वयं क्यों द्वारका आए? उन्होंने ब्राह्मणपुत्रों का हरण करने के लिए अपने कुछ पार्षदों को क्यों नहीं भेजा? यह एक उत्तर सम्भव हो सकता है कि श्रीकृष्ण की उपस्थिति में द्वारका के किसी भी नागरिक को कष्ट देना अत्यन्त कठिन है । अतएव महाविष्णु के किसी भी पार्षद के लिए ब्राह्मणपुत्रों का हरण करना असम्भव था, इसलिए वे उन्हें ले जाने के लिए स्वयं आए ।

अन्य एक प्रश्न भी उठाया जा सकता है कि भगवान् को ब्रह्मण्यदेव के रूप में जाना जाता है, ब्राह्मणों के उपास्यदेव, अत: एक के बाद एक नवें पुत्र के हरण तक, एक ब्राह्मण को ऐसी शोकपूर्ण भयंकर स्थिति में डालने में भगवान् की रुचि क्यों थी? उत्तर यह है कि भगवान् महाविष्णु श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए इतने उत्सुक थे कि वे एक ब्राह्मण को कष्ट देने में भी नहीं हिचकिचाए । यद्यपि ब्राह्मण को कष्ट देना वर्जित है, तथापि भगवान् विष्णु श्रीकृष्ण के दर्शन के लिए इतने उत्सुक थे कि वे उनके दर्शन के लिए कुछ भी करने को तत्पर थे । अपने प्रत्येक पुत्र को खोने

के पश्चात् ब्राह्मण राजमहल के द्वार पर आकर राजा पर ब्राह्मणों की रक्षा में असमर्थता का आरोप लगा कर, उन्हें राजसिंहासन पर बैठने के अयोग्य ठहराता था । महाविष्णु की योजना थी कि ब्राह्मण क्षत्रियों तथा श्रीकृष्ण पर दोषारोपण करेगा तथा श्रीकृष्ण उसके पुत्रों को ले जाने के लिए आकर उनसे भेंट करने को बाध्य हो जाएँगे ।

और भी एक प्रश्न उठाया जा सकता है-यदि महाविष्णु श्रीकृष्ण का दर्शन नहीं कर सकते हैं तब ब्राह्मणपुत्रों को वापस ले जाने के लिए श्रीकृष्ण उनके सम्मुख आने को किस प्रकार बाध्य हुए? उत्तर यह है कि श्रीकृष्ण का भगवान् महाविष्णु से भेंट करने जाना, ब्राह्मणपुत्रों को वापस लाने के लिए नहीं, अपितु केवल अर्जुन के लिए था । अर्जुन से उनकी मैत्री इतनी घनिष्ठ थी कि जब अर्जुन अग्नि में प्रवेश करके प्राण देने को तत्पर हो गए तब श्रीकृष्ण उन्हें पूर्ण सुरक्षा प्रदान करना चाहते थे । किन्तु जब तक ब्राह्मण के पुत्र वापस नहीं लाए जाते अर्जुन अग्नि में प्रवेश करने से रुकना अस्वीकार कर रहे थे । अतएव श्रीकृष्ण ने उनको वचन दिया, "मैं ब्राह्मणपुत्रों को वापस लाऊँगा । तुम आत्महत्या करने का प्रयास न करो ।"

यदि भगवान् श्रीकृष्ण केवल ब्राह्मणपुत्रों को वापस लाने के लिए ही भगवान् विष्णु से भेंट करने जाने वाले होते, तो उन्होंने नवें पुत्र के अपहरण तक प्रतीक्षा न की होती । किन्तु जब भगवान् महाविष्णु के द्वारा नवें पुत्र का अपहरण कर लिया गया तथा इस कारण अर्जुन अग्नि में प्रवेश करने के लिए तत्पर थे, क्योंकि उनका वचन मिथ्या सिद्ध होने वाला था, तब इस गम्भीर परिस्थिति के कारण भगवान् श्रीकृष्ण ने अर्जुन के साथ महाविष्णु से भेंट करने जाने का निश्चय किया । कहा जाता है कि अर्जुन नर-नारायण के एक शक्त्यावेश अवतार हैं । उन्हें कभी-कभी नरनारायण भी कहा जाता है । नर-नारायण अवतार भी भगवान् विष्णु का स्वांश है । अतएव जब श्रीकृष्ण तथा अर्जुन भगवान् विष्णु के दर्शनार्थ गए तब यह समझना चाहिए कि अर्जुन अपनी नर-नारायण हैसियत से गए थे, जैसे

कि जब श्रीकृष्ण ने द्वारका में अपनी लीलाओं का प्रदर्शन किया, तो उन्होंने वासुदेव की हैसियत से कार्य किया था ।

अध्यात्म जगत की यात्रा करने के उपरान्त अर्जुन ने निष्कर्ष निकाला कि इस भौतिक जगत अथवा अध्यात्मलोक में व्यक्ति जो कोई भी वैभव प्रदर्शित कर सकता है, वह सब भगवान् श्रीकृष्ण का उपहार है । भगवान् श्रीकृष्ण विभिन्न रूपों में प्रकट होते हैं, जैसे विष्णु-तत्व के रूप में तथा जीव-तत्व के रूप में अथवा अन्य शब्दों में कहें, तो स्वांश के रूप में तथा विभिन्न/श के रूप में । विष्णु-तत्व को स्वांश तथा जीव-तत्व को विभिन्नांश कहते हैं । अतएव वे स्वांश अथवा विभिन्नांश में, अपनी रुचि के अनुसार विभिन्न दिव्य लीलाओं के द्वारा, स्वयं को प्रदर्शित कर सकते हैं, किन्तु फिर भी वे आदि श्रीभगवान् रहते हैं ।

श्रीकृष्ण की लीलाओं का अन्तिम भाग श्रीमदागवत के दशम स्कंध के नब्बेवें अध्याय में प्राप्त होता है, इस अध्याय में श्रीशुकदेव गोस्वामी यह स्पष्ट करना चाहते थे कि किस प्रकार अपने समस्त ऐश्वर्यों सहित श्रीकृष्ण द्वारका में सुखपूर्वक निवास करते थे । श्रीकृष्ण की शक्ति के ऐश्वर्य का प्रदर्शन पहले ही उनकी विभिन्न लीलाओं में हो चुका है । अब यह प्रदर्शित किया जाएगा कि द्वारका में उनके निवास ने किस प्रकार सम्पति तथा सौन्दर्य के उनके ऐश्वयों को प्रदर्शित किया । यह भौतिक जगत अध्यात्मलोक का ही एक विकृत प्रतिबिम्ब है । इस भौतिक जगत में सम्पति तथा सौन्दर्य के ऐश्वयों को समस्त ऐश्वयों में सर्वोच्च माना जाता है । अतएव जब श्रीभगवान् के रूप में श्रीकृष्ण ने इस लोक में निवास किया तब उस अवधि में सौन्दर्य तथा सम्पति के उनके ऐश्वर्यों की तीनों लोकों में कोई तुलना नहीं थी । श्रीकृष्ण की सोलह हजार सुन्दरी पत्नियाँ थीं तथा महत्वपूर्ण बात यह है कि वे द्वारका में इन हजारों सुन्दरियों के एक-मात्र पति के रूप में रह रहे थे । इस सम्बन्ध में यह बात अनहोनी नहीं है कि कोई शक्तिशाली राजा कई सौ रानियाँ रखे । यद्यपि ऐसा राजा इतनी सारी पत्नियों का एकमात्र पति हो सकता है, किन्तु वह एक साथ

उन सबका भोग नहीं कर सकता है । किन्तु श्रीकृष्ण अपनी समस्त सोलह हजार पत्नियों के साथ एक साथ रहते थे ।

यद्यपि यह कहा जा सकता है कि योगी भी अपने शरीर का कई रूपों में विस्तार कर सकते हैं, किन्तु योगियों द्वारा किया विस्तार तथा भगवान् श्रीकृष्ण का विस्तार एक नहीं हैं । अतएव श्रीकृष्ण को कभी-कभी योगेश्वर अर्थात् समस्त योगियों का स्वामी भी कहा जाता है । वैदिक साहित्य से हमें ज्ञात होता है कि योगी सौभरि मुनि ने स्वयं को आठ रूपों में विस्तारित किया था । किन्तु वह विस्तार दूरदर्शन के विस्तार के समान था । दूरदर्शन की प्रतिच्छाया करोड़ों विस्तारों के रूप में प्रकट होती है, किन्तु वे विस्तार भिन्न-भिन्न प्रकार से क्रिया नहीं कर सकते हैं । वे मूल व्यक्ति की प्रतिच्छाया मात्र हैं तथा एकदम मूल व्यक्ति की भाँति ही क्रिया कर सकते हैं । किन्तु श्रीकृष्ण का विस्तार दूरदर्शन अथवा योगी के विस्तार की भाँति भौतिक नहीं है । जब नारदजी श्रीकृष्ण के विभिन्न महलों में गए तब उन्होंने श्रीकृष्ण को अपने विभिन्न विस्तारों में, रानियों के प्रत्येक महल में भिन्न-भिन्न रूप से व्यस्त पाया ।

यह भी कहा गया है, कि द्वारका में श्रीकृष्ण ने श्रीदेवी के पति के रूप में निवास किया था । रानी रुक्मिणी श्रीदेवी हैं तथा अन्य सब रानियाँ उनकी विस्तार हैं । अत: वृष्णि वंश के प्रमुख श्रीकृष्ण ने पूर्ण ऐश्वर्य में श्रीदेवी के साथ भोग किया । श्रीकृष्ण की रानियों को नित्य युवती तथा सौन्दर्यमयी कहा गया है । यद्यपि श्रीकृष्ण के पौत्र तथा प्रपौत्र थे, तथापि न तो श्रीकृष्ण न ही उनकी रानियाँ, सोलह अथवा बीस वर्ष से अधिक आयु की दीखती थीं । किशोरी रानियाँ इतनी सुन्दर थीं कि जब वे चलती थीं, तो वे आकाश में चलने वाली चपला के समान प्रतीत होती थीं । वे सदैव ही उत्तम वस्त्राभूषण धारण करती थीं तथा सदैव ही नृत्य, गान अथवा महलों की छत पर कन्दुक क्रीड़ा जैसी क्रीड़ाओं में संलग्न रहती थीं । भौतिक जगत में रानियों का यह कृत्य तथा कन्दुक क्रीड़ा, मूल

भगवान् श्रीकृष्ण तथा उनकी पत्नियों की मूल लीलाओं की विकृत प्रतिच्छाया प्रतीत होती है ।

द्वारका नगरी की गलियों में सदैव ही हाथियों, घोड़ों, रथों तथा सैनिकों की भीड़ रहती थी । जब हाथियों से कार्य लिया जाता है, तब उन्हें मदिरा पिलायी जाती है तथा कहा जाता है कि द्वारका के हाथियों को इतनी मदिरा दी जाती थी कि वे उसका एक बड़ा भाग सड़क पर बिखेर देते थे, तथापि वे मत हो कर गलियों में चलते थे । गलियों में से जाते हुए सैनिक भली-भाँति स्वर्णाभूषणों से सजित होते थे तथा घोड़े एवं स्वर्णमयरथ गलियों में चलते थे । द्वारका नगर में जिस दिशा में भी दृष्टि डालें हरित उद्यान व वाटिकाएँ दृष्टिगोचर होती थीं । प्रत्येक उद्यान फल व पुष्पों से लदे हुए वृक्षों तथा पौधों से युक्त था । इतने अधिक फलों व पुष्पों के वृक्ष होने के कारण, मधुर स्वर में चहचहाते पक्षी तथा गुंजन करते भ्रमर मिल कर मधुर गूँज को जन्म देते थे । इस प्रकार द्वारका नगरी समस्त ऐश्वर्यों का पूर्ण प्रदर्शन करती थी । यदुवंश के वीर अपने को नगर के परम सौभाग्यशाली निवासी मानते थे तथा वास्तव में वे समस्त दिव्य सुविधाओं को भोगते थे ।

श्रीकृष्ण की रानियों के सभी सोलह हजार महल इस सुन्दर द्वारका नगरी में स्थित थे तथा इन समस्त सुविधाओं के परम नित्य भोक्ता भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं को सोलह हजार रूपों में विस्तार दिया था । इस प्रकार वे उन सोलह हजार महलों में एक ही समय में भिन्न-भिन्न पारिवारिक कार्यों में व्यस्त रहते थे । उन महलों में से प्रत्येक में उत्तमतापूर्वक सजित उद्यान तथा जलाशय थे । जलाशयों के स्फटिक के समान स्वच्छ जल में नील, पीत, श्वेत तथा रक्त वर्ण के अनेक प्रस्फुटित पद्म पुष्प थे । इन कमल पुष्पों का पराग वायु द्वारा चारों ओर ले जाया जाता था । समस्त जलाशय सुन्दर हंसों, बत्तखों तथा बगुलों से पूर्ण थे । ये पक्षी कभी-कभी संगीतमय स्वर में चीत्कार कर उठते थे । कभी उन जलाशयों तथा कभी नदियों में अपनी पत्नियों सहित प्रवेश करके, श्रीकृष्ण उनके साथ

हर्षपूर्वक जलक्रीड़ा का आनन्द लेते थे । कभी भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ, जो सभी श्रीदेवियाँ थीं, स्नान करते अथवा तैरते समय जल में श्रीकृष्ण का आलिंगन करती थीं । तब उन रानियों के स्तनों के सौन्दर्य को सजित करने वाला कुंकुम भगवान् के वक्ष को रतिम रंग से शोभित करने लगता था ।

निर्विशेषवादी यह विश्वास करने का साहस नहीं कर सकते हैं कि अध्यात्मलोक में इतने विविध प्रकार के भोग हैं । किन्तु अध्यात्मलोक के वास्तविक, नित्य आनन्दमय भोग का प्रत्यक्ष प्रदर्शन करने के लिए भगवान् श्रीकृष्ण इस लोक पर अवतीर्ण हुए थे तथा उन्होंने यह प्रदर्शित किया कि अध्यात्मलोक जीवन की इन सुख-सुविधाओं से रहित नहीं है । भेद केवल यह है कि अध्यात्मलोक में ऐसी सुविधाएँ नित्य तथा अनन्त हैं, जबकि भौतिक जगत में वे केवल अनित्य, विकृत प्रतिबिम्ब-मात्र हैं । जब श्रीकृष्ण इस प्रकार के सुखभोग में व्यस्त रहते थे तब गन्धर्व तथा गायक सुरीले संगीत से उनका यशगान करते थे । उनके गान के साथ मृदंग, दुन्दुभी, नगाड़ा, इकतारा तथा पीतल के बिगुल आदि वाद्य बजते थे तथा समस्त वातावरण किसी महान् उत्सव के समान हर्षोल्लास से पूर्ण बन जाता था । उत्सव की मन:स्थिति में कभी-कभी भगवान् की पत्नियाँ भगवान् पर पिचकारी से जल की फुहार डालती थीं तथा भगवान् भी स्त्रियों के शरीर को उसी भाँति जल से भिगोते थे । जब श्रीकृष्ण तथा उनकी रानियाँ इस प्रकार की लीलाएँ करते थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानो स्वर्गाधिपति यक्षराज अपनी अनेक पत्नियों के साथ इन लीलाओं में व्यस्त हों । (यक्षराज कुवेर के नाम से भी प्रसिद्ध हैं तथा स्वर्गलोक के कोषाधीश माने जाते हैं ।) जब भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियाँ इस प्रकार भीग जाती थीं तब उनके वक्षस्थलों तथा जंघाओं का सौन्दर्य सहस्त्रगुना बढ़ जाता था तथा उन अंगों को सुसजित करने के लिए उनकी लम्बी केशराशि खुल कर बिखर जाती थी । उनके केशों में गुंथे हुए सुन्दर पुष्प गिर जाते थे तथा भगवान् द्वारा उन पर जल फेंकने से पीड़ित प्रतीत होती

रानियाँ उनसे पिचकारी छीनने के लिए उनके समीप जाती थीं । उनका यह प्रयास ऐसी परिस्थिति का निर्माण कर देता था, जिसमें भगवान् स्वेच्छा से समीप आती हुई रानियों का आलिंगन कर सकते थे । आलिंगनबद्ध होने पर भगवान् की पत्नियाँ अपने मुख पर दाम्पत्य प्रेम का स्पष्ट संकेत अनुभव करती थीं तथा इससे एक आध्यात्मिक आनन्द के वातावरण का निर्माण हो जाता था । जब भगवान् के कंठ की माला रानियों के वक्षस्थलों का स्पर्श करती थी तब उनका समस्त शरीर पराग-मंडित हो जाता था । अपनी स्वर्गिक लीलाओं में संलग्न होने के कारण रानियों को आत्म-विस्मरण हो जाता था तथा उनके मुक्त केशपाश नदी की सुन्दर लहरों के समान प्रतीत होते थे । जब रानियाँ श्रीकृष्ण के शरीर पर अथवा श्रीकृष्ण रानियों के शरीर पर जल छिड़कते थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानो एक गजराज अनेक हथनियों के साथ जलाशय में क्रीड़ा कर रहा हो । परस्पर पूर्ण आनन्द उठाने के पश्चात् भगवान् श्रीकृष्ण तथा रानियाँ बाहर आती थीं । अपने पहने हुए अति मूल्यवान, भीगे वस्त्रों को पहने वे गायकों तथा नर्तकों को दान दे देते थे । ऐसे अवसरों पर राजाओं तथा रानियों द्वारा दिये गये बहुमूल्य वस्त्राभूषणों के पुरस्कार के अतिरिक्त इन गायकों तथा नर्तकों के पास जीवनयापन का अन्य कोई साधन नहीं था । समाज की सम्पूर्ण प्रणाली की योजना इतनी भलीभाँति की गई थी कि अपने विभिन्न पदों पर समाज के समस्त सदस्य जैसे ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र सरलतापूर्वक अपनी आजीविका अर्जित कर लेते थे । समाज के विभागों के मध्य कोई प्रतियोगिता नहीं थी । जाति प्रथा की मूल धारणा की योजना ऐसी थी कि एक विशेष प्रकार के व्यवस्थाय में संलग्न व्यक्ति किसी अन्य, भिन्न प्रकार के व्यवस्थाय में संलग्न व्यक्तियों के समूह से प्रतिस्पर्धा नहीं करते थे|

इस रीति से भगवान् श्रीकृष्ण अपनी सोलह हजार पत्नियों की संगति का सुख भोग करते थे । भगवान् के जो भक्त दाम्पत्य प्रेम के माधुर्य में श्रीभगवान् से प्रेम करना चाहते हैं, उन्हें श्रीकृष्ण की पत्नी के पद पर

पहुँचने का सौभाग्य प्राप्त होता है तथा श्रीकृष्ण भी अपने कृपालु व्यवहार से उन्हें सदैव स्वयं से संयुक्त रखते हैं । अपनी पत्नियों के साथ श्रीकृष्ण का व्यवहार उनकी चाल, उनका पत्नियों से संलाप, उनकी मुस्कान, उनका आलिंगन तथा प्रेममय पति के समान उनकी अन्य गतिविधियाँ उनकी पत्नियों को सदैव श्रीकृष्ण से संयुक्त रखती थीं । यह जीवन की सर्वोच्च पूर्णता है । यदि कोई सदैव श्रीकृष्ण पर मुग्ध रहता है, तब यह समझना चाहिए कि वह मुक्त है तथा उसका जीवन सफल है । कोई भी भक्त जो अपने हृदय तथा आत्मा से श्रीकृष्ण को प्रेम करता है, उससे श्रीकृष्ण भी इस प्रकार व्यवहार करते हैं कि वह भक्त उन से असम्पृक्त नहीं रह सकता है । श्रीकृष्ण तथा उनके भक्तों के ये पारस्परिक व्यापार इतने आकर्षक हैं कि एक भक्त श्रीकृष्ण के अतिरिक्त अन्य किसी विषयवस्तु का विचार भी नहीं कर सकता है । समस्त रानियों के लिए श्रीकृष्ण उनके एकमात्र आराध्य देव थे । वे सदैव ही कमलनयन साँवले-सलोने भगवान् श्रीकृष्ण के चिन्तन में तल्लीन रहती थीं । कभीकभी श्रीकृष्ण के चिन्तन में वे मौन रहती थीं तथा भाव तथा अनुभाव के महान् आनन्द में वे कभी-कभी सन्निपात के रोगी की भाँति बड़-बड़ करती थीं । कभी कभी भगवान् श्रीकृष्ण की उपस्थिति में भी वे उनके साथ जलाशय अथवा नदी में की गई लीलाओं का सजीव वर्णन करती थीं । इस प्रकार के कुछ संलापों का वर्णन यहाँ किया जा सकता है ।

एक रानी ने कुररी पक्षी से कहा, "प्रिय कुररी! रात्रि अधिक हो चुकी है । प्रत्येक व्यक्ति निद्रा में लीन है । समस्त जगत में शान्ति है । यद्यपि उनका ज्ञान किसी भी परिस्थिति में अविचलित रहता है, तथापि इस समय श्रीभगवान् निद्रामग्न हैं । तब तुम क्यों नहीं सो रही हो? तुम सारी रात इस प्रकार क्यों शोक कर रही हो ? प्रिय सखी! क्या तुम भी श्रीभगवान् के कमलनयनों, उनकी मधुर मुस्कान तथा उनके आकर्षक वचनों पर उसी प्रकार मुग्ध हो जिस प्रकार जिस प्रकार मैं मुग्ध हूँ? क्या श्रीभगवान् की

ये भाव-भंगिमाएँ तुम्हारे हृदय में भी उसी प्रकार चुभती हैं जैसे मेरे हृदय में ?

“अहो चक्रवाकी! तुमने अपने नेत्र क्यों मूंद लिए? क्या तुम विदेश गए अपने पति को ढूँढ़ रही हो? तुम इतना करुण विलाप क्यों कर रही हो? आह! ऐसा प्रतीत होता है कि तुम अत्यन्त दुखी हो । अथवा तथ्य यह है कि तुम भी श्रीभगवान् की नित्य सेविका बनने की इच्छुक हो ? मेरे विचार में तुम भगवान् के चरणारविन्दों में एक माला चढ़ा कर उसे अपने केशों में धारण करने के लिए उत्सुक हो ।

"हे सागर! तुम रात-दिन गर्जन क्यों करते रहते हो? क्या तुम्हें निद्रा नहीं आती? मेरे विचार में तुम्हें अनिद्रा का रोग हो गया है अथवा यदि मैं अनुचित नहीं सोचती हूँ, तो मेरे प्यारे श्यामसुन्दर ने चतुराईपूर्वक तुम्हारे स्वाभाविक गुणों, गम्भीरता तथा सहनशीलता को हर लिया है । क्या यह सत्य है कि इसी कारण तुम मेरे समान अनिद्रा से पीड़ित हो ? मैं यह स्वीकार करती हूँ कि इस रोग का कोई उपचार नहीं है ।

"हे चन्द्रदेव! मेरे विचार में तुम्हें गम्भीर क्षय रोग हो गया है । इसी कारण तुम दिन-प्रतिदिन क्षीणतर होते जा रहे हो । हे देव! अब तुम इतने क्षीण हो गए हो कि तुम्हारी किरणें रात्रि के अंधकार को दूर नहीं कर पाती हैं । अथवा तथ्य यह है कि मेरे भगवान् श्यामसुन्दर के रहस्यमय रूप के मधुर शब्दों ने मेरे समान तुम्हें भी मूर्टिछत कर दिया है । क्या यह सत्य है कि इस गम्भीर उद्विग्नता के कारण ही तुम इतने गम्भीर हो ?

“हे हिमालय पर्वत से आने वाले समीर! मैंने तुम्हारा क्या बिगाड़ा है कि तुम श्रीकृष्ण से मिलने की मेरी वासना को जाग्रत करके मुझे तंग कर रहे हो? क्या तुम्हें ज्ञात नहीं है कि श्रीभगवान् की कुटिल नीति ने मुझे पहले से ही आहत कर दिया है? हे हिमालय के समीर ! अब जान लो कि मैं पहले से ही आहत हूँ । मुझे और अधिक आहत करने की कोई आवश्यकता नहीं है ।

"हे सुन्दर मेघ! तुम्हारी सुन्दर देह का रंग मेरे प्रियतम श्यामसुन्दर के शरीर के वर्ण से एकदम मिलता है । अतएव मेरे विचार में यदुवंश-शिरोमणि मेरे भगवान् को तुम अत्यधिक प्रिय हो तथा उनके इतने प्रिय होने के कारण मेरे समान तुम भी ध्यानमग्न हो । मैं समझ सकती हूँ कि तुम्हारा हृदय श्यामसुन्दर के लिए उद्विग्न है । तुम उनके दर्शन के लिए अत्यधिक उत्सुक हो तथा इसी कारण मेरे नयनों के समान तुम्हारे नयनों से भी अश्रुबिन्दु बह रहे हैं । हे श्याम मेघ! हमें स्पष्ट ही यह मानना पड़ेगा कि श्यामसुन्दर से घनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करने का अर्थ है, घर में सुखपूर्वक रहते हुए भी अनावश्यक उद्विग्नताओं को मोल लेना ।"

साधारणतया कोयल रात्रि के अन्तमें अथवा प्रात: कूकती है । जब रानियों ने कोकिल की कूक रात बीतने पर सुनी, तो उन्होंने कहा, "प्रिय कोकिल! तुम्हारा स्वर अत्यन्त मधुर है । जैसे ही तुम अपना मधुर शब्द करती हो हमें तत्काल श्यामसुन्दर की स्मृति हो आती है, क्योंकि तुम्हारा स्वर बिल्कुल उनके स्वर के समान है । हमें यह स्वीकार करना पड़ेगा कि तुम्हारी वाणी में अमृत है तथा यह इतनी प्राणदायिनी है कि अपने प्रियतम के विरह में मृतप्राय लोगों में यह प्राण संचार करने में समर्थ है । अतएव हम तुम्हारी अत्यन्त ऋणी हैं । यदि हम तुम्हारा कुछ सेवा-सत्कार कर सकते हैं, तो हमें बताना ।"

रानियों ने इसी प्रकार आगे भी वार्तालाप किया । उन्होंने पर्वत को इस प्रकार सम्बोधित किया, "प्रिय पर्वत! तुम अतिशय उदार हो । तुम्हारे गुरुत्वाकर्षण से ही यह धरातल उचित रूप से बना रहता है । अपने कर्तव्य का भक्तिपूर्वक पालन करने के कारण तुम्हें चलना भी ज्ञात नहीं है । तुम इतने गम्भीर होने के कारण इधर-उधर नहीं जाते तथा कुछ नहीं कहते हो, अपितु तुम सदैव ही चिन्तन में रत प्रतीत होते हो । हो सकता है कि तुम सदैव अत्यन्त गम्भीर तथा महत्त्वपूर्ण विषयवस्तु पर विचार करते रहते हो, किन्तु हम यह अत्यन्त स्पष्ट रूप से अनुमान कर सकती हैं कि तुम क्या सोच रहे हो । हमें विश्वास है कि जिस प्रकार हम

श्यामसुन्दर के चरणकमलों को अपने उन्नत वक्षस्थलों पर स्थापित करना चाहती हैं उसी प्रकार तुम भी उनके चरणकमलों को अपने उन्नत शिखरों पर स्थापित करने का विचार कर रहे हो ।

"हे जलहीन नदियो ! हमें ज्ञात है कि ग्रीष्म ऋतु के कारण तुम सूख गई हो तथा तुममें जल नहीं है । तुम्हारा समस्त जल सूख जाने के कारण खिले हुए कमल अब तुम्हारा सौन्दर्य नहीं बढ़ाते हैं । इस क्षण तुम अत्यन्त कृशकाय हो गई हो, अतएव हम समझ सकती हैं कि तुम्हारी स्थिति ठीक हमारे समान है । श्यामसुन्दर के विछोह के कारण हम अपना सर्वस्व खो चुकी हैं, उनके सुखदायी शब्द हमें सुनाई नहीं पड़ते हैं । हमारा हृदय अब उचित रीति से कार्य नहीं करता है, अतएव हम भी अत्यन्त कृशकाय हो गई हैं । अतएव हमारे विचार में तुम ठीक हमारे समान हो । मेघों के माध्मम से अपने पति सागर से तुम्हें जल प्राप्त नहीं हो रहा है, अतएव तुम कृशकाय हो गई हो ।" रानियों द्वारा यहाँ दिया गया दृष्टान्त अत्यन्त युक्तियुक्त है । जब सागर मेघों के माध्यम से जलपूर्ति नहीं करता है, तब नदियाँ शुष्क हो जाती हैं । सागर की नदियों का पति माना जाता है, अतएव उनका भरण-पोषण करना सागर का कर्तव्य है । यदि पति पत्नी के जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति न करे, तो वे भी सूखी नदी के समान हो जाती हैं ।

एक रानी ने एक हंस को इस प्रकार सम्बोधित किया, "प्रिय हंस! यहाँ आओ ! तुम्हारा स्वागत है । कृपया यहाँ बैठो तथा दुग्ध पान करो । प्रिय हंस! क्या तुम श्यामसुन्दर का कोई सन्देश लाए हो? मेरे विचार में तुम श्यामसुन्दर के दूत हो । यदि तुम्हारे पास कोई समाचार है, तो कृपया मुझे बताओ । हमारे श्यामसुन्दर सदैव ही अत्यन्त स्वाधीन हैं । वे कभी किसी के अधीन नहीं हैं । हम सब उन पर अधिकार जमाने में असफल रही हैं, अतएव हम तुमसे पूछती हैं कि क्या वे सकुशल हैं? श्यामसुन्दर अत्यन्त चंचल हैं । उनकी मैत्री सदैव अनित्य होती है, यह तनिक-से विक्षोभ से टूट जाती है । किन्तु कृपया क्या तुम यह कहोगे कि वे मुझ पर

इतने निर्दय क्यों हैं? पहले उन्होंने कहा था कि मैं ही उनकी एकमात्र प्रियतमा पत्नी हूँ । क्या उन्हें अपने आश्वासन का स्मरण है? कुछ भी हो, तुम्हारा स्वागत है । कृपया आसन ग्रहण करो । किन्तु मैं तुम्हारी यह विनय स्वीकार नहीं कर सकती कि मैं श्यमासुन्दर के समीप जाऊँ । जब उन्हें मेरी कोई चिन्ता नहीं है, तब मैं क्यों उनके पीछे पागल बनूँ ? तुम्हें यह जताते हुए मुझे दुख होता है कि तुम एक क्षुद्र-हृदय व्यक्ति के दूत बने हो । तुम मुझसे श्रीकृष्ण के समीप जाने को कह रहे हो, किन्तु मैं नहीं जाऊँगी । क्या तुम उनके मेरे समीप आने की चर्चा कर रहे हो? मैंने उनकी दीर्घकाल तक प्रतीक्षा की है । क्या उस प्रतीक्षा को पूर्ण करने के लिए वे यहाँ आने के इच्छुक हैं? ठीक है । तुम उन्हें यहाँ ला सकते हो । किन्तु उनकी परमप्रिया श्रीदेवी को उनके साथ मत लाना । क्या तुम्हारे विचार में वे श्रीदेवी से क्षण-भर के लिए भी वियुक्त नहीं हो सकते हैं? क्या वे लक्ष्मी के बिना यहाँ नहीं आ सकते हैं? उनका व्यवहार अत्यन्त अप्रसन्न करने वाला है । क्या इसका अर्थ है कि लक्ष्मी के बिना श्यामसुन्दर प्रसन्न नहीं रह सकते हैं? क्या वे अन्य किसी पत्नी के साथ सुखी नहीं रह सकते हैं? क्या इसका यह अर्थ है कि लक्ष्मी के पास उनके प्रति प्रेम का सागर है तथा हममें से किसी की उनके साथ तुलना नहीं की जा सकती है?"

भगवान् श्रीकृष्ण की समस्त पत्नियाँ उनके विचारों में पूर्ण रूप से लीन थीं । श्रीकृष्ण को समस्त योगियों का स्वामी, योगेश्वर कहा जाता है तथा द्वारका में श्रीकृष्ण की समस्त पत्नियाँ इन योगेश्वर को अपने हृदय में रखती थीं । समस्त यौगिक सिद्धियों में निष्णात बनने का प्रयास करने की अपेक्षा यदि व्यक्ति केवल परम योगेश्वर श्रीकृष्ण को अपने हृदय में रखे, तो अधिक उत्तम होगा । इस प्रकार व्यक्ति का जीवन पूर्ण हो सकता है तथा उसे सरलता से भगवान् के धाम में स्थान प्राप्त हो सकता है । यह समझना चाहिए कि द्वारका में श्रीकृष्ण के साथ निवास करने वाली उनकी पत्नियाँ पूर्वजन्म में अत्यन्त श्रेष्ठ भक्त थीं जो श्रीकृष्ण के साथ दाम्पत्य प्रेम का सम्बन्ध स्थापित करना चाहती थीं । इस प्रकार उन्हें श्रीकृष्ण की पत्नी

बन कर उनके साथ निरन्तर प्रेम सम्बन्ध का आनन्द उठाने का अवसर प्राप्त हुआ । वे सब अन्तत: वैकुण्ठ लोक गई ।

परम पूर्ण सत्य, श्रीभगवान् कभी भी निराकार नहीं हैं । उनकी विविध साकार गतिविधियों तथा लीलाओं के दिव्य सम्पादन का समस्त वैदिक साहित्य यशगान करता है । कहा जाता है कि वेदों तथा रामायण में केवल भगवान् का विवरण है । वैदिक साहित्य में सर्वत्र उनका ही यशगान है । जैसे ही मृदु हृदय लोग, जैसे नारियाँ भगवान् श्रीकृष्ण की उन दिव्य लीलाओं का श्रवण करती हैं, वे तत्काल उन पर अनुरत हो जाती हैं । अतएव मृदुल-हृदय स्त्रियाँ तथा कन्याएँ अत्यन्त सरलता से कृष्णभावनामृत आन्दोलन की ओर आकर्षित हो जाती हैं । जो व्यक्ति इस प्रकार कृष्णभावनामृत आन्दोलन की ओर आकर्षित होता है तथा ऐसी भावना से अपना सतत सम्पर्क बनाए रखने का प्रयत्न करता है, उसे गोलोक वृन्दावन में श्रीकृष्ण के समीप जाने का परम-मोक्ष अवश्य ही प्राप्त होता है । यदि केवल कृष्णभावनामृत का विकास करने से व्यक्ति अध्यात्मलोक जा सकता है, तब यह कल्पना करना सरल है कि भगवान् श्रीकृष्ण की रानियाँ कितनी आनन्दमयी व सौभाग्यवती थीं, जिन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण से स्वयं वार्तालाप किया तथा उनके प्रत्यक्ष दर्शन किए । भगवान् श्रीकृष्ण की पत्नियों के सौभाग्य का सही वर्णन कोई नहीं कर सकता है । वे स्वयं भगवान् की देखभाल करती थीं । उनको स्नान कराने, भोजन कराने, प्रसन्न रखने तथा उनकी सेवा करने के द्वारा विविध प्रकार से भगवान् की दिव्य टहल करती थीं । इस प्रकार द्वारका में रानियों की सेवा से किसी के भी तप की तुलना नहीं की जा सकती है ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को सूचित किया कि द्वारका में रानियों के द्वारा आत्म-साक्षात्कार के लिए किए गए व्रतों व तपों की कोई तुलना नहीं है । आत्म-साक्षात्कार का एक ही उद्देश्य है- श्रीकृष्ण । अतएव, यद्यपि श्रीकृष्ण तथा रानियों के मध्य का व्यापार ठीक साधारण पति-पत्नी के मध्य के व्यापार के समान प्रतीत होता है, किन्तु ध्यान में

रखने की मुख्य बात श्रीकृष्ण के प्रति रानियों का अनुराग है । व्रत तथा तप की सम्पूर्ण प्रक्रिया का प्रयोजन व्यक्ति को भौतिक जगत से विरत करना तथा भगवान् श्रीकृष्ण के प्रति उसके अनुराग में वृद्धि करना है । आत्म-साक्षात्कार में उन्नत समस्त लोगों के आश्रय श्रीकृष्ण हैं । एक आदर्श गृहस्थ के रूप में उन्होंने अपनी पत्नियों के साथ निवास किया था । उन्होंने वैदिक संस्कारों का सम्पादन किया जिससे कि अल्पबुद्धि मानवों को यह ज्ञात हो सके कि परमेश्वर कभी-भी निराकार नहीं हैं । एक साधारण बद्धात्मा की भाँति श्रीकृष्ण ने अपनी पत्नी तथा सन्तानों सहित समस्त ऐश्वर्यों से युक्त जीवनयापन किया । ऐसा करने के पीछे उनका उद्देश्य वास्तव में बद्ध-आत्माओं के समक्ष यह उदाहरण प्रस्तुत करना था कि जब जीवन का केन्द्र श्रीकृष्ण हो, तो व्यक्ति गृहस्थ-जीवन की परिधि में प्रवेश कर सकता है । उदाहरणार्थ, यदुवंशी श्रीकृष्ण के परिवार में निवास करते थे तथा श्रीकृष्ण उनकी समस्त गतिविधियों के केन्द्र थे ।

त्याग का उतना महत्व नहीं है जितना श्रीकृष्ण के प्रति प्रेम में अभिवृद्धि करने का है । कृष्णभावनामृत-आन्दोलन विशेष रूप से इसी प्रयोजन के लिए है । हम इस सिद्धान्त का उपदेश दे रहे हैं कि व्यक्ति चाहे संन्यासी हो अथवा गृहस्थ-इससे कोई अन्तर नहीं पड़ता है । व्यक्ति को केवल श्रीकृष्ण के प्रति अपने अनुराग में वृद्धि करनी होती है और तब उसका जीवन सफल हो जाता है । भगवान् श्रीकृष्ण के चरण-चिहों पर चल कर व्यक्ति अपने परिवार, समाज अथवा देश में निवास कर सकता है, किन्तु उसका प्रयोजन इन्द्रियतृप्ति न होकर श्रीकृष्ण के प्रति अनुराग में प्रगति करके उनका साक्षात्कार करना होना चाहिए । बद्ध जीवन से मुक्त जीवन तक उत्कर्ष के चार सिद्धान्त हैं, जिन्हें धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष कहा जाता है । यदि व्यक्ति श्रीकृष्ण के परिवारजनों के चरणचिह्नों पर चलते हुए गृहस्थ-जीवन में रहता है, तो वह श्रीकृष्ण को

अपनी गतिविधियों का केन्द्र बनाकर इन चारों सिद्धान्तों को एकसाथ प्राप्त कर सकता है ।

हमें यह ज्ञात है कि श्रीकृष्ण की सोलह हजार एक सौ आठ पत्नियाँ थीं । ये समस्त पत्नियाँ श्रेष्ठ मुतात्माएँ थीं तथा उनके मध्य रानी रुक्मिणी पटरानी थीं । रुक्मिणी देवी के उपरान्त सात अन्य प्रमुख रानियाँ थीं तथा इन आठ प्रमुख रानियों के पुत्रों के नामों का पहले ही उल्लेख किया जा चुका है । इन आठ रानियों के अतिरिक्त प्रत्येक अन्य रानी से भी श्रीकृष्ण को दस पुत्र थे । इस प्रकार श्रीकृष्ण के समस्त पुत्रों की संख्या १६,१०८ × १० थी । यह जान कर चकित नहीं होना चाहिए कि श्रीकृष्ण के इतने अधिक पुत्र थे । हमें सदैव यह स्मरण रखना चाहिए कि श्रीकृष्ण, श्रीभगवान् हैं तथा अनन्त शक्तियों के स्वामी हैं । वे समस्त जीवों को अपनी सन्तान मानते हैं, अतएव यदि उनके अपने सोलह हजार पुत्र भी हों, तो आश्चर्य का कोई कारण न होगा ।

श्रीकृष्ण के अतुल बलशाली पुत्रों में से अठारह पुत्र महारथी थे । सैकड़ों हजारों रथारोहियों, अश्वारोहियों तथा हाथियों से ये महारथी अकेले युद्ध कर सकते थे । इन अठारह पुत्रों की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई है तथा लगभग समस्त वैदिक साहित्य में उनका वर्णन है । अठारह महारथी पुत्रों के नाम-प्रद्युम्न, अनिरुद्ध, दीप्तिमान्, भानु, साम्ब, मधु, बृहद्भानु, चित्रभानु, वृक, अरुण, पुष्कर, वेदबाहु, श्रुतदेव, सुनन्दन, चित्रबाहु, विरूप, कवि तथा न्यग्रोध कहे गए हैं । श्रीकृष्ण के इन अठारह महारथी पुत्रों में प्रद्युम्न को अग्रणी माना जाता है । प्रद्युम्न रानी रुक्मिणी के ज्येष्ठ पुत्र थे तथा उनके महान् पिता भगवान् श्रीकृष्ण के समस्त गुण उनमें उपस्थित थे । प्रद्युम्न ने अपने मामा रुक्मी की पुत्री से विवाह किया था तथा उस विवाह से अनिरुद्ध का जन्म हुआ था । अनिरुद्ध इतने बलवान् थे कि वे दस हजार हाथियों से युद्ध कर सकते थे । उन्होंने अपनी पितामही रुक्मिणी के भाई रुक्मी की पौत्री से विवाह किया । इनके मध्य का सम्बन्ध अत्यन्त दूर का था, अत: ऐसा विवाह सामान्य था । अनिरुद्ध

के पुत्र वज़ थे । जब ब्राह्मण के शाप के कारण सम्पूर्ण यदुवंश का नाश हो गया था, तब केवल वज़ ही जीवित रहे थे । वज़ के एक पुत्र था जिसका नाम था प्रतिबाहु । प्रतिबाहु के पुत्र का नाम सुबाहु रखा गया । सुबाहु के पुत्र का नाम शान्तसेन तथा शान्तसेन के पुत्र का नाम शतसेन रखा गया ।

श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा है कि समस्त यदुवंशियों की अनेक सन्तानें थीं । जिस प्रकार श्रीकृष्ण के अनेक पुत्र, पौत्र तथा प्रपौत्र थे, उसी भाँति यहाँ उल्लिखित प्रत्येक राजा का परिवार भी विस्तृत था । न केवल उनके अनेक सन्तानें थीं, अपितु वे सब असाधारणरूप से सम्पन्न तथा ऐश्वर्यमय थे । उनमें से कोई भी निर्बल अथवा अल्पायु नहीं था तथा सबसे बड़ी बात यह थी कि समस्त यदुवंशी ब्राह्मण-संस्कृति के प्रबल भक्त थे । क्षत्रिय राजाओं का कर्तव्य है कि ब्राह्मण सभ्यता को बनाए रखें तथा योग्य ब्राह्मणों की रक्षा करें । इन समस्त राजाओं ने अपने कर्तव्य को भलीभाँति पूर्ण किया । यदुवंश के सदस्यों की संख्या इतनी बड़ी थी कि यदि व्यक्ति के जीवन की अवधि कई हजार वर्ष हो तब भी प्रत्येक का विवरण देना उसके लिए अत्यन्त कठिन होगा । श्रीशुकदेव गोस्वामी ने महाराज परीक्षित को बताया कि उन्होंने विश्वस्त सूत्रों से सुना था कि यदुवंश के बालकों को शिक्षा देने के लिए ही ३८८,००,००० शिक्षक अथवा आचार्य थे । यदि बालकों को शिक्षा देने के लिए इतने अधिक शिक्षकों की आवश्यकता होती थी, तो हम अनुमान लगा सकते हैं कि परिवार के सदस्यों की संख्या कितनी विशाल रही होगी । जहाँ तक उनकी सैन्य शक्ति का प्रश्न है, कहा जाता है कि अकेले राजा उग्रसेन के पास एक नील (१,००,००,००,००,००,०००) सैनिक उनके व्यक्तिगत अंगरक्षक के रूप में थे ।

इस ब्रह्माण्ड में श्रीकृष्ण के प्रकट होने के पूर्व देवताओं तथा असुरों के मध्य अनेक युद्ध हुए थे । युद्ध में अनेक असुरों की मृत्यु हुई तथा उन सबको इस पृथ्वी पर उच्च राजवंशों में जन्म लेने का अवसर प्राप्त हुआ

। अपने श्रेष्ठ राजकीय पद के कारण ये असुर अत्यन्त गर्वित हो गए तथा उनका एकमात्र कार्य अपने नागरिकों को सताना था । इन सब आसुरी राजाओं का नाश करने के लिए ही श्रीकृष्ण द्वापर युग के अन्त में अवतीर्ण हुए । जैसाकि च दुष्कृत/मू-भक्तों की रक्षा तथा दुष्कर्मियों के संहार के लिए भगवान् आते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं में सहायक होने के लिए कुछ देवताओं को भी पृथ्वी पर प्रकट होने को कहा गया । जब श्रीकृष्ण प्रकट हुए तब उनके नित्य पार्षद् उनके साथ थे, किन्तु उनकी सहायता के हेतु देवताओं को भी आने को कहा गया । इस प्रकार इन सबने यदुवंश में जन्म लिया । देश के भिन्न-भिन्न भागों में यदुवंश के एक सौ एक कुल (उपजातियाँ) थे । इन विभिन्न कुलों के समस्त सदस्य भगवान् श्रीकृष्ण के दिव्य पद के अनुरूप ही आदर करते थे तथा वे सब सम्पूर्ण मन से भगवान् के भक्त थे । इस प्रकार समस्त यदुवंश अत्यन्त ऐश्वर्यवान्, सुखी तथा सम्पन्न था तथा उन्हें कोई दुख न था । भगवान् श्रीकृष्ण में उनकी भक्ति तथा सम्पूर्ण विश्वास होने के कारण वे कभी-भी किसी अन्य राजा से पराजित नहीं हुए । श्रीकृष्ण के लिए उनका प्रेम इतना तीव्र था कि अपने नित्य कर्मों में जैसे बैठने, सोने, यात्रा करने, वार्तालाप करने, क्रीड़ा करने, सफाई व स्नान करने में भी वे केवल श्रीकृष्ण के विचारों में तल्लीन रहते थे तथा शरीर की आवश्यकताओं पर ध्यान नहीं देते थे । भगवान् श्रीकृष्ण के लिए विशुद्ध भक्त का यही लक्षण है । जब कोई व्यक्ति किसी विचार में पूर्णतया लीन हो जाता है, तब कभी-कभी उसे अन्य शारीरिक गतिविधियों का विस्मरण हो जाता है । उसी प्रकार यदुवंशी अपनी शारीरिक आवश्यकताओं के लिए स्वचालित रूप से कार्य करते थे, किन्तु उनका वास्तविक ध्यान सदैव ही श्रीकृष्ण पर केन्द्रित रहता था । उनकी शारीरिक गतिविधियाँ यांत्रिक रूप से की जाती थीं, किन्तु उनके मन सदैव कृष्णभावनामृत में लीन रहते थे ।

श्रील शुकदेव गोस्वामी ने भगवान् की पाँच विशेष विशिष्टताओं को बताते हुए श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के नब्बेवें अध्याय का अन्त किया

है । प्रथम विशिष्टता है कि यदुवंश में श्रीकृष्ण के प्रकट होने से पूर्व गंगा नदी को सर्व वस्तुओं में शुद्ध माना जाता था । गंगाजल के स्पर्श मात्र से अशुद्ध वस्तु निर्मल हो जाती थी । गंगाजल की यह परमश्रेष्ठ शक्ति इस कारण थी, क्योंकि गंगाजल भगवान् विष्णु के चरणों से निकला है । किन्तु जब भगवान् श्रीकृष्ण, परम विष्णु, यदुवंश में प्रकट हुए तब उन्होंने स्वयं यदुओं के सम्पूर्ण राज्य की यात्रा की । यदुवंश से उनके घनिष्ठ सम्बन्ध के कारण यदुवंश न केवल अत्यन्त प्रसिद्ध हो गया अपितु यह दूसरों को शुद्ध करने में गंगाजल से भी अधिक प्रभावशाली हो गया ।

भगवान् श्रीकृष्ण के अवतार की दूसरी विशिष्टता यह थी कि यद्यपि प्रकट रूप में वे भक्तों की रक्षा तथा असुरों का संहार करते थे, तथापि भक्तों तथा असुरों को एक समान फल प्राप्त होता था । भगवान् श्रीकृष्ण पाँच प्रकार की मुक्ति प्रदान करने वाले हैं । जिनमें से कंस जैसे असुरों को सायुज्य मुक्ति दी गई थी, जब कि गोपियों को स्वयम् श्रीकृष्ण के साथ संगति का अवसर प्रदान किया गया था । गोपियों ने श्रीकृष्ण की संगति का आनन्द उठाने के लिए अपनी वैयक्तिकता को बनाए रखा था, किन्तु कंस श्रीकृष्ण की निराकार ब्रह्मज्योति में विलीन हो गया था । दूसरे शब्दों में, असुर तथा गोपियाँ दोनों ही आध्यात्मिक रूप से मुक्त हो गए थे, किन्तु असुर शत्रु थे, अतएव उनका वध किया गया तथा गोपियाँ मित्र थीं, अतएव उनकी रक्षा की गई ।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की तीसरी विशिष्टता यह थी कि भगवान् ने गोपियों को श्रीदेवी से अधिक महत्व दिया था, तथापि ब्रह्माजी, इन्द्र तथा चन्द्रादि देवताओं के द्वारा वन्दिता श्रीदेवी सदैव भगवान् की सेवा में संलग्न रहीं । श्रीदेवी लक्ष्मीजी ने गोपियों के समान स्तर पर रहने का अथक प्रयास किया, किन्तु वे सफल नहीं हुई । फिर भी वे श्रीकृष्ण के प्रति स्वामिभक्त रहीं । यद्यपि साधारणतया ब्रह्माजी जैसे देवताओं के द्वारा उपासना किए जाने पर भी वे एक स्थान पर नहीं रहती हैं, किन्तु श्रीकृष्ण की सेवा में वे निरन्तर उनके साथ रहीं ।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की चौथी विशिष्टता का सम्बन्ध उनके नामों के यश से है । वैदिक साहित्य में कहा गया है कि विष्णु-सहस्र-नाम का जप करने से व्यक्ति को वे ही लाभ प्राप्त होते हैं, जो भगवान् राम के नाम का तीन बार जप करने से प्राप्त होते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के पावन नाम का एक बार जप करने से ही व्यक्ति को वही लाभ प्राप्त होते हैं । दूसरे शब्दों में, विष्णु तथा राम समेत भगवान् के समस्त नामों में कृष्णनाम सर्वाधिक शक्तिशाली है । अतएव वैदिक साहित्य ने श्रीकृष्ण के पावन नाम के जप पर विशेष रूप से बल दिया है-हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे/ हरे रास, हरे राम, राम राम, हरे हरे/इस युग में श्रीकृष्ण के पवित्र नाम के जप का परिचय भगवान् श्री चैतन्य ने कराया और इस प्रकार मोक्ष को अन्य किसी भी युग से अधिक सरल बना दिया गया । दूसरे शब्दों में, यद्यपि अन्य सभी अवतार समान रूप से श्रीभगवान् हैं, तथापि अपने अन्य किसी भी अवतार से श्रीकृष्ण अधिक श्रेष्ठ हैं ।

भगवान् श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव की पाँचवीं विशिष्टता है कि उन्होंने परम श्रेष्ठ धार्मिक सिद्धान्त की स्थापना भगवद्गीता में अपने एक कथन से की । वह कथन था कि केवल श्रीकृष्ण की शरण में आने मात्र से व्यक्ति समस्त धार्मिक संस्कारों को सम्पादित कर लेता है । वैदिक साहित्य में बीस प्रकार के धार्मिक सिद्धान्तों का उल्लेख है तथा प्रत्येक का वर्णन भिन्न-भिन्न शास्त्रों में किया गया है । किन्तु इस युग की पतित बद्धात्माओं पर भगवान् श्रीकृष्ण इतने कृपालु हैं कि वे स्वयं प्रकट हुए तथा उन्होंने प्रत्येक व्यक्ति से सभी प्रकार के धार्मिक संस्कारों को त्याग कर केवल अपनी शरण में आने को कहा । कहा जाता है कि यह कलियुग तीन चौथाई धार्मिक सिद्धान्तों से रहित है । इस युग में कठिनाई से धर्म के एक चौथाई सिद्धान्तों का पालन किया जाता है । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण की दया से कलियुग की यह रिक्तता न केवल पूर्णरूप से भर दी गई है, अपितु धर्म की प्रक्रिया भी अत्यन्त सरल बना दी गई है । इतनी सरल कि केवल भगवान् श्रीकृष्ण के पावन नामों हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण

हरे हरे/हरे राम, हरे राम, राम राम हरे हरेके जप के द्वारा भगवान् की दिव्य प्रेमाभक्ति करके व्यक्ति धर्म का सर्वोच्च फल प्राप्त कर सकता है । धर्म का सर्वोच्च फल अध्यात्मलोक के सर्वोच्च लोक, गोलोक वृन्दावन में स्थानान्तरण होना है । इस प्रकार व्यक्ति भगवान् श्रीकृष्ण के प्रादुर्भाव के लाभ का तत्काल अनुमान लगा सकता है तथा यह समझ सकता है अपने प्रदुर्भाव के द्वारा इस जगत के लोगों को उन्होंने जो शान्ति प्रदान की, वह रंचमात्र भी असामान्य नहीं थी ।

श्रील शुकदेव गोस्वामी भगवान् श्रीकृष्ण के सर्वश्रेष्ठ पद के विवरण को, निम्न प्रकार से भगवान् का यशगान करके समाप्त करते हैं । "हे भगवन् श्रीकृष्ण! आपकी जय हो । आप सबके हृदय में परमात्मा के रूप में स्थित हैं । अतएव आप 'जननिवास' अर्थात् "वह जो प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में निवास करता है" के नाम से विख्यात हैं । जैसाकि भगवद्गीता में पुष्टि की गई है- ईश्वर, सवभूतानां हृद्देशेऽजुन तिष्ठति-परमात्मा के रूप में परमेश्वर प्रत्येक व्यक्ति के हृदय में निवास करते हैं । किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि श्रीभगवान् के रूप में श्रीकृष्ण का पृथक्र अस्तित्व नहीं है । मायावादी दार्शनिक परब्रह्म की सर्वव्यापकता के लक्षण को स्वीकार करते हैं, किन्तु जब परब्रह्म अथवा परमेश्वर प्रकट होते हैं, तब वे विचार करते हैं कि परब्रह्म भौतिक प्रकृति के नियंत्रण में प्रकट होते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण देवकी-सुत के रूप में प्रकट हुए थे, अतएव मायावादी दार्शनिक श्रीकृष्ण को इस भौतिक जगत में जन्म लेने वाला एक साधारण प्राणी मानते हैं । अतएव श्रीशुकदेव गोस्वामी उनको देवकी-जन्म-वाद के प्रति चेतावनी देते हैं । जिसका अर्थ है कि यद्यपि श्रीकृष्ण देवकी सुप्त के रूप में प्रसिद्ध हैं, वास्तव में वे परमात्मा अथवा सर्वव्यापी श्रीभगवान् हैं । किन्तु भक्त इस शब्द देवकी-जन्म-वाद को भिन्न रीति से लेते हैं । भक्त समझते हैं कि वास्तव में श्रीकृष्ण माता यशोदा के पुत्र थे । यद्यपि सर्वप्रथम श्रीकृष्ण देवकी के पुत्र के रूप में प्रकट हुए, तत्काल माता यशोदा की गोद में चले गए थे तथा माता यशोदा एवं नन्द महाराज ने उनकी बाल

लीलाओं का आनन्द भोग किया था । जब वसुदेवजी ने नन्द महाराज तथा यशोदाजी से कुरुक्षेत्र में भेंट की थी तब स्वयं उन्होंने इस तथ्य को स्वीकार किया था । उन्होंने स्वीकार किया था कि श्रीकृष्ण तथा बलराम जी वस्तुत: माता यशोदा तथा नन्द महाराज के पुत्र थे । वसुदेवजी तथा देवकीजी उनके केवल पिता थे । उनके वास्तविक पिता व माता, नन्द महाराज व यशोदाजी थे । अतएव श्रीशुकदेव गोस्वामी ने भगवान् श्रीकृष्ण को देवकी-जन्म-वाद के रूप में सम्बोधित किया ।

तत्पश्चात् श्रीशुकदेव गोस्वामी ने यदुवरपरिक्षातू यदुवंश की सभा के द्वारा सम्मानित कह कर भगवान् की प्रशंसा की है । वे विभिन्न प्रकार के असुरों के हन्ता के रूप में श्रीकृष्ण का यशगान करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण अपनी विभिन्न भौतिक शक्तियों के प्रयोग के द्वारा समस्त असुरों का वध कर सकते थे, किन्तु वे उनको मोक्ष प्रदान करने के लिए स्वयं उनका वध करना चाहते थे । असुरों का वध करने के लिए श्रीकृष्ण के इस भौतिक जगत में आगमन की कोई आवश्यकता नहीं थी । उनके व्यक्तिगत प्रयास के बिना, उनकी इच्छा-मात्र से सैकड़ों हजारों असुरों का वध हो सकता था, किन्तु वस्तुत: वे अपने शुद्ध भक्तों के लिए अवतीर्ण हुए थे, एक बालक के रूप में माता यशोदा तथा नन्द महाराज के साथ क्रीड़ा करने के लिए तथा द्वारकावासियों को सुख देने के लिए । असुरों का वध तथा भक्तों की रक्षा करने के द्वारा भगवान् श्रीकृष्ण ने केवल भगवान् के प्रति प्रेम के वास्तविक धार्मिक सिद्धान्त की स्थापना की । भगवान् के प्रति प्रेम के वास्तविक धर्म-सिद्धान्त का अनुसरण करके, स्थिरचर नाम से प्रख्यात जीव भी समस्त भौतिक प्रदूषणों से मुक्त हो गए तथा अध्यात्मलोक में चले गए । स्थिर का अर्थ है पेड़ पौधे जो चल नहीं सकते हैं तथा चर का अर्थ है चलने-फिरने वाले पशु, विशेष रूप से गौएँ । अपने जीवनकाल में श्रीकृष्ण ने वृन्दावन में तथा द्वारका में अपने दर्शन करने तथा सेवा करने वाले समस्त वृक्षों, वानरों तथा अन्य पौधों व पशुओं को मुक्त कर दिया ।

श्रीभगवान् का सुयश विशेष रूप से गोपियों तथा द्वारका की रानियों को सुख देने के कारण था । श्रीशुकदेव गोस्वामी भगवान् श्रीकृष्ण का यशगान उनकी मोहिनी मुस्कान के लिए करते हैं, जिसके द्वारा श्रीकृष्ण ने न केवल वृन्दावन की गोपियों को मुग्ध कर लिया, अपितु द्वारका में रानियों को भी मोह लिया । इस सम्बन्ध में प्रयुक्त शब्द वर्धायनू कामदेवम् है । वृन्दावन में गोपियों के किशोर सखा के रूप में तथा द्वारका में अनेक रानियों के पति के रूप में श्रीकृष्ण ने उनकी कामेच्छा में अभिवृद्धि की । भगवत्-साक्षात्कार अथवा आत्म-साक्षात्कार के लिए साधारणतया व्यक्ति को हजारों वर्षों तक तपस्या करनी पड़ती है, तब ईश्वर का साक्षात्कार सम्भव होता है । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के साथ सखा अथवा पति के रूप में आनन्द प्राप्त करने की अपनी कामेच्छा में अभिवृद्धि के द्वारा ही, गोपियों तथा द्वारका की रानियों ने सर्वश्रेष्ठ प्रकार की मुक्ति प्राप्त की ।

गोपियों तथा रानियों के साथ भगवान् श्रीकृष्ण का यह व्यवहार आत्म साक्षात्कार के इतिहास में अपूर्व है । साधारणतया लोग समझते हैं कि आत्मसाक्षात्कार के लिए व्यक्ति को वन अथवा पर्वत में जाकर घोर तपस्या करनी पड़ती है । किन्तु भगवान् श्रीकृष्ण के साथ दाम्पत्य प्रेम में संयुक्त रहकर तथा विलास एवं ऐश्वर्य से पूर्ण तथाकथित विलासितापूर्ण जीवन में भगवान् की संगति का आनन्द उठाने मात्र से, गोपियों तथा रानियों ने ऋषि-मुनियों के लिए भी दुर्लभ, सर्वोच्च मुक्तपद को प्राप्त किया । इसी भाँति कंस, दन्तवक्र, शिशुपाल आदि असुरों को भी दिव्यलोक गमन का सर्वोच्च लाभ प्राप्त हुआ ।

श्रीमद्भागवत के प्रारम्भ में श्रील व्यासदेव ने परम सत्य, वसुदेव, श्रीकृष्ण को सादर प्रणाम किया है । तदुपरान्त उन्होंने अपने पुत्र श्रीशुकदेव गोस्वामी को श्रीमद्भागवत का उपदेश देने की शिक्षा दी । इसी सम्बन्ध में श्रीशुकदेव गोस्वामी ने "जयति" के रूप में भगवान् की प्रशस्ति की है । श्रील व्यासदेव, श्रीशुकदेव गोस्वामी तथा गुरु-परम्परा में समस्त

आचार्यों के चरणचिह्नों पर चलते हुए जगत की सम्पूर्ण जनता को श्रीकृष्ण का यशगान करना चाहिए तथा अपने सर्वोत्तम हित के लिए उन्हें कृष्णभावनामृत-आन्दोलन को अपनाना चाहिए । इसकी प्रणाली सरल तथा सहायक है । केवल महामंत्र

हरे कृष्ण हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण हरे हरे ।
हरे राम हरे राम, राम राम हरे हरे ।

का जप करना चाहिए । भगवान् श्री चैतन्य ने परामर्श दिया है कि व्यक्ति को भौतिक उतार-चढ़ावों के प्रति ममता-रहित रहना चाहिए । भौतिक जीवन अस्थायी है, अतएव जीवन में उतार-चढ़ाव आ सकते हैं । जब वे आते हैं तब व्यक्ति को एक वृक्ष की भाँति सहिष्णु तथा तिनके की भाँति नम्र तथा विनीत होना चाहिए, किन्तु उसे हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे के जप के द्वारा स्वयं को कृष्णभावनामृत में अवश्यमेव संलग्न करना चाहिए ।

समस्त जीवों के परमात्मा, भगवान् श्रीकृष्ण अपनी अहैतुकी दया के कारण अवतीर्ण होते हैं तथा विभिन्न अवतारों में अपनी विभिन्न दिव्य लीलाओं का प्रकाश करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण के विभिन्न अवतारों की आकर्षक लीलाओं का श्रवण, बद्धात्माओं के लिए मुक्ति का एक अवसर है । स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण की अत्यधिक भगवान् श्रीकृष्ण स्वयं सर्वाकर्षक हैं ।

श्रील शुकदेव गोस्वामी के पदचिह्नों पर चलते हुए हमने लीला पुरुषोत्तम श्रीकृष्ण नामक यह पुस्तक इस युग की बद्धात्माओं के पठन तथा श्रवण के लिए नि:शुल्क प्रस्तुत करने का प्रयास किया है । भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं के श्रवण द्वारा व्यक्ति की मोक्ष प्राप्ति तथा अपने घर, भगवान् के धाम, लौटना निश्चित है । श्रीशुकदेव गोस्वामी ने कहा कि जैसे-जैसे हम भगवान् की दिव्य लीलाओं तथा गतिविधियों का श्रवण करते हैं, हम धीरे-धीरे भौतिक दूषणों की गाँठ को काटते हैं । अतएव कोई भी व्यक्ति यदि भगवान् के दिव्य राज्य में, अनन्तकाल तक,

आनन्दमय अस्तित्व में भगवान् श्रीकृष्ण का संग प्राप्त करना चाहता है, तब उसे भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं के विषय में श्रवण करना चाहिए तथा हरे कृष्ण, हरे कृष्ण, कृष्ण कृष्ण, हरे हरे । हरे राम, हरे राम, राम राम, हरे हरे महामंत्र का जप करना चाहिए ।

भगवान् श्रीकृष्ण की दिव्य लीलाओं में इतनी शक्ति है कि इस पुस्तक लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के केवल श्रवण, पठन तथा स्मरण करने के द्वारा व्यक्ति का दिव्यलोक में गमन करना निश्चित है, जिस दिव्य लोक को साधारणतया प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है । भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का विवरण इतना आकर्षक है कि यह स्वयमेव हमें बारम्बार अध्ययन के लिए प्रेरित करता है तथा भगवान् की लीलाओं का हम जितना अधिक अध्ययन करते हैं उतने ही हम उन पर आसक्त होते जाते हैं । श्रीकृष्ण के प्रति यह आसक्ति उनके धाम, गोलोक वृन्दावन जाने की योग्यता प्रदान करती है । जैसाकि हमें पहले अध्याय से ज्ञात होता है भौतिक जगत के पार जाने का अर्थ भौतिक प्रकृति के कठोर नियमों के पार जाना है । भौतिक प्रकृति के कठोर नियम उस व्यक्ति की प्रगति को नहीं रोक सकते हैं, जो आध्यात्मिक प्रकृति द्वारा आकृष्ट है । भगवद्गीता में स्वयं भगवान् ने इस बात की पुष्टि की है-यद्यपि प्रकृति के कठोर नियमों पर विजय प्राप्त करना अत्यन्त कठिन है, यदि कोई भगवान् की शरण में जाता है, तो वह अत्यन्त सरलतापूर्वक अज्ञान को पार कर लेता है । आध्यात्मिक जगत में भौतिक प्रकृति का कोई प्रभाव नहीं है । जैसाकि हमें श्रीमद्भागवत के द्वितीय स्कन्ध से ज्ञात होता है, दिव्य लोक में देवताओं की शासन-शक्ति तथा भौतिक प्रकृति के प्रभाव का अभाव है ।

अतएव श्रील शुकदेव गोस्वामी ने द्वितीय स्कंध के प्रारम्भ में महाराज परीक्षित को परामर्श दिया है कि प्रत्येक बद्धात्मा को भगवान् की दिव्य लीलाओं के श्रवण तथा जप में संलग्न होना चाहिए । श्रील शुकदेव गोस्वामी ने राजा परीक्षित को यह सूचना भी दी कि पहले अनेक

अन्य राजा तथा महाराज अपने घर, भगवान् के धाम, लौटने के उद्देश्य से कठोर तपश्चर्या करने के लिए वन में गए थे । भारत में अभी भी यह प्रचलन है कि अनेक उन्नत अध्यात्मवादी गृहस्थ जीवन को त्याग देते हैं तथा पूर्ण रूप से भगवान् की लीलाओं के श्रवण तथा कीर्तन में लगने के लिए वृन्दावन जाते हैं । श्रीमद्भागवत में इस प्रणाली की सराहना की गई है तथा वृन्दावन के षड्गोस्वामियों ने इसका अनुसरण किया था । किन्तु आजकल अनेक कर्मियों तथा पाखण्डी भक्तों ने श्रीशुकदेव गोस्वामी द्वारा सराही गई इस प्रणाली का अनुकरण करने के लिए वृन्दावन के तीर्थ-स्थान में भीड़ कर दी है । कहा जाता है कि पहले अनेक राजा महाराज इस प्रयोजन से वन में गए, किन्तु श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर गोस्वामी महाराज उचित समय से पूर्व वृन्दावन में एकान्त जीवन को स्वीकार करने का परामर्श नहीं देते हैं ।

श्रील शुकदेव गोस्वामी के उपदेशों का पालन करने के लिए जो समय से पूर्व वृन्दावन जाता है, वह वृन्दावन में निवास करते हुए भी पुन: माया का शिकार हो जाता है । वृन्दावन में ऐसे लोगों के अवैध वास को रोकने के लिए श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने एक उत्तम गीत गाया है, जिसका तात्पर्य है, "हे मन! तुम्हें वैष्णव होने का इतना गर्व क्यों है? तुम्हारी एकान्त उपासना तथा भगवान् के पावन नाम का जप सस्ती लोकप्रियता की इच्छा पर आधारित है, अतएव तुम्हारे द्वारा भगवन्नाम का जप एक ढोंग मात्र है । सस्ती प्रसिद्धि को ऐसी महत्वाकांक्षा की तुलना शूकर के मल से की जा सकती है, क्योंकि ऐसी लोकप्रियता माया के प्रभाव का एक अन्य विस्तार है ।" व्यक्ति सस्ती लोकप्रियता के लिए भी वृन्दावन जा सकता है तथा कृष्णभावनामृत में लीन होने के स्थान पर वह सदैव धन तथा स्त्रियों के विषय में चिन्तन कर सकता है, जो कि सुख का एक अस्थायी स्रोत-मात्र है । उत्तम हो कि मनुष्य अपने पास का सारा धन तथा स्त्रियाँ भगवान् की सेवा में लगाए, क्योंकि इन्द्रिय-भोग बद्धात्माओं के लिए नहीं है ।

इन्द्रियों के स्वामी हृषीकेश, भगवान् श्रीकृष्ण हैं । अतएव इन्द्रियों को सदैव उनकी सेवा में लगाना चाहिए । जहाँ तक भौतिक प्रसिद्धि का प्रश्न है, रावण जैसे अनेक असुर भौतिक प्रकृति के नियमों के विरुद्ध जाना चाहते थे । किन्तु वे सब असफल रहे । अतएव झूठे मान-सम्मान के लिए भगवान् की सेवा किए बिना वैष्णव होने का दावा करने का आसुरी कर्म नहीं करना चाहिए । किन्तु जब व्यक्ति भगवान् की भक्ति में संलग्न हो जाता है, तब वह स्वयमेव वैष्णव के रूप में प्रसिद्ध हो जाता है । भगवान् के यशों का उपदेश देने में संलग्न भक्तों के प्रति ईष्र्यालु होने की कोई आवश्यकता नहीं है । वृन्दावन में तथाकथित बाबाजी लोग परामर्श देते हैं कि उपदेश देने की कोई आवश्यकता नहीं है तथा वृन्दावन में एकान्त स्थान पर निवास करना अथवा भगवन्नाम का जप करना उत्तम है । हमें इस प्रकार के परामर्श का व्यावहारिक अनुभव है । ऐसे बाबाजी लोगों को यह ज्ञात नहीं है कि यदि कोई व्यक्ति प्रचार-कार्य अथवा श्रीभगवान् के यशगान में संलग्न है, तब एक उपदेशक की सुख्याति स्वयमेव उसका अनुसरण करती है । अतएव व्यक्ति को वृन्दावन जाकर भ्रष्ट जीवन व्यतीत करने के लिए, समय से पूर्व एक गृहस्थ के ईमानदार जीवन का त्याग नहीं करना चाहिए । श्रील शुकदेव गोस्वामी का यह परामर्श कि गृहत्याग करके श्रीकृष्ण की खोज में वनगमन करना चाहिए, अपरिपक्व लोगों के लिए नहीं है । महाराज परीक्षित परिपक्व बुद्धि वाले थे । अपने गृहस्थ-जीवन में भी अथवा जीवन के प्रारम्भ से ही उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह की उपासना की थी । अपने बाल्यकाल में उन्होंने भगवान् श्रीकृष्ण के श्रीविग्रह की उपासना की तथा बाद में, गृहस्थ-जीवन में भी वे असम्पृक्त थे । अतएव जब उन्हें अपनी मृत्यु की पूर्वसूचना प्राप्त हुई तब तत्काल ही उन्होंने गृहस्थ जीवन से समस्त सम्बन्ध त्याग दिया तथा भक्तों की संगति में गंगा के तट पर श्रीमद//वत का श्रवण करने के लिए समासीन हुए ।

इस प्रकार लीला पुरुषोत्तम भगवान् श्रीकृष्ण के अन्तर्गत "भगवान् श्रीकृष्ण की लीलाओं का संक्षिप्त विवरण" नामक नब्बे अध्याय का भक्तिवेदान्त तात्पर्य पूर्ण हुआ ।

लेखक परिचय

कृष्णकृपामूर्ति श्री श्रीमद् ए.सी. भक्तिवेदान्त स्वामी प्रभुपाद का आविर्भाव १८९६ ई. में भारत के कलकत्ता नगर में हुआ था । अपने गुरु महाराज श्रील भक्तिसिद्धान्त सरस्वती गोस्वामी से १९२२ में कलकत्ता में उनकी प्रथम भेंट हुई । एक सुप्रसिद्ध धर्म तत्ववेत्ता, अनुपम प्रचारक, विद्वान-भक्त, आचार्य एवं चौसठ गौड़ीय मठों के संस्थापक श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती को ये सुशिक्षित नवयुवक प्रिय लगे और उन्होंने वैदिक ज्ञान के प्रचार के लिए अपना जीवन समर्पित करने की इनको प्रेरणा दी । श्रील प्रभुपाद उनके छात्र बने और ग्यारह वर्ष बाद (१९३३ ई.) प्रयाग (इलाहाबाद) में उनके विधिवत् दीक्षा-प्राप्त शिष्य हो गए ।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें । आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की । उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के पूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे । अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है ।

श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया । १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए

अधिक समय दे सकें । तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे । वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे । १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया । श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था । यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले श्रीमद्भागवतम् पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या । वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी ।

श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए । तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थरत्न प्रस्तुत किए ।

जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था । अत्यन्त कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने, अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की । १४ नवम्बर १९७७ ई. को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि समुदायों का बृहद् संगठन बना दिया ।

श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी । यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक

पूर्ण हो जाएगा । इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है । ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं । मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है । इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बैंगलोर, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं ।

किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं । ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं । श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं । १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है । इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठरह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है ।

बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं । इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी । उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं ।

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें । आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की । उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के पूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे । अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है । श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया । १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें । तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे । वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे । १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया । श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था । यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले श्रीमद्भागवतम् पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और व्याख्या । वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी । श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए । तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थरत्न प्रस्तुत किए । जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था । अत्यन्त

कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने, अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की । १४ नवम्बर १९७७ ई. को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि समुदायों का बृहद्

संगठन बना दिया । श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी । यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जाएगा । इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है । ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं । मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है । इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बैंगलोर, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं । किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं । ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं । श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं । १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है । इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठरह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है । बारह वर्षों

में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं । इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी । उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं ।

○○ R व्लीला पुरुषोत्तम अणवान् श्रीकृष्ण

अपनी प्रथम भेंट में ही श्रील भतिसिद्धान्त सरस्वती ठाकुर ने श्रील प्रभुपाद से निवेदन किया था कि वे अंग्रेजी भाषा के माध्यम से वैदिक ज्ञान का प्रसार करें । आगामी वर्षों में श्रील प्रभुपाद ने भगवद्गीता पर एक टीका लिखी, गौड़ीय मठ के कार्य में सहयोग दिया तथा १९४४ ई. में बिना किसी की सहायता के एक अंग्रेजी पाक्षिक पत्रिका आरम्भ की । उसका सम्पादन, पाण्डुलिपि का टंकण और मुद्रित सामग्री के पूफ शोधन का सारा कार्य वे स्वयं करते थे । अब यह उनके शिष्यों द्वारा चलाई जा रही है और तीस से अधिक भाषाओं में छप रही है । श्रील प्रभुपाद के दार्शनिक ज्ञान एवं भक्ति की महत्ता पहचान कर गौड़ीय वैष्णव समाज ने १९४७ ई. में उन्हें भक्तिवेदान्त की उपाधि से सम्मानित किया । १९५० ई. में श्रील प्रभुपाद ने गृहस्थ जीवन से अवकाश लेकर वानप्रस्थ ले लिया जिससे वे अपने अध्ययन और लेखन के लिए अधिक समय दे सकें । तदनन्तर श्रील प्रभुपाद ने श्री वृन्दावन धाम की यात्रा की, जहाँ वे अत्यन्त साधारण परिस्थितियों में मध्यकालीन ऐतिहासिक श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में रहे । वहाँ वे अनेक वर्षों तक गम्भीर अध्ययन एवं लेखन में संलग्न रहे । १९५९ ई. में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया । श्रीराधा-दामोदर मन्दिर में ही श्रील प्रभुपाद ने अपने जीवन के सबसे श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण कार्य को प्रारम्भ किया था । यह कार्य था अठारह हजार श्लोक संख्या वाले श्रीमद्भागवतम् पुराण का अनेक खण्डों में अंग्रेजी में अनुवाद और

व्याख्या । वहीं उन्होंने अन्य लोकों की सुगम यात्रा नामक पुस्तिका भी लिखी थी । श्रीमद्भागवतम् के प्रारम्भ के तीन खण्ड प्रकाशित करने के बाद श्रील प्रभुपाद सितम्बर १९६५ ई. में अपने गुरुदेव के आदेश का पालन करने के लिए संयुक्त राज्य अमेरिका गए । तत्पश्चात् श्रील प्रभुपाद ने भारतवर्ष के श्रेष्ठ दार्शनिक और धार्मिक ग्रन्थों के प्रामाणिक अनुवाद, टीकाएँ एवं संक्षिप्त अध्ययन-सार के रूप में साठ से अधिक ग्रन्थरत्न प्रस्तुत किए । जब श्रील प्रभुपाद एक मालवाहक जलयान द्वारा प्रथम बार न्यूयार्क नगर में आये तो उनके पास एक पैसा भी नहीं था । अत्यन्त कठिनाई भरे लगभग एक वर्ष के बाद जुलाई १९६६ ई. में उन्होंने, अन्तराष्ट्रीय कृष्णभावनामृत संघ की स्थापना की । १४ नवम्बर १९७७ ई. को, कृष्ण-बलराम मन्दिर, श्रीवृन्दावन धाम में अप्रकट होने के पूर्व श्रील प्रभुपाद ने अपने कुशल मार्ग-निर्देशन से संघ को विश्वभर में सौ से अधिक आश्रमों, विद्यालयों, मन्दिरों, संस्थाओं और कृषि समुदायों का बृहद्

संगठन बना दिया । श्रील प्रभुपाद ने श्रीधाम मायापुर, पश्चिम बंगाल में एक विशाल अन्तर्राष्ट्रीय केन्द्र के निर्माण की प्रेरणा दी । यहीं पर वैदिक साहित्य के अध्ययनार्थ सुनियोजित संस्थान की योजना है, जो अगले दस वर्ष तक पूर्ण हो जाएगा । इसी प्रकार श्रीवृन्दावन धाम में भव्य कृष्ण-बलराम मन्दिर और अन्तर्राष्ट्रीय अतिथि भवन तथा श्रील प्रभुपाद स्मृति संग्रहालय का निर्माण हुआ है । ये वे केन्द्र हैं जहाँ पाश्चात्य लोग वैदिक संस्कृति के मूल रूप का प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त कर सकते हैं । मुंबई में भी श्रीराधारासबिहारीजी मन्दिर के रूप में एक विशाल सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक केन्द्र का विकास हो चुका है । इसके अतिरिक्त भारत में दिल्ली, बैंगलोर, अहमदाबाद, बड़ौदा तथा अन्य स्थानों पर सुन्दर मन्दिर हैं । किन्तु, श्रील प्रभुपाद का सबसे बड़ा योगदान उनके ग्रन्थ हैं

। ये ग्रन्थ विद्वानों द्वारा अपनी प्रामाणिकता, गम्भीरता और स्पष्टता के कारण अत्यन्त मान्य हैं और अनेक महाविद्यालयों में उच्चस्तरीय पाठ्यग्रन्थों के रूप में प्रयुक्त होते हैं । श्रील प्रभुपाद की रचनाएँ ५० से अधिक भाषाओं में अनूदित हैं । १९७२ ई. में केवल श्रील प्रभुपाद के ग्रन्थों के प्रकाशन के लिए स्थापित भक्तिवेदान्त बुक ट्रस्ट, भारतीय धर्म और दर्शन के क्षेत्र में विश्व का सबसे बड़ा प्रकाशक हो गया है । इस ट्रस्ट का एक अत्यधिक आकर्षक प्रकाशन श्रील प्रभुपाद द्वारा केवल अठरह मास में पूर्ण की गई उनकी एक अभिनव कृति है जो बंगाली धार्मिक महाग्रन्थ श्रीचैतन्यचरितामृत का सत्रह खण्डों में अनुवाद और टीका है । बारह वर्षों में, अपनी वृद्धावस्था की चिन्ता न करते हुए श्रील प्रभुपाद ने विश्व के छहों महाद्वीपों की चौदह परिक्रमाएँ कीं । इतने व्यस्त कार्यक्रम के रहते हुए भी श्रील प्रभुपाद की उर्वरा लेखनी अविरत चलती रहती थी । उनकी रचनाएँ वैदिक दर्शन, धर्म, साहित्य और संस्कृति के एक यथार्थ पुस्तकालय का निर्माण करती हैं ।